CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

1·3

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कबीर ग्रन्थावली सटीक

(महात्मा कबीर के काव्य की आलोचना तथा साखियाँ, पदावली एवं रमैंणी की प्रामाणिक व्याख्या)

भूमिका लेखक
ॉ० गोविन्द त्रिगुणायत एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट्०
कबीर साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान्

लेखक
प्रो० पुष्पपाल सिंह एम० ए०

प्रकाशक
अशोक प्रकाशन
नई सड़क, दिल्ली-६

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रकाशक
जगदीशचन्द्र गुप्त
अशोक प्रकाशन,
नई सड़क, दिल्ली-६

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन है
प्रथम संस्करण : १९६२
मूल्य : १२.५०
पृष्ठ संख्या : ५६८

मुद्रक
पाईनियर फाइन आर्ट प्रेस
दिल्ली

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भूमिका

हिन्दी के मध्ययुगीन संत कवियों में कबीर अग्रगण्य हैं। इनके हृदय-हिमालय से अजस्र प्रवाहित होने वाली काव्य-पयस्विनी ने मध्ययुग को ही पावन नहीं किया था वरन् वह आज भी हमारे जीवन की सबसे बड़ी प्रेरणा बनी हुई है। अपने युग की अनेकानेक साधनाओं एवं विचारधाराओं की सारमयी समन्विति रूप उनकी वाणी शास्त्रीय साहित्यिकता से असम्पृक्त तथा भौतिक विलास से विरहित होने के कारण सामान्य मानव के लिए सरलता से ग्राह्य और बोधगम्य नहीं रही है। सम्भवत: इसीलिए वह बहुत दिनों तक उपेक्षिता रही। संतोष है कि अब विद्वानों की प्रवृत्ति उसके अध्ययन की ओर उन्मुख है। इस दिशा में अब अच्छी प्रगति हो रही है। प्रस्तुत रचना उसी प्रगति का एक प्रशस्त चरण है। इसमें कृती लेखक ने उनकी वाणी के अर्थ-गौरव एवं उनके स्वतन्त्र चिन्तन के जाज्वल्यमान स्फुलिंगों की झाँकी सँजोने की चेष्टा की है। उसने पहली बार कबीर ग्रंथावली की व्याख्या करने का प्रयास किया है। प्रारंभ में उसने एक पांडित्यपूर्ण आलोचना जोड़ कर अपनी कृति के मूल्य और गौरव में वृद्धि कर दी है। सम्पूर्ण रचना पर लेखक के व्यापक अध्ययन, प्रकर्ष पांडित्य और अनुसंधानात्मिका प्रतिभा की छाप दिखाई पड़ती है। मैं उसकी व्याख्या और आलोचना दोनों से प्रभावित हुआ हूँ। मैं यह निस्संकोच कह सकता हूँ कि प्रस्तुत टीका बहुत-सी दृष्टियों से बड़ी उपयोगी है। विद्यार्थी समाज का तो इससे विशेष कल्याण होगा ही, साथ-ही-साथ संत काव्य के मर्मज्ञों में भी यह समादृत होगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

—गोविन्द त्रिगुणायत

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

निवेदन

'मसि कागद छुश्रो नहीं, कलम गह्यौ नहिं हाथ' के कवि की स्थान-स्थान पर प्राप्त 'कहै कबीर ताहि गुर करौं, जो या पदहि बिचारै' जैसी घोषणाओं के सम्मुख मुझ अल्पज्ञ की क्या सामर्थ्य जो परमपद प्राप्त, शून्य साधक, अगम्य लोकवासी, रामरसमाते अल्हड़ की सहज-सुन्दर वाणी का अर्थ हृदयंगम कर सकूँ ? कबीर ने अपने विचारों को जिस सहज, प्रकृत, सुन्दर भाषा के माध्यम से व्यक्त किया है, उससे अधिक सरल रूप की अपेक्षा करना अयुक्त है। किन्तु कबीर-काव्य की भाषा परम्परा और परिस्थिति वश आज के अधिकांश समाज के लिए कुछ दुरूह हो गई है। प्रस्तुत पुस्तक के द्वारा यदि इस कठिनाई को दूर करने में, कबीर के अभिप्रेत को पाठक तक पहुँचाने में, मैं किंचित् भी सफल हो गया तो अपने श्रम को सार्थक समझूँगा। विद्यार्थियों की दृष्टि से पुस्तक को पूर्ण बनाने के लिए प्रारम्भ में आलोचना भाग भी जोड़ दिया गया है। जिन विद्वानों की कृतियों से पुस्तक में सहायता ली गई है, मैं उनका हृदय से आभारी हूँ।

—लेखक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विषय-सूची

आलोचना भाग

जीवन-परिचय	...	१
कबीर-कालीन परिस्थितियाँ	...	७
कबीर पर पड़ने वाले आध्यात्मिक प्रभाव	...	१४
कबीर की भक्ति-पद्धति	...	२४
कबीर-काव्य की रस-गागरी	...	३४
कबीर के प्रतीक और उलटवांसियाँ	...	४४
कबीर का रहस्यवाद	...	५१
कबीर: सुधारक एवं समन्वयवादी	...	६१
कबीर का दर्शन	...	६७

साखी भाग

गुरुदेव कौ अंग	...	७७
सुमिरण कौ अंग	...	८५
विरह कौ अंग	...	९३
ग्यान विरह कौ अंग	...	१०४
परचा कौ अंग	...	१०६
रस कौ अंग	...	१२०
लांबि कौ अंग	...	१२२
जर्णां कौ अंग	...	१२३
हैरान कौ अंग	...	१२५
लै कौ अंग	...	१२५
निहकरमी पतिव्रता कौ अंग	...	१२६
चितावणी कौ अंग	...	१३२

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मन कौ अंग	...	१४६
सूषिम मारग कौ अंग	...	१५७
सूषिम जन्म कौ अंग	...	१६०
माया कौ अंग	...	१६१
चांणक कौ अंग	...	१७१
करणीं बिना कथणीं कौ अंग	....	१७७
कथणीं बिना करणीं कौ अंग	...	१७८
कामीं नर कौ अंग	...	१७६
सहज कौ अंग	...	१८५
साँच कौ अंग	...	१८६
भ्रम विधौंसण कौ अंग	...	१६०
भेष कौ अंग	...	१६४
कुसंगति कौ अंग	...	२००
संगति कौ अंग	...	२०२
असाध कौ अंग	...	२०४
साध कौ अंग	...	२०५
साध साषीभूत कौ अंग	...	२०८
साध महिमा कौ अंग	...	२१३
मधि कौ अंग	...	२१६
सारग्राही कौ अंग	...	२१६
विचार कौ अंग	...	२२०
उपदेश कौ अंग	...	२२३
बेसास कौ अंग	...	२२६
पीव पिछांणन कौ अंग	...	२३२
बिर्कताई कौ अंग	...	२३३
सम्रथाई कौ अंग	...	२३५
कुसबद कौ अंग	...	२३८
सबद कौ अंग	...	२३६
जीवन मृतक कौ अंग	...	२४१
चितकपटी कौ अंग	...	२४४
गुरुसीष हेरा कौ अंग	...	२४५
हेत प्रीति स्नेह कौ अंग	...	२४८

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सूरा तन कौ अंग	...	२४६
काल कौ अंग	...	२५६
सजीवनि कौ अंग	...	२६५
अपारिष कौ अंग	...	२६७
पारिष कौ अंग	...	२६८
उपजणि कौ अंग	...	२६९
दया निरबैरता कौ अंग	...	२७१
सुन्दरि कौ अंग	...	२७२
कस्तूरियां मृग कौ अंग	...	२७३
निंद्या कौ अंग	...	२७४
निगुणाँ कौ अंग	...	२७६
वीनती कौ अंग	...	२७८
साषी-भूत कौ अंग	...	२७९
वेली कौ अंग	...	२८०
अबिहड़ कौ अंग	...	२८१

पदावली भाग

राग गौड़ी	...	२८५
राग रामकली	...	३७८
राग आसावरी	...	४१२
राग सोरठि	...	४४५
राग केदारौ	...	४६८
राग मारू	...	४८१
राग टोड़ी	...	४८३
राग भैरूं	...	४८४
राग बिलावल	...	५०५
राग ललित	...	५१२
राग बसंत	...	५१३
राग माली गौड़ी	...	५२२
राग कल्याण	...	५२३
राग सारंग	...	५२४
राग मलार	...	५२५
राग धनाश्री	...	५२६

रमैंणी भाग

राग सूहौ	...	५३०
सतपदी रमैंणी	...	५३२
वड़ी अष्टपदी रमैंणी	...	५३६
दुपदी रमैंणी	...	५४६
अष्टपदी रमैंणी	...	५५४
बाराहपदी रमैंणी	...	५५९
चौपदी रमैंणी	...	५६४

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आलोचना भाग

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जीवन-परिचय

महात्मा कबीर हिन्दी साहित्य की महान् विभूति हैं। उन जैसा निरक्षर भट्टाचार्य किन्तु उच्चतम दार्शनिक, उन जैसा फक्कड़ और अपनी धुन में मस्त रहने वाला किन्तु फिर भी समाज की प्रत्येक गतिविधि पर कठोरतम दृष्टि रखने वाला, उन जैसा अल्हड़ फकीर किन्तु राम में प्रतिपल रमने वाला, 'मसि कागद न छूकर' भी अपनी सरल बानियों में काव्य की रस गागरी उंडेल देने वाला व्यक्तित्व दूसरा नहीं। किन्तु यह हमारा दुर्भाग्य है कि विलक्षण व्यक्तित्व वाले कबीर का जीवन-वृत्तान्त अब तक प्रामाणिक रूप से प्रस्तुत नहीं किया जा सका है। वस्तुतः उन कवियों ने जिनकी वाणी पर बैठकर स्वयं सरस्वती ने कलम पकड़ी थी, जो सर्वप्रसिद्ध और सर्वपूज्य होकर भी अपने को अहं की परिधियों से दूर रख सके थे, जो कवि के साथ-साथ सन्त, भक्त और परमतत्व के साधक भी थे; अपने विषय में कुछ भी नहीं लिखा है। यदि लिखा भी है तो इतना संक्षिप्त कि उस एक-आध पंक्ति को लेकर अनुमान के भवन खड़े किए जा सकते हैं। यही स्थिति कबीर के साथ है। अन्तःसाक्ष्य के आधार पर उनके जीवन के एकाध ही सूत्र को पकड़ा जा सकता है। अतः बहिः साक्ष्य ही उनके जीवन-वृत्त जानने का एकमात्र आधार है। बहिःसाक्ष्य के आधार पर भी जो सामग्री प्राप्त है, उससे अनेक अनुमान परिकल्पित किये जा सकते हैं।

अन्तःसाक्ष्य के आधार पर कबीर की जन्मतिथि के विषय में इतना तो निश्चित ही है कि कबीर संस्कृत कवि जयदेव और नामदेव के पश्चात् हुए और इनके समय तक जयदेव और नामदेव की कीर्ति पर्याप्त फैल चुकी थी—

"गुरु परसादी जैदेव नामा।
भगति के प्रेम इन्हहि है जाना॥"

किन्तु इतने ही निश्चय से हम कबीर की जन्मतिथि के विषय में कुछ नहीं जान सकते, अब भी अनुमान के लिए पर्याप्त अवसर रहता है। उनके जन्म के विषय में सर्वाधिक प्रसिद्ध यह पद उद्धृत किया जाता है—

"चौदह सो पचपन साल गये, चन्द्रवार एक ठाट ठए।
जेठ सुदी बरसायत को पूरनमासी प्रगट भए॥
घन गरजे दामिनि दमके बूंदें बरसे झर लाग गए।
लहर तालाब में कमल खिले तहं कबीर भानु प्रकट भए॥"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उपर्युक्त पदानुसार कबीर का जन्म संवत् १४५५ के ज्येष्ठ मास में शुक्ल पक्ष की पूर्णमासी को, जिस दिन सोमवार था, हुआ। किन्तु ज्योतिष गणनानुसार संवत् १४५५ में ज्येष्ठ-पूर्णिमा सोमवार को नहीं पड़ती अपितु १४५६ में ज्येष्ठ पूर्णिमा सोम को ही पड़ती है। अतः 'चौदह सौ पचपन साल गए' का अर्थ सं० १४५५ बीत जाने से लगाया गया है। इसी आधार पर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने इनकी जन्मतिथि जेठ सुदी पूर्णिमा सोमवार सं० १४५६ वि० निश्चित की थी, किन्तु डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल जी ने इनकी जन्मतिथि सं० १४०७ और सं० १४४७ के बीच मानी है। उनका तर्क है कि नामदेव की प्रसिद्धि कबीर के समय में पर्याप्त हो गई थी। नामदेव की मृत्यु सं० १४०७ में मानी जाती है अतः कबीर का जन्म सं० १४०७ के पश्चात् ही हुआ होगा। डा० बड़थ्वाल जी कबीर के गुरु रामानन्द की मृत्यु तिथि सं० १४६७ मानकर यह निश्चित करते हैं कि रामानन्द की मृत्यु के समय कबीर की आयु लगभग १८-२० वर्ष अवश्य रही होगी क्योंकि इससे पूर्व दीक्षा लेने वाली बात समझ में नहीं आती। इस भांति वे संवत् १४०७ और संवत् १४४७ के मध्य ही कबीर का जन्म मानते हैं। डा० हंटर के अनुसार इनकी जन्मतिथि १४३७ वि० सं० व वेस्टकाट के अनुसार सं० १४९७। किन्तु डा० त्रिगुणायत डा० सरनामसिंह प्रभृति विद्वान् आपकी जन्मतिथि संवत् १४५५ ही मानते हैं। यही तिथि अब अधिक मान्य है।

कबीर के जन्म की तिथि पर जिस भांति अनेक मत और विचारधाराएं हैं उसी प्रकार कबीर के जन्म स्थान के विषय में भी प्रमुख रूप से तीन मत हैं। प्रथम यह कि वे काशी में उत्पन्न हुए थे, द्वितीय मत के पोषक मानते हैं कि वे मगहर में प्रकट हुए थे, जबकि तीसरे मत के कुछ लोग उन्हें आजमगढ़ जिले में स्थित बेलहरा गांव का निवासी मानते हैं। काशी को कबीर का जन्म स्थान मानने वाले विद्वान् अपने समर्थन में कबीर की इन पंक्तियों को उद्धृत करते हैं—

"काशी में हम प्रगट भए हैं रामानन्द चिताये।"

× × × ×

"त ब्राह्मन मैं कासी का जुलाहा चीन्ह न मोर गियाना।"

× × × ×

"सगल जनमु सिवपुरी गंवाइया, मरती बार मगहर उठि धाइया।"

× × × ×

"पहले दरसन कासी पायो, पुनि मगहर बसे आई।"

× × × ×

"बहुत बरस तप कीया कासी, मरनु भइया मगहर को बासी।"

अन्तःसाक्ष्य के अतिरिक्त किंवदन्तियों और सम्प्रदाय के अन्य उल्लेखों द्वारा भी काशी ही कबीर का स्थान ठहरता है। उनके शिष्य धर्मदास आदि ने भी उन्हें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शी वासी ही बताया है। डा० श्यामसुन्दर दास जी तथा पं० सीताराम चतुर्वेदी जी भी यही मत है। किन्तु डा० रामकुमार वर्मा, डा० त्रिगुणायत जी आदि ने उनका न्म स्थान मगहर को माना है। मगहर को जन्म स्थान बताने वाले कबीर की एक क्ति, जो काशी की पुष्टि करने वाले अपने पक्ष-समर्थन में देते हैं, का पाठ इस कार देते हैं—

"पहले दरसन मगहर पायो, पुनि कासी बसे आई।"

इस पंक्ति में 'दरसन' शब्द को लेकर भी विद्वानों में मतभेद है। काशी के षक इस दरसन का अर्थ प्रभु-दर्शन करते हैं जबकि 'मगहर' को जन्म स्थान मानने ले 'दरसन' का अर्थ जन्म धारण करना बताते हैं। डा० गोविन्द त्रिगुणायत जी गहर को जन्म स्थान बताने के पक्ष में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत करते हैं—

१. मगहर में मुसलमानों की बस्ती बहुत अधिक है, वे सभी अधिकतर जुलाहे । कोई आश्चर्य नहीं कि कबीर इन्हीं जुलाहों के घर उत्पन्न हुए हों।

२. कबीरदासजी ने अपनी रचनाओं में मगहर की कई बार चर्चा की है। इस तात्पर्य यह है कि मगहर से उनका घनिष्ठ सम्बन्ध था। उन्होंने उसे सदैव काशी समकक्ष ही पवित्र और उत्तम माना है। इतनी अधिक श्रद्धा-भावना केवल जन्म थान के प्रति ही हो सकती है।

३ कबीरदास जी मृत्यु का समय समीप आने पर मगहर चले गए थे। न्होंने काशी में रहना उचित नहीं समझा। यह मानव स्वभाव है कि वह जहां त्पन्न होता है वहीं मरना चाहता है।

४. कबीरदास जी ने स्पष्ट लिखा है कि सबसे प्रथम उन्होंने मगहर को खा था, उसके बाद वे काशी में बस गये थे। उक्ति में खींचातानी कर दूसरा अर्थ गाना हठधर्मी भर होगी।

५. कबीरदास जी ने लिखा है कि 'तोरे भरोसे मगहर बसिओ मेरे तन ो तपन बुझाई'। इस पंक्ति से स्पष्ट है कि अपनी जन्मभूमि में पहुंचकर इस प्रकार ी शान्ति का अनुभव करना स्वाभाविक भी है।

एक बात और है आर्कियोलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया में लिखा है कि बिजली ां ने बस्ती जिले के पूर्व में आमी नदी के दाहिने तट पर रोजा सम्वत् १५०७ में नवाया था। सिकन्दर लोदी और कबीर के मिलन की घटना के आधार पर निश्चित कया जा चुका है कि उस समय कबीर जीवित थे। मेरा अनुमान है कि बिजली खां बीर का भक्त था। उसने कबीर के जीवन काल में कबीर के जन्म स्थान में कोई ारक बनवाया होगा। आगे चलकर फिदई खां ने उनकी मृत्यु के बाद उसे रोजे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

का रूप दिया होगा।"[1]

किन्तु त्रिगुणायत जी के ये समस्त तर्क सर्वमान्य नहीं। डा० सरनाम, जी ने प्रथम तर्क का उत्तर देते हुए कहा है—'यह ठीक है कि मगहर में जुलाहे संख्या अधिक है, किन्तु इससे यह निष्कर्ष कैसे निकाला जा सकता है कि १. स्थान का 'मगहर' नाम कबीर का समकालीन है, २. वहाँ कबीर के जन्म के पहले ही जुलाहे रह रहे हैं; ३. कबीर का जन्म किसी जुलाहे के ही घर में हुआ था; ४. वह इसी स्थान का जुलाहा था? हो सकता है कि यह मगहर कोई नयी हो और कबीर के बाद जुलाहे लोग यहाँ आ बसे हों और उन्होंने अपने स्थान को महत्व देने के लिये कबीर से सम्बन्धित 'मगहर' के पीछे मगहर नाम लिया हो।"[2]

दूसरे तर्क के उत्तर में सरनामसिंह जी का कथन है कि "यहां यह का कोई कारण नहीं दीख पड़ता कि यह मगहर, जिसका कबीर दास ने बार-बार लिया है, काशी के समीप का ही मगहर है और यह भी कोई पुष्ट तर्क नहीं मनुष्य जन्म स्थान के प्रति ही अधिक श्रद्धा-भावना रखता है। यदि ऐसा हो अनेक लोग अपने जन्म स्थान को छोड़कर श्रद्धावश काशी, मथुरा, द्वारिका तीर्थ स्थानों में न जायें।......मैं समझता हूं कबीरदास ने अपनी रचनाओं में की चर्चा इसलिए नहीं की कि वह उनका जन्म-स्थान था, वरन् इसलिए कि वे पर थोपे हुए निर्मूल कलंक को अन्ध-विश्वास के सिर मढ़ना चाहते थे। इससे निष्कर्ष पर पहुंचना अनुचित नहीं कि कबीर द्वारा की गई मगहर की चर्चा में भावना की सन्नद्धता न होकर रूढ़ि एवं अन्ध-विश्वास की उन्मूलनकारिणी प्रवृत्ति सतर्कतामात्र है।"[3]

तीसरे तर्क के प्रत्युत्तर में डा० सरनामसिंह जी का कहना है कि "क जैसे निर्मोह जीवनमुक्त के सम्बन्ध में यह कहना उचित नहीं कि वे अपने अन्त में भी जन्म स्थान के ममत्व का संवरण न कर सके और यह कहना भी अनुचित कि कबीरदास जी मानव-स्वभाव के अनुकूल ही मृत्युकाल के समीप अपने स्थान मगहर को चले गये थे। अतएव यह कहना ही उचित दीख पड़ता है सत्य के अनुसन्धान से प्राप्त अपने निजी विश्वास के अनुकूल ही मगहर गये थे इस अन्ध-विश्वास का खण्डन करना चाहते थे कि मगहर में मरने वाले को गधे योनि या नरक की प्राप्ति होती है।" चौथे तर्क के प्रत्युत्तर में डा० सिंह का

१. "कबीर की विचारधारा"—पृष्ठ २९—३०।
२. "कबीर : एक विवेचन"—पृष्ठ ३१।
३. वहीं—पृष्ठ ३२।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के—"अनेक प्रतिलिपियों में यह पंक्ति भी तो मिलती है—"पहले दरसन कासी
, पुनि मगहर बसे आई।' अतः इस समस्या के हल के निमित्त हठधर्मी नहीं
सकती दोनों पंक्तियों की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में शोध की आवश्यकता है।"

पाँचवें तर्क का उत्तर देते हुए डा० सिंह ने उस पंक्ति का अर्थ ही दूसरा
या है जो वास्तव में अभिप्राय के अधिक निकट है। छठे तर्क का उत्तर देते हुए
० सिंह ने कहा है "डा० साहब (त्रिगुणयत जी) का अनुमान है कि यह स्मारक
ीर के जन्म-स्थान में ही बनवाया गया होगा। उनके मत से कबीर का जन्म स्थान
काशी का समीपवर्ती मगहर। फिर यहाँ उस स्मारक का प्रश्न ही नहीं उठता
बस्ती जिले में आमी नदी के तट पर बनाया गया था।"

तीसरे स्थान आज़मगढ़ जिले का बेलहरा का एकमात्र पुष्ट प्रमाण 'बनारस
स्ट्रिक्ट गजेटियर' ही है। इस गाँव में एक तालाब भी, जिसके साथ कबीर-जन्म
कथा जुड़ी है, बताया जाता है। किन्तु फिर भी अधिक पुष्ट प्रमाणों के अभाव
अब इस स्थान को कबीर का जन्म-ग्राम कोई नहीं मानता।

चाहे कबीर का जन्म-स्थान काशी या उसका समीपस्थ मगहर अथवा अन्य
स्थान रहा हो किन्तु इतना सुनिश्चित है कि कबीर के जीवन का अधिकाँश
य शिवपुरी काशी में ही व्यतीत हुआ, यहीं उन्हें सत्संग की वे सुविधाएं, सभाएं,
प्त हुईं जिसका वर्णन उन्होंने अनेक स्थानों पर किया है, एवं अपने जीवन की
ध्या के अवसान काल में वे मगहर में आ बसे थे। मगहर में आने का उद्देश्य और
छ नहीं था अपितु समाज में उसी सामान्य अंधविश्वास को जड़ से उखाड़ना था
मगहर में शरीर छोड़ने से कुगति होती है। मगहर में ही संवत् १५७५ वि० में
ीर का गोलोकवास हुआ था।

कबीर का जन्म चाहे जिस जाति में हुआ हो किन्तु यह तो सर्वविदित एवं
ाँ निश्चित है कि वह जुलाहा कर्म से सम्बन्धित थी। जातिविषयक मतभेद का
य विषय यह है कि कबीर हिन्दू जुलाहे, जिन्हें 'कोरी' या 'क़ोली' कहा जाता है,
अथवा मुसलमान जुलाहे! अन्तःसाक्ष्य के आधार पर किसी निश्चित मत पर
ुंचना बड़ा कठिन है क्योंकि कहीं कबीर ने अपने को कोली बताया है तो कहीं
ुलाहा। यथा —

> "हरि को नाम अभै पद दाता, कहै कबीरा कोरी॥
>
> × × ×
>
> "मेरे राम की अभै पद नगरी, कहै कबीर जुलाहा।"
>
> × × ×
>
> 'पूरब जन्म हम ब्राह्मण होते ओछे करम तपहीना।
> रामदेव की सेवा चूका, पकरि जुलाहा कीना॥" आदि।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

डा० श्यामसुन्दर दास, डा० रामकुमार वर्मा, डा० हजारीप्रसाद द्विवे प्रभृति सभी विद्वान् यह मानते हैं कि कबीर की जाति मूल रूप से हिन्दू ही थी, उनका पालन-पोषण नीरू-नीमा नामक मुसलमान जुलाहा दम्पति ही ने किया है स्वर्गीय डा० श्यामसुन्दरदास जी कबीर के जन्म के साथ जुड़ी विधवा ब्राह्मणी कथा को लक्ष्य करते कहते हैं—"कबीर का विधवा ब्राह्मण-कन्या का पुत्र हो असम्भव नहीं किन्तु स्वामी रामानन्द जी के आशीर्वाद की बात ब्राह्मण कन्या कलंक मिटाने के उद्देश्य से पीछे से जोड़ी गई जान पड़ती है, जैसे कि अन्य प्रति शाली व्यक्तियों के सम्बन्ध में जोड़ी गई है। मुसलमान घर में पालित होने पर कबीर का हिन्दू विचारों में सराबोर होना उनके शरीर में प्रवाहित होने वाले ब्राह्म अथवा कम से कम हिन्दू-रक्त की ओर संकेत करता है।" इसी भाँति डा० रा कुमार वर्मा कहते हैं कि "कबीर के पिता ऐसी जुलाहा जाति के होंगे जो मुसलम होते हुए भी योगियों के संस्कारों से सम्पन्न थे तथा दशनामी सम्प्रदाय में दीक्षि होने के कारण गोसाईं कहलाते थे। इन गोसाँइयों पर नाथ पंथ का पर्याप्त प्रभ था।" डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी जी का कथन है कि "कबीरदास के विषय प्रसिद्ध है कि उनकी मृत्यु के बाद कुछ फूल बच रहे थे जिनमें से आधों को हिन्दु ने जलाया और आधों को मुसलमानों ने गाड़ दिया। कई पण्डितों ने इस बात करामाती किंवदन्ती कहकर उड़ा दिया है। पर मेरा अनुमान है कि सचमुच ही कबी दास को (त्रिपुरा जिले के वर्तमान योगियों की भाँति) समाधि भी दी गई है और उनका अग्नि-संस्कार भी किया गया होगा। यदि यह अनुमान सत्य है दृढ़ता के साथ ही कहा जा सकता है कि कबीरदास जिस जुलाहा जाति में पालि हुए थे वह एकाध पुश्त पहले के योगी जैसी किसी आश्रमभ्रष्ट जाति से मुसलम हुई थी या अभी होने की राह में थी।"

जहाँ तक गुरु का सम्बन्ध है मुसलमान लोग उन्हें शेख तकी का शिष्य ब कबीर के हिन्दू शिष्य उन्हें रामानन्द का शिष्य बताते हैं। किन्तु पुष्ट प्रमा से अब तो यह पूर्ण प्रमाणित हो चुका है कि कबीर के गुरु रामानन्द ही थे। उ से कबीर को प्रेम और भक्ति तथा राम नाम के अमरदान मिले हैं जिनसे कबी काव्य भरा पड़ा है। दूसरे, उन्होंने जहाँ कहीं भी रामानन्द का उल्लेख किया है उ वर्णन में गुरु के लिए अभीष्ट श्रद्धा है जबकि शेख तकी का नाम तो एकाध स्था पर ही लिया है और वह भी इस रूप में कि स्वयं गुरु रूप में शेख तकी को कोई बा समझा रहे हों। ईश्वर से भी गुरुतर गुरु को मानने वाले कबीर से ऐसी आशा न की जा सकती कि वे अपने गुरु का नाम इस भाँति लेते जिस भाँति उन्होंने शे तकी का उल्लेख किया है। दूसरी ओर जहाँ कहीं भी रामानन्द जी का प्रसंग आ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है, कबीर उतने ही विनम्र श्रद्धावनत शिष्य बन गये हैं जितना उनके शिष्य होने के लिये वांछनीय है।

कबीर का विवाह लोई अथवा धनिया नाम की स्त्री के साथ हुआ। कुछ विद्वानों ने यह भी सिद्ध किया है कि कबीर के दो विवाह हुए थे—प्रथम लोई से और दूसरा धनिया से। इन विद्वानों का कथन है कि द्वितीय विवाह करने का कारण पहली पत्नी लोई के साथ ठीक प्रकार से नहीं पटना है। कबीर के एक पुत्र एक पुत्री—कमाल और कमाली—होने का भी उल्लेख प्राप्त होता है। स्वयं कबीर ने इस बात की पुष्टि इस प्रकार की है—

"बूढ़ा वंश कबीर का उपज्यो पूत कमाल।
हरि कौ सुमिरन छाँड़ि कै घर ले आया माल ॥"

"मसि कागद छुओ नहीं कलम गह्यौ नहीं हाथ" की घोषणा करने वाले महात्मा कबीर ने कभी किसी पाठशाला की चहारदीवारियों में बैठकर शिक्षा प्राप्त नहीं की किन्तु फिर भी उनका ज्ञान किसी शिक्षित से कम नहीं। वास्तव में पुस्तकीय ज्ञान की तो उन्होंने मिट्टी पीटी है, वे तो—

"पोथी पढ़-पढ़ जग मुआ, पंडित भया न कोय।
एकै अक्षर प्रेम का, पढ़ै सो पंडित होय ॥

के उद्घोषक थे। पोथी को वहाकर बावन आखर मध्य से 'रमै ममै' में ही रुचि को रमादेने से ज्ञान के उच्चतभ सोपान को उन्होंने आत्मसात् कर लिया।

इस भाँति हम देखते हैं कि कबीर का जीवन और व्यक्तित्व अनेक विषमताओं में पड़कर उस अचल शिखर के समान हो गया था जिस पर प्रचण्ड से प्रचंड झंझावात कुछ भी प्रभाव नहीं छोड़ते अपितु उससे टकराकर स्वयं अपनी शक्ति को क्षीण कर धूलि में मिल जाते हैं।

कबीर-कालीन परिस्थितियां

महापुरुष समय की आवश्यकताओं से उत्पन्न होते हैं—यह कथन चाहे किसी महापुरुष के विषय में पूर्ण उतरता हो या नहीं, किन्तु कबीर के विषय में तो अक्षरशः सत्य है। परिस्थितियों ने कबीर के व्यक्तित्व को इतना प्रखर और तत्ता बना दिया था कि समाज के बाह्याचार, व्यर्थाडम्बर, ढकोसले ढह गये। उन्होंने भारतीय लोक-मानस का नेतृत्व ऐसे समय में किया जब उसको ऐसे ही कर्णधार की आवश्यकता थी जो विविध धर्म-साधनाओं, विरोधी भावनाओं का केन्द्र बिन्दु, समन्वय स्थल बन उसका पथ प्रशस्त कर सके। वास्तव में कबीर स्वतःप्रसूत ऐसे वन्य-कुसुम हैं, जो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वन की निश्छलता और अकृत्रिमता लेकर भी वन में उत्पन्न नहीं होता अपितु किसे ऐसे स्थल पर उत्पन्न होता है जहां दुर्गन्धमय वनस्पति का वातावरण है किन्तु इस कुसुम के विकास से उसका सौरभ समस्त दुर्गन्धमय वातावरण को सुरभित कर देता है। वे समाज की विषम परिस्थितियों के पंक में उत्पन्न ऐसे पंकज हैं जो 'पद्मपत्र मिवाम्भसि' के आदर्श द्वारा जिस सरोवर में उत्पन्न होता है उसे भी निर्मल कर देता है।

कबीर-कालीन विविध परिस्थितियों के विहगावलोकन से इस कथन की सत्यता प्रमाणित होगी।

राजनीतिक परिस्थितियां—

दास वंश की दासता से पिसता चला आता हमारा देश तुगलक वंश की बुद्धिमत्तापूर्ण मूर्ख योजनाओं के दुष्परिणाम भोग रहा था। मुहम्मद तुगलक, जो इतिहास का सर्वाधिक बुद्धिमान् मूर्ख बादशाह था, अपनी राजधानी-परिवर्तन, विश्व-विजय की महत्त्वाकांक्षा, ताम्रमुद्रा प्रचलन जैसी योजनाओं से प्रजा पर कष्ट के पहाड़ तोड़ रहा था। देश में बढ़ते हुए अकाल, महामारी, नृशंस नर-संहार आदि प्रजा में घोर निराशा और मानसिक ग्लानि के बीज वपन कर रहे थे। तुगलक वंश के शासन में देश की जनता ने देखा कि फीरोज तुगलक जैसे कट्टर मुसलमान, संकीर्ण हृदय शासक का शासन, जो अपनी नृशंसता के लिए इतना कुख्यात है कि एक ब्राह्मण को केवल यह कहने पर कि हमारा धर्म भी इस्लाम के समान श्रेष्ठ है, अग्नि की लपटों में झोंक स्वाहा कर दिया था। सर्वप्रथम फीरोज शाह तुगलक ने ही ब्राह्मणों पर 'पोल' कर जैसा धार्मिक कर लगाया था। इन्हीं विकराल परिस्थितियों में भारतीय जनता जब अपनी सांसों को गिन रही थी, तैमूर का बर्बर आक्रमण हुआ। इस युद्ध ने अपनी भीषण नर-हत्या द्वारा रक्त की ऐसी नदियाँ बहाई कि मानवता रो उठी। स्त्री, पुरुष, बच्चे तैमूर के सैनिकों की संगीनों के लक्ष्य बन गए। भ्रष्टाचार, बलात्कार आदि अमानुषिक कृत्यों से भारतीय जनता का—विशेषतः हिन्दू जनता की रही-सही प्रतिष्ठा, शक्ति—सर्वस्व धूलि-धूसरित हो गया। देश में सर्वत्र अशान्ति, आतंक, निर्धनता और विपन्नता के रोंगटे खड़े कर देने वाले दृश्य उपस्थित हुए।

इस युद्ध के बाद दिल्ली, जो तत्कालीन भारत का भाग्य बिन्दु था, पर लोदी वंश की सत्ता स्थापित हुई। बहलोल लोदी ने अपने अल्पकालीन शासन में देश की एकता को सुरक्षित करने का प्रयास किया था किन्तु वह शीघ्र ही काल कवलित हो गया। बहलोल लोदी के पश्चात् सिकन्दर लोदी उसकी परम्परा को सुरक्षित न रख सका और अपनी धर्मान्धता के कारण इसने हिन्दुओं पर अगणित अत्याचार किए।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इतिहासकारों का यहां तक कहना है कि इस्लाम ग्रहण कराने के ही लिए उसने एक-एक दिन में १५०० हिन्दुओं तक का वध किया था। इस्लाम-प्रचार की धुन में व्यस्त इस क्रूर शासक ने हिन्दुओं के समस्त धार्मिक कृत्यों पर रोक लगा मन्दिरों तक को सरायों आदि में परिवर्तित कर दिया था।

ऐसी विकट राजनैतिक स्थिति में भारतीय हिन्दू जनता को ऐसे कर्णधार की आवश्यकता थी जो उन्हें डूबते को तिनके का सहारा देकर भी बचा ले। विपन्न हिन्दू जनता के लिए कबीर एक ऐसे पोत के समान आए जिसने उन्हें जीवनाधार दिया।

राजनैतिक प्रभावों का आकलन करते हुए डा० गो० त्रिगुणायत जी निम्न निष्कर्ष प्रस्तुत करते हैं:—

१ "धर्म सुधार की भावना जागृत हुई। उसी के फलस्वरूप गोरखनाथ जी ने नाथ पंथ चलाया। दक्षिण में लिंगायत और सिद्धग आदि पन्थों का भी उदय इसी धर्म सुधार भावना के कारण हुआ था। इन सब का लक्ष्य हिन्दू धर्म और इस्लाम में सामञ्जस्य स्थापित करना था। कबीर की विचारधारा भी ऐसा ही लक्ष्य लेकर चली थी।

२. पर्दा प्रथा समाज में दृढ़ होती गई। कुछ तो मुसलमानों की देखादेखी और कुछ इस भावना से कि मुसलमान स्त्रियों को देख मोहित हो बलात्कार न कर बैठें, हिन्दुओं में भी पर्दा प्रथा का प्रचार बढ़ गया। (मुसलमानों के अनुकरण की अपेक्षा पर्दा प्रथा अपनाने में आत्म-सुरक्षा की ही भावना अधिक थी। इसी भावना से प्रेरित होकर स्त्रियों ने अपने मुख-सौन्दर्य को विकृत तक किया था।)

३. हिन्दू समाज में निरुत्साह और निराशा फैल गई। इसके फलस्वरूप धर्म की ओर उसकी अभिरुचि बढ़ने लगी। धर्म भी सगुणोपासना में असमर्थ होने के कारण निर्गुणोपासना की ओर झुका। (किन्तु निर्गुणोपासना की ओर झुकने में मुख्य कारण सगुणोपासना का अवसर न प्राप्त होना इतना नहीं, जितना जनता का सगुणोपासना से विश्वास उठ जाना है।)

४. हिन्दू लोग राजनीति से उदासीन हो चले। उनका जीवन दारिद्र्य और निराशा में ही बीतने लगा। इसी ऐकान्तिकता और निवृत्यात्मकता से प्रेरित हो उन्होंने निर्गुण ब्रह्म की उपासना प्रारम्भ की।"[1]

कबीर के साहित्य में ये सब भावनाएं इस रूप में प्रस्फुटित हुई हैं कि जनता अपना मनोनुकूल सम्बल पा गई। इससे कबीर-काव्य लोकमानस के इतना सन्निकट है कि उससे पूर्व का काव्य चाहे कितना ही लोक-मंगल की भावना को लेकर चला

१: "कबीर की विचारधारा"—पृष्ठ ७१-७२।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हो किन्तु वह जनप्रिय न हो सका। वस्तुतः कबीर-साहित्य प्रथम आवश्यकता को पूर्ण करता है, शिव की भावना को प्रश्रय देता है, तदनन्तर काव्य के अन्य प्रयोजनों को पूर्ण करता है। वह साहित्य 'शिव' की ही भावना से प्रसूत है।

सामाजिक स्थिति—

तात्कालिक राजनैतिक परिस्थिति से ही हम यह अनुमान भली भांति लगा सकते हैं कि यहां की सामाजिक दशा अच्छी न रही थी। युद्ध के पश्चात् किसी देश की सामाजिक स्थिति ठीक भी कैसे रह सकती थी ? हिन्दू समाज तो विजित जाति होने के कारण घोर मानसिक हीनता ग्रंथि से ग्रसित था। फलस्वरूप उसमें घोर निराशा बढ़ रही थी। यवनों के बढ़ते अत्याचारों को देख धर्मप्राण हिन्दू जनता कराह रही थी। साथ ही वर्णाश्रम धर्म-व्यवस्था के बंधन जटिल से जटिलतर होते जा रहे थे। हिन्दू-धर्म अपनी वर्ण-व्यवस्था के बंधनों को कठोर कर अपने चतुर्दिक् रक्षात्मक व्यूह बनाता जा रहा था, एक प्रकार से वह निःशेष हिन्दुओं की पवित्रता के लिए, उन्हें हिन्दू रखने के लिए और अधिक कठोर नियमों की सीमा में आबद्ध हो रहा था। इस व्यवस्था से हानि-लाभ दोनों हुए। लाभ तो इस रूप में कि व्यवस्था हिन्दुओं के बचे धर्म की रक्षा में प्राणपण से प्रस्तुत थी और हानि इस रूप में कि यह व्यवस्था रक्षा तो अत्यन्त अल्प हिन्दुओं की कर पायी और हिन्दू-समाज से उसका एक बहुत बड़ा निम्नवर्गीय समुदाय पृथक् हो गया। इस निम्नवर्गीय समुदाय को हिन्दुओं की कठोर व्यवस्था द्वारा प्रतारणा, लांछना और तिरस्कार मिला था किन्तु अब उनके सम्मुख इस्लाम का ही उन्मुक्त द्वार था, जहां छोटे-बड़े का भेद भाव नहीं था। अब हिन्दू समाज को ऐसे मत की आवश्यकता थी जो 'जाति-पाति माने नहीं कोई, हरि को भजे सो हरि का होई।' की भावना को प्रश्रय दे। विभिन्न गुह्य साधनाएं और मत इसके लिए प्रस्तुत थे। यही कारण है कि सहजयानी, बज्रयानी सिद्ध लगभग सभी निम्न वर्ग के थे और स्वयं कबीर आदि के भी शिष्य निम्न-जातीय हैं। हिन्दू संस्कृति और भाषा-साहित्य सभी ह्रासोन्मुख हो रहे थे, क्योंकि शिक्षा का अभाव होता जा रहा था।

दूसरी ओर मुसलमान समाज यद्यपि बहुत सी सुविधाएं प्राप्त कर रहा था तो भी वह अवनति के गर्त्त में जा रहा था। इसका कारण धन-वैभव पाकर विलासिता में पड़े रहना और आचरणहीनता ही थी। छोटे-छोटे मुसलमान ताल्लुकेदार तक सुन्दरियों की सेना से घिरे रहते थे। इतिहासकारों का कथन है कि यवन जाति इस समय अपना पुरुषत्व खो आचरणभ्रष्ट हो गई थी और उनका वह बाहुबल निःशेष हो गया था जिसके आधार पर उन्होंने भारत पर प्रभुसत्ता स्थापित की थी।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इन दोनों जातियों के सम्बन्ध पर जब हम विचार करते हैं तो ज्ञात होगा कि राज्य की नीति और शासकों की क्रूरता द्वारा दोनों जातियों के बीच भेद की एक खाई खड़ी होती जा रही थी। किन्तु यह सौभाग्य की बात है कि कबीर के समय में आकर दोनों जातियों में एक वर्ग ऐसा हो गया था जो दोनों जातियों को एक देखना चाहता था। वास्तव में कबीर एक ऐसी युग-सन्धि के काल में पैदा हुए थे जिसमें हिन्दू और मुसलमान जातियों के उच्च वर्गों में एक दूसरे के प्रति चाहे जितनी असहिष्णुता क्यों न रही हो, लेकिन निम्न वर्ग और जातियों में परस्पर एक दूसरे के निकट आने की और मिल-जुलकर रहने की भावना बलवती होती जा रही थी और युग की आवश्यकता यह थी कि कोई सर्वसाधारण के अनियन्त्रित विक्षोभ और विद्रोह को एक सरल और सीधा मार्ग दिखा सके। कबीर ने निर्गुण प्रेमभक्ति का मार्ग लोगों को दिखाया और उन्होंने प्रेम को ही साध्य और साधन दोनों माना।[1]

इन सामाजिक परिस्थितियों के फलस्वरूप जो भावनाएं स्वाभाविक रूप से कबीर-काव्य में आईं उनमें समाज की कुरीतियों और बाह्याडम्बरों के प्रति विरोध एवं दोनों जातियों में एकत्व भावना उत्पन्न करना आदि प्रमुख हैं।

धार्मिक स्थिति—

कबीर कालीन धार्मिक स्थिति के परिशीलन से स्पष्ट होगा कि उस समय समाज में नाना धार्मिक साधनाएं प्रचलित थीं। इन समस्त मतों और साधनाओं को विद्वान् दो वर्गों में रखते हैं—एक वे जो उच्च वर्ग में मान्य और प्रिय थीं, दूसरी वे जिनमें निम्नवर्गीय समाज रुचि लेता था। डा० सरनामसिंह शर्मा जी ने इसे ही वैदिक धारा और वेद-विरोधी-धारा के नाम से पुकारा है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि वेद-विरोधी साधनाओं के द्वार समाज के प्रत्येक वर्ग के लिए उन्मुक्त थे जबकि वैदिक धारा के अंतर्गत आने वाली साधनाएं उच्च वर्गों को ही प्रश्रय देती थीं। इन दोनों कोटियों की साधनाओं और सम्प्रदायों में वैष्णव संप्रदाय, शैव सम्प्रदाय, शक्ति सम्प्रदाय, बौद्ध और जैन सम्प्रदाय विशेष प्रसिद्ध थे। इतना ही नहीं इन सम्प्रदायों के भी उपभाग थे जैसे वैष्णव सम्प्रदाय में शंकर, रामानुज, माधवाचार्य, निम्बार्काचार्य आदि के सम्प्रदाय और शैवों में वीरशैव सम्प्रदाय।

इस समय हिन्दू धर्म के प्रत्येक सम्प्रदाय में इतने बाह्याचार, व्यर्थ के कर्मकांड होते थे जिनसे जनता एक प्रकार से ऊब गई थी किन्तु फिर भी हिन्दू कहलाने के लिए उसे उन आचरणों का निष्ठापूर्वक पालन करना होता था। पाखंड का इस प्रकार बोलबाला था कि धर्म की व्यापक भावनाएं और उदात्त अर्थ जप, माला,

१. डा० शिवदान सिंह चौहान।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

छापा, तिलक एवं पत्थर पूजा तक ही सीमित रह गया। गेरुए वस्त्रों की महत्ता रह गई थी, साधु की नहीं। सवर्ण हिन्दू अवर्णों पर इतना अत्याचार करते थे कि उनके लिए जीवन निर्वाह दूभर हो गया था। उनकी छाया तक से घृणा की सीमा इतनी बढ गई थी कि शूद्र की छाया पड़ने पर भी स्नान की व्यवस्था धर्म के ठेकेदारों ने कर रखी थी।

ऐसी स्थिति में अवर्ण हिन्दुओं के सम्मुख एक ही मार्ग था ऐसे धर्म का पल्ला पकड़ना जा उनको समादृत कर उचित सामाजिक प्रतिष्ठा प्रदान कर सके। इसका एत्रमात्र समाधान प्रस्तुत करता था इस्लाम। यद्यपि भारत में भी नाथ-पंथ आदि जितने भी वेद-विरोधी सम्प्रदाय थे सब जाति-पांति के बंधन नहीं मानते थे किन्तु जनता इतनी इनकी ओर आकृष्ट नहीं हो रही थी जितनी इरलाम की ओर। इसका प्रमुख कारण यह था कि जैन और बौद्ध सम्प्रदाय अपने वैभव को दिखा लुप्तप्राय हो गये थे, यदि शेष रहे थे तो बौद्ध धर्म से उद्भूत नाथ पंथ, सहजयान सम्प्रदाय आदि जिनमें साधना की गुह्यता इतगी बढ़ती जा रही थी कि वे सर्व साधारण की पहुंच से परे थे। अतः भारत भूमि में इस समय विदेशी धर्म—सूफी मत और इस्लाम—ही शेष रह गये थे जिनकी ओर तथाकथित हिन्दू धर्म के ठेकेदारों से तिरस्कृत निम्न-वर्ग आकृष्ट हुए। किन्तु हम देखते हैं कि इन विषम परिस्थितियों में भी हिन्दू धर्म ने अपनी अद्भुत शक्ति का परिचय दिया। यह हिन्दू धर्म की अपरिमेय शक्ति का ही परिणाम है कि इस्लाम ग्रहण करने पर वैभव प्राप्ति के प्रलोभन के होने पर भी अधिकांश जनता सवर्ण हिन्दुओं से पिसकर भी हिन्दू बनी रही। फिर भी इस तथ्य को अस्वीकृत नहीं किया जा सकता कि यदि हिन्दू-धर्म ने अपने इस अंग को, जो दलित वर्ग के नाम से पुकारा जा सकता है, इतना उपेक्षित और तिरस्कृत न किया होता और मुसलमानों ने तलवार के बल पर इस्लाम प्रचार न किया होता तो कदाचित् भारतीय जनता का एकाध प्रतिशत भाग भी कठिनाई से ही मुसलमान बन पाता।

इस समय इस्लाम धर्म में भी वाह्याचारों और अंधविश्वासों का महत्त्व बढ़ता जा रहा था। कुरान, रोज़ा, नमाज़ सम्बन्धी विविध आचरणों में ही धर्म केन्द्रित हो रहा था और तथाकथित इस्लाम के पाक-प्रचारक शासनकर्त्ता कादम्ब और कामिनी के विलास में फंसे हुए थे।

कबीर ने दोनों धर्मों के अभावों को बड़े निकट से परखा था। उन्हें अपने जन्म के कारण कुछ ऐसी सुविधाएं प्राप्त थीं जो मध्यकाल के किसी अन्य साधक, सुधारक अथवा कवि को प्राप्त नहीं थीं। "संयोग से वे ऐसे युग-सन्धि के समय उत्पन्न हुए थे, जिसे हम विविध धर्म साधनाओं और मनोभावनाओं का चौराहा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कह सकते हैं। उन्हें सौभाग्यवश सुयोग भी अच्छा मिला था। जितने प्रकार के संस्कार पड़ने के रास्ते हैं, वे प्रायः सभी उनके लिए बन्द थे। वे मुसलमान होकर भी असल में मुसलमान नहीं थे। वे हिन्दू होकर भी हिन्दू नहीं थे। वे साधु होकर भी साधु (अगृहस्थ) नहीं थे।··· ··· ·· कबीरदास ऐसे ही मिलन बिन्दु पर खड़े थे, जहां से एक ओर हिन्दुत्व निकल जाता है और दूसरी ओर मुसलमानत्व, जहां एक और ज्ञान निकल जाता है और दूसरी ओर अशिक्षा, जहाँ एक ओर योग-मार्ग निकल जाता है दूसरी ओर भक्ति मार्ग जहां से एक ओर निर्गुण भावना निकल जाती है दूसरी ओर सगुण साधना, उसी प्रशान्त चौराहे पर वे खड़े थे। वे दोनों ओर देख सकते थे और परस्पर विरुद्ध दिशा में गए मार्गों के दोष-गुण उन्हें स्पष्ट दिखाई दे जाते थे।"[1]

यही कारण है कि कबीर ने समस्त साधनाओं के दोष-गुणों को इतनी बारीकी से परखा था कि समाज की आंखें खुल गईं और एक नवीन प्रेमाभक्ति का मार्ग उनके सम्मुख कबीर के द्वारा आया।

साहित्यिक परिस्थिति–

साहित्य के विकास के लिए राष्ट्र की संस्कृति का विकास परमावश्यक है। किन्तु ऊपर देखा जा चुका है कि कबीर के समय भारत का सांस्कृतिक ह्रास हो रहा था। कबीर के समय तक आते-आते हिन्दी अपभ्रंश की गोद से निकलकर चलना ही सीख रही थी। अब तक उसमें दो ही प्रकार का साहित्य प्राप्त होता है या तो आश्रयदाताओं की प्रशंसा में लिखा गया साहित्य अथवा अपने विविध धर्म-सिद्धांतों का व्याख्याता सहजयान, वज्रयान आदि का साहित्य। वज्रयानी अथवा सहजयानी साहित्य में हमें संतमत की बहुत सी बातें अपने प्रारम्भिक रूप में मिल जायेंगी। इस पूर्ववर्ती साहित्य में प्रतिक्रियात्मक भावना, जाति-पांति विरोध, खण्डन-मण्डन की प्रवृत्ति, मिथ्याचरण विरोध, मूर्तिपूजा और बहुदेवोपासना का विरोध, रहस्यवादी प्रवृत्ति, हठयोगी साधना-वर्णन आदि बातें ऐसी प्राप्त होती हैं जो आगे चलकर सन्त-मत में प्रचलित हुईं। साहित्यिक परिस्थितियों के देखते समय विस्तार में जाने की आवश्यकता इसलिए नहीं कि कबीर-काव्य का प्रमुख प्रयोजन 'विशुद्ध साहित्य' के समान कलात्मक नहीं, अपितु लोकमंगल है। यह दूसरी बात है कि इस लोकमंगल भावना से प्रसूत साहित्य में काव्य की उच्च से उच्चतम वस्तु, रस का सर्वोत्कृष्ट स्वरूप प्राप्त होता है।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि कबीर जिन परिस्थितियों में उत्पन्न हुए, वे अत्यन्त विषम थीं। इन्हीं विषम परिस्थितियों ने उन्हें मध्ययुग का युग-प्रवर्तक

१. हजारीप्रसाद द्विवेदी–"हिन्दी साहित्य"–पृष्ठ १२०-२१।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

संत और महाकवि बना दिया। अपनी परिस्थितियों का अध्ययन-मनन कर कबीर ने जो कुछ भी कहा है उसमें तत्कालीन समस्त समस्याओं का समाधान प्राप्त होता है।

—०—

कबीर पर पड़ने वाले आध्यात्मिक प्रभाव

किसी भी कवि पर अपनी पूर्ववर्ती परम्पराओं, विचारों एवं सिद्धान्तों का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। कबीर पर भी उस समय तक प्रचलित नाना धर्म-साधनाओं, विचारों एवं प्रतिष्ठित धर्मग्रन्थों का प्रभाव पड़ा है। किन्तु कबीर पर यह प्रभाव सीधे नहीं पड़ा है क्योंकि उन्होंने तो पुस्तकीय ज्ञान सीखा ही नहीं था। वे बहुश्रुत थे, उन पर विविध धर्म-सम्प्रदायों और दर्शन ग्रन्थों का प्रभाव साधु-संगति से आया है। यही कारण है कि कहीं-कहीं कबीर ने हिन्दू पौराणिक आख्यानों का उपयोग यथावत् नहीं किया है।

कुछ विद्वान् कबीर आदि सन्तों पर इस्लाम का अत्यधिक प्रभाव मानते थे किन्तु डा० ह० प्र० द्विवेदी प्रभृति विद्वानों की नवीन शोधों के प्रकाश में देखने से यह मान्यता निर्मूल दृष्टिगत होती है। आचार्यप्रवर ह० प्र० द्विवेदी जी का कथन है—"उपस्थापन पद्धति, विषय, भाव, भाषा, अलंकार, छंद, पद आदि में ये संत (कबीर आदि) शत-प्रतिशत भारतीय परम्परा में पड़ते हैं।" कबीर की एकेश्वर भावना, निराकार उपासना, समान व्यवहार, खण्डन-मण्डन प्रवृत्ति सब में मुसलमानी गंध पाने वाली मान्यताएं अब निर्मूल सिद्ध हो चुकी हैं।

कबीर पर पड़ने वाले आध्यात्मिक प्रभावों पर दृष्टिपात करने से हम निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि कबीर भारतीय अथवा विदेशी परम्परा में किसके अधिक निकट हैं—

वैदिक साहित्य का प्रभाव—वास्तव में वैदिक धर्म ग्रन्थों का इतना विशाल और समृद्ध भण्डार है कि भारतीय सांस्कृतिक जीवन की प्रत्येक गतिविधि पर उसका प्रभाव परिलक्षित होता है। भारतभूमि में कोई भी ऐसा धर्म अथवा सम्प्रदाय नहीं जिस पर कुछ न कुछ प्रभाव वैदिक चिन्तन का न हो। वैदिक विचारधारा के विरोध में उत्पन्न धर्म-सम्प्रदाय भी इस प्रभाव से न बच सके।

वैदिक साहित्य को संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषद् के रूप में विभक्त किया गया है। "संहिताओं में अधिकतर वैदिक देवताओं की स्तुतियाँ संगृहीत हैं। ब्राह्मणों में कर्म-काण्ड का वर्णन मिलता है। आरण्यकों में विविध उपासनाओं की चर्चा है। उपनिषदों में ज्ञान-काण्ड का विवेचन है। भारत में सबसे अधिक उपनिषदों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चर्चा होती रही है। ये उपनिषद् संख्या में बहुत अधिक थे। कहते हैं कि ऋग्वेद की २१, यजुर्वेद की १०२, सामवेद की १००० और अथर्ववेद की ६ शाखाएं- प्रशाखाएं थीं। इन सभी शाखाओं से सम्बन्धित उपनिषद् भी रहे होंगे। केवल मुक्तिकोपनिषद् में १०८ उपनिषदों के नाम दिये हैं।"[1]

समस्त उपनिषद् साहित्य की रचना ब्राह्मण साहित्य की कर्मकाण्डी प्रवृत्ति के विरोध में हुई है। बहुदेववाद व कर्मकाण्ड की धज्जियाँ इसी साहित्य ने उड़ायी थीं। कबीर के समय भी बहुदेवोपासना एवं ब्राह्मणों द्वारा नियन्त्रित हिन्दू धर्म की कर्मकाण्डी प्रवृत्ति का बोलवाला था। अतः उन्हें अपनी आवश्यकतानुसार साहित्य यदि प्राप्त था तो वह उपनिषद् साहित्य ही। उपनिषदों में प्रस्थापित अद्वैत भावना का कबीर पर अत्यधिक प्रभाव है। कुछ लोग कबीर की एकेश्वर भावना और निराकार उपासना को इस्लाम से प्रभावित मानते हैं किन्तु यह भ्रामक है। हमें केवल'एक' शब्द के आधार पर कबीर की ब्रह्म भावना को मुस्लिम प्रभावापन्न नहीं मानना चाहिए। वास्तव में एकत्व भावना वैदिक अद्वैतवाद की आधार भूमि है, अद्वैत के सिद्धान्त वाक्य 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' और 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म' द्वारा भी यही सिद्ध है कि वह एक ब्रह्म ही सत्य है, अन्य कुछ नहीं। इस्लाम का खुदा एक होते हुए भी सातवें आसमान पर तख्त के ऊपर वैठने वाला दो हाथ पैर का दाढ़ी वाला सर्वशक्तिमान् है, जबकि कबीर का ब्रह्म उपनिषदों के ब्रह्म के समान इन्द्रियातीत, अगम्य, अगोचर, अनिर्वचनीय तत्वरूप है। श्रुति-ग्रन्थों के परिशीलन से स्पष्ट ही जान पड़ता है कि वहाँ ब्रह्म की मान्यता दो स्वरूपों में है। एक निर्गुण, निर्विशेष, निराकार और निरुपाधि एवं दूसरा इन सब बातों से युक्त अर्थात् सगुण, सविशेष, साकार और सोपाधि। साधारणतः यह बात बड़ी अटपटी सी लगती है कि वह ब्रह्म एक साथ ही इस भांति द्विस्वरूपी कैसे है ? इसके प्रत्युत्तर में वेदान्तवादी कहते हैं कि ब्रह्म अपने आप में तो निर्गुण, निराकार, निर्विशेष और निरुपाधि है परन्तु अविद्या या गलतफहमी, जिसे हम माया भी कह सकते हैं, के कारण हम उसमें उपाधियों या सीमाओं का आरोप करते हैं। यह गलतफहमी अथवा भ्रम हमारा ही है। इसलिए उपनिषद् बारम्बार स्थान-स्थान पर ब्रह्म को इस प्रकार बताती हैं—

"वह मोटा भी नहीं, पतला भी नहीं, छोटा भी नहीं, बड़ा भी नहीं, लोहित भी नहीं, स्नेह भी नहीं, छायायुक्त भी नहीं, अंधकार भी नहीं, वायु भी नहीं, आकाश भी नहीं।

—'बृहदारण्यकोपनिषद्'

"वह शब्द रहित, स्पर्श रहित, रूप रहित, रस रहित, गंध रहित है।"

—कठोपनिषद्

---

१. "कबीर की विचारधारा"।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस प्रकार के वर्णन हमें कबीर की ब्रह्म सम्बन्धी वाणियों में प्राप्त होते हैं यथा—

"संतो धोखा कासूं कहिये ।
गुण मैं निरगुण निरगुण मैं गुण है,
बाट छाड़ि क्यूं बहिये ।।
अजरा, अमर, कथै सब कोई, अलख न कथणां जाई ।
नाति सरूप बरण नहीं जाकै, घटि घटि रह्यौ समाई ।
प्यंड ब्रह्मण्ड कथै सब कोई, वाकै आदि अरु अन्त न होई ।
प्यंड ब्रह्मण्ड छाड़ि जे कथिये, कहै कबीर हरि सोई ।।"

× × × ×

"भारी कहों तो बहु डरौं, हलका कहौं तो झूठा ।
मैं का जानूं राम कूं, नैनूं कबहुं न दीठा ।।"

कबीर का आराध्य उपनिषदों के ब्रह्म के समान ही अजीब-गरीब है जो बिना ही रूपाकार के क्रियाशील है, बिना पग चलता है, बिना मुख खाता है ।

कबीर पर वैदिक उपनिषद् साहित्य का दूसरा प्रभाव मनःसाधना का है । उपनिषद् ग्रन्थों में मन की चंचलता पर नियन्त्रण रखने के लिये बहुत आग्रह है मन की चंचलता ही विरागी को रागी, संन्यासी को गृहस्थ बना देती है । कबीर ने भी मनःसाधना पर बड़ा जोर दिया है—

"काया कसूं कमाण ज्यूं, पंचतत्त करि बाण ।
मारौं तो मन मृग को, नहीं तो मिथ्या जाण ।।"

× × × ×

"मन के मते न चालिए, मन के मते अनेक ।
जो मन पर असवार हैं, ते साधू कोई एक ।।"

× × × ×

"कबिरा मन ही गयन्द है, आंकुस दै दै राखि ।
विष की बेलि परिहरो, अमृत के फल चाखि ।।"

कबीर में इष्ट के नाम-स्मरण का जो अत्यधिक आग्रह है वह भी श्रुतिग्रंथों का प्रभाव है । इस संसार-सागर से तरने के लिए 'नामस्मरण' को कबीर ने बोहित माना है, यथा—

"सो धन मेरे हरि का नांउ, गांठि न बांधौ बेचि न खाऊं ।
नांउ मेरे खेती नांउ मेरे बारी, भगति करौ मैं सरनि तुम्हारी ।।
नांउ मेरे सेवा नांउ मेरे पूजा, तुम्ह बिन और न जानौं दूजा ।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नाउँ मेरे बांधव नाउँ मेरे भाई, अंत बिरियां नाउँ सहाई ।।
नाउँ मेरे निरधन ज्यूं निधि पाई, कहै कबीर जैसे रंक मिठाई ।।

वैष्णव प्रभाव—वैष्णवों के प्रेमप्रधान भक्तितत्व ने कबीर को बहुत प्रभावित किया है। प्रेमाभक्ति की प्राप्ति कबीर को वैष्णवों के प्रसिद्ध आचार्य रामानन्द से हुई है। इस अनन्य भक्ति प्राप्ति से कबीर-साहित्य को एक नूतनता प्राप्त होती है। यह नूतनता अत्यन्त विलक्षण है जो कबीर को सिद्धों और नाथों की परम्परा से सर्वथा पृथक् कर देती है। भक्ति ऐसा तत्व है जिसे पाकर कबीर स्वयं धन्य हुए, इसी से उन्होंने अपने साहित्य को भी धन्य कर दिया। कबीर की भक्ति की अडिगता और अनन्यता, जो देखते ही बनती है, वैष्णव प्रभाव ही है। यथा—

"कबीर रेख सिंदूर की, काजल दिया न जाई।
नैंनु रमइया रमि रहा, दूजा कहां समाई ।।"

इसी अनन्यता का परिचय कबीर ने आत्मा को 'सती' का रूपक देकर किया है—

"जे सुन्दिरि सांईं भजै, तजै आन की आस।
ताहि न कबहूं परिहरै, पलक न छांड़ै पास ।।"

इतना ही नहीं उस ब्रह्म के प्रति इतनी श्रद्धा है कि वे उसका कुत्ता बनने में भी नहीं हिचकते—

"कबीर कूता राम का, मुतिया मेरा नाउँ।
गलै राम की जेवड़ी, जित खैंचें तित जाउँ ।।"

इष्ट की इस भावना पर तुलसी के—

"राम सौं बड़ो है कौन, मौसों कौन छोटो" की शत-शत भावनाएँ न्योछावर की जा सकती हैं। कबीर पर यह सब विशुद्ध वैष्णव प्रभाव है।

डा० ह० प्र० द्विवेदी जैसे विद्वानों ने इस मान्यता का कि कबीर की प्रेम-भावना पर सूफी प्रभाव है खण्डन कर यह प्रस्थापना की है कि कबीर की प्रेम की पीर वैष्णव भावना से प्रभावित है। द्विवेदी जी का कथन है कि "निर्गुण राम का उपासक होने के कारण उन्हें वैष्णव न मानना उस महात्मा के साथ अन्याय करना है। वास्तव में वे स्वभाव और विचार दोनों से वैष्णव थे।"

कबीर-काव्य में शील, क्षमा दया, उदारता, संतोष, धैर्य, दीनता, और सत्यता आदि का उपदेश भी वैष्णवों के 'सदाचार-महत्व' से प्रभावित है। यथा—

"बड़ा भया तो का भया, जैसे पेड़ खजूर।
पंथी को छाया नहीं, फल लागे अति दूर ।।"

× × ×

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

"ऊंचे कुल का जनमिया, करनी ऊंच न होय।
स्वर्ण कलश मदिरा भरा, साधु निन्दै सोय॥"

कबीर से पूर्व जाति-पाँति के विभेद को दूर करने का प्रयास वैष्णवाचार्य रामानुज ने किया था। अतः जाति-पाँति के बंधनों को न मानना भी कबीर की विचारधारा पर वैष्णव प्रभाव है। हां! यह निस्सन्देह सत्य है कि रामानुज तो केवल भक्ति क्षेत्र में ही सामाजिक समानता ला सके किन्तु कबीर ने प्रत्येक क्षेत्र में जाति-पांति के विभेद को दूर किया। उन्होंने सवर्ण हिन्दू और मुस्लिम दोनों के बीच की खाई को पाटा और—"जाति-पांति पूछै नहीं कोई, हरि को भजै सो हरि का होई" की पुकार लगाई।

सर्वप्रथम रामानन्द ने धर्म के सिद्धान्तों को जन-भाषा में उद्घाटित किया अन्यथा अब तक समस्त धर्म-सिद्धान्त की व्याख्या का एकमात्र वाहन संस्कृत थी जो अब जन-भाषा नहीं थी। कबीर पर भी यह प्रभाव ही है कि उन्होंने तथा अन्य परवर्ती सन्तों ने अपने विचारों का माध्यम लोक-भाषा को ही बनाया। कबीर ने कहा था—"संस्कृत है कूप जल, भाषा बहता नीर"। वैसे कहा जा सकता है कि—'मसि कागद' तक न स्पर्श करने वाला संत संस्कृत में कैसे रचना करता? किन्तु हमारा विचार है कि सत्य के इस अद्भुत अन्वेषी के लिए संस्कृत में भी काव्य रचना करना असम्भव न था।

कबीर पर एक अन्य वैष्णव प्रभाव माया-तत्व है। जिस प्रकार वैष्णवों ने प्रभु-भक्ति में माया को बाधक माना है, उसी प्रकार कबीर ने भी माया को साधना में 'दुर्गम घाटी दोय' में से एक माना है। वैष्णवों में प्रचलित विष्णु के सहस्र नामों में से भी कबीर ने कुछ को अपनाया है। कबीर-काव्य में राम, हरि, गोविंद, मुकुन्द, मुरारि, विष्णु, मधु-सूदन आदि नामों का प्रयोग हुआ है, जिनमें 'राम' तो सर्वप्रमुख और कबीर-काव्य का केन्द्र विन्दु है ही।

इतना ही नहीं कबीर ने वैष्णवों के कुछ भावात्मक कल्पित स्थानों को अपनी वाणी में स्थान दिया है। यथा—

"अमरपुर ले चलु हो सजना।"

× × ×

"अमरपुरी की संकरी गलियां अड़बड़ है चढ़ना।"

कबीर ने इन्द्रपुरी, विष्णुलोक आदि इन समस्त स्थानों के नाम को भी शून्य के अर्थ में ही ग्रहण किया किन्तु इससे वैष्णव प्रभाव सहज ही में परिलक्षित किया जा सकता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि कबीर पूर्ण वैष्णव थे जिसकी घोषणा वे स्वयं भी करते हैं।[1]

बौद्धों के महायान का प्रभाव–

बौद्धों की महायान शाखा का भी प्रभाव कबीर पर पड़ा है। जीवन की क्षण-भंगुरता, मध्यम मार्ग, शरीर कष्ट का विरोध आदि बातें कबीर में महायान के प्रभाव से ही आईं। क्षणिकवाद का उदाहरण देखिए—

"पानी केरा बुदबुदा, अस मानस की जात।
देखत ही छिप जायगा, ज्यों तारा प्रभात॥"

शरीरकष्ट का विरोध जैसा महायान में है, वैसा कबीर में भी कहीं-कहीं मिलता है। यद्यपि योग साधना में कुण्डलिनी साधना, त्राटक के फाटक खोलना, इड़ा, पिंगला, सुषुम्णा का समन्वय इन सब बातों में काया-कष्ट है ही किन्तु फिर भी

'भूखे भगति न कीजै, अपनी माला लीजै"

ऐसी विरल उक्तियाँ तो मिल ही जाती हैं।

सिद्धों और नाथ-पंथी योगियों का प्रभाव–

कबीर पर बौद्ध मत के अन्तिम दिनों में प्रचलित वज्रयान और सहजयान शाखाओं के सिद्धों का भी बहुत प्रभाव पड़ा। सिद्धों की ही सुसंस्कृत परम्परा नाथों की है।

डा० रामकुमार वर्मा जी का कथन है कि "सिद्ध साहित्य, नाथ पंथ और संतमत एक ही विचारधारा की तीन परिस्थितियां हैं।" इन दोनों का अत्यधिक प्रभाव कबीर पर पड़ा है। कबीर ने जिस योग साधना, षट्चक्र, इड़ा, पिंगला, सुषुम्णा, आदि का वर्णन कर साधना का रूप बताया है वह सिद्धों और नाथों द्वारा अनुमोदित है। यह दूसरी बात है कि कबीर तक आते-आते साधना के कुछ पारिभाषिक शब्द दूसरे रूप में ग्रहण किये गये। कबीर के निम्नस्थ पद द्वारा हम देख सकते हैं कि कबीर ने योग-साधना को वही रूप दिया है जो सिद्धों और नाथों ने।

'हिंडोलना तहाँ झूलै आतम राम।
प्रेम भगति हिंडोलना, सब संतनि कौ विश्राम॥
चंद सूर दोइ खंभवा, बंकनालि की डोर।
झूलै पंच पियारिया, तहां झूलै जिय मोर॥
द्वादस गम के अंतरा, तहां अमृत को ग्रास।
जिनि यहु अमृत चाषिया, सो ठाकुर हम दास॥

१. "मेरे संगी दोइ जना, एक वैष्णव एक राम।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सहज सुनि कौ नेहरौ, गगन मण्डल सिरमौर ।
दोऊ कुल हम आगरी, जौ हम झूलै हिंडोल ॥
अरध-उरध की गंगा जमुना, मूल कबल कौ घाट ।
षट्-चक्र की गागरी, त्रिवेणी संगम बाट ॥
नाद व्यंद की नावरी, राम नाम कनिहार ।
कहे कबीर गुण गाइले, गुरगंमि उतरौ पार ॥

इस पद में सिद्धों और नाथों से यदि कोई वस्तु भिन्न है तो वह प्रेमाभक्ति जिस पर वैष्णव प्रभावान्तर्गत विचार किया जा चुका है।

गुरुमहत्ता भी कबीर को सिद्धों और योगियों से प्राप्त हुई। इन्होंने साधना में गुरु को वैसा ही महत्त्व दिया जैसा सिद्धों और योगियों ने। साधक जब साधनावस्था की जटिलता से निराश होता है तो मार्ग-दर्शन के लिए गुरु के पास ही जाता है। सिद्धों ने कहा है—

"लुई भणईं गुरु पुच्छेउ जाण।"

किन्तु कबीर ने केवल गुरु को पूछा ही नहीं अपितु गुरु के बिना साधना को ही अपूर्ण माना, गुरु को ब्रह्म से भी उच्च स्थान प्रदान किया—

"गुरु गोविन्द दोनों खड़े, काके लागूं पाय ।
बलिहारी गुरु आपने, जिन गोबिन्द दियो बताय ॥"

× × ×

"गुरु पारस को अन्तरो, जानत हैं सब संत ।
वह लोहा कंचन करै, ये करि लेइ महन्त ॥

कबीर ने बाह्याडम्बर, जाति-पाँति आदि का जो खण्डन अपनी कई उक्तियों में किया, वह सिद्धों और नाथों की ही देन है। अपनी तार्किक शैली में समाज के बाह्याचारों पर जो कटु-प्रहार कबीर ने किये हैं, इनका सूत्रपात सिद्धों और योगियों के ही समय हो चुका था। सिद्धों ने कहा—

"आवणगमण णाँ तैन विषैण्यो,
तो वि निणज्ज भणइं हऊं पंडिओ ॥"

कबीर ने कहा था—

"जो तू बाह्मन बह्मनी जाया,
आन बाट ह्वै क्यों नहीं आया।"

इसी प्रभाव से उन्होंने मुल्ला की बांग और हिन्दुओं की पीतल पिटारी पर तिलमिला देने वाली उक्तियां कही हैं, चुटकियां ले-ले कर व्यंग्य कसे हैं। उक्तियों के माध्यम से उन्होंने धर्म के मूलतत्व को पहचान ढोंग के ढोल की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

खोल दी—

"मस्जिद भीतर मुल्ला पुकारै, क्या साहिब तेरा बहिरा है ?
चिउंटी के पग नेवर बाजै, सो भी साहब सुनता है ।
पंडित होय के आसन मारे, लम्बी माला जपता है ॥"

विद्वानों का विचार है कि कबीर के रहस्यवाद, उलटवांसी और प्रतीकों का भी मूल यहीं है। कहीं-कहीं तो कबीर ने इनकी उलटवासी, रूपक आदि को साक्षी रूप में उद्धृत कर दिया है—

"बलद बियावल गविया बांझे"
× × ×
"बरसै कम्बल भीगै पानी"
× × ×
"नाव बिच नदिया डूबी जाय"

ये सब उलटवासियां सिद्धों और कबीर में समान रूप से प्राप्त हैं।

इस प्रकार भाषा के क्षेत्र में भी इन परम्पराओं ने कबीर काव्य को प्रभावित किया। इन उलटवांसियों में, विभावना, विरोधाभास आदि अलंकार भी समान रूप से व्यवहृत हैं—

"ऐसा अद्भुत मेरे गुर कथ्या, मैं रह्या उमेषै ।
मूसा हसती सों लड़ै, कोई बिरला पेषै ॥
मूसा पैठा बांबि मैं, लारै सापणि धाई ।
उलटि मूसै सापणि गिली, यहु अचिरज भाई ॥
चीटी परबत ऊषण्यां, लै राख्यौ चौड़ै ।
मुरगा मिनकीं यूं लड़ै झल पांणी दौड़ै ॥
सुरहीं चूषै बछ तलि, बछा दूध उतारै ।
ऐसा नवल गुणी भया, सारदूलहि मारै ॥
भील लुक्या बन बीझ मैं, ससा सर मारै ।
कहै कबीर ताहि गुर करों, जो या पदहि विचारै ॥"

इसके साथ सिद्धों और योगियों से कबीर ने साधनामूलक पारिभाषिक शब्दों को यथावत् ग्रहण कर लिया है। षट्चक्र, अनाहदनाद, निरंजन, इंगला, पिंगला, सुषमना, वज्रा, गंगा, यमुना, योगिनी, कैलाश, सूर्य, चन्द्र, गौमांसभक्षण, वारुणीपान, समरस आदि शब्द कबीर ने यहीं से ग्रहण किये हैं। यथा—

अवधू गगन मण्डल घर कीजे ।
अमृत झरै सदा सुख उपजै, बंकनालि रस पीजै ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मूल बांधि सर गगन समाना, सुषमन यो तन लागी ।
काम-क्रोध दोऊ भया पलीता, तहां जोगिणी जागी ॥"

हां ! कुछ पारिभाषिक शब्दों का अर्थ कबीर-काव्य में आकर परिवर्तित गया है, जैसे 'सहज'—

"सहज-सहज सबहीं कहैं, सहज न चीन्हें कोय ।
जिन सहजै विषया तजी, सहज कहीजै सोय ॥

कबीर ने जो स्थान-स्थान पर पुस्तकीय ज्ञान की खिल्ली उड़ाई है, उ कारण भी योगियों का प्रभाव है । गोरखनाथ ने "गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह" में पुस्त ज्ञान वाले व्यक्ति को 'भारवाही गर्दभ' कहा है । कबीर ने अनेक स्थानों पर पुस्त ज्ञान की खिल्ली उड़ाई है—

"पोथी पढ़-पढ़ जग मुआ, पंडित भया न कोय ।
एकै आखर प्रेम का, पढ़ै सो पंडित होय ॥"

× × ×

"कबीर पढ़िवा दूरि करि, पोथी देय बहाय ।
बावन आषर सोध कर, ररै ममै चित लाय ॥"

इस प्रकार हम देखते हैं कि सिद्ध और नाथ-सम्प्रदाय ने पर्याप्त मा कबीर को प्रभावित किया है । हम कह सकते हैं कि कबीर ने सिद्धों और नाथ परम्परा को सुसंस्कृत कर उसका विकास किया । डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या क कथन है कि 'महात्मा कबीर तो नाम छोड़ और सब दृष्टियों से एक हिन्दू क थे जो उत्तर भारत के मध्ययुगीन हिन्दू धर्मोपदेशकों और ग्रन्थकारों तथा गोर की सीधी परम्परा के एक महान् संत और भक्त थे ।"

कबीर पर सिद्धों और नाथों के इस अत्यधिक प्रभाव के दो कारण विशे प्रथम तो यह कि कबीर का जन्म ऐसी जुलाहा जाति में हुआ था जो कुछ समय मुसलमान हुई थी,पहले से वह जाति नाथों की शिष्य परम्परा में थी । अतः स्वभ उसके अपने प्राचीन नाथपंथी संस्कार अवशिष्ट रह गये थे । द्वितीय कारण य रामानन्द के समस्त शिष्यों ने जिनमें कबीर भी हैं, नाथों के बड़े-बड़े अखा अपने अधीन करके उनके अनुयायियों को अपना शिष्य बनाया था—उन लो सम्पर्क से इनमें भी कुछ न कुछ नाथ पंथी संस्कार अवश्य आ गये ।

सूफियों का प्रभाव—

कबीर के समय में भारत में इसलाम का अत्यधिक सुसंस्कृत संस्कर धर्म के रूप में आ गया था । कुछ विद्वानों का मत है कि सूफी साधना का मात्र भी प्रभाव कबीर-काव्य पर नहीं पड़ा है । किन्तु कबीर जैसे सारग्राही मह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अवश्य ही सूफी-धर्म की अच्छी बातों को ग्रहण किया होगा—यह अनुमान सहज है। सूफी-धर्म का प्रभाव इसलिए भी कबीर पर पड़ा है क्योंकि वह भारतीय धर्म-साधना से पर्याप्त मात्रा में प्रभावित था। गार्डंड महोदय का मत है कि सूफी मत में "तीन-चौथाई बौद्धमत का प्रसाद है, तो एक-चौथाई यहूदियों का।" श्री जे० सी० आर्चर का भी कथन है कि—"Greek, Persian & the Buddhist waters have joined the streem of the mystic curernt in Islam."

कबीर की प्रेम-पीर को बहुत से विद्वान् वैष्णव देन मानते हैं किन्तु वास्तव में देखा जाय तो कबीर में प्रेम-पीर की तीव्र और तीखी व्यंजना सूफी प्रभाव से ही है, यद्यपि कबीर को इस प्रेम की पीर में सूफियों की भांति पल-पल में इल्हाम नहीं होता। डा० सरनामसिंह शर्मा जी का मत है कि "जो लोग यह कहते हैं कि कबीर ने सूफी प्रेम-साधना से कुछ नहीं लिया वे हाथी को देखकर भी उसके अस्तित्व का निषेध करते हैं। ऐसी बात नहीं है कि कबीर ने परमात्मा के केवल प्रिय (पति) रूप को ही अंगीकार किया था, अपितु माता-पिता, गुरु, स्वामी, आदि अनेक रूपों में उसको उन्होंने चिंतित किया है। सूफी सम्प्रदाय में इन सब रूपों को स्वीकार करने की स्वतन्त्रता नहीं है। सूफियों के लिए परमात्मा 'माशूक' है, जीवात्मा 'आशिक' है और कबीर के दाम्पत्य सम्बन्ध में हरि, 'पीव' है और वे उनकी 'बहुरिया' हैं। पीव और बहुरिया के पीछे भारतीय दाम्पत्य जीवन की जो व्यंजना है, उसमें सूफी मान्यता का भी पुट है। यह ठीक है कि कबीर और हरि—जीव और परमात्मा—में जो पत्नी और पति का संबन्ध है, वह भारतीय भक्ति-परम्परा के अनुरूप है, किन्तु आश्रय और आलम्बन से सम्बन्धित आरोप भी स्पष्ट है। इस आरोप के लिए भारतीय भक्ति में कोई स्थान नहीं है। कृष्ण भक्ति में ब्रज-गोपियों का कृष्ण से पत्नी-पति सम्बन्ध आरोप के लिए कोई स्थान नहीं देता। इसी लिए नारदीय-भक्ति सूत्र में भक्ति की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि "सा तु परमप्रेमरूपा यथा व्रज-गोपिकानाम्' किन्तु सूफी प्रेम साधना का सारा महल ही इस आरोप के ऊपर खड़ा है।"प्रेम की पीर पर सूफियों के प्रभाव के अतिरिक्त कबीर के ब्रह्म की सौन्दर्य-भावना भी सूफीमत से प्रभावित है—

"पिंजर प्रेम प्रकासिया, जाग्या जोग अनन्त।
संसा खूटा सुख भया, मिल्या पियारा कंत॥"

× × ×

"लाली मेरे लाल की जित देखूं तित लाल।
लाली देखन मैं गई मैं भी हो गई लाल॥"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

किन्तु जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि कबीर पर सूफीमत का जो कुछ भी प्रभाव पड़ा है, वह इसलिए कि यह मत भारतीय परम्परानुकूल है। अतः कबीर पर सूफियों की उन्हीं बातों का प्रभाव पड़ सका है जो अद्वैत से मेल खाती हैं।

इस भाँति हम देखते हैं कि कबीर ने समस्त सारपूर्ण धार्मिक साधनाओं से कुछ न कुछ तत्व ग्रहण कर अपनी भक्ति का भव्य भवन स्थापित किया था। वस्तुतः आचार्यप्रवर क्षितिमोहन सेन जी के ये शब्द अक्षरशःसत्य हैं—"कबीर की आध्यात्मिक क्षुधा और आकांक्षा विश्वग्रासी है। वह कुछ भी छोड़ना नहीं चाहती, इसीलिए वह ग्रहणशील है; वर्जनशील नहीं है, इसीलिए उन्होंने हिन्दू मुसलमान, सूफी, वैष्णव, योगी प्रभृति सब साधनाओं को जोर से पकड़ रखा है।"[1]

वस्तुतः कबीर ने मधुमक्खी के समान अपने समय में विद्यमान समस्त धर्म-साधनाओं और निजी के योग से अपनी भक्ति का ऐसा छत्ता तैयार किया है जिसका मधु अमृतोपम है, जिसका पान कर भारतीय जन-मानस कृत-कृत्य हो उठा है। यह मधु अक्षुण्ण है, युगों से भारतीय इसकी मधुरिमा का रसास्वादन कर रहे हैं।

कबीर की भक्ति-पद्धति

कबीर की भक्ति ने भारतीय जन-मानस को उस समय अवलम्ब प्रदान किया जब वह सिद्धों और योगियों की गुह्यसाधना से ऊब रही थी। कबीरकालीन परिस्थितियों में धार्मिक अवस्था का अवलोकन करते समय हम देख चुके हैं कि उस समय प्रचलित नाना धर्म-साधनाएं किस प्रकार जनता को भूलभूलैया सी में डाल रही थीं। इस महान् सन्त ने अपनी प्रेमभक्ति का ऐसा सबल और दृढ़ अवलम्ब धर्म-प्राण जनता को प्रदान किया कि वह राम-रस में भाव-विह्वल हो डूब उठी। यद्यपि कबीर से पूर्व रामानन्द ने भी भक्ति की ऐसी ही भाव-पूर्ण धारा बहाई थी किन्तु उसका प्रसार सीमित क्षेत्र तक ही रहा। रामानन्द को 'भक्ति द्राविड़ ऊपजी, लाये रामानंद' का श्रेय तो अवश्य प्राप्त है किन्तु उसका व्यापक प्रसार और प्रचार कबीर के द्वारा ही हुआ। उसे "सप्त दीप नवखण्ड' में कबीर ने ही प्रकट किया था।

कबीर की भक्ति पर वैष्णव-विचारधारा का आँशिक प्रभाव पड़ा है। कबीर पर पड़ने वाले आध्यात्मिक प्रभावों में इसका विश्लेषण किया जा चुका है। कबीर की भक्ति के विवेचन से पूर्व यह आवश्यक हो जाता है कि हम यह देखें कि भारतीय भक्ति का स्वरूप किस प्रकार वर्णित है। आचार्यों ने इसकी व्याख्या भिन्न-भिन्न

---

१. "कबीर की विचारधारा" से उद्धृत—पृष्ठ १७९।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कृष्कार से की है। रामानुजाचार्य जी ने 'ब्रह्मसूत्र' का भाष्य प्रस्तुत करते हुए भक्ति व्याख्या में कहा है—

"ध्रुवानुस्मृतिरेव भक्तिशब्देनाभिधीयते।"

परमात्मा के निरन्तर स्मरण को ही भक्ति कहते हैं। व्यास ने इसकी व्याख्या में कहा है कि प्रणिधान वह भक्ति है जिसके द्वारा परमेश्वर उस योगी पर कृपा दृष्टि करते हैं तथा उसकी इच्छाओं की पूर्ति निमित्त उसे वरदान देते हैं—

"प्रणिधानाद् भक्तिविशेषादावर्जित ईश्वरस्तमनुगृह्णात्यभिध्यानमात्रेण......।

—पातञ्जल दर्शन, प्रथम अध्याय, व्यासभाष्य।

पतञ्जलि के इसी 'ईश्वरप्रणिधानाद्वा' सूत्र की व्याख्या में भोज ने जो भक्ति का स्वरूप समझाया है वह वल्लभ के पुष्टि-समर्पण के अत्यन्त निकट है। उनका कथन है कि "प्रणिधान वह भक्ति है जिसमें इन्द्रिय-भोगादिक सम्पूर्ण फलाकांक्षाओं का त्याग करके सब कर्म उस परम गुरु परमात्मा को समर्पित कर दिये जाते हैं—

"प्रणिधानं तत्र भक्ति-विशेषो विशिष्टमुपासनं सर्वक्रियाणामपि तत्रार्पणम्।
विषयसुखादिकं फलमनिच्छन् सर्वाः क्रियास्तस्मिन् गुरावर्पयति।"

—पातञ्जल दर्शन, प्रथम अध्याय, भोजवृत्ति।

भक्ति की अत्यंत सुन्दर व्याख्या भक्तराज प्रह्लाद ने की है। उनका कथन है कि 'जैसी तीव्रासक्ति अविवेकी पुरुष को इन्द्रिय-विषयों में होती है, उसी प्रकार आसक्ति आपका (प्रभु का) स्मरण करते समय मेरे हृदय से निकल न जाए--

"या प्रीतिरविवेकानां विषयेष्वनपायिनी।
त्वामनुस्मरतः सा मे हृदयान्मापसर्पतु॥"

—विष्णुपुराण, १, २० : १९।

नारद भक्ति सूत्रान्तर्गत भक्ति की महिमा बताते हुए कहा है—

"सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा।"

वह (भक्ति) ईश्वर के प्रति प्रेमरूप है एवं साथ ही—

"अमृतस्वरूपा च।"

उसका स्वरूप-विश्लेषण नारद ने—

"तदर्पिताखिलाचारिता तद्विस्मरणे परमव्याकुलतेति।"

कह कर किया है। पराशर, ने उसको विधि-विहित कर्मों में सीमित करते हुए भी अनुरागपूर्ण माना है—"पूजादिष्वनुरागः।"

शाण्डिल्य-भक्तिसूत्र में उसे परा कोटि की मानते हुए ईश्वर के प्रति परम अनुरागरूपा माना है—

"सा परानुरक्तिरीश्वरे।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नारद ने भक्ति के दो रूप माने हैं—

१. प्रेमरूपा ।

२. गौणी ।

प्रेमरूपा भक्ति के उन्होंने दो भेद किये हैं। प्रथम 'कामरूपा'—जिसमें ही भाव की प्रधानता रहती है जैसी गोपियों की कृष्ण में। द्वितीय 'संबन्धरूपा' दास्य, सख्य, वात्सल्य, आत्मनिवेदनादि भाव आते हैं। कबीर की भक्ति में प्रधानता 'कामरूपा' की ही है, किन्तु सम्बन्धरूपा के भी उदाहरण प्राप्त जाते हैं—

"कबीर कूता राम का मुतिया मेरा नाउं।
गले राम की जेवड़ी, जित खैंचों तित जाउं॥

—दास्यासक्ति।

× × ×

"मोरे घर आये राम भरतार।
तन रति कर मैं मन रति करिहौं, पांचों तत्व बराती।
रामदेव मोहे ब्याहन आये, मैं जोवन मदमाती॥"

—कांतासक्ति।

× × ×

"हरि जननी मैं बालक तोरा।
काहि न अवगुन बकसहु मोरा।"

—वात्सल्यासक्ति।

इसी भाँति अन्य आसक्तियों के उदाहरण प्राप्त होते हैं।

प्रेमरूपाभक्ति को तीन वर्गों में रखा गया है—

१. गौण—जो साँसारिकता के समीप है।

२. मुख्य—प्रेम-प्रमुख पर जगत् के प्रति उदासीन नहीं।

३. अनन्य—स्पृहारहित, ज्ञान, कर्म आदि से ऊपर आराध्य में लीन रह

कबीर की भक्ति इस वर्ग विभाग में 'अनन्या' कोटि में आती है वहाँ 'सब तज, हरि भज' की ही भावना है।

गौणी के भी नारद ने तीन भेद किये हैं—सात्विकी, राजसी एवं ताम कबीर की भक्ति सात्विकी कोटि में आती है।

चैतन्य सम्प्रदाय में भी भक्ति का लगभग इसी प्रकार का विभाजन गया है। उसे निम्न प्रकार से निर्दिष्ट किया जा सकता है—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

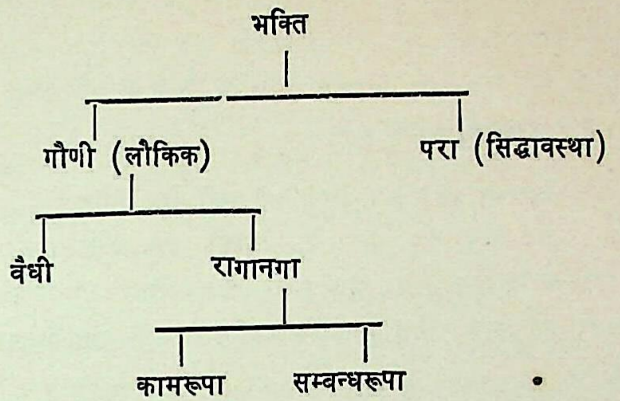

इस विभाजन में कबीर की भक्ति 'परा'—सिद्धावस्था के अंतर्गत आती है।

कबीर ने अपनी भक्ति में जिस आराध्य का वर्णन किया है वह उपनिषदों की अद्वैती भावना के प्रभाव से प्रभावित है। कबीर की ब्रह्मभावना यद्यपि अधिकांशतः अद्वैती है किन्तु कहीं-कहीं अद्वैत से भिन्न है। इसका कारण यह है कि कबीर किसी सिद्धान्त के अनुयायी या प्रस्थापक नहीं। उन्होंने ब्रह्म का जो कुछ भी वर्णन किया है वह अनुभव के आधार पर। कबीर प्रथम साधक हैं, तब कवि। अतः भक्ति-साधना में जिस-जिस रूप में ये ब्रह्मस्वरूप का साक्षात्कार करते जाते हैं उसी-उसी रूप में उसे बताते हैं। वे कविता के माध्यम में 'निज ब्रह्म-विचार'—'आतम साधन' को व्यक्त करते हैं। यही कारण है कि कबीर के ब्रह्म का स्वरूप हमारे सम्मुख कभी किसी रूप में तो कभी दूसरे रूप में आता है। ब्रह्म के स्वरूप-परिवर्तन का वास्तविक कारण यही है कि वह किसी भी दार्शनिकवाद के मानदण्ड से परे है, तार्किक विवाद से ऊपर है, पुस्तकी विद्या से अगम्य पर प्रेम से प्राप्य है, अनुभूति का विषय है, सहज भाव से भावित है। डा० रामकुमार वर्मा के शब्दों में "वह ऐसा गलाब है जो किसी बाग में नहीं लगाया जा सकता, केवल उसकी सुगन्ध ही पाई जा सकती है। वह ऐसी सरिता है कि हम उसे किसी प्रशस्त वन में नहीं देख सकते, वरन् उसे कलकल नाद करते हुए ही सुन सकते हैं।" अनुभूति के विविध स्तरों के द्वारा ही वह कहीं अद्वैत है और कहीं द्वैताद्वैत, कहीं विशिष्टाद्वैत। किन्तु जैसा कि पहले कहा जा चुका है, अधिकांशतः कबीर ने अद्वैती भावनानुकूल उस ब्रह्म का वर्णन किया है। जब कबीर कहते हैं—

"कस्तूरी कुंडलि बसै, मृग ढूंढै बन माँहि।
ऐसे घट घट राम है, दुनियां देखे नाँहि॥"

× × ×

"मृगा पास कस्तूरी बास, आप न खोजै खोजै घास।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तो वे ईश्वर की अद्वैत सत्ता को स्वीकार करते हैं। वास्तव में उनका प्रभु रोम प्रतिरोम और सृष्टि के कण-कण में परिव्याप्त है। वह हृदयस्थ होते हुए भी दिखाई देता है किन्तु जब वह प्रियतम पास में ही है तो उसे संदेश भेजने की क्या आवश्यकता है ? इसीलिए कबीर कहते हैं—

"प्रियतम को पतिया लिखूं जो कहीं होय विदेस।
तन मन में, नैन में, ताको कहा संदेस॥

वास्तव में प्रियतम के इस प्रकार के संदेश-प्रेषण को तो वे दिखावा मात्र कृत्रिम प्रेम का परिचायक मानते हैं क्योंकि जहां देखो वहीं उस ईश्वर-प्रिय की सत्ता विद्यमान है—

"कागद लिखै सो कागदी, कि व्यवहारी जीव।
आतम दृष्टि कहा लिखै, जित देखै तित पीव॥"

कबीर ने उस ब्रह्म की स्थिति सर्वत्र उसी भाँति मानी है जिस प्रकार अद्वैत भावना के पोषक प्रतिबिम्बवाद में। हमारा यह कहने का तात्पर्य कदापि नहीं कि कबीर ने अद्वैती भावना का अनुगमन कर प्रतिबिम्ववाद को भी अपने काव्य में प्रयुक्त किया, वे तो उस ईश्वर की सर्वव्यापकता को अनुभव करते थे। इसीलिए उन्होंने कहा था—

"ज्युं जल में प्रतिबिम्ब, त्यूं सकल रामहि जानीजै।"

इस विवेचन से स्पष्ट है कि कबीर की भक्ति का आलम्बन अद्वैती भावनानुकूल है। निम्नस्थ प्रसिद्ध साखी तो उन्हें एकदम अद्वैती सिद्ध कर देती है—

"जल मैं कुम्भ कुम्भ में जल है, बाहर भीतर पानी।
फूटा कुम्भ जल जलहि समाना, इहि तथ कथ्यौ ग्यानी॥"

अद्वैतवादी भावना के साथ यह पूर्ण स्पष्ट है कि उनका ब्रह्म निर्गुण निराकार है—

"जाके मुंह माथा नहीं, नाही रूप कुरूप।
पुहुप बास ते पातरा ऐसा तत्व अनूप॥"

किन्तु जब वे इस ब्रह्म को समस्त संसार को बनाने वाला, बिगाड़ने वाला मानते हैं तो निर्गुण का अस्तित्व प्रश्न सूचक चिन्ह के साथ रखना पड़ता है।

"सात समुद्र की मसी करूं, लेखनी सब बनराइ।
सब धरती कागद करूं, प्रभु गुण लिखा न जाइ॥"

जिस ईश्वर के गुणों का इतना विस्तार है, वह निरुपाधि, निर्विषय, निर्गुण कैसे रहा ? इतना ही नहीं, कहीं-कहीं तो यह निरुपाधि ब्रह्म सोपाधि, सविशेष, सगुण एवं साकार तथा वैष्णवों के समान अवतारी हुआ जान पड़ता है। यथा—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

"पंडिता मन रंजिता, भगति हेत ल्यौ लाइ रे।
प्रेम प्रीति गोपाल भजि नर, और कारण जाइ रे।
दाम छै पणि काम नाहीं, ग्यान छै पणि धंध रे।
श्रवण छै पणि सुरति नाहीं, नैन छै पणि अंध रे।
जाकै नाभि पदम सु उदित ब्रह्मा, चरन गंग तरंग।
कहै कबीर हरि भगति बांछूं, जगत गुर गोब्यंद रे॥"

भला निर्गुण-निराकार की नाभि से ब्रह्मा और चरणों से गंगा निकलने की क्या संगति ? वास्तव में ऐसे कथन कबीर ने भक्ति की झोंक में ही कहे हैं और इन स्थलों पर उन्हें सूर-तुलसी आदि भक्तों की कोटि से अलग नहीं किया जा सकता। वास्तव में उनके निराकार ब्रह्म का अर्थ निर्विषय कदापि नहीं, इसीलिए कबीर के न चाहते हुए भी उसमें गुणों का आरोप स्वतः हो गया है। डा० ह० प्र० द्विवेदी जी ने भी स्वीकार किया है कि "कबीरदास के निर्गुण ब्रह्म में गुण का अर्थ सत्व, रज, आदि गुण हैं, इसलिए निर्गुण ब्रह्म का अर्थ वे निराकार निस्सीम आदि समझते हैं, निर्विषय नहीं।"

कबीर की निर्गुण-भक्ति में 'साकार' ब्रह्म के जो तत्व आ गये हैं उनके विषय में यही कहा जा सकता है कि वे कोरे तीव्र भक्ति-भाव के ही द्योतक नहीं अपितु जन-मन में 'साकार' स्वरूप की जो उपासना प्रचलित थी उसका पूर्ण विरोध करते हुए भी कबीर स्वयं कहीं कहीं उसके प्रभाव से बच नहीं पाये हैं। वास्तव में लोक-प्रचलित परम्परा का पूर्ण बहिष्कार सम्भव नहीं।

शुक्ल जी जैसे विद्वानों ने कबीर में केवल शुष्क ज्ञान ही माना था इसीलिए उन्होंने सन्तों का पृथक् वर्ग कर उसे 'ज्ञानमार्गी' नाम दिया। किन्तु वास्तविकता इस मान्यता से कोसों दूर है। कबीर की भक्ति में, और विशेष रूप से उस स्थल पर जहां उनकी आत्मा अपने प्रिय से विरहिणी रूप में आत्म-निवेदन करती है, भावों की सरसतम निधि प्राप्त होती है—

"फाड़ि पुटौला धज करौं, कामड़िली पहिराऊं।
जिहि जिहि भेषाँ हरि मिलै, सोई सोई भेष कराऊँ॥

वास्तव में रामानन्द के द्वारा उन्हें राम की ऐसी मधुरा भक्ति प्राप्त हुई जिसकी सरसता निस्संदेह विस्मय की वस्तु है। इन्हीं को पाकर कबीर 'वीर' हो गये—सबसे अलग, सबसे ऊपर, सबसे विलक्षण, सबसे सरस, सबसे तेज़।"[1]

कबीर ने भक्ति को मुक्ति का एकमात्र साधन माना है, स्थान-स्थान पर भक्ति की महत्ता उन्होंने प्रतिपादित की है—

१. डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

"भक्ति नसैनी मुक्ति की।"

× × ×

"क्या जप क्या तप क्या संजम क्या व्रत क्या अस्नान।
जब लगि जुगत न जानिये, भाव भक्ति भगवान।।"

मुक्ति के साथ-साथ संसार के दुख शम्मन का भी साधन प्रभु-भक्ति ही है-

"भाव भगति बिसवास बिन, कटै न संसै मूल।
कहै कबीर हरि भगति बिन, भुक्ति नहीं रे मूल।।"

कबीर के भगवत्-प्रेम के आदर्श दो ही हैं—'सती' और 'शूर'। सती आदर्श को चुनने में एक तो प्रेम की अनन्यता प्रकट होती है, दूसरे भक्त भगवान् के अधिक निकट आ जाता है। वास्तव में 'सती' भाव का आचरण करने पर भक्त अपने गुरुतर कर्त्तव्य से मुक्त हो जाता है और उत्तरदायित्व प्रभु पर आ जाता है-

"उस सम्रथ का दास हौं, कदै न होइ अकाज।
पतिव्रता नांगी रहै, तो उस ही पुरुष की लाज।।"

शूर वीर का आदर्श इसलिए अपनाया गया है कि वास्तव में साधना मार्ग जीवन की कठिनता, साहस और लक्ष्य के लिए दत्तचित्त होने की आवश्यकता शूर के ही समान है जिस भाँति शूरवीर युद्ध-क्षेत्र में लोहे की करारी मार के सम्मुख भी तिल भर भी नहीं मुड़ता और प्राणोत्सर्ग कर अपने कर्त्तव्य की रक्षा करता है वही स्थिति सच्चे भक्त के लिए आवश्यक है। शूरवीर और सच्चे भक्त की एक मात्र कसौटी यही है—

"सूरा तबही परषिये, लड़ै धणीं के हेत।
पुरिजा पुरिजा ह्वै पड़ै, तऊं न छांडै खेत।।"

संसार जिस मृत्यु से भय खाता है शूर और भक्त उसी का अभिनन्दन हंसते हंसते अपने लक्ष्य के लिए कर लेते हैं—

"जिस मरनै थैं जग डरै सो मेरे आनन्द।
कब मरिहूं कब देखिहूं, पूरन परमानन्द।।"

ये दोनों आदर्श ही कबीर की भक्ति की अनन्यता में सहायता पहुंचाते हैं। कबीर ने भी अपने आराध्य के लिए अपना सर्वस्व 'मार्जार शिशु-न्यायवत्' कर दिया है। सर्वस्व समर्पण के साथ-साथ अपने अस्तित्व को साध्य में लीन करने की उत्कट भावना कबीर में परिलक्षित होती है। यही कारण है कि वे ईश्वर के गुलाम बनने में भी नहीं हिचकते—

"मैं गुलाम मोहि बेचि गुसाईं।
तन मन धन मेरा राम जी के तांईं।।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इससे भी आगे बढ़ कर वे अपने को मानव छोड़ते ही नहीं, ईश्वर-सामीप्य र सर्वदा एकमेक रहने की कामना ही उनसे यह कहलाती है—

"कबीर कूता राम का, मुतिया मेरा नाऊँ।
गले राम की जेवड़ी, जित खैंचें तित जाऊँ॥"

इस पद पर झूमकर ह० प्र० द्विवेदी जी ने लिखा है—'निरीह सारल्य का ह चरम दृष्टान्त है, आत्मसमर्पण की यह हद है। इतने पर भी मन को प्रतीति हीं होती कि यह प्रेम रस पर्याप्त है। क्या जाने उस प्रियतम को कौन सा ढंग संद हो, कौन सी वेशभूषा रुचिकर हो। हाय उस अजब मस्ताने प्रिय का समागम सा होता होगा ?"

"मन परतीति न प्रेम रस, ना इस तन मैं ढंग।
क्या जाणौं उस पीव सूं, कैसी रहसी रंग॥"

ऐसे अद्भुत प्रियतम को जब आत्मा नहीं पाती तो उसके वियोग में खूब ड़पती है। कबीर-काव्य की यह तड़पन मीन से कम नहीं। जब से गुरु ने उस रमात्मा का ज्ञान कराया तब ही से भक्त उसके लिये आकुल-व्याकुल है—

"गूंगा हुआ बावला, बहरा हुआ कान।
पाऊं थैं पंगुल भया, सतगुरु मारा बान॥"

उस प्रिय के वियोग में प्रियतमा का हृदये अर्हनिश छटपटाता रहता है—

"तलफै बिन बालम मोर जिया।
दिन नहीं चैन, रात नहीं निंदिया, तलफ तलफ कै भोर किया॥"

कबीर की भक्तात्मा ने इस विरह का जो वर्णन किया है, वह इतना स्वाभा-क और मार्मिक है कि लगता है कि कबीर का कबीरत्व, पौरुषत्व यहाँ समाप्त हो या है, और उनकी आत्मा ने स्त्री रूप में प्रियतम के लिए ये शब्द कहे हैं। प्रिय से देश पाने के लिए आत्मा इस भाँति छटपटाती है मानो यदि उसे अभीष्ट प्राप्ति न ई तो न जाने क्या होगा ?—

"विरहनि ऊभी पंथ सिरि, पंथी बूझै धाइ।
एक सबद कह पीव का, कबर मिलेंगे आइ॥"

वह केवल मात्र भेंट की इच्छुक है। भक्तात्मा का प्रभु-दर्शन के अतिरिक्त और छ प्रयोजन ही नहीं। इसलिए वह यह न पूछ कर कि प्रिय कुशल हैं अथवा नहीं, झे भी याद करते हैं या नहीं—आदि कुछ नहीं पूछती केवल यही कहती है 'एक बद कह पीव का, कबर मिलेंगे आइ" जो यह भी ध्वनित करती है कि और काम ो तो छोड़ पथिक, पहले यही बता कि वे कब आयेंगे ? किन्तु शीघ्र ही भक्त इस ल्पना-जगत् से नीचे उतर इस वास्तविकता पर आता है—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

"आइ न सकौं तुझ पैं, सकूं न तुज्झ बुलाइ ।
जियरा यौंही लेहुगे, बिरह तपाइ तपाइ ॥"

इस दूरी के व्यवधान को दूर करना तो भक्त की सामर्थ्य से बाहर है
प्रिय से मिलना फिर भी चाहता है । इसीलिए कहता है—

"यहु तन जारौं मसि करौं, लिखौं राम का नाउं ।
लेखणि करूं करंक की, लिखि लिखि राम पठाउं ॥"

किन्तु वेचारा भक्त इस विरहाग्नि में भी कहां तक जले, जब दुख
सहन शक्ति की सीमा से बाहर हो उठता है, जब भक्त का हृदय प्रिय वियो
टूक-टूक हुआ जाता है तब विवश हो उसे ईश्वर को आक्रोश-पूर्ण यह ताना
पड़ता है—

"कै बिरहणि कूं मीच दै, कै आपा दिखलाय ।
आठ पहर का दाझणा, मो पै सहा न जाय ॥

वास्तव में यह प्रेम का चरमोत्कर्ष है जो प्रभु-प्रियतम के अभाव में भी आ
परमात्मा, भक्त-भगवान् के अटूट प्रेम की उद्घोषणा कर रहा है । उनकी इस
भावना का विवेचन करते हुए द्विवेदी जी ने लिखा है—'इस प्रेम में मादकता न
पर मस्ती है । कर्कशता नहीं है, पर कठोरता है । असंयम नहीं है पर स्वाधीनता
अन्धानुकरण नहीं है, पर विश्वास है, उजड्डता नहीं है पर अक्खड़ता है ।
प्रचंडता सरलता का परिणाम है, उग्रता विश्वास का फल है, तीव्रता आत्मा
का विवर्त है ।"

यदि कबीर को प्रभु की प्राप्ति भी हो जाय तो उससे कोई कामना सिद्धि
बात नहीं सोचते । उनकी तो एकमात्र कामना है—

"नैनन की करि कोठरी, पुतरी पलंग बिछाय ।
पलकन की चिक डारिकै, पिय कूं लेऊं रिझाय ॥

या दूसरी कामना है—

"नैना अंतरि आव तूं, ज्यू हौं नैन झपेउं ।
ना मैं देखूं और कूं, ना तुम देखन देउं ॥

भक्ति में कामना के तो कबीर घोर विरोधी थे, तभी तो उन्होंने कहा था

"जब लगि भगति सकामता तब लगि निष्फल सेव ।"

इसलिए अन्त समय तक उस प्रभु की भक्ति करने, नाम जपने का उ
उन्होंने दिया था—

"कबीर निरभै राम जपि, जब लग दीवै बाति ।
तेल घट्या बाती बुझी, सोवैगा दिन राति ॥"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कबीर की इस भक्ति में ज्ञान—पुस्तकीय ज्ञान—का कोई महत्व नहीं क्योंकि नका विश्वास है कि ईश्वर में अटूट लय ही मुक्ति के लिये पर्याप्त है, ज्ञान तो सार की गुत्थी में उलझा देता है। भक्त के लिए इतना ही ज्ञान पर्याप्त है कि इ विषय-वासनाओं से मुक्त हो ईश्वर-भजन करे—

"पोथी पढ़-पढ़ जग मुआ, पंडित भया न कोय।
एकै आखर प्रेम का, पढ़ै सो पंडित होय॥"

इसी भांति—

"कबीर पढ़िवा दूर कर, पोथी देय बहाय।
बावन आषर सोध कर, ररै ममैं चित लाय॥"

कबीर ने भक्ति के द्वार प्रत्येक के लिए खोलकर सबको उसका अधिकारी ाया। वहां ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, आदि में किसी भी भांति का भेदभाव ीं क्योंकि सबकी रचना उन्हीं पाँच तत्वों से हुई है, सबका स्रष्टा पिता परमात्मा क ही है।

"जांति-पाँति पूछै नहिं कोई।
हरि को भजैं सो हरि का होई॥"

इस भक्ति के द्वार खुले हुए तो सबके लिए हैं किन्तु प्रत्येक व्यक्ति भक्ति ा प्राप्ति नहीं कर सकता, इसका कारण साधना-भक्ति का मार्ग 'खाँडे की धार पर लना' ही है। साधना की इस विषमता का वर्णन कबीर ने स्थान-स्थान पर या है—

"गुरु भक्ति अति कठिन है, ज्यों खाँडे की धार।
बिना सांच पहुंचे नहीं, महाकठिन ब्यौहार॥"

इस भक्ति-साधना के लिये तो साधक को जीवन न्यौछावर करने के लिए श उतार कर हथेली पर रखना पड़ता है—

"बागड़ देस लूवन का घर है, तहां जिनि जाई दाहन का डर है।
सब जग देखौं कोई न धीरा, परस धूरि सिरि कहत अबीरा।
न तहां सरवर न तहां पाणी, न तहां सतगुर साधु वाणी।
न तहां कोकिल न तहां सूवा, ऊंचै चढ़ि चढ़ि हंसा मूवा।
देस मालवा गहर गंभीर, डग-डग रोटी पग-पग नीर।
कहै 'कबीर' घर ही मनमाना, गूंगे का गुड़ गूंगे जाना।"

भक्ति मार्ग में आने वाली जिन बाधाओं का वर्णन कबीर ने किया है उनमें ़क' और 'कामिनी' प्रमुख हैं। इन्हें तो कबीर 'दुर्गम घाटी दोय' बताते हैं। इनके रिक्त कुल, कुसंग, लोभ, मान, कपट, आशा और तृष्णा आदि। वस्तुतः यह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सब मन द्वारा ही प्रस्तुत होते हैं क्योंकि यह सब माया जाल मन-सृष्टि के अति कुछ नहीं। इसलिए कबीर ने मन-साधना पर बड़ा बल दिया है—

"काया कसूं कमाण ज्यूं, पचतत्त करि बाण।
मारौं तो मन मृग को, नहीं तो मिथ्या जाण।।

कबीर ने अपनी भक्ति के ३ प्रमख सहायक साधन बताये है—

१. मानव शरीर।
२. गुरु।
३. सत्संग।

८४ लक्ष योनियों में मानव शरीर ही एकमात्र ऐसा है जिसमें प्रभु-भक्ति अवसर है। यदि इसे भी विषयानन्द में गंवा दिया तो फिर पश्चात्ताप के अति और कुछ हाथ नहीं लगता—

"कबीरा हरि की भक्ति करु, तजि विषया रस चौज।
बार-बार नहीं पाइं है, मानुष जनम की मौज।।

भक्ति-मार्ग पर तो एकमात्र मार्ग-दर्शक गुरु ही हैं। गुरु के बिना भक्ति सम्भव नहीं—

"सतगुरु की महिमा अनत, अनत किया उपगार।
लोचन अनत उघाड़िया, अनत दिखावन हार।।"

साधु-संगति की महिमा अपार है। भक्ति का तो वह अवश्यक अंग है। कबीर ने स्वर्ग से भी अधिक महत्व प्रदान किया है—

"राम-बुलावा भेजिया, दिया कबीरा रोय।
जो सुख साधु-संग में, सो बैकुंठ न होय।।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि कबीर की भक्ति पीयूष-सलिला भागीरथी समान पावन है जिसके पुनीत कूलों पर न जाने कितनों के भटकते मन को विश्रन्ति मिली है।

———

कबीर-काव्य की रस-गागरी

कविता कबीर का लक्ष्य नहीं था अपितु साधन था। वे अपने विचारों को नैसर्गिक अभिव्यक्ति दिया करते थे जिससे वे जनग्राह्य हो सकें। उन्होंने अपने मन में उदित होने वाले भावों को वाणी का विषय बनाया जिसे उनके शिष्यों ने कागज पर अंकित कर दिया। आज हम उसी आत्मानुभूत वाणी को काव्य की सर्वोत्तम मानते हैं—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

"यह जनि जानो गीत है, यह निज ब्रह्म विचार,
केवल कहि समझाइया, आतम साधन रे।"

मध्य-युग के इस महान् फक्कड़ संत को कभी यह आवश्यकता ही प्रतीत ों हुई कि वे अपनी विचारावली को पहले साज-संवार लें, तब अभिव्यक्ति दें। उन्हें केवल अपनी बात दूसरों तक पहुंचानी थी और जितने प्रभावशाली रूप में उन्हें नी इस लक्ष्य-पूर्ति में सहायता मिली है वस्तुतः 'मसि कागद' से अपरिचित व्यक्ति लिए वह आश्चर्य की वस्तु है। कबीर काव्य की सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि उसकी णीयता है। इस सम्प्रेषणीयता के लिए उन्होंने शब्दों को तोला-संवारा नहीं पितु 'ढपली पर जो शब्द जिस रूप में निकल गया' ठीक था।

कबीर-काव्य का सौन्दर्य उस वन्य-सरिता के समान है जिसका मार्ग पहले से ाया हुआ नहीं होता अपितु वह तो गिरिराज की गोद से निकल कल-कल, छल- करती जिधर उचित समझती है वह चलती है और उसका वही मार्ग सर्वाधिक ोरम एवं उपयुक्त होता है। किसी बंधी-बंधाई लीक पर चलना इस सरिता के ए असम्भव और स्वभावविरुद्ध होता है। मनुष्य इस नाना रूपात्मक सृष्टि में विध क्रियाएं-प्रतिक्रियाएं देखता है। इस निरीक्षण से उसके मन पर जो प्रभाव ते हैं, जो अनुभव उसे होता है उसे सर्वसुलभ बनाने के लिए जो अभिव्यक्ति दी ती है वह काव्य है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि नानारूपात्मक सृष्टि के विध अनुभवों को जब कवि-आत्मा व्यक्ति की सीमा से निकालकर समष्टि तक चाना चाहती है तभी काव्य की सृष्टि होती है। कबीर का काव्य भी इसी प्रकृत ना का सहज परिणाम है। किन्तु जैसा कि पहले कहा जा चुका है, कबीर-काव्य सर्वाधिक विशिष्टता और अनूठापन उसकी सहजता और स्वाभाविकता में है अपने दिक् वातावरण में आत्मा की प्रकृत पुकार से उद्भूत यह काव्य इसी प्रकार से ा है जैसे पर्वत के हृदय से अनजाने ही रसस्रोत निर्झर फूट पड़ते हैं। कबीर का व्य भी आत्मा की अन्तःप्रेरणा से फूटा है, किसी बाहरी दबाव से नहीं।

कबीर की कवित्व-प्रेरणा किसी स्थल विशेष पर नहीं अपितु सृष्टि के कण-कण विद्यमान थी। बाह्य जगत् ने कबीर काव्य को मुख्यतः दो धाराएं प्रदान कीं जो स्तव में समस्त कबीर साहित्य की परिधि में परिव्याप्त हैं। प्रथम समाज की तियों और आडम्बरों पर तीव्र प्रहार द्वारा सत्य तत्व का उद्घाटन एवं द्वितीय जिसकी खोज में सृष्टि का कण-कण आकुल-व्याकुल है—

"महानील इस परम व्योम में, अंतरिक्ष में ज्योतिर्मान,
ग्रह, नक्षत्र और विद्युत्कण किसका करते से संधान ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यहां यह तात्पर्य कदापि नहीं कि कबीर की रहस्य-भावना, परम तत्व के लिए व्याकुलता प्रकृति प्रसूत है अपितु हमारा मन्तव्य यही है कि सृष्टि के तत्वों की भाँति कबीर की आत्मा भी प्रियतम के वियोग में विरहिणी तुल्य क्रन्दन के साथ छटपटायी है। वे 'कुरंग' की वन-वन भटकने पर भी अभीष्ट की निष्फलता से परिचित हो उसे स्वयं की ही परिधि में खोजते हैं। खण्डन-मत-द्वारा सत्य तत्वोद्घाटन एवं प्रिय की खोज—यही दो भावनाएं कबीर-काव्य के छोर से लेकर उस छोर तक फैली दिखाई देती हैं।

कबीर के रहस्यवादी पदों में तो काव्य की उच्चतम निधि प्राप्त होती विरहिणी के विकल प्राणों की पुकार, उसकी अन्तर-व्यथा की मर्मभेदी हूक, भाव का वह आवेग-प्रवेग सब-कुछ बड़ा मनोहारी बन पड़ा है—

> **"नैननि की करि कोठरी, पुतली पलंग बिछाय।**
> **पलकनु की चिक डारिकै, पिय को लेऊं रिझाय॥"**

प्राणाधिक प्रियतम के लिए इससे सुन्दर आवास दूसरा हो ही नहीं सकता। आधुनिक शीतवातानुकूलित भवन भी इस व्यवस्था के आगे तुच्छ हैं। यहाँ प्रिय की प्रतीक्षा करते-करते विरहिणी की भावना जितनी मार्मिक हो गई है उसकी अभिव्यक्ति के लिए कल्पना उतनी ही अधिक सजीली। अपनी असह्य वेदना का वर्णन करते हुए कबीर ने लिखा है—

> **"आंखड़िया झाईं पड़ी, पंथ निहारि-निहारि।**
> **जीभड़िया छाला पड़्या, राम पुकारि-पुकारि॥"**

क्या "निसिदिन बरसत नैन हमारे, सदा रहत पावस ऋतु हम पर जब तें स्याम सिधारे" में वेदना की इतनी तीव्रानुभूति है? यहाँ तो प्रतीक्षा की अवधि आंखों में झाईं पड़ने एवं जीभ में छाले पड़ने से अनन्त दिखाई देती है। साथ ही इस कथन से यह भी ध्वनित है कि आँखों को कोई कार्य था तो प्रिय का पंथ निहारना और जिह्वा को कोई कार्य था तो प्रिय का नाम रटना। प्रिय पर तन, मन, धन सर्वस्व अर्पण करने की और प्रीति की एकतानता की इससे सुन्दर अभिव्यक्ति नहीं हो सकती। प्रेमदीवानी मीरा में जो प्रेम की कसक, प्रेम-पीर से आहत जायसी में जो प्रेम का चीत्कार है वह सब कबीर की व्यथा, तल्लीनता, बेचैनी, कसक, के सामने तुच्छ जान पड़ता है। उनमें ऐसी व्यग्रता कहाँ—

> **"विरहनि ऊभी पंथ सिर, पंथी बूझै धाय।**
> **एक सबद कह पीव का, कबर मिलेंगे आय॥"**

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस विरहिणी की व्यथा का उपचारक कोई नहीं—

"कबिरा बैद बुलाइया, पकरि कै देखी बांहि।
बैद न बेदन जानई, करक करेजे मांहि॥"

क्या मीरा में इसकी अनुकृति होने पर भी ऐसी 'करक' है ? महादेवी चाहे त-सहस्र बार प्राणों में पीड़ा को पालें किन्तु इस राम दीवाने की तुलना नहीं कर की। प्रिय दर्शन के लिए व्याकुल कबीर की आत्मा जो-जो उपक्रम करने को स्तुत है वे भी दर्शनीय हैं—

"फाड़ि पुटोला धज करौं, कहौ तो कामणियां पहराउं।
जिहि जिहि भेषा हरि मिलैं, सोई सोई भेष धराउं॥"

यहाँ समाज के मिथ्याचारों पर निश्शंक होकर करारी चोट करने वाले सन्त ा अखक्कड़ और फक्कड़ व्यक्तित्व नारी से भी अधिक कोमलता धारण कर प्रिय की म भावना पर सर्वस्व न्यौछावर करने को आतुर है। उनका विरह-काव्य हिन्दी सर्वश्रेष्ठ विरही कवियों—सूर, मीरा, घनानन्द, 'प्रसाद' आदि—की कोटि में स्संकोच भाव से रखा जा सकता है।

अपने आध्यात्मिक मिलन के जो चित्र कबीर ने प्रस्तुत किये हैं, वे भी अनुपम । ब्रह्म-दर्शन के अनुभव कों अभिव्यक्ति नहीं दी जा सकती क्योंकि वह अपरूप ाधना में एकाध क्षण के लिए अपनी ऐसी अलौकिक छटा दिखाता है कि साधक सके स्वरूप का वर्णन नहीं कर सकता। तभी तो ईश्वर को अनिर्वचनीय और [ंगा केरी शर्करा'के स्वाद के समान माना गया है। ऋषियों ने भी उसे 'मूकास्वादन-त् कहकर' छोड़ दिया किन्तु कबीर विविध प्रतीकों द्वारा उसी अवर्णनीय तत्त्व ी सत्ता को अभिव्यक्ति देने का प्रयास करते हैं—

"एक कहूं तो है नहीं, दोय कहूं तो गारी।
है जैसा तैसा रहे कहै कबीर विचारी॥"

× × ×

"हेरत हेरत हे सखी, रहा कबीर हिराई।
बूंद समानी समुद्र में, सो कत हेरी जाई॥"

क्या आज का प्रयोगवादी कवि अवचेतन मन के उलझे भावखण्डों को व्यक्त करने में इतना सफल हो पाया है ?

प्रिय के साक्षात्कार-पूर्व की मन:स्थिति का भी अद्भुत वर्णन कबीर ने प्रथम मागम से भयभीत नायिका के समान किया है—

"रैनि गई मति दिन भी जाइ, भंवर उड़े बग बैठे आइ।
कांचै करवै रहै न पानी, हंस उड़या काया कुमिलानी।
थरहर थरहर कांपै जीव, नां जानूं का करिहै पीव।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कौवा उड़ावत मेरी बहियाँ पिरानीं,
कहै कबीर मेरी कथा सिरानी ॥"

रेखांकित अंश की प्रथम पंक्ति में जहां शरीर के सात्विक अनुभावों की अभिव्यक्ति द्वारा मनोभाव की अभिव्यक्ति हुई है, वहां दूसरी पंक्ति में अपन सुलभ शकुन-विश्वास द्वारा प्रियागम की मंगल आशा भी प्राप्त होती है। कहीं 'वासकसज्जा' के हृदय की आतुरता के दर्शन भी कबीर में प्राप्त होते हैं—

"वै दिन कब आवैंगे माइ ।
जा कारनि हम देह धरी है, मिलिवौ अंग लगाइ ॥
हौं जानूं जे हिलमिक खेलूं, तन मन प्रान समाइ ।
या कांमना करौ परिपूरन, समरथ हौं राम राइ ॥
मांहि उदासी माधो चाहै, चितवत रैनि बिहाइ ।
सेज हमारी स्यंघ भई है, जब सोऊं तब खाइ ।
यहु अरदास दास की सुनिये, तन की तपनि बुझाइ ।
कहै कबीर मिलै जे सांई, मिलि करि मंगल गाइ ॥"

अशरीरी आध्यात्मिक प्रियतम के लिए ऐसी मनोरम कल्पनाएं काव्य की उच्चतम निधि हैं।

कबीर काव्य में ओज, माधुर्य, प्रसाद तीनों गुणों की सुन्दर समन्विति होती है। अपनी डाट फटकार में कबीर ने इतनी ओजपूर्ण तिलमिला देने उक्तियाँ कही हैं कि जिसके लिए वे उक्तियाँ कही गई हैं वह तिलमिला उ और साथ ही कबीर द्वारा निर्दिष्ट पथ पर आगे आगे हो लेता है—

"अरे इन दोऊ राह न पाई ।"

× × ×

"मीयां तुम्हसौ बोल्या बणि नहिं आवै ।

× × ×

"हिंदू तुरक कहां ते आये किन रूह राह चलाई ।
दिल महि सोच बिचार भवादे भिस्त दोजक किन पाई ॥"

माधुर्य गुण के दर्शन कबीर के आध्यात्मिक मिलन प्रसंगों से प्राप्त हों

"मोरे घर आये राजा राम भरतार ।
तन रति करि मैं मन रति करिहौं, पांचों तत्त बराती ।
राम देव मोहे ब्याहन आये, मैं जोबन मदमाती ॥

'प्रसाद' गुण से तो समस्त कबीर-काव्य ओत-प्रोत है। इसी प्रसाद कारण आज वह जन-मानस पर अपना एकाधिकार किये हुए है। यथा—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

"कबीर कहता जात हूं, सुणता है सब कोइ।
राम कहे भला होइगा, नहीं तर भला न होइ॥"

बात को कितने सीधे-साधे ढंग से कबीर ने यहाँ रखा है। प्रसाद गुण के अपवाद कबीर के कुछ साधनापरक रूपक, प्रतीक और उलटबासियाँ हैं। इनके विषय में यही कहा जा सकता है कि यह भाषा आज के समाज की पहुंच से ही दूर है। जिस समय कबीर ने उस काव्य की रचना की थी उस समय समस्त योगपरक पारिभाषिक शब्द जिनसे आज हम अपरिचित हैं जनता को ज्ञात थे। सिद्धों, नाथों आदि ने अपने प्रचार से योग-साधना को साधकों के लिए तो सुलभ बनाया था ही, साथ ही सामान्य जनता भी उसकी शब्दावली आदि से अपरिचित नहीं थी। उस समाज में चमत्कार रूप से (जिसका माध्यम उलटवाँसी थी) बात को कहने का अत्यधिक प्रचार हो चला था। कवीर ने भी उस परम तत्व का वर्णन कुछ स्थानों पर इन्हीं रूपकों और प्रतीकों द्वारा किया था। किन्तु ये समस्त स्थल अपवाद स्वरूप हैं अन्यथा सर्वत्र कबीर-काव्य में प्रसाद गुण विद्यमान है।

इन तीनों गुणों के साथ ही कबीर-काव्य में ज्ञान, भावना और कल्पना तीनों तत्वों का सुन्दर सम्मिश्रण प्राप्त होता है। कवीर के रहस्यवादी पदों में ज्ञान की उच्च से उच्च वस्तु और निगूढ़ तत्त्व विद्यमान हैं। अद्वैतवाद के आधार पर खड़े उनके भक्ति-भवन में ज्ञान ही ज्ञान भरा पड़ा है। संसार, माया, आदि के सम्बन्ध में ऐसी सत्याश्रित बातें प्राप्त होती हैं कि व्यक्ति की आँखें खुलती चली जाती हैं। यथा—

"जल में कुंभ कुंभ में जल है बाहर भीतर पानी।
फूटा कुंभ जल जलहि समाना, इह तथ कथ्यौ ग्यानी॥

इसी भाँति—

"लाली मेरे लाल की, जित देखूं तित लाल।
लाली देखन में गई, मैं भी हो गई लाल॥"

उनकी रहस्यभावना की मधुरता पर प्रकाश डालते हुए भावनाओं की उत्कृष्टता के उदाहरण प्रस्तुत किये जा चुके हैं। कल्पना तत्व भी कबीर के रूपकों प्रतीकों आदि में प्रकट हुआ है जिसके आधार पर कहा जा सकता है कि कवीर की कल्पना अत्यन्त उच्च कोटि की है—

"त्रिसनां नै लोभ लहरि, काम क्रोध नीरा।
मद मच्छर कछ मछ हरषि सोक तीरा।
कामनी अरु कनक भंवर, बोये बहु बीरा।
जन कबीर नवका हरि खेवट गुरु कीरा॥"

ज्ञान, भावना एवं कल्पना के सम्मिश्रण से उनका काव्य प्रत्येक कोटि के पाठक की मानसिक परितुष्टि कर उसकी तृषा को शान्त करता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

महाकवि मिल्टन ने किसी श्रेष्ठ काव्य के जो तीन गुण—१. सादगी २. असलियत ३. जोश निर्धारित किये हैं वे हमें कबीर-काव्य में प्राप्त होते हैं। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी का कथन है कि "......बहुधा अच्छी कविता में भी इनमें से आध गुण की कमी पाई जाती है। कभी-कभी देखा जाता है कि कविता में जोश रहता है, सादगी और असलियत नहीं।" किन्तु हम देखतें हैं कि आचार्य जी के इस कथन का अपवाद कबीर साहित्य है। सादगी, असलियत, जोश—कबीर इन तीनों गुणों की प्रस्थापना के विरोध में कोई तर्क नहीं रखा जा सकता। का निम्नलिखित उदाहरण तो दर्शनीय है—

"आऊंगा न जाऊंगा, मरूंगा न जीऊंगा।
गुरु के सबद में मैं, रमि रमि रहूंगा ॥"

इन तीनों गुणों ने ही कबीर-काव्य को अद्भुत सम्प्रेषणीयता प्रदान की है।

कविता करना यद्यपि कबीर का लक्ष्य नहीं था किन्तु काव्य की परम्पराओं का दाय उनको मिला था। अपनी एक वार्ता में डा० गुलाबराय ने उदाहरण द्वारा इस बात को भली भांति समझाया है। वे एक सिद्ध कवि की काव्य की परम्पराओं, कवि- समयों आदि से परिचित थे। साहित्य की परम्परा भाव-सम्पत्ति का दाय उनको प्रचुर मात्रा में प्राप्त हुआ था, तभी तो उनमें तुलसी आदि महाकवियों के साथ भाव-साम्य के दर्शन होते हैं। हंस के नीर विवेक की बात को कबीर और तुलसी ने समान रूप से अपनाया है—

"हंसा बक एक रंग लखि चरैं एक ही ताल।
छीर नीर वे जानिए बंक उघरैं तेहि काल।

तुलसीदास जी ने भी इसी कवि-समय का उपयोग करते हुए लिखा है:

"चरन चोंच लोचन रंगौ चलौ मराली चाल।
क्षीर नीर विवरन समय बक उघरत तेहि काल ॥"

चातक के प्रेम की अनन्यता के भी कबीर और तुलसी दोनों एक ही परम्परा के उत्तराधिकारी प्रतीत होते हैं। कबीरदास जी ने कहा है—

"चातक सुतहिं पढ़ावही आन नीर मत लेह।
मम कुल यही सुभाव है, स्वाति बूंद चित देह ॥"

तुलसीदास जी अपनी कल्पना के विस्तार से चातक का प्रेतलोक में भी स्वाति जल से प्रेम दिखाते हैं, सुनिए—

"चातक सुतहि देत सिख बार ही बार।
तात न तर्पन कीजिए बिना वारिधर वार ॥"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सेमर का फूल संसार की निस्सारता का प्रतीक माना गया है। इस कवि-प्रशस्ति का कबीर और सूर दोनों ने बड़ी मार्मिकता से उपयोग किया है। कबीरदास जी कहते हैं :

"सेमर सुवना सेइया दुई ढेढ़ी की आस।
ढेढ़ी फूटी चटांक दे सुवना चला निरास॥"

कबीरदास जी इस उदाहरण की व्यंजना पाठक पर ही छोड़ देते हैं; किन्तु सूरदास जी उस व्यंजना को स्पष्ट करके गाते हैं—

"रे मन छाड़ विषय को रचिवो।
तू कत सुवा होत सेमर कौ अन्तहि कपट न बधिवौ॥"

वे एक जगह और भी कहते हैं :

"रसमय जानि सुवा सेमर कौ चोंच छालि पछतायौ।"

रात को चकवे-चकई के रैन-वियोग का वर्णन हमारे कवियों को बहुत प्रिय है। इस कवि-समय को अन्योक्ति के रूप में कबीर और सूर ने समान रूप से अपनाया है—"चल चकई वा सर विषै जहाँ न रैन वियोग।' तुलसी के साथ तो बहुत सी बातों में कबीर का भाव-साम्य है। जनता की भेड़ियाधसान वृत्ति का दोनों ने ही उल्लेख किया है। कबीर कहते हैं 'ऐसी गत ठंठार की ज्यों गाडर की ठार' इसी से मिलता-जुलता तुलसीदास जी का पद है—"तुलसी भेड़ी की धसान जड़ जनता समान।' 'भय बिनु होय न प्रीति' का भाव दोनों में समान है।

कबीर ने संस्कृत विचार-परम्परा को बहुत कुछ अपनाया है—'भृंग ज्यों कीट को पलटि भृंग कियौ, में वेदान्तियों के 'कीट-भृंग न्याय' की झलक है और "है साधु संसार में कमला जल माहीं' में 'पद्मपत्रमिवाम्भसि' की छाया है। 'सब बन चन्दन नाँहि, सूरों का दल नाहि' में उलट-फेर दिखाई पड़ता है। ऐसी ही उलट-पलट नीचे के दोहे में हैं :

"वृच्छ कबहूं नहिं फल भखै नदी न संचै नीर।
परमारथ के कारने, साधुन धरा शरीर॥"

इसका संस्कृत का बिम्ब रूप देखिए—

"पिबन्ति नद्यः स्वयमेव नाम्भः, स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः।
नादन्ति शस्यं खलु वारिवाहा; परोपकाराय सतां विभूतयः॥"

'असित-गिरि-समं स्यात् कज्जलं सिन्धु पात्रे,
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्व-कालम्,
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

महिम्नस्तोत्र की इस उक्ति को सूर और तुलसी द्वारा अपनाये जाने पर कबीर ने इस प्रकार अपनाया था। सुनिये—

"सब धरती कागद करूं, लेखनि सब बनराय।
सात समुद्र की मसि करूं, गुरु गुण लिखा न जाय ॥"[1]

इन उदाहरणों के अतिरिक्त तुलसी के 'धूएं के धौरहर देखि तू न भूलि' जैसा ही—

"यहु संसार इसौ रे प्राणी, जैसे धूंवरि मेह ॥"

इसी भांति 'नलिनी के सवटा' का दृष्टान्त तो सूर, तुलसी, कबीर तीनों में प्राप्त होता है। भक्तराज प्रह्लाद द्वारा की गई भक्ति की व्याख्या का भाव-साम्य भी कबीर में प्राप्त होता है—

"या प्रीतिरविवेकानां विषयेष्वनपायिनी।
त्वामनुस्मरतः सा मे हृदयान्मापसर्पतु ॥"

कबीर ने इसे यों कहा है—

"ज्यूं कामी कौं काम पियारा, ज्यू प्यासे कूं नीर रे।
है कोई ऐसा पर उपगारी, हरि सूं कहै सुनाई रे।"

जब कबीर-काव्य की भाषा पर विचार करते हैं तो ज्ञात होता है कि जनभाषा के प्रथम निर्भय कवि थे। कबीर की भाषा में अनेक भाषाओं और बोलियों का सम्मिश्रण प्राप्त होता है। उनकी भाषा पर सर्वाधिक प्रभाव भोजपुरी, पंजाबी व राजस्थानी का है। इसीलिए आलोचकों ने इनकी भाषा को सधुक्कड़ी नाम दिया है। डा० रामकुमार वर्मा प्रभृति विद्वानों ने इसकी अकृत्रिमता के ही कारण यह कहा है—"भाषा बहुत अपरिष्कृत है, उसमें कोई विशेष सौन्दर्य नहीं है।" किन्तु इस प्रकार की भ्रामक बातें कहना कबीर-काव्य की आत्मा को दबोच देना है। वास्तविकता इन कथनों से बहुत दूर है। कबीर की भाषा की 'अकृत्रिमता में ही उसका सहज सौन्दर्य है। उनकी भाषा में विभिन्न भाषाओं के रूपों के सम्मिश्रण का प्रथम कारण तो यह है कि उस समय लोक-भाषाओं के रूप बन रहे थे, अतः निर्माण काल की इस प्रारम्भिक अवस्था में एक दूसरी भाषा से इतना अधिक अन्तर नहीं था कि एक भाषा दूसरे प्रदेश वाले को समझ न आये। डा० सरनामसिंह शर्मा जी का कथन है कि "उस समय के रवैये को देखकर यही कहा जा सकता है कि अपभ्रंश ने अपना दायित्व लोक-भाषाओं को सौंप दिया था जिनमें से किसी में भी अपने शुद्ध रूप में स्वतन्त्र व्यक्तित्व की झलक नहीं मिलती। जिस प्रकार गुजराती और राजस्थानी में उस समय बहुत साम्य था, उसी प्रकार राजस्थानी, व्रजभाषा या गुजराती में भी बहुत

१. 'कबीर एक विश्लेषण'—आकाशवाणी, दिल्ली पृष्ठ ३३-३४.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

साम्य था। यद्यपि लोक भाषाओं की प्रवृत्ति विकसित होने लगी थी किन्तु उनके बीच में कोई विभाजक रेखा खींचना संभव नहीं था। इस साम्य के कारण एक भाषा भाषी दूसरे स्थानों की भाषा सरलता से बोल सकता था।"

कबीर की भाषा में इस साधुपन का दूसरा कारण कबीर की पर्यटनशील प्रवृत्ति है। वे जहां-जहां गये वहां की भाषा के शब्द स्वभावतः उनकी भाषा में आ गये क्योंकि उन्हें तो अपनी बात वहाँ के लोगों की भाषा में या उस भाषा के सर्वाधिक निकट रूप के माध्यम द्वारा समझानी थी। तीसरा कारण यह है कि कबीर के शिष्य, जो उनके लिपिकार भी थे, विभिन्न प्रदेशों के निवासी थे। उन्होंने अपनी भाषा के अनुकूल शब्दों को रूप दे दिया। यद्यपि सद्गुरु की पवित्र वाणी में जान बूझ कर उन्होंने हेर-फेर नहीं किया किन्तु अल्पशिक्षित शिष्य अपनी भाषा के प्रभाव से कबीर वाणी को मुक्त न रख सके।

डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी जी आपकी भाषा को सधुक्कड़ी न मान कर सिद्धों और नाथों की संध्या भाषा की परम्परा में बताते हैं। किन्तु इसका प्रत्युत्तर देते हुए डा० सरनामसिंह शर्मा जी ने उचित ही कहा है कि "कबीर की भाषा को संध्या भाषा से सम्बन्धित कदापि नहीं किया जा सकता क्योंकि संध्या भाषा के प्रवर्तकों का जो लक्ष्य था उससे कबीर का लक्ष्य सर्वथा भिन्न था। जबकि पहले लोग भोली जनता को भ्रांति में डालना चाहते थे, कबीर उसे शांति के पथ पर ले जाना चाहते थे। सिद्धों की भाषा गुमराह करने वाली थी और कबीर की भाषा राह दिखाने वाली थी।" इस भाँति हम देखते हैं कि कबीर ने अपनी काव्य-भाषा को चाहे जो रूप दिया हो वह उस समय की जनता के लिए सर्वग्राह्य थी। सर्वाधिक प्रमुख बात यह है कि भाषा में कबीर का व्यक्तित्व इतना प्रखर और सुन्दर रूप में अभिव्यक्त हुआ है कि वह कबीर-काव्य को सर्वथा विलक्षण ओप और कांति प्रदान करता है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी जी ने आपके काव्य का उचित ही मूल्यांकन करते हुए लिखा है—

"भाषा पर कबीर का जबर्दस्त अधिकार था। वे वाणी के डिक्टेटर थे। जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा है, उसे उसी रूप में भाषा से कहलवा दिया है—बन गया है तो सीधे-सीधे नहीं तो दरेरा देकर। भाषा कुछ कबीर के सामने लाचार सी नजर आती है। उसमें मानों ऐसी हिम्मत ही नहीं है कि इस लापरवाह फक्कड़ की किसी फरमाइश को नाहीं कर सके। और अकथ कहानी को रूप देकर मनोग्राही बना देने की जैसी ताकत कबीर की भाषा में है वैसी बहुत कम लेखकों में पायी जाती है।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस प्रकार हम देखते हैं कि यद्यपि कबीर का लक्ष्य कविता नहीं था कि फिर भी उनके काव्य में उच्चतम कविता के गुण प्राप्त होते हैं, "काव्यत्व उ फोकट का माल है।" उनके काव्य की रस-गागरी से रस छलका पड़ता है।

कबीर के प्रतीक और उलटवांसियां

यद्यपि कविता करना कबीर का लक्ष्य नहीं था किन्तु जैसा कि देखा चुका है उनकी वाणी में काव्य की उच्चतम भूमि प्राप्त होती है। मस्ती की मौज ऊंचा उठकर कबीर ने अपने आत्मपरक अध्यात्म चिन्तन से जिस अलौकिक, अगम निराकार, ज्योति-स्वरूप ब्रह्म के दर्शन किये हैं, उसे वे सामान्य भाषा में व्यक्त क में असमर्थ हैं। वहाँ वाणी मूक और शैली अपनी मर्मद्योतक छवियां खो बैठती 'गूंगे केरी शर्करा' का वर्णन करें तो कैसे करें? किन्तु कबीर ब्रह्मानन्द रस के आन को अपनी परिधि में समेट कर नहीं रख सकते, उनकी वाणी अटपटे प्रतीकों, रूप और उलटवासियों का आश्रय ले उस परम सत्य को अभिव्यक्त करती है।

डा० गोविन्द त्रिगुणायत ने प्रतीक पद्धति का इतिहास प्रस्तुत करते लिखा है—"आध्यात्मिक विचारों की अभिव्यक्ति में वैदिक ऋषियों ने भी इस आश्रय लिया था। बृहदारण्यकोपनिषद् में ब्रह्म-वर्णन सूर्य, चन्द्र आदि के प्रतीकों किया गया है। वेदों में वर्णित कुछ विद्वान् सोमरस को निष्कलंक जानकर प्रत मानते हैं। भारत में प्रतीकपद्धति के विकास को सूफी की प्रतीकपद्धति से प्रेर मिली है।" किन्तु कबीर के प्रतीक सूफी परम्परा से प्रभावित नहीं, वे तो वैष्णवों आधार पर लिये गये हैं। यद्यपि सूफियों में भी दाम्पत्य प्रेम-प्रतीक का पर्याप्त व हुआ है किन्तु कबीर में प्रयुक्त दाम्पत्य भावना ईश्वर को पति रूप में मानने शुद्ध वैष्णवी है। एक पाश्चात्य विद्वान् का कथन है—

"Vashnawism is to worship God domestically."

कबीर ने अपनी भक्ति के लिए दाम्पत्य प्रतीक के साथ-साथ वात्सल्या प्रतीकों का भी आश्रय लिया है। यह भावना भी शुद्ध वैष्णवी है। कबीर ने दाम्प भावना के प्रतीकों द्वारा अपने प्रेम को बड़ी सुन्दर अभिव्यक्ति दी है। यथा—

"मेरे घर आये राजा राम भरतार।
तन रति कर में मन रति करिहों पांचों तत्त बराती।
रामदेव मोहे ब्याहन आये, मैं जोवन मदमाती॥"

इस आध्यात्मिक विवाह के पश्चात् दाम्पत्य प्रतीक के ही माध्यम से महामि के सुख का वर्णन किया गया है—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

"कियो सिंगार मिलन के ताईं, हरि न मिले जगजीवन गुसाईं।
हरि मेरा पीव मैं हरि की बहुरिया, रांम बड़े मैं छुटक लहुरिया।
धनि पिय एकै संग बसेरा, सेज एक पै मिलन दुहेरा।
धन्न सुहागिन जो पिय भावै, कहि कबीर फिरि जनम न पावै॥"

महामिलन के इस अनुपम सुख को ही नहीं अपितु विरह की विदग्ध-वेदना को भी दाम्पत्य प्रतीक के ही माध्यम से कबीर ने व्यक्त किया है—

"विरहनि ऊभी पंथ सिरि, पंथी बूझै धाई।
एक सबद कह पीव का, कबरै मिलैंगे आई॥"

इस आत्मा-परमात्मा के सम्बन्ध को कबीर ने पुत्र-पिता के प्रतीक द्वारा भी व्यक्त किया है—

"पिता हमारो बहु गुसाईं"

किन्तु पिता-पुत्र प्रतीक कबीर द्वारा इतना प्रयुक्त नहीं हुआ जितना माता-पुत्र प्रतीक। यह स्वाभाविक भी है। बालक का माता से जितना तादात्म्य होता है; माता से जो अपरिमित स्नेह उसे प्राप्त होता है वह पिता से नहीं—

"हरि जननी मैं बालक तोरा, काहे न औगुण बकसहु मोरा।
सुत अपराध करैं दिन केते, जननी के चित रहैं न तेते।
कर गहि केस करे जो घाता, तऊ न हेत उतारै माता।
कहै कबीर एक बुद्धि विचारी, बालक दुखी दुखी महतारी॥"

दास्य-भावना की अभिव्यक्ति के लिए कबीर भावाकुल हो कुत्ते तक के प्रतीक पर उतर आते हैं—

"कबीर कूता राम का, मुतिया मेरा नाउं।
गले राम की जेवड़ी, जित खींचें तित जाउं॥

त्रिगुणायत जी ने कबीर के प्रतीकों का विभाजन निम्नस्थ चार वर्गों में किया है, इन्हीं शीर्षकों के अन्तगत उनके प्रतीकों का अध्ययन यहाँ प्रस्तुत है—

१. साँकेतिक प्रतीक,
२. पारिभाषिक प्रतीक,
३ संख्यामूलक प्रतीक,
४. रूपात्मक प्रतीक,

साँकेतिक प्रतीक—

इन प्रतीकों में कबीर ने संकेत द्वारा साधना—हठयोगी साधना के विभिन्न सोपानों का वर्णन किया है। सिद्धों और नाथों की परम्परा से प्राप्त इन प्रतीकों की कबीर-काव्य में प्रचुरता है

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

"आकासे मुखि औंधा कुवां, पाताले पनिहारि।
ताका पाणि को हंसा पीवें, बिरला आदि विचारि॥

किन्तु इन प्रतीकों में जैसा कि कहा जा चुका है, कोई मौलिकता नहीं।

पारिभाषिक प्रतीक—

वस्तुत: पारिभाषिक और सांकेतिक प्रतीकों में कोई विशिष्ट अन्तर है क्योंकि सांकेतिक प्रतीक और पारिभाषिक प्रतीक दोनों ही साधनामूलक स्था क्रियाओं का बोध कराते हैं। अत: इनका वर्णन कबीर ने नाथों आदि के अनु पर यथावत् किया है। अत: सांकेतिक प्रतीक और पारिभाषिक प्रतीक दोनों को एक 'साधनापरक प्रतीक' में अन्तर्भूत किया जा सकता है। कबीर ने जिन पारिभा प्रतीकों का वर्णन किया है उसमें सूर्य, चन्द्र, गंगा, यमुना, कुण्डलिनी आ प्रमुख हैं—

"मन लागा उनमन्न सों, गगन पहुंचा जाइ।
देख्या चन्द बिहूंणा चांदिणां, तहां अलख निरन्जन राइ॥"

× × ×

"गगन गरजि अमृत चबै, कदली कवल प्रकास।
तहां कबीरा बंदिगी, कै कोई निज दास॥"

संख्यामूलक प्रतीक—

संख्यामूलक प्रतीकों द्वारा भी कबीर ने साधनात्मक स्थितियों आदि वर्णन किया है —

"नौ पौरी पर दसवं दुवारा, तापर ज्ञान जोति उजियारा।

× × ×

"चौसठ दीया जोय के चौदह चन्दा मांहि।
तेहि घर किसका चानड़ो, जेहि घर गोविंद नांहि॥

रूपात्मक प्रतीक—

कबीर ने अपनी रूपक योजना में भी बहुत से प्रतीक प्रयुक्त किये हैं—

"काहे री नलिनी तू कुमिलानी। तेरे ही नाल सरोवर पानी।
जल उत्पति जल में वास। जल में नलिनी तोर निवास।
ना तलि तपति न ऊपर आगे। तोर हेत कहु कासनि लागी।
कहैं कबीर जे उदिक समान। ते नहीं मूए हमारे जान॥"

इस प्रकार हम देखते हैं कि कबीर ने अपने प्रतीकों द्वारा रहस्यमयी अनुभू साधना की गोप्यतम बातों को सरल रूप में हमारे सम्मुख रखा है। यद्यपि आज

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रतीक हमें कुछ दुरूह भी प्रतीत होते हैं किन्तु उस समय ये सर्वसाधारण में प्रचलित थे।

कबीर की उलटवासियों पर विचार करने से पूर्व उसके अर्थ और परम्परा पर भी विचार कर लेना समीचीन होगा। 'उलटवांसी शब्द का अर्थ सामान्यतः उलटा अर्थ लिया जाता है किन्तु यह अर्थ और परिभाषा कुछ भ्रम में डाल देने वाली है। इसके दो अर्थ लगाये जा सकते हैं, प्रथम तो "जैसा कि अर्थ वास्तव में प्रकट है उससे उल्टा लगाया जाय" दूसरे "जो प्रतिपाद्य का वास्तविक अर्थ है, उससे उल्टा समझा जाय।" श्री परशुराम चतुर्वेदी जी ने इस शब्द का अर्थ दो प्रकार से किया है। एक स्थान पर उन्होंने इस शब्द में 'उल्टा' और 'अंश' शब्द की सन्धि मानी है। एक अन्य प्रकार से दूसरी व्याख्या करते हुए वे कहते हैं "उलटवांसी शब्द के इस अर्थ का समर्थन उसे 'उलटा' एवं 'बाँस' शब्दों द्वारा निर्मित मानकर भी किया जा सकता है, जिस दिशा में उसका ठीक-ठीक शब्दार्थ वैसी रचना के अनुसार होगा जिसका बाँस (पार्श्वभाग अथवा अंग) उल्टा या विपरीत ढंग का पाया जाये।"

किन्तु चतुर्वेदी से अधिक सन्तोषजनक परिभाषा और अर्थ के स्पष्टीकरण का प्रयत्न डा० सरनामसिंह जी के द्वारा हुआ है। उनका कथन है—"मेरी समझ में इस शब्द की दो व्युत्पत्तियाँ हो सकती हैं—एक तो 'उलटवाँ-सी' संयुक्त शब्द से और दूसरी 'उलटवां' से सम्बन्धित। पहले शब्द 'उलटवां' का अर्थ उलटी हुई, है और 'सी' का अर्थ समान है, अतएव 'उलटवाँसी' का अभिप्राय हुआ 'उलटी हुई प्रतीत होने वाली उक्ति'। उलटवाँसियों में उलटी बातें कही गई हैं, इसलिए यह अर्थ उचित भी प्रतीत होता है। गोरखनाथ का 'उलटी चर्चा' और कबीर का 'उलटा वेद' आदिक प्रयोग इस अर्थ का भी समर्थन करते हैं।"

"दूसरी व्युत्पत्ति कुछ विशेष ध्यान देने योग्य है और वह है 'उलटवांस' शब्द से। 'परमपद' या आध्यात्मिक-लोक में रहने वाला निवासस्थान वास्तव में 'उलटवाँस' है। इससे सम्बन्धित वाणी 'उलटवाँसी' वाणी कहला सकती है। आध्यात्मिक अनुभूतियां लोक-विपरीत अनुभूतियाँ होती हैं और उन अनुभूतियों को व्यक्त करने वाली वाणी लोक दृष्टि से उलटी प्रतीत होती है, वास्तव में वह उलटी होती है। इस शब्द में 'वां' के ऊपर जो सानुनासिकता दिखाई पड़ती है वह अकारण है।"

वस्तुतः शर्मा जी ने जो दोनों परिभाषाएं या व्याख्याएं दी हैं वे अत्यन्त संगत हैं। वीर-काव्य लोक-काव्य के अधिक निकट अथवा दूसरे शब्दों में यह कहें कि वह सुसंस्कृत लोक साहित्य है। डा० साहब की व्याख्याएं भी लोक-काव्य-प्रवृत्ति के अनुरूप ही हैं।

यदि उलटबाँसी परम्परा पर दृक्पात करें तो विद्वानों ने वेदों में भी उलटबांसी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शैली की अवस्थिति मानी है। ऋग्वेद से उदाहरण प्रस्तुत करते हुए विद्वानों मुख्यतया निम्नलिखित उदाहरण प्रस्तुत किये हैं—

"अपादेति प्रथमा पद्वनीनां कस्तद्वां मित्रावरुणा चिकेत,"[1]

("बिना पैरों वाली पैरोंवाली से पहले आ जाती है, मित्रावरुण इस को नहीं जानते।" ऋग्वेद २-१-१५२—३)

"चत्वारि श्रृंगा त्रयोऽस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य। त्रिधा वृषभो रोरवीति"[2]

(इस बैल के चार सींग, तीन चरण, दो सिर और सात हाथ हैं, यह प्रकार से बंधा हुआ उच्च शब्द करता है। ऋग्वेद ३-४-५८—३)

"इदं बपुर्निवचनं जनासश्चरान्त यन्नद्यस्तस्थुराप:"[3]

(हे मनुष्यो! यह वपु निर्वचन है क्योंकि इसमें जल स्थिर है और नहीं बहती हैं। —ऋग्वेद ४-५-४-७-५)

वेदों से उदाहरण प्रस्तुत करते हुए डा० त्रिगुणायत जी ने निम्नस्थ उदाहरण प्रस्तुत किया है—

कं इमं वो नृण्य आचिकेत, वत्सो मातृर्जनयति सुधाभि:।"

—ऋग्वेद १-१-७-५ मंत्र

अथर्ववेद आदि में भी इसी प्रकार के उदाहरण खोजे गये हैं।

वेदों के पश्चात् उपनिषदों द्वारा इस शैली का और भी अधिक वि हुआ। उपनिषदों ने, ब्रह्म के बिलक्षण स्वरूप कथन में जहाँ उसे विरुद्धधर्मी बता गया है, किया है। बृहदारण्यकोपनिषद्, ईशोपनिषद्, कठोपनिषद् आदि में उदाहरण पर्याप्त हैं।

उपनिषदों से विचित्र कथन की यह प्रणाली सिद्धों, नाथों आदि में आ सिद्धों और नाथों ने अपनी साधना की विचित्रता और गुह्यता प्रकट करने के ऐसी उक्तियों का खूब प्रयोग किया। वास्तव में सिद्ध और नाथ सम्प्रदाय बौद्ध-धर्म विकृतावस्था से विकसित हुए थे और बौद्ध-धर्म के ग्रंथों में भी उलटबाँसी शैली प्रयोग प्राप्त होते हैं। अत: उसी धर्म से निकलने वाले सिद्धों में स्वाभाविक रूप से विचित्र उक्तियाँ आ गई हैं। कबीर ने कहीं-कहीं तो सिद्धों और नाथों की उक्ति को यथावत् रख दिया है। यथा—

"बैल बियाअल, गविया बांझै।"

× × ×

"बरसै कम्बल भीगै पानी।

× + ×

"नाव बिच नदिया डूबी जाय।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ये उक्तियाँ कबीर और सिद्धों आदि में समान रूप से प्राप्त होती हैं। दाचित् इसका कारण इन उक्तियों का साधारण जनता में अत्यधिक प्रचलन था। ाज भी ग्राम्य समाज में (ग्राम्य से यहाँ असभ्य समाज का तात्पर्य किंचित् भी हीं है) "हप्प सुनो भई गप्प, नाव बिच नदिया डूबी जाय" जैसी उक्तियाँ सुनने ो मिल जाती हैं। कुछ लोकोक्तियों में भी इन उलटवाँसियों की छाया शेष रह ई है। यथा--

"जो बैल ब्याहै नाय तो, बूढ़ो ना होय।"

कहने का तात्पर्य यह है कि कबीर के समय तक इस प्रकार की उक्तियों ा पर्याप्त प्रचलन हो गया था। किन्तु आश्चर्य की बात यह है कि इतने प्राचीन मय से प्रयुक्त इस विचित्र, उलटी शली का नाम कबीर से पूर्व कहीं भी प्राप्त नहीं ोता। डा० सरनामसिंह जी का कथन है कि "इस शब्द को हम कबीर से पहले ा नहीं मान सकते। यह कबीर से पहले का नहीं हो सकता क्योंकि पहले का ोने पर कबीर की वाणी में कहीं न कहीं इसका उपयोग होता अथवा अन्यत्र यह ब्द मिलता। जब शब्द का प्रयोग कबीर वाणी में नहीं मिलता तो अवश्य ही इस ा जन्म कबीर के बाद में हुआ है और वह भी किसी ऐसे व्यक्ति की वाणी में जिसने सका अभिप्राय समझा हो। बहुत सम्भव है कि यह शब्द बहुत प्राचीन न हो क्योंकि ाद के संतों में भी इसका प्रयोग मिलता है।"

हम डा० सरनामसिंह जी के इस मत से सहमत नहीं कि 'कबीर की उलट- ाँसियाँ सिद्धों की परम्परा की उलटवांसियाँ नहीं हैं।" क्योंकि ऊपर उदाहरण देकर खाया जा चुका है कि कुछ उक्तियाँ सिद्धों और कबीर में यथावत् मिलती हैं। दूसरे ठयोगी साधना को सिद्धों और नाथों की परम्परा से लेने वाले कबीर पर उनकी लटबाँसी शैली का प्रभाव अवश्य ही पड़ा होगा।

विद्वानों ने कबीर की उलटबांसियों के प्राय ३ वर्ग किये हैं—

१. अलंकार प्रधान,

२. अद्‌भुत प्रधान,

३. प्रतीक प्रधान।

अलंकार प्रधान—जैसा कि पहले कहा जा चुका हैं, इन उलटबांसियों में धिकाँशतः विरोधी बातें ही रहती हैं। अतः इनमें प्रयुक्त अलंकार भी विरोधमूलक जो किसी न किसी रूप से आश्चर्य की सृष्टि करते हैं। इन अलंकारों में विरोधा- ास, असंभव, विभावना, असंगति, विषम आदि का प्राधान्य रहता है। विरोधाभास ा उदाहरण देखिए—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

"अवधू ऐसा ग्यान विचारं ।
भेरं चढ़े सु अधधर डूबै, निराधार भये पारं ।
ऊघट चले सु नगरि पहूंचे, बाट चले ते छूटे ।
एक जेबड़ी सब लपटानै, के बांधे के छूटे ।
मन्दिर पैसि चहुंदिस भीगे, बाहर रहे ते सूका ।
सीर भारे ते सदा सुखारे, अनभारे ते दूषा ।
बिन नैनन के सब जग देखैं, लोचन अछते अंधा ।
कहै कबीर कछु समझि परी है, यह जग देख्या धंधा ।

उपर्युक्त पद के उत्तरार्द्ध में "बिन नैनन.........अंधा" में विभाव उदाहरण भी प्राप्त हो जाता है। किन्तु कहीं कहीं सम्पूर्ण पद में ही विभाव स्थिति रहती है। ब्रह्म निरूपण करते हुए वे कहते हैं—

"बिन मुख खाइ चरन बिन चालै, बिन जिभ्या गुण गावै ।
आछै रहै ठौर नहीं छाड़ै, दह दिसिहि फिरि आवै ।
बिनही तालां ताल बजावै, बिन मंदल पट ताला ।
बिनही सबद अनाहद बाजै, तहां निरतत हैं गोपाला ॥"

विषम अलंकार—

"तालि चुगैं बन तीतर लउवा, परबति चरै सौरा मछा ।
बन की हिरनी कूवै बियानी, ससा फिरै अकासा ॥
ऊंट मारि में चारै लावा, हस्ती तरंडवा देई ।
बबूर की डरियां वनसी लैहूं, सीयरा भूंकि-भूंकि षाई ॥"

अद्भुत प्रधान उलटबाँसी—

अद्भुत प्रधान उलटबांसियों में अदभुत रस की ही विशेष प्रतिष्ठा कथन में हुई है। यद्यपि अलंकार और प्रतीकों की भी स्थिति ऐसे कथनों में भाविक रूप से रही है किन्तु प्रमुखता अद्भुत रस की ही रहती है—

"डाल गह्या थैं मूल न सूझै, मूल गह्या फल पावा ।
बंबई उलटि शर मौ लावी, धरणि महारस खावा ।
बैठि गुफा में सब जग देख्या, बाहरि कछू न सूझै ।
उलटे धनकि पारधी मार्यो, यहु अचिरज कोई बूझै ।
× × ×
अंबर बरसै धरती भीजै, यहु जाणै सब कोई ।
धरती बरसै अंबर भीजै, बूझै बिरला कोई ॥"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ीक-प्रधान उलटबांसी—

प्रतीकात्मक उलटबाँसियों में कबीर ने साधना के निगूढ़ रहस्यों को प्रायः
ॅ आदि के द्वारा कहा है। इन रूपकों में किसी स्थान पर रूपक प्रधान है और
रूपक प्रधान न होकर प्रतीक प्रधान। निम्नस्थ उदाहरण में रूपक प्रधान है—

"तरवर एक अनन्त मूरति, सुरताँ लेहु पिछाणीं।
साखा पेड़ फूल फल नाहीं, ताकी अमत वाणी।
पुहुप बास एक भंवरा राता, बारा लै उर धरिया।
सोलह मंझै पवन झकोरै, आकासे फल फलिया॥
सहज समाधि विरष यहु सींच्या, धरती जल हर सोष्या।
कहै कबीर तास मैं चेला, जिनि यहु तरवर पेष्या॥"

अब एक उदाहरण से हम यह स्पष्ट करेंगे कि कबीर की उक्तियों में कहीं-
प्रतीक ही प्रधान है, ऐसे स्थानों पर रूपक-योजना गौण हो जाती है, यथा—

"है कोई जगत गुर ग्यानीं,, उलटि बेद बूझै।
पाणी में अगनि जरै, अंधरे कौं सूझै॥
एकनि दादुर खाये पंच भवंगा।
गाइ नाहर खायौ, हरनि खायौ चीता।
कागिल गर फंदिया, बटेरै बाज जीता॥
मूसै मंजार खायौ, स्यालि खायौ स्वाना।
आदि को आदेश करत, कहै कबीर ग्याना॥",

इस प्रकार स्पष्ट है कि कबीरदास जी के प्रतीक और उलटवांसियों में प्रेम के
त रहस्य और ज्ञान का अपरिमित कोष भरा पड़ा है।

कबीर का रहस्यवाद

मानव में जबसे ज्ञान—बुद्धि—नामक तत्त्व की स्थिति हुई तभी से उसकी
न-प्रक्रिया में सृष्टि के उद्गम और अपने मूल के सम्बन्ध में जिज्ञासा रही है।
जब इस सृष्टि नियन्ता के स्वरूप की गुत्थी को ज्ञान का आश्रय लेकर सुलझाने
यास किया तब यह दर्शन का विषय बन गया किन्तु जब इसे कवि ने समझने
यास कर अपने अनुभवों को वाणी की विशेष पद्धति में अभिव्यक्त किया तब
रहस्यवाद' कहा गया। संसार का लगभग प्रत्येक श्रेष्ठ कवि किसी न किसी
में रहस्यवादी होता है क्योंकि जन-मानव की भावनाएं कवि के द्वारा अभिव्यक्ति

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पाती हैं। अमेरिकन प्रो० प्रॉट (Prof. Prat) का कथन उचित ही है कि "I poet has at least a touch of mysticism." विद्वानों ने रहस्यवाद की भिन्न-भिन्न प्रकार से की है। आचार्यप्रवर रामचन्द्र शुक्ल जी का कथन ज्ञान के क्षेत्र में जिसे अद्वैतवाद कहते हैं, भावना के क्षेत्र में वही रहस्यवाद कह है।" किन्तु डा० सरनामसिंह शर्मा जी का मत इससे भिन्न है। शुक्ल जी के की आलोचना करते हुए उन्होंने कहा है—"यह कहना कुछ विशेष समीची दीख पड़ता कि 'जो ज्ञान के क्षेत्र में अद्वैतवाद कहलाता है, वही भावना के में रहस्यवाद' कहलाता है।' क्योंकि भावना के अतिरिक्त रहस्यवाद का अभिव्यक्ति के एक विशेष रूप से भी तो है जिसमें शब्द का अपना अर्थ और संकेत होता है।" आप रहस्यवाद की अपनी परिभाषा देते हुए कहते हैं—" अनुभूति की प्रतीकाश्रित अभिव्यक्ति साहित्य में 'रहस्यवाद' नाम पाती है। रह कोई दार्शनिकवाद न होकर वस्तुतः साहित्यिकवाद है जिसका लक्षण है प्रे अद्वैतानुभूति एवं प्रतीकाश्रयी सांकेतिक अभिव्यक्ति।"

डा० रामकुमार वर्मा जी के अनुसार "रहस्यवाद जीवात्मा की उस अ प्रवृत्ति का प्रकाशन है जिसमें वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शा निश्छल सम्बन्ध जोड़ना चाहती है, और 'यह सम्बन्ध यहाँ तक बढ़ता जाता दोनों में कुछ भी अन्तर नहीं रह जाता। जीवात्मा की सारी शक्तियाँ इसी के अनन्त वैभव और प्रभाव से ओत-प्रोत हो जाती हैं। जीवन में केवल उसी शक्ति का तेज अन्तर्हित हो जाता है और जीवात्मा अपने अस्तित्व को इस से भूल सा जाती है। एक भावना, एक वासना हृदय में प्रभुत्व प्राप्त कर और यह भावना सदैव जीवन के अंग-प्रत्यंगों में प्रकाशित होती रहती है। यह संयोग है।" यहाँ हम डा० वर्मा की अन्य सब बातों से तो सहमत हैं किन्तु से बात से नहीं क्योंकि यदि आत्मा अपने पृथक् अस्तित्व को भूल जाय तो वहां वाद का प्रश्न ही नहीं उठता। आत्मा परमात्मा का अंश होते हुए भी उससे है और यह पार्थक्य-बोध ही उसे प्राप्त करने का या रहस्यात्मक अनुभूति का मैं 'अज्ञेय' जी के इस कथन से पूर्ण सहमत हूं कि—

"द्वैतत्व की सत्ता न हो तो प्रेम क्या जीता रहेगा ?"

हां ! यह अवश्य मानना होगा कि आत्मा और परमात्मा का यह द्वैतत्व है और रहस्यवाद की चरम परिणति, चरम उपलब्धि, अन्तिम सोपान मिलन अतः जीवात्मा रहस्यवाद के अन्तिम सोपान पर ही पहुंच अपने अस्तित्व को है, वहां पार्थक्य नहीं रहता। यहां 'अहम्' और 'इदम्' की सीमाओं का क्रम होता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

श्री परशुराम चतुर्वेदी जी का कथन है कि "रहस्यवाद शब्द काव्य की धारा विशेष को सूचित करता है। वह प्रधानतः उसमें लक्षित होने वाली उस अव्यक्ति की ओर संकेत करता है, जो विश्वाभक्त सत्ता की प्रत्यक्ष, गम्भीर एवं अनुभूति के साथ सम्बन्ध रखती है। इस अनुभूति का वास्तविक आधार अन्त-य हुआ करता है जो वैयक्तिक चेतना का मूल स्रोत है और इसमें 'अहम्' एवं म्' की भावना का क्रमशः लोप हो जाता है।"

"काव्य में आत्मा की संकल्पात्मक मूल अनुभूति की मुख्य धारा रहस्यवाद "—जयशंकर प्रसाद

एक लेखक का कथन है कि "रहस्यवाद वैराग्य मिश्रित अनुराग है, वैराग्य ट से और अनुराग ब्रह्म से।" किन्तु यह परिभाषा भक्ति और रहस्यवाद के र का स्पष्टीकरण नहीं करती। डा० त्रिगुणायत जी ने ज्ञान, भक्ति और रहस्य-का अंतर स्पष्ट करते हुए कहा है "बुद्धि के सहारे आध्यात्मिक सत्य का पण करना ज्ञान है। भावना और प्रेम के सहारे ब्रह्म के आधिदैविक स्वरूप की सना भक्ति है। रहस्यवाद इन दोनों से भिन्न है। जब साधक भावना के सहारे यात्मिक सत्ता की रहस्यमयी अनुभूतियों को वाणी के द्वारा शब्दमय चित्रों में कर रखने लगता है, तभी साहित्य में रहस्यवाद की सृष्टि होती है।"

वस्तुतः रहस्यवाद साहित्यकार की ईश्वरविषयक प्रेममय अनुभूतियों की अभिव्यक्ति है जिसका निरूपण साधारण भाषा की क्षमता से परे है। अतः अभिव्यंजना को स्वभावतः ही प्रतीकात्मकता का आश्रय लेना पड़ता है। 'गूंगे सर्करा' का वर्णन तो प्रतीकों के इंगितों में ही हो सकता है।

भारतीय परम्परा में रहस्यवाद की सर्वप्रथम झलक यद्यपि कुछ लोग वेदों में ते हैं किन्तु वैदिक मन्त्रो एवं प्रार्थनाओं में विशुद्ध रहस्यवाद जैसी वस्तु नहीं ती। वहां तो देवताओं से अपने कल्याण की प्रार्थना और विनय ही प्रमुख है। कहीं-कहीं ईश्वर से पिता आदि के संबन्ध भी जोड़े गये हैं किन्तु फिर भी आत्मा परमात्मा से वह उत्कट प्रेम व्यंजित नहीं होता जो रहस्यवाद की प्रमुख प्रवृत्ति। वेद-मन्त्रों में स्थापित संबंधों में रक्षा और कल्याण की भावना का ही प्राधान्य। उपनिषदों में आकर अद्वैतवाद के प्रतिपादन से रहस्यवादी परम्परा का रम्भ होता है किन्तु वहां भावनात्मक माधुर्य के दर्शन न होकर दर्शन की क ज्ञानात्मक गुत्थी ही अधिकांशतः सुलझायी गयी है। कहीं-कहीं उनमें विशुद्ध स्यवादी प्रवृत्ति के अनुकूल भावोन्मेष भी है। सर्वप्रथम गीता के दशम अध्याय में त्मक प्रणाली पर सर्ववाद का निरूपण हुआ है, जो रहस्यवाद का ही एक है—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

"महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा।
मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः।।
एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्वतः।
सोऽविकम्पेन योगेन युज्यते नात्र संशयः।।
अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः।।
मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च।।
तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते।।"

तदनन्तर सिद्धों और योगियों की वाणी में भी रहस्य भावना के दर्शन हैं किन्तु वहां भावना से प्रमुख साधना है। सूफियों और (संतों में) कबीर द्वारा ही सर्वप्रथम रहस्यवाद को प्रेम की मधुर भावना प्राप्त होती -भक्ति युग के पश्चात् रहस्यवाद के दर्शन आधुनिक युग में छायावादी कवि ही होते हैं। किन्तु छायावादी काल की रहस्यवादी कविता पूर्व-यु रहस्यवादी रचनाओं से कुछ विभिन्न है। यहाँ कल्पना का आधिक्य है जबकि कालीन रहस्यवाद में साधनात्मक अनुभूति का। उन मध्यकालीन रहस्यवादी की साधना प्रेम-साधना और यौगिक साधना—दोनों ही प्रकार की है।

कबीर के रहस्यवाद में अद्वैती और सूफीमत की गंगा-जमुनी धारा प्र है यद्यपि उसमें प्रमुख अद्वैती गंगा-धारा ही है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी जै विद्वान् उस पर किंचित् भी सूफी प्रभाव नहीं मानते किन्तु, जैसा कि कबीर प वाले प्रभावों पर विचार करते समय देखा जा चुका है कि प्रेम-पीर की व्यं सूफियों का प्रभाव कबीर पर अवश्य परिलक्षित होता है। कबीर में कहीं जाल आश्रित ब्रह्म का वर्णन नहीं—इसका कारण यही है कि कबीर ने अनुभूति को ही वाणी का रूपाकार दिया था। अनुभवैकगम्यता के कारण विचित्रता आना स्वाभाविक था। इसलिए वह ब्रह्म इन्द्रियातीत अगम्य है भी गम्य है। वह प्रेम से प्राप्य है। उन्होंने उस परमात्मा के विरह में बड़ी सुन्दर मनोभावनाओं की अभिव्यक्ति की है। उनकी आत्मा ने प्रियतमा के ही प्रिय के लिए प्रतीक्षा की है—

"बहुत दिनन की जोवती, बाट तुम्हारी राम।
जिव तरसै तुझ मिलन कूं, मनि नहीं विश्राम।।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कबीर की विरह-वेदना इतनी बढ़ गई है कि वह अवर्णनीय हो गई है। अतः उसे तो केवल दो ही जान सकते हैं, एक तो वह जिसके वियोग में यह व्यथा भोगनी पड़ रही है और दूसरा वह (आत्मा) जो इस व्यथा को सह रहा है—

"चोट सताँणी बिरह की, सब तन जर-जर होइ।
मारणहारा जांणि है, कै जिहिं लागी सोइ॥"

अपने शरीर को, जो विरह-व्यथा से जर्जर है, विरहिणी (आत्मा) प्रिय (परमात्मा) के लिए न जाने कौन-कौन से कष्ट देने के लिए तत्पर है। वह अपने समस्त शरीर को दीपक कर अपने प्राणों की वर्तिका बना और शरीर का रक्त ही उसमें तेल के रूप में डाल प्रियतम का मुख देखने के लिए आतुर है—

"इस तन का दीवा करौं, वाती मेल्यूं जीव।
लोही सींचौं तेल ज्यूं, कब मुख देखों पीव॥"

इस प्रेमी की मनः स्थिति बड़ी विचित्र है क्योंकि यह मूर्ख संसार तो उसे पागल समझता है। यदि प्रिय-वियोग में अहर्निश रोते-रोते उसके नेत्र लाल हो गये हैं तो लोग उसे आँख दुखने की बीमारी से अधिक कुछ नहीं समझते—

"आंषणियां प्रेम कसाइयां, लोका जाणैं दुखणियां।
साईं अपने कारणैं, रोइ रोइ रातणियां॥"

किन्तु विरहिणी रोवे भी कहाँ तक, आखिर उसकी भी तो शक्ति की सीमा है, अतः यदि वह मौन अथवा प्रसन्न रहे तो प्रियतम समझेंगे कि अब तो इसकी वृत्ति संसार में उलझ गई और यह व्यभिचारिणी हो गई। अतः ऐसी स्थिति में मन ही मन घुन के समान पिसने के अतिरिक्त चारा ही क्या है?—

"जो रोऊं तौ बल घटे, हँसौं तो राम रिसाइ।
मन ही मांहि बिसूरणां, ज्यूं घुण काठहि खाइ॥"

विरहिणी यह भी जानती है कि हंस-हंसकर कोई भी प्रिय को नहीं पा सका; जो कोई भी पाता है रोकर ही—

"हंसि हंसि कन्त न पाइया, जिन पाइया तिनि रोइ।
जे हांसे ही हरि मिलै, तौ नहीं दुहागिनि कोइ।"

यदि कोई प्रिय के लिए संदेश-प्रेषण का प्रश्न उठाता है तो विरहिणी कितना सुन्दर उत्तर देती है—

"प्रियतम कूं पतियां लिखूं, जो कहीं होय विदेस।
तन में, मन में, नैन में, ताको कहा संदेस॥"

और फिर विरहिणी प्रिय-दर्शन के लिए प्रत्येक सम्भव-असम्भव कार्य करने को प्रस्तुत है। संसार की कोई भी बाधा उसके सम्मुख खड़ी नहीं रह सकती। दूसरे शब्दों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

"महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा।
मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः ॥
एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्वतः।
सोऽविकम्पेन योगेन युज्यते नात्र संशयः ॥
अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः ॥
मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ॥
तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥"

तदनन्तर सिद्धों और योगियों की वाणी में भी रहस्य भावना के दर्श[illegible] हैं किन्तु वहां भावना से प्रमुख साधना है। सूफियों और (संतों में) कवि[illegible] द्वारा ही सर्वप्रथम रहस्यवाद को प्रेम की मधुर भावना प्राप्त होती[illegible] -भक्ति युग के पश्चात् रहस्यवाद के दर्शन आधुनिक युग में छायावादी क[illegible] ही होते हैं। किन्तु छायावादी काल की रहस्यवादी कविता पूर्व-यु[illegible] रहस्यवादी रचनाओं से कुछ विभिन्न है। यहाँ कल्पना का आधिक्य है जबकि[illegible] कालीन रहस्यवाद में साधनात्मक अनुभूति का। उन मध्यकालीन रहस्यवादी[illegible] की साधना प्रेम-साधना और यौगिक साधना—दोनों ही प्रकार की है।

कबीर के रहस्यवाद में अद्वैती और सूफीमत की गंगा-जमुनी धारा प्र[illegible] है यद्यपि उसमें प्रमुख अद्वैती गंगा-धारा ही है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी जै[illegible] विद्वान् उस पर किंचित् भी सूफी प्रभाव नहीं मानते किन्तु, जैसा कि कबीर प[illegible] वाले प्रभावों पर विचार करते समय देखा जा चुका है कि प्रेम-पीर की व्यं[illegible] सूफियों का प्रभाव कबीर पर अवश्य परिलक्षित होता है। कबीर में कहीं [illegible] जाल आश्रित ब्रह्म का वर्णन नहीं—इसका कारण यही है कि कबीर ने[illegible] अनुभूति को ही वाणी का रूपाकार दिया था। अनुभवैकगम्यता के कारण[illegible] विचित्रता आना स्वाभाविक था। इसलिए वह ब्रह्म इन्द्रियातीत अगम्य है[illegible] भी गम्य है। वह प्रेम से प्राप्य है। उन्होंने उस परमात्मा के विरह में बड़ी[illegible] सुन्दर मनोभावनाओं की अभिव्यक्ति की है। उनकी आत्मा ने प्रियतमा के[illegible] ही प्रिय के लिए प्रतीक्षा की है—

"बहुत दिनन की जोवती, बाट तुम्हारी राम।
जिव तरसै तुझ मिलन कूं, मनि नहीं विश्राम ॥"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कबीर की विरह-वेदना इतनी बढ़ गई है कि वह अवर्णनीय हो गई है। अतः उसे तो केवल दो ही जान सकते हैं, एक तो वह जिसके वियोग में यह व्यथा भोगनी पड़ रही है और दूसरा वह (आत्मा) जो इस व्यथा को सह रहा है—

> "चोट सताँणी विरह की, सब तन जर-जर होइ।
> मारणहारा जांणि है, कै जिहिं लागी सोइ॥"

अपने शरीर को, जो विरह-व्यथा से जर्जर है, विरहिणी (आत्मा) प्रिय (परमात्मा) के लिए न जाने कौन-कौन से कष्ट देने के लिए तत्पर है। वह अपने समस्त शरीर को दीपक कर अपने प्राणों की वर्तिका बना और शरीर का रक्त ही उसमें तेल के रूप में डाल प्रियतम का मुख देखने के लिए आतुर है—

> "इस तन का दीवा करौं, वाती मेल्यूं जीव।
> लोही सींचौं तेल ज्यूं, कब मुख देखों पीव॥"

इस प्रेमी की मनः स्थिति बड़ी विचित्र है क्योंकि यह मूर्ख संसार तो उसे पागल समझता है। यदि प्रिय-वियोग में अहर्निश रोते-रोते उसके नेत्र लाल हो गये हैं तो लोग उसे आँख दुखने की बीमारी से अधिक कुछ नहीं समझते—

> "आंषणियां प्रेम कसाइयां, लोका जाणें दुखणियां।
> साईं अपने कारणें, रोइ रोइ रातणियां॥"

किन्तु विरहिणी रोवे भी कहाँ तक, आखिर उसकी भी तो शक्ति की सीमा है, अतः यदि वह मौन अथवा प्रसन्न रहे तो प्रियतम समझेंगे कि अब तो इसकी वृत्ति संसार में उलझ गई और यह व्यभिचारिणी हो गई। अतः ऐसी स्थिति में मन ही मन घुन के समान पिसने के अतिरिक्त चारा ही क्या है?—

> "जो रोऊं तौ बल घटे, हँसौं तो राम रिसाइ।
> मन ही मांहि बिसूरणां, ज्यूं घुण काठहि खाइ॥"

विरहिणी यह भी जानती है कि हंस-हंसकर कोई भी प्रिय को नहीं पा सका; जो कोई भी पाता है रोकर ही—

> "हंसि हंसि कन्त न पाइया, जिन पाइया तिनि रोइ।
> जे हांसे ही हरि मिलै, तौ नहीं दुहागिनि कोइ।"

यदि कोई प्रिय के लिए संदेश-प्रेषण का प्रश्न उठाता है तो विरहिणी कितना सुन्दर उत्तर देती है—

> "प्रियतम कूं पतियां लिखूं, जो कहीं होय विदेस।
> तन में, मन में, नैन में, ताको कहा संदेस॥"

और फिर विरहिणी प्रिय-दर्शन के लिए प्रत्येक सम्भव-असम्भव कार्य करने को प्रस्तुत है। संसार की कोई भी बाधा उसके सम्मुख खड़ी नहीं रह सकती। दूसरे शब्दों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

में, वहाँ तो प्रिय के अतिरिक्त प्रेमी को कुछ सूझता ही नहीं, अतः संसार-सत्ता उ लिए नष्ट हो जाती है। इसलिए वह कहती है—

"फाड़ि पुटोला धज करौं, कामड़िली पहिराउं।
जिहि जिहि भेषाँ हरि मिलैं, सोइ सोइ भेष कराउं ॥"

प्रिय-मिलन की इस आकुलता और प्रेम की चरम-परिणति से विरहिणी प्रिय-दर्शन से पूर्व उसको पाते ही विरहिणी की जो विचित्र मनः स्थिति होती है उस भी कबीर ने वर्णन किया है—

"थरहर थरहर कंपे जीव, ना जानूं का करिहै पीव।
कौवा उड़ावत मेरी बहियां पिरांनी, कहै कबीर मेरी कथा सिरानी ॥"

आत्मा-परमात्मा के साक्षात्कार—मिलन—के चित्र भी कबीर ने बड़ी र णीयता से प्रस्तुत किए हैं—

"कबीर तेज अनंत का मानो ऊगी सूरज सेणि।
पति संग जागी सुन्दरी, कौतिग दीठा तेणि ॥"

वास्तव में उस प्रिय का तेज इतना अलौकिक. ज्योतिष्मान् है कि उसका व असम्भव है। साक्षात्कार की उस अनुभूति को यदि कवि वर्णन कर दे तो फिर एक प्रकार से सब ही उस आनन्द को प्राप्त कर लें। महामिलन की अनुभूति का व करने का जब कवि प्रयास करता है तो जिह्वा लड़खड़ा जाती है और वह उस की केवल सीमाएं, परिधियाँ ही छू पाता है—

"पारब्रह्म के तेज का, कैसे है उनमान।
कहिबे कूं सीमा नहीं, देख्या ही परवान ॥"

और अब आत्मा-परमात्मा, अंश-अंशी, अग्नि-स्फुलिंग की द्वैत भावना अन्त हो गया। 'अहम्' ने 'इदम्' में पर्यवसान पा लिया—

"जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहिं।
सब अंधियारा मिटि गया, जब दीपक दीख्या मांहि ॥"

और अब तो सर्ववाद की स्थिति आ गई है। प्रेयसी जिधर भी दृष्टि करती है, उधर ही परमात्मा ही परमात्मा है—

"तू तू करता तू भया मुझ में रही न हूं।
बारी फेरी बलि गई जित देखों तित तूं ॥"

अपने चतुर्दिक् प्रियतम की ही सत्ता पाकर भी आत्मा को सन्तोष कहाँ, मिलन से तृप्ति नहीं अतः वह प्रिय पर पूर्ण एवं सदैव अधिकार चाहती है इसलि कहते हैं—

"अब तोहि जान न देहूं राम पियारे।
ज्यूं भावे त्यूं होउ हमारे ॥"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बहुत दिनन के बिछुरे प्रियतम पाये, भाग बड़े घर बैठे आये।
चरननि लागि करौं बरियाई, प्रेम प्रीति राखौं उरझाई।
इत मन मन्दिर रहौ नित चोखे, कहै कबीर परहु मत धोख ॥"

इस भांति कबीर अपनी उस अभिलाषा को, जिसमें उनके अतिरिक्त प्रिय को और कोई न देख सके, पूर्ण करते हैं—

"नैननि अन्तर आव तू, त्यूं ही नैन झपेऊं।
ना मैं देखूं और कूं, ना तुझ देखन देऊं ॥"

वस्तुतः यह प्रेममूलक रहस्यवाद कबीर-काव्य की सर्वोत्तम सृष्टि है।

कबीर में दूसरे प्रकार का रहस्यवाद वहाँ प्राप्त होता है, जहाँ वे उस प्रिय को विविध हठयोगी साधनाओं से प्राप्त करने का उपक्रम करते हैं। यहाँ भावना की मधुरता नहीं अपितु साधना की जटिलता है—

"अष्ट दल कंवल निवासिया, चहु कौं फेरि मिलाइ रे।
रहूं मैं बीच समाधियां, तहां काल न पासै आइ रे।
अष्ट कंवल दल भीतरा, तहां श्रीरंग केलि कराइ रे।
सतगुरु मिलै तो पाइये, नहिं तो जन्म अकारथ जाइ रे।
कदली कुसुम दल भीतरां, तहां दस आंगुल का बीच रे।
तहां दुवादस खोजि ले, जनम होत नहीं मीच रे।
बंक नालि के अन्तरै, पच्छिम दिसा की बाट।
नीझर झरै रस पीजिए, तहां भंवर गुफा के घाट रे।
× × × ×
तहां कबीरा रमि रह्या, सहज समाधि सोइ रे ॥"

इस प्रकार के साधनात्मक रहस्यवादी स्थल कबीर काव्य में विरल नहीं हैं। इनमें कबीर ने हठयोग का वर्णन अधिकाँशतः सिद्धों और योगियों की परम्परा में किया है।

तृतीय प्रकार का रहस्यवाद कबीर में पारिभाषिक शब्दों के माध्यम से प्राप्त होता है। ये पारिभाषिक शब्द भी प्रायः वही हैं जो हठयोग साधना में मान्य हैं। यथा—

"इला प्यंगुला भाठी कीन्ही, ब्रह्म अगनि परजारी।
ससिहर सूर द्वार दस मूंदे, लागी जोग जुग तारी।
मन मतिवाला पीवै राम रस, दूजा कछु न सुहाई।
उलटी गंग नीर बहि आया, अमृत धार चुवाई।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पंच जने सो संग करि लीन्हें, चलत खुमारी लागी।
प्रेम पियालै पीवन लागे, सोवत नागिनी जागी।
सहज सुनि में जिनि रस चाख्या, सतगुर थें सुधि पाई।
दास कबीर इहि रस माता, कबहूं उछकि न जाई।।

इस साधनात्मक पारिभाषिक शब्दों से युक्त रहस्यवाद का प्रेममूलक रहस्यवाद के समान ही मिलनावस्था तक पूर्ण विकास प्राप्त होता है। मिलन का वर्णन भी कबीर ने साधनात्मक प्रतीकों द्वारा ही किया है—

"सुरति समाणीं निरत मैं, अजपा मांहैं जाप।
लोक समाणां अलेख मैं, यूं आपा माहैं आप।।

× × ×

"मानसरोवर सुभर जल, हंसा केलि कराहिं।
मुकताहल मुगता चुगैं, अब उड़ि अनत न जाहिं।।"

एक अन्य प्रकार का रहस्यवाद जो केवल अभिव्यक्ति-जनित है, कबीर में और प्राप्त होता है। यह भी सिद्धों, योगियों की संध्या भाषा के अनुकरण पर उलटवांसियों में लिखा गया है। इसमें आज के समाज के लिये तो दुरूहता ही है चाहे कबीर के समय अभिव्यक्ति की यह शैली कितनी भी लोकग्राह्य क्यों न रही हो। एक उदाहरण देखिए—

"ऐसा अद्‌भुत मेरे गुरि कथ्या, मैं रह्या उभेषैं।
मूसा हसती सौं लड़ै, कोई बिरला पेषै।।
मूसा पैठा बांबि मैं, लारै सापणि धाई।
उलटि मूसै सापणि गिली यहु अचरज भाई।।"

उपर्युक्त विवेचन से सुस्पष्ट है कि कबीर के चारों प्रकार के रहस्यवाद में सर्वश्रेष्ठ प्रेममूलक कोटि का ही रहस्यवाद है। शेष तीन रूपों में तो परम्परा का आग्रह है जबकि उस प्रेमात्मक रहस्यवाद में कबीर की मौलिक उद्‌भावनाएं मन मोह लेती हैं। चाहे कुछ भी हो, कबीर हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ रहस्यवादी कवि ठहरते हैं। एक स्वर से सब ने यह स्वीकार किया है। अमेरिकन महिला अण्डरहिल ने उन्हें "भारतीय रहस्यवाद के इतिहास में सर्वाधिक रोचक व्यक्ति" उचित ही माना है—

"The most interesting personality of the history of Indian Mysticism."

कबीर और जायसी का रहस्यवाद—

कबीर और जायसी में रहस्यवाद के क्षेत्र में पर्याप्त साम्य है। इसका प्रमुख कारण सूफीमत की आधारशिला अद्वैतवाद का होना है जो कबीर के रहस्

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वाद का भी मूलाधार है। अद्वैत से प्रभावित दार्शनिक प्रवृत्ति दोनों कवियों के रहस्यवाद में मिलती है। कबीर ने कहा था—

"जल में कुम्भ, कुम्भ में जल बाहर भीतर पानी।
फूटा कुम्भ जल जलहि समाना, इहि तथ कथ्यौ ग्यानी॥"

इसी भांति जायसी ने भी कहा है—

"धरती सरग मिले हुत दोउ, केहि निनाद केई दीन बिछोहू।"

कबीर के समान जायसी का भी पूर्ण विश्वास है कि वियुक्त प्रिय और प्रेमी का मिलन अवश्य होगा—

"बूंद समुद्र जैस होइ मेरा, गा हिराई, अस मिलै न हेरा॥"

कबीर ने जिस प्रकार प्रतिबिम्बवाद के माध्यम से उसे देखा है—

"ज्यूं जल में प्रतिबिम्ब त्यूं सकल रामहि जानिजै।"

उसी भाँति जायसी ने भी प्रतिबिम्ब के माध्यम से उस खुदा का 'नूर' देखा है—

"गगरी सहस पचास, जो कोउ पानी भरि धरै।
सुरुज दिपै अकास, मुहम्मद सब में देखिए॥"

जिस प्रकार सर्ववाद की सत्ता कबीर ने स्वीकार कर कहा था—

"लाली मेरे लाल की जित देखूं तित लाल।
लाली देखन मैं गई मैं भी हो गई लाल॥"

उसी प्रकार जायसी ने पिण्ड, ब्रह्माण्ड और उसके कण-कण में उसी परमसत्ता को ही देखा है—

"सातों दीप नव खण्ड, आठौं दिसा जो आहिं।
जो बह्यंड सो पिंड है, हेरत अंत न जाहिं॥"

दोनों कवियों में समान रूप से प्रेम की मधुरता एवं विरह की कातरता प्राप्त होती है। यह दूसरी बात है कि एक की प्रेम-पीर का आधार अधिकांशत वैष्णव भावना है तो दूसरे की भी अधिकाँशतः सूफीमत; जिसमें प्रेम-पीर में कहीं-कहीं माँस आदि के वर्णन से बीभत्सता भी आ गई है, चाहे ये सूक्ष्म अन्तर अभिव्यक्ति शैलियों में जाकर हो गये हों किन्तु फिर भी प्रेम की मधुरता और विरह की आर्तता दोनों कवियों में समान है। कबीर की विरह-भावना का पर्याप्त वर्णन उसके रहस्यवाद पर विचार करते हुए किया जा चुका है, जायसी का उदाहरण देखिये—

"प्रीति बेलि संग विरह अपारा, विरह पतार जरे तेहि झारा॥"

साधनात्मक रहस्यवाद के रूप दोनों कवियों में प्राप्त होते हैं। यदि, कबीर ने षटचक्र, नौ द्वार, पंच चोर, इड़ा, पिंगला, सुषम्णा, कुण्डलिनी, सहस्रार आदि के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वर्णन किये हैं तो जायसी ने भी नफस, रूह, कल्ब, अम्ल, साधक की चार अवस्थाएं —'शरीअत, तरीअत, मारफत, आदि के वर्णन किये हैं—

"कही सरीअत चिस्ती पीरू। उधिरत असरफ औ जहांगीरू।
राह 'हकीकती परै न चूकी। पैठि 'मारफत' मार बुड़की ॥"

जिस प्रकार कबीर ने अपने रहस्यवाद की अभिव्यक्ति विभिन्न प्रतीकों, रूपकों और उलटवाँसी आदि के माध्यम से की है, उसी भाँति जायसी ने भी अपने रहस्यवादी भावों को अन्योक्ति और समासोक्ति के माध्यम से प्रकट किया है।

जायसी के रहस्यवाद के चार रूप प्राप्त होते हैं—आध्यात्मिक, योगमूलक, प्रेममूलक एवं प्रकृतिमूलक। कबीर में प्रथम तीन रूप तो प्रचुरता से प्राप्त हैं किन्तु प्रकृतिमूलक रहस्यवाद के उदाहरण विरल हैं—

"काहे री नलिनी तू कुम्हलानी, तेरे ही नाल सरोवर पानी,
जल उपजी जल ही सो नेहा, रटत पियास पियास ॥"

ये साम्य होते हुए भी दोनों कवियों के रहस्यवादी रूप में कुछ न कुछ अन्तर अवश्य है। सर्वप्रथम अन्तर दोनों की उपास्य भावना का है। कबीर में अद्वैत के व्यष्टिमूलक स्वरूप की प्रधानता है—

"तेरा साईं तुझ में ज्यूं, पुहुपन में बास।

× × ×

"मृगा पास कस्तूरी बास, आप न खोजै घास।

दूसरी ओर जायसी का इष्ट अत्यन्त व्यापक सृष्टि में ही अधिक रमा है, वहाँ सर्ववाद की प्रधानता है—

"गा अंधियार रैनि मसि छूटी, भा भिनसार किरन रवि फूटी।"

× × ×

"रवि ससि नखत दिपहिं ओहि जोती।"

कबीर के रहस्यवाद का प्राणतत्व अद्वैत ही है जबकि जायसी के रहस्यवाद का सर्वस्व सूफी प्रेम बिरह-भावना। प्रेम-भावना कबीर में भी है किन्तु वह विशुद्ध वैष्णवी है जबकि यह सूफी—

"सुनि धनि प्रेम सुरा के पिये, जियन मरन डर रहे नहीं हिये।।"

कबीर ने अद्वैत के 'अहं ब्रह्मास्मि' को अपने प्रिय-साक्षात्कार का माध्यम बनाया था जबकि जायसी का मुख्याधार है "सर्वं खलु इदं ब्रह्म"। कबीर ने तो रहस्यवादी साधना में सृष्टि—प्रकृति और माया—को बाधक माना है जबकि जायसी ने समस्त सृष्टि, प्रकृति भी जिसका एक अंग है, में खुदा का नूर प्रतिबिम्बित देखा हैं। साधनात्मक रहस्यवाद के अन्तर्गत एक ने हठयोगी साधना का आश्रय लिया

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है तो दूसरे ने सूफी साधना का। सूफी-साधना और भारतीय परम्परा के प्रभाव भेद से ही एक परमात्मा को पत्नी और आत्मा को पति मानता है तो दूसरा आत्मा को पत्नी और परमात्मा को पति।

अभिव्यक्ति के माध्यम पर विचार कर देखें तो कबीर ने सर्वत्र अपना भावनाओं की अभिव्यक्ति मुक्तक रूप में प्रतीक, रूपक, उलटबाँसी आदि के द्वारा की है जबकि जायसी ने अधिकाँशत ही कथा के द्वारा अपने विचारों को अन्योक्ति और समासोक्ति प्रणाली में प्रकट किया है।

दोनों के रहस्यवाद में कौन श्रेष्ठ है इस विषय में विभिन्न विचारकों के भिन्न-भिन्न विचार हैं—

"कबीर का रहस्यवाद प्रायः शुष्क और नीरस है, पर जायसी आदि का ऐसा नहीं।" —चन्द्रबली पाण्डेय

"कबीर आदि सन्तों का रहस्यवाद ज्ञानजन्य है। अतः वह उतना काव्योपयोगी नहीं जितना जायसी आदि सूफियों का।"—डा० श्यामसुन्दर दास

कविताकी दृष्टि से कबीर का रहस्यवाद सरस न होने के कारण उतना उत्कृष्ट नहीं हैजितना सूफियों का।"—श्यामसुन्दरदास

'एक का रहस्यवाद भारतीय भक्तिमार्ग, श्रुतिग्रन्थ, सिद्धमत और नाथ सम्प्रदाय से प्रभावित होने के कारण आध्यात्मिक, ऐकान्तिक, व्यष्टिमूलक, सजीव और वर्णनात्मक। दूसरे का सूफी साधना और भावना से अनुप्राणित होने से अत्यन्त सरस, संकेतात्मक और समष्टिमूलक है। वह प्रेमाख्यान के सहारे अभिव्यक्त होने के कारण मधुर और नाटकीय भी है।"—डा० गोविन्द त्रिगुणायत

डा० रामकुमार जी कबीर के रहस्यवाद को श्रेष्ठ मानते हुए उसे 'विचारमूलक आनन्द' से भरा मानते हैं।

वास्तव में सूर्य और चन्द्र की श्रेष्ठता प्रतिपादित करना अधिक युक्तिसंगत नहीं दोनों का अपना महत्व है। हाँ, कबीर के रहस्यवाद को केवल 'आध्यात्मिक, ऐकान्तिक, व्यष्टिमूलक, सजीव और वर्णनात्मक मानना अनुचित है। उसमें अभिव्यक्त प्रेम अत्यन्त सरस, मार्मिक और उच्चकोटि का है।

सुधारक कबीर एवं समन्वयवादी कबीर

महापुरुष अपने समय की देन होते हैं। महात्मा कबीर मध्यकाल के तिमिराच्छन्न वातावरण में अपना ज्ञानदीप लेकर अवतरित होते हैं जिससे भूली-भटकी जनता उचित पथ और सम्बल पाती है। कबीर का समय, जैसा कि कबीरकालीन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परिस्थितियों में देखा जा चुका है, ऐसे विधर्मी शासकों का युग है जिनकी तलवा की लपलपाती जिह्वा सदैव हिन्दुओं के रक्त की प्यासी रहती थी। वह भारती संस्कृति जिसने प्रारम्भ से ही न जाने कितने आक्रमणों को अपना बना कर वहां की मिट्टी को उनके लिये जननी जन्मभूमि की पावनता में परिवर्तित कर दिया था इस्लाम के प्रचारक इन क्रूर आक्रमणकारियों को आत्मसात् न कर सकी। इसलि तात्कालिक समाज में आचार-विचार, संस्कृति, भाषा, धर्म आदि को लेकर खा बढ़ती जा रही थी। साथ ही विधर्मियों के इस आघात को सहन करने के लिए हिन्दू धर्म के तथाकथित ठेकेदार बाह्याचार की कर्मकाँडी प्रवृत्तियों द्वारा अपने धर्म व्यवस्था को कठोर से कठोरतर बनाते जा रहे थे। इससे जहाँ एक ओर दूसरे ध से हिन्दुओं की रक्षा हुई, दूसरी ओर हिन्दू समाज का एक वर्ग—निम्न-वर्ग उस पृथक सा होता जा रहा था। ब्राह्मण वर्ग ने प्रत्येक क्षेत्र में सामन्ती व्यवस्था बना दी थी। उनका समाज के धर्म, कर्म एवं जीवन के प्रत्येक क्रिया-कलाप प अधिकार सा था। यद्यपि समाज में समानता स्थापित करने के प्रयत्न कबीर से पू रामानन्द आदि के द्वारा भी किये गये किन्तु वे उतने सफल न हो पाये। सर्वप्रथ कबीर ने इन वाह्याचारों, ब्राह्मणवादी प्रवृति के जड़ोन्मूलन का बीड़ा उठाया।

यद्यपि सुधार करना या नेतागीरी की प्रवृत्ति फक्कड़ मस्तमौला सन्त कबी में नहीं थी किन्तु वे समाज के कूड़ा-कर्कट या कुरूप को निकाल फेंकना चाहते थे अपनी इसी प्रवृत्ति के कारण वे स्वतः सुधारक बन जाते हैं। दूसरे शब्दों में क सकते हैं कि सुधारक न बनना चाहते हुए भी राम-दीवाने कबीर को सुधारक का प्राप्त हो ही जाता है। वास्तव में वे तो मानव के दुःख से उत्पीड़ित हो उसकी सह यता के लिए चले। 'जनता के दुःख-दर्द और उसकी वेदना से फूटकर ही उन काव्य की सरस्वती वही थी।"[1] मिथ्याडम्बरों के प्रति प्रतिक्रिया कबीर का जन्मजा गुण थी। वे वही कहते थे जिसे उनकी आत्मा सत्य तत्त्व की कसौटी पर परख क उचित समझे किन्तु इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं कि वे हठवादी थे। वास्तव 'सहज सत्य को सहज ढंग से वर्णन करने में कबीर अपना प्रतिद्वन्दी नहीं जानते।"[2]

समाज की अप्रिय रीति को देखकर उस पर उन्होंने इतने तीखे प्रहार कि हैं कि ढोंग और ढपोलशंखों की धज्जियाँ उड़ गईं। इसीलिए कबीर की वाणी इतना तीव्र, तीखा, तिक्त और अभीष्ट-सिद्धि करने वाला अचूक व्यंग्य है कि व्यं के क्षेत्र में उनकी तुलना हिन्दी का कोई भी लेखक नहीं कर सकता। उनका व्यं तर्काश्रित नहीं अपितु विशुद्ध बौद्धिकता पर आधारित है। तर्काश्रयी हठवादियों

१. श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त—'आकाशवाणी वार्ता'
२. श्री डा० ह० प्र० द्विवेदी।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तो उन्होंने मूर्ख, मोटी बुद्धि वाला बताया है—

"कहै कबीर तरक जिनि साधै, तिनकी मति है मोटी।"

उनके इन तीव्र प्रहारों में विद्रोह मात्र अथवा हीनता-ग्रंथि नहीं। उन्होंने जो व्यंग्य किये हैं वे स्वयं शुद्ध होकर। इसी कारण उनकी कटुतम उक्तियों में भी वैमनस्य, द्वेष की गंध नहीं और न उनकी गर्वोक्तियों में है आत्मश्लाघा। वह संत, आत्मान्वेषी महात्मा दूसरे को मिट्टी बताने से पूर्व स्वयं कंचन बना था। इसलिये उनकी गर्वोक्तियों में भी आत्मश्लाधा नहीं अपितु अपने चरित्र-बल का दृढ़ विश्वास है। डा० ह० प्र० द्विवेदी जी ने आपके व्यंग्यों को सिद्धों और योगियों के व्यंग्यों से पृथक् करते हुए लिखा है—

"कबीर के पूर्ववर्ती सिद्ध और योगी लोगों की आक्रमणात्मक उक्तियों में एक प्रकार की हीनभावना की ग्रंथि या 'इनफीरियारिटी कम्प्लेक्स' पायी जाती है। वे मानो लोमड़ी के खट्टे अंगूरों की प्रतिध्वनि हैं, मानो चिलम न पा सकने वालों के आक्रोश हैं। उनमें तर्क है पर लापरवाही नहीं है, आक्रोश है पर मस्ती नहीं है तीव्रता है पर मृदुता नहीं। कबीरदास के आक्रमणों में भी एक रस है, एक जीवन है, क्योंकि वे आक्रान्त के वैभव से परिचित नहीं थे और अपने को समस्त आक्रमण-योग्य दुर्गुणों से मुक्त समझते थे। इस तरह जहाँ उन्हें लापरवाही का कवच मिला था वहाँ अखण्ड आत्मविश्वास का कृपाण भी।" इसी लिये कबीर स्थान-स्थान पर बड़े निस्संकोचपूर्वक यह कह जाते हैं—

"सो चादर सुर नर मुनि, ओढ़ी ओढ़ि कै मैली कीनी चदरिया।
दास कबीर जतन से ओढ़ी, ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया॥"

'सुर नर मुनि' सबको अपनी चारित्रिक श्रेष्ठता की उद्घोषणा से पीछे छोड़ जाने वाला यह आत्मविश्वास धन्य है।

समाज-क्षेत्र में फैलने वाले मिथ्याचारों की कबीर ने धज्जियां उड़ा दी। इस तीव्रालोचना में उन्होंने हिन्दू-मुसलमान किसी को न बख्शा। उनके समय में कबीर-दास के अतिरिक्त समस्त समाज कुपथगामी हो रहा था—

"एक न भूला दोइ न भूला, भूला सब संसारा।
एक न भूला दास कबीरा, जाके राम अधारा॥"

ब्राह्मणों ने जन्म के आधार पर ही, चाहे आचरण कितना ही निम्न क्यों न हो अपनी श्रेष्ठता प्रतिपादित कर रखी थी। एक बिन्दु से निर्मित पंचतत्त्वयुक्त मानवशरीर, सबका निर्माता एक ही ब्रह्मा रूपी कुम्भकार, सबकी जन्मदात्रियाँ एक सी, तो फिर जन्म के आधार पर यह भेद कैसा? इसीलिये उन्होंने ब्राह्मण को ललकारा—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

"जो तू बाम्हन वम्हनी जाया,
आन बाट ह्वै क्यों नहीं आया ॥"

ब्राह्मणों की छुआछूत आदि के व्यर्थ-नियमों को भी कबीर ने उखाड़ फेंक कसर नहीं उठा रखी—

"कहु पांडे सुचि कवन ठांव,
जिहि घर भोजन बैठि खाऊं ॥
माता जूठी पिता पुनि जूठा, जूठे फल चित लागे।
जूठा आंवन जूठा जाना, चेतहु क्यूं न अभागे।
अन्न जूठा पानी पुनि जूठा, जूठे बैठि पकाया।
जूठी कड़छी अन परोस्या, जूठे जूठा खाया।
चौका जूठा गोबर जूठा, जूठी का ढीकारा।
कहै कबीर तेई जन सूचे, जे हरि भगति तर्जाहि विकारा ॥"

इस भाँति उन्होंने पंडितों की "नौ कन्नौजिये, तेरह चूल्हे' वाली प्रवृत्ति तीव्राघात किया। छुआछात के कबीर कट्टर विरोधी थे। ब्रह्माण शूद्रों की छाया तक से घृणा करते थे। कबीर ने उस वर्ग को जो पूर्ण रूपेण इन पंडितों के प्रपंच में पिस रहा था, मुक्त किया। एक स्थान पर उन्होंने पंडित से खुलकर पूछा कि उनमें शूद्रों से कौन सी श्रेष्ठता है—

"काहे को कीजै पांडे छोति विचारा।
छोतहि ते उपना संसारा।
हमारै कैसे लोहू तुम्हारे कैसे दूध।
तुम्ह कैसे ब्राह्मण पांडे हम कैसे सूद।
छोति छोति करत तुम्हही जाए।
तों ग्रभवास काहे को आए ॥"

इस प्रकार उन्होंने ब्राह्मणों की सामन्ती प्रवृत्ति का समूलोन्मूलन कर दिया। इसीलिए प्रसिद्ध विद्वान् एम० वैवर का कथन है—

"Kabir came to deny Brahamanical authority and all Hindu deities & ritual."

ब्राह्मण और शूद्र की ही नहीं इन्होंने मुसलमानों और हिन्दुओं के बीच वैमनस्य भेदभाव की खाई को भी पाटने का बड़ा स्तुत्य प्रयास किया। दोनों धर्मावलम्बी एक दूसरे के मत की छीछालेदारी करने में लगे रहते थे और स्वयं अपनी ओर दृष्टि करके नहीं देखते थे। कबीर ने इन्हीं कुप्रवृत्तियों की ओर इंगित कर दोनों जातियों

"The Hindu Religion"—पृष्ठ ३१४।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

में सुहृदयता स्थापित करने का प्रयास किया। उन्होंने किसी एक जाति विशेष का पक्ष नहीं लिया अपिधु दोनों के दोषों को निस्संकोचपूर्वक कह दिया है। यथा—

"ना जाने तेरा साहिब कैसा है।
मसजिद भीतर मुल्ला पुकारै, क्या साहिब तेरा बहिरा है ?
चिउंटी के पग नेवर बाजे, सो भी साहब सुनता है।
पंडित होय के आसन मारै, लम्बी माला जपता है।
अन्दर तेरे कपट कतरनी, सो भी साहब लखता है॥"

दोनों मतों के दोष प्रकट करने में कबीर ने पूर्ण निष्पक्षता से काम लिया है। यदि उन्होंने हिन्दुओं की पत्थर पूजा की खिल्ली उड़ाई है—

"हम भी पाहन पूजते, होते बन के रोज।
"सतगुरु की किरपा भयी, डार्या सिर थैं बोझ॥"

× × ×

"पत्थर पूजैं हरि मिलै तो मैं पूजूं पहाड़।"

तो दूसरी ओर मुसलमानों की अजान आदि पर भी व्यंग्य किया है—

कंकड़ पत्थर जोड़ के मसजिद लई बनाय।
तापर मुल्ला बांग दे, क्या बहिरा हुआ खुदाय॥"

जातीय विभेद को दूर करने के अतिरिक्त कबीर ने समाज की आचरण-भ्रष्टता को दूर किया। तत्कालीन समाज के लिए यह बहुत बड़ा उपकार था। "कबीर की वाणी ने समाज-क्षेत्र में एक और बहुत बड़ा कार्य किया था। वह है सात्विकता और आचरण-प्रवणता का प्रचार। कबीर के युग में वासना अपना भयंकर रूप धारण करती जा रही थी। कबीर को उसका डटकर सामना करना पड़ा था। उसके लिए उन्हें स्त्रियों की निंदा करनी पड़ी। ब्रह्मचर्य का उपदेश देना पड़ा। ......उन्होंने समाज में सात्विक वृत्तियों के प्रचार के लिए बड़ा तप किया था।"[1] स्त्री-निंदा करते हुए उनका मुख्य उद्देश्य साधक और समाज के सामान्य व्यक्तियों को चरित्र-भ्रष्टता से बचाना था, इसीलिए उन्होंने कहा था—

"कामणि काली नागणी, तीन्यूं लोक मंझारि।
रामसनेही ऊबरे, विषई खाये झारि॥"

इतना ही नहीं, कबीर अपने समय में प्रचलित व्यभिचार, परस्त्रीगमन से अपरिचित नहीं थे। इसलिए जहां उन्होंने सामान्य रूप से नारी-निन्दा की है वहां पर-नारी गमन पर भी विरोध प्रकट किया है—

"पर नारी राता फिरैं, चोरी बिढ़ता खांहि।
दिवस चारि सरसा रहे, अंति समूला जांहि॥"

१. डा० गोविन्द त्रिगुणायत जी—'कबीर की विचार धारा' पृष्ठ ३३९.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मन को भी नियन्त्रित रखने के लिए कबीर ने बहुत बल दिया है। वे जानते थे कि समस्त इन्द्रियों का संचालक, पापकारण, विषयजन्य आकर्षणों में वाला मन ही है, इसलिए यदि इसे वश में कर लिया जाय तो सब ठीक जाय—

"कबीर मारूं मन कूं, टूक टूक ह्वै जाइ।
विष की क्यारी बोइ करि, लुणत महा पछिताइ॥"

इसी प्रकार उन्होंने आचरण सम्बन्धी अन्य बातों पर बहुत दिया है।

दर्शन और धर्म के क्षेत्र में भी कबीर ने बड़ा कार्य किया। जैसा कि कहा जा चुका है कबीर के समय में जनता नाना धर्म साधनाओं की बाह्याडम्बरता पंकिल गर्त में डूबी जा रही थी। इन विभिन्न धर्म-साधनाओं का परिचय स्वयं कबीर ने भी दिया है—

"अरु भूले षट दरसन भाई। पाखंड भेष रहे लपटाई।
जैन बोध और साकत सैना। चारवाक चतुरंग विहूना॥
जैन जीव की सुधि न जाने। पाती तोरी देहुरै आनै॥"

कबीरदास ने मधुमक्षिका के समान समस्त साधनाओं, समस्त धर्म का लेकर जनता को धर्म का ऐसा रूप दिखाया जो सर्वग्राह्य एवं सर्वसुखकारी धर्म के इस सर्वजन-सुलभ स्वरूप को प्रस्तुत करने में कबीर को पूर्व प्रस्थापित धर्म विचारधाराओं के आडम्बरों का खण्डन करना पड़ा था। इस धार्मिक दोष-दर्शन में कबीर पूर्ण निष्पक्ष रहे। उन्होंने हिन्दू मुसलमान दोनों धर्मों के ठेकेदारों को तरह फटकारा है—

"जो रे खुदाय मसीत बसतु है, अवर मुलुक किह केरा।
हिंदू मूरति नाम निवासी, दुहमति तत्तु न हेरा॥"

इसी भाँति यद्यपि वैष्णवों से कबीर का बहुत लगाव है क्योंकि उन्हीं के रसायन से वे आनन्दमत्त हैं किन्तु उनके दोष-दर्शन में भी उन्होंने पैर पीछे हटाया है—

"बैस्नों भया तो क्या भया, बूझा नहीं विवेक।
छापा तिलक बनाइ कर, दग्ध्या लोक अनेक॥"

पूजा, तीर्थ, व्रतादि का भी उन्होंने खूब खुलकर विरोध किया है—

"पूजा, सेवा, नेम, व्रत, गुड़ियन का सा खेल।
जब लग पिउ परसै नहीं, तब लग संसय मेल॥"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

योगियों आदि की हठयोगी साधना में भी कबीर ने सुधार कर कुछ शब्दों की -भ्रांति को दूर कर साधकों को नवीन मार्ग प्रशस्त किया था—

सहज सहज सब ही कहैं, सहज न चीन्हैं कोय।
जो कबीर विषया तजै, सहज कहीजै सोय॥"

इस भाँति हम देखते हैं कि कबीर ने समाज के विभिन्न क्षेत्रों में भ्रष्टाचार दूर कर व्यवस्था स्थापित की थी। त्रिगुणायत जी ने उचित ही लिखा है, "उन्होंने में, धर्म में, समाज में, दर्शन में, साधना में, सभी क्षेत्रों में क्रान्ति की जो धारा ई थी, उससे निश्चय ही उन क्षेत्रों के कालुष्य वह गये थे।"

वास्तव में कबीर ने मध्यकाल में अपने इन अमृतोपम वचनों से अज्ञानांधकार टकती जनता का बड़ा उपकार किया। इस कलि-मल-हरन पावन वचनावली से मनुष्य भी कुछ प्रकाश रेखाएं प्राप्त कर सकता है जो आज की इस वैज्ञानिक ता में विपन्न है।

—×—

कबीर का दर्शन

कबीर का लक्ष्य जिस प्रकार कविता करना नहीं था, उसी भांति दर्शन की ी को सुलझाना भी उन्हें अभीष्ट नहीं था। किन्तु भक्ति में प्रेम की विविध -व्यंजनाओं के साथ-साथ कबीर की ब्रह्म, जीव, जगत्, माया आदि से सम्बन्धित ार-धारा भी सम्मुख आई है। इन विचारों के आधार पर ही हम उनकी विभिन्न ाओं का पता लगा सकते हैं।

यद्यपि कविता एवं दर्शन दोनों पृथक्-पृथक् क्षेत्र हैं किन्तु फिर भी हम देखते क कवि भी दार्शनिक होता है, यह दूसरी बात है कि वह इस रूप में नहीं जिस में दर्शन का विद्वान्। इस सम्बन्ध में महादेवी जी के शब्द द्रष्टव्य हैं—"कवि में निक को खोजना बहुत साधारण हो गया है। जहां तक सत्य के मूल रूप का न्ध है वे दोनों एक दूसरे के अधिक निकट हैं अवश्य, पर साधन और प्रयोग की से उनका एक होना सहज नहीं। बुद्धि के निम्न स्तर से अपनी खोज आरम्भ के उसे सूक्ष्म बिन्दु तक पहुंचा कर दार्शनिक सन्तुष्ट हो जाता है—उसकी सफलता है कि सूक्ष्म सत्य के उस रूप तक पहुंचने के लिए वही बौद्धिक दशा सम्भव रहे। जगत् का सारा वैभव परखकर सत्य का मूल्य आंकने का उसे अवकाश नहीं, भाव गहराई में डूबकर जीवन की थाह लेने का उसे अधिकार नहीं। वह तो चिन्तन- का अधिकारी है। बुद्धि अन्तर का बोध कराकर एकता का निर्देश करती है हृदय एकता की अनुभूति देकर अन्तर की ओर संकेत करता है। परिणामतः

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चिन्तन की विभिन्न रेखाओं का समानान्तर रहना अनिवार्य हो जाता है। सांख्य रेखा पर बढ़ कर सत्य की प्राप्ति करता है वह वेदान्त को अंगीकृत न होगी वेदान्त जिस क्रम से चलकर सत्य तक पहुंचता है उसे योग स्वीकार न सकेगा।"

"काव्य में बुद्धि हृदय से अनुशासित रह कर ही सक्रियता पाती है, उसका दर्शन न बौद्धिक तर्क-प्रणाली है और न सूक्ष्म विन्दु तक पहुंचने वाली विचार-पद्धति। वह तो जीवन को, चेतना अनुभूति के समस्त वैभव के साथ करता है। अतः कवि का दर्शन, जीवन के प्रति उसकी आस्था का दूसरा नाम रामरसायन से उन्मत्त कबीर जीवन – साँसारिक जीवन—से विरक्त हो या जीवनमुक्त की दशा में आ गये थे। इसी अनोखे प्रेम जगत्, भावलोक उनका वास्तविक जीवन रह गया था, कबीर ने जो आस्थाएं, विचार प्रकट उनसे हमें उनकी विचार-धारा, चिन्तन-परिणामों का ज्ञान होता है।

ब्रह्म

कबीर का ब्रह्म जैसा कि पहले देखा जा चुका है, उपनिषदों के अद्वैत अधिक प्रभावित है। कबीर की ब्रह्म-भावना आदि से अन्त तक अद्वैतपरक है उस अद्वैत की प्राप्ति का प्रारम्भ या प्रयत्न जब कबीर करते हैं, प्रिय परमात्म वियुक्त हृदय की मनोभावनाओं की जिस समय अभिव्यक्ति करते हैं, उस समय द्वैत भावना से प्रस्थान करते हैं। किन्तु यह द्वैत भ्रमवश है, यही अज्ञान है। द्वैत भावना से कबीर की अद्वैती भावना पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वे उसका निरूपण उपनिषदों के समान अद्वैती भावना से उत्प्रेरित होकर करते हैं—

"कस्तूरी कुण्डल बसै, मृग ढूँढै बन माँहि।
ऐसे घट घट राम हैं, दुनिया देखे नाँहि॥"

जिस भाँति ब्रह्म को कबीर ने हृदयस्थ मानकर पत्रिका आदि लिख विरोध किया है, उसी प्रकार प्रतिबिम्बवाद के आश्रय पर उसे सर्व माना है —

"ज्यूं जल में प्रतिबिम्ब, त्यूं सकल रामँहि जानिजै।"

अद्वैतियों के ही समान कबीर का विश्वास है कि ब्रह्म से ही समस्त सृष्टि निर्माण होता है और उसी के द्वारा उसका स्वरूप नष्ट हो जाता है—

"पानी ही ते हिम भया, हिम ही गया बिलाय।
कबीरा जो था सो भया, अब कुछ कही न जाय॥"

---

१. महादेवी वर्मा—'दीपशिखा' पृ० २०, २१।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सृष्टि-निर्माता होने के साथ-साथ यह ब्रह्म पूर्ण निराकार, रूपविहीन, निर्लिप्त समस्त सृष्टि के अणु-प्रति-अणु में व्याप्त होकर भी प्रत्येक घट में भी वास रता है—

"शरीर सरोवर भीतर, आछै कमल अनूप।
परम ज्योति पुरुसोत्तमों, जाके रेख न रूप॥"

उसे शरीर स्थित ज्योतिस्वरूप निराकार मानकर भी कबीर ने अद्वैती-भावनानुरूप अखण्ड, एकरस माना है—

"आदि मध्य औ अन्त लौ अविहड़ सदा अभंग।
कबीर उस कर्त्ता की सेवक तजै न संग॥

समस्त सृष्टि व्यापी होने के साथ-साथ उस ब्रह्म की महिमा अपार है। इतना सामर्थ्यवान् है कि बिना इन्द्रियों के, विना स्वरूप के भी समस्त कार्य र रहा है—

"बिन मुख खाइ चरन बिन चालें, बिनजिभ्या गुण गावै।
आछै रहै ठौर नहीं छाड़ै, दह दिसिहीं फिरि आवै।
बिनहीं तालां ताल बजावै, बिन मंदल पर ताला।
बिनहीं सबद अनाहद बाजै, तहां निरतत है गोपाला॥"

वास्तव में इसकी शक्ति का वर्णन करना सम्भव ही नहीं, वह तो अनुभव की ही वस्तु है—

"पार ब्रह्म के तेज का, कैसा है उन्मान।
कहिबे कू शोभा नहीं, देखा ही परवान॥"

कबीर ने इस ब्रह्म को राम, हरि, मुरारि, गोपाल, विष्णु आदि नामों का बोधन देकर भी निर्गुण-निराकार माना है। वैष्णवों के अवतारी नाम देकर भी ब्रह्म को उनके समान अवतारधारी नहीं मानते—

"ना जसरथ घरि औतरी आवा, ना लंका का राव सतावा।
देवै कूखि न औतरि आवा, नां जसवै लै गोद खिलावा।
ना वो ग्वालन के संग फिरिया, गोबरधन लै न कर धरिया।
बावन होइ नहीं बलि छलिया, धरनी वेद ले न उधरिया।
गंडक सालिगराम न कोला, मछ कछ ह्वै जलहि न डोला।
बद्री बैस्य ध्यान नहीं लावा, परसराम ह्वै खत्री न सतावा।
द्वारामती शरीर न छोड़ा, जगननाथ लै प्यंड न गाड़ा॥"

किन्तु कुछ स्थानों पर यह बात समझ में नहीं आती कि 'अवतारी परि-कल्पना' को इस प्रकार मिथ्या सिद्ध करने वाला स्वयं उसका विश्वासी कैसे बन बैठता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है। कहीं-कहीं तो उनकी उक्तियां सगुण भक्त कवियों के समान ही प्राप्त हो... उन स्थलों पर प्रेमातिरेक ने कबीर को सगुण-भक्तों की भाव-भूमि पर ही... दिया है—

"माधो मैं ऐसा अपराधी, तेरी भगति होत नहीं साधी।
कारनि कवन आइ जग जनम्यां, जनमि कवन सचु पाया।
भौ जल तिरण चरण च्यंतामणि, ता चित घड़ी न लाया।
तुम्ह कृपाल दयाल दमोदर, भगत बछल भौ हारी।
कहै कबीर धीर मति राखहु, सासति करौ हमारी॥

× × ×

"जो जाचौं तो केवल राम, आन देव सूं नाहीं काम।
जाकै सूरिज कोटि करै परकास, कोटि महादेव गिरि कविलास।
ब्रह्मा कोटि वेद ऊचरैं, दुर्गा कोटि जाकै मरदन करैं।
कोटि चन्द्रमा गहैं विराम, सुर तेतींसू जीमैं पाक॥
नौग्रह कोटि ठाढ़े दरबार, धरमराइ पौली प्रतिहार॥
कोटि कुबेर जाकै भरै भंडार, लक्ष्मी कोटि करैं सिंगार॥
कोटि समुद्र जाकै पणिहारा, रोमावली अठारह भारा।
असंखि कोटि जाकै जभावली, रावण सेन्या जाथैं चली॥"

उपर्युक्त समस्त बातों से तो उसकी साकारता, सगुणता सिद्ध हो... है किन्तु बिल्कुल अन्त में 'रावण सेन्या जाथैं चली' के सम्मुख कबीर की... समझ में नहीं आती कि वह अवतारी दशरथ-सुत नहीं। दशरथ-सुत राम ने... रावण-सेना-संहार किया था। अतः यह मानना पड़ेगा कि ब्रह्म को निर्गुण... भी कबीर उसके सगुण स्वरूप से अछूते नहीं रहे हैं; इसकी यत्किंचित्... उनके निम्न कथन में भी प्राप्त होती है—

"संतो धोखा कासों कहिये।
गुण में निर्गुण निर्गुण में गुण है।
बाट छांडि क्या वहिए॥"

अतः हम कह सकते हैं कि कबीर का ब्रह्म अधिकांशतः अद्वैतीस्व... निर्गुण, निराकार, निरुपाधि है किन्तु कहीं-कहीं उसमें सगुण भावनाओं के लि... स्थान है। इसका कारण कबीर की प्रेमाभक्ति और उपनिषदों का ब्रह्म को... धर्माश्रयी चित्रित करना है जिसका प्रभाव इन पर पड़ा है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

माया—

कबीर ने माया का वर्णन अद्वैतियों के ही समान मिथ्या मानकर किया है। "कबीर की माया धर्म और स्वभाव से सांख्यवादियों की प्रकृति से बहुत मिलती जुलती है।[1] सांख्यानुरूप ही कबीर ने इसे ब्रह्म से सम्बद्ध और त्रिगुणात्मक प्रकृतियुक्त माना है—

"राजस तामस सातिग तीन्यूं ये सब तेरी माया।"

माया ने समस्त संसार को अपने वश में कर चरित्रभ्रष्ट कर रखा है। इसीलिए कबीर ने इसे व्यभिचारिणी तक कह डाला—

"तू माया रघुनाथ की, खेलड़ चढ़ी अहेड़ै।
चतुर चिकारे चुणि-चुणि मारे, कोइ न छोड्या नेड़ै॥
मुनियर पीर डिगंबर मारे, जतन करता जोगी।
जंगत महि के जंगम मारे, तूं रे फिरै बलिवंती॥
वेद पढ़न्ता ब्राह्मण मारा, सेवा करता स्वामी।
अरथ करता मिसर पछाड्या, तू रे फिरै मैमंती॥
× × ×
दास कबीर राम कै सरनै, ज्यूं लागी त्यूं तोरी॥

केवल प्रभु के दास ही इससे मुक्त हैं, अन्यथा और सब तो इसके बन्धन में आबद्ध हैं। यदि कोई माया से बचकर रहता है तो भी यह उसे अपने फंदे में फंसा लेती है—इससे त्राण का एकमात्र उपाय है प्रभु-भक्ति, इसी भक्ति के सम्बल से कबीर ने इसे विजित किया था—

"कबीर माया पापणीं, फंध ले बैठी हाटि।
सब जग तो फंधै पड़्या, गया कबीरा काटि॥

इससे त्राण का एक और भी उपाय कबीर ने बताया है, वह यह कि एक वार यदि भक्त इसके मिथ्यात्व को हृदय में समझ ले और इसे मिथ्या मान इससे दूर रहने का उपाय करे तो फिर यह दासी की नाईं चारों ओर लगी-लगी फिरती है—

"कबीर माया मोहनी, मांगी मिलै न हाथि।
मनह उतारी झूठ करि, तब लागी डोलै साथि॥"

इसी विकर्षण से आकर्षण वाली बात को कबीर ने दूसरे प्रकार से कहा है—

"जो काटों तो डहडही सींचो तो कुम्हलाय।
इस गुणवन्ती बेल का, कुछ गुण कहा न जाय॥"

१. डा० त्रिगुणायत जी—पृ० २४०

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इसी सिद्धान्त को अपनाकर सन्त लोग, हंसात्माएं माया को दासी बना रखते हैं, जिसका वर्णन कबीर ने इन शब्दों में किया है—

"माया दासी संत की, ऊंची देइ असीस।
विलसी अरु लातौं छड़ी, सुमरि सुमरि जगदीस॥"

संसार—

कबीर ने अद्वैतियों के ही समान 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' के सिद्धान्त अपनाकर संसार का वर्णन किया है। वे सर्वत्र संसार की सत्ता मिथ्या मानते हैं औ अद्वैतियों के ही समान उसके मिथ्या भाव को प्रकट करने के लिए सेंवल फू आकाश-नीलिमा, धुआँ-धौरहर आदि के उपमान प्रयुक्त करते हैं।

"दिन दहूं चहूं कै कारणैं, जैसैं सेंवल फूले।
झूठी सूं प्रीति लगाइ करि, साचैं कूं भूले॥"

× × ×

"दिनां चारि के सुरंग फूल, तिनहि देखि कहा रह्यौ है भूल।
या बनासपति मैं लागैगी आगि, तब तू जैहौ कहां भागि।"

ईश्वर स्मरण के विना यह मिथ्या संसार, जिसकी क्षणिक स्थिति है, और अधिक दुखदायी है क्योंकि सर्वदा कच्चे धागे में लटकी तलवार की भाँति काल सि पर खड़ा रहता है—

"रामां बिनां संसारधंध कुहेरा,
सिरि प्रगटया जंम का फेरा॥"

इस संसार का नाश सर्वथा निश्चित है, इसकी उत्पत्ति और प्रलय में कु समय नहीं लगता, वह भी पूर्ण अनिश्चित है—

"नर जाणें अमर मेरी काया, घर घर बात दुपहरी छाया॥
मारग छांड़ि कुमारग जोवैं, आपण मरैं और कूं रोवैं॥
कछु एक किया कछु एक करणां, मुगध न चेतै निहचै मरणा॥
ज्यूं जल बूंद तैसा संसारा, उपजत बिनसत लगै न वारा॥"

कबीर का विश्वास है कि इस दुख-सुखमय संसार से तब तक छुटकार नहीं हो सकता जब तक हमारा मन निष्कलुष न हो—

"जब लग मनहिं विकारा, तब लागि नहीं छूटै संसारा।
जब मन निर्मल करि जाना, तब निर्मल माँहि समाना॥"

कबीर का विश्वास है कि इस संसार में जो जीवन मिला है वह हमारे पिछले कुछ पुण्यों का फल है, अन्यथा ८४ लाख योनियों में से किसी भी एक में हो सक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

। इसलिए मनुष्य जन्म पा सत्कर्मों का व्यापार करना यहाँ अत्यन्त आवश्यक है—

"चोखौ बनज व्यौपार करीजै,
आइनै दिसावरि रे राम जपि लाहौ लीजै ॥

अब कबीर तो इस व्यापार को करने में पूर्ण दक्ष हो गये हैं और उन्होंने त्कर्मों की पूंजी संचित कर ली है, इसीलिए काल रूपी दलाल का भी उन्हें भय हीं रहा— "रे जम नांहि नवै व्यौपारी, जे भरै जगाति तुम्हारी।
वसुधा छाड़ि बनिज हम कीन्हों, लाद्यौ हरि को नाऊं।
राम नाम की गूंनि भराऊं, हरि कै टांडै जाऊं ॥"

इसी भाँति 'चदरिया झीनी बीनी' में कबीर ने यही अभिव्यक्त किया है कि इस सार में प्राप्त मानव जीवन को निष्कलंक रख सत्कर्मों का वनिज करना चाहिए।

ीवात्मा और शरीर—

जहां तक आत्मा का सम्बन्ध है कबीर ने सदैव उसे परमात्मा का अंश माना । जिस प्रकार अद्वैतवादियों ने उपनिषदों का आधार लेकर ब्रह्म और आत्मा की कता को प्रस्थापित किया, उसी भांति कबीर ने भी अंश-अंशी भाव की अवस्थिति वंत्र मानी है। अपने रहस्यवाद में सर्वत्र उन्होंने आत्मा और परमात्मा का ऐक्य स्थापित किया है—

"प्रीतम कूं पतियां लिखूं, जौ कहीं होय विदेस।
तन में मन में नैन में, ताको कहा संदेस ॥"

इसी अद्वैतता के आधार पर ब्रह्म के साक्षात्कार के लिए आत्मा विकल है। ह विरह—वियुक्तावस्था—क्षणिक है इसी भाव को वे इस प्रकार व्यक्त करते हैं।

"सेई तुम्ह सेई हम एकै कहियत, जब आपा पर नहीं जाना।
ज्यूं जल मैं पैसि न निकसै, कहै कबीर मन माना ॥"

आत्मा और परमात्मा का यह पृथक्त्व माया के कारण है, माया का आवरण ते ही आत्मा और परमात्मा पुन: एक हैं। यह उसी भाँति है जिस प्रकार जल में ते हुए कुम्भ में भी लहर वाला जल है किन्तु दोनों एक जैसे होते हुए भी अलग-गग हैं। दोनों का मिलन तभी सम्भव है, जब कुम्भ (शरीर—माया—) की सत्ता प्त हो जाय—

"जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है, बाहर भीतर पानी।
फूटा कुम्भ जल जलहि समाना, इहि तथ कथ्यौ ग्यानी ॥"

इसीलिए जब आत्मा परमात्मा की खोज में चली तो उसे सर्वत्र परमात्मा ष्टिगत हुआ— "लाली मेरे लाल की, जित देखूं तित लाल।
लाली देखन मैं गयी, मैं भी हो गयी लाल ॥"

इस प्रकार अन्ततः आत्मा और परमात्मा एक ही है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जहाँ तक शरीर का सम्बन्ध है कबीर का भाव है कि जो कुछ समस्त वि
ब्रह्माण्ड—में है, उस सबकी सत्ता शरीर में है, शरीर भी ब्रह्माण्ड का ही
संस्करण है— "ब्रह्मण्डे सो प्यण्डे जानि।"

किन्तु इस शरीर शरीर की स्थिति बड़ी क्षणिक है—

"पानी केरा बुदबुदा, अस मानस की जात।
देखत ही छिप जायगा, ज्यों तारा परभात ॥"

अन्यत्र भी उसकी क्षणिकता का प्रतिपादन बड़े सुन्दर एवं नवीन उप
मानों द्वारा कवि ने किया है। शरीर के लिए सर्वाधिक सुन्दर उपमा अंज
जल से दी है। अंजलि में रोका हुआ जल प्रति पल रिसता रहता है, साथ ही
भी समय अंजलि खुल जाने पर उसका अस्तित्व ही समाप्त हो सकता है—

"तन धन जौवन अंजुली कौ पानी, जात न लागै बार।"
× × × ×
"जल अंजुरी जीवन जैसा, ताका है किसा भरोसा ॥"

साथ ही कबीर का यह भी विश्वास है कि शरीर-पूर्ति के लिए नाना
कर्म करने से कोई लाभ नहीं क्योंकि यह मिथ्या है। दूसरे हम जिनके लिए पा
ढोते हैं, मृत्यु हो जाने पर, पंच तत्वमय शरीर की सत्ता समाप्त हो जाने पर
का भी राग इससे नहीं रह जाता है—

"मुठी एक मठिया मुठि एक कठिया, संगि काहू कै न जाइ।
देहली लग तेरी मिहरी सगी रे, फलसा लगी सग माइ।
मड़हट लूं सब लोग कुटुम्बी, हंस अकेला जाइ ॥"

इस संसार में शरीर का नाश—मृत्यु—उतनी ही निश्चित है जित
निश्चित शब्द— "जो ऊग्या सो आथवै, फूल्या सो कुमिलाइ।
जो चिणियां सो ढहि पड़ै, जो आया सो जाइ ॥"

आपको इस मृत्यु से बचाने वाला कोई नहीं। जो आज दूसरों की श
यात्रा कर शोकाकुल हो रहे हैं, वे भी निश्चित रूप से इसी भांति श्मशान
करेंगे — "रोवणहारे भी मुए, मुए जलांवणहार।
हा हा करते ते मुए, कासनि करौं पुकार ॥"

इस शरीर को धारण करने में वारम्वार मातृगर्भ में रह अमित वेदना
पड़ती है, इसका एक ही उपाय है मोक्ष। यह मोक्ष या मुक्ति व्यक्ति को अ
कार्यों एवं अनन्य, दृढ़, ईश्वर-भक्ति से प्राप्त होती है। मुक्ति-प्राप्ति पर भ
वान्, अंश-अंशी, आत्मा-परमात्मा एक हो जाते हैं, दोनों में कोई भेद नहीं रह

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर कहा जा सकता है कि कबीर के
विचार वेदान्ती हैं। दर्शन-क्षेत्र में निश्चित रूप से उन पर शुद्ध भारतीय प्रभा

———

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

साखी भाग

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

१. गुरुदेव कौ अंग

सतगुर सवाँन को सगा, सोधी सईं न दाति।
हरिजी सवाँन को हितू, हरिजन सईं न जाति ॥१॥

शब्दार्थ—सवाँन=समान, सोधी=तत्वशोधक अर्थात् साधु। सईं=समान।

(इस संसार में) सद्गुरु के समान अपना कोई निकट संबन्धी नहीं है। तत्वशोधक या प्रभु की खोज करने वाले साधु के समान कोई दाता नहीं क्योंकि वह अपना समस्त ज्ञानार्णव शिष्य में उंडेल देता है। दयालु प्रभु तुल्य अपना कोई हितैषी नहीं है और प्रभुभक्तों के समान कोई जाति नहीं है (क्योंकि हरि को भजै सो हरि का होई)।

विशेष—१. अनन्वयोपमा एवं अनुप्रास अलंकार।

बलिहारी गुर आपणैं, द्यौं हाड़ी कै बार।
जिनि मानिष तैं देवता, करत न लागी बार ॥२॥

कबीर के समान अन्य भक्तिकालीन कवियों ने भी गुरुमहिमा पर बल दिया है, तुलना कीजिये—

"बन्दौं गुरु पद कंज, कृपासिंधु नररूप हरि।
महामोह तम पुंज, जासु बचन रविकर निकर ॥"—तुलसी

शब्दार्थ—आपणैं=अपने, हाड़ी=शरीर (अस्थिचर्ममय)।

मैं इस शरीर को अपने गुरु के ऊपर वार न्यौछावर करूं, मैं उनकी बलि बलि जाता हूं, जिन्होंने अत्यन्त अल्प समय में मुझे मनुष्य से देवता बना दिया अर्थात् मेरी मानवीय दुर्बलताओं को नष्टकर मुझे दिव्यगुण युक्त कर दिया।

सतगुर की महिमा अनंत, अनँत किया उपगार।
लोचन अनंत उघाड़िया, अनँत दिखावणहार ॥३॥

शब्दार्थ—अनँत=अनन्त। लोचन अनँत=ज्ञान चक्षु, प्रज्ञा-चक्षु। अनँत=ब्रह्म।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सद्गुरु की महिमा अपरम्पार है, उन्होंने मेरे साथ महान् उपकार किया है। उन्होंने मेरे (चर्मचक्षुओं के स्थान पर) ज्ञान चक्षु खोल दिये, दिव्य-दृष्टि प्रदान कर दी जिसके द्वारा उस अनन्त ब्रह्म के दर्शन हो गये।

विशेष—१. यमक अलंकार। २. तुलना कीजिए—

"श्री गुरु पद नख मणिगण जोती। सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होता॥"

—'रामचरित मानस'

राम नाम कै पटंतरै, देबे कौं कुछ नांहि।
क्या ले गुर संतोषिए, हौंस रही मन मांहि॥४॥

शब्दार्थ—पटंतरै=बदले में।

गुरु ने राम-नाम का जो अमूल्य मन्त्र दिया है उसके बदले में देने के लिये मेरे पास कुछ नहीं है, क्योंकि उस राम नाम के सम्मुख समस्त वस्तुएं तुच्छ और हेय हैं, फिर भला मैं क्या देकर गुरुदेव को सन्तुष्ट करूं—यही अभिलाषा मन में हुमक कर रह जाती है।

सतगुर के सदकै करूं दिल अपणीं का साछ।
कलियुग हम स्यूं लड़ि पड़्या मुहकम मेरा बाछ॥५॥

शब्दार्थ—साछ=साक्षी। वाछ=रक्षक।

मैं सद्गुरु पर प्राणपण से न्यौछावर हूं एवं अपने हृदय को साक्षी करके कहता हूं कि कलिकाल अर्थात् विविध मायामोह के प्रपंच मुझसे जूझ रहे हैं, पापों का और मेरे मन का संघर्ष चल रहा है किन्तु शक्तिसम्पन्न गुरुवर मेरे रक्षक हैं—अतः वे पाप-पुंज मुझे परास्त नहीं कर सकते।

विशेष—महाकवि विशाखदत्त ने अपने 'मुद्राराक्षस' नाटक में गुरु का महत्व वर्णन इस प्रकार किया है—

"इह विरचयन् साध्वीं शिष्यः क्रियां न निवार्यते।
त्यजति तु यदा मार्गं मोहात्तदा गुरुरङ्कुशः॥"

(जब तक शिष्य ठीक काम करता है उसे उस काम से नहीं हटाया जाता। जब वह अज्ञान-वश मार्ग को छोड़ देता है तभी गुरु उसके लिए अंकुश-समान हो जाता है, अर्थात् उसे सन्मार्ग में प्रवृत्त करता है।)

सतगुर लई कमांण करि, बांहण लागा तीर।
एक जु बाह्या प्रीति सूं, भीतरि रह्या सरीर॥६॥

सद्गुरु ने हाथ में धनुष धारण कर लिया एवं तीरों की वर्षा करने लगे अर्थात् अध्यवसायपूर्वक, प्रयत्नपूर्वक शिष्य को उपदेश देना प्रारम्भ कर दिया। इन उपदेश वाणों में एक वाण इस प्रकार प्रेमपूर्वक चलाया जिसने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अंतर को बेधकर हृदय में घर कर लिया। हृदय तक बाण को पहुंचने के लिये मध्य के समस्त अंधावरण बेधने पड़े हैं, इसीलिए वह हृदय में जाकर रह गया। यह बाण था प्रेम का।

सतगुर साँचा सूरिवाँ, सबद जु बाह्या एक।
लागत ही मैं मिल गया, पड़्या कलेजै छेक ॥७॥

सद्गुरु सच्चे शूरवीर हैं। जिस प्रकार रणभूमि में शूर अपने विरोधी-पक्ष को बाण-वर्षा से परास्त कर देता है, उसी प्रकार उस सद्गुरु रूपी शूर ने 'शब्द' (उपदेश) का एक बाण जो चलाया तो उसके लगते ही मैं अर्थात् अहं नष्ट हो गया अथवा उसके लगते ही मेरा आत्मस्वरूप से साक्षात्कार हो गया। उस बाण के लगते ही हृदय में प्रेम की टेक का छिद्र हो गया। तात्पर्य यह है कि यह प्रेम उस सद्गुरु के उपदेश रूपी बाण का ही परिणाम है।

विशेष—१. अलंकार—सांगरूपक।

सतगुर मार्या बाण भरि, धरि करि सूधी मूठि।
अंगि उघाड़ै लागिया, गई दवा सूँ फूटि ॥८॥

८. सद्गुरु ने साधक के ऊपर यह उपदेश-बाण पूर्ण शक्ति से खींचकर एवं मूठ को लक्ष्योन्मुख सीधी कर मारा जिससे दावाग्नि सी फूट पड़ी, समस्त वासना, माया आदि जल-जल कर क्षार होने लगे एवं साधक शरीर के वस्त्र, माया आदि आवरण, उतार कर फेंकने लगा अर्थात् उसका वस्तुस्थिति से साक्षात्कार हो गया।

विशेष—१. उपमा एवं सांगरूपक अलंकार।

हँसै न बोलै उनमनीं, चंचल मेल्ह्या मारि।
कहै कबीर भीतरि भिद्या, सतगुर कै हथियारि ॥९॥

योग की उत्मन दशा का वर्णन करते हुए कबीर दास जी कहते हैं कि मन की चंचल वृत्तियों को समाप्त कर सद्गुरु के उस उपदेश (प्रेम का) बाण ने हृदय को वेध दिया। परिणामस्वरूप शिष्य न हंसता है और न बोलता है अर्थात् साँसारिक हास-विलास तथा राग विराग से असम्पृक्त हो गया है।

गूंगा हूवा बाबला, बहरा हुआ कान।
पाऊँ थैं पंगुल भया, सतगुर मार्या बाण ॥१०॥

सद्गुरु के उपदेश-बाण के लगते ही शिष्य गूंगा, पागल, कानों से बहरा और पैरों से लंगड़ा हो गया। भाव यह है कि शिष्य वाणी का दुरुपयोग व्यर्थ के वाद-विवाद में नहीं करता एवं उसके कान भी प्रेम भक्ति-चर्चा के अतिरिक्त अन्य विषयों के लिये बहरे हैं एवं साँसारिक प्रयत्न से विरत होने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के कारण लंगड़ा हो गया इस विशेष स्थिति के कारण ही उसे पागल बता गया है।

पीछैं लागा जाइ था, लोक बेद के साथि।
आगैं थैं सतगुर मिल्या, दीपक दीया हाथि ॥११॥

मैं (शिष्य) लोक एवं वेदविहित मार्ग का अंधानुकरण करता रहा था किन्तु आगे पथ में गुरुदेव मिल गये और उन्होंने ज्ञान का दीपक हाथ में दे दिया जिससे मैं अपना पंथ स्वयं खोज कर लक्ष्य (ब्रह्म प्राप्ति) त पहुंच सकूं।

विशेष—सांगरूपक एवं रूपकातिशयोक्ति अलंकार।

दीपक दीया तेल भरि, बाती दई अघट्ट।
पूरा किया बिसाहुणां बहुरि न आँवौं हट्ट ॥१२॥

सद्गुरु ने प्रेमरूपी तैल से परिपूर्ण एवं सर्वदा रहने वाली ज्ञा वर्तिका से युक्त दीपक मुझे प्रदान किया। इसके प्रकाश में संसार रूपी बाज में मैंने कर्मों का समस्त क्रय-विक्रय उपयुक्त रीति से कर लिया। अब मैं पु इस बाजार में नहीं आऊंगा।

विशेष—१. अलंकार—सांगरूपक एवं रूपकातिशयोक्ति। २. कबीर पुनर्जन्म एवं आवागमन में विश्वास का परिचय प्राप्त होता है।

ध्यान प्रकास्या गुर मिल्या, सो जिनि बीसरि जाइ।
जब गोबिंद कृपा करी, तब गुर मिलिया आइ ॥१३॥

गुरुदेव से भेंट होने पर हृदय में ज्ञान का प्रकाश हो गया। ज्ञान स्वरूप गुरु से विमुख नहीं होना चाहिये। यह प्रभु कृपा का ही फल कि गुरुवर मुझे मिल गये।

विशेष—१. सद्गुरु की प्राप्ति के लिये कबीर भगवत्कृपा को आवश्य मानते हैं।

कबीर गुर गरवा मिल्या, रलि गया आटैं लूंण।
जाति पांति कुल सब मिटे, नांव धरौगे कौंण ॥१४॥

कबीर कहते हैं कि मुझे गौरवमय गुरुदेव के दर्शन हुए, उन्होंने अ ज्ञानस्वरूप में मुझे इसी प्रकार एक कर लिया, अपने में मिला लिया, आटे में नमक मिल जाता है। गुरुदेवं से इस प्रकार एक हो जाने पर स्वतन्त्र अस्तित्व न रह गया और मेरे स्वतन्त्र व्यक्तित्व के बोधक जाति-पां कुल आदि सब नष्ट हो गये, अब तुम (संसार) मुझे गुरु से पृथक् मानने लिये किस नाम से पुकारोगे? भाव यह है कि अब मेरा गुरु के ज्ञानस्वरू साथ ऐक्य स्थापित हो गया है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जाका गुर भी अंधला, चेला खरा निरंध ।
अंधै अधा ठेलिया, दून्यूं कूप पड़ंत ॥१५॥

यहाँ कबीरदास जी गुरु की योग्यता पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि जिस शिष्य का गुरु भी अन्धा है, अज्ञानी है एवं शिष्य भी पूर्णरूपेण अन्धा, मूढ़ है, वे दोनों लक्ष्य तक नहीं पहुंच सकेंगे। अन्धा अन्धे को, अज्ञानी अज्ञानी को विना देखे ही ठेल-ठालकर मार्ग पर बढ़ायेगा तो परिणाम यह होगा कि दोनों ही पतन के कुएं में गिर पड़ेंगे।

विशेष—यहां शब्दों की अभिव्यंजन शक्ति दर्शनीय है।

नां गुर मिल्या न सिष भया, लालच खेल्या डाव ।
दून्यूं बूड़े धार मैं, चढ़ि पाथर को नाव ॥१६॥

न तो ज्ञानी सद्गुरु ही मिला और न शिष्य वास्तविक परिभाषा में शिष्य अर्थात् ज्ञानाभिलाषी ही था। दोनों ज्ञान के नाम पर लालच का दांव खेलते रहे, एक दूसरे को धोखे में डालने का प्रयास करते रहे और इस प्रकार दोनों मंझधार में ही डूब गये, तट—लक्ष्य—तक नहीं पहुंच पाये; जैसे कोई पत्थर की नाव का आश्रय लेकर सागर तरने का प्रयास करे तो बीच ही में डूब जाय।

विशेष—उपमा अलंकार।

चौसठि दीवा जोइ करि, चौदह चंदा मांहि ।
तिहिं घरि किसकौ चानिणौं, जिहि घरि गोबिंद नांहि ॥१७॥

यदि कोई अपने हृदय-मन्दिर में चौंसठ कलाओं की ज्योति प्रकाशित कर ले और चन्द्रमा की चौदह कलाओं के समान प्रकाशपूर्ण चौदह विद्याओं का उज्ज्वल प्रकाश विकीर्ण कर ले अर्थात् पूर्ण ज्ञानी हो जाय, किन्तु प्रभु भक्ति के अभाव में वहाँ अन्धकार ही अन्धकार है। एकमात्र भगवान् ही हृदय में अलौकिक प्रकाश उत्पन्न कर सकते हैं।

विशेष—१. कबीर यहाँ ज्ञान और भक्ति के सम्बन्ध के पोषक हैं, और भक्ति को ज्ञान के ऊपर मानते हैं। २. चन्द्रमा की चौदह कलाएं कहने से कबीर पर इस्लामी संस्कृति का प्रभाव परिलक्षित होता है।

निस अँधियारी कारणैं, चौरासी लख चंद !
अति आतुर ऊदै किया, तऊ दिष्टि नहिं मंद ॥१८॥

अपनी अज्ञान की अन्धतमसा के कारण तुझे चौरासी लाख योनियों में भटक कर उनकी यातना सहनी पड़ी और तब बड़े कष्ट से मानव

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

योनि में आया, मूर्ख फिर भी तेरी आंखें नहीं खुलतीं, तू फिर भी कुमार्ग की ओर ही बढ़ रहा है।

विशेष—कबीर पर वैष्णव प्रभाव देखा जा सकता है।

भली भई जु गुर मिल्या, नहीं तर होती हांणि।
दीपक दिष्टि पतंग ज्यूं, पड़ता पूरी जांणि ॥१९॥

शब्दार्थ—नहीं तर=अन्यथा। पूरी जांणि=सर्वस्व समझकर।

साधक कहता है कि यह अच्छा ही हुआ कि गुरुदेव मिल गये अन्यथा बड़ी भारी हानि होती। जिस प्रकार शलभ दीप-शिखा को सर्वस्व जान उस पर जल मरता है उसी प्रकार मैं भी सांसारिक माया आकर्षणों को सर्वस्व समझकर पतंगे-कीड़े के समान जलकर नष्ट हो जाता।

माया दीपक नर पतंग, भ्रमि भ्रमि इवैं पड़ंत।
कहै कबीर गुर ग्यान थैं, एक आध उबरंत ॥२०॥

माया रूपी दीपक है और मानव पतंगा है जो मंडरा-मंडरा कर आकर्षित होकर, उसी दीपशिखा पर गिरकर विनष्ट होता है। कबीर कहते हैं कि इस माया दीप के आकर्षण से कोई एकाध विरले ही गुरु से ज्ञान प्राप्त कर बच पाते हैं।

सतगुर बपुरा क्या करै, जे सिषही मांहै चूक।
भावै त्यूं प्रमोधि ले, ज्यूं बंसि बजाई फूक ॥२१॥

यदि शिष्य में ही त्रुटि है तो बेचारा ज्ञानी गुरु भी क्या कर सकता है। चाहे उसे किसी प्रकार से भी समझा दो किन्तु सब यों ही क्षण में बाहर निकल जाता है। जैसे वंशी में फूंक क्षण भर रह कर वाहर निकल जाती है और वह बांसुरी फिर काष्ठ की काष्ठ अर्थात् निर्जीव (शिष्य पक्ष में मूढ़) रह जाती है।

ससै खाया सकल जुग, ससा किनहुं न खद्ध।
जे बेधे गुर अष्पिरां, तिनि संसा चूणि चुणि खद्ध ॥२२॥

माया के भ्रम ने सर्वदा से समस्त जगत् को विनष्ट किया है किन्तु इस भ्रम को कोई नहीं नष्ट कर पाया। गुरु उपदेश की वाणी से प्रभावित जो लोग थे उन्होंने इस माया-भ्रम को चुन-चुनकर नष्ट कर दिया।

चेतनि चौकी बैसि करि, सतगुर दीन्हाँ धीर।
निरभै होइ निसंक भजि, केवल कहै कबीर ॥२३॥

कबीर कहते हैं कि सद्गुरु ने ज्ञान की चौकी पर बैठकर शिष्य को प्रबोध देकर धैर्य प्रदान कर कहा कि तुम निर्मल चित्त हो, सांसारिक-त्रासों से भय रहित होकर केवल ईश्वर का ही भजन करो।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सतगुर मिल्या त का भया, जे मन पाड़ो भोल।
पासि बिनंठा कप्पड़ा, क्या करै बिचारी चोल ॥२४॥

जिन लोगों के चित्त भ्रम युक्त हैं उन्हें यदि सद्गुरु मिल भी गये तो या लाभ होगा ? वे ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते। यदि वस्त्र कों रंगने से पूर्व ट देने में ही वह नष्ट हो जाय तो सुन्दर रंग देने में समर्थ मजीठ विचारा या कर सकता है—फटे हुए वस्त्र को किस प्रकार सुन्दर रंग दे। त्रुटिपूर्ण ष्य के साथ यही अवस्था गुरु की है।

बूड़े थे परि ऊबरे, गुर की लहरि चमंकि।
भेरा देख्या जरजरा, (तब) ऊतरि पड़े फरंकि ॥२५॥

हम तो इस भवसागर में डूबने को ही थे कि गुरु कृपा की एक लहर हमें पार लगा दिया। उस गुरु कृपा के द्वारा ही हमने देखा कि जिस वेद-स्त्र आदि के वेड़े से हम संसार-सागर पार करना चाहते थे, वह तो जीर्ण-र्ण है, अतः हम उससे तत्क्षण कूद पड़े और प्रभु-भक्ति का सम्बल ग्रहण या।

गुर गोबिंद तौ एक है, दूधा यहु आकार।
आपा मेट जीवत मरै, तौ पावै करतार ॥२६॥

गुरु और गोविन्द (ब्रह्म) तो एक ही हैं, उनमें कोई अन्तर नहीं है। अपना मायाजनित शरीर ही इस भासित द्वैत का कारण है। यदि हम इस त्व, 'अयं निजः परो वा' की भावना को समाप्त कर जीवन्मुक्त हो जायें तो —ब्रह्म—की प्राप्ति हो सकती है।

विशेष—तुलना कीजिए—

"सोऽहं त्वं हो जाय तभी वह सोऽहं है।
सोऽहं का त्वं मे लय ही लक्ष्य परम हैं॥"

कबीर सतगुर नाँ मिल्या, रही अधूरी सीष।
स्वाँग जती का पहरि करि, घरि घरि मांगै भीष ॥२७॥

कबीरदास जी कहते हैं कि यदि शिष्य को सद्गुरु की प्राप्ति नहीं ो तो उसकी शिक्षा अपूर्ण रह जाती है। तपस्वी वेश धारण करके द्वार द्वार भिक्षा मांगने वाले सद्गुरु नहीं हो सकते।

सतगुर साँचा सूरिवाँ, तातैं लोहिं लुहार।
कसणो दे कंचन किया, ताइ लिया ततसार ॥२८॥

शब्दार्थ—तात=तप्त। लोहिं=लोहा। लुहार=लोहे का कार्य ने वाला।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सद्गुरु सच्चा शूरवीर है जो शिष्य को अपने प्रयत्नों से उसी प्रकार बना देता है जिस प्रकार लुहार तप्त लोहे को पीट-पीट कर सुघड़ और आकार देता है। आगे कबीर कहते हैं कि सद्गुरु शिष्य को परीक्षा की में तपा-तपा कर स्वर्णकार की भाँति उसे इस योग्य बना देते हैं कि वह कंचन की कसौटी पर खरा उतर कर ब्रह्म (तत्व) को प्राप्त कर ले।

थापणि पाई थिति भई, सतगुर दीन्हीं धीर।
कबीर हीरा-बणजिया, मानसरोवर तीर ॥२६॥

शब्दार्थ—थापणि=शिष्य रूप में अपनी स्थापना। बणजि व्यापार।

सद्गुरु से शिष्य रूप में स्वीकृति पाकर, उनका शिष्यत्व ग्रहण कर, चंचल मन स्थिर हो गया और उन्होंने मुझे धैर्य प्रदान किया। इस एकाग्रता से मैं मनरूपी सरोवर पर (हंसों की भांति) मुक्ता चुग रहा हूं।

विशेष—मन:साधना की महत्ता प्रकट की गई है।

निहचल निधि मिलाइ तत, सतगुर साहस धीर।
निपजी मैं साझी घणां, बांटै नहीं कबीर ॥३०॥

शब्दार्थ—निहचल निधि=ब्रह्मा। तत=आत्मा। घण=बहुत से।

सद्गुरु के साहस और धैर्य ने आत्मा को ब्रह्म से मिला दिया। महामिलन से जो सुख उत्पन्न हुआ उसका भागीदार बनने के लिए व्यक्ति व्याकुल हैं किन्तु कबीर उसे बांटने के लिए प्रस्तुत नहीं क्योंकि परमतत्व का आनन्द दूसरे के द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता अतः आनन्द को प्राप्त करने के लिए स्वयं की आत्मा का ब्रह्म से साक्षात् आवश्यक है।

चौपड़ि माँड़ी चौहटै, अरध उरध बाजार।
कहै कबीरा राम जन, खेलौ संत बिचार ॥३१॥

शब्दार्थ—चौपड़ि=चौपड़ का खेल। माँडी=बिछी है।

शरीर के चौराहे त्रिकुटी पर चौपड़ बिछी है। उसके नीचे एवं दोनों ओर चक्रों का बाज़ार लगा हुआ है (योगियों ने शरीर के षट्चक्रों की स्थिति मानी है जो मूलाधार से प्रारम्भ होकर शीर्ष में ब्रह्म तक बिछे हुए हैं। इन षट्चक्रों का भेदन करके ही कुण्डलिनी ब्रह्मरन्ध्र पहुंचती है जहां अमृत निस्सृत होता है)। कबीरदास जी कहते हैं कि भक्त—सन्त गण इस खेल को विचारपूर्वक खेलते हैं अर्थात् योगसाधना में होते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पासा पकड़्या प्रेम का, सारी किया सरीर।
सतगुर दाव बताइया, खेलै दास कबीर ॥३२॥

प्रेम के पांसे से शरीर रूपी चौपड़ पर भक्त कबीर ने खेल प्रारम्भ कर दिया है और सद्गुरु दाव बताते जा रहे हैं। भाव यह है कि साधक ने प्रेम का आश्रय लेकर गुरु के निर्देशन में योगसाधना प्रारम्भ कर दी है।

सतगुर हम सूँ रीझि करि, एक कह्या प्रसंग।
बरस्या बादल प्रेम का, भीजि गया सब अंग ॥३३॥

रीझि करि=प्रसन्न होकर।

सद्गुरु ने हमसे प्रसन्न होकर प्रभु-भक्ति की ऐसी मनोरम चर्चा छेड़ी कि प्रेम का बादल बरस गया जिससे शरीर का अंग-प्रत्यंग उस प्रेम जल से सिक्त हो गया।

कबीर बादल प्रेम का, हम पर बरष्या आइ।
अंतरि भीगी आत्मां, हरी भई बनराइ ॥३४॥

प्रभु-प्रेम का बादल बरसा जिससे अन्तरात्मा उस प्रभु प्रेम जल से भीग गई और उसी के आनन्द में शरीर रूपी वन प्रदेश में भी हरियाली, प्रफुल्लता छा गई क्योंकि "हृदय की अनुकृति वाह्य उदार"।

विशेष—असंगति अलंकार।

पूरे सूँ परचा भया, सब दुख मेल्या दूरि।
निर्मल कीन्हीं आत्मां, ताथैं सदा हजूरि ॥३५॥

सर्वसमर्थ पूर्ण गुरु से मेरा परिचय हो गया, उन्होंने समस्त दुःख दूर कर दिये। उन दुःखों के अभाव में आत्मा निर्मल होकर सर्वदा प्रभु-भक्ति में संलग्न रहती है।

---

(२) सुमिरण कौ अंग

कबीर कहता जात हूँ, सुणता है सब कोइ।
राम कहें भला होइगा, नहिं तर भला न होइ ॥१॥

कबीरदास जी कहते हैं कि मैं यह निरन्तर प्रस्थापित करता आ रहा हूँ कि राम नाम जपने से ही कल्याण होगा, अन्यथा आचरण में कल्याण सिद्ध नहीं होगा; इस वात को सुनते तो सब हैं किन्तु आचरण सब नहीं करते।

कबीर कहै मैं कथि गया, कथि गया ब्रह्म महेस।
राम नाँव ततसार है, सब काहू उपदेस ॥२॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कबीरदास कहते हैं कि मैं यह कह चुका हूं कि राम नाम (भ
नाम) ही समस्त तत्वों का सार है, यही सबका उपदेश है। इसी त
कथन ब्रह्मा एवं शिव ने किया है

विशेष –कबीर देवतावाद के विरोधी हैं किन्तु यहां वे देवों की
देकर अपना सिद्धांत पोषण करते हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं कि कबीर देव
का समर्थन कर रहे हैं, वे तो केवल अपनी मान्यता को परम्परानुमोदित
करके उसकी सत्यता का प्रस्थापन मात्र करना चाहते हैं।

तत तिलक तिहूँ लोक मैं, राम नाँव निज सार।
जन कबीर मस्तक दिया, सोभा अधिक अपार ॥३॥

सार तत्व राम नाम तीनों लोकों में सर्वश्रेष्ठ है। उसी को दास
ने अपने मस्तक पर धारण किया है अर्थात् उसे शिरसा स्वीकार कि
भाव यह है कि कबीर चन्दनादि का तिलक धारण करना नहीं चाहते
राम नाम ही उनके लिए तिलक—सर्वोपरि है।

भगति भजन हरि नाँव है, दूजा दुक्ख अपार।
मनसा बाचा क्रमनां, कबीर सुमिरण सार ॥४॥

प्रभु-भक्ति और भजन जो कुछ भी है वह उनका नाम स्मरण
इसके लिए जो अन्य साधन बताये गये हैं वे अमित दुःखों से परिपूर्ण
कबीर कहते हैं कि मन, वाणी और कर्म से सर्वात्मना प्रभु नाम स्मरण ह
श्रेष्ठ है।

कबीर सुमिरण सार है, और सकल जंजाल।
आदि अंति सब सोधिया, दूजा देखौं काल ॥५॥

कबीर कहते हैं कि एकमात्र प्रभु नाम स्मरण ही समस्त तत्वों क
है और इसके अतिरिक्त हरि भक्ति के अन्य साधन जाल (जिनमें से नि
का प्रयत्न करने पर और फंस जाता है)। मैंने उनका आदि और अ
अथवा अथ से इति तक अवलोकन करके देख लिया कि वे काल स्वरूप वि
कारक हैं।

अलंकार—रूपक।

च्यंता तौ हरि नाँव की, और न चिंता दास।
जे कुछ चितवैं राम बिन, सोइ काल की पास ॥६॥

भक्त को यदि कुछ चिन्ता रहती है तो केवल हरिनाम स्मरण
अन्य कोई चिन्ता नहीं। यदि राम नाम के अतिरिक्त कुछ चिन्तन कर
वह मृत्यु के फन्दे के समान है अर्थात् उसके नाश का कारण है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पंच सँगी पिव पिव करै, छठा जु सुमिरे मंन।
आई सूति कबीर की, पाया राम रतंन ॥७॥

कबीरदास की पांचों ज्ञानेन्द्रियों एवं छठे मन ने प्रभु के प्रिय नाम की रट (चातक के समान, क्योंकि 'पीव' शब्द है) लगा रखी है और ऐसी स्थिति में कबीर अपनी समाधि अवस्था में पहुंच गये हैं जहां उन्हें राम के अतिरिक्त और कोई नहीं सूझता अतः कहते हैं कि मैंने राम रूपी रत्न प्राप्त कर लिया है।

विशेष—द्वितीय चरण का अर्थ यह भी हो सकता है कि कबीर तो शुक्ति (सूति) हो गया, एवं 'पीव, पीव' की रटन से स्वाति नक्षत्र में वर्षा (प्रभु प्रेम) होने के कारण उस शुक्ति में प्रेम जल पड़कर राम रूपी रत्न बन गया है। यह कवि-समय है कि स्वाति नक्षत्र की बूंद शुक्ति में पड़ने पर वह मोती बन जाती है।

मेरा मन सुमिरै राम कूं, मेरा मन रामहिं आहि।
अब मन रामहिं ह्वै रह्या, सीस नवावौं काहि ॥८॥

कबीर कहते हैं कि राम नाम का स्मरण करते-करते मेरा मन स्वयं ही राम में ही रम गया है और इससे भी आगे अब वह स्वयं राम हो गया है, जब स्वयं मन ही राम हो गया तो सीस किसे नवाया जाय अर्थात् भक्त और भगवान् ही नाम स्मरण से एक हो गये हैं।

विशेष—यह भक्ति की चरम उपलब्धि है जब भक्त और भगवान् एकाकार हो जाते हैं। यहीं शंकर के अद्वैत की 'अहं ब्रह्मास्मि' की भावना आ जाती है।

तूं तूं करता तूं भया, मुझ मैं रही न हूं।
बारी फेरी बलि गई, जित देखौं तित तूं ॥९॥

हे प्रभु मैं तेरा नाम स्मरण करते-करते तेरे स्वरूप में ही विलीन हो गया, मुझमें किंचित् भी अहंत्व शेष नहीं रह गया अर्थात् मुझे अपने पृथक् अस्तित्व का ज्ञान ही न रहा। अब मैं प्रभु तेरे ऊपर बार-बार बलिहारी जाता हूं क्योंकि जिधर देखता हूं, तू ही तू दृष्टिगत होता है।

विशेष—१. 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' की भावना से साम्य है। २. अन्यत्र भी कबीर ने कहा है—

"लाली मेरे लाल की, जित देखूं तित लाल।
लाली देखन मैं गयी, मैं भी हो गयी लाल ॥"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कबीर निरभै राम जपि, जब लग दीवै बाति ।
तेल घट्या वाती बुझी, (तब) सोवैगा दिन राति ।।१०।।

कबीर कहते हैं कि हे मनुष्य जब तक तेरे शरीर रूपी दीपक में जीवन रूपी वर्तिका है तब तक तू साँसारिक भ्रमों एवं चिन्ताओं से मुक्त होकर राम नाम का स्मरण कर। व्यर्थ आलस्य—सुषुप्ति—में अपना जीवन मत गंवा क्योंकि जब श्वास रूपी तेल समाप्त हो जाने पर जीवन-वर्तिका बुझ जायेगी तब अहर्निश चिरनिद्रा में ही सोवेगा अर्थात् प्रभु भक्ति के लिए ही तुझे यह जीवन मिला है।

कबीर सूता क्या करे, जागि न जपै मुरारि ।
एक दिनां भी सोवणां, लंबे पांव पसारि ।।११।।

शब्दार्थ—सूता=सोता हुआ, अज्ञान-लिप्त ।

कबीरदास जी कहते हैं कि हे मनुष्य तू अज्ञान-निद्रा में पड़ा क्या कर रहा है, जागकर—ज्ञानयुक्त होकर प्रभु का भजन क्यों नहीं करता। यह विश्राम तो फिर भी हो सकता है क्योंकि अन्ततः एक न एक दिन अवश्य ही चिरनिद्रा में लीन होना है।

कबीर सूता क्या करै, काहे न देखै जागि ।
जाका संग तैं बीछुड़्या, ताही के संग लागि ।।१२।।

कबीर कहते हैं कि हे मनुष्य तू सोता हुआ क्या कर रहा है, अज्ञान में क्यों पड़ा हुआ है, ज्ञान की चेतना प्राप्त कर अपनी वास्तविक स्थिति को क्यों नहीं देखता। तू जिस अंशी का अंश है उसी का साक्षात्कार कर अपनी प्रकृत अवस्था को प्राप्त कर।

विशेष—आत्मा परमात्मा का अंश है, अद्वैतवाद के समान कबीर की भी यही मान्यता है।

कबीर सूता क्या करै, उठि न रोवै दुक्ख ।
जाका बासा गोर मैं, सो क्यूं सोवै सुक्ख ।।१३।।

कबीर कहते हैं हे मनुष्य तू अज्ञानावस्था में पड़ा हुआ क्या कर रहा है, अपने उद्धार का प्रयत्न क्यों नहीं करता? जिससे जागने पर (दूसरा जन्म लेने पर) तुझे अपने दुखों के लिए रोना न पड़े। भला जिसका मृत्यु के मुख में सर्वदा निवास रहता है उस मनुष्य को सुख की निद्रा कैसे आ सकती है। अतः तू प्रभु-भजन कर, ज्ञान सम्पन्न हो अपना जन्म सुधार ले।

कबीर सूता क्या करै, गुण गोबिन्द के गाइ ।
तेरे सिर परि जम खड़ा, खरच कदे का खाइ ।।१४।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कबीर कहते हैं हे मनुष्य तू अज्ञानावस्था में क्यों पड़ा हुआ है, प्रभु के गुणों का गान कर। यह थोड़ी सी ही तेरी आयु है फिर यह कार्य नहीं होने का क्योंकि यमराज तेरे सिर पर किसी श्रेष्ठी साहूकार के समान खड़ा हुआ तकादा कर रहा है।

कबीर सूता क्या करै, सूताँ होइ अकाज।
ब्रह्मा का आसण खिस्या, सुणत काल की गाज ॥१५॥

कबीर कहते हैं कि हे मनुष्य तू सोता हुआ, अज्ञानावस्था में क्या कर रहा है? इस अज्ञान से तो तेरी हानि ही हो रही है, क्योंकि आयु अल्प है और कालचक्र किसी को भी नहीं छोड़ता, उसकी गति के भय से ब्रह्मा का आसन भी खिसक गया है—मनुष्यों की तो बात ही क्या।

विशेष—'पन्त' ने भी कालचक्र का ऐसा ही भयानक वर्णन किया है।

केसौ कहि कहि कूकिये, ना सोइयै असरार।
रात दिवस कै कूकणैं, (मत) कबहूँ लगै पुकार ॥१६।

कबीर कहते हैं कि हे मनुष्य तू अहर्निश प्रभु का नाम ही लिया कर एवं अज्ञान में लिप्त होकर चैतन्य हीन मत हो। रातदिवस की इस नाम-स्मृति की ध्वनि न जाने कब प्रभु के कान में पड़ जाय और वे तुझ पर कृपा करें।

जिहि घटि प्रीति न प्रेम रस, फुनि रसना नहीं राम।
ते नर इस संसार में, उपजि षये बेकाम ॥१७॥

जिनके हृदय में न तो प्रेम ही है और न प्रेमानन्द और न जिनकी वाणी राम नाम का उच्चारण करती है, वे मनुष्य इस संसार में आकर व्यर्थ ही नष्ट हो गये। उन्होंने अपने जीवनोद्देश्य को पूर्ण नहीं किया।

कबीर प्रेम न चषिया, चषि न लीया साव।
सूनें घर का पाहुणां, ज्यूं आया त्यूं जाव ॥१८॥

शब्दार्थ—साव=स्वाद। पाहुणां=अतिथि।

कबीर कहते हैं कि हे मनुष्य तैंने प्रेम—भक्ति—का अनुभव किया ही नहीं और उसके अनुभव से वंचित होने पर तू उसका आनन्द भी नहीं उठा सका। इस प्रकार तूने अपना जीवन व्यर्थ ही इस प्रकार नष्ट कर दिया जिस प्रकार सूने गृह में अतिथि अनादृत ही लौट जाता है—उसे कुछ प्राप्त नहीं होता है।

विशेष—जगत् की शून्य गृह से उपमा देकर कबीर उसको मिथ्या ही बताते हैं, यह विचार शंकर के 'जगन्मिथ्या आकाश-नैल्यवत्' से पर्याप्त साम्य रखता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पहली बुरी कमाइ करि, बांधी विष की पोट।
कोटि करम फिल पलक मैं, (जब) आया हरि की ओट ॥१९॥

शब्दार्थ—फिल=समाप्त, नष्ट। ओट=शरण।

मनुष्य तूने अपने पूर्वजन्म में संचित कुकर्मों की विष की पोटली बांध र थी अर्थात् अतिशय पाप एकत्रित कर रखे थे किन्तु वे करोड़ों पातक प्रभु शरण में आते ही पल भर में समाप्त हो गये।

कोटि क्रम पेलै पलक मैं, जे रंचक आवै नाउँ।
अनेक जुग जे पुन्नि करै, नहीं राम बिन ठाउँ ॥२०॥

यदि तनिक भी प्रभु का नाम स्मरण किया जाय तो मनुष्य के कर कुकर्म—पाप—क्षण भर में विनष्ट हो जाते हैं। यदि कोई अनेक युगों पुण्य करके बिना राम नाम के अपना उद्धार चाहे तो असम्भव है, राम नाम आश्रय विना शान्ति कहां ?

जिहि हरि जैसा जांणियां, तिन कूं तैसा लाभ।
ओसों प्यास न भाजई, जब लग धसै न आभ ॥२१॥

जिन्होंने प्रभु को जिस रूप में जाना है, उन्हें वैसे ही प्राप्ति होती केवल मात्र ओस चाटने से तृषित की तृषा शान्त नहीं होगी, उसका शमन जल में पैठकर ही सम्भव है। भाव यह है कि हरिभक्ति के अन्य साधन सदृश हैं जिसमें जल के कुछ ही कण हैं, मनुष्य को पूर्ण परितृप्ति हरि के अगाध जल के आश्रय से ही प्राप्त हो सकती है।

राम पियारा छाँड़ि करि, करै आन का जाप।
वेस्वां केरा पूत ज्यूं, कहै कौन सूँ बाप ॥२२॥

जो मनुष्य परम प्रिय राम के अतिरिक्त अन्य अनेक देवताओं भजन करता है उसकी स्थिति वेश्यापुत्र के समान है जो किसी एक को अ पिता (पालक) नहीं कह सकता।

विशेष—यहाँ कबीर ने दिखाया है कि आत्मा का सनातन सम्बन्ध के मात्र ब्रह्म से ही है, उसे अन्य देवताओं की पूजा में प्रवृत्त करना व्यभिचार इस प्रकार वे बहुदेववाद के विरोधी हैं।

कबीर आपण राम कहि, औरां राम कहाइ।
जिहि मुखि राम न ऊचरे, तिहि मुख फेरि कहाइ ॥२३॥

कबीर कहते हैं कि हे मनुष्य तू स्वयं भी राम नाम का उच्चा कर और अन्यों से भी रामनाम कहलाने का प्रयत्न कर। यदि उनमें से तेरे निर्देश करने पर भी राम नाम का उच्चारण न करें तो उनसे पुनः

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

'राम' कहलाने का आग्रह कर। इससे वह रामनाम स्मरण में प्रवृत्त हो सकेगा।

विशेष—तुलना कीजिए—

"करत करत अभ्यास तें जड़मति होत सुजान"

जैसें माया मन रमैं, यूं जे राम रमाइ।
(तौ) तारा-मंडल छाँड़ि करि, जहाँ के सो तहाँ जाइ ॥२४॥

जिस भाव से मन माया के विविध आकर्षणों में आसक्त होता है उसी उत्कटता और तीव्रता के साथ वह प्रभु में रम जाय तो साधक तारामण्डल—इस भौतिक सृष्टि—के परे जहाँ से आया है वहीं पहुंच जाय अर्थात् ब्रह्म में लीन हो जाय।

विशेष—मन की भगवदासक्ति के लिए तुलसी ने भी कबीर से मिलती-जुलती उपमा दी है—

"कामिहि नारि पियारि जिमि लोभिहिं प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम॥"

लूटि सकै तौ लूटियौ, राम नाम है लूटि।
पीछें ही पछिताहुगे, यहु तन जैहे छूटि ॥२५॥

राम नाम (जैसे सुकृत) की लूट हो रही है, यथाशक्ति जितनी प्राप्त कर सकते हो कर लो क्योंकि यह राम नाम का स्मरण इसी मानव जन्म में सम्भव है। नहीं तो फिर शरीर छूट जाने पर पश्चात्ताप ही शेष रह जायगा कि काश ! हम भी राम नाम जप पाते।

लूटि सकै तौ लूटियौ, राम नाम भंडार।
काल कंठ तें गहैगा, रूंधै दसूं दुवार ॥२६॥

हे मनुष्य ! यदि तू राम नाम रूपी बहुमूल्य रत्न को लूटना चाहता है तो लूट ले, अन्यथा फिर यह अवसर प्राप्त नहीं होगा। फिर तो मृत्यु कण्ठ पकड़ कर तेरे दशों द्वारों को वन्द कर तुझे चेतनाविहीन, जीवनरहित कर देगी।

विशेष—शरीर के दस द्वार—

दो आँख, दो नासिका विवर, दो कर्ण, एक मुख, एक ब्रह्मरन्ध्र, गुदामार्ग और मूत्र मार्ग।

लबा मारग दूरि घर, विकट पथ बहु मार।
कहौ संतौ क्यूं पाइये, दुर्लभ हरि-दीदार ॥२७॥

शब्दार्थ—मार=डाकू, काम वासना। दीदार=दर्शन।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कबीर कहते हैं कि हे संत जनो ! हरि दर्शन अत्यन्त कठिन है क्योंकि उनका निवासस्थान बहुत दूर है, साधना का पथ भी बड़ा जटिल है जिसमें काम आदि डाकुओं के बहुत से भय हैं।

विशेष—'दूरि घर' से ब्रह्म की अगम्यता एवं अगोचरता, 'विकट पंथ' से साधना की कठिन स्थली एवं 'बहु मार' से साँसारिक भयों की ओर इंगित है।

गुण गायें गुण नाम कटै, रटै न राम बियोग।
अह निसि हरि ध्यावै नहीं, क्यूं पावै द्रुलभ जोग ॥२८॥

प्रभु की गुणावलि का गान करने से यह संसार-बंधन समाप्त हो जाता है—इस बात को सुनकर तू प्रभु-वियोग में राम नाम क्यों नहीं रटता। यदि तू अहर्निश प्रभु की नाम-चर्चा नहीं करेगा तो उनके दर्शनों का अप्राप्य संयोग कैसे प्राप्त कर सकेगा ?

कबीर कठिनाई खरी, सुमिरतां हरि-नाम।
सूली ऊपरि नट विद्या, गिरूं त नाहीं ठाम ॥२९॥

२९. कबीर कहते हैं कि हरिनाम स्मरण अर्थात् भक्ति-साधना में कठिनाइयां बहुत हैं। यह नट की उसी कुशलता के समान है जो मृत्यु की सूली पर चढ़कर अपने आंगिक कौशल दिखाता है, यदि वह वहां से गिर जाय तो उसके बचने का कोई उपाय नहीं। इसी प्रकार भक्ति-साधना से पथभ्रष्ट भक्त का भी रक्षक कोई नहीं क्योंकि उसके लोक एवं परलोक दोनों ही नष्ट हो जाते हैं।

कबीर राम ध्याइ लै, जिभ्या सौं करि मंत।
हरि सागर जिनि बीसरे, छीलर देखि अनत ॥३०॥

शब्दार्थ—छीलर=छिछला, उथला।

कबीर कहते हैं कि जिह्वा का सहयोग प्राप्त कर राम नाम का स्मरण कर लो। भक्ति के अन्य साधनों रूपी पोखरों को देखकर लोभवश हरि रूपी सागर को विस्मृत मत करो।

कबीर राम रिझाइ लै, मुखि अंमृत गुण गाइ।
फूटा नग ज्यूं जोड़ि मन, संधे संधि मिलाइ ॥३१॥

कबीर कहते हैं कि तू अपने मुख से राम के अमृतमय गुणों का गान कर उन्हें प्रसन्न कर ले और इस प्रकार उनसे अपना मन मिला जिस प्रकार फटे नग को नग से जोड़ पर मिलाकर दोनों को एक कर दिया जाता है।

विशेष—अंश-अंशी भाव का प्रतिपादन है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कबीर चित चमंकिया, चहुँ दिसि लागी लाइ।
हरि सुमिरण हाथूं घड़ा, बेगे लेहु बुझाइ ॥३२॥

कबीर कहते हैं कि हृदयरूपी चकमक पत्थर के कारण चारों ओर माया के आकर्षणों की अग्नि लग गई है। इस अग्नि को बुझाने के लिये हरि स्मरण रूपी घट हमारे साथ विद्यमान है, अतः इससे इस वासना की अग्नि को शीघ्र बुझा डालो। भाव यह है कि संसार जाल से मुक्ति का एकमात्र उपाय हरि-स्मरण ही है।

---

३. विरह कौ अंग

रात्यूं रूंनी बिरहनीं, ज्यूं बंचौ कूं कुंज।
कबीर अंतर प्रजल्या, प्रगट्या बिरहा पुंज ॥१॥

परम तत्व की विरहिणी आत्मा रात्रि भर इस प्रकार रोती रही जिस प्रकार वियुक्त क्रौंच पक्षी करुण चीत्कार करता रहता है। कबीर जी कहते हैं कि विरह समूह के प्रकट होने से हृदय वियोग-ज्वाला में दग्ध हो रहा है।

अंबर कुंजां कुरलियाँ, गरजि भरे सब ताल।
जिनि थैं गोबिंद बीछुटे, तिनके कौण हवाल ॥२॥

आकाश ने क्रौंच एवं कुररी पक्षियों की विरहानुभूति पर करुणार्द्र हो बरस कर समस्त ताल जल से आपूर्ण कर दिये—इन विरहिणियों की पुकार तो बादल ने सुन भी ली किन्तु जो प्रभु से वियुक्त हैं उनका रक्षक तो (प्रभु के अतिरिक्त) और कोई नहीं है।

चकवी बिछुटी रैणि की, आइ मिली परभाति।
जे जन बिछुटे राम सूं, ते दिन मिले न राति ॥३॥

रात्रि की बिछुड़ी हुई चकवी अपने चकवे से प्रभात के आगमन पर मिल जाती है किन्तु जो राम वियुक्त हैं वे तो दिन या रात कभी भी उनसे नहीं मिल पाते।

विशेष—१. एक प्रकार से कबीर के इस वियोग का उद्दीपन विभाव-वर्णन है जिसमें विरहिणी आत्मा को एक वियुक्तयुग्म का मिलन देखकर अपना मिलना खटकता है।

२. यह विश्वास है कि चकवा और चकवी दिन छिपते ही अलग-अलग होकर एक दूसरे के विरह में तड़पते हैं और प्रभात में मिल जाते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बासुरि सुख, नाँ रैंणि सुख, नाँ सुख सुपिनै माहिं।
कबीर बिछुट्या राम सूं, नाँ सुख धूप न छाँह ॥४॥

कबीर जी कहते हैं कि रामवियोगी को न दिन में और न रात में सुख है और न स्वप्न में—उसे प्रिय की वियोग-व्यथा ही व्यथित किये रहती है। धूप या छांह—कहीं भी उसे सुख प्राप्त नहीं होता।

विशेष—कबीर के उपमान जीवन से लिये गये हैं, इसी आधार पर इस दोहे के निर्माण की ऋतु ग्रीष्म जान पड़ती है। ग्रीष्म में छाँह में व्यक्ति को चैन मिलता है और धूप में बढ़ती है व्याकुलता, किन्तु राम वियोगी को धूप-छाँह दोनों में ही विकलता रहती है।

बिरहनि ऊभी पंथ सिरि, पंथी बूझै धाइ।
एक सबद कहि पीव का, कबर मिलैंगे आइ ॥५॥

ऊभी=खड़ी हुई। पंथसिरि=मार्ग के किनारे।

विरहिणी मार्ग में प्रिय की प्रतीक्षा में खड़ी आते-जाते पथिक से जिस प्रकार उत्कण्ठा सहित प्रिय आगमन का समाचार पूछती है, उसी प्रकार साधक की ब्रह्म-वियुक्त आत्मा गुरु से प्रिय (ब्रह्म की) चर्चा सुनती हुई यह जानना चाहती है कि प्रभु से कब भेंट होगी।

बहुत दिनन की जोवती, बाट तुम्हारी राम।
जिव तरसै तुझ मिलन कूं, मनि नाहीं विश्राम ॥६॥

हे राम! मैं (विरहिणी आत्मा) तुम्हारी प्रतीक्षा बहुत समय से कर रही हूं। मेरे प्राण तेरे दर्शन के लिये तृषित हैं और मन विना दर्शन व्याकुल है।

विशेष—तुलना कीजिए—

"प्रिय आता क्यूं इस पार नहीं, शशि के दर्पण में देख देख,
मैंने सुलझाये तिमिर केश, युग युग से करती आती मैं हूं,
क्या अभिनव शृंगार नहीं, प्रिय आता क्यूं इस पार नहीं।"

बिरहिन ऊठै भी पड़े, दरसन कारनि राम।
मूवां पीछै देहुगे, सो दरसन किहि काम ॥७॥

मूवा=मरने पर। सो-दरसन=सुदर्शन।

हे राम! यदि आपके दर्शनों की उत्सुकता में विरहिणी उठती भी है तो क्षीणकाय होने के कारण गिर-गिर पड़ती है अर्थात् आपके विरह में वह अत्यन्त

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कृशकाय हो गई है। उसके मरणोपरान्त यदि आपने रोग निवारक सुदर्शन चूर्ण अथवा अपना सौन्दर्यमय स्वरूप दर्शन दिया तो वह किस प्रयोजन का ?

विशेष—"का वर्षा जब कृषि सुखाने" से तुलना कीजिए।

मूवां पीछैं जिनि मिलै, कहै कबीरा राम।
पाथर घाटा लोह सब, (तब) पारस कौणें काम ॥८॥

कबीर जी कहते हैं कि हे प्रभु ! यदि आपका दर्शन मृत्यु के पश्चात् हुआ तो वह किस प्रयोजन का ? वह तो उसी प्रकार निरर्थक है जिस प्रकार कोई पारस पत्थर की प्राप्ति के लिए लोहे को प्रत्येक से घिस कर समाप्त कर दे और तब उसे पारस पत्थर की प्राप्ति हो।

अंदेसड़ा न भाजिसी, संदेसौ कहियां।
कै हरि आयां भाजिसी, कै हरि ही पासि गयां ॥६॥

अंदेसड़ा=आशंका, अंदेशा।

विरहिणी आत्मा किसी दूत से कहती है कि मेरी प्रिय मिलन में असफलता की आशंका नष्ट नहीं होती। अतः तुम प्रभु से कहना कि या तो वे स्वयं भागकर-शीघ्र—मेरे पास आ जायं अथवा फिर मुझे ही उनके पास आना पड़ेगा।

आइ न सकौं तुझ पैं, सकूं न तुझ बुलाइ।
जियरा यौंही लेहुगे, विरह तपाइ तपाइ ॥१०॥

कबीर की वियोगिनी आत्मा कहती है कि मैं तेरे पास भी नहीं आ सकती क्योंकि मैं इतनी समर्थ नहीं हूं (भाव यह है कि मैं अभी माया में संलिप्त हूं) और तुझे अपने पास नहीं बुला सकती क्योंकि मैं अभी सर्वात्म-समर्पण नहीं कर सकी जो तुझे आकृष्ट कर मेरे पास तक ले आये। अतः यही दिखाई देता है कि तुम हमारे प्राणों को इसी प्रकार विरह में तपाते तपाते समाप्त कर दोगे।

यहु तन जालौं मसि करूं, ज्यूं धूवां जाइ सरग्गि।
मति वै राम दया करै, बरसि बुझावै अग्गि ॥११॥

विरह की इस असहनीय अवस्था में यह इच्छा होती है कि मैं अपना यह शरीर भस्म कर क्षार कर दूं जिससे मेरी अस्थियों का जो धुआं आकाश में फैलेगा कदाचित् वे दयानिधि राम दयार्द्र होकर अपनी कृपा-दृष्टि के वारि से उस अग्नि को बुझा दें। भाव यह है कि सम्भव है वे तब दर्शन दे दें।

यहु तन जालौं मसि करौं, लिखौं राम का नाउं।
लेखणि करूं करंक की, लिखि लिखि राम पठाउं ॥१२॥

करंक=अस्थि पंजर।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विरहिणी कहती है कि यह इच्छा होती है कि इस शरीर को जला स्याही बना लूं और अस्थियों की लेखनी, इससे राम का नाम लिखूं लिख-लिख कर अपने प्रभु राम को प्रेषित करूं—कदाचित् इस कृत्य से प्र होकर वे दर्शन दें।

कबीर पीर पिरावनीं, पंजर पीड़ न जाइ।
एक ज पीड़ परीति की, रही कलेजा छाइ ।।१३।।

पीर=वेदना। पिरावनी=कसकपूर्ण।

कबीर कहते हैं कि पीड़ा बड़ी वेदनापूर्ण होती है, शरीर की पीड़ा इतनी कसकमय होती है कि उपचार करने पर भी नहीं जाती फिर जो की पीड़ा है वह तो सर्वथा ही उपचार से बाहर है, वही असह्य पीड़ा हृद समा गई है।

चोट सतांणीं विरह की सब तन जर जर होइ।
मारणहारा जांणिहै, कै जिहिं लागी सोइ ।।१४।।

सतांणी=व्यथित करती है।

विरह की चोट बड़ी व्यथित करती है, इसकी वेदना से शरीर कृश हो जाता है। इस पीड़ा का अनुभव केवल दो को ही होता है—एक तो इसे भोग रहा है तथा दूसरे वह जो इस पीड़ा को प्रदान करता है।

कर कमाण सर साँधि करि, खैंचिजु मार्या मांहि।
भीतरि भिद्या सुमार ह्वै, जीवै कि जीवै न रहि ।।१

सांधि करि=साधकर। सुमार=गहरी चोट।

भगवान् रूपी प्रियतम ने हाथ में धनुष धारण कर खींच कर ऐसा प्रेम चलाया है कि वह हृदय के आरपार हो गया। हृदय प्रेममय ही हो गया। के प्रेम तीर की यह चोट इतनी गहरी लगी है कि जीवन जन्म और के मध्य झूल रहा है अर्थात् प्रभु प्रेम उसे अपनी ओर खींचता है और ओर सांसारिक आकर्षण हैं।

जबहूँ मारया खैंचि करि, तब मैं पाई जांणि।
लागी चोट मरम्म की, गई कलेजा छांणि ।।१६।।

जांणि=जान, ज्ञान। मरम्म=मर्मान्तक।

जब गुरुवर ने पूर्ण शक्ति के साथ खींच कर उपदेश द्वारा प्रेम रूपी चलाया तभी मुझे ज्ञात हुआ कि इस प्रेम बाण की मर्मान्तक चोट मेरे के पार हो गई। भाव यह है कि प्रेम से तन-मन विंध गया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जिहि सरि मारी काल्हि, सो सर मेरे मन बस्या।
तिहि सरि अजहूँ मारि, सर बिन सच पाऊं नहीं ॥१७॥

हे गुरुदेव जिस प्रेम बाण से आपने मुझ पर चोट की वह मेरे मन में बस गया है। वह वाण स्वर—वाणी का बाण था अर्थात् प्रेमोपदेश। उसी (वाणी के) बाण को मेरे आज भी मार, उसके बिना मुझे शान्ति नहीं।

विशष—कैसा विरोधाभास है जो बाण शरीर को वेधता है वही प्रिय लग रहा है—यह कवीर जैसे प्रेमी के लिये ही सम्भव है।

बिरह भुवंगम तन बसै, मंत्र न लागै कोइ।
राम बियोगी ना जिवै, जिवै त बौरा होइ ॥१८॥

विरह रूपी सर्प शरीर की बांबी में घुसा बैठा है, उसे कोई भी मंत्र (साधक) बाहर निकालने में समर्थ नहीं हो सकता। प्रभु का वियोगी तो जीवित ही नहीं रह सकता वह जीवनन्मुक्त हो जाता है और यदि जीवित रहता है तो सांसारिक कर्तव्यों आदि से पूर्ण असम्पृक्त हो जाता है जिसे लोग पागल कहने लगते हैं।

विशेष——प्रथम चरण में सर्प को पकड़ने की क्रिया से विरह की तुलना है, बांबी में से सर्प को मन्त्र बल से निकाल कर वशीकृत किया जाता है। २. रूपक अलंकार।

बिरह भुवंगम पैसि करि, किया कलेजैं घाव।
साधू अंग न मोड़ही, ज्यूँ भावै त्यू खाव ॥१९॥

पैसि कर=पैठकर, प्रवेश कर। अंग न मोड़ही=विचलित नहीं होतें।

विरह रूपी सर्प ने शरीर में प्रवेश कर हृदय में घाव कर लिया है किन्तु इस वेदना से साधुजन विचलित नहीं होते जैसी उसकी इच्छा होती है, उस रूप में उसे अपने को खाने देते हैं। भाव यह है कि साधक विरह की कठोर यातनाओं से पथ-विचलित नहीं होते।

सब रँग तंतर बाबतन, बिरह बजावै नित्त।
और न कोई सुणि सकै, कै साईं कै चित्त ॥२०॥

रंग=रग, शिराएं। तंतर=पशु चर्म निर्मित तांत जो तन्त्री में प्रयुक्त होती है। खाव्र=इकतारे के समान तन्त्री जिसे जोगी बजाते फिरा करते हैं।

शरीर रूपी तन्त्री पर शिराओं रूपी ताँतों को विरह नित्य बजाता है। विरह वेदना से शिरोपशिराएं झंकृत रहती हैं। इससे निस्सृत संगीत को कोई तीसरा नहीं सुन सकता या तो प्रियतम ही सुन सकते हैं और या मेरा हृदय ही। प्रेम क्षेत्र के अनुभव ऐसे हैं जिन्हें भुक्त-भोगी ही जान सकते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बिरहा बुरहा जिनि कहौ, बिरहा है सुलितान।
जिस घटि बिरह न संचरै, सो घट सदा मसान ॥२१॥

बुरहा=बुरा। जिनि=मत।

हे मनुष्यो विरह को बुरा मत बताओ, वह तो राजा के समान सर्वोपरि है—संयोग से भी ऊपर है। जिस हृदय में विरह का संचार नहीं होता वह सर्वदा श्मशान की भांति शून्य है, निर्जीव है।

विशेष—कबीर के समान अन्य कवियों ने भी विरह की महत्ता प्रदर्शित की है—

"न विना विप्रलम्भेन संयोगः पुष्टिमश्नुते"

× × ×

"वेदना में ही तप कर प्राण,
दमक दिखलाते स्वर्ग हुलास। "—पन्त'

× × ×

"ऊधौ विरहो प्रेम करै'

अंषड़ियां झांई पड़ी, पंथ निहारि निहारि।
जीभड़ियां छाला पड़्या, राम पुकारि पुकारि ॥२२॥

अंषणिया=नेत्र। झाईं=मन्द।

प्रिय-आगमन का मार्ग तकते-तकते मेरी नेत्र-ज्योति मन्द पड़ गई है एवं राम को पुकारते-पुकारते जीभ में छाले पड़ गये हैं। प्रियतम! मैं कब से तुम्हारी बाट जोह रही हूं।

इस तन का दीवा करौं, बाती मल्यूं जीव।
लोही सींचौ तेल ज्यूं, कब मुख देखौ पीव ॥२३॥

दीवा=दीपक। मेल्यूं=डालूं। जीव=प्राण। लोही=रक्त।

मैं अपने शरीर रूपी दीपक में प्राणों की वर्तिका डाल कर और उसे लोहू रूपी तैल—स्नेह—से अभिषिंचन कर न जाने कब से प्रिय आगमन का मार्ग देख रही हूं कि कब उनका मुख निहार सकूंगी।

नैंनां नीझर लाइया, रहट बहै निस जाम।
पपीहा ज्यूं पिव पिव करौं, कबरु मिलहुगे राम ॥२४॥

नैनां=नेत्रों से। नीझर=निर्झर। जाम=याम, प्रहर (दिन के)।

मेरे नेत्रों से अहर्निश अश्रु प्रवाह रहट की भाँति अवान्तर गति से चलता रहता हैं एवं सर्वदा पपीहे की भांति प्रिय-नाम रटती रहती हूं। हे प्रियतम राम! तुम कब मिलोगे?

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अंषड़यां प्रेम कसाइयाँ, लोग जांणें दुखड़ियां।
सांईं अपणैं कारणैं, रोइ रोइ रंतड़ियां ॥२५॥

प्रेम कसाइयां=प्रेम की कसौटी पर कसी गईं। सांई=स्वामी, प्रिय।

मेरी आंखें प्रेम की कसौटी पर लाल हो गई हैं। वे प्रिय-वियोग में निरन्तर रोने के कारण लाल हो गई हैं और संसार यह अनुमान लगा रहा है कि ये दुखने आ गई हैं।

सोई आंसू सजणां, सोई लोक बिड़ांहि।
जे लोइण लोहीं चुवै, तौ जांणै हेत हियांहि ॥२६॥

सोई=वे ही। सजणां=सज्जनों के। लोक बिड़ांहि=लोक-बाह्य अर्थात् दुर्जनों के। लोइण=नेत्र। लोही=रक्त। चुवै=गिरता है।

केवल मात्र अश्रु देखकर सच्चे प्रेम की पहचान नहीं की जा सकती क्योंकि आंसु तो सज्जन और दुर्जन दोनों के समान रूप से गिरते हैं किन्तु जिन नेत्रों से रक्त के आंसू गिरें वहीं सच्चे प्रेम की अवस्थिति जानो।

विशेष—कबीर का प्रेमादर्श बड़ा महान् है जिसमें "शीश उतारै भुईं धरैं, तब पैठे घर मांहि" का सिद्धान्त सर्वत्र प्राप्त होता है। वहां त्याग और समर्पण ही सब कुछ है।

कबीर हसणां दूरि करि, करि रोवण सौं चित्त।
बिन रोयां क्यूं पाइए, प्रेम पियारा मित्त ॥२७॥

मित्त=मित्र।

कबीर कहते हैं कि हे मित्र हँसना छोड़ दे अर्थात् सुखमय जीवन को त्याग दे एवं रुदन अर्थात् प्रिय वियोग की वेदना को ही अपना। बिना विरह की अनुभूति के प्रेम पात्र को तू कैसे प्राप्त कर सकेगा?

जौ रोऊं तौ बल घटै, हँसौं तौ राम रिसाइ।
मनही मांहि बिसूरणां, ज्यूं घुंण काठहि खाइ ॥२८॥

बिसूरणां=क्रंदन। घुण=घुन। काठहि=काष्ठ को।

यदि मैं विरह में रोता हूं तो मेरी शक्ति क्षीण होती है, हंसता हूं तो राम को प्रिय नहीं है क्योंकि बिना मिलन उल्लास क्यों और कैसे? अब मेरी आत्मा मन ही मन क्रंदन कर मुझे क्षीण करती रहती है जैसे घुन भीतर ही भीतर काष्ठ को काट कर खोखला बना देता है। भाव यह है कि विरह भीतर ही भीतर सालता रहता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हँसि हँसि कंत न पाइए, जिनि पाया तिन रोइ ।
जे हाँसही हरि मिलै, तौ नहीं दुहागनि कोइ ।।२६।।

२६. दुहागनि=दुर्भागिनी ।

हंस-हंस कर, सांसारिक ग्रानन्द उड़ाते हुए, किसी ने प्रभु को नहीं पाया है । जिसने भी उनकी प्राप्ति की है उसने उनके विरह की मर्मानुभूति की है। जो इस प्रकार भोगविलास द्वारा ब्रह्म, स्वामी, की प्राप्ति हो जाय तो संसार में सभी (ग्रात्माएं) उनकी प्राप्ति कर सुहागिन वन जायें, कोई ग्रभागिन रहे ही नहीं ।

हाँसी खेलौं हरि मिलै, तौ कौण सहै षरसान ।
काम क्रोध त्रिष्णां तजै, ताहि मिलै भगवान ।।३०।।

यदि प्रभु सुख-वैभव की विविध क्रीड़ाग्रों में प्राप्त हो जायें तो तलवार की धार के समान तीक्ष्ण विरह-वेदना का ग्रनुभव करने के लिए कौन प्रस्तुत होगा । जो काम, क्रोध एवं तृष्णा का परित्याग कर देगा उसे ही भगवत्-प्राप्ति हो सकती है ।

विशेष—तुलना कीजिये—

"ग्रति तीक्ष्ण प्रेम कौ पंथ महा, तलवार की धार पै धावनौ है।"

पूत पियारो पिता कौं, गौहनि लागा धाइ ।
लोभ मिठाई हाथि दे, ग्रापण गया भुलाइ ।।३१।।

ग्रात्मा रूपी पुत्र प्रभु रूपी पिता के प्रेम के कारण उसके साथ के लिए दौड़ पड़ा किन्तु वह पिता लोभ की मिठाई पुत्र के हाथ में देकर स्वयं छिपा गया । भाव यह है कि ग्रात्मा तो स्वाभाविक प्रेम के कारण परमात्मा से मिलना चाहती है किन्तु प्रभु लोभ का व्यवधान डालकर छिप जाते हैं—साधक की दृष्टि से ग्रोझल हो जाते हैं ।

विशष—पिता के साथ जव वाहर जाने के लिए पुत्र वहुत मचलता है तो पिता उसे पैसे या ग्रन्य कोई लोभ की वस्तु दे देता है, बच्चा उस वस्तु में ग्रटक जाता है ग्रौर पिता उससे ग्रलग चला जाता है । कबीर ने यह रूपक प्रस्तुत किया है ।

डारी खाँड़ पटकि करि, ग्रंतरि रोस उपाइ ।
रोवत रोवत मिलि गया, पिता पियारे जाइ ।।३२।।

किन्तु इस लोभ की मिठाई की सारहीनता जव ग्रात्मा रूपी पुत्र ने देखी तो उसने उसे उठा कर फेंक दिया, लोभ का परित्याग कर दिया, ग्रौर उसे ग्रपने कृत्य पर ग्राक्रोश हुग्रा कि यह तैंने क्या किया ? इस तुच्छ मिठा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के कारण पिता को छोड़ दिया । इस वियोग में वह पुत्र (आत्मा) वेदना का अनुभव कर रोने लगा और रोता-रोता अपने प्रिय पिता (प्रभु) तक जा पहुंचा ।

नैंनां अंतरि आचरूं, निस दिन निरषौं तोंहि ।
कब हरि दरसन देहुगे, सो दिन आवै मोंहि ॥३३॥

हे प्रभु ! न जाने वह दिवस कब आयेगा जब मैं आपको नेत्रों के भीतर काजल के समान आंजकर अहर्निश आपका दर्शन लाभ प्राप्त करूंगी । न जाने प्रभु आप कब दर्शन देकर मेरे लिए इस सौभाग्यशाली दिवस को बुलाओगे । भाव यह है कि मुझे किस दिन यह सौभाग्य प्राप्त हो सकेगा ।

कबीर देखत दिन गया, निस भी देखत जाइ ।
बिरहणि पिव पावै नहीं, जियरा तलपै माइ ॥३४॥

कबीर कहते हैं कि विरहिणी आत्मा दूसरी आत्मा को सम्बोधित कर कहती है कि हे सखि प्रिय की प्रतीक्षा में समस्त दिवस बीत गया और रात्रि भी यूं ही रीती बीती जा रही है । विरहिणी को प्रिय की प्राप्ति नहीं होती इससे उसका हृदय वेदना में तड़पता है ।

कै विरहणि कुं मींच दे, कै आपा दिखलाइ ।
आठ पहर का दाझणां, मोपैं सह्या न जाइ ॥३५॥

मीच=मृत्यु । दाझणां=दग्ध होना ।]

हे प्रभु मुझ विरहिणी की या तो जीवन लीला ही समाप्त कर दो या अपना स्वरूप दर्शन दो । अब दिन-रात यह वेदना मुझ से सहन नहीं हो पाती ।

बिरहणि थी तौ क्यूं रहीं, जली न पीव की नालि ।
रहु रहु मुगध गहेलड़ी, प्रेम न लाजूँ मारि ॥३६॥

नालि=साथ । रहु-रहु=बस-बस । मुगध=मुग्धा । गहेलड़ी=देरी करने वाली ।

यदि तू वास्तविक अर्थों में वियोगिनी थी तो जीवित क्यों रह गयी ? प्रिय के साथ चिता में ही क्यों न भस्म हो गई । अपनी सज्जा के कारण प्रिय मिलन में असफलता प्राप्त करा देने वाली मुग्धा ! तू अधिक बात मत बना, बस कर, क्यों व्यर्थ प्रेम को भी लज्जित करती है ।

हौं बिरह की लाकड़ी, समझि समझि धूँधाऊँ ।
छूटि पड़ौं या बिरह तैं, जे सारी ही जलि जाऊँ ॥३७॥

समझि-समझि=सुलग-सुलग ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मैं विरह की उस लकड़ी के समान हूं जो शनैः-शनैः सुलग-सुलग कर जल रही है। इससे तो अच्छा है कि प्रिय दर्शन दे दें और मैं इस विरह से मुक्त हो सकूं अथवा मैं जलकर सर्वथा क्षार हो जाऊं। यह विरहावस्था असहनीय है।

कबीर तन मन यौं जल्या, बिरह अगनि सूं लागि।
मृतक पीड़ न जांणई, जांणौंगी यहु आगि ॥३८॥

कबीर कहते हैं, विरह-अग्नि से मेरा शरीर और हृदय इस प्रकार भस्म हो गये कि वे चैतन्य रहित हैं। जिस प्रकार मृतक पीड़ा से सर्वथा असम्पृक्त रहता है उसी प्रकार विरहिणी भी। यदि कुछ वेदना की जलन का अनुभव और ज्ञान होगा तो इस विरहाग्नि को ही होगा।

बिरह जलाई मैं जलौं, जलती जल हरि जाऊँ।
मो देख्यां जल हरि जलैं, संतौ कहाँ बुझांऊँ ॥३९॥

मैं विरहाग्नि में जली जा रही हूं। इस असह्य अवस्था के शमन के लिए यदि मैं गुरु रूपी तालाब के पास जाती हूं तो मुझको उस प्रेमाग्नि में जलता देखकर गुरु भी और अधिक उस आग से जलने लगे। हे संतजन मैं इस विचित्र स्थिति का क्या वर्णन करूं। भाव यह है कि शिष्य का यह अपार प्रेम देखकर गुरु में भी प्रेम उद्दीप्त हो उठता है।

परबति परबति मैं फिर्या, नैंन गँवाये रोइ।
सो बूटी पाँऊं नहीं, जातैं जीवनि होइ ॥४०॥

मैंने पर्वत-पर्वत छान डाला और नेत्र प्रिय वियोग में रोते-रोते नष्ट कर बैठा किन्तु मैं कहीं भी वह संजीवनी बूटी अर्थात् ब्रह्म-स्वामी, नहीं प्राप्त कर सका जिससे जीवन सफल हो सके।

विशेष—कबीर के ध्यान में इस समय लक्ष्मण-शक्ति प्रसंग अवश्य घूम रहा होगा।

फाड़ि पुटोला धज करौं, कामलड़ी पहिराउँ।
जिहि जिहि भेषां हरि मिलै, सोइ सोई भेष कराउँ ॥४१॥

पुटोला=रेशमी वस्त्र। धज=टूक-टूक, धज्जियां। कामलणी=कम्बल।

यदि प्रिय को मेरा यह सौन्दर्यपूर्ण वेश रुचिकर नहीं तो अपने रेशमी वस्त्रों को फाड़कर धज्जियां कर साधुओं के समान कम्बल धारण कर लूं। जिस-जिस वेश (आचरण) के द्वारा प्रभु-मिलन की सम्भावना है मैं वही वेश धारण कर सकती हूं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नैन हमारे जलि गए, छिन छिन लोड़ैं तुझ।
न तूं मिलै नाँ मैं खुसी, ऐसी बेदन मुझ ॥४२॥

लोड़ैं=प्रतीक्षा में देखना। खुसी=प्रसन्न।

मेरे नेत्र क्षण-क्षण में तेरी प्रतीक्षा में बाट जोहते-जोहते नष्ट हो गये। मुझे ऐसी वेदना है कि तेरे मिलन बिना आनन्द नहीं।

भेला पाया सर्प सौं, भौसागर के मांहि।
जे छांडौं तौ डूबिहौं; गहौं त डसिये बांह ॥४३॥

भेला=वेड़ा।

इस भवसागर के मध्य डूबते हुए को तरने के लिए बड़े परिश्रम से प्रेम का वेड़ा मिला है किन्तु इस पर विरह रूपी सर्प बैठा हुआ है। जो इसे छोड़ता हूं तो डूबने का भय है और यदि इसका आश्रय लेता हूं तो आशंका है कि यह विरह-भुजगंम मुझे डस न ले। भाव यह है कि संसार से मुक्त होने के लिए प्रेम एकमात्र साधन है किन्तु इसके साथ विरह अवश्य भोगना पड़ता है।

रैंणा दूर बिछोहिया, रहु रे संषम झूरि।
देवलि देवलि धाहड़ी, देसी ऊगे सूरि ॥४४॥

संषम=चक्रवाक। झूरि=बिसूर बिसूर कर। धाहड़ी=उच्च-स्वर में।

चक्रवाक पक्ष में—हे चक्रवाक! रात्रि ने तेरे प्रिय को तुझसे वियुक्त कर दिया है, अब तू विलख-बिलख कर उच्च वाणी में मन्दिर-मन्दिर अथवा घर-घर पर उसके लिए पुकार लगा रहा है किन्तु उससे मिलन सूर्य ही करायेगा।

मनुष्य पक्ष में—अज्ञान रात्रि में तुझसे प्रभु वियुक्त हो गये हैं। अब तू चक्रवाक की भांति मन्दिर-मन्दिर में उसके लिए पुकार लगा रहा है किन्तु उसकी प्राप्ति ज्ञान सूर्य उदय होने पर ही होगी।

विशेष—अन्योक्ति से पुष्ट सांगरूपक अलंकार।

सुखिया सब संसार है, खायै, अरू सोवै।
दुखिया दास कबीर है, जागै अरू रोवै ॥४५॥

कबीर कहते हैं कि समस्त संसार सुखी है जो भोग-विलास का जीवन व्यतीत कर अज्ञान रात्रि में सोता है, दुखी तो केवल एक कबीर है जो ज्ञान-प्राप्ति के लिए जाग भी रहा है और प्रभु मिलन के लिए रो भी रहा है।

—×—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

४. ग्यान बिरह कौ अंग

दीपक पावक आंणिया, तेल भी आंण्या संग
तीन्यूं मिलि करि जोइया, (तब) उड़ि उड़ि पड़ैं पतंग ॥१॥

दीपक=जीवात्मा। पावक=ज्ञान ज्योति। तेल=स्नेह। आंण्या= डालकर। जाइया=जलाया, प्रदीप्त किया। पतंग=विषय वासना के दान रूपी पतंगे।

जीवात्मा रूपी दीपक में ज्ञान-ज्योति प्रज्वलित कर तथा उसमें स्नेह डालकर प्रदीप्त किया। इस प्रकार जब तीनों आत्मा, ज्ञान एवं स्नेह मिल एकत्रित हो प्रदीप्त हुए तब उसकी अग्नि शिखा में विषयवासना रूपी गिर गिर कर नष्ट होने लगे।

मार्या है जे मरेगा, बिन सर थोथी भालि।
पड़्या पुकारै ब्रिछ तरि, मरै कै काल्हि ॥२॥

बिन सर=बिना फलक के। थोथी=खाली। ब्रिछ=वृक्ष, सं वृक्ष।

जो मारा गया है वह तो बिना फलक के छूंछे भाले से ही मर सकता भाव यह है कि मरण के लिए हिंसापूर्ण शस्त्रों की आवश्यकता नहीं जीवन्मुक्त होने के लिए प्रेम का बाण ही पर्याप्त है। उस बाण के लगं वह वेदनाकुल होकर संसार—वृक्ष के नीचे पड़ा कराह रहा है, पीड़ा अनुभव कर इस प्रतीक्षा में है कि वह आज जीवन्मुक्त होगा या कल। यह संसार वृक्ष के नीचे पड़ा वेदनाकुल है आज या कल में ही अर्थात् ही उसे प्रिय प्राप्ति हो जायेगी।

हिरदा भीतरि दौं बलै, धूवां न प्रगट होइ।
जाकै लागी सो लखै, कै जिहि लाई सोइ ॥३॥

हिरदा=हृदय। दौं=अग्नि। बलै=जले। लाई=लगाकर।

हृदय के भीतर प्रेम की दावाग्नि धधक रही है उसका धुआं प्रकट होता, वह तो भीतर ही भीतर जलती रहती है। इस अग्नि का अनुभव दो ही कर सकते हैं या तो वह जिसके हृदय में यह अग्नि धधकती है या फिर उसको जो इस अग्नि को लगाने वाला है। शेष संसार इस अग्नि धुआं अर्थात् कुछ भी चिन्ह नहीं देख पाता।

झल ऊठी झोली जली, खपरा फूटिम फूटि।
जोगी था सो रमि गया, आसणि रही बिभूति ॥४॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

झल=अग्नि । झोली=शरीर । खपरा=खोपड़ी । विभूति=राख, क्षार ।

योगाग्नि के प्रज्वलित होने पर शरीर की झोली तो जलकर भस्म हो गई और खोपड़ी रूपी खप्पर टूट-फूट गया । योगी की आत्मा तो परम तत्व से मिल गई, उसके समाधि स्थान पर तो केवल शरीर की राख ही अवशिष्ट रह पाई । भाव यह है कि आत्मा के महामिलन में योगी को वेशादि बाह्य उपकरणों की आवश्यकता नहीं होती ।

अगनि जु लागी नीर मैं, कंदू जलिया झारि ।
उतर दषिण के पंडिता, रहे विचारि विचारि ।।५।।

कंदू=पंक, पाप ।

माया रूपी जाल में ज्ञानाग्नि लग जाने से विषय-वासना का पंक जल कर समाप्त हो गया । इस अद्भुत कृत्य को देख (कि पानी में आग कैसे लग गई) उत्तर से लेकर दक्षिण तक के ज्ञानी विचार-विचार कर रह गये, किन्तु यह रहस्य उनकी समझ में न आया ।

दौं लागी साइर जल्या, पंषी बैठे आइ ।
दाधी देह न पालवै, सतगुर गया लगाय ।।६।।

ज्ञानाग्नि के लगने से वासना का सागर भस्म हो गया और नवीन सृष्टि में (ज्ञानयुक्त होने पर) वैराग्य, विवेक, करुणा आदि गुणों के पक्षी आकर चहचहाने लगे । इस दग्ध वासना-शरीर को मैं पुनः पल्लवित नहीं होने दूंगा क्योंकि सद्गुरु ने ज्ञान-अग्नि लगा दी है ।

गुर दाधा चेला जल्या, बिरहा लागी आगि ।
तिणका बपुड़ा ऊबर्या, गलि पूरे कै लागि ।।७।।

दाधा=दग्ध किया । बपुड़ा=बेचारा । गलि=(गैल) साथ । पूर=पूर्ण ब्रह्म ।

गुरु ने प्रेमाग्नि को प्रज्वलित किया, उसमें चेला जल गया अर्थात् प्रभु-प्रेम में मग्न हो गया । किन्तु इसकी विरहानुभूति से वह तभी मुक्त हुआ जब तृण तुल्य स्वतन्त्र अस्तित्वहीन आत्मा पूर्ण ब्रह्म में लीन हो गई । भाव यह है कि प्रभु मिलन से ही मुक्ति हो सकती है ।

अहेड़ी दौं लाइया, मृग पुकारे रोइ !
जा बन में क्रीला करी, दाझत है बन सोइ ।।८।।

अहेड़ी=आखेटक—गुरु । लाइया=लगा दी । मृग=जीव—मनुष्य । क्रीला=क्रीड़ा । दाझत=जलता है । बन=विषय-वासना से पूर्ण माया का संसार ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सद्गुरु रूपी आखेटक ने माया के विषय-वासनायुक्त वन में ज्ञान की अग्नि लगा दी। जीव रूपी मृग यह पुकार कर रो उठे कि जिस वन में हमने क्रीड़ायें कर सुख भोग प्राप्त किया वही जल रहा है।

विशेष—मृगों को पकड़ने या मारने के लिए आखेटक सम्पूर्ण वन में आग लगा देते हैं। वन में आग लगती देख मृग सम्मुख आ जाते हैं और आखेटक उन्हें अपने बाणों का लक्ष्य बना लेता है। यही रूपक कबीर ने यहां प्रयुक्त किया है।

पाणीं मांहैं प्रजली, भई अप्रबल आगि।
बहती सलिता रह गई, मंछ रहे जल त्यागि ॥६॥

पानी=विषय वासना या माया। अप्रबल=अत्यन्त तीव्र। मंछ=मछली जीव। जल=संसार।

विषयवासना रूपी जल में ज्ञान की आग लगकर तीव्र वेग से फैल गई। ज्ञान ने सम्पूर्ण माया बंधन को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। माया की सरिता का प्रवाह रुक जाने से जीवों ने जल—संसार—का परित्याग कर दिया अर्थात् जीवनमुक्त हो गये।

समंदर लागी आगि, नदियां जलि कोइला भई।
देखि कबीरा जागि, मंछी रूषां चढ़ि गई ॥१०॥१२२॥

समंदर=संसार सागर। नदियां=विषय वासनाएं। कोयला=शुष्क क्षार से तात्पर्य है। मछी=मछली, मनुष्य। रूषां=ब्रह्म।

संसार समुद्र में ज्ञान की अग्नि लग गई जिससे विषय-वासना और सांसारिक आकर्षणों की सरितायें जल कर कोयले के समान शुष्क हो गईं। किन्तु कितनी ही मछलियां रूपी आत्मायें इस विनाश चक्र में न पड़ीं। वे तो अपनी साधना द्वारा ब्रह्म-लीन हो गईं (रूषां चढ़ि गई) अतः हे कबीर! तू इस स्थिति को देखकर जाग और साधना द्वारा तू भी ब्रह्म को प्राप्त कर।

—×—

५. परचा कौ अंग

परचा परिचय का अपभ्रंश है। जिस परिचय का कबीर यहां वर्णन करते हैं, वह आत्मा और परमात्मा, अपूर्ण और पूर्ण, अंश एवं अंशी, मनुष्य और उसके आराध्य का परिचय, महामिलन है। वाणी के माध्यम से इस महामिलन सुख को अभिव्यक्ति नहीं दी जा सकती क्योंकि वह आनन्द तो 'गूंगे केरी शर्करा' के समान है। किन्तु फिर भी व्यक्ति की सीमा का यह आनन्द

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अभिव्यक्ति के लिए व्याकुल रहता है—चाहे वह अस्पष्ट ही सही। कबीर ने भी प्रतीकों आदि के माध्यम से इसी परिचय—महामिलन—का वर्णन यहाँ किया है।

कबीर तेज अनंत का, मानौ ऊगी सूरज सेणि।
पति सँगि जागी सुंदरी, कौतिग दीठा तेणि ॥१॥

अनन्त=परमात्मा। सेणि=श्रेणी अथवा सेना। पति=स्वामी, ब्रह्म। जागी=ज्ञान प्राप्त। सुन्दरी=पत्नी अर्थात् आत्मा। दीठा=दृष्टिगत हुआ।

कबीर कहते हैं कि उस परमात्मा के सौन्दर्य का तेज ऐसा भासमान है के मानो अनेक सूर्यों की श्रेणी अथवा सेना उदित हुई हो। पति अर्थात् स्वामी (क्योंकि आत्मा 'राम की बहुरिया' है) ब्रह्म के साथ (अज्ञानरात्रि से) जाग कर उसने यह सौन्दर्यमय आश्चर्यपूर्ण दृश्य देखा।

विशेष—अज्ञानरात्रि से केवल आत्मा ही जागती और तब प्रिय—परमात्मा—का संयोग पा वह आनन्दमय दृश्यावलोकन करती है।

कौतिग दीठा देह बिन, रवि ससि बिना उजास।
साहिब सेवा मांहिं है, बेपरवांही दास ॥२॥

जिस स्वामी—ब्रह्म—का सौन्दर्य देखा गया वह अशरीरी था, निराकार के सौन्दर्य का ही वह दर्शन था। यह उसी के समान था जैसे कोई सूर्य और चन्द्र न देखकर केवल मात्र उनके प्रकाश का दर्शन करे। (सत्य तो यह है कि) प्रभु जन-सेवा से ही प्राप्य है, उसमें भक्त भी निश्चित हो जाता है।

विशेष – (१) "साहिब सेवा मांहि"— से तात्पर्य जन-सेवा इसलिये है कि जन-सेवा ही वस्तुतः नारायण सेवा है, मनुष्य उसी का तो अंश है। अंश की सेवा अंशी की ही सेवा है। कबीर का यह दृष्टिकोण अत्यन्त सामाजिक और लोक मंगल की भावना से ओत-प्रोत है।

(२) विभावना अलंकार।

पारब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान।
कहिबे कूँ सोभा नहीं, देख्या ही परवान ॥३॥

उस प्रभु के तेजयुक्त सौन्दर्य को वाणी द्वारा नहीं कहा जा सकता, कहने में उस अनुपम रस की शोभा ही नहीं। उस सौन्दर्य का अनुमान भी कोई नहीं लगा सकता, वह तो एकमात्र दर्शन का ही विषय है।

अगम अगोचर गमि नहीं, तहाँ जगमगै जोति।
जहाँ कबीरा बंदिगी, (तहां) पाप पुन्य नहीं छोति ॥४॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वह परम तत्व अगम्य और अगोचर है (साधारण व्यक्तियों के साधना से तो उसकी प्राप्ति हो ही जाती है)। इसलिए जहां उस प... की ज्योति अपना प्रकाश विकीर्ण करती है वह स्थान भी अगम्य और... है। कबीर जिस ब्रह्म के सम्मुख शिरसा श्रद्धावनत है, वह पाप-पु... छूआछात सबकी परिधि से परे है अर्थात् सब उसका भजन कर सकते हैं।

हदे छाडि बेहदि गया, हुवा निरंतर वास।
कवल ज फूल्या फूल बिन, को निरषै निज दास ॥५॥

जब मैं इस संसार से अपना सम्बन्ध विच्छिन्न कर निस्सी... साधना में प्रवृत्त हुआ, तो मैं उसकी सीमा में ही निरन्तर रहने लगा। आत्मा और परमात्मा का मिलन हो गया। वहां पहुंचकर मैंने देखा कि कमल बिना मृणाल के भी वहां प्रफुल्ल विकास पा रहा है (संसार ... असम्पृक्त ईश्वर का सौन्दर्य मृणाल के कमल का विकास है, जीव... सन्दर्भ में भी यह अर्थ लगाया जा सकता है कि इस संसार में माया... आकर्षणों में ही वह आनंद पाता था किन्तु निस्सीम की सीमा में प... बिना इस माया से जुड़े भी वह आनन्द पा रहा है)। इसको प्रभु ... अतिरिक्त अन्य कोई नहीं देख सकता।

विशेष—"फूल्या फूल बिन" में फूल से तात्पर्य उस कमल मृणा... है, जिसके द्वारा वह अपना जीवन रस ग्रहण करता है। यदि 'फूल' ... 'फल' ही लगाया जाय तो कमल के खिलने की बात की कोई ... बैठती।

कबीर मन मधकर भया, रह्या निरंतर बास।
कवल ज फूल्या जलह बिन, को देखै निज दास ॥६॥

कबीर कहते हैं कि मैंने ऐसा कमल (परमात्मा) देखा है जो ... जल (माया) के भी विकसित हो रहा है (आनन्द उठा रहा है)। ऐसा ... केवल वही है, अन्य कोई नहीं। मेरा मन उस कमल का प्रेमी भ्रमर ... एवं उसके सम्पुट में ही निरन्तर निवास करने लगा अर्थात् उसी में ... गया।

अंतरि कवल प्रकासिया, ब्रह्म वास तहाँ होइ।
मन भवरा तहाँ लुबधिया, जांणंगा जन कोइ ॥७॥

मेरे हृदय के भीतर कमल खिल रहा है अथवा मेरे शरीर के ... कमल विकसित हो रहा है। जिसमें ब्रह्म का निवास है। मेरा मन इ... उस कमल रस के पान करने के लिए लालायित हो गया है, इस ...

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बिरले भक्त ही जान सकते हैं (इसका साक्षात्कार कुछ विरलों को ही होता है)।

विशेष—योग ग्रंथ में शीश में सहस्रदल कमल की स्थिति मानी गई है, उनकी मान्यता है कि यहीं ब्रह्म का निवास है जहां से निरन्तर अमृत स्रवित होता है। किन्तु कभी इस कमल की स्थिति हृदय में भी मानकर सन्तों ने वर्णन किया है। 'अन्तर' का अर्थ हृदय लिया जाय अथवा 'शरीर के भीतर' प्रत्येक दशा में कबीर का तात्पर्य है सहस्रदल कमल से ही।

> सायर नाहीं सीप बिन, स्वांति बूंद भी नांहिं।
> कबीर मोती नीपजैं, सुन्नि सिषर गढ़ मांहि ॥८॥

कबीर कहते हैं जहां सागर, सीप एवं स्वाति नक्षत्र की बूंद—मोती की उत्पत्ति का एक भी उपादान नहीं है, ऐसे शून्य शिखर(सहस्रदल कमल के पास है या उसके भीतर शून्य की स्थिति) पर प्रभु दर्शनानन्द के मोती उत्पन्न होते हैं।

> घट मांहैं औघट लह्या, ओघट मांहैं घाट।
> कहि कबीर परचा भया, गुरू दिखाई बाट ॥९॥

घट=हृदय। औघट=अटपटा, विचित्र। ओघट=अविहित, निषिद्ध पन्थ। घाट=किनारा, तट। परचा=मिलन। बाट=मार्ग।

कबीरदास कहते हैं कि सद्गुरु ने जो मार्ग दिखाया उसी के द्वारा अपने हृदय में उस ब्रह्म के दर्शन हो गये गुरु द्वारा प्रशस्त यह पन्थ योग-पन्थ ही है। इसी के द्वारा जिसे (मूर्ख लोगों द्वारा) कुमार्ग (दुर्गम साधना) कहा जाता है मैंने अपना लक्ष्य (घाट) प्राप्त कर लिया।

> सूर समांणां चंद मैं, दहूं किया घर एक।
> मनका च्यंता तब भया, कछू पूरबला लेख ॥१०॥

सूर=पिंगला नाड़ी। चन्द=इड़ा नाड़ी। घर एक=सुषुम्णा। च्यंता=इच्छित। पूरबला लेख=पूर्व जन्म के सत्कृत्य।

साधक कबीर कहते हैं कि पिंगला नाड़ी इड़ा में समा गई और दोनों ने सुषुम्णा नाड़ी को ही अपना घर-मार्ग-बना लिया। इन दोनों के एकत्रित होकर सुषुम्णा वास से ही कुण्डलिनी ऊपर ब्रह्माण्ड—सहस्रदल की ओर उन्मुख हुई और सहस्रदल तक पहुंच कर अमृत का पान करने लगी। यह मेरा मन चाहा हुआ, जो किसी पूर्वजन्म के सुकृत्यों का ही फल है।

विशेष—योग पन्थ की मान्यतानुसार मेरुदण्ड के बायीं ओर इडा, दाहिनी ओर पिंगला और मध्य में सुषुम्णा नाड़ी होती है। सुषुम्णा नाड़ी के मध्य में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वज्रा, वज्रा के मध्य में चित्रिणी और चित्रिणी के मध्य में ब्रह्म नाड़ी है। इसी ब्रह्मनाड़ी से होकर कुण्डलिनी सहस्रदल कमल तक पहुंचती है। यह तभी सम्भव है जब इड़ा और पिंगला एक होकर सुषुम्णा में प्रवेश। यह कबीर का 'व्यंता' है।

> हद छाड़ि बेहद गया, किया सुन्नि असनान।
> मुनि जन महल न पावई, तहाँ किया विश्राम ॥११॥

हद=सीमा, माया जनित भ्रमयुक्त संसार। बेहद=सीमा। सुन्नि असनान=सहस्र दल कमल में अमृत प्राप्ति। महल=अन्तःपुर, या ब्रह्मरन्ध्र।

कबीर कहते हैं कि जब मैं इस मायाजनित भ्रममय ससीम संसार परित्याग कर निस्सीम ब्रह्म की साधना में प्रवृत्त हुआ तो मैं शून्य प्रदे झरते अमृत से नहा गया, आपादचूड़ उस ब्रह्म रस से सराबोर हो गया। बड़े मुनिगण जिस शून्य प्रदेश के निवास के लिए तरसते हैं, उसका मार्ग पा सकते, वहां मेरा स्थायी वास हो गया है।

> देखौ कर्म कबीर का, कछु पूरब जनम का खेल।
> जाका महल न मुनि लहैं, सो दोसत किया अलेख ॥१२॥

दोसत=दोस्त, मित्र, परिचित।

हे साँसारिक मनुष्यों! कबीर के सुकर्मों एवं पूर्वजन्म के संचित पु फल तो देखो कि जिस शून्य महल का मार्ग मुनिगण भी नहीं पाते वहां कर कबीर ने निराकार (ब्रह्म) से मित्रता स्थापित कर ली है, उसी में हो गया है (क्योंकि मित्रता का लक्षण है 'दो प्राण एक तन')।

> पिंजर प्रेम प्रकासिया, जाग्या जोग अनंत।
> संसा खूटा सुख भया, मिल्या पियारा कंत ॥१३॥

पिंजर=पिंजड़ा, अस्थि पिंजड़ा अर्थात् शरीर जो पाँच तत्वों का है। खूटा=समाप्त हुआ।

हृदय में प्रेम के प्रकाशित होने पर आत्मा और परमात्मा का जो सनातन सम्बन्ध है, प्रिय और प्रेमी का, वह जाग उठा। इस प्रेम भाव जगने से अज्ञानवश जो भ्रम थे वे नष्ट हो गये एवं प्रिय—ब्रह्म—मिलन अमित सुख प्राप्त हुआ।

> प्यंजर प्रेम प्रकासिया, अंतरि भया उजास।
> मुख कसतूरी महमहीं, बांणी फूटी बास ॥१४॥

उजास=प्रकाश।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस शरीर में प्रभु प्रेम के उदित होने पर हृदय उस प्रेम-ज्योति से द्योतित हो उठा एवं साधक का मुख प्रेम की सुगन्ध से परिपूर्ण हो गया जिससे उससे निस्सृत वाणी भी प्रभु-प्रेम की सुगन्ध से सुगन्धित थी।

मन लागा उन मन्न सौं, गगन पहुँचा जाइ।
देख्या चंद बिहूँणां चांदिणां, तहां अलख निरंजन राइ ॥१५॥

उन मन्न=उन्मना, योग की एक अवस्था जिसमें साधक संसार से विरक्त होकर अन्तर्मुखी वृत्ति वाला हो जाता है। गगन=ब्रह्मांड, शून्य। अलख निरंजन=निराकार ब्रह्म।

मायाजनित आकर्षणों से विरक्त मन उन्मनी अवस्था में प्रवृत्त होकर शून्य में जा पहुंचा एवं वहां निराकार ब्रह्म के दर्शन किये। उस निराकार का सौन्दर्य अद्भुत कान्ति विकीर्ण कर रहा था। वह ऐसा ही था जैसे चन्द्रमा के बिना मानों चन्द्र-ज्योत्स्ना छिटक रही हो। भाव यह है कि अशरीरी का भी अनुपम सौन्दर्य था।

मन लागा उन मन सौं, उन मन मनहि बिलग।
लूंण बिलगा पाणियां, पांणीं लूंण बिलग ॥१६॥

साधक कहता है कि मेरा चित्त सांसारिक विषयों से असम्पृक्त होकर उन्मनावस्था में प्रवृत्त हो गया है एवं यह मन की उन्मनावस्था पहले से सर्वथा भिन्न है, पहले तो मन माया के आकर्षणों में भटकता था अब वह उनसे सर्वथा उपराम हो ब्रह्म प्राप्ति में प्रवृत्त हो गया एवं ब्रह्म से वह इस प्रकार एकाकार हो गया जिस प्रकार नमक में पानी या पानी में नमक लय हो जाते हैं।

पांणीं ही तैं हिम भया, हिम ह्वै गया बिलाइ।
जो कुछ था सोई भया, अब कछू कह्या न जाइ ॥१७॥

पांणि=पानी, परम तत्व ब्रह्म। हिम=बर्फ, तत्व से निर्मित पदार्थ या वस्तु अर्थात् जीव।

कबीरदास जी आत्मा और ब्रह्म का अद्वैत स्थापित करते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार पानी से ही बर्फ बनती है एवं नष्ट होकर वह पुनः पानी के रूप में परिवर्तित हो जाती है उसी प्रकार जीवात्मा ब्रह्म का ही अंश है और मृत्यु को प्राप्त होने पर पुनः उसी परमात्मा में लय हो जाता है। इस प्रकार तत्व का आत्मा अंततः अपना प्रकृत स्वरूप ग्रहण कर लेता है।

विशेष—कबीर की अद्वैती विचार धारा के दर्शन होते हैं।

निम्नस्थ पद में भी कबीर ने यही भावना व्यक्त की है—

"जल में कुम्भ कुम्भ में जल है, बाहर भीतर पानी।
फूटा कुम्भ जल जलहि समाना, इहि तथ कथ्यौं ग्यानी ॥"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भली भई जु भै पड्या, गई दसा सब भूलि।
पाला गलि पांणी भया, ढुलि मिलिया उस कूलि ॥१८॥

भली भई=अच्छा हुआ। भै=भय। ढुलि=ढुलक कर।

यह बड़ा अच्छा हुआ कि सद्गुरु की कृपा ने मृत्यु भय से अवगत मुझे साँसारिक—माया जनित—आकर्षणों से सर्वथा विमुख कर दिया मैं साधना मार्ग पर अग्रसर हुआ) जिससे हिम गलकर पानी के यथार्थ आ निस्सीम ब्रह्म की सीमा में जा कर मिल गया अर्थात् आत्मा ब्रह्म हो गई।

चौहटै च्यंतामंणि चढ़ी, हाडी मारत हाथि।
मीरां मुझसूं मिहर करि, इब मिलौं न काहू साथि ॥१९॥

चौहटै=चौराहे, तात्पर्य संसार के बाजार से है। हाडी=माया, मीरा=धार्मिक आचार्य, यहां गुरु से तात्पर्य है।

संसार रूपी बाजार के चौराहे पर जीवात्मा रूपी चिन्तामणि लिए रखी गई (विक्रय और क्रय कर्मों का है) माया रूपी दलाल ने पर हाथ रखना आरम्भ कर दिया अर्थात् मायाजनित आकर्षणों में प्रारम्भ कर दिया। हे गुरवर! अब आप मुझ पर कृपा कर इस माया से निकालिए, अब मैं फिर कभी इन प्रपंचों में न पड़ूंगा।

पंषि उडानीं गगन कूं, प्यंड रह्या परदेस।
पांणी पीया चंच बिन, भूलि गया यहु देस ॥२०॥

पंषि=पक्षी, आत्मा। प्यंड=पिण्ड, शरीर। परदेश= क्योंकि आत्मा तो उस अलौकिक लोक का वासी है। पांणि=सहस्रदल से निस्सृत अमृत। चंच=चोंच।

पक्षी रूपिणी आत्मा शून्य प्रदेश रूपी गगन को उड़ गई एवं शरीर इसी लोक में रह गया। शून्य प्रदेश में पहुंच कर इस पक्षी चोंच (साधन, इन्द्रियां) के सहस्रदल कमल से स्रवित अमृत का पान इस अमृतपान के आनन्द के सम्मुख तुच्छ सांसारिक आनन्द वि गये।

पंषि उडानीं गगन कूं, उड़ी चढ़ी असमान।
जिहिं सर मंडल भेदिया, सो सर लागा कान ॥२१॥

पंषि=कुण्डलिनी, (मूलाधार चक्र के नीचे जहां मेरुदण्ड का भाग है वहीं एक त्रिकोणाकृति अग्निचक्र है। इसी अग्निचक्र में स्वयं से साढ़े तीन हाथ की लम्बाई की लिपटी हुई एक सर्पाकार शक्ति

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उसी को कुण्डलिनी कहते हैं। साधक प्राणायाम द्वारा उसे जागृत करता है। कुण्डलिनी जागृत होने पर सुषुम्णा के भीतर स्थित ब्रह्म नाड़ी द्वारा षट्चक्रों में होते हुए सहस्रार में प्रवेश करती है, इसे ही पंखि का 'गगन-उड़न' कहा गया है। कुण्डलिनी का सहस्रार में प्रवेश ही योग की चरमावस्था है।) गगन-शून्य। असमान=ब्रह्माण्ड, सहस्रदल कमल के मध्य या उससे ऊपर माना गया है। मण्डल=गगन अर्थात् शून्य एवं मूलाधार चक्र के बीच का स्थान जिसमें षट्चक्रों की स्थिति है।

कुण्डलिनी रूपिणी पक्षी (ब्रह्म नाड़ी में प्रविष्ट हो) शून्य में पहुंच गई। एवं उससे भी आगे बढ़कर वह ब्रह्माण्ड में (जहां प्रभु का निवास है) जा पहुंची। जिस उपदेश से प्रभावित हो षट्चक्रों का भेदन किया जाता है वह उपदेश सद्गुरु ने मुझे प्रदान किया है।

विशेष—षट्चक्रों का भेदन ही मण्डल भेदन है, षट्चक्र ये हैं—

१. मूलाधार, २.स्वाधिष्ठान, ३. माणिपूरक ४. अनाहत, ५. विशुद्ध, ६. आज्ञाचक्र।

सुरति समांणी निरति मैं, निरति रही निरधार।
सुरति निरति परचा भया, तब खूले स्यंभ दुवार ॥२२॥

२२. सुरत=प्रभु-प्रेम, इड़ा। निरति=संसार से वैराग्य अर्थात् प्रभु का ध्यान, पिंगला। स्यंभद्वार=शम्भु का द्वार, शिव का स्थान, ब्रह्मरन्ध्र।

साधारण अर्थ—साधक की समाधि में प्रभु के प्रेम का वास हो जाने पर अर्थात् समाधिस्थ अवस्था में प्रभु का ही ध्यान करने से प्रभु की प्राप्ति सम्भव है। जब प्रभुभक्ति का साधना से सम्बन्ध हो जाता है तो शंभु (प्रभु) के दर्शन हो जाते हैं।

साधनापरक अर्थ—जब इड़ा पिंगला से मिल जाती है और पिंगला मूलाधार से अपना कोई सम्बन्ध नहीं रखती अर्थात् मूलाधार चक्र का भेदन कर देती है तब ही प्रभु प्राप्ति सम्भव है क्योंकि कुण्डलिनी के लिए ब्रह्म नाड़ी का मार्ग खुल जायगा और वह ब्रह्मरन्ध्र में पहुंच जायेगी जहां शिव—परमशक्ति—का वास है। इड़ा पिंगला के इस मिलन से ही ब्रह्म प्राप्ति हो गई।

सुरति समांणीं निरति मैं, अजपा मांहैं जाप।
लेख समांणा अलेख मैं; यूं आपा मांहैं आप ॥२३॥

२३. अजपा=मौन ध्यान। जाप=प्रभु नाम स्मरण। लेख=साकार ब्रह्म। अलेख=निराकार ब्रह्म। आपा=प्रभु, ब्रह्म, परमात्मा। आप=अपनत्व, आत्मा से तात्पर्य।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इड़ा पिंगला में मिल गई जिससे नामस्मरण की ध्वनि शान्त ध्यान में परिणत हो गई। इस स्थिति में आकर साकार निराकार गया अर्थात् केवल निराकार ब्रह्म का ही ध्यान रहा। इस प्रकार परम आत्मा का मिलन हो गया।

आया था संसार मैं, देषण कौं बहु रूप।
कहै कबीरा संत हौ, पड़ि गया नजरि अनूप ॥२४॥

इस नानारूपात्मक जगत में विविध सांसारिक उपादानों को के लिए ही मेरा अवतरण हुआ था किन्तु कबीरदास जी कहते हैं कि संसार में आकर ब्रह्म के दर्शन हो गये।

अंक भरे भरि भेटिया, मन मैं नाहीं धीर।
कहै कबीर ते क्यूं मिलैं, जब लग दोइ सरीर ॥२५॥

मैं प्रिय से प्रेमविभोर हो कस-कस कर आलिंगनबद्ध हुआ, मन में धैर्य नहीं। वह एक प्राण दो तन चाहता, मन तो परमात्मा में होना चाहता है, किन्तु कबीरदास जी कहते हैं कि जब तक दो शरीर तक एकाकार कैसे हो सकते हैं? यह द्वैत ही आत्मा और पर मिलन में बाधक है।

सचु पाया सुख ऊपनां, अरु दिल दरिया पूरि।
सकल पाप सहजैं गये, जब साईं मिल्या हजूरि ॥२६॥

सचु पाया=शान्ति प्राप्त हुई। सुख ऊपनां=सुख उत्पन्न दिल=हृदय। दरिया पूरि=प्रेम से आपूर्ण उसी प्रकार जैसे नदी जल

कबीरदास कहते हैं कि दयालु प्रभु के मिलते ही हृदय की वेदना हुई एवं सुख उत्पन्न हुआ एवं हृदय उसी प्रकार प्रेम से परिपूर्ण हो गया प्रकार नदी जल से। नदी का जल अपने साथ नाले आदि के गन्दे जल बहाकर स्वच्छ कर देता है, उसी प्रकार इस प्रेम जल में या प्रेम मेरे समस्त पाप बह गये।

धरती गगन पवन नहीं होता, नहीं तोया नहीं तारा।
तब हरि हरि के जन होते, कहै कबीर बिचारा ॥२७॥

तोया=जल। तारा=अग्नि पुंज से तात्पर्य।

कबीरदास कहते हैं कि इस संसार में सब नश्वर है अनश्वर तो केवल और प्रभु-भक्त हैं। यदि पृथ्वी, आकाश, वायु, जल, अग्नि आदि पंच निर्मित यह सृष्टि विनष्ट हो जाय तो भी प्रभु और प्रभु-भक्तों की रहेगी, उनकी महिमा अमर है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जा दिन कृतमनां हुता, होता हट न पट।
हुता कबीरा राम जन, जिनि देखै औघट घट ॥२८॥

कृतम=कृत्रिम। हट=हाट। पट=वस्त्र किन्तु यहां तात्पर्य क्रय-विक्रय या साँसारिक क्रिया व्यापार से है। औघट=ब्रह्म। घट=हृदय।

जब यह माया-बन्धनों से परिपूर्ण मिथ्या (कृत्रिम) संसार नहीं था, तब न तो यहां बाजार था और न क्रय-विक्रय व्यापार, तात्पर्य सांसारिक क्रिया व्यापार (जहां व्यक्ति 'ज्यों-ज्यों सुरझ्यौ चहत है, त्यौं-त्यौं उरझ्यौ जात') से है। तब भी यहां प्रभु भक्त थे जो हृदय में उस ब्रह्म के दर्शन करते हैं।

विशेष—(१) शंकर के अद्वैत के समान संसार को 'मिथ्या' (कृत्रिम) कहा है।

(२) **'हट न पट'**—कबीर ने क्रिया-व्यापार के लिये केवल पट-वस्त्र के विक्रय को ही चुना, उन जैसे 'मसि कागद' न छूने वाले संत के लिए यह स्वाभाविक था कि अपने जुलाहे के व्यवसाय से वे शब्दावली और प्रतीक ग्रहण करते।

थिति पाई मन थिर भया, सतगुर करी सहाइ।
अनिन कथा तनि आचरी, हिरदै त्रिभुवन राइ ॥२९॥

थिति=स्थिति, योग की स्थिति, ध्यानावस्था। थिर=स्थिर, शान्त। अनिन कथा=अनन्य कथा, प्रेम-कथा। तनि=तन, शरीर। आचरी=आचरण किया।

सद्गुरु की सहायता से मन योगावस्था में ध्यानावस्थित हो गया जिससे चित्त शान्त हो गया। इस शरीर ने प्रेमकथा अर्थात् प्रेम साधना का आचरण किया जिससे हृदय में त्रिभुवनपति परमात्मा के दर्शन किये।

हरि संगति सीतल भया, मिटी मोह की ताप।
निस बासुरि सुख निध्य लह्या, जब अंतरि प्रगट्या आप ॥३०॥

हरि संगति=प्रभु मिलन। मोह की ताप=व्यर्थ के मोहजनित आकर्षणों की दौड़। सुखनिध्य=सुखनिधि। आप=स्वयं तत्व अर्थात् ब्रह्म।

प्रभु मिलन से मेरा चित्त शान्त हो गया एवं संसार के माया-मोह के विविध आकर्षणो की दौड़ समाप्त हो गई। उस ब्रह्म के हृदय में प्रकट होने से मैं रात-दिन आनन्द निधि का सुख प्राप्त करता हूं।

तन भीतरि मन मानियां, बाहरि कहा न जाइ।
ज्वाला तैं फिरि जल भया, बुझी बलंती लाइ ॥३१॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इड़ा पिंगला में मिल गई जिससे नामस्मरण की ध्वनि शान्त हो ध्यान में परिणत हो गई। इस स्थिति में आकर साकार निराकार में गया अर्थात् केवल निराकार ब्रह्म का ही ध्यान रहा। इस प्रकार परमात्मा आत्मा का मिलन हो गया।

आया था संसार मैं, देषण कौं बहु रूप।
कहै कबीरा संत हौ, पड़ि गया नजरि अनूप ॥२४॥

इस नानारूपात्मक जगत में विविध सांसारिक उपादानों को के लिए ही मेरा अवतरण हुआ था किन्तु कबीरदास जी कहते हैं कि मुझे संसार में आकर ब्रह्म के दर्शन हो गये।

अंक भरे भरि भेटिया, मन मैं नाहीं धीर।
कहै कबीर ते क्यूं मिलैं, जब लग दोइ सरीर ॥२५॥

मैं प्रिय से प्रेमविभोर हो कस-कस कर आलिंगनबद्ध हुआ, फिर मन में धैर्य नहीं। वह एक प्राण दो तन चाहता, मन तो परमात्मा में एकाकार होना चाहता है, किन्तु कबीरदास जी कहते हैं कि जब तक दो शरीर हैं तक एकाकार कैसे हो सकते हैं? यह द्वैत ही आत्मा और परमात्मा मिलन में बाधक है।

सचु पाया सुख ऊपनां, अरु दिल दरिया पूरि।
सकल पाप सहजैं गये, जब साईं मिल्या हजूरि ॥२६॥

सचु पाया=शान्ति प्राप्त हुई। सुख ऊपनां=सुख उत्पन्न हुआ। दिल=हृदय। दरिया पूरि=प्रेम से आपूर्ण उसी प्रकार जैसे नदी जल से।

कबीरदास कहते हैं कि दयालु प्रभु के मिलते ही हृदय की वेदना शान्त हुई एवं सुख उत्पन्न हुआ एवं हृदय उसी प्रकार प्रेम से परिपूर्ण हो गया जिस प्रकार नदी जल से। नदी का जल अपने साथ नाले आदि के गन्दे जल को बहाकर स्वच्छ कर देता है, उसी प्रकार इस प्रेम जल में या प्रेम सरिता में मेरे समस्त पाप बह गये।

धरती गगन पवन नहीं होता, नहीं तोया नहीं तारा।
तब हरि हरि के जन होते, कहै कबीर बिचारा ॥२७॥

तोया=जल। तारा=अग्नि पुंज से तात्पर्य।

कबीरदास कहते हैं कि इस संसार में सब नश्वर है अनश्वर तो केवल प्रभु और प्रभु-भक्त हैं। यदि पृथ्वी, आकाश, वायु, जल, अग्नि आदि पंचभूतों से निर्मित यह सृष्टि विनष्ट हो जाय तो भी प्रभु और प्रभु-भक्तों की स्थिति रहेगी, उनकी महिमा अमर है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जा दिन कृतमनां हुता, होता हट न पट।
हुता कबीरा राम जन, जिनि देखै औघट घट ॥२८॥

कृतम=कृत्रिम। हट=हाट। पट=वस्त्र किन्तु यहां तात्पर्य क्रय-विक्रय या साँसारिक क्रिया व्यापार से है। औघट=ब्रह्म। घट=हृदय।

जब यह माया-बन्धनों से परिपूर्ण मिथ्या (कृत्रिम) संसार नहीं था, तब न तो यहां बाजार था और न क्रय-विक्रय व्यापार, तात्पर्य सांसारिक क्रिया व्यापार (जहां व्यक्ति 'ज्यों-ज्यों सुरझ्यौ चहत है, त्यौं-त्यौं उरझ्यौ जात') से है। तब भी यहां प्रभु भक्त थे जो हृदय में उस ब्रह्म के दर्शन करते हैं।

विशेष—(१) शंकर के अद्वैत के समान संसार को 'मिथ्या' (कृत्रिम) कहा है।

(२) **'हट न पट'**—कबीर ने क्रिया-व्यापार के लिये केवल पट-वस्त्र के विक्रय को ही चुना, उन जैसे 'मसि कागद' न छूने वाले संत के लिए यह स्वाभाविक था कि अपने जुलाहे के व्यवसाय से वे शब्दावली और प्रतीक ग्रहण करते।

थिति पाई मन थिर भया, सतगुर करी सहाइ।
अनिन कथा तनि आचरी, हिरदै त्रिभुवन राइ ॥२९॥

थिति=स्थिति, योग की स्थिति, ध्यानावस्था। थिर=स्थिर, शान्त। अनिन कथा=अनन्य कथा, प्रेम-कथा। तनि=तन, शरीर। आचरी=आचरण किया।

सद्गुरु की सहायता से मन योगावस्था में ध्यानावस्थित हो गया जिससे चित्त शान्त हो गया। इस शरीर ने प्रेमकथा अर्थात् प्रेम साधना का आचरण किया जिससे हृदय में त्रिभुवनपति परमात्मा के दर्शन किये।

हरि संगति सीतल भया, मिटी मोह की ताप।
निस बासुरि सुख निध्य लह्या, जब अंतरि प्रगट्या आप ॥३०॥

हरि संगति=प्रभु मिलन। मोह की ताप=व्यर्थ के मोहजनित आकर्षणों की दौड़। सुखनिध्य=सुखनिधि। आप=स्वयं तत्व अर्थात् ब्रह्म।

प्रभु मिलन से मेरा चित्त शान्त हो गया एवं संसार के माया-मोह के विविध आकर्षणो की दौड़ समाप्त हो गई। उस ब्रह्म के हृदय में प्रकट होने से मैं रात-दिन आनन्द निधि का सुख प्राप्त करता हूं।

तन भीतरि मन मानियां, बाहरि कहा न जाइ।
ज्वाला तें फिरि जल भया, बुझी बलंती लाइ ॥३१॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हृदयस्थ मन प्रभु का दास हो गया है किन्तु प्रत्यक्ष रूप से अभिव्यक्ति नहीं की जा सकती। जलती हुई तृष्णा की ज्वाला प्रभु-भक्ति जल में परिवर्तित हो गई और प्रचंड वासना-अग्नि समाप्त हो गई।

तत पाया तन बीसर्या, जब मन धरिया ध्यान।
तपनि गई सीतल भया, जब सुनि किया असनान ॥३२॥

जब मन प्रभु-भक्ति में संलग्न हुआ तभी साधक को ब्रह्म की प्राप्ति हुई एवं उसे शरीर की सुधि जाती रही—वृत्तियां अन्तर्मुखी हो गईं। के द्वारा शून्य से स्रवित अमृत में स्नान करने से समस्त ताप नष्ट हो शान्ति प्राप्त हुई।

जिनि पाया तिनि सू गह गह्या, रसनां लागी स्वादि।
रतन निराला पाईया, जगत ढंडौल्या बादि ॥३३॥

कबीरदास जी ढोंगी साधुओं, जो व्यर्थ ही 'अलख लख' की पुकार लगाते हैं, को लक्ष्य कर कहते हैं कि जो उस ब्रह्म की प्राप्ति कर लेते हैं फिर उसे छोड़ते नहीं, उस प्रेममय प्रभु से वे एकाकार हो जाते हैं। अलौकिक मिलन का स्वाद ही ऐसा मधुर है कि जिह्वा उस रस को छोड़ना नहीं चाहती। यह जगत् व्यर्थ ही उसकी प्राप्ति के आनन्द का वर्णन करता है, उस अनुपम रत्न को तो प्राप्त करके ही जाना जा सकता है। भाव यह कि ब्रह्म प्राप्ति का आनन्द वाणी का विषय नहीं, उसको तो पाकर ही जाना जा सकता है।

कबीर दिल स्याबति भया, पाया फल संम्रथ्थ।
सायर मांहि ढंढोलतां, हीरै पड़ि गया हथ्थ ॥३४॥

कबीरदास कहते हैं कि उस अनुपम फल-ब्रह्म को पाकर हृदय आनंद से परिपूर्ण हो गया। वह अद्भुत रत्न इस भवसागर के मध्य ही अन्य वस्तुओं की खोज में भटकते हुए हाथ पड़ गया।

विशेष—कबीर मानते हैं कि ब्रह्म की प्राप्ति इसी जगत् के बीच सम्भव है।

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नांहि।
सब अंधियारा मिटि गया, जब दीपक देख्या मांहि ॥३५॥

कबीर कहते हैं कि जब मुझमें अहं का दर्प था तब प्रभु का निवास मुझमें नहीं था किन्तु अब अहं के नष्ट हो जाने पर वहां प्रभु ही प्रभु हैं, 'मैं' नहीं। जब मैंने ज्ञान दीपक लेकर अपने अन्तःकरण को देखा तो मेरे हृदय का समस्त अन्धकार दूर हो गया।

विशेष—तुलना कीजिए—

"आप यहां होते हैं गोया जब दूसरा नहीं होता।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जा कारणि मैं ढूंढता, सनमुख मिलिया आइ।
धन मैली पिव ऊजला, लागि न सकौं पाइ ॥३६॥

जिस ब्रह्म की खोज में मैं सर्वत्र भटक रहा था, वह सम्मुख आ गया किन्तु मैं उससे तदाकार न हो सका। पाप में मलिन जीवात्मा रूपी पत्नी प्रिय-ब्रह्म के उज्ज्वल स्वरूप से कैसे आत्म-साक्षात्कार करती ? इसी संकोच के कारण वह (आत्मा) पति (ब्रह्म) के चरण भी न छू सकी।

जा कारणि मैं जाइ था, सोई पाई ठौर।
सोई फिरि आपण भया, जासूं कहता और ॥३७॥

जिस ब्रह्म की खोज में मैं अन्यत्र जा रहा था। उसे अपने ही स्थान पर पा गया अर्थात् हृदय में ही पा गया। फिर वही परमात्मा जिसे मैं अपने से भिन्न कोई और स्वरूप समझे हुए था, वही मुझे अपना लगने लगा क्योंकि आत्मा और परमात्मा दोनों एकाकार हो गये।

कबीर देख्या एक अंग, महिमा कही न जाइ।
तेज पुंज पारस धणीं, नैनूं रहा समाइ ॥३८॥

कबीर कहते हैं कि मैंने उस ब्रह्म को दत्तचित्त होकर देखा है, उस की सौन्दर्य-महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता। वह अमित प्रकाशवान् एवं पारस के समान हैं जो अन्य को भी अपने प्रभाव से कंचन बना देता हैं। ऐसा अद्भुत ब्रह्म मेरे नेत्रों में समाया हुआ है।

मानसरोवर सुभर जल, हंसा केलि कराहिं।
मुकताहल मुकता चुगैं, अब उड़ि अनत न जाहिं ॥३९॥

हृदय का मानसरोवर भक्ति जल से आपूर्ण है जिसमें हँस—आत्माएं अर्थात् प्रेमीजन अथवा साधु क्रीड़ाएं कर मुक्ति रूपी मुक्ता चुगती हैं। इसमें उन्हें बड़ा आनन्द आ रहा है, इसीलिए वे उड़कर विमुख होकर अन्य साधनाओं को नहीं अपना सकतीं (क्योंकि 'कै हंसा मोती चुगैं, कै भूखे मर जाँय')।

गगन गरजि अंमृत चवै, कदली कवल प्रकास।
तहां कबीरा बंदिगी, कै कोई निज दास ॥४०॥

शून्य रूपी आकाश में अनहदनाद-रूपी बादल गरज कर अमृत की वर्षा करते हैं एवं मेरुदण्ड रूपी कदली के ऊपर (सहस्रदल) कमल विकसित हो रहा है। ऐसे स्थान पर या तो कबीर ही पहुंचा है या कोई प्रभु के अनन्य भक्त। भाव यह है कि साधना बड़ी दुर्गम है जिसे पार कर विरले ही ब्रह्म से साक्षात्कार कर पाते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विशेष—'गगन गरजि' से तात्पर्य अनहदनाद से है कुण्डलिनी जब स दल कमल में जाकर टकराती है तो एक घट-ध्वनि के समान नाद होता है 'अनहदनाद' कहलाता है। इसे ही 'गगन गरजि' कहा गया है।

नींव बिहूंणां देहुरा, देह बिहूंणां देव।
कबीर तहां बिलंबिया, करे अलष की सेव ॥४१॥

देहुरा=देवालय, मन्दिर। देह बिहूंणां=शरीर रहित, निराका अलष=ब्रह्म।

जहां विना आधार के ब्रह्म का मन्दिर है एवं ब्रह्म भी निराकार है, शून्य में कबीर की वृत्ति रम गई है। अब वह निरन्तर उस अखल ब्रह्म की कर रहा है।

देवल मांहैं देहुरी, तिल जेहै बिसतार।
मांहैं पाती मांहिं जल, मांहैं पूजणहार ॥४२॥

शून्य के मन्दिर में जो ब्रह्मरन्ध्र रूपी देव-प्रतिमा है, उसका विस्त एक तिल के बराबर है। इसकी अर्चना के लिए बाह्य उपादानों की आव कता नहीं; शरीर के भीतर ही अर्चना के लिए जल, सुमन आदि हैं और मन रूपी पुजारी है।

कबीर कवल प्रकासिया, ऊग्या निर्मल सूर।
निस अंधियारी मिटि गई, बागे अनहद नूर ॥४३॥

कंवल=सहस्रदल कमल। प्रकासिया=विकसित हुआ। ऊग्या= उदित हुआ। सूर=सूर्य—ज्ञान का। निसि अंधियारी=अंधकार पूर्ण रात्रि बागे=बाजे। अनहद=ब्रह्मरन्ध्र से कुण्डलिनी के विस्फोट समय और का आनन्ददायी शब्द जिसमें रोम-रोम से ब्रह्म की सत्ता का आभास होता है

कबीर कहते हैं कि ज्ञान के निर्मल सूर्योदय से सहस्रदल कमल विकसित गया। इससे जीवात्मा की अज्ञान की अंधकारपूर्ण रात्रि नष्ट हो गई एवं ब्र प्राप्ति पर अनहद का तूर्यनाद होने लगा।

अनहद बाजै नीझर झरै, उपजै ब्रह्म गियान।
आवगति अंतरि प्रगटै, लागै प्रेम धियान ॥४४॥

नीझर=निर्झर।

प्रेम सहित प्रभु में ध्यान लगाने से अगम्य ब्रह्म हृदय में प्रकट होता है इस ब्रह्म-ज्ञान के उत्पन्न होने पर अनहद नाद के साथ ब्रह्मरन्ध्र से अ स्रवित होने लगता है (जिसका पान कर साधक अमर हो जाता है)।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आकासे मुखि औंधा कुवाँ, पाताले पनिहारि।
ताका पांणीं को हंसा पीवै, बिरला आदि बिचारि॥४५॥

आकासे=शून्य में मुखि औंधा कुवां=सहस्रदल कमल या ब्रह्मरन्ध्र। पाताले=मूलाधार चक्र में।

शून्य में सहस्रदल कमल अधोमुख कुएं के समान स्थित है एवं कुण्डलिनी पाताल अर्थात् मूलाधार में स्थित है (किन्तु साधना से षट् चक्रों का भेदन करते हुए कुण्डलिनी को आकाश में पहुंचाकर उससे स्रवित अमृत का पान ही योगी का लक्ष्य है)। इस सहस्रदल कमलरूपी अधोमुख कुएं के जल (अमृत) को कोई प्रबुद्ध आत्मा ही पी सकती हैं, मैं सब मनुष्यों को देखकर ही ऐसा कहता हूं कि कोई बिरला ही इसका पान कर सकता है (अर्थात् प्रबुद्ध आत्माएं बहुत कम हैं)।

सिव सकती दिसि कौण जुजोवै, पछिम दिशा उठै थूरि।
जल मैं स्यंघ जु घर करै, मछली चढै खजूरि॥४६॥

सिव=शिव। सकती=शक्ति। दिसि=दिशा। कौण=कौन। स्यंघ=सिंह, मन। मछली=कुण्डलिनी।

हे नमाज़ पढ़ने वाले मुल्लाजी! इधर पश्चिम दिशा में तो धूल उड़ती है अर्थात् कुछ भी प्राप्त नहीं होता। उधर कोई नहीं देखता जहां शून्य में शिव और शक्ति के दर्शन होते हैं। प्रेम भक्ति के जल में यदि मन निवास करे और कुण्डलिनी रूप मछली ब्रह्मनाड़ी के माध्यम से सहस्रदल कमल रूप खजूर (ऊंचाई के लिए कहा) पर चढ़े, तभी उनके दर्शन हो सकते हैं।

अंमृत बरिसै हीरा निपजै, घटा पड़ै टकसाल।
कबीर जुलाहा भया पारषू, अनभै उतर्या पार॥४७॥

उस प्रभु-मिलन सुख का वर्णन करते हुए ही कबीर कहते हैं कि वहां अमृत निर्झर निरन्तर प्रवाहित होता एवं ज्ञान के मुक्ता वहां उत्पन्न होते हैं तथा अनहदनाद होता रहता है। कबीर जुलाहा भी उस प्रभु रूपी हीरे का पारखी हो गया है। वस्तुतः यह सब अनुभव से ही प्राप्य है।

ममिता मेरा क्या करै, प्रेम उघाड़ीं पौलि।
दरसन भया दयाल का, सूल भई सुख सौड़ि॥४८॥१७०॥

ममिता=माया-मोह। पौलि=पोल, रहस्य। दयाल=दयालु, परमात्मा। सूल=पथ कंटक। सौड़ि=लिहाफ।

जब प्रेम ने मुझे प्रभु प्राप्ति का मार्ग दिया तो भला सांसारिक माया-मोह मेरा क्या अहित कर सकते हैं? प्रभु के दर्शन होने से पाप-शूलों का बोझ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(जिसको मैं ढोता था) वैसे ही सुखपूर्ण हो गया जैसे लिहाफ जाड़ों में होने पर भी सुखदायी लगता है। भाव यह है कि प्रभु मिलन से पाप भी बन गये।

---

६. रस कौ अंग

कबीर हरि रस यौं पिया, बाकी रही न थाकि।
पाका कलस कुँभार का, बहुरि न चढ़ई चाकि ॥१॥

थाकि=थकान, क्लेश से तात्पर्य है। पाका=पक्का। कलस=(कलश) घड़ा।

कबीर कहते हैं कि मैंने प्रभु भक्ति के रस का इतना पान किया है सांसारिक क्लेश आदि समाप्त हो गये हैं। कुम्भकार का पकाया हुआ घड़ा जिस प्रकार पुनः चाक पर नहीं चढ़ाया जाता, उसी प्रकार प्रभुभक्ति में पगे जन पुनः इस संसार चक्र में नहीं पड़ते। आवागमन से मुक्त हो जाते हैं।

राम रसाइन प्रेम रस, पीवत अधिक रसाल।
कबीर पीवण दुलभ है, मांगै सीस कलाल ॥२॥

रसाइन=रसायन। रसाल=मधुर। कलाल=मदिरा विक्रेता अर्थात् सद्गुरु।

प्रभु-भक्ति का प्रेम रस पीने में बड़ा मधुर है (और वह मधुर से मधुर होता जाता है)। कबीर कहते हैं कि इसका पान करना बड़ा कठिन कार्य है क्योंकि गुरु रूपी कलाल साधना के लिए सर्वस्व त्याग चाहता है।

विशेष—कबीर के प्रेम का सिद्धान्त ही ऐसा है जिसमें साधक को सर्वस्व त्याग, शीश-समर्पण की बार-बार चेतावनी है—

"यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं।
सीस उतारै भुँई धरै, तब पैठें घर माहिं ॥"

कबीर भाठी कलाल की, बहुतक बैठे आइ।
सिर सौंपै सोई पिवै, नहीं तौ पिया न जाइ ॥३॥

भाटी=भट्टी, जिससे मदिरा खींची जाती है। बहुतक=बहुत से।

कबीर कहते हैं कि मदिरा विक्रेता गुरुरूपी कलाल के यहां (भट्टी) बहुत से मदिरा (प्रेमरस, प्रभुभक्ति) का पान करने के लिये आ बैठे हैं। किन्तु मदिरा पान की इच्छा वालों (साधकों) में वही पान कर सकता है जो अपना शीश साधना की वेदी पर चढ़ा दे। भाव यह है कि प्रभु-प्राप्ति के लि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सर्वस्व त्याग करना पड़ता है, प्रत्येक सम्भव कष्ट के लिये तैयार रहना पड़ता है।

विशेष—सांगरूपक अलंकार।

हरि रस पीया जांणिये, जे कबहू न जाइ खुमार।
मैमंता घूँमत रहै, नांही तन की सार ॥४॥

खुमार=नशा।

ब्रह्मानन्द की मदिरा का पान उसी ने किया समझो जिसका नशा कभी नहीं उतरता। यह रंग ही ऐसा है जिस पर दूसरा रंग नहीं चढ़ता (सूरदास प्रभु कारी कामरी चढ़ै न दूजौ रंग)। वह तो मदमस्त हाथी के समान इधर-उधर घूमता है। (जिसे केवल प्रभु से प्रयोजन है) तथा उसे अपने शरीर की सुधि नहीं रहती।

विशेष—प्रभु-भक्ति का रस अलौकिक है एवं शरीर पार्थिव, उसको पाकर भला पार्थिव का ध्यान कैसे रह सकता है, इसीलिए कहा है "नाहीं तन की सार।"

मैमंता तिण नां चरै, सालै चिता सनेह।
बारि जु बांध्या प्रेम कै, डारि रह्या सिरि षेह ॥५॥

मैमंता=मदमस्त हाथी। तिण=तृण।

मदमस्त हाथी तृण ग्रहण नहीं करता उसे तो प्रेम की चिता धधक कर व्यथित करती रहती है। यदि उसे प्रेम के द्वार पर बांध दिया जाय तो अपने शीश पर धूल डालता रहता है, अर्थात् अपने अहं को महत्वहीन या अस्तित्व-हीन बनाना चाहता है।

विशेष—हाथी स्नान उपरान्त अपने शरीर पर सूँड से धूल डालकर क्रीड़ा करता है, कबीर ने इसी से यह अर्थ लिया कि वह अपने शीश पर धूल डालकर अहं, अभिमान को नष्ट कर रहा है। भाव यह है कि प्रेमसाधना में प्रवृत्त होने पर अभिमान या अहं शेष नहीं रहता।

मैमंता अविगत रता, अकलप आसा जीति।
राम अमलि माता रहै, जीवत मुकति अतीति ॥६॥

६. अकलप=निर्भय, संकल्प-विकल्परहित। अमलि=नशा, प्रभाव।

प्रभु-भक्ति रस में मदमत्त साधक ब्रह्म की प्राप्ति में लीन रहता है एवं वह निर्भय भाव से, संकल्प रहित हो, साँसारिक आशाओं (आकर्षणों) को जीत लेता है। यदि उस पर प्रभु-भक्ति का यह रस (प्रभाव) चढ़ा ही रहे तो वह अवश्य ही जीवन्मुक्त हो जाता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विशेष—जीवन्मुक्त साधक के लक्षण भगवान् कृष्ण ने गीता में बताते हुए इसी संकल्प-विकल्प रहित मन:स्थिति पर बड़ा बल दिया है—

"आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं, समुद्रमाप: प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति स, सर्वे शान्तिमाप्नोति न कामकामी।
२।७०

जिहि सर घड़ा न डूबता, अब मैं गल मलि न्हाइ।
देवल बूडा कलस सूं, पंषि तिसाई जाइ ॥७॥

सर=सरोवर, मन-हृदय । मैंगल=मदमत्त हाथी, भक्त । देवल=मन्दिर, संसार, कलस सूं=चोटी रूप में स्थित कलश तक ।

जिस हृदय रूपी सरोवर में प्रभु-प्रेम-जल इतना थोड़ा, उथला था कि मन रूपी घट भी नहीं डूबता था अर्थात् मन भी वहां आनन्द नहीं पाता था, वहीं अब प्रभु-भक्ति जल के बढ़ जाने से प्रभु-प्रेम का मदमस्त साधक मलमल कर स्नान करता है, अर्थात् उस जल में निमज्जन करने से उज्ज्वल से उज्ज्वलतर होता जाता है । अब तो वहाँ अथाह जल है जिसमें देवालय की चोटी तक डूब गया है अर्थात् संसार अपने समस्त मायामय आकर्षणों सहित साधक की दृष्टि से तिरोहित हो गया है । किन्तु आत्मारूपी पक्षी अब भी प्रभु-प्रेम जल की और अधिक प्राप्ति के लिए तृषित है ।

सबै रसांइण मैं किया, हरि सा और न कोइ।
तिल इक घट मैं संचरै, तौ सब तन कंचन होइ ॥८॥१९

रसांइण=रसायन, या रसास्वादन ।

कबीर कहते हैं कि मैंने जितने भी रस (आनन्द) हैं सबका रसास्वादन कर लिया किन्तु प्रभु-प्रेमरस के समान और कोई मधुर रस नहीं । यदि इस प्रभु-भक्ति रस का तिल—लेश-मात्र भी हृदय घट में संचरित हो जाय तो समस्त शरीर स्वर्ण—अमर—बन जाय । अथवा सम्पूर्ण शरीर पापमुक्त हो कंचन के समान शुद्ध हो जाय ।

---

७. लांबि कौ अंग

कया कमंडल भरि लिया, उज्जल निर्मल नीर।
तन मन जोबन भरि पिया, प्यास न मिटी सरीर ॥१॥

कया=काया, शरीर ।

शरीर रूपी कमण्डल में मैंने ज्ञान का उज्ज्वल एवं भक्ति का पवित्र जल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भर लिया एवं बड़ी लगन से जीवन के सुन्दरतम समय में इसका पान किया किन्तु फिर भी इस शरीर की तृषा शान्त नहीं हुई।

मन उलट्या दरिया मिल्या, लागा मलि मलि न्हांन।
थाहत थाह न आवई, तूं पूरा रहिमांन॥२॥

मन संसार से विमुख हुआ तो उसे प्रभु-भक्ति की सरिता कलकल कल-रव करती मिल गई जिसमें भक्त मल-मलकर निमज्जन करने लगा। हे प्रभु! अत्यन्त दयालु हो, प्रयत्न करने पर भी आपकी वास्तविक थाह नहीं मिलती है।

हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराइ।
बूंद समानी समद मैं, सो कत हेरी जाइ॥२॥

आत्मा कहती है कि हे सखि! प्रभु को खोजते-खोजते मैं स्वयं प्रभु में खो गई हूं। जो बूंद समुद्र में जाकर मिल जाती है उसको देखना असम्भव है, उसी प्रकार परमात्मा रूपी संसार में आत्मा रूपी बूंद का पता नहीं लगाया जा सकता। भाव यह है कि प्रभु मिलनोपरान्त साधक को अपने पृथक् अस्तित्व की प्रतीति नहीं रह जाती।

हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराइ।
समंद समाना बूंद मैं, सो कत हेर्या जाइ॥४॥१७२॥

कबीर कहते हैं कि प्रभु को खोजते-खोजते आत्मा थक गई। समुद्र बूंद में समा गया है अर्थात् ईश्वर हृदय में बस गया है, उसे अब किस भांति देखा जा सकता है?

—०—

८. जर्णां कौ अंग

जर्णा=जलन, यहां द्विधा-प्रभु के स्वरूप के विषय में क्योंकि ईश्वर स्वयं इतना गूढ़, अगम्य एवं आदर्श है कि उसकी प्राप्ति का मार्ग भी तद्वत् हो गया है। साधक को कभी उसकी ऐसी तो कभी भिन्न अनुभूति होती है, यही तो द्विधा है। जर्णा का अर्थ कुछ विद्वान् 'परिपक्वावस्था' लगाते हैं। कबीर की समस्त साखियां ही अनुभूतिमूलक एवं चिन्तनपरक हैं, केवल यह 'अंग' ही क्या, समस्त साखियां परिपक्वावस्था की हैं।

भारी कहौं त बहु डरौं, हलका कहूँ तौ झूठ।
मैं का जांणौं राम कूं, नैनूं कबहुँ न दीठ॥२॥

यदि मैं उस ब्रह्म को भारी कहता हूं तो भय है कि कहीं लोग उसे साकार न मान लें, वह तो निराकार है। यदि निराकार होने के कारण उसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हल्का कह दूं तो यह मिथ्या है, वह अपने अमित गुणों के कारण हल्का न
सत्य बात तो यह है कि भला मैं उस ब्रह्म को क्या जानूं, नेत्रों ने कभी उ
दर्शन ही नहीं किये ।

विशेष—सब प्रकार से प्रभु का स्वरूप निरूपण करने में असमर्थ हो
उसे 'नेति-नेति' कहने को ही बाध्य होते हैं ।

दीठा है तौ कस कहूँ, कह्यां न को पतियाइ ।
हरि जैसा है तैसा रहो, तूं हरिषि हरषि गुण गाइ ॥२॥

यदि मैंने प्रभु के दर्शन किये भी हैं तो अभिव्यक्ति कैसे करूं, क्यों
वह तो मूकास्वादनवत् है । यदि उस दर्शन से प्राप्त ब्रह्म का वर्णन कहं
विश्वास कौन करेगा क्योंकि वह अत्यन्त अद्भुत है । इसलिए उनके स्वरू
परिचय का प्रयत्न व्यर्थ है, वे जैसे भी हैं वैसे ही रहें, हे मन ! तू प्रसन्न
हो कर, उल्लास सहित, उनका गुणगान करता रह ।

ऐसा अद्भुत जिनि कथै, अदभुत राखि लुकाइ ।
बेद कुरानौं गमि नहीं, कह्या न को पतियाइ ॥३॥

हे साधक या मन ! तू ऐसे (पूर्वोक्त) वर्णित अद्भुत ब्रह्म के व
का व्यर्थ प्रयास क्यों करता है तू उस अद्भुत को रहस्य ही बना रहने दे । उ
तक तो वेद एवं कुरानादि शास्त्रों की भी पहुंच नहीं है, वह उनकी सीमा
भी परे है, फिर तेरे कहे का तो विश्वास ही कौन करेगा ?

करता की गति अगम है, तूं चलि अपणैं उनमान ।
धीरैं धीरैं पाव दे, पहुँचैंगे परवान ॥४॥

ब्रह्म की गति अगम्य है, वह निस्सीम ही जो ठहरा किन्तु ओ ससी
साधक ! तू अपनी सीमाओं को ध्यान में रखता हुआ धैर्यपूर्वक साधना में प्रवृ
हो । यह निश्चित है कि इस विधि से हम अपने लक्ष्य-ब्रह्म को अवश्य ही प्रा
करेंगे ।

पहुँचैंगे तब कहैंगे, अमड़ेंगे उस ठांइ ।
अजहूँ बेरा समंद मैं, बोलि बिगूचैं कांइ ॥ ॥१७७॥

अमड़ेंगे=उमड़ेंगे, रहेंगे । बिगूचैं=नष्ट करें ।

कबीरदास कहते हैं कि उस प्रभु के विषय में अभी क्या कहा जा सक
है, जब हम उस तक पहुंच जायेंगे तो वहां भरपूर आनन्द प्राप्त करेंगे औ
तभी उसके विषय में कुछ कहा जा सकता है । अभी तो अपनी नौका बी
समुद्र में है (साधना-मार्ग में है), तट (ब्रह्म) अभी बहुत दूर है फिर व्यर्थ
प्रलाप में हम समय क्यों नष्ट करें ? भाव यह है कि दत्तचित हो साधना
प्रवृत्त हों ।

—०—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

९. हैरान कौ अंग

[हैरान=आश्चर्य, अगम्य अनुपम-निराकार ब्रह्म के अद्भुत दर्शन से साधक आश्चर्यचकित हो जाता है। सत्य के साक्षात्कार से सर्वदा ही आश्चर्य होता है।]

पंडित सेती कहि रहे, कह्यां न मानै कोइ।
ओ अगाध एका कहैं, भारी अचिरज होइ ॥१॥

सेती=से।

मैं पण्डितों से उस ब्रह्म के अद्भुत स्वरूप का वर्णन करता हूं तो ये उसका विश्वास ही नहीं करते। जब मैं उस ब्रह्म को अथाह एवं एकतत्व अर्थात् परम तत्व कहता हूं तो इन्हें अत्यन्त आश्चर्य होता है।

बसे अपंडी पंड मैं, ता गति लषै न कोइ।
कहै कबीरा संत हौ, बड़ा अचंभा मोहि ॥२॥१७९॥

अपंडी=निराकार। पंड=शरीर।

मनुष्य के शरीर—हृदय—में ही वह निराकार ब्रह्म निवास करता है किन्तु फिर भी कोई उसका दर्शन प्राप्त नहीं कर पाता। कबीर कहते हैं कि सन्तजनो! मुझे इस बात पर बड़ा आश्चर्य है (साधना से लोग उसे प्राप्त क्यों नही करते?)

———

१०. लै कौ अंग

जिहि बन सीह न संचरै, पंषि उड़े नहीं जाइ।
रैनि दिवस का गमि नहीं, तहां कबीर रह्या ल्यौ लाइ ॥१॥

सीह=सिंह। लै=लय, लगन। रैनि दिवस=सूर्य चन्द्र।

जिस वन में वनराज सिंह का भी प्रवेश नहीं है और जहां पक्षी भी उड़कर नहीं जा सकता, न वहां सूर्य और चन्द्र की पहुंच है ब्रह्म के ऐसे अगम्य स्थल पर कबीर ने अपनी लगन लगा ली है। भाव यह है कि अगम्य प्रभु की प्राप्ति के लिए दत्तचित्त होकर साधना में प्रवृत्त होना वांछनीय है।

सुरति ढीकुलो ले जल्यौ, मन नित ढोलन हार।
कँवल कुवाँ मैं प्रेम रस, पीवै बारंबार ॥२॥

ढीकुली=सिंचाई के लिए कुएं से पानी निकालने का एक उपकरण। लेज=रस्सी, इस ढेकुली में रस्सी भी काम आती है, साधनापक्ष में लगन ही

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रस्सी है। ल्यौ=लगन। ढोलनहार=डोल, पानी निकालने का एक पा कँवल कुवाँ=कमल कुंआं, सहस्रदल कमल का कुआं।

सहस्रदल कमल रूपी कुएं में प्रेमपूर्ण अमृत रस भरा हुआ है। मा सुरति—प्रेम-सुषुम्णा—की ढेकुली और लगन की रस्सी से मन के डोल अ बाल्टी में इस रस को भर कर बारम्बार पान करता है।

विशेष—सांगरूपक अलंकार।

गंग जमुन उर अंतरै, सहज सुंनि ल्यौ घाट।
तहाँ कबीरै मठ रच्या, मुनि जन जोवैं बाट॥३॥१८३॥

गंग=इड़ा। जमुन=यमुना, पिंगला। सहज=सहज समाधि। सुंनि= शून्य।

कबीर कहते हैं कि प्रभु प्राप्ति के लिए तीर्थ यात्रा की क्या आवश्यकता समस्त तीर्थ शरीर में ही विद्यमान हैं। गंगा और यमुना इड़ा और पिंग नाड़ी के रूप में शरीर (उर) के भीतर ही अवस्थित हैं जिनके सहज एवं शू जैसे घाट हैं। ऐसे ही पर कबीर की आत्मा ने मठ, अपना निवास स्थान ब लिया है, बड़े-बड़े मुनिजन इस स्थान पर अपना निवास बनाने की प्रतीक्षा क ही रह गये।

विशेष—

'सहज' – सदगुरु के बताये हुए रहस्य से निज लक्ष्य में ध्यान लगाने सहज ध्यान या सहज समाधि कहते हैं। इस समाधि में किसी प्रकार के बाह्या डम्बर (आसन, मुद्रा आदि) की आवश्यकता नहीं पड़ती है, इसीलिए इसे सहज समाधि कहते हैं।

---

११. निहकर्मी पतिव्रता कौ अंग

निहकर्मी=निष्कर्म, फल रहित अर्थात् फल की कामना न करते हु 'गीता' के "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन" के अनुरूप प्री व्यवहार।

कबीर प्रीतड़ी तौ तुझ सौं, बहु गुणियाले कंत।
जे हँसि बोलौं और सौं, तौं नील रँगाऊँ दंत॥१॥

प्रीतड़ी=प्रेम। गुणियाले=गुणवान्। नील रंगाऊं दंत= (मुहावरा) अपने को कलंकित करूं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हे अनन्त गुणवान् प्रियतम (ब्रह्म) कबीर का प्रेम तो केवल आपसे है। जो मैं अन्य किसी से हंसूं-बोलूं अर्थात् अन्य किसी से प्रेम करूं तो स्वयं को कलंकित करूं।

नैनां अंतरि आव तूं, ज्यूं हौं नैन झंपेउँ।
नां हौं देखौं और कूं, नाँ तुझ देखन देउँ ॥२॥

प्रियतम! तुम मेरे नेत्रों में आकर बस जाओ, जैसे ही आप आओगे मैं एक दम नेत्र मूंद लूंगी। तब मैं तेरे अतिरिक्त अन्य किसी को न देखूंगी और न अन्य की दृष्टि तुझ पर पड़ने दूंगी।

विशेष—प्रिय के प्रति ऐसी अनन्यता दुर्लभ है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने 'श्रद्धा और भक्ति' निबन्ध में लिखा है कि भक्त यह चाहता है कि मैं जिसे प्रेम करूं उसी इष्ट या आराध्य को सब प्रेम करें; भक्ति के विस्तार का यही स्वस्थ लक्षण है। उन्होंने प्रेमी की मनःस्थिति बताते हुए लिखा है कि वह यह चाहता है कि मैं जिसे प्रेम करता हूं उसे अन्य कोई प्रेम न करे, इससे प्रेम की अधिकाधिक प्रतीति होती है। कबीर ने अपने अगाध प्रेम को इसी गोपन भाव के द्वारा व्यक्त किया है, जहां वह प्रिय को नेत्रों के मन्दिर में छिपा कर रखना चाहता है।

मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सो तेरा।
तेरा तुझकौं सौंपता, क्या लागै है मेरा ॥३॥

हे प्रभु! मुझ में मेरा अपना तो कुछ भी नहीं है जो कुछ भी अस्थि-चर्म का शरीर और यह जीवन है वह आपके द्वारा प्रदत्त है। यदि मैं अपने इस जीवन और शरीर को तेरी साधना में समर्पित कर दूं तो मेरा क्या जायेगा, जिसकी वह वस्तु है उसी के निमित्त तो दूंगा, फिर मेरा इसमें क्या बड़प्पन?

कबीर रेख स्यंदूर की, काजल दिया न जाइ।
नैंनूं रमइया रमि रह्या, दूजा कहां समाइ ॥४॥

स्यंदूर=सिंदूर। नैनूं=नेत्रों में।

कबीरदास जी कहते हैं कि सौभाग्यवती पतिव्रता अपनी मांग में सिंदूर ही भरती है, उसमें कालिख नहीं भरी जा सकती। जहां एक वस्तु का उपयुक्त स्थान है वहां दूसरी वस्तु नहीं आ सकती। मेरे नेत्रों में तो (सर्वत्र रमण करने वाला) राम बसा हुआ है फिर भला इसमें किसी अन्य (सांसारिक आकर्षण) के लिए स्थान कैसे हो सकता है?

विशेष—तुलना कीजिये—

"भरी सराय रहीम लखि आप पथिक फिरि जाय।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कबीर सीप समंद की, रटै पियास पियास।
समदहि तिणका बरि गिणै, स्वांति बूंद की आस ।।५।।

समंद=समुद्र । समदहि= (समुद्रहिं) समुद्र को । तिणका=तृण तुल्य ।

कबीरदास जी कहते हैं कि नक्षत्र की बूंद की आशा में सीप प्यास प्यास रटती रहती है। उस बूंद के सम्मुख वह सम्पूर्ण सागर-जल को तृण तुल्य समझती है। भाव यह है कि एक प्रभु के सम्मुख समस्त सांसारिक आनन्दोल्लास तुच्छ हैं।

विशेष—अन्योक्ति अलंकार है।

कबीर सुख कौं जाइ था, आगैं आया दुख।
जाहि सुख घरि आपणैं, हम जाणौं अरु दुख ।।६।।

जाहि सुख घरि आपणे=हे सुख तू मुझ से विदा ले।

कबीर कहते हैं कि मैं संसार-सुख की प्राप्ति के लिए जा रहा था, अर्थात् ऐहिक सुख लालसा में भटक रहा था तभी मेरा साक्षात्कार प्रभुवियोगजन्य दुःख से हो गया। भाव यह है कि आत्मा ब्रह्म के वियोग में मिलनाकुल हो गई। अब इस विरह में ही मुझे इतना अमित आनन्द प्राप्त होता है कि मेरे लिए संसार-सुख निरर्थक एवं त्याज्य ही है, इसलिए ओ संसार-सुख ! तू मुझ से विदा हो जा।

दो जग तौ हम अंगिया, यहु डर नाहीं मुझ।
भिस्त न मेरे चाहिए, बाझ पियारे तुझ ।।७।।

दो जग=दोजख, नरक। अंगियां=अंगीकार करना, स्वीकार करना। भिस्त=बहिश्त, स्वर्ग। बाझ=रहित, अतिरिक्त।

कबीर कहते हैं कि मैं यदि नरक-यातना में पड़ूं और मुझे वहां प्रभु-दर्शन हों तो मुझे कोई आपत्ति नहीं अतः मैं नरक से भयभीत नहीं हूं। किन्तु हे प्रभु आपके अभाव में मुझे स्वर्ग-सुख भी त्याज्य हैं।

विशेष—१. प्रिय अभाव में वसन्त भी दुखदाई है और उसके संसर्ग से पतझड़ भी ऋतुराज, प्रिय के साथ मरुभूमि भी कलित कानन है और कानन भी प्रिय अभाव में झाड़-झंखाड़—प्रेमी मन की इस स्थिति का वर्णन अन्य कवियों ने भी किया है—

"कहा करौं बैकुंठ लै कल्पवृक्ष की छांह।
अहमद ढाक सुहावने जहं प्रियतम गल बांह ।।" —'अहमद'

(२) "दो जग" का पाठ यदि "दोजग" कर दिया जाय तो अर्थ करने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अधिक सुविधा रहेगी, 'दो जग' का अर्थ यदि "लोक और परलोक" या "संसार और स्वर्ग" अथवा "स्वर्ग और नरक" कर दिया जाय तो अगले चरणों में संगति नहीं बैठती।

जे वो एक जांणियां, तौ जांण्या सब जांण।
जे ओ एक जांणियां, तो सबहीं जांण अजांण ॥८॥

जांण=ज्ञान।

यदि किसी ने उस एक परब्रह्म को जान लिया तो समझिये कि उसे संसार का समस्त ज्ञान हृदयंगम हो गया है और यदि किसी ने केवल उस ब्रह्म को नहीं जाना है तो उसका समस्त संचित ज्ञान अज्ञान ही है।

विशेष—सभंगपद यमक अलंकार।

कबीर एक न जांणियां, तौ बहु जांण्यां क्या होइ।
एक तैं सब होत है, सब तैं एक न होइ ॥९॥

एक=ब्रह्म। बहु=ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य समस्त ज्ञान।

कबीर कहते हैं कि यदि किसी ने एक परब्रह्म प्रभु को न जानकर संसार के विविध ज्ञान प्राप्त कर लिये हैं तो उससे क्या लाभ ? क्योंकि सबका मूल जो ब्रह्म है उसको बिना जाने उससे उत्पन्न उपादानों का ज्ञान कैसे प्राप्त हो सकता है ? उस एक ब्रह्म से ही सबकी उत्पत्ति होती है। यदि समस्त संसार की वस्तुएं मिलकर भी उस एक ब्रह्म को उत्पन्न करने का प्रयास करें तो असम्भव है।

जब लग भगति सकांमता, तब लग निर्फल सेव।
कहै कबीर वै क्यूं मिलैं, निहकांमी निज देव ॥१०॥

सकांमता=कामनामयता। निर्फल=निष्फल, फल रहित।

जब तक भक्ति कामनामय है तब तक प्रभु की समस्त सेवा व्यर्थ है, उसके द्वारा ब्रह्म दर्शन नहीं हो सकता। कबीरदास जी कहते हैं कि कामनायुक्त भक्ति से वे निष्कामी परमात्मा—स्वामी—किस प्रकार प्राप्त हो सकते हैं ?

विशेष—(१) 'गीता' में भी भगवान् कृष्ण ने इसी कामना रहित भक्ति का प्रतिपादन किया है—

"यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः।
वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः॥
कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम्।
क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति॥ अ० २।४२-४३॥
कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि॥"—अ०२।४६।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(२) साधक या भक्त के सम्मुख यह बड़ी कठिनाई है कि उसका मन में कामना रहित नहीं हो पाता, इस मन:स्थिति का सुन्दर उद्घाटन जयशंकरप्रसाद जी ने अपनी एक कविता में इस प्रकार किया है—

"जब करता हूं कभी प्रार्थना, कर संकलित विचार,
तभी कामना के नूपुर की, हो जाती झनकार।"—'झ

फिर भी अभ्यास से भक्त कामनाविरत हो सकता है— इसी का पादन कबीर ने किया है।

आसा एक जु राम की, दूजी आस निरास।
पांणी मांहैं घर करैं, ते भी मरैं पियास ॥११॥

मनुष्य को केवल एक प्रभु प्राप्ति की ही इच्छा करनी चाहिए क्यों समस्त आशाएं उसी से पूर्ण होती हैं। अन्य सांसारिक कामनाएं अन्त निराशा में ही परिणत होती हैं (क्योंकि वे मृगतृष्णा की भाँति मनुष्य को काती हैं और उनका फल कुछ नहीं होता)। जो मनुष्य इस एक रामप्र के अतिरिक्त अन्य सांसारिक इच्छाएं रखते हैं वे तो ऐसे ही हैं जो जल में कर भी प्यासे मरते हैं—भाव यह है कि उन्हें उन सांसारिक आशाओं के होने पर भी शान्ति प्राप्त नहीं होती।

विशेष—अलंकार—दृष्टान्त।

जे मन लागै एक सूं, तौ निरबाल्या जाइ।
तूरा दुइ मुखि बाजणां, न्याइ तमाचे खाइ ॥१२॥

निरबाल्या जाइ=निर्वाह हो जायेगा, मुक्ति हो जायेगी। तूर तुरही। न्याइ=न्याय, समान। बाजणां=बजाने से।

यदि मनुष्य का मन एक परब्रह्म ही पर आसक्त हो जाय तो निर्वा जायेगा और यदि प्रभु और संसार अर्थात् माया-आकर्षण दोनों से प्रेम तो जीव को दु:खों के थपेड़े उसी प्रकार सहन करने पड़ेंगे जिस प्रकार को दो मुखों से बजने के कारण हाथ के प्रहार सहन करने पड़ते हैं।

कबीर कलिजुग आइ करि, कीये बहुतज मीत।
जिन दिल बंधी एक सूं, ते सुखु सोवैं नचींत ॥१३॥

बहुतज=बहुत से। नचींत=निश्चिन्त।

कबीर कहते हैं कि मनुष्य इस कलि संसार में आकर विविध आकर्ष प्रपंचों में पड़ता है किन्तु जिसने अपना चित्त उस परब्रह्म की भक्ति में दिया वह निश्चिन्त होकर सुख-निद्रा में सोता है, वह मुक्त हो जाता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कबीर कूता राम का, मुतिया मेरा नांउं।
गलै राम की जेबड़ी, जित खैंचै तित जाउं ॥१४॥

कूता=कुत्ता। जेबड़ी=रस्सी।

कबीर कहते हैं कि मैं राम-ब्रह्म-का कुत्ता हूं और मेरा नाम मोती (मुक्त) है एवं मेरे गले में राम-नाम की रस्सी बंधी हुई है, भाव यह है कि मैं उसी के द्वारा संचालित होता हूं। कुत्ते को उसका स्वामी जिधर चाहता है खींच ले जाता है उसी भांति मेरे स्वामी राम मुझे जिधर घुमाते हैं घूम जाता हूं।

विशेष—(१) इष्ट देव की महानता एवं अपनी क्षुद्रता का जितना अधिक ज्ञान होगा, भक्ति की प्रतीति और आनन्द भी उतना ही अधिक होगा। जिस प्रकार तुलसी ने "तुम सो खरौ है कौन, मोसो कौन खोटो" लिखकर अपनी अनन्य भक्ति का परिचय दिया है उसी भांति अपितु उससे भी आगे बढ़कर कबीर ने अपने को राम का कुत्ता तक बना दिया, दीनता का इससे बढ़कर उदाहरण मिलना अन्यत्र दुर्लभ है। दूसरे कबीर राम का कुत्ता बनकर यह भी दिखाना चाहते हैं कि कुत्ते की जो स्वामी-भक्ति है वही मेरी है, जो दुतकारने पर भी पास से पास आना चाहता है।

(२) अलंकार –रूपक।

तो तो करै त बाहुड़ौं, दुरि दुरि करै तो जाउं।
ज्यूं हरि राखै त्यूं रहौं, जो देवै सो खाउं ॥१५॥

कबीर कुत्ते के रूपक द्वारा ही अपनी भक्ति भावना का परिचय देते कहते हैं कि यदि वह स्वामी-ब्रह्म अपने कुत्ते (भक्त, दास) को 'तो—तो' कर के पुचकारते हैं तो वह प्रभु के और भी अधिक निकट आते हैं और यदि स्वामी दुत्कार दें तो दूर चले जायें। जिस प्रकार भी प्रभु रखना चाहेंगे वैसे ही मैं (आत्मा) रह लूंगी एवं वह जो कुछ भी प्रदान कर देते हैं उसे खाकर अपना जीवन-यापन करते हैं।

मन प्रतीति न प्रेम रस, नाँ इस तन मैं ढंग।
क्या जाणौं उस पीव सूं, कैसें रहसी रंग ॥१६॥

कबीर कहते हैं कि मन को प्रभु-प्रेम पर दृढ़ विश्वास नहीं है तथा न यह शरीर उन उपकरणों से परिचित है जो प्रिय मिलन के लिए उपयुक्त है। फिर भला मैं उस प्रियतम से साक्षात्कार के समय कैसे रंग-रेलियां करूंगी? भाव यह है कि मैं प्रभु-मिलन के आचार-व्यवहार तक से परिचित नहीं हूं।

उस संम्रथ का दास हौं, कदे न होइ अकाज।
पतिव्रता नाँगी रहै, तो उसही पुरिस कौं लाज ॥१७॥

संम्रथ=सामर्थ्यवान्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कबीर कहते हैं कि मैं सामर्थ्यवान् प्रभु का भक्त हूं, जिससे कभी अभ नहीं होगा, यदि पतिव्रता नारी (आत्मा) नग्न-तन रहे तो यह परब्रह्म प श्वर की लज्जा का प्रश्न है क्योंकि कोई कहेगा कि यह अमुक व्यक्ति (भगवा की ही वधू है जो इस प्रकार नग्न है। अतः लज्जा उस प्रभु को ही होनी चा कि उसका भक्त शीलादि गुणों से हीन है, नग्न से यहां यही तात्पर्य है।

घरि परमेसुर पांहुणाँ, सुणौं सनेही दास।
षट रस भोजन भगति करि, ज्यूं कदे न छाड़ै पास ॥१८॥ २००

घरि=घर। परमेसुर=परमेश्वर। पांहुणाँ=अतिथि।

कबीर कहते हैं कि हे प्रभु-प्रेमी भक्तो सुनो। इस हृदय रूपी घर में रूपी अतिथि पधारे हैं। जिस प्रकार अतिथि की अभ्यर्थना विविध भोगादि की जाती है उसी प्रकार भक्ति रूपी षट्रस व्यंजन प्रभु को परोस कर प्रेम करना चाहिए जिससे वे कभी भी हमारा साथ न छोड़ दें।

विशेष—(१) रूपक अलंकार। (२) "षटरसभोजन भगति करि"— भक्ति को षट्रस व्यंजन बताकर कबीर बताना चाहते हैं कि मनुष्य को सर्वात्म इन्द्रियों की रुचि को प्रभु प्रेम में ही लगा देना चाहिए। पांचों इन्द्रियों छठे मन को ईश्वर समर्पित करने को ही षट्रस व्यंजन कहा है, भोजन भी छः ही रस माने गये हैं, मधुर, लवण, अम्ल, कटु कषाय, तिक्त।

---

१२. चितावणी कौ अंग

कबीर संसार की क्षणभंगुरता देखकर जीवात्मा को चेतावनी देते हैं इस क्षणिक जीवन में कुछ सुकृत्य कर।

कबीर नौबति आपणी, दिन दस लेहु बजाइ।
ए पुर पटन ए गली, बहुरि न देखै आइ ॥१॥

नौबति=नगाड़े की ध्वनि, राजा-महाराजाओं एवं धनाढ्य व्यक्तियों द्वार पर प्रातः सायं या अवसर विशेष पर इसे बजाया जाता था। पुराने म या किलों में प्रवेश द्वार के पश्चात् ही नौबतखाना मिलता है।

पुर=नगर। पटन=बाजार।

कबीर कहते हैं कि हे मनुष्य! इस क्षणभंगुर संसार में अपने ऐश्वर्य वैभव का प्रदर्शन कुछ दिनों के लिए कर सकते हो। फिर जब काल पंजा पसार कर मृत्यु के मुख में सुला देगा तब न तो यह नगर, न यह बा और गलियों अर्थात् संसार के दर्शन पुनः नहीं हो सकते। भाव यह है कि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस संसार के माया-आकर्षण नश्वर हैं तो मनुष्य अनश्वर प्रभु का ध्यान क्यों नहीं करता है ?

जिनकै नौबति बाजती, मैंगल बंधते बारि।
एकै हरि के नाँव बिन, गए जन्म सब हारि ।।२।।

मैंगल=मस्त हाथी। बारि=द्वार।

जो ऐसे ऐश्वर्यशाली थे कि उनके द्वार पर नौबत वजा करती थी एवं मस्त हाथी झूमते थे वे भी एक प्रभु के नाम के अभाव में अपने जीवन को व्यर्थ खो वैठे।

ढोल दमामा दुड़बड़ी, सहनाई संगि भेरि।
औसर चल्या बजाइ करि, है कोइ राखै फेरि ।।३।।

दमामा=नगाड़ा। दुड़बड़ी=डुगडुगी। भरी=एक वाद्य विशेष जो मुंह से बजाया जाता है।

प्रत्येक मनुष्य ढोल, नगाड़े, डुगडुगी एवं शहनाई के साथ भेरी वजाता हुआ अर्थात् अपनी-अपनी सामर्थ्यानुसार भोग भोगता हुआ काल के आ जाने पर मृत्यु को प्राप्त हो गया। उनका ऐश्वर्य और वैभव मृत्यु को न रोक सका। संसार में ऐसी कोई शक्ति नहीं जो वैभवशाली मनुष्यों तक को काल के गाल से वचा सकती।

सातौं सबद जु बाजते, घरि घरि होते राग।
ते मन्दिर खाली पड़े, वैसण लागे लाग ।।४।।

सातौं सबद=सप्त स्वर, इनके अतिरिक्त और कोई स्वर नहीं होता। यहां कबीर का तात्पर्य सातों वाद्य से भी हो सकता है, सप्त-वाद्य हैं—झांझ, मृदंग, शंख, शहनाई, बीन, बांसुरी, ढोल। बैसण=(बैठण) बैठना।

जहां सप्त स्वरों के गान अथवा सप्त वाद्य वैभव एवं ऐश्वर्य का उद्घोष करते थे अर्थात् वैभव का प्रत्येक उपकरण जहां उपस्थित था और जहां घर-घर आनन्दोल्लास छाया रहता था, वे ही स्थान अब जन-शून्य हो गये और उन पर कौवे बैठने लगे।

विशेष—सुमित्रानन्दन 'पन्त' जी की 'परिवर्तन' कविता में भी यही भाव व्यक्त है—

"यही तो है असार ससार, सृजन, सिंचन, संसार।
आज गर्वोन्नत हर्म्य अपार, रत्न दीपावली, मन्त्रोच्चार।
उलूकों के कल नग्न विहार, झिल्लियों की झनकार।।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कबीर थोड़ा जीवणां, माड़े बहुत मँडाण।
सबही ऊभा मेल्हि गया, राव रंक सुलितान ॥५॥

माड़े बहुत मँडाण=आनन्दोल्लास के विविध आयोजन किये। ऊभा= साज-सज्जा। मेल्हि गया=नष्ट हो गया।

कबीर कहते हैं कि मनुष्य जीवन को क्षणिक जानते हुए भी अपने आनं ल्लास के अनेक उपकरण जुटाता है, साज-सम्भाल खड़े करता है किन्तु का काल के द्वारा यह सब क्षण भर में नष्ट कर दिया जाता है। एवं धनिक रा भिखारी सब सम्भाल करते ही करते संसार से चले जाते हैं।

विशेष—(१) कबीर ने अन्यत्र भी कहा है—

"चलने का मनसूवा नाहीं, देता गहरी नींव।"

(२) तुलसी ने अपनी विनयपत्रिका में भी यही भाव इस प्रकार व्य किया है:—

"डासति ही गई बीत निसा सब, कबहुं न नाथ नींद भरि सोयो।"

इक दिन ऐसा होइगा, सब सूं पड़ै बिछोह।
राजा राणा छत्रपति, सावधान किन होइ ॥६॥

कबीर कहते हैं कि एक दिन ऐसा आयेगा जब काल संसार के सम सम्बन्ध विछिन्न कर देगा। इसलिए हे राजा, राणा, छत्रपति अर्थात् मनुष्य! तुम पहले से ही सावधान क्यों नहीं हो जाते? भाव यह है कि अनश्वर प्रभु की भक्ति करो।

कबीर पटण कारिवां, पंच चोर दस द्वार।
जम रांणौं गढ भेलिसी, सुमिरि लै करतार ॥७॥

पटण=नगर यहां शरीर से तात्पर्य। कारिवां=कारवां, सार्थवाह पंच चोर=काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह। दस द्वार=शरीर से आत्मा निकलने के दस छिद्र ही दस द्वार माने गये हैं—दो नेत्र, दो कर्ण, दो नासि विवर, एक मुख, एक मल द्वार, एक मूत्रछिद्र, एक ब्रह्मरन्ध्र। जमराणौं= यमराज। गढ़=किला, दुर्ग अर्थात् शरीर। भेलिसी=नष्ट करेगा।

कबीर कहते हैं कि यह शरीर का कारवां आत्मारूपी धन को लेकर (संसार में) चल रहा है। जिस प्रकार कारवां को लूटने के लिए चोर-लु लगे रहते हैं, उसी भांति काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह ये पांच चोर अपहृत करने के चक्कर में हैं। यदि कारवां स्वयं भी सुरक्षित न हो तो स्थि और भी चिन्तनीय हो जाती है, इस शरीर में भी दस द्वार हैं, न जानें कहां से आत्मा रूपी धन निकल जाय। कारवाँ जिस दुर्ग में अपनी सुरक्षा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लिए ठहरता है यदि वह ही नष्ट हो जाय तो कारवां का अस्तित्व समाप्त हो जायेगा, इसी भांति जब यमराज आकर मृत्यु के द्वारा इस शरीर रूपी दुर्ग को नष्ट कर देंगे, तो सब कुछ समाप्त हो जायेगा। इसलिए हे मनुष्य उस स्वामी—ब्रह्म—का भजन कर ले (जिससे तेरा धन—आत्मा सुरक्षित रह सके)।

विशेष—(१) सांग रूपक अलंकार है।

(२) प्रथम चरण में शरीर को सार्थवाह (कारवां) बनाया गया है तो तृतीय चरण में शरीर को दुर्ग भी बना दिया है, अतः रूपक में एक ही शरीर पर कारवां और किले के दो आरोपण असंगत लगते हैं, किन्तु कबीर इसके लिए क्षम्य हैं क्योंकि वे तो अपनी बात को कहना भर चाहते हैं, और प्रस्तुत सत्य को उद्घाटित करने का इससे सुन्दर ढंग दूसरा नहीं हो सकता था।

कबीर कहा गरबियौ, इस जीवन की आस।
टेसू फूले दिवस चारि, खंखर भये पलास ॥८॥

कबीर कहते हैं कि इस क्षणिक जीवन पर अपनी समस्त आशायें पल्लवित कर गर्व करना व्यर्थ है। यह जीवन तो पलाश वृक्ष की भांति कुछ दिन ही अपनी आभा बिखराता है, फिर वह पलाश-विटप ठूंठ (पत्र विहीन—कुसुमों की तो बात ही क्या ?) हो जाता है वही स्थिति जीवन की है। कुछ दिन संसार में रहने के पश्चात् यह अस्थि चर्ममय शरीर जिससे जीवन था, क्षार हो जाता है।

विशेष—कबीर ने अन्यत्र भी जीवन की क्षणभंगुरता के विषय में ऐसा ही भाव व्यक्त किया है, यथा—

"कबीर कहा गरबियौ, काल गहै कर केस।
नाँ जाणौं कहां मारिसी, कै थरि कै परदेश ॥"

कबीर कहा गरबियौ, देहा देखि सुरंग।
बीछड़ियाँ मिलिबौ नहीं, ज्यूं कांचली भुवंग ॥९॥

देहा=देह, शरीर को। सुरंग=सुन्दर रंग की। भुवंग= (भुजंग) सर्प।

कबीरदास जी कहते हैं कि शरीर के सौन्दर्य को देखकर गर्व करना अनुचित है। यह तो एक बार कुछ क्षणिक समय के लिए प्राप्त होता है। आत्मा के द्वारा शरीर छोड़ दिये जाने पर उसी भांति पुनः धारण नहीं किया जाता जिस प्रकार सर्प केंचुली का एक बार परित्याग कर उसे पुनः धारण नहीं करता।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कबीर कहा गरबियौ, ऊँचे देखि अवास।
काल्हि पर्यू भ्वैं लेटणां, ऊपरि जामैं घास ॥१०॥

अवास=घर। भ्वैं=भू, पृथ्वी।

कबीर कहते हैं कि हे मानव तू अपने वैभव और ऐश्वर्यसूचक ऊँचे महल और अट्टालिकाओं को देखकर व्यर्थ गर्व करता है। तू नहीं जानता शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त होकर तुझे कब्र में लेटना पड़ेगा अर्थात् मिट्टी मिल जाना पड़ेगा और उस पर (वह) घास खड़ी हो जायेगी (जिसे तू पैरों से कुचलता है)।

कबीर कहा गरबियौ, चाँम पलेटे हड।
हैंवर ऊपरि छत्र सिरि, ते भी देबा खड ॥११॥

चाँम=चर्म। पलेटे=लपेटे हुए। हड=अस्थियां। हैंवर=(हय-वर) श्रेष्ठ घोड़ा। देबा=दिये जायेंगे, डाले जायेंगे। खड=खड्डा, कब्र से तात्पर्य।

कबीर कहते हैं कि इस अस्थिचर्ममय शरीर का गर्व करना व्यर्थ जिनका वैभव इतना महान् था कि वे श्रेष्ठ घोड़ों पर बैठ छत्र धारण चलते थे उनको भी एक दिन मृत्यु होने पर कब्र में जाना पड़ा, अपना शरीर मिट्टी में मिला देना पड़ा।

कबीर कहा गरबियौ, काल गहै कर केस।
नाँ जांणौं कहाँ मारिसी, कै घरि कै परदेस ॥१२॥

कबीरदास जी कहते हैं कि इस क्षणभंगुर जीवन पर क्या गर्व किया जाय, मृत्यु सर्वदा ही इसके साथ लगी रहती है, न जाने कब कहाँ देश विदेश में वह जीवन की समाप्ति कर दे।

यहु ऐसा संसार है, जैसा सैंबल फूल।
दिन दस के ब्यौहार कौं, झूठै रंगि न भूलि ॥१३॥

सैंबल=सेंवल, एक कुसुम विशेष।

यह संसार ऐसा ही सुन्दर है जैसे सेंवल कुसुम बाहर से बड़ा सौन्दर्यमय होता है किन्तु भीतर उसमें कुछ तत्व नहीं होता (तोता उसमें चोंच मारता है कुछ प्राप्ति की आशा से किन्तु अन्ततः उसे निराश होना पड़ता है)। संसार के क्षणिक समय में इन माया आकर्षणों में मनुष्य को अपनी वास्तविक स्थिति—कि यह संसार आत्मा के लिए परदेश है—विस्मृत नहीं करनी चाहिए।

जांमण मरण बिचारि करि, कूड़े कांम निबारि।
जिनि पंथूं तुझ चालणां, सोई पंथ सँवारि ॥१४॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जांमण=जन्म। कूड़े काम=बुरे काम। निवारि=निवारण करना। चालणां=चलना है। सवारि=सँभाल ले, अपना ले।

कबीर कहते हैं कि हे मनुष्य! तू जन्म-मरण, आवागमन की व्यथा को ध्यान में रखकर वासना प्रेरित कुकर्मों का परित्याग कर दे। जिस मार्ग (प्रभु प्राप्ति का मार्ग) पर तुझे अन्ततः चलना है तू उसे अभी से अपना ले।

बिन रखवाले बाहिरा, चिड़ियें खाया खेत।
आधा प्रधा ऊबरै, चेति सकै तौ चेति ॥१५॥

रखवाले=रक्षक, गुरु। चिड़ियें=वासना या माया के पक्षी। आधा प्रधा=थोड़ा बहुत।

हे मनुष्य! सद्गुरु रूपी रक्षक के अभाव में तेरे प्रभु भक्ति के खेत को कुछ तो चोर (काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह ये पंच चोर) उड़ा ले गये और कुछ माया या वासना की सुन्दर चिड़ियों ने खा लिया। अब वह थोड़ी बहुत बची है, यदि मंगल चाहता है तो अब भी सावधान हो प्रभु-भक्ति में प्रवृत्त हो।

हाड़ जलै ज्यूं लाकड़ी, केस जलैं ज्यूं घास।
सब तन जलता देखि करि, भया कबीर उदास ॥१६॥

मृत्यु हो जाने पर इस शरीर का कोई उपयोग नहीं। मृतक की हड्डियां लकड़ी के समान एवं सुन्दर केश-राशि घास तुल्य जल जाती है। इस समस्त शरीर को जलता देखकर कबीर इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि जीवन में कुछ नहीं है, अतः वह इससे विरक्त (प्रभु भक्ति में प्रवृत्त हो) गया है।

कबीर मंदिर ढहि पड़्या, सैंट भई सैबार।
कोई चेजारा चिणि गया, मिल्या न दूजी बार ॥१७॥

सैंट=एक घास जो प्रायः कब्र पर उग आती है। सैबार=सिवार, पानी की एक घास। चेजारा=चिनने वाला राज।

कबीरदास जी कहते हैं कि इस शरीर रूपी मन्दिर का निर्माता इसे बना कर फिर नहीं मिला, जीवन भर उसकी प्रतीक्षा की। यहाँ तक कि यह शरीर रूपी मन्दिर नष्ट भी हो गया और उस पर सैंट और सिवार उग आयीं।

विशेष—कबीर ने यहां जल और थल दोनों की घास का उल्लेख इसलिये किया है कि यदि शव का दाह संस्कार कर अस्थि विसर्जन जल में किया गया तो उस पर सिवार नामक घास उग आती है और यदि शव को कब्र में दफना दिया गया तो कब्र पर सैंट नामक घास उग आती है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कबीर देवल ढहि पड़्या, ईंट भई सैंवार।
करि चिजारा सौं प्रीतिड़ी, ज्यूं ढहै न दूजी बार ॥१८॥

प्रीति ड़ी=प्रेम।

कबीर कहते है कि यह शरीर रूपी देवालय नष्ट हो गया और अस्थि रूपी ईंटों पर काई भी जम गई। (जल में अस्थि विसर्जन के उसका कोई अस्तित्व न रहा। किन्तु फिर उसका पुर्ननिर्माण (पुन होगा, अतः हे मनुष्य तू उसके निर्माता प्रभु से प्रेम कर जिससे मन्दि दूसरी बार ढहना न पड़े अर्थात् फिर जन्म न लेना पड़े।

कबीर मंदिर लाष का, जड़िया हीरैं लालि।
दिवस चारि का पेषणा, बिनस जाइगा काल्हि ॥१९॥

लाष=लाक्षा, लाख। विनस= नष्ट हो जायेगा।

कबीरदास जी कहते हैं कि यह शरीर रूपी मन्दिर लाक्षा से नि तथा इसकी शोभा भी क्षणिक है, यह शीघ्र ही (पाण्डवों के लिए लाक्षागृह के समान जलकर नष्ट हो जायेगा।

कबीर धूलि सकेलि करि, पुड़ी ज बाँधी एह।
दिवस चारि का पेषणां, अंति षेह की षेह ॥२०॥

सकेलि=सकेर कर, एकत्रित कर। पुड़ी=पुड़िया। धूल।

कबीर कहते हैं कि यह शरीर कुछ नहीं, मिट्टी को सकेर कर, ए कर, बनाई गई पुड़िया है। इसकी स्थिति क्षणिक है (फिर तो पुड़िया जाती है)। फिर यह शरीर रूपी पुड़िया नष्ट हो जाने पर धूल मिल जायेगी।

विशेष—(१) अलंकार-रूपक। (२) तुलना कीजिए—

"शरीर कुछ नहीं पांच का मेल है, मिट्टी का खेल है।"

कबीर जे धंधै तौ धूलि, बिन धंधै धूलै नहीं।
ते नर बिनठे मूलि, जिनि धंधै मैं ध्याया नहीं ॥२

धंधै=कर्म। धूलि=धुलना, स्वच्छ होना। बिनठे मूलि=ज ही नष्ट हो गये।

कबीर जी कहते हैं कि जो मनुष्य संसार में कर्म करता है उसका स्वच्छ हो जाता है, उज्ज्वल हो जाता है। जो मनुष्य कर्म नहीं करते चित्त स्वच्छ-निर्मल-नहीं रहता। किन्तु कर्म करते हुए भी ब्रह्म-प्राप्ति में प्रवृत्त हुआ जा सकता है, कर्म करते हुए जिस व्यक्ति ने ब्रह्म का नहीं किया उसका तो जड़ से ही विनाश हो गया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विशेष—इससे सिद्ध है कि कबीर का मत यही है कि प्रभु-प्राप्ति संसार रहकर ही सम्भव है।

कबीर सुपनैं रैनि कै, ऊघड़ि आये नैंन।
जीव पड़्या बहु लूटि मैं, जागै तौ लैंण न दैण ।।२२।।

कबीर यहां स्वप्न का उदाहरण देकर व्यक्ति की स्थिति को स्पष्ट रते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार स्वप्नावस्था में कोई अत्यधिक धन देखकर ट-मार में लग जाये किन्तु जागने पर उसे कुछ भी प्राप्त न हो, उसी कार व्यक्ति माया-भ्रम में पड़ा हुआ आदान-प्रदान में लगा हुआ है किन्तु गुरु कृपा से) अज्ञान दूर हो जाने पर वह माया-व्यापार से विरक्त हो ाता है।

विशेष—अलंकार—रूपक।

कबीर सुपनैं रैनि कै, पारस जीय मैं छेक।
जे सोऊं तौ दोइ जणां, जागूं तौ एक ।।२३।।

पारस=पारस स्वरूप परमात्मा जो आत्मा को भी अपने परम तत्व में समाहित कर परमात्मा ही बना देता है। छेक=भेद।

कबीर कहते हैं कि अज्ञानरात्रि में जीव सुप्तावस्था में पड़ा माया के आकर्षणों के स्वप्नों में तल्लीन है। इसी अज्ञान की सुप्तावस्था के कारण ब्रह्म और जीव में इतनी दूरी हो गयी कि उनका पृथक् ॰स्तित्व परिलक्षित होता है। यदि मैं इसी अज्ञानावस्था में पड़ा सोता रहता हूं तो यह द्वैत भावना बनी रहती है और यदि जागकर, ज्ञानयुक्त होकर, वास्तविक स्थिति को देखता हूं तो ज्ञात होता है कि ब्रह्म और जीव एक ही हैं।

कबीर इस संसार मैं, घणै मनिष मतिहींण।
राम नाम जांणैं नहीं, आए टापा दीन ।।२४।।

घणैं=अत्यधिक। टापा=झांसा देना, धोखा देना।

कबीर कहते हैं कि इस संसार में मनुष्य बहुत बड़ी संख्या में मूर्ख हैं। वे राम नाम का महत्व तो जानते नहीं, प्रभु प्राप्ति के अन्य बहुत से व्यर्थ उपाय बताकर संसार को धोखा देना चाहते हैं।

कहा कीयौ हम आइ करि, कहा कहैंगे जाइ।
इत के भए न उत के, चाले मूल गँवाइ ।।२५।।

कबीर कहते हैं कि हमने संसार में आकर कौन सा अच्छा कार्य किया? अब अपने उस स्वामी से जिसने हमें इस लोक में भेजा है क्या जाकर कहेंगे? हमने न तो ऐसे कर्म किये जिनसे यहां लोक में जीवन सुधरता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(जीवन भर व्यर्थ मृग-जल की भांति माया-आकर्षणों के पीछे दौड़ छुड़ और न ऐसे सत्कर्म किये कि परलोक का मार्ग ही सुधरता। प्रभु ने आत्मा हमें निर्मल और स्वच्छ पवित्र रूप में प्रदान की थी उसकी स्वच्छता और निर्मलता सब कुछ यहां नष्ट कर जा रहे हैं।

आया अणआया भया, जे बहुरता संसार।
पड़्या भुलांवां गाफिलां, गये कुबुधी हारि ॥२६॥

अण आया=न आने के समान। बहुरता=विविध आक... आसक्त। गाफिलां=बेहोश, असावधान।

कबीर कहते हैं कि जो व्यक्ति इस संसार में विविध माया-आक... पड़ा हुआ है, आसक्त है, उसका जन्म वृथा ही है, इस संसार में न... बराबर ही है। वे इन संसार-आकर्षणों के भ्रम में पड़े हुए हैं। इस ... कारण ही वे अपने जीवन के दाव को हार जाते हैं।

कबीर हरि की भगति बिन, ध्रिग जीमण संसार।
धूंवाँ केरा धौलहर, जात न लागै बार॥...

ध्रिग=धिक्कार। धौलहर=महल। जात=नष्ट होते।

कबीर कहते हैं कि प्रभुभक्ति के बिना संसार में जीवन धारण ... धिक्कार है। मनुष्य को प्रभुभक्ति करनी ही चाहिए क्योंकि जीव... अस्तित्व धुएं के महल सदृश क्षणिक है।

विशेष—(१) उपमा अलंकार। (२) 'धुवाँ केरा धौलहर' ... शांकरी वेदान्तियों के समान कबीर ने दी है, तुलसी आदि ने भी इस... का प्रयोग किया है।

जिहि हरि की चोरी करी, गये राम गुण भूलि।
ते बिधना बागुल रचे, रहे अरध मुखि भूलि ॥२...॥

जिन मनुष्यों ने इस संसार में आकर प्रभुभक्ति का कर्तव्य पूर्ण ... किया और उनके गुणों को विस्मृत कर बैठे उन्हीं को ब्रह्म ने बगले बना... दिया जो अपना मुख (लज्जावश) नीचे किए खड़े रहते हैं।

विशेष—फलोत्प्रेक्षा अलंकार।

माटी मलणि कुँभार की, घणीं सहै सिरि लात।
इहि औसरि चेत्या नहीं, चूका अब की घात ॥...

हे मनुष्य! तेरी दशा कुम्भकार की उस मिट्टी के समान ... गूंथे जाने पर बार-बार लातों के आघात सहती है। तूने भी अनेक जन्म... आवागमन और संसार यातना भोगी है। यदि तू इस जन्म में सावधान ... हुआ और ऐसे सुकृत्य न किये जो तुझे इस संसार चक्र से मुक्त कर आवा...

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

छुड़ा दें तो समझ ले कि अवसर चूक गया और तुझे फिर वही यातनाएं भोगनी पड़ेंगी।

इहि औसरि चेत्या नहीं, पसु ज्यूं पाली देह।
राम नाम जाण्या नहीं, अंति पड़ी मुख षेह ॥३०॥

षेह=धूल।

हे मनुष्य ! यदि तू इस जन्म में भी सावधान नहीं हुआ एवं पशु के समान केवल अपना शरीर ही पालता रहा अर्थात् आहार, निद्रा, मैथुन आदि पाशविक वृत्तियों में ही लगा रहा और प्रभुभक्ति नहीं कर सका तो अन्त में तुझे नष्ट मिट्ठी में मिल जाना पड़ेगा।

राम नाम जाण्यौं नही, लागी मोटी षोड़ि।
काया हाँडी काठ की, ना ऊँ चढ़ै बहोड़ि ॥३१॥

३१. मोटी=बहुत बड़ा। खोड़ि=दोष। बहोड़ि=(बहोरि) पुनः, दूसरी वार।

हे मनुष्य ! तूने राम नाम अर्थात् प्रभुभक्ति को न जानकर बड़ा भारी पाप किया। अब तुझे इसका (प्रभुभक्ति का) अवसर नहीं मिलने का क्योंकि जिस प्रकार काठ की हांडी दूसरी बार नहीं चढ़ती उसी भांति मनुष्य जीवन भी पुनः प्राप्त नहीं होता।

विशेष—कबीर ने यहां यह कहा है कि मनुष्य जीवन बारम्बार नहीं मिलता और ऊपर वे आवागमन या बार-बार जन्म लेने की यातना से छूटने की बात कह चुके हैं किन्तु दोनों कथनों में कोई विरोध नहीं है। वे यह कहना चाहते हैं कि आत्मा विविध योनियों की यातनाएं जन्म-मरण के चक्र में पड़कर भोगती रहती है, बड़े सुकृत्यों से उसे यह मनुष्य जन्म प्राप्त होता है, यदि इसे भी बिना प्रभुभक्ति के व्यर्थ ही गंवा दिया तो फिर वही विविध योनियों में भटकने का चक्र प्रारम्भ हो जाता है, जहां प्रभुभक्ति के लिए स्थान नहीं।

राम नाम जाण्यां नहीं, बात बिनंठी मूल।
हरत इहां ही हारिया, परति पड़ी मुखि धूलि ॥३२॥

बिनंठी=विनष्ट।

हे मनुष्य ! तूने प्रभु-भक्ति का महत्व न जानकर बिलकुल ही, अर्थात् जड़ से ही, बात बिगाड़ दी। व्यर्थ के सांसारिक धन्धों में तूने अपनी शक्ति नष्ट कर दी और अन्त में मृत्यु को प्राप्त हो (कब्र में जाकर) मुख में धूल ही पड़ेगी।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विशेष—कबीर यह कहना चाहते हैं कि मनुष्य को अपनी आ
के व्यर्थ कार्यों में नष्ट न कर प्रभुभक्ति में ध्यान लगाना चाहिए।

राम नाम जाण्यां नहीं, पाल्यो कटक कुटुंब।
धंधा ही में मरि गया, बाहर हुई न बंब ॥३३॥

बंब=एक वाद्य विशेष जिसे एक बहुत बड़ा ढोल कहा जा स

हे मनुष्य तूने प्रभु-भक्ति नहीं की। सेना के समान संख्यातीत
पालन ही में जूझता रहा। इसीलिए संसार कर्मों में उलझते हुए स
बीत गया, मृत्यु आ पहुंची किन्तु तेरा अहं फिर भी न गया।

मनिषा जनम दुर्लभ है, देह न बारंबार।
तरवर थैं फल झड़ि पड़्या, बहुरि न लागै डार ॥३

मनिषा=मानव का। थैं=(तैं) से।

कबीरदास कहते हैं कि यह मानव जन्म बड़ी कठिनाई से प्राप्त
यह शरीर बारम्बार प्राप्त नहीं होता। जिस प्रकार एक बार विटप से
जाने पर शाखा पर दूसरी बार नहीं लगाया जा सकता उसी भांति
जन्म में शरीर के एक बार नष्ट हो जाने पर यह पुनः प्राप्त नहीं हे
(अतः मानव ! प्रभु-भक्ति कर)।

कबीर हरि की भगति करि, तजि विषिया रस चोज।
बार बार नहीं पाइए, मनिषा जन्म की मौज ॥

रस चोज=आनन्दोल्लास।

कबीरदास कहते हैं कि मानव जन्म-प्राप्ति का सौभाग्य बारम्बा
नहीं होता; अतः विषय-वासना युक्त मायापूर्ण क्षणिक आनन्द और
परित्याग कर प्रभु की भक्ति में प्रवृत्त हो (वही वास्तविक आनन्द है
सम्मुख सांसारिक आनन्द फीके और तुच्छ हैं)।

कबीर यहु तन जात है, सकै तौ ठाहर लाइ।
कै सेवा करि साध की, कै गुण गोबिंद के गाइ ॥३

ठाहर लाई=ठिकाने से लगा, सम्भाल ले।

कबीरदास जी कहते हैं कि हे मनुष्य ! यह मानव-जन्म व्यर्थ
हुआ जा रहा है। अब भी समय है यदि इसे सम्भाल सकता है तो
कर उचित पथ पर प्रवृत्त हो जा। या तो तू साधुओं की सेवा कर
फिर प्रभु का गुणगान कर—इन दोनों से ही तेरा अज्ञान दूर है
सम्भव है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विशेष—समस्त मध्यकालीन भक्त कवियों ने प्रभु-भक्ति के लिए साधु-संगति को आवश्यक माना क्योंकि अन्ततः वह भी प्रभु-प्रेम उपजाती है, यथा—

"बिनु सत्संग विवेक न होई,
राम कृपा बिनु सुलभ न सोई ॥"

कबीर यहु तन जात है, सकै तौ लेहु बहोड़ि।
नागे हाथूं ते गये, जिनकै लाख करोड़ि ॥३७॥

बहोड़ि=वापिस। नागे=खाली।

कबीरदास कहते हैं कि हे मनुष्य! यह मानव जन्म यों ही (प्रभु-भक्ति बिना) बीता जा रहा है, अब भी यदि चाहते हो तो इसे पुनः अपने सुकृत्यों से प्राप्त करने का प्रयत्न कर लो। ऐसे कार्य करो और प्रभु-भक्ति करो जिससे यह जन्म पुनः प्राप्त हो सके। व्यर्थ संसार में माया के पीछे बावले बने क्यों फिरते हो? जिनकी लाखों और करोड़ों की सम्पत्ति थी वे भी यहां से खाली हाथ ही गये।

यहु तन काचा कुंभ है, चोट चहूँ दिसि खाइ।
एक राम के नाँव बिन, जदि तदि प्रलै जाइ ॥३८॥

जदि तदि=जब तब।

यह शरीर कच्चे घट के सदृश है जो चारों ओर से कुम्भकार की थपकी की चोट खाता है। यह शरीर भी सांसारिक यातनाओं के आघात सह रहा है। एक राम नाम के अभाव में ही पुनः पुनः संसार में जन्म लेकर वासना अग्नि में दहता है, यदि राम नाम का सम्बल ले तो इस आवागमन से मुक्त हो जाय।

यह तन काचा कुंभ है, लियां फिरै था साथि।
ढबका लागा फूटि गया, कछू न आया हाथि ॥३९॥

ढबका=धक्का, ठसक, हल्की सी चोट।

यह शरीर उस कच्चे घड़े के समान कोमल और अनिश्चित-भविष्य है जिसे साथ लिए फिरते हैं और तनिक सी चोट लगने पर घड़ा फूट जाता है, उसका अस्तित्व समाप्त हो जाता है और हाथ में कुछ शेष नहीं रह जाता।

विशेष—अलंकार-रूपक।

काँची कारी जिनि करै, दिन दिन बधै बियाधि।
राम कबीरै रुचि भई, याही ओषदि साधि ॥४०॥

काँची=केंचुली, शरीर। जिनि=मत। बियाधि=व्याध।

हे मनुष्य! तू अपनी इस शरीर रूपी केंचुली को वासना के पंक से काली

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मत कर। काल रूपी व्याध तुझे दिन-प्रतिदिन अपना लक्ष्य बनाता रहा है। कबीर ने तो अपनी रुचि प्रभु-भक्ति में लगा दी है, यही ताप तापों की एकमात्र औषधि है।

कबीर अपनें जीवतैं, ए दोइ बातैं धोइ।
लोभ बडाई कारणै, अछता मूल न खोइ ॥४१॥

जीवतैं=मन से।

कबीरदास कहते हैं कि हे मनुष्य तू अपने मन से दो बातों को नि —एक तो लोभ और दूसरी अपनी प्रशंसा से उत्पन्न दर्प। इन दोनों कारण तू व्यर्थ संसार में भटक कर अपने अमूल्य धन—प्रभु-भक्ति— रहा है।

खंभा ऐक गइंद दोइ, क्यूं करि बंधिसि बारि।
मानि करै तौ पीव नहीं, पीव तौ मानि निवारि ॥४२॥

४२. गइंद=(गयन्द) हाथी। बारि=द्वार।

कबीरदास कहते हैं कि हे मानव! तेरे पास एक ही हृदय रूपी स्त उससे दो हाथी—प्रभु-भक्ति और अहं—नहीं बांधे जा सकते। यदि अहं की रक्षा करना, हृदय में उसे स्थान देना चाहता है तो प्रभु प्राप्ति म्भव है, यदि तू केवल मात्र प्रभु को चाहता है तो अपने अहं का प कर दे।

दीन गँवाया दुनी सौं, दुनी न चाली साथि।
पाँइ कुहाड़ा मारिया, गाफिल अपणै हाथि ॥४३॥

दीन=धर्म।

संसार के माया-आकर्षणों में लिप्त रह कर जीव प्रभु को भूल गया जिस संसार के पीछे उसने अपना धर्म नष्ट कर दिया वह मरने पर उसके नहीं गया। इस प्रकार जीवात्मा ने स्वयं अपनी उन्नति का मार्ग अवरुद्ध लिया।

यहु तन तौ सब बन भया, करंम भए कुहाड़ि।
आप आप कूं काटि हैं, कहै कबीर बिचारि ॥४४॥

यह शरीर वन के समान है जिसके नाश के लिये कर्मों की प्रस्तुत है। कर्मों की कुल्हाड़ी अपने ही शरीर को काट रही है अर्थात् फल भोगने से व्यक्ति का जीवन नष्ट हुआ जा रहा है।

कुल खोयाँ कुल ऊबरै, कुल राख्याँ कुल जाइ।
राम निकुल कुल भेंटि लै, सब कुल रह्या समाइ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कुल=वैभवपूर्ण प्रलोभन। कुल=सारतत्व-प्रभु। निकुल=कुल रहित होकर, साँसारिक प्रलोभनों से विरक्त होकर। कुल=समस्त आनन्दोपकरण।

सांसारिक वैभव के समस्त आकर्षणों को त्यागकर ही उस सारतत्व ब्रह्म की प्राप्ति सम्भव है। यदि जीव माया-जन्य आकर्षणों में ही उलझा रहा तो प्रभु-प्राप्ति सम्भव नहीं। हे जीव ! तू इन वैभवपूर्ण प्रलोभनों से विरक्त हो ब्रह्म से मिल क्योंकि वह समस्त आनन्दोल्लास का केन्द्र है, समग्र संसार उसी में समाया हुआ है।

विशेष—यमक अलंकार।

दुनिया के धोखै मुवा, चलै जु कुल की कांणि।
तब कुल किसका लाजसी, जब ले धर्या मसांणि ॥४६॥

कांणि=गौरव।

जो मनुष्य कुल गौरव के पीछे सांसारिक माया-मोह में उलझा रहा वह व्यर्थ संसार के धोखे में आकर जीवन गंवा बैठा। मृत्यु के कारण जब शरीर को श्मशान की गर्हित भूमि में ले जाकर पटक दिया गया, तब किसका कुल लज्जित हुआ।

विशेष—महात्मा कबीर यह कहना चाहते हैं कि जीव ने प्रभु-भक्ति, साधु सेवा—ऐसे सुकृत्य क्यों न किये जिससे उसका नाश न होता।

दुनियाँ भाँडा दुख का, भरी मुहांमुह भूष।
अदया अलह राम की, कुरहै ऊँणीं कूष ॥४७॥

भाँडा=बर्तन। मुहांमुह=लबालब। भूष=भूख, अभाव से तात्पर्य अदया=अकृपा। अलह=अल्लाह, श्रेष्ठ। कूष=भण्डार।

यह संसार कुछ नहीं केवल दुःखों का पात्र, स्थान मात्र है जो अभावों से पूर्णरूपेण भरा हुआ है। श्रेष्ठ राम की अकृपा से, अर्थात् परब्रह्म राम की कृपा बिना यहां जो बड़े-बड़े कोषागार हैं वे भी खाली रहते हैं। भाव यह है कि सब कुछ राम कृपा से ही प्राप्य है।

विशेष—रूपक अलंकार।

जिहि जेवड़ी जग बंधिया, तूं जिनि बंधै कबीर।
ह्वैसी आटा लूंण ज्यूं, सोना सँवा सरीर ॥४८॥

जेवड़ी=रस्सी, माया बंधन। लूंण=लोथ (नमक नहीं)

जिस माया बंधन में समस्त संसार बंधा हुआ है, हे कबीर ! तू उस माया रज्जु में न बंध। अन्यथा तेरा यह कंचन सदृश शुद्ध शरीर आटे की लोथ के समान मुक्के—संसार यातना के प्रबल आघात—सहेगा और बारम्बार गूंथा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और रूंधा जायगा । भाव यह है कि माया के बंधन में पड़ने से तेरी नहीं होगी और आवागमन के चक्र में पड़कर संसार यातनायें सहेगा।

कहत सुनत जग जात है, बिषै न सूझै काल।
कबीर प्यालै प्रेम कै, भरि भरि पिवै रसाल ॥४९॥

विषै=विषय ।

संसार के समस्त मनुष्य मुक्ति आदि के लिए उपदेश देते हुए भी वासना के मार्ग पर चले जा रहे हैं । उन्हें विषय-वासंना जनित आ अपनी मृत्यु—नाश दृष्टिगत नहीं होता । कबीर (साधुजन से तात्पर्य) रस के प्यालों को भर-भर कर पी रहा है जिसमें उसे अमित आनन्द प्रा रहा है ।

कबीर हद के जीव सूं, हित करि मुखां न बोलि।
जे लागे बेहद सूं, तिन सूं अंतर खोलि ॥५०॥

हद के जीव सूँ=साँसारिक मनुष्य से—जो पूर्णरूपेण संसार में है । हितकरि=प्रेम से । बेहद=निस्सीम प्रभु ।

कबीर जी कहते हैं कि हे मनुष्य ! जो मनुष्य संसार के विषय वा संलिप्त हैं उनसे प्रेम भाव से वार्तालाप नहीं करना चाहिये । दूसरी ओ निस्सीम प्रभु-प्राप्ति के मार्ग में प्रवृत्त हैं उनसे अपने हृदय की समस्त बता दो अर्थात् पूर्ण प्रेम उन्हीं से रखो ।

कबीर केवल राम की, तूं जिनि छाड़ै ओट।
घण अहरणि बिचि लोह ज्यूं, घणी सहै सिर चोट ॥५

ओट=आश्रय । घण=भारी हथौड़ा । अहरणि=लोहे की पीठिका सी जिस पर रखकर गरम-गरम लोहे पर चोट मारकर उसे रूप दिया जाता है । इसे निहाई कहते हैं ।

कबीर जी कहते हैं कि हे जीवात्मा! तू केवल राम का आश्रय मत प्रभु के आश्रय के बिना तू संसार में पड़ा उसी प्रकार दुःखों की चोट रहेगा जिस भांति निहाई पर रखे हुए लोहे पर भारी हथौड़े की निरन्तर पड़ती हैं ।

कबीर केवल राम कहि, सुध, गरीबी झालि ।
कूड़ बड़ाई बूड़सी, भारी पड़सी काल्हि ॥५२॥

झालि=झेल ले । कूड़=व्यर्थ के, मिथ्या ।

कबीर जी कहते हैं कि हे मनुष्य ! तू केवल राम नाम का स्मरण अपनी इस निर्धनता में ही प्रसन्न रह । यह जो मिथ्या साँसारिक वैभव है

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भव सागर में) डुबाने वाला है, पतन के गर्त्त में पहुंचाता है। यदि इसी को थ समझ तूने प्रभु-भक्ति की उपेक्षा की तो फिर तुझे बहुत दुःख उठाने ड़ेंगे।

काया मंजन क्या करै, कपड़ धोइम धोइ।
उजल हूवा न छूटिए, सुख नीदड़ीं न सोइ ॥५३॥

मंजन=रगड़-रगड़ कर स्नान ! छूटिए=मुक्त होना।

हे मनुष्य ! शरीर को बारम्बार नहलाकर और कपड़ों को खूब धो-धोकर तू समझता है कि मैं पवित्र हो गया किन्तु पूर्ण पवित्रता के लिये अन्तर की च्छता भी आवश्यक है। इस वाह्य आवरण के ही उज्ज्वल होने से मुक्ति भव नहीं, अतः शरीर और वस्त्रों को ही स्वच्छ रख कर सुख की नींद मत , मन की शुद्धि में प्रवृत्त हो।

उजल कपड़ा पहरि करि, पान सुपारी खांहि।
एकै हरि का नाँव बिन, बाँधे जमपुरि जांहि ॥५४॥

चाहे कोई कितना ही उज्ज्वल परिधान धारण कर, पान सुपारी खा र साज-सज्जा करे, इससे मुक्ति सम्भव नहीं। एक प्रभु के नाम स्मरण के भाव में मनुष्य यमपुरी की यातना को भोगते हैं।

तेरा संगी को नहीं, सब स्वारथ बँधी लोइ।
मनि परतीति न ऊपजै, जीव बेसास न होइ ॥५५॥

बंधी=बंधे हुए। लोइ=लोग।

हे जीवात्मा ! सब सांसारिक सम्बन्धी स्वार्थ के कारण तुझसे सम्बन्ध ापित किये हुए हैं, तेरा वास्तविक साथी-मित्र, सम्बन्धी—इनमें कोई नहीं। ब तक मन में प्रभु-प्रेम उत्पन्न नहीं होता तब तक जीव को अपनी मुक्ति का श्वास नहीं होता।

माँइ बिड़ाणी बाप बिड़, हम भी मंझि बिड़ांह।
दरिया केरी नाव ज्यूं, संजोगे मिलियांह ॥५६॥

बिड़ाणी=विनष्ट होने वाली। बाप विड़=पिता भी नष्ट होने ला।

कबीरदास कहते हैं कि मनुष्य ! तू संसार के माया-मोह में मत पड़ योंकि यह मिथ्या है, यहां माता, पिता, आदि के जो सम्बन्ध हैं वे सब नष्ट ने वाले हैं और हम भी इस भव सागर के मध्य ही नष्ट हो जायेंगे। हम ब एक जगह एकत्रित हुए हैं यह तो उसी प्रकार का आकस्मिक संयोग है से नदी के बीच तैरती नौका में कोई कहीं से कोई कहीं से आकर कुछ क्षण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के लिए मिल जाता है (जीवन) धारा के समाप्त होते ही सब अलग हो जाते हैं।

अलंकार—उपमा।

इत प्रघर उत घर, बणजण आये हाट।
करम किरांणां बेचि करि, उठि ज लागे बाट॥५७॥

प्रघर=पर घर, परदेश।

जीवात्मा कहती है कि यह संसार तो हमारे लिए परदेश है, हमारा वास्तविक घर तो ब्रह्म के पास ही है। इस संसार (परदेश) में तो हम केवल कर्म का व्यापार करने आये हैं जैसे कोई सौदागर दूसरे देश में अपना माल बेच कर लौट जाता है। इसलिए इस कर्म के क्रय-विक्रय व्यापार को समाप्त कर अपने घर के मार्ग में प्रवृत्त क्यों नहीं होते।

नाँन्हां काती चित दे, महँगे मोलि बिकाइ।
गाहक ताजा राम है, और न नेड़ा आइ॥५८॥

नांन्हां काती=बारीक सूत कातने वाली, सुन्दर कर्म ही सूत हैं।

हे जीवात्मा तू नन्हा, बारीक, सुन्दर सूत कात, अर्थात् शुभ कर्म कर क्योंकि वह अच्छे दामों में बिकता है। शुभ कर्मों का फल अच्छा मिलता है। इस शुभ कर्म रूपी सुन्दर सूत के एकमात्र ग्राहक राजा राम ही हैं। अन्य कोई इस शुभ-कर्म-राशि को विकृत करने के लिए पास भी नहीं आ सकता।

डागल उपरि दौड़णां, सुख नींदड़ी न सोइ।
पुनैं पाये द्यौंहड़े, ओछी ठौर न खोइ॥५९॥

डागल=ऊबड़-खाबड़ भूमि, साधना की विकट वनस्थली। द्यौंहड़े=देवालय, पंचभूतों से निर्मित मानव शरीर से तात्पर्य है।

हे मनुष्य! तुझे साधना की विकट वनस्थली पर दौड़ना है, यह सरल नही है, इसलिए तू सुख-निद्रा में अचेत मत रह, सावधान हो प्रभु भक्ति में प्रवृत्त हो। सुकृतों के बदले में तुझे यह देवालय के समान सुन्दर शरीर (मानव शरीर से तात्पर्य) प्राप्त हुआ है। प्रभु भक्ति बिना इसे व्यर्थ नष्ट मत होने दे।

मैं मैं बड़ी बलाइ है, सकै तौ निकसी भाजि।
कब लग राखौं हे सखी, रूई पलेटी आगि॥६०॥

मैं मैं=अहं। बलाई=बला, आफत, यहां पाप या बीमारी के अर्थ में प्रयोग किया है।

अहं, एक बहुत बड़ा रोग है जो मनुष्य को नाश की ओर ले जाता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दूर किया जा सकता है, अतः शीघ्रातिशीघ्र इसका परित्याग कर दो यथा यह नाश करके रहेगा। रुई में लिपटी हुई अग्नि कुछ समय ही तक रह सकती है, अन्ततः तो वह लपटों में परिवर्तित होकर सर्वस्व भस्मसात् कर देगी। इसी प्रकार यह अहं अधिक समय तक अपने विषाक्त प्रभाव नहीं रोक सकता।

मैं मैं मेरी जिनि करै, मेरी मूल बिनास।
मेरी पग का पैंषड़ा, मेरी गल की पास ॥६१॥

विनास=विनाश।

हे मनुष्य ! मैं-मैं अर्थात् अहं का दर्प क्यों प्रदर्शित करता है। यह अहं तो नाश का मूल कारण है। यही अहं पैरों में पड़े हुए कड़े और गले में पड़े फांसी के फन्द के समान हैं जो मृत्यु प्रदान करते हैं।

कबीर नाव जरजरी, कूड़े खेवणहार।
हलके हलके तिरि गये, बूड़े तिनि सिर भार ॥६२॥२६२॥

कूड़ं=रद्दी, बेकार।

कबीर कहते हैं कि यह जीवन नौका बड़ी जर्जर है और इसका मल्लाह (जिनसे यह चालित है) भी बेकार है, ऐसी अवस्था में इस संसार सागर से वही पार पा सके जो पाप का बोझ न होने के कारण शुद्ध आत्मा थे और जिनकी आत्मा पाप बोझ से लदी थी वे डूब गये।

विशेष—कबीर की यह तुलना बड़ी समीचीन है, क्योंकि पानी में हल्की वस्तु तैर जाती है और भारी डूब जाती है।

---

१३. मन कौ अंग

मन कै मतै न चालिये, छाडि जीव की बांणि।
ताकू केरे सूत ज्यूं, उलटि अपूठा आंणि ॥१॥

मतै=मत के अनुसार, इच्छानुसार। बांणि=बान, आदत, टेव। ताकू=तकुआ, चरखे में सूत कातने की लौह शलाका। अपूठा=कच्चा।

कबीरदास जी कहते हैं कि हे जीव! तू मन की इच्छानुसार न चल, मन का अनुगामी मत बन क्योंकि वह तो सर्वदा विषय-वासना में संलिप्त रहता है। मन की इस माया में ही लिप्त रहने की यह आदत छुड़ा दे। जिस प्रकार तकुए पर चढ़े कच्चे सूत को खींच कर उसके केन्द्र स्थल या लक्ष्य गदिया पर ही चढ़ा दिया जाता है, उसी प्रकार प्रभु भक्ति में अपरिपक्व इस मन को ब्रह्म में लगा दो।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चिंता चिति निबारिये, फिरि बूझिये न कोइ।
इंद्री पसर मिटाइये, सहजि मिलैगा सोइ॥२॥

चिन्ता=सांसारिक चिन्ताएं।

सांसारिक चिन्ताओं को मन से निकाल कर तथा इन्द्रियों का विषयों में जो प्रसार है उसे समाप्त कर देने से ही प्रभु भक्ति का... जायगा। तब किसी से ब्रह्म-प्राप्ति का उपाय पूछने की आवश्यकता न... स्वयं ही, अनायास ही प्राप्त हो जायेगा।

आसा का ईंधण करूं, मनसा करूं बिभूति।
जोगी फेरी फिल करौं, यौं बिननां वैं सूति॥३॥

ईंधण=जलाने का सामान—लकड़ी आदि।

सांसारिक आशाओं का ईंधन कर मन को जलाकर क्षार में... कर दूं अर्थात् मन को कामना रहित कर दूं। फिर संसार से विरक्त... के समान प्रभु की खोज में चक्कर काटता रहूं। इस प्रकार इस कर्म... कात कर ब्रह्म की प्राप्ति सम्भव है।

कबीर सेरी सांकड़ी, चंचल मनवां चोर।
गुण गावै लैलीन होइ, कछू एक मन मैं और॥४॥

सेरी=मार्ग। सांकड़ी=सांकरी, कम चौड़ी।

कबीर कहते हैं कि प्रभु प्राप्ति का मार्ग बड़ा संकीर्ण है और यह... साधना का मूलाधार है चंचल और चोर के समान लोभी वृत्ति का... कपटी मन प्रत्यक्ष में तो लगता है कि प्रेममग्न होकर प्रभु गुणगान कर... किन्तु इसके भीतर माया-जनित आकर्षणों को प्राप्त करने की इच्छा... किए हुए हैं।

कबीर मारूं मन कूं, टूक टूक ह्वै जाइ।
विष की क्यारी बोइ करि, लुणत कहा पछिताइ॥५॥

क्यारी=फसल से तात्पर्य। लुणत=काटते।

कबीर कहते हैं कि इस चंचलवृत्ति मन को इतना मारूंगा कि टुकड़े... जायेगा। पहले तो इसने विषय-वासना के विष की फसल बो दी।... काटने में पछताता है। अपने कुकर्मों का फल तो भोगना ही पड़ेगा।

इस मन कौं बिसमल करौं, दीठा करौं अदीठ।
जे सिर राखौं आपड़ां, तौ पर सिरिज अंगीठ॥६॥

बिसमिल=अधमरा, सांसारिक विषयों की चेतना से रहित... करौं अदीठ=उस अदृश्य, निराकार ब्रह्म का दर्शन करूं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कबीर कहते हैं कि इस मन को अधमरा कर, सांसारिक विषयों से उपराम कर मैं उस निराकार परमात्मा के दर्शन करूंगा। यदि मैंने साधना में अपना शीश समर्पण नहीं किया तो इस सिर पर (नरक-यातना) अंगीठी की आग पटकी जाये।

विषय—१. सभंगपद यमक अलंकार।

२. कबीर ने सर्वत्र साधना में शीश समर्पण अर्थात् सर्वस्व समर्पण का महत्व-प्रतिपादन किया है, यथा—

'यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाँहि।
सीस उतारै भुंई धरै, तब पैठे घर माँहि॥"

मन जांणैं सब बात, जाणत ही औगुण करै।
काहे की कुसलात, कर दीपक कूँवै पड़ै॥७॥

जाणत=जानना।

मन सदसद् विवेक को रखते हुए भी अवगुण, पाप कर्म, करता है। जानते हुए भी बुराई या पाप करना अत्यन्त शोचनीय है। यदि कोई पंथ प्रशस्त करने वाला दीपक हाथ में लेकर चलने पर भी कुएं में गिर पड़े तो इससे भी अधिक दुख की क्या बात होगी?

हिरदा भीतरि आरसी, मुख देषणां न जाइ।
मुख तौ तौपरि देखिए, जे मन की दुबिधा जाइ॥८॥

आरसी=दर्पण।

हृदय के भीतर ही आत्मा का दर्पण है किन्तु उसमें ब्रह्म का मुख दिखाई नहीं देता। दर्पण में मुख तो तभी दिखाई दे सकता है, जब दर्पण स्थिर हो किन्तु चल मन उस आत्मा के निर्मल शीशे को स्थिर नहीं रहने देता, इसीलिये ब्रह्म का मुख उस आत्मा के दर्पण में दृष्टिगत नहीं होता। यदि मन सांसारिक विषयों में अपने चांचल्य का परित्याग कर दे तो ब्रह्म दर्शन सम्भव है।

मन दीयाँ मन पाइए, मन बिन मन नहीं होइ।
मन उनमन उस अंड ज्यूं, अनल अकासां जोइ॥९॥

मन=मन। मन पाइए=प्रभु कृपा प्राप्ति। मन बिन=संसार में मन बिना अर्थात् संसार से उपराम। अनल=अग्नि, निरंजन ज्योति। अकासां=शून्य प्रदेश।

प्रभु को अपने मन का प्रेम देकर ही उनकी कृपा प्राप्त की जा सकती है। संसार से उपराम हुए व्यक्ति का चित्त ही प्रभु-भक्ति में प्रवृत्त होता है। संसार से उपराम मन (जिसे योग साधना में उन्मनी अवस्था कहते हैं) उस सृष्टि के समान है जिसके आकाश में अग्नि अर्थात् निरंजन ज्योति के दर्शन होते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitlzation by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विशेष—१. यमक अलंकार। २. नाथपन्थियों के अनुसार ब्रह्माण्ड में शिव और शक्ति की अवस्थिति है जिनसे अनन्त प्रकाश ज्योति विकीर्ण होती रहती है, इसे ये 'निरंजन ज्योति' कहते हैं। आकासाँ जोइ' से कबीर का मन्तव्य इसी निरंजन ज्योति से है।

मन गोरख मन गोबिंदौ, मन हीं औघड़ होइ।
जे मन राखै जतन करि, तौ आपैं करता सोइ ॥१०॥

गोरख=नाथ-पन्थ के नौ नाथों में प्रमुख एक नाथ एवं गोरखनाथ। गोबिंदौ=प्रभु से तात्पर्य। औघड़=एक प्रकार के साधु।

व्यक्ति का मन स्वयं ही गोरखनाथ अर्थात् महान् सन्त, गोविन्द औघड़ साधु है। भाव यह है कि वही इन पदों पर पहुचाने वाला है। मन को प्रयत्नपूर्वक वश में रखा जाय तो यही इस चराचर का कर्ता, मक, ब्रह्म बन सकता है।

एक ज दोसत हम किया, जिस गलि लाल कबाइ।
सब जग धोबी धोइ मरै; तौ भी रंग न जाय ॥११॥

दोसत=मित्र। गलि=कण्ठ में। कबाई=कपड़ा, वस्त्र।

कबीर कहते हैं कि हमने मन को ऐसा मित्र वना लिया है कि गले में प्रभु प्रेम से परिपूर्ण लाल वस्त्र सुशोभित हैं। इस प्रेम-पूर्ण वस्त्र रंग इतना प्रगाढ़ है कि यदि समस्त संसार के धोबी इसे धोने के प्रयत्न में जीवन समाप्त कर दें तो भी उसका प्रेम रंग दूर नहीं हो सकता।

विशेष—'जिस गलि लाल कबाई' में वस्त्र का रंग लाल इसलिए कि यह लाल रंग प्रेम-सूचक है।

पांणीं हीं तैं पातला, धूंवाँ ही तैं भीण।
पवनां बेगि उतावला, सो दोसत कबीरै कीन्ह ॥१२॥

पांणी=जल। पातला=पतला। पवनां=वायु। उतावला तीव्र।

कबीर कहते हैं कि जो पानी से भी पतला, धुएं से भी अधिक पवन की गति से भी तीव्र जो ऐसा मन है उसे मैंने अपना मित्र बना है। भाव यह है कि अब मन उनके कहने में है, वश में है।

कबीर तुरी पलांणियाँ, चाबक लीया हाथि।
दिवस थकां साईं मिलौं, पीछैं पड़िहै राति ॥१३॥

तुरी=घोड़ा। राति=रात्रि, मृत्यु की अचेतनावस्था।

कबीर कहते हैं कि मैंने मन रूपी घोड़े को अपने वश में कर,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आशंकाओं के लिए संयम का कोड़ा हाथ में ले लिया है। अब चाहता हूं कि जीवन रूपी दिवस के अवसान से पूर्व ही परमात्मा के दर्शन कर लूं, अन्यथा फिर मृत्यु रूपी रात्रि आकर अचेतावस्था में डाल देगी।

मनवा तौ अधर बस्या, बहुतक झीणां होइ।
आलोकत सचुपाइया, कबहूं न न्यारा सोइ ॥१४॥

अधर=निराधार। सचु=सत्य, ब्रह्म।

यह अत्यन्त झीना मन संसार से विलग होकर रह रहा है। ज्ञान के प्रकाश से उसे सत्य स्वरूप ब्रह्म की प्राप्ति हो गई है, अब यह उनसे कभी विलग नहीं हो सकता।

मन न मार्‌या मन करि, सके न पंच प्रहारि।
सील साच सरधा नहीं, इंद्री अजहु उधारि ॥१५॥

मन करि=संकल्प सहित। पंच=काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह।

हे मानव! तूने संकल्पपूर्वक मन को नहीं मारा, इसी कारण तू काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह को नष्ट नहीं कर सका। इस मन के अधःपतन से ही तेरे अन्दर शील, सत्य और श्रद्धा आदि के सद्‌गुणों का लोप हो गया है। इन्द्रियों पर अब भी अधिकार कर ले, विषय-प्रसार में इसे प्रवृत्त मत होने दे—तभी कल्याण हो सकता है।

कबीर मन बिकरै पड़्या, गया स्वाद कै साथि।
गलका खाया बरजता, अब क्यूं आवै हाथि ॥१६॥

बिकरै=विकारों में। बरजता=वर्जित करता।

कबीर कहते हैं कि मन सांसारिक विषय-वासनाओं के विकारों में पड़ गया है। वह तो इन्द्रिय जनित आनन्दोल्लास में ही लग गया है। भला अब उसे कैसे वश में किया जा सकता है। जो खाद्य वस्तु गले तक पहुंच चुकी है उसके लिए मना करने से क्या लाभ? वह तो पेट में ही पहुंचती है, उसका रोकना सामर्थ्य से बाहर है। इसी प्रकार जो मन विषय-वासना के अग्राह्य रसों का पान कर चुका है, अब उसे कैसे वर्जित किया जा सकता है? भाव यह है कि मन को विषय-वासनाओं में पहले ही न पड़ने देना चाहिए।

विशेष—अलंकार—निदर्शना।

कबीर मन गाफिल भया, सुमरिण लागै नाहिं।
घणीं सहैगा सासनां, जम की दरगह माहिं ॥१७॥

गाफिल=अचेत। घणीं=अत्यधिक। सासनां=वेदनाएं, यातनाएं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कबीर कहते हैं कि मन सांसारिक विषयोपभोगों के रस में अचेत हो गया है, इसीलिए वह प्रभु नाम स्मरण में नहीं लगता। उसे अपने इन पापों का भोग उस समय भोगना पड़ेगा जब यमलोक में जाकर उसे यातनाएं सहनी पड़ेंगी।

कोटि कर्म पल मैं करै, बहु मन बिषिया स्वादि।
सतगुर सबद न मानई, जनम गँवाया बादि ॥१८॥

सबद=शब्द यहां उपदेश से तात्पर्य। बादि=व्यर्थ।

कबीर कहते हैं कि यह मन इन्द्रियों के विषय रस से प्रेरित होकर पल में करोड़ों दुष्कृत्य कर सकता है किन्तु दूसरी ओर इसने प्रभु भक्ति में प्रवृत्त करने वाले सतगुरु के उपदेश-वचनों का पालन नहीं किया और जीवन व्यर्थ में नष्ट कर डाला।

मैमंता मन मारि रे, घटही मांहैं घेरि।
जबहीं चालै पीठि दे, अंकुस दे दे फेरि ॥१९॥

मैमंता=मदमस्त हाथी।

हे साधक! इस मन रूपी मदमस्त हाथी को हृदय के भीतर ही घेरकर मार दे। जब भी यह किंचित् भी साधना-विमुख हो तो वापस संयम का अंकुश लगाकर इसे उचित पथ पर ले आ।

मैमंता मन मारि रे, नांन्हां करि करि पीसि।
तब सुख पावै सुंदरी, ब्रह्म झलकै सीसि ॥२०॥

सीसि=शीश, शून्य प्रदेश, ब्रह्माण्ड। सुन्दरी=आत्मा।

हे साधक! मन रूपी मदमस्त हाथी को मार-मार कर, संयम से वश में कर ले तथा अपने कर्मों के आटे को बारीक अर्थात् सुन्दर पीस। इस उपाय के द्वारा ही ब्रह्माण्ड में परमात्मा के दर्शन हो सकते हैं जिससे आत्मा प्रसन्न हो सुख लाभ करेगी।

कागद केरो नाँव री, पांणी केरी गंग।
कहै कबीर कैसैं तिरूं, पंच कुसंगी संग ॥२१॥

गंग=सरिता से तात्पर्य, 'गंगा' नदी विशेष नहीं।

यह संसार रूपी सरिता माया जाल से परिपूर्ण है, जिसके भीतर इस शरीर की नौका के द्वारा कैसे तरा जा सकता है? फिर यात में पांच शत्रु काम, क्रोध, मद, लोह, मोह—लगे हुए हैं। कबीर कहते हैं कि इस परिस्थिति में मैं कैसे संसार-सरिता को पार करूं?

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कबीर यहु मन कत गया, जो मन होता काल्हि ।
डूंगरि बूठा मेह ज्यूं, गया निबांणां चालि ।।२२।।

डूंगरि=टीला ।

कबीर कहते हैं कि मेरा जो निर्मल मन कल था वह न जाने अब कहां चला गया है । जिस भांति टीले पर हुई वर्षा का जल क्षण भर उस पर रुक कर निम्नगामी हो चलता है, उसी प्रकार इस मन पर पड़े गुरु के वचनों का प्रभाव केवल क्षण भर के लिए हुआ, फिर वह पतनोन्मुख हो चला ।

विशेष—उपमा अलंकार ।

मृतक कूं धी जौं नहीं, मेरा मन बी है ।
बाजै बाव बिकार की, भी मूवा जीवै ।।२३।।

बाव=तन्त्री ।

साधक ने अपना मन संयम द्वारा सांसारिक विषयों से मृतक तुल्य उपराम कर लिया है, उसे निर्लेप अवस्था में यह भी पता नहीं कि मेरा मन भी है । भाव यह है कि वह अपने मन के अस्तित्व के विषय में भी शंकालु हो जाता है। किन्तु यदि सांसारिक विषयों से उपराम इस चित्त के पास रास रंग की तनिक भी आहट पहुंच जाय तो वह पुनः जीवित हो जाता है, फिर पूर्ववत् पाप कर्म करने लगता है ।

काटी कूटी मछली, छींकै धरी चहोड़ि ।
कोइ एक अषिर मन बस्या, दह मैं पड़ी बहोड़ि ।।२४।।

मछली=मन । छींकैं=ब्रह्मरन्ध्र । चहोड़ि=सहेज कर । दह=तालाब, संसार पंक ।

साधक ने मन रूपी मछली को काटकूट कर (संयमित कर) ब्रह्म रन्ध्र या शून्य रूपी छींके में सम्भाल कर रख दिया था किन्तु संसार की वासनाओं का एक अक्षर भी कान में पड़ते ही वह मन रूपी मछली छींके पर से गिर कर पुनः संसार रूपी तालाब के पंक में आ पडी ।

विशेष—नाथपन्थी साधना में कुछ नाथों के अनुसार मस्तिष्क में ब्रह्म-रन्ध्र की स्थिति है और उससे भी ऊपर शीश में अक्षर लोक या सर्वोच्च धाम की । ब्रह्मरन्ध्र में पहुंचे मनुष्य का मन तो साधना भ्रष्ट हो पुनः संसार अग्नि में गिर सकता है किन्तु सर्वोच्च लोक अक्षर-लोक में पहुंच साधक साधना भ्रष्ट नहीं हो सकता । यहां कबीर यही कहना चाहते हैं ।

कबीर मन पंषी भया, बहुतक चढ़्या अकास ।
उहां हीं तै गिरि पड़्या, मन माया के पास ।।२५।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कबीर कहते हैं कि मेरा मन पक्षी होकर प्रभु-प्राप्ति के मार्ग, प्रदेश में, बहुत दूर तक चढ़ चुका था। फिर उसी उच्च स्थान (ब्रह्मरन्ध्र) के पास से जो गिरा तो माया के पास ही आकर रम गया। साधनापरक अर्थ वैसा ही है जैसा कि उपर्युक्त 'साखी' में दर्शाया गया है।

भगति दुवारा संकड़ा, राई दसवैं भाइ।
मन तो मैंगल ह्वै रह्यो, क्यूं करि सकै समाइ ॥२६॥

दुवारा=द्वार। संकड़ा=संकीर्ण।

कबीर कहते हैं कि भक्ति का द्वार अत्यन्त संकीर्ण है। वह राई के दशमांश के बराबर है (राई स्वयं ही बहुत छोटी होती है, उसके भी दशम भाग के बराबर)। मेरा मन मदमस्त हाथी के समान चंचल है, फिर भला उसमें कैसे प्रवेश कर सकता है?

विशेष—'भगति दुवारा संकड़ा' में प्रतीत होता है कि 'भगति' से कबीर का तात्पर्य ब्रह्म से है क्योंकि योग-साधना में यह मान्यता है कि ब्रह्मरन्ध्र में एक बहुत सूक्ष्म राई बराबर बिन्दु होता है, इसी बिन्दु से अमृत का स्रवण माना जाता है। वैसे 'भगति' का अर्थ भक्ति लेने से भी अर्थ हो जाता है।

करता था तौ क्यूं रह्या, अब करि क्यूं पछताय।
बोवै पेड़ बंबूल का, अंब कहां तैं खाय ॥२७॥

हे मनुष्य! जिस समय तूने ये कुकर्म किये थे उस समय तुझे यह ध्यान क्यों नहीं हुआ कि मुझे ऐसे कर्म नहीं करने चाहिएं। अब उन कर्मों के फलस्वरूप दुख उठाने पर क्यों पछताता है? तूने अपने कुकर्मों से बबूल बोये थे तो उनका फल शूल ही प्राप्त हो सकते हैं, मधुर रसाल (आम, सुख) कहां से खा सकता है?

विशेष—अलंकार—निदर्शना?

काया केवल मन धजा, बिषै लहरि फहराइ।
मन चाल्यां देवल चलै, ताका सर्वस जाइ ॥२८॥

देवल=देवालय, मन्दिर। धजा=ध्वजा।

इस शरीर रूपी मन्दिर पर मन की ध्वजा फहरा रही है जो विषयरूपी वायु के संस्पर्श से लहराती है, चालित होती है। जिसका शरीर मन के अनुसार विषयों में प्रवृत्त होने लगे उनका सर्वनाश ही समझिए। भाव यह है कि जिस प्रकार मन्दिर के ऊपर सर्वोच्च सत्ता ध्वजा की होती है, उसी भांति शरीर पर मन का अधिकार है। यह मन विषय वासनाओं में शरीर को लगाकर सर्वस्व नाश कर देता है।

विशेष—रूपक अलंकार।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मनह मनोर्थं छाड़ि दे, तेरा किया न होइ।
पांणी मैं घीव नीकसे, तौ रूखा खाइ न कोइ ।।२६।।

मनोर्थ=मनोरथ यहां महत्वाकांक्षाएं ।

हे मन ! तू अपनी महत्वाकांक्षाएं छोड़ दे क्योंकि जो कुछ तू चाहता है वह सब सम्भव नहीं । यदि कोई पानी को बिलोकर घी निकालने मैं सफल हो जाय, फिर तो रूखी रोटियां कोई न खाये, सब घी का ही सेवन करें ।

विशेष—'पांणीं में घीव नीकसे" के समान तुलसी ने भी "वारि बिलोयो" की उपमा दी है ।

काया कसूं कमांण ज्यूं, पंचतत्त करि बांण ।
मारौं तौ मन मृग कौं, नहीं तौ मिथ्या जांण ।।३०।।२६२।।

पंचतत्त=पंचतत्व, 'क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा ।'

मैं पाँचों तत्व के बाण चढ़ाकर इस शरीर रूपी धनुष को कस लूंगा । फिर इसके द्वारा यदि मैं मन रूपी चंचल मृग का वध कर दूं तब तो ठीक है अन्यथा मेरे (समस्त) उपदेश को मिथ्या समझना ।

---

१४. सूषिम मारग कौ अंग

'सूषिम मारग' से कबीर का तात्पर्य 'सूक्ष्म मार्ग' से है, साधना का पंथ अत्यन्त सूक्ष्म है—उसी का वर्णन यहां किया गया है ।

कौंण देस कहाँ आइया, कहु क्यूं जांण्यां जाइ ।
उहु मार्ग पावैं नहीं, भूलि पड़े इस मांहि ।।१।।

उहु=उस ।

आत्मा मूल रूप से शून्य प्रदेश की निवासी है किन्तु वह यहां संसार में आ गयीं हैं, इसी को लक्ष्य कर कबीर कहते हैं कि न जाने किस देश का निवासी यहाँ (संसार में) आ गया है, भला फिर तत्व को किस प्रकार जाना जा सकता है ? इस आत्मा को साधना का उपयुक्त मार्ग तो मिल नहीं पा रहा है अतः यह पथ-विभ्रष्ट हो इस संसार में भटक रही है ।

उतीथैं कोइ न आवई, जाकूं बूझौं धाइ ।
इतथैं सबै पठाइये, भार लदाइ लदाइ ।।२।।

उतीथैं=उधर से । इतथैं=इधर से ।

कबीर कहते हैं कि यह साधना का मार्ग अत्यन्त अगम है, किसी से भी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इसका पता नहीं चल पाता क्योंकि जो इसे पार कर लेते हैं वे तो इधर मृ लोक में लौटते नहीं, शून्य-स्वर्ग-में रम रहते हैं फिर भला मैं किससे दौड़ वहां का समाचार पूछूं ? मार्ग के ज्ञान के बिना ही सब इधर से व्यर्थ सम्भार लाद-लाद कर साधना पथ में चले जाते हैं ।

सबकूं बूझत मैं फिरौं, रहण कहै नहीं कोइ।
प्रीति न जोड़ी राम सूं, रहण कहां थैं होइ ।।३।।

मैं सबसे यह पूछता फिरता हूं कि साधना में व्यवहार कैसा है, कि कोई भी उस व्यवहार की स्थिति को नहीं बता पाता । इन सांसारिक मनु ने प्रभु से प्रेम तो कभी किया नहीं फिर भला ये कैसे इस संसार में रह सक हैं, शान्ति प्राप्त कर सकते हैं ।

चलौ चलौं सबको कहै, मोहि अंदेसा और।
साहिब सूं पर्चा नहीं, ए जांहिगें किस ठौर ।।४।।

कबीर कहते हैं कि समस्त साधक उस अगम्य मार्ग की ओर जाने संकल्प करते हैं किन्तु मुझे इनकी सफलता में आशंका है । किसी का भी प्र से तो परिचय है नहीं, पता नहीं न जाने किस स्थल पर जाकर ये रु अर्थात् व्यर्थ इधर-उधर भटकते रहेंगे ।

जाइबे कौं जागा नहीं, रहिबे कौं नहीं ठौर।
कहै कबीरा संत हौ, अबिगति की गति और ।।५।।

जागा नहीं=ज्ञान नेत्र नहीं खोले ।

कबीर कहते हैं कि प्रभु के पास जाने के लिए तो मैंने अपने ज्ञान के विवेक नेत्र, खोले ही नहीं और इस संसार के विषय-वासना पंक में रहने लिए स्थान नहीं है । कबीर कहते हैं कि हे साधुजनो ! ब्रह्म उससे भिन्न अथवा ब्रह्म प्राप्ति का मार्ग उससे भिन्न है जो सामान्य रूप से संसार ने सम रखा है । भाव यह है कि साधना-मार्ग में बाह्याडम्बरों की आवश्यक नहीं ।

कबीर मारिग कठिन है, कोई न सकई जाय।
गए ते बहुड़े नहीं, कुशल कहै को आइ ।।६।।

बहुड़े=लौटे ।

कबीरदास जी कहते हैं कि प्रभु तक जाने का मार्ग अत्यन्त कठिन है कोई वहां पहुंच नहीं सकता; और जो वहां पहुंच जाते हैं, वे वहां से लौ नहीं, अतः उस पंथ का वित्ररण कौन दे ? अतः साधना मार्ग की अगम अगम्यता ही बनी रहती है ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विशेष—मलिक मुहम्मद जायसी ने भी "पद्मावत" के 'पद्मावती-नागमती-विलाप खण्ड' में दिल्ली का वर्णन करते हुए प्रभु-प्राप्ति के मार्ग के विषय में ऐसा ही कहा हैं—

"सो दिल्ली ग्रस निबुहर देसू। कोई न बहुरा कहै सन्देसू॥
जो गवनैं सो तहाँ कर होई। जो ग्रावै किछु जान न सोई॥"

जन कबीर का सिषर घर, बाट सलैली सैल।
पाव न टिकै पपीलका, लोगनि लादे बैल॥७॥

जन=दास, भक्त। सिषर=शून्य शिखर, ब्रह्मरन्ध्र। सलैली सैल=कीचड़ ग्रादि से दुर्गम पर्वतीय मार्ग।

भक्त कबीर का वास्तविक घर तो शून्य शिखर पर स्थित ब्रह्मरन्ध्र है, जहां तक पहुंचने का मार्ग बड़ा ही दुर्गम, बाधाओं के पंक से भरा हुआ है। वहाँ तो चींटी (जीवनमुक्त साधकों) के भी पैर नहीं रुक सकते और यहां से लोग पाप कर्मों के बोझ से बैल के समान लद कर साधना पथ पर चलने को उद्यत हैं।

विशेष—योग-साधना में साधक सुषुम्णा नाड़ी के मध्य में स्थित ब्रह्मनाड़ी के द्वारा कुण्डलिनी को ऊर्ध्वगामी कर शून्य शिखर पर पहुंचने का प्रयास करता है, इसे 'पीपिलका गति' कहते हैं, जो इस गति को साधता है उसे कबीर ने यहां 'चींटी' बताया है।

जहां न चींटी चढ़ि सकै, राई ना ठहराइ।
मन पवन का गमि नहीं, तहां पहूँचे जाइ॥८॥

कबीर कहते हैं कि जिस शून्य स्थल पर चींटी चढ़ नहीं सकती एवं राई भी वहां नहीं ठहर सकती, सर्वगामी और तीव्रगामी पवन तथा मन की भी जहां गति नहीं हैं, वहां मैं पहुंच चुका हूं।

कबीर मारग ग्रगम है, सब मुनिजन बैठे थाकि।
तहां कबीरा चलि गया, गहि सतगुर की साषि॥९॥

साषि=सीख, उपदेश।

कबीर कहते हैं कि ब्रह्म-प्राप्ति का जो मार्ग पूर्ण ग्रगम्य है, जिसकी दुर्गमता से मुनिजन भी थककर बैठ गये, वहां कबीर सद्गुरु के उपदेश को ग्रहण कर पहुंच गया है।

सुर नर थाके मुनि जनां, जहां न कोई जाइ।
मोटे भाग कबीर के, तहां रहे घर छाइ॥१०॥ ०२॥

मोटे भाग=बड़े भाग्य।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जिस प्रभु के पास तक पहुंचने में देवता, मुनिगण और मनुष्य अ... बैठ रहे, जहां कोई भी न जा सका, वहां कबीर का स्थायी वास हो गया। यह उसके लिए बहुत बड़े भाग्य की बात है।

—०—

१५. सूषिम जनम कौ अंग

कबीर सूषिम सुरति का, जीव न जांणैं जाल।
कहै कबीरा दूरि करि, आतम अदिष्टि काल ॥१॥

१. सूषिम=सूक्ष्म। जाल=रहस्य।

कबीर कहते हैं कि जीवात्मा सहजावस्था के सूक्ष्म मार्ग का रह... जानती। कबीर कहते हैं कि हे जीव! अपनी आत्मा का यह अज्ञान... जिसके कारण तू इस संसार को ही सत्य समझ बैठा है। तभी तुझे ... का ज्ञान हो सकता है।

विशेष—यहाँ 'सुरति' का तात्पर्य 'सहजावस्था' से ही है, ना... से नहीं। कबीर के समय तक बहुत से साधनापरक शब्दों के अर्थ प... हो चुके थे, अतः उन्होंने कहीं किसी शब्द को किसी अर्थ में तो कहीं ... में प्रयुक्त किया है। विशेष विवरण के लिए डा० हजारीप्रसाद द्वि... के 'कबीर' में 'कुछ अन्य शब्दों के भाग्य-विपर्यय' को देखिए।

प्राँण पंड कौं तजि चलै, मूवा कहैं सब कोइ।
जीव छतां जांमैं मरै, सूषिम लखै न कोइ॥२॥

पंड=पिंड, शरीर। मूवा=मर गया। छताँ=जीवित रहते हुए... सूषिम=सूक्ष्म, ब्रह्म।

प्राण जब शरीर का परित्याग कर देते हैं तो सब उसे मृतक कहते हैं। जीवात्मा जीवित रहते हुए भी अनेक बार जन्म-मरण में पड़ती है... साधक जीवित रहते हुए भी संसार से निर्लेप रह जीवनमुक्त हो जा... ब्रह्म को कोई नहीं देख पाता।

विशेष—अन्तिम चरण में ब्रह्म को अप्राप्य बताकर कबीर कोई ... भास उपस्थित नहीं कर रहे हैं, अपितु केवल ब्रह्म प्राप्ति की कठिनता ... करना चाहते हैं।

—०—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

१६. माया कौ अंग

जग हटवाड़ा स्वाद ठग, माया बेसां लाइ।
रामचरन नीकाँ गही, जिनि जाइ जनम ठगाइ ॥१॥

हटवाड़ा=हाट, बाज़ार। बेसां=वेश्या।

कबीरदास कहते हैं कि संसार एक बाज़ार है जिसमें इन्द्रियों के स्वाद रूप अनेक विषय-वासनाओं के ठग एवं माया रूपी वेश्या जीव को ठगने का, अपने जाल में फंसाने का उपक्रम करते हैं। हे मानव ! यदि तुम निष्ठा-पूर्वक प्रभु-आश्रय ग्रहण करोगे, प्रभु भक्ति में प्रवृत्त होंगे, तो तुम्हारा कल्याण हो सकता, तब ये ठग और माया रूपी वेश्या तुम्हारे जीवन धन को ठगने में असमर्थ होंगे।

अलंकार—रूपक।

कबीर माया पापणीं, फंध ले बैठी हाटि।
सब जग तौ फंधै पड़्या, गया कबीरा काटि ॥२॥

पापणीं=पापिनी, व्यभिचार आदि पाप कर्मों में प्रवृत्त होने वाली वेश्या से तात्पय है। फंद=जाल, पाश। फंधै=पाश में। काटि=तोड़ने का अर्थ।

कबीर कहते हैं कि माया पापिनी वेश्या हैं जो इस संसार के बाज़ार में अपनी ओर आकृष्ट करने का पाश लिए हुए है। समस्त संसार इस माया-पाश में आबद्ध हो गया किन्तु कबीर (साधुजनों से तात्पर्य) उसे काट चका है, अर्थात् प्रभु-भक्ति में ही उसकी रुचि है, माया के विषयों में नहीं।

विशेष—रूपक अलंकार।

कबीर माया पापड़ीं, लालै लाया लोग।
पूरी किनहूँ न भोगई, इनका इहै बिजोग ॥३॥

लालै लाया=अपने आकर्षण पाने की लालसा जगाना। इहै=यही।

कबीर कहते हैं कि माया पापिनी वेश्या है जो अपने आकर्षण के द्वारा जीव में विषय वासनाओं की लालसा जगाती है। जिस प्रकार वेश्या पर (स्वकीया के समान) किसी का अधिकार नहीं होता, और न वह किसी एक की होकर रह पाती है, इसलिए उसका कोई पूर्ण उपभोग नहीं कर पाता उसी भाँति माया के विविध आकर्षणों पर एक व्यक्ति विशेष का पूर्ण अधिकार नहीं होता, यदि होता भी है तो कुछ समय के लिए। माया के विविध विषयों की अप्राप्ति में ही संसार दुख (वियोग) भोगता है।

विशेष—रूपक एवं काव्यलिंग अलंकार।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कबीर माया पापणीं, हरि सूं करै हराम।
मुखि कड़ियाली कुमति की, कहण न देई राम ॥४॥

हराम=विमुख से तात्पर्य। कड़ियाली=कड़ी, शृंखला।

कबीरदास जी कहते हैं कि यह माया ऐसी पापिन है कि जीव को विमुख कर देती है। यह जीव के मुख से कड़वी वचनावली का निरन्तर उच्चारण कराकर राम-नाम कहने का अवसर नहीं देती। भाव यह है कि प्रभु-भक्ति में बाधक है।

जाणौं जे हरि कौं भजौं, मो मनि मोटी ग्रास।
हरि बिचि घालै अंतरा, माया बड़ी बिसास ॥५॥

मोटी ग्रास=विषय-वासनाओं की तृष्णा। घालै=डालना। —विश्वासघातिनी।

प्रत्यक्षतः ऐसा लगता है कि मैं (ढोंगी साधक) प्रभु-भक्ति में तल्लीन हूँ किन्तु मेरे मन में माया ने विषय-वासनाओं की अदम्य तृष्णा बसा रखी है। यह माया बड़ी विश्वासघातिनी है जो इन विषय-वासनाओं के द्वारा प्रभु और जीव के बीच अंतर डाल देती है।

विशेष—कबीर ने माया को विश्वासघातिनी इसलिए बताया है कि वह अपने जनक-प्रभु से जीव को विमुख करती है।

कबीर माया मोहनी, मोहे जांण सुजांण।
भागां ही छूटै नहीं, भरि भरि मारै बांण ॥६॥

जांण=ज्ञानी। सुजांण=सुजान, चतुर।

कबीर कहते हैं कि माया ऐसी आकर्षक है कि सामान्य मनुष्यों की तो बात ही क्या, बड़े-बड़े ज्ञानी एवं चतुर भी इसके आकर्षण में सम्मोहित हो गये हैं। यदि कोई जंजाल से भागकर विमुक्त होना चाहे तो असंभव है क्योंकि यह तान-तान कर मोहक बाणों की वर्षा कर व्यक्ति को अपने में फंसा लेता है।

कबीर माया मोहनी, जैसी मीठी खाँड।
सतगुर की कृपा भई, नहीं तौ करती भाँड ॥७॥

भांड=एक जाति विशेष जिसका सामाजिक स्थान अत्यन्त हीन है। यहां नष्ट होने से अर्थ।

कबीर कहते हैं कि माया बड़ी सम्मोहक एवं खांड के समान मीठी है। सद्गुरु ने कृपा कर मुझे इसके जाल से विमक्त कर दिया अन्यथा यह मुझे नष्ट करके ही छोड़ती।

विशेष—उपमा अलंकार।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कबीर माया मोहनी, सब जग घाल्या घांणि।
कोई एक जन ऊबरै, जिन तोड़ी कुल की कांणि ॥८॥

घाल्या=अपने चक्र में लपेट लिया। घांणि=घानी, तेली जिस गहरे पात्र में सरसों आदि डालकर तेल निकालता है उसे घानी कहते हैं, यह काठ की बनी होती है। कुल की कांणि=कुल मर्यादा अर्थात् लोक परम्परा।

कबीर कहते हैं कि यह माया बड़ी सम्मोहक है जिसने अपनी घानी में समस्त संसार को डाल रखा है। कोई एकाध व्यक्ति ही जिसने संसार की स्वाभाविक परम्परा का परित्याग किया हो, इसके जाल से बच पाते हैं।

विशेष—१. रूपक अलंकार।

२. 'जिन तोड़ी कुल की कांणि' पर ध्यानपूर्वक दृष्टिपात करने से पुष्टि-मार्गीय वल्लभ मत से इसका अद्भुत साम्य मिलता है, वहां भी प्रभु-प्राप्ति के लिए 'कुलकांणि' परित्याग अत्यावश्यक है। यद्यपि यहां यह कहने का तात्पर्य कदापि नहीं कि दोनों स्थानों पर यह मान्यता एक दूसरे के प्रभाव से आयी है, किन्तु यहां यह दिखाने का प्रयोजन यही है कि सन्तों और वल्लभ में निराकार और साकार इष्ट का अन्तर होते हुए भी यह साम्य है। 'अष्टछाप' के प्रत्येक कवि—सूरदास, कुम्भननास, परमानन्द दास आदि—ने 'कुलकानि' त्याग का वर्णन किया है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आदि में भी इस लोकमर्यादा-परित्याग का वर्णन मिलता है।

कबीर माया मोहनी, माँगी मिलै न हाथि।
मनह उतारी झूठ करि, तब लागी डोलै साथि ॥९॥

मनह=मन से।

कबीर कहते हैं कि यह मोहिनी माया मांगने पर, प्रयत्न करने पर, प्राप्त नहीं होती क्योंकि मायाजन्य आकर्षणों का कितना ही भोग क्यों न किया जाय फिर भी इन्द्रियां अतृप्त रहती हैं। किन्तु जब इसे मिथ्या, भ्रम-मात्र जानकर मन को इसके आकर्षण से पृथक् कर दिया जाय तो यह पीछे-पीछे फिरती है। भाव यह है कि माया का परित्याग करने में ही अधिक आनन्द एवं मंगल है।

माया दासी सन्त की, ऊंभी देइ असीस।
बिलसी अरु लातौं छड़ी, सुमरि सुमरि जगदीस ॥१०॥

ऊंभी=खड़ी-खड़ी, आज्ञा मानने वाली से तात्पर्य है।

कबीर कहते हैं कि माया संतों की दासी है जो खड़ी-खड़ी ही उनकी आज्ञा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

का पालन करती है। वे इसका उपयोग प्रभु को भजते हुए करते हैं पर भी इसे मुंह नहीं लगाते, लातों और छड़ियों की मार से इस लेते हैं।

माया मुई न मन मुवा, मरि मरि गया शरीर।
आसा त्रिष्णां नां मुई, यौं कहि गया कबीर॥११॥

कबीर कहते हैं कि आवागमन के चक्र में पड़कर शरीर नष्ट हुआ किन्तु किसी भी जन्म में माया का आकर्षण एवं मन की पीछे दौड़ समाप्त न हुई। न कभी सांसारिक कामनाओं एवं तृ अन्त हुआ।

आसा जीवै जग मरै, लोग मरे मरि जाइ।
सोइ मूवे धन संचते, सो ऊबरे जे खाइ॥१२॥

आसा=तृष्णा।

संसार का समस्त वैभव आदि समाप्त हो जाता है किन्तु यह तृ भी जीवित रहती है। मनुष्य आवागमन के चक्र में पड़-पड़ कर मृत्यु को प्राप्त होते हैं किन्तु फिर भी सांसारिक तृष्णा का अन्त नहीं जिन्होंने इस तृष्णा से परिचालित हो धन का संचय किया, वे ही इ में नष्ट हुए अथवा आवागमन के चक्र में पड़े। जिन व्यक्तियों ने धन उपयोग किया वे मुक्त हो गये।

विशेष—कबीर यहां धन संचय का विरोध इसीलिए करते हैं के पीछे व्यक्ति बावला बना फिरता है, न जाने क्या-क्या दुष्कृत्य प्रस्तुत हो जाता है, और तृष्णा अधिकाधिक बढ़ती जाती है। सम्बन्ध में उनकी मान्यता यही है कि—

"खाये खरचे जो जुरे, तो जोरिये करोरि"

कबीर सो धन संचिये, जो आगैं कूं होइ।
सीस चढ़ायें पोटली, ले जात न देख्या कोइ॥१३॥

संसार की स्थिति यह है कि मनुष्य अपनी सामान्य, आवश्यकताओं, जिनके अभाव में उसके जीवन का पूर्ण विकास को काट कर धन संचय कर अभावों के संसार में जीवन व्यतीत इसी को लक्ष्य कर कबीर कहते हैं कि धन-संचय उसी स्थिति में जबकि आगामी समय की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वह व्यर्थ पेट काट कर धन-एकत्रित कर उसे सर्वदा अपने साथ लगाये सकते हो किन्तु मृत्यूपरान्त कोई भी इसे ले जाता नहीं देखा गया है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विशेष—इस साखी का एक दूसरा अर्थ इस प्रकार भी किया जा सकता है—कबीर कहते हैं कि हे मनुष्य ! सांसारिक धन-संग्रह में क्या लगा हुआ है, ऐसे धन का संचय कर, ऐसे सुकृत्य कर जो परलोक में भी तेरे काम आ सकें—जिनके बल पर तू मुक्त हो जाय। इस सांसारिक धन की गठरी को मृत्यु के पश्चात् अपने साथ ले जाता कोई नहीं देखा, सब यहां का यहीं रह जाता है।

त्रीया त्रिष्णाँ पापणीं, तासू प्रीति न जोड़ि।
पैंड़ी चढ़ि पाछां पड़ै, लागै मोटी खोड़ि ॥१४॥

त्रिया=स्त्री। पापणीं=पापिनी, वेश्या से तात्पर्य। खोड़ि=अपराध, पाप।

तृष्णा एक व्यभिचारिणी स्त्री है जो मन को विविध विषयों में भटकाती रहती है या विविध विषयों में मन का गमन कराता रहती है। हे जीव ! तू इससे प्रेम-सम्बन्ध स्थापित मत कर, तू इसके जाल में मत फंस। यह तो पीछे पड़कर जीव को आकर्षित कर लेती है किन्तु इसके संसर्ग से फिर अनेक पापों का भागी बनना पड़ता है।

विशेष—सांगरूपक अलंकार।

त्रिष्णां सांची नां बुझै, दिन दिन बधती जाइ।
जवासा के रूष ज्यूं, घण मेहां कुमिलाइ ॥१५॥

बधती=बढ़ती।

कबीर कहते हैं कि इस सांसारिक तृष्णा रूपी लता को पल्लवित करने से नष्ट नहीं किया जा सकता, उससे तो यह दिन-प्रतिदिन बढ़ती जाती है। इसका नाश तो प्रभु-भक्ति की अजस्र वर्षा से ही सम्भव है, जिस प्रकार जवासा जितनी अधिक वर्षा होती जाती है उतना ही सूखता जाता है।

विशेष—(१) विभावना अलंकार। (२) आक और जवास ग्रीष्म में तो हरे रहते हैं किन्तु वर्षा प्रारम्भ होते ही ये सूखने लगते हैं। अन्य कवियों ने भी अपनी अनुभूति को आक जवास के माध्यम से अभिव्यक्त किया है।

कबीर जग की को कहै, भौ जलि बूडैं दास।
पारब्रह्म पति छाड़ि करि, करें मानि की आस ॥१६॥

भौ जलि=भव जल, संसार सागर।

कबीर कहते हैं कि सामान्य सांसारिक प्राणियों की कौन कहे इस संसार-सागर में भक्त जन भी डूब गये किन्तु भक्त तभी डूबते हैं जब वे पारब्रह्म परमेश्वर, स्वामी को भूल कर सांसारिक मान के इच्छुक हो जाते हैं, उनमें अहं आ जाता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

माया तजी तौ का भया, मानि तजी नहीं जाइ।
मानि बड़े मुनियर मिले, मानि सबनि कौं खाइ ॥१७॥

मुनियर=मुनिवर, श्रेष्ठ मुनिगण । मिले=मिट्टी में मिल हो गये ।

हे साधक ! यदि तू माया से असम्पृक्त हो गया तो कोई विशेष बात नहीं । तूने अपने मान, अहं, का तो परित्याग नहीं किया । यही नष्ट कर देगा ।

रांमहिं थोड़ा जांणि करि, दुनियां आगैं दीन।
जीवा कौं राजा कहैं, माया के आधीन ॥१८॥

थोड़ा=हीन ।

हे मनुष्य ! तूने प्रभु को तुच्छ समझ कर संसार को अधिक महत्व संसार में ही उलझा रहा । तू उस जीव को ही वास्तविक राजा, स्वामी बैठा जो मायाधीन होकर वैभवपूर्ण ढंग से रहता है ।

रज बीरज की कली, तापरि साज्या रूप।
रांम नांम बिन बूडिहै, कनक कांमणी कूप ॥१९॥

साज्या=बनाया । बूड़ि है=डूबेगा, नष्ट हो जायेगा ।

हे मनुष्य ! तू अपने ऊपर गर्व क्या करता है, तू है ही क्या वीर्य और स्त्री की रज जैसी वस्तुओं से निर्मित एक कली है जिस पर साज-सज्जा का आडम्बर कर रखा है । तू प्रभु-भक्ति बिना स्वर्ण और कामिनी रूपी कुएं में गिरकर नष्ट हो जायेगा ।

माया तरवर त्रिबिध का, सांखा दुख संताप।
सीतलता सुपिनै नहीं, फल फीकौ तनि ताप ॥२०॥

त्रिविध=त्रिगुणात्मक, दैहिक, दैविक, भौतिक सन्तापों से युक्त ।

कबीरदास जी कहते हैं कि माया दैहिक, दैविक, भौतिक संतापों त्रिगुणात्मक वृक्ष है, दुख और सन्ताप ही इसकी शाखाएं हैं । सामान्य छाया शीतल एवं फल मधुर होता है किन्तु इस माया-वृक्ष के शीतलता-सुख स्वप्न में भी प्राप्त नहीं और इसका फल फीका है अर्थात् छाया और फल शरीर को दुख ही प्रदान करते हैं ।

विशेष—सांगरूपक अलंकार ।

कबीर माया डाकणी सब किसही कौं खाइ।
दांत उपाड़ौं पापणीं, जे सन्तौं नेड़ी जाइ ॥२१॥

डाकणीं=पिशाचिनी । उपाड़ौं=उखाड़ं । नेड़ी=पास ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कबीर कहते हैं कि यह माया पिशाचिनी है जो संसार के सब ही मनुष्यों को खाती हैं। यदि यह साधु-जनों के पास भी फटकी तो में इस पापिनी के दांत उखाड़ दूंगा, इसे नष्ट कर दूंगा।

नलनी सायर घर किया, दौं लागी बहुतेणि।
जलही माहैं जलि मुई, पूरब जनम लिषेणि ॥२२॥

सायर=सागर, माया। दौं=अग्नि, विभिन्न यातनाएं एवं भवताप।

कबीर कहते हैं कि जिस प्रकार कमलिनी जल में रहती है, उसी भांति आत्मा ने इस संसार (की माया) को अपना निवास-स्थान बना लिया है, किन्तु वहां बहुत से दुख एवं संसार ताप उसे दग्ध करने लगे। इस प्रकार यह आत्मा इस संसार रूपी जल में ही रहते हुए जल मरी, नष्ट हो गई। यह आश्चर्यजनक परिणाम उसके पूर्वजन्म के दुष्कृत्यों का ही था।

विशेष—अलंकार—यमक, विरोधाभास एवं रूपकातिशयोक्ति।

कबीर गुण की बादली, तीतरवानी छांहि।
बाहरि रहे ते ऊबरे, भीगे मन्दिर माँहि ॥२३॥

गुण=सत, रज, तम—त्रिगुणं। तीतरवानी=तीतरवर्णी=तीतर की पंखों के समान छितरी-छितरी सी किन्तु रंग तीतर के पंखों जैसा नहीं होता, उसके रंग के छितराये होने के ही कारण उसे 'तीतरवानी' कहा जाता है।

कबीर कहते हैं कि यह त्रिगुणात्मक माया की तीतरवर्णी घटा बिना बरसे बिना अपना प्रभाव दिखाये नहीं रहती। जो इस घटा की छाया से बाहर रहे, माया-विमुक्त रहे वे मुक्त हो गये, माया उन पर अपना प्रभाव नहीं दिखा सकी किन्तु जो शरीर रूपी आवास के अन्दर रहे अर्थात् माया आकर्षणों में ही शरीर को लगा दिया वे भीग गये, माया ने उन पर अपना पूरा प्रभाव कर दिखाया।

विशेष—(१) अलंकार—रूपक, विरोधाभास। (२) तीतरवर्णी, बदली के लिए ऐसा कहा जाता है कि यह वर्षा अवश्य करती है, निम्नस्थ लोकोक्ति से इसकी पुष्टि होती है—

"तीतर बानी बादली, विधवा काजर रेख।
यह बरस वह घर करै, यामें मीन न मेख॥"

कबीर माया मोह की, भई अँधारी लोइ।
जे सूते ते मुसि लिए, रहे बसत कूं रोइ ॥२४॥

लोई=(लोयन)नेत्र। सूते=सुषुप्त, अज्ञान-निद्रा में। मुसि=ठग लिये। बसत=वस्तु सारतत्व, ब्रह्म।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कबीर कहते हैं कि इस माया-मोह के अज्ञान-अन्धकार ने नेत्र बन्द कर दिये हैं, उनसे उचित पथ नहीं सूझता। जो व्यक्ति इस अज्ञानांधकार की अवस्था में अचेत हो अपने वास्तविक लक्ष्य को भूल जाते हैं। अन्त में उन्हें सार-तत्व—ब्रह्म—की प्राप्ति के लिए पछताना पड़ता है कि काश! हम भी प्रभु को प्राप्त कर पाते।

संकल ही तै सब लहै, माया इहि संसार।
ते क्यूं छूटैं बापुड़े, बांधे सिरजनहार ॥२५॥

संकल=कुण्डी, जिससे द्वार बन्द होता है, शृंखला।

समस्त संसार माया की शृंखलाओं में बंधा हुआ है, वे बेचारे जीव किस प्रकार माया-बंधन से विमुक्त हो सकते हैं जो संसारकर्ता ब्रह्म को भी संलिप्त बताते हैं।

बाड़ि चढ़ंती बेलि ज्यूं, उलझी आसा फंध।
तूटै पणि छूटै नहीं, भई ज बाचा बंध ॥२६॥

बाड़ि=बाढ़, किसी बेल के चढ़ाने के लिए ग्रामों में प्रायः कांटों की एक बाड़ सी लगा देते हैं, यह प्रायः बबूल वृक्ष की शाखाओं को गाड़ कर बनायी जाती है। फंध=फंदा। तूटैं=टूट। वाचाबन्ध=वचन-बद्ध।

यह माया इस संसार रूपी बाड़ के ऊपर चढ़ाई गई एक बेल है जो कि आशाओं, लालसाओं के फन्द में उलझी हुई है अर्थात् जीव को आशा, तृष्णा के फन्द में उलझा लेती है। यदि जीव इससे अपना सम्बन्ध समाप्त कर दे तो भी यह संसार से नहीं छूट सकती जैसे कोई वचनबद्ध व्यक्ति, हानि होने पर भी, अपने वचनों का परित्याग नहीं करता।

विशेष—अलंकार—उपमा, रूपक।

सब आसण आसा तणां, निर्वति कै को नांहि।
निवरति कै निबहै नहीं, परवति परपंच मांहि ॥२७॥

आसण=स्थिति! तणां=नीचे। निर्वति=निवृत्ति। परवति=प्रवृत्ति।

ससार के समस्त प्राणियों पर आशा—लालसा—का प्रभुत्व है, कोई भी संसार से निवृत्त नहीं। भला जो व्यक्ति प्रवृत्ति मार्ग के टण्टों में फंसा हुआ है वह निवृत्ति मार्ग का निर्वाह कसे कर सकता है? भाव यह है कि संसार से तटस्थ होकर, प्रवृत्ति मार्ग का परित्याग करके ही निवृत्ति—वैराग्य(ईश्वरानु-राग)—उत्पन्न हो सकती है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कबीर इस संसार का, झूठा माया मोह।
जिहि घरि जिना बंधावणा, तिहिं घरि तिता अँदोह ॥२८॥

बंधावणा=आनंदोल्लास। तिता=उतना ही। अंदोह=दुख।

कबीर कहते हैं कि संसार का माया-आकर्षण मिथ्या है, यहां तो सर्वत्र दुख ही दुख है। जहां बहुत अधिक आनन्दोल्लास है, अथवा जहां जितना अधिक आनन्द-मंगल दिखाई देता है वहां दुख भी उतना ही अधिक है।

माया हमसौं यों कह्या, तू मति दे रे पूठि।
और हमारा हम बलू, गया कबीरा रूठि॥२९॥

दे रे पूठि=पीठ देना, विमुख होना। हम बलू=अपना बल, आत्मबल।

कबीर कहते हैं कि माया ने मुझ से यह कहा कि तू मुझसे विमुख मत हो—इसीलिए माया ने विविध आकर्षण प्रस्तुत किये किन्तु यह मेरा आत्म-बल है कि मैं माया से अप्रसन्न हो गया, उससे सम्बन्ध विच्छेद कर दिया।

बुगली नीर बटालिया, सायर चढ्या कलंक।
और पँखेरू पी गये, हंस न बोवै चंच॥३०॥

बगली=बुगला, माया से तात्पर्य है। बटालिया=समाप्त कर दिया। सायर=सागर। पंखेरू=पक्षी सामान्य, सांसारिक जीव। हंस=मुक्तात्मा।

माया रूपी बगुली ने आत्मा के जल को समाप्त कर दिया, उसका तेज समाप्त कर दिया। इससे यह शरीर रूपी सागर कलंकित हो गया—बहुत से पापों-दोषों का भागी हो गया। अन्य सांसारिक जीव तो इस गन्दे जल को पी गये अर्थात् माया में संलिप्त हो गये किन्तु जो मुक्तात्मा (हंस) हैं उन्होंने इस माया जल को छुआ तक नहीं।

विशेष—(१) अलंकार=सांगरूपक, रूपकातिशयोक्ति। (२) मुक्तात्माओं की इस संसार में स्थिति 'पद्मपत्रमिवाम्भसि' तुल्य मानते हैं।

कबीर माया जिनि मिलै, सौ बरियां दे बांह।
नारद से मुनियर गिले, किसौ भरौसौ त्यांह॥३१॥

गिले=नष्ट कर दिये।

यदि माया अपने शत-शत आकर्षणों से तुझे अपने फन्दे में फंसाना चाहे तो भी कबीर तू उसके चक्कर में मत आ। इस माया का क्या भरोसा कि कहां विनाश के गर्त में डाल दे। ऋषिश्रेष्ठ नारद तक को भी इसने भ्रष्ट कर दिया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विशेष—नारद—"यह ब्रह्मा के पुत्र कहे जाते हैं। यह भगवान् के बड़े भक्त थे। एक समय इनकी तपस्या से डर कर इन्द्र ने उसे भंग क लिए कामदेव आदि को भेजा। परन्तु यह नहीं डिगे। कामदेव को जीत इनको बड़ा अहंकार हो गया। इसकी चर्चा वह सभी स्थानों पर करते तब महादेव जी ने इनको समझाया कि विष्णु से कभी इसकी चर्चा न क लेकिन इनसे नहीं रहा गया। इन्होंने उनसे भी अपनी विजय का गर्व से किया। इस पर भगवान् उनकी परीक्षा के लिए उनके लौटने के मार्ग में माया रूपी राजा तथा उसकी कन्या का निर्माण कर उसका स्वयंवर नि कर दिया। नारद जी उस कन्या के रूप और गुणों पर मोहित हो गये उससे व्याह करने की अभिलाषा से विष्णु के पास उनका रूप मांगने भगवान् ने उनको माया के प्रभाव में आया हुआ जान कर उनका शरी बहुत सुन्दर बनाया किन्तु मुंह बन्दर का बना दिया। इस रहस्य को न नहीं जान सके और अभिमान के साथ स्वयंवर में आ बैठे। परन्तु उ आशा पूरी नहीं हुई, उस कन्या को स्वयं विष्णु एक दूसरा रूप धारण व्याह ले गये। स्वयंवर में उपस्थित शिवजी के दो गण उनके रूप को देख हंसने लगे तब उन्होंने अपने मुख के प्रतिबिम्ब को जल में देखा और क्रो शिव-गणों को तथा भगवान् तक को शाप दे डाला। एक और कथा नार विषय में महाभारत में प्रचलित है वह इस प्रकार है। नारद एक समय सृञ्जय के यहां रहते थे। उन्होंने अपनी कन्या को उनकी सेवा करने के नियुक्त किया। परन्तु नारद जी कामवश हो कर उसकी ओर आकर्षि गये और उससे व्याह कर लिया (—"कबीर—बीजक)। यहां कबीर इंगित प्रस्तुत कथाओं की ओर ही है।

माया की झल जग जल्या, कनक कांमिणीं लागि।
कहु धौं किहि बिधि राखिये, रुई पलेटी आगि ॥३२॥३

झल=अग्नि। पलेटी=लपेटी हुई।

स्वर्ण—धन—और कामिनी की माया—अग्नि में जलकर समस्त भस्म हो गया, नष्ट हो गया। जिस प्रकार रूई में लपेटी हुई अग्नि समय तक अपना प्रभाव दिखाये विना नहीं रह सकती; उसी भांति कनक कामिनी के संसर्ग में पड़ा मनुष्य अधिक समय तक नहीं टिक सकता, विनाश निश्चित है।

विशेष—निदर्शना अलंकार।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

१७. चांणक कौ अंग

जीव बिलंब्या जीव सौं, अलष न लखिया जाइ।
गोबिंद मिलै न झल बुझै, रही बुझाइ बुझाइ ॥१॥

बिलंब्या=सहारा लिया, आश्रय लिया। अलष=निराकार ब्रह्म। झल=अग्नि, संसार ताप।

मनुष्य मनुष्य का व्यर्थ सहारा लेता है जिसका कोई फल नहीं निकलता। कोई भी उस निराकार ब्रह्म की खोज में तत्पर नहीं होता, जिससे शान्ति लाभ की आशा है। जब तक प्रभु-मिलन नहीं होगा तब तक सांसारिक तापों का शमन भी असम्भव है—यह बात बारम्बार (कबीर द्वारा) समझकर कही गई है।

इही उदर कै कारणैं, जग जांच्यौ निस जाम।
स्वांमीं-पणौ जु सिर चढ्यो, सर्या न एको काम ॥२॥

स्वामी-पणौं=स्वामित्व, अहंभाव। सर्या=सिद्ध हुआ।

इस पेट के ही कारण मैंने अहर्निश—सर्वदा सांसारिक प्राणियों से भिक्षा माँगी। इस दीनता की स्थिति में भी मैं अपने को सांसारिक वस्तुओं का स्वामी मान बैठा, मुझमें अहंभाव जागृत हो गया जिसके कारण मेरा पतन हुआ। एक भी कार्य सिद्ध न हो सका, न तो लोक में सुखी जीवन व्यतीत किया और न परलोक में सुखी-जीवन प्राप्त हो सकेगा क्योंकि प्रभु-भक्ति तो की ही नहीं।

स्वांमीं हूंणां सोहरा, दोद्धा हूंणां दास।
गाडर आंणीं ऊन कूं, बाँधी चरै कपास ॥३॥

हूंणां=होना। सोहरा=सहल, आसान। दोद्धा=दुर्लभ, कठिन। दास=भक्त। गाडर=भेड़।

मनुष्य स्वयं स्वामी होने का दम्भ सरलता से कर सकता है किन्तु भक्त बनना, जिसमें सर्वस्व समर्पण की आवश्यकता है, कठिन है। यदि प्रभु-भक्ति के अन्तर्गत यह भावना बनी रही तो सब व्यर्थ हो जाता है भक्ति ही नहीं रहती, ठीक उसी प्रकार जैसे किसी भेड़ को लाया तो ऊन प्राप्ति के लिए जाय किन्तु वह बंधी हुई ही घर में रखी कपास भी खा जाय।

विशेष—निदर्शना अलंकार।

स्वांमीं हूवा सींतका, पैका कार पचास।
राम नांम कांठै रह्या, करैं सिषाँ की आस ॥४॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सीतका=कणभर,थोड़ी सी सम्पत्ति। पैका कार=पैरवीकार, अनु कांठे=कष्ट में। सिषाँ=शिष्य।

हे मनुष्य ! तू कण भर सम्पत्ति का स्वामी होकर ही दम्भ में भर इसी दर्प-वैभव के प्रदर्शनार्थ तूने पचासों—बहुत से—सेवक रख रखे हैं धूते ! कभी तूने हृदय से राम नाम नहीं लिया, केवल मुंह से एकाध प्रभु का नामोच्चारण किया उसी से अपने को भक्ति का अधिकारी मान कामना करता है कि लोग मेरा शिष्यत्व ग्रहण करें ? कैसा मिथ्या दम्भ है

कबीर तष्टा टोकणीं, लीए फिरै सुभाइ।
राम नांम चीन्हैं नहीं, पीतलि ही कै चाइ ॥५॥

तष्टा=तसला। टोकणी=टोकनी—पात्र विशेष। सुभाई=स्वभाव चाई=चाव, इच्छा।

कबीर कहते हैं कि हे मनुष्य त अपनी स्वाभाविक वृत्तियों—भूख की तृप्ति के लिए यह तसला और टोकनी आदि पात्र, व्यर्थ के उपादान, उठा उठाये फिरता है। इस पीतल की (दोनों पात्र प्रायः पीतल के ही होते हैं) तू ढोये फिरता है किन्तु राम नाम के बहुमूल्य रत्न को नहीं पहचानता। यह है कि सांसारिक तृष्णाओं की प्राप्ति में तो अपनी शक्ति का अपव्यय रहा है, प्रभु भक्ति नहीं करता।

कलि का स्वांमीं लोभिया, पीतलि धरी षटाइ।
राज दुवारां यौं फिरै, ज्यूं हरिहाई गाइ ॥६॥

लोभिया=लोभी। हरिहाई=हरियाली के लोभ से दूसरे के खेतों चुगने वाली गाय, जो हटाने पर भी नहीं हटती।

कबीर कहते हैं कि इस कलियुग में स्वामी और संन्यासी लोभी हैं। की वाह्य विरक्तता उसी प्रकार अवास्तविक है जैसे पीतल खटाई से चम देने पर क्षणिक समय के लिए चमकीला हो जाता है। भीतर से, उनका लोभासक्त है। वे लोभ से वशीभूत हो वैभवशाली द्वारों पर इसी प्र टूटते हैं या बार-बार आते हैं जैसे हरियाली के लोभ में पड़ी हुई गाय के खेत में बार-बार हटाने पर भी आ जाती है।

विशेष—उपमा अलंकार।

कलि का स्वांमीं लोभिया, मनसा धरी बधाइ।
दैंहि पईसा ब्याज कौं, लेखाँ करतां जाइ ॥७॥

मनसा=इच्छाएं, अभिलाषाएं।

कलियुग का संन्यासी बड़ा लोभी है जिसने अपनी इच्छाओं का अत्यधि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विस्तार कर रखा है। उनकी स्थिति यहाँ तक गिरी हुई है कि रुपया पैसा ब्याज पर देकर पोथियों में उसके ब्याज का लेखा-जोखा करते रहते हैं, फिर भला संन्यास कैसा ?

कबीर कलि खोटी भई, मुनियर मिलै न कोइ।
लालच लोभी मसकरा, तिनकूं आदर होइ ॥८॥

मुनियर=मुनिवर।

कबीर कहते हैं कि आज कलिकाल में कैसा बुरा समय आ गया है कि श्रेष्ठ मुनिगण, त्यागी, संन्यासी, मिलते ही नहीं। आज समाज में धन के लोभी विविध तृष्णाओं के लालच में पड़े हुए एवं अपनी हाव-भाव-क्रीड़ा से दूसरों को रिझाने वाले साधुओं का ही सम्मान रह गया है।

कबीर ने प्रस्तुत साखी के माध्यम से अपने समय के ढोंगी साधुओं पर करारा व्यंग्य किया है।

चारिउँ बेद पढ़ाइ करि, हरि सूं न लाया हेत।
बालि कबीरा ले गया, पंडित ढूंढै खेत ॥९॥

बालि=बाल, गेहूं,जौ आदि के ऊपर आने वाली दानों की मंजरी।

हे साधु ! तू चारों वेद पढ़कर भी प्रभु से प्रेम न कर सका। इस संसार का सार तत्व प्रभु-भजन, जो किसी खेत में बाल के समान था, तो कबीर ले गया अब तत्वदर्शी पौराणिक तो प्रभु रूपी उस अमूल्य बाल के लिए संसार (खेत) में भटक रहा है।

विशेष—कबीर ने सर्वत्र पुराणपन्थियों की निन्दा की है। तुलना कीजिए—

"पोथी पढ़ पढ़ जग मुआ, पण्डित भया न कोय।
एकै आखर प्रेम का, पढ़ै तौ पण्डित होय॥"

बांह्मण गुरू जगत का, साधूं का गुरु नाहिं।
उरझि पुरझि करि मरि रह्या, चारिउँ बेदां माहिं ॥१०॥

कबीर कहते हैं कि तत्वदर्शी पौराणिक ब्राह्मण चाहे समस्त संसार का गुरु हो, वह साधु का गुरु नहीं हो सकता क्योंकि उसे प्रेम-दृष्टि प्राप्त है। वह बेचारा ब्राह्मण तो चारों वेदों की भूलभूलैयां में ही भटक कर अपना जीवन व्यर्थ नष्ट कर रहा है।

साषित सण का जेवड़ा, भींगां सूं कठठाइ।
दोइ अषिर गुरु बाहिरा, बांध्या जमपुरि जाइ ॥११॥

साषित=शाक्त। जेवड़ा=रस्सी। कठठाई=कड़ी होना।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कबीर कहते हैं कि शाक्त तो सन की रस्सी के समान है जो इस के विषय-भोगों में लिप्त होकर माया बन्धनों में अधिकाधिक जकड़ा जा वह प्रभु के नाम और गुरु कृपा के बिना यमपुरी को बांध कर ले जाता है।

कबीर शाक्तों के कट्टर विरोधी हैं, इसकी पुष्टि प्रस्तुत सा भली-भांति हो रही है।

पाड़ोसी सू रूसणां, तिल तिल सुख की हांणि।
पंडित भये सरावगी, पाणी पीवें छांणि ॥१२॥

पड़ौसी=पड़ौसी। रूसणां=रूठना। सरावगी=जैन साधु।

कवीर कहते हैं कि इन बाह्यचारी साधुओं के ढकोसले तो देखो कि सम्प्रदाय में दीक्षित होने पर जीव-हित के विचार से पानी तक भी छान पीते हैं और दूसरी ओर अपने पड़ौसी तक से लड़कर अपना जीवन बना लेते हैं जिससे प्रतिक्षण सुख की समाप्ति होती चली जाती है।

पंडित सेती कहि रह्या, भीतरि भेद्या नांहि।
औरूं कौं परमोधतां, गया मुहरकां मांहि ॥१३॥

सेती=श्वेती, श्वेत वस्त्रधारी। भेद्या=भेदन करना, प्रविष्ट हो परमोधतां=प्रबोध देते हुए। मुहरकां=वध स्थान।

श्वेत वस्त्रधारी पण्डित पोथी-पत्रों के ज्ञान का कथन ही कर रहा है ज्ञान ने उसके अंतस्तल में प्रवेश नहीं किया जिससे वह स्वयं-कथित मार्ग भी अनुसरण कर सकता। यह ढोंगी, बाह्य-ज्ञान से लदा पण्डित दूसरों तो पाप से बचने का उपदेश देता रहा किन्तु स्वयं ने घोर पाप किये (मुहरकां मांहि।)

चतुराई सूव पढ़ी, सोई पंजर मांहि।
फिरि प्रमोधै आंन कौं, आपण समझै नांहि ॥१४॥

कवीर बाह्य, थोथे ज्ञान की निस्सारता पर व्यंग्य करते कहते हैं हे पण्डित! यदि तू पोथियों का ज्ञान बटोर कर उसका कथन करता फि है और उस पर आचरण नहीं करता तो इसमें कौन सी बड़ी बात है? ज्ञान तो लौह-पिंजर में बन्द तोते को भी होता है जो दूसरों को बार राम नाम सुनाता है किन्तु स्वयं भक्ति का, राम नाम का मर्म नहीं समझ

रासि पराई राषतां, खाया घर का खेत।
औरों कौं प्रमोधतां, मुख मैं पड़िया रेत ॥१५॥

पौराणिक पण्डित पर, जो दूसरों को उपदेश देता फिरता है और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उपदेशित मार्ग पर नहीं चलता व्यंग्य करते हुए कबीर कहते हैं कि उसकी दशा ऐसे कृषक के समान है जो अपना खेत लापरवाही से पशुओं से उजड़वा देता है और फिर दूसरे की अन्न-राशि की रखवाली करके ही कुछ अन्न प्राप्त करना चाहता है। वह दूसरों को ही शिक्षा देता हुआ अपना जीवन नष्ट कर लेता है।

तारा मंडल वैसि करि, चन्द बड़ाई खाइ।
उदै भया जब सूर का, स्यूं तारां छिपि जाइ ॥१६॥

ढोंगी अल्पज्ञ पण्डित अज्ञानांधार में पड़े हुए मनुष्यों के सम्मुख ही अपनी ज्ञान-गठरी खोलकर सम्मान प्राप्त करता है किन्तु जब कोई ज्ञानी मनुष्य सम्मुख आ जाता है तो छिप जाता है, उनके सम्मुख यह बोल भी नहीं सकता। इसकी स्थिति ठीक वैसी ही है जैसे चन्द्रमा नक्षत्र-मण्डल में अपनी प्रभाविकीर्ण कर प्रशंसा प्राप्त करता है किंतु जब प्रातः काल में तेजपुंज सूर्य—वास्तविक प्रकाश—का उदय होता है तोवह नक्षत्र सहित छिप जाता है।

विशेष—उपमा अलंकार।

देषण के सबको भले, जिसे सीत के कोट।
रवि कै उदै न दीसहीं, बँधै न जल को पोट ॥१७॥

देषण=देखने में। सीत=शीत, यहां बर्फ से तात्पर्य है। उदै=उदित होने पर। दीसहीं=दृष्टिपात होना। पोट=गठरी।

ये ढोंगी, ब्रह्याडम्बरी पण्डित देखने में तो बड़ भले लगते हैं क्योंकि अज्ञानांधकार में पड़े पण्डित के लिए ये वास्तविक ज्ञानी हैं किन्तु जब व्यक्ति में ज्ञान का सूर्य उदय होता है, तब इनका अस्तित्व नहीं ठहर सकता, तब तो इनकी स्थिति वैसी ही होती है जैसी शीत-ऋतु में हिम (कुहरे) के बने किले बड़े मनारम प्रतीत होते हैं किन्तु सूर्य के उदित होने पर उनका अस्तित्व नष्ट हो जाता है, बर्फ पिघलकर पानी बन जाती है, किलों की आकृतियां समाप्त हो जाती हैं।'

तीरथ करि करि जग मुवा, डूंघै पांणीं न्हाइ।
रांमहि रांम जपंतडां, काल घसीट्यां जाइ ॥१८॥

डूंघै=उथला, गदले से तात्पर्य।

कबीर कहते हैं कि तीर्थों के गदले पानी में स्नान करते-करते सम्पूर्ण संसार नष्ट हो गया। बाहर मुंह से राम-नाम का उच्चारण करते हुए भी उन्हें मृत्यु-नाश-घसीट कर ले गया। भाव यह है कि उपासना के बाह्याडम्बरों से मुक्ति सम्भव नहीं, उसके लिए हृदय से प्रभु-भक्ति वांछनीय है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कासी कांठैं घर करैं, पीवैं निर्मल नीर।
मुकति नहीं हरि नांव बिन, यौं कहै दास कबीर ॥१९॥

काशी कांठैं=काशी में निवास करते हुए।

भक्त कबीर कहते हैं कि चाहे कोई शिवनगरी काशी में निवास करे, उसे अपना घर ही बना ले और कलि-मलहरणी, पाप-नाशिनी का पवित्र जल पीये तो भी प्रभु-भक्ति के विना उसकी मुक्ति सम्भव नहीं है।

कबीर इस संसार कौं, समझाऊँ कै बार।
पूंछ ज पकड़ै भेद की, उतरया चाहै पार ॥२०॥

भेद=द्वैत, यह भावना कि प्रभु और अंश जीव पृथक् हैं, माया अर्थ भी लिया जा सकता है।

कबीर कहते हैं कि मैं इस अबोध संसार को कितना समझाऊं? जो प्रभु और आत्मा का अन्तर मानकर इस भव-सागर के पार जाना चाहता है, जो असम्भव है। अथवा संसार माया के आश्रय में रहकर भव-सागर पार करना चाहता है, यह कैसे सम्भव है?

कबीर मन फूल्या फिरै, करता हूँ मैं ध्रंम।
कोटि क्रम सिरि ले चल्या, चेत न देखै भ्रंम ॥२१॥

ध्रंम=धर्म। क्रम=कर्म। चेत=सावधान होकर, ज्ञानयुक्त होकर। भ्रंम=भ्रम, माया-भ्रम।

कबीर कहते हैं कि व्यक्ति व्यर्थ ही फूला-फूला फिरता है, यह गर्व करता है कि मैं धर्माचरण करता हूं किन्तु वह ज्ञानयुक्त हो माया-भ्रम से यह नहीं देखता कि वह कितने कोटि कुकर्मों का भार अपने सिर पर लिए संसार से जाता है।

मोर तोर की जेवडी, बलि बंध्या संसार।
कां सिकडूं बासुत कलित, दाझण बारंबार ॥२२॥

मोर-तोर=ममत्व-परत्व। कांसि=कांस, सुई की नोक के समान एक घास विशेष। कंडूवा=यह भी एक घातक घास ही होती है, कन्डुवा या कन्डवा कहते हैं। दाझण=जलना।

जिस प्रकार बलि पर चढ़ाया जाने वाला बकरा बन्धन में बंधा रहता है उसी प्रकार संसार ममत्व-परत्व के माया बन्धन में जकड़ा पड़ा है। पुत्र एवं स्त्री अर्थात् परिवार रूपी कांस एवं कन्डुवे के कारण जीवात्मा को बारम्बार आवागमन चक्र में पड़ कर संसार तापों में दग्ध होना पड़ता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

१८. करणीं बिना कथणीं कौ अंग

कथणीं कथी तौ क्या भया, जे करणीं नां ठहराइ।
कालबूत के कोट ज्यूँ, देषतही ढहिं जाइ ॥१॥

कथणीं=कथन, ज्ञानोपदेश से तात्पर्य। करणीं=कर्म। कालबूत=कलाबतू, मेहराब के कंगूरे बनाने के लिए एक कच्चा आधार, जब असली कंगूरा बन जाता है तो इसे हटा देते हैं, कच्ची मिट्टी का होने के कारण यह बड़ा नाजुक होता है, छूते ही यह टूट जाता है। इसी नाजुकपन की अभिव्यक्ति कबीर ने "देषतहीं ढहिं जाइ" द्वारा की है।

कबीर कहते हैं कि जिसने केवल उपदेश ही बघारा और उस उपदेश का स्वयं आचरण न किया, वह मनुष्य ज्ञानियों के मध्य अथवा सत्य की कसौटी पर टिक नहीं पाता। जिस प्रकार कालबूत के बने कंगूरे तनिक सी ठसक में ही ढह जाते हैं उसी भांति ये मनुष्य तनिक सी सत्य की परीक्षा पर डावांडोल हो जाते हैं।

जैसी मुख तैं नीकसै, तैसी चालै चाल।
पारब्रह्म नेड़ा रहै, पल मैं करै निहाल ॥२॥

नेड़ा=समीप। निहाल=प्रसन्नचित्त, आनन्दित।

हे मनुष्य! जैसा सुन्दर उपदेश तू दूसरों को देता है यदि स्वयं उसका आचरण करे तो प्रभु सर्वदा तेरे समीप रहें और तुझे क्षण-भर में मुक्त कर प्रसन्न कर देंगे।

जैसी मुष तैं नीकसै, तैसी चालै नाहिं।
मानिष नहीं ते स्वान गति, बांध्या जमपुर जांहि ॥३॥

स्वानगति=श्वानगति।

जो दूसरों को सुन्दर उपदेश देते हैं और स्वयं उनका पालन नहीं करते, वे मनुष्य नहीं हैं अपितु श्वान हैं जो अपने पापों के कारण मृत्यु के मुख में चले जाते हैं।

पद गोए मन हरषियाँ साषी कह्यां अनंद।
सो तत नांव न जांणियाँ, गल में पड़िया फंध ॥४॥

तत=तत्व या उसका। फन्ध=फन्दा, मृत्यु का।

जो मनुष्य प्रभु-भक्ति के पद गा-गा कर और साखियों में उपदेश देकर ही अपने को प्रभु-भक्त समझ बैठे उन्होंने उस पूर्णतत्व, ब्रह्म के रहस्य को नहीं समझा। अतः अन्त तक वे काल-पाश में पड़े रहे, मुक्त नहीं हो सके।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करता दीसै कीरतन, ऊँचा करि करि तूंड।
जांणैं बूझै कुछ नहीं, यौंही आँधाँ रूंड ॥५॥३७३॥

तूंड=हाथी की सूंड, किन्तु यहां व्यंग्यार्थ से मुख अर्थ लिया जा जो मनुष्य राम-नाम को समझे बिना, हृदय के योग से रहित मुं कर उच्चस्वर से कीर्तन करता है वह रणक्षेत्र में लड़ते हुए धड़ के स जिसे कुछ भी दृष्टिगत नहीं होता—चाहे कोई भी उसकी तलवार उसे तो मारने से काम।

---

१६. कथणीं बिना करणीं कौ अंग

मैं जांन्यूं पढ़िबौ भलौ, पढ़िबा थैं भलौ जोग।
रांम नांम सूं प्रीति करि, भल भल नींदौ लोग ॥१॥

पढ़िबौ=पुस्तकों का पठन। थैं=(तैं)से। जोग=योग। भ =भले ही।

कबीर कहते हैं कि यह मैं जानता हूं कि शास्त्रादि का पढ़ना बड़ा है किन्तु उससे भी कहीं अच्छा योग-साधना करना है (जिसके द्वारा चित्त लगाया जाता है)। इसलिए हे साधक तू प्रभु-भक्ति में प्रवृत्त हो काम्य है, चाहे अन्य मनुष्य तेरी कितनी ही निन्दा क्यों न करें।

कबीर पढ़िबा दूरि करि, पुसतक देइ बहाइ।
बांवन आषिर सोधि करि, ररै ममैं चित लाइ ॥२॥

कबीर कहते हैं कि हे साधक! तू पढ़ना छोड़कर इस शास्त्रादि को जल में बहा दे क्योंकि उससे श्रेष्ठ प्रभु-भक्ति है। इसलिए तू इन ग्रन्थों का सार केवल दो अक्षर 'रा' और 'म' समझ कर प्रभु-भक्ति अपना हृदय लगा।

कबीर पढ़िबा दूरि करि, आथि पढ्या संसार।
पीड़ न उपजी प्रीति सूं, तौ क्यूं करि करै पुकार।

आथि=(अस्ति) अन्त। पीड़=पीड़ा।

कबीर कहते हैं कि हे साधक! तू शास्त्रादि का पाठ छोड़ दे इससे मुक्ति सम्भव नहीं, इसके पाठ के पश्चात् भी संसार का अन्त हों यदि हृदय में प्रभु प्रेम की पीड़ा उत्पन्न नहीं हुई तो पोथी पढ़-पढ़कर नामोच्चारण से क्या लाभ ?

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुवा, पंडित भया न कोइ।
एकै अषिर पीव का, पढ़ै सु पंडित होइ ॥४॥३७७॥

कबीर कहते हैं कि समस्त संसार धर्मग्रन्थों के ढेर को पढ़ते-पढ़ते ही नष्ट हो गया किन्तु कोई पूर्ण ज्ञानी न हो सका। यदि कोई प्रभु नाम का केवल एक शब्द 'राम' जान जाय तो उन धर्मग्रन्थों को पढ़े बिना भी वह पूर्ण पण्डित हो जाता है।

---

२०. कामीं नर कौ अंग

कांमणि काली नागणीं, तीन्यूं लोक मँझारि।
रांम सनेही ऊबरे, बिषई खाये झारि ॥१॥

कांमणि=कामिनि, नारी। नागणीं=नागिन। मंझारि=मध्य में।

नारी तीनों लोकों में—सर्वत्र—नागिन के समान विषपूर्ण है। इसने विषय-वासना में सिक्त जीवों को तो डस लिया है, केवल प्रभु-भक्त ही इसके प्रभाव से बच सके हैं।

विशेष—तीन लोक—स्वर्ग, मर्त्य, पाताल।

कांमणि मींनीं षाणि की, जे छेड़ौं तौं खाइ।
जे हरि चरणां राचियां, तिनके निकटि न जाइ ॥२॥

मींनीं=मक्खी। षांणि=खांड, मधुरता के साधर्म्य से मधु अर्थ। राचियां=अनुरक्त।

कामिनी, नारी मधुमक्खी के सदृश है जो इसके पास जाओगे तो यह तुम्हें काट कर खा जायेगी, दूर रहोगे तो तुम्हारे पास भी नहीं फटक सकती। जो प्रभु-भक्ति में अनुरक्त हैं यह उनके पास नहीं जाती, उन्हें अपने विषाक्त प्रभाव से प्रभावित नहीं कर सकती।

पर नारी राता फिरैं, चोरी बिढ़ता खांहिं।
दिवस चारि सरसा रहै, अंति समूला जांहिं ॥३॥

राता=अनुरक्त। बिढ़ता=वृद्धि पाया हुआ, समृद्ध। सरसा=पल्लवित होना। समूला=मूल सहित।

कबीर कहते हैं कि जो मनुष्य परस्त्री में अनुरक्ति रखता है एवं चोरी के धन-बल पर समृद्ध होता है वह कुछ समय के लिए भले ही फल-फूल ले अन्त में उसे समूल नष्ट होना पड़ता है (क्योंकि इन कुकृत्यों से लोक एवं परलोक दोनों बिगड़ते हैं)।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पर-नारी पर-सुंदरी, बिरला बंचै कोइ।
खातां मींठी खाँड सी, अंति कालि विष होइ ॥४॥

दूसरे की पत्नी तथा दूसरे की सुन्दर नारी के आकर्षक प्र... कोई बिरला ही मुक्त होगा। परस्त्री संसर्ग-सुख खांड के समान मधुर है... जिस प्रकार खांड बाद में पेट को हानि पहुंचाती है, इसी प्रकार यह प... प्रेम अन्ततः विषदायक सिद्ध होता है।

विशेष—(१) उपमा अलंकार। (२) खाँड जब खाते हैं तो मधुर... ही है किन्तु उससे पेट खराब हो जाता है जिससे और रोग उत्पन्न है... आशंका रहती है।

पर-नारी कै राचणैं, औगुण है गुण नांहि।
षार समंद मैं मंछला, केता बहि बहि जांहि ॥५॥

राचणैं=प्रेम में।

दूसरे की स्त्री के प्रेम में दोष ही दोष हैं, गुण या लाभ कुछ भी न... वासना के इस आकर्षण-रूपी समुद्र में न जाने कितनी जीवरूपी मछलि... जाती हैं। भाव यह है कि संसार-प्रवाह में जीव वासना का परित्याग नहीं... पाता और परस्त्रीगामी हो जाता है, जबकि इससे हानि ही हानि है।

पर नारी को राचणौं, जिसी ल्हसण की षांनि।
षूणैं बैसि रषाइए, परगट होइ दिवानि ॥६॥

राचणौं=प्रेम, अनुरक्ति। ल्हसण=लहसुन। षांनि=खाना। षू... (कूणें) कोने में। रषाइए=रखवाली कीजिए।

परस्त्री प्रेम लहसुन खाने के समान ही है जो किसी प्रकार से भी... से नहीं छिप सकता। चाहे आप कोने में बैठकर, अत्यन्त सतर्कतापूर्वक... प्रयत्न करें कि यह प्रकट न हो तो भी यह प्रकट होकर ही रहता है, कि... रोके नहीं रुकता।

नर नारी सब नरक है, जब लग देह सकाम।
कहै कबीर ते राँम के, जे सुमिरैं निहकाम ॥७॥

सकाम=वासनामय।

कबीर कहते हैं कि जब तक शरीर विषय-वासनाओं में संलिप्त है तब... नर-नारी सभी नरक में पड़े हुए हैं। वास्तविक प्रभु-भक्त वे ही हैं जो... को विषय-वासनाओं की कामना से रहित होकर भजते हैं।

नारी सेती नेह, बुधि बबेक सबहीं हरै।
कांइ गमावैं देह, कारिज कोई नां सरै ॥८॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कांइ=क्यों ?

स्त्री का प्रेम बुद्धि और सदासद् विवेक सबका ही हरण कर लेता है। हे जीव ! तू इस स्त्री-प्रेम में अपनी शक्तियों का ह्रास क्यों कर रहा है ? इससे कोई भी कार्य सफल नहीं हो सकता।

नाना भोजन स्वाद सुख, नारी सेती रंग।
बेगि छाड़ि पछिताइगा, ह्वैहै मूरति भंग ॥९॥

मूरति=शरीर ।

विविध प्रकार के सुस्वादु भोजनों का सुख एवं स्त्री के प्रेम का सुख, हे मनुष्य ! तू इन दोनों का परित्याग कर दे अन्यथा जब इन्हीं इन्द्रिय-सुखों में रत रहने पर शरीर नष्ट हो जायेगा तो तू पछतायेगा।

नारि नसावैं तीनि सुख, जा नर पासैं होइ।
भगति मुकति जिन ग्यान मैं, पैसि न सकई कोइ ॥१०॥

नसावैं=नष्ट करती है।

नारी का संसर्ग मनुष्य को तीन सुखों से वंचित कर देता है। वे हैं भक्ति, मुक्ति एवं आत्मज्ञान (ब्रह्मज्ञान)। नारी के संसर्ग में रहकर इन तीनों की प्राप्ति असम्भव है।

एक कनक अरु कांमनीं, विष फल कीएउ पाइ।
देखै ही थैं विष चढ़ै, खाँयें सूं मरि जाइ ॥११॥

एक तो स्वर्ण अर्थात् धन और दूसरे नारी ये दोनों विषाक्त फलों के समान हैं। एक को (स्त्री को) देखने से ही विष चढ़ जाता है और दूसरे (धन) को भोगने से विष चढ़ता है।

एक कनक अरु कांमनीं, दोऊ अगनि की झाल।
देखें हीं तन प्रजलै, परस्याँ ह्वैं पैमाल ॥१२॥

झाल=लपट। पैमाल=नष्ट होना।

स्त्री और स्वर्ण (धन) दोनों ही अग्नि की प्रज्वलित लपटों के समान हैं, इनको देखने मात्र से शरीर जलने लगता है एवं स्पर्श करते ही मनुष्य नष्ट हो जाता है।

कबीर भग की प्रीतड़ी, केते गए गडंत।
केते अजहूँ जाइसी, नरकि हसंत हसंत ॥१३॥

कबीर कहते हैं कि स्त्री-सम्भोग के सुख से विनष्ट होकर न जाने कितने लोग कब्र में गढ़ गये, नष्ट हो गये। किन्तु फिर भी संसार इससे सावधान

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नहीं होता और आज भी कितने ही मनुष्य (अधिकांश) हंसते-हंसते
मार्ग को अपनाते हैं।

जोरू जूठणि जगत की, भले बुरे का बीच।
उत्यम ते अलगे रहैं, निकटि रहैं तें नीच ।।१४।।

जोरू=पत्नी, किन्तु यहाँ 'नारी' सामान्य जातिवाचक से
है। उत्यम=उत्तम, श्रेष्ठ।

स्त्री समस्त सांसारिक विषयों की जूठन है। यही व्यक्ति के भले-बुरे
भेद बताती है। जो इससे दूर रहते हैं वे ही श्रेष्ठ हैं और जो इसके संसर्ग
रहते हैं वे नीच हैं।

नारी कुंड नरक का, बिरला थंभै बाग।
कोइ साधू जन ऊबरै, सब जग मूवा लाग ।।१५।।

थंभै=थामना, पकड़ना, रोकना। बाग=लगाम।

नारी-संसर्ग नरक के कुण्ड के समान यातनामय एवं घृणास्पद है।
विरला मनुष्य ही अपने मन रूपी अश्व की लगाम को उधर जाने से रोक
है। ऐसी मनःसाधना कोई-कोई साधु ही कर पाता है अन्यथा समस्त
उसके सम्पर्क से नष्ट हो मृत्यु को प्राप्त हो रहा है।

सुंदरि थै सूली भली, बिरला बंचै कोइ।
लोह निहाला अगनि मैं, जलि बलि कोइला होय ।।१६।।

निहाला=डालना।

कबीर कहते हैं कि नारी से तो शूली (मृत्यु) अच्छी है। इसके
प्रभाव से तो कोई बिरला ही बच पाता है। जिस प्रकार लोहे जैसे
पदार्थ को भी अग्नि जलाकर कोयला बना देती है, उसी भांति चाहे
कितना दृढ़ चरित्र व्यक्ति क्यों न हो नारी सबको भ्रष्ट कर देती है।

अंधा नर चेतै नहीं, कटै न संसै सूल।
और गुनह हरि बकससी, कांमीं डाल न मूल ।।१७।।

अन्धा=अज्ञानान्ध। संसय=संशय। गुनह=गुनाह, दोष,
डाल न मूल=न तो उसकी शाखा रहती है और न जड़ अर्थात् पूर्ण
नष्ट हो जाता है।

अज्ञानान्ध व्यक्ति संसार का नाश होता देख भी सावधान नहीं
(वह विषय-वासना में ही फंसा रहता है) इसीलिए उसका क्लेश एवं
विनष्ट नहीं होता। संसार कहता है कि प्रभु नामस्मरण से सब कुछ क्षमा
देता है किन्तु प्रभु सब दोष एवं पाप अवश्य नष्टकर देते हैं लेकिन केवल
पुरुष को वे नहीं छोड़ते उसका तो सर्वस्व नष्ट कर देते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भगति बिगाड़ी काँमियां, इंद्री केरै स्वादि।
हीरा खोया हाथ थैं, जनम गँवाया बादि ॥१८॥

काँमियाँ=कामीजनों ने। केरै=के। बादि=व्यर्थ।

कामी पुरुषों ने इन्द्रिय-रसों के स्वाद में पड़कर भक्ति मार्ग का नाश कर दिया अर्थात् वे भक्ति से विचलित हो गये। उन्होंने प्रभु-भक्ति रूपी अमूल्य हीरा अपने हाथ से खो विषय-वासना के फेर में पड़कर अपना जीवन व्यर्थ नष्ट कर दिया।

विशेष—(१) रूपक अलंकार। (२) कबीर ने मानव-जन्म का एकमात्र उद्देश्य, काम्य, प्रभु-भक्ति को ही माना है।]

कामीं अमीं न भावई, बिषई कौं ले सोधि।
कुबधि न जाई जीव की, भावै स्यंभ रहौ प्रमोधि ॥१९॥

अमीं=अमृत। स्यंभ=शम्भु, ईश्वर से तात्पर्य।

कामी पुरुष को भक्तिरूपी अमृत रुचिकर नहीं लगता वह तो इन्द्रियों के विषयों की ही खोज में रहता है (या विषयों को ही खोज लेता है) चाहे स्वयं प्रभु आकर कामान्ध जीव को समझावें किन्तु उसकी दुर्मति नहीं जा सकती।

विषै बिलंबी आत्माँ, ताका मजकण खाया सेधि।
ग्यांन अंकुर न ऊगई, भावै निज प्रमोध ॥२०॥

विलम्बी=संलिप्त। मजकण=मज्जा (हड्डी के भीतर एक तत्व) का कण, सारतत्व से तात्पर्य। प्रमोध=प्रबोध।

विषय-संलिप्त आत्मा के सारतत्व को विषय-प्रवृत्ति इस प्रकार खा जाती है जैसे अन्नकण में से घुन (एक कीड़ा विशेष) उसका सार-सार खा जाता है, फिर यह दाना बोने पर अंकुर के रूप में नहीं फूटता, उसी प्रकार विषयी पुरुष के खोखले अस्तित्व में ज्ञान का अंकुर नहीं उपजता—सामान्य गुरु की तो बात ही क्या चाहे स्वयं प्रभु उसे समझावें।

विषै कर्म की कंचुली, पहरि हुआ नर नाग।
सिर फोड़ै सूझै नहीं, को आगिला अभाग ॥२१॥

सिर फोड़ै=भरसक प्रयत्न करने पर भी।

विषय-वासना से परिचालित कर्मों की केंचुली को धारण कर मनुष्य उसी प्रकार अंधा हो गया है जिस भांति सर्प केंचुली धारण करने पर अंधा हो जाता है। सिर पटक-पटक कर प्रयत्न करने पर भी सर्प निर्मोक से ढका होने पर आत्म-स्वरूप को नहीं देख पाता, इसी भांति विषयान्ध भरसक प्रयत्न

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करने पर भी आत्मस्वरूप—प्रभु—को नहीं जान पाता। न जाने यह उस कौन सा पूर्वकृत अभाग्य है ?

कामीं कदे न हरि भजै, जपै न केसौ जाप।
रांम कह्यां थैं जलि मरै, को पूरिबला पाप ॥२२॥

कदे=कभी। केसौ=केशव, प्रभु।

कामी पुरुष कभी भी प्रभु का भजन नहीं करता, वह हरि नाम लेता नहीं है। न जाने यह उसके पूर्वजन्म के कौन से पापों का फल है कि वह राम कहते ही जल मरता है अर्थात् जब वह दूसरों से प्रभु-नाम सुनता है तो अ हो जाता है।

कांमीं लज्या नां करै, मन मांहै अहिलाद।
नींद न मांगै सांथरा, भूष न मांगै स्वाद ॥२३॥

अहिलाद=आल्हाद। सांथरा=शय्या। भूष=भूख।

कामी मनुष्य अपने कुकृत्यों पर लज्जित नहीं होता, अपितु इन्द्रिय से तृप्ति हो जाने पर वह मन ही मन आल्हादित होता है। जिस प्रक निद्राभिभूत व्यक्ति शैया नहीं चाहता कहीं भी पड़कर सो जाता है; जिस प्र भूखा व्यक्ति स्वाद नहीं देखता जो मिल जाता है खा लेता है उसी भांति का सदासद् विवेक का परित्याग किये रहता है।

विशेष (१) उदाहरणमाला अलंकार।

नारि पराई आपणीं, भुगत्या नरकहिं जाइ।
आगि आगि सबरौ कहै, तामैं हाथ न बाहि ॥२४॥

भुगत्या=भोग करने पर। बाहि=डाल।

दूसरे की स्त्री का अपनी पत्नी के समान भोग करने से मनुष्य नरक होता है। हे मनुष्य ! जिस नारी को समस्त (श्रेष्ठ) संसार ने अग्नि कहकर घातक बताया है तू उसी अग्नि में अपना हाथ मत जला।

कबीर कहता जात हौं, चेतै नहीं गँवार।
वैरागी गिरही कहा, कामी वार न पार ॥२५॥

कबीर कहते हैं कि मैं संसार-हित के लिए निरन्तर नारी के अव की चर्चा करता आ रहा हूं किन्तु फिर भी मूर्ख लोग सावधान नहीं हो क्या वैरागी और क्या गृहस्थ दोनों में कामीजनों का अभाव नहीं है।

ग्यांनी तौ नींडर भया, मांनैं नांहीं शंक।
इन्द्री केरे बसि पड़्या, भूंचै बिषै निसंक ॥२६॥

शक=शंका।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जिसे यत्किंचित् ज्ञान है वह तो अपने को ज्ञानी समझ कर अपने आचरण के विषय में पूर्ण निश्शंक हो गया। भला वह ज्ञानी कैसा जो इन्द्रियों के वश में पड़कर पूरी तरह से विषयों का भोग कर रहा है। भाव यह है कि ज्ञान के लिए विषय-वासना-परित्याग आवश्यक है।

ग्यांनी मूल गँवाइया, आपण भये करता।
ताथैं संसारी भला, मन मैं रहै डरता ॥२७॥४०४॥

ज्ञानी व्यक्ति ने अपने को जगत् का कर्ता समझ कर अपनी मूल सम्पत्ति अर्थात् सामान्य बुद्धि भी गंवा दी। उससे तो श्रेष्ठ सामान्य सांसारिक व्यक्ति है जो मन में प्रभु से डरता हुआ अपने आचरण के प्रति सचेत रहता है।

—०—

२१. सहज कौ अंग

कबीर के समय तक नाथों आदि में सिद्धों की 'सहज-साधना' की दुहाई दी जाती थी किन्तु अब यह सहज-साधना विकृत होकर पंच-मकारों के सेवन एवं उन्मुक्त विलास में ही सीमित रह गई थी, साधक केवल 'सहज-साधना' का नाम लेते थे किन्तु पालन नहीं करते थे। कबीर इस बाह्याडम्बर एवं मिथ्याचरण को कैसे सहन कर सकते थे? वे यहां 'सहज-साधना' का वास्तविक स्वरूप बताते हैं।

'कबीर-बीजक' में 'सहजध्यान' का अर्थ इस प्रकार दिया है—

"सद्गुरु के बताये हुए रहस्य से निज लक्ष्य में ध्यान लगाने को सहज ध्यान या सहज-समाधि कहते हैं। इस ध्यान में किसी प्रकार के बाह्याडम्बर (आसन, मुद्रा आदि) की आवश्यकता नहीं पड़ती है।"

सहल सहज सबको कहै, सहज न चीन्हैं कोइ।
जिन्ह सहजैं विषिया तजी, सहज कहीजै सोइ ॥१॥

कबीरदास कहते हैं कि सब व्यर्थ 'सहज-सहज' की दुहाई देते हैं किंतु वास्तविकता यह है कि सहज को कोई नहीं जानता। जिसने अपने स्वभाव से विषय-वासनाओं का परित्याग कर दिया अथवा जिसने सुगमतापूर्वक विषय-लालसा का परित्याग कर दिया, उसी को 'सहज-साधक' कहा जा सकता है।

सहज सहज सबको कहै, सहज न चीन्हें कोइ।
पाँचू राखै परसती, सहज कहीजै सोइ ॥२॥

सब व्यक्ति 'सहज' की 'सहज-साधना' की पुकार लगाते हैं किन्तु उसे वास्तविक अर्थों में पहचानता कोई नहीं। कबीर के दृष्टिकोण से जो व्यक्ति

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पांचों इन्द्रियों को अपने आधीन, अपने नियन्त्रण में रखे, उसे ही 'सहज-साधक' कहा जा सकता है।

सहजैं सहजैं सब गए, सुत बित कांमणि कांम।
एकमेक ह्वै मिलि रह्या, दासि कबीरा रांम॥३॥

सहज-सहजै=शनैः शनैः। बित=वित्त।

कबीर कहते हैं कि संसार में धीरे-धीरे सम्पत्ति, पुत्र, पत्नी सब कुछ विनष्ट हो जाता है। भक्त कबीर (अपनी भक्ति के कारण ही) उस प्रभु से मिलकर एकाकार हो गया।

सहज सहज सबको कहै, सहज न चीन्हैं कोइ।
जिन्ह सहजैं हरिजी मिलै, सहज कहीजै सोइ॥४॥४०८॥

संसार में सब सहज-सहज पुकारते हैं किन्त वास्तविक 'सहज' (प्रभु) को कोई नहीं पहचान सका। जिस व्यक्ति को सुगमता से प्रभ मिल जाय वही 'सहज-साधक' है।

—०—

२२. सांच कौ अंग

कबीर पूंजी साह की, तूं जिनि खोवै ष्वार।
खरी बिगूचनि होइगी, लेखा देती बार॥१॥

साह=साहू, धन देने वाला श्रेष्ठी। ष्वार=वेकार, व्यर्थ। खरी=खड़ी, उपस्थित। बिगूचनि=आफत। लेखा=हिसाब।

कबीर कहते हैं कि हे मनुष्य! तू उस ईश्वर रूपी श्रेष्ठी का दिया हुआ जीवन धन व्यर्थ नष्ट मत कर। अन्यथा जिस दिन वह इसके कर्मों का हिसाब लेगा तब बड़ी आफत खड़ी हो जायगी।

विशेष—जब कोई व्यक्ति पूंजीपति से पूंजी उधार लेता है किन्तु उसका समय पर भुगतान नहीं कर पाता, क्योंकि उसने ठीक प्रकार से धन को नहीं किया जिससे मूल लौट आता, तो उसकी बड़ी दुर्दशा होती है। पूंजीपति की धमकियाँ और न जाने क्या-क्या उससे सुननी पड़ती हैं। इसी का रूपक कबीर ने जीवन धन और प्रभु से दिया है।

लेखा देणां सोहरा, जे दिल साँचा होइ।
उस चंगे दीवांन मैं, पला न पकड़ै कोइ॥२॥

लेखा=हिसाब। सोहरा=अच्छा, भला। चंगे=श्रेष्ठ। दीवांन=दरबार। पला=पल्ला, दामन, वस्त्र का छोर।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यदि तुम्हारा मन सच्चा है और सत्य भावना से प्रेरित होकर ही समस्त कर्म किये हैं तो प्रभु को कर्मों का हिसाब देने में आनन्द आयेगा, प्रसन्नता होगी। उस सत्यता के कारण ही प्रभु के उस श्रेष्ठ दरबार में तुम्हारा कोई दामन नहीं पकड़ सकता, कोई तुममें कुछ कमी नहीं निकाल सकता।

कबीर चित चमंकिया, किया पयाना दूरि।
कांइथि कागद काढ़िया, तब दरिगह लेखा पूरि ॥३॥

चमंकिया=चमत्कृत हुआ, आनन्दित हुआ। पयाना=प्रयाण। दूरि=अदृश्य लोक को। काइथि=कायस्थ, चित्रगुप्त से तात्पर्य। दरिगह=दरबार।

कबीर कहते हैं कि जब भरे दरबार में ईश्वर के लेखा-नियन्त्रक चित्रगुप्त ने मेरे कर्मों का हिसाब निकाला तो वह पूर्ण निकला। मेरी आत्मा इससे प्रसन्न हो गयी एवं उसने दूर देश के लिए प्रयाण किया। भाव यह है कि कबीर अपने सत्कर्मों के कारण ही जीवनमुक्त हो गया।

काइथि कागद काढ़िया, तब लेखै वार न पार।
जब लग सांस सरीर मैं, तब लग रांम सँभार ॥४॥

जब जीवनोपरान्त चित्रगुप्त तेरे कर्मों का हिसाब निकालकर देखेगा तो तेरे कुकर्मों, पापों का कोई वार-पार नहीं होगा, वे असीम होंगे। अतः तू शरीर में जब तक प्राण हैं राम-नाम जप जिससे समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं।

यहु सब झूठी बंदिगी, बरियां पंच निवाज।
साचै मारै झूठ पढि, काजी करै अकाज ॥५॥

बंदिगी=अर्चना, पूजा।

हे काजी! तू दिन में पांच-पाँच बार नमाज पढ़ता है यह पूजा तो निरर्थक है क्योंकि तू सर्वदा सत्य को नष्ट कर झूठी प्रार्थना को महत्व देता है, तू ऐसा निन्दनीय कर्म क्यों करता है? भाव यह है कि काजी! तेरी पूजा-प्रार्थना सत्याश्रित होनी चाहिए, तू नमाज की उन आयतों का पालन करे तभी पूजा सच्ची है।

कबीर काजी स्वादि बसि, ब्रह्म हतै तब दोइ।
चढि मसीति एकै कहै, दरि क्यूं साचा होइ ॥६॥

हतै=मारता है, वध करता है। मसीति=मस्जिद। एक=ब्रह्म एक ही है, खुदा एक ही है। दरि=दरबार, प्रभु का दरबार।

कबीर कहते हैं कि काजी का ढोंग तो देखो कि जब वह रसना के स्वाद-वश हो जीव की हत्या करता है तब सोचता है कि यह जीव (बकरा, गौ आदि)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और ब्रह्म द. हैं किन्तु मस्जिद में अजान लगाते समय यही कहता है कि ... एक है। भला ईश्वर के दरबार में यह किस प्रकार सच्चा कहला सकता है।

विशेष—मस्जिद में अजान लगाते समय "या अल्लाह लिल्लाह... अ अ अ" की जो ध्वनि की जाती है उसका अर्थ यही है कि खुदा एक है (... सर्वव्यापक है)।

काली मुलां भ्रंमियां, चल्या दुनीं कै साथि।
दिल थैं दींन बिसारिया, करद लई जब हाथि ॥७॥

भ्रमिया=भ्रमग्रस्त। दुनीं=दुनिया, संसार की स्वाभाविक गति, ... विषय-वासना में ही पड़ा हुआ है। दीन=धर्म। बिसारिया=विस्मृत ... दिया। करद=कटार।

कबीर कहते हैं कि यह काजी और मुल्ला दोनों ही माया-भ्रम में, ... में पड़े हुए हैं। यह अपने धर्म (कि ईश्वर एक है) की हृदय से पूर्ण... विस्मृति कर देते हैं जब जीव-वध के लिये कटार हाथ में लेते हैं।

जोरी करि जिबहै करैं, कहते हैं ज हलाल।
जब दफतर देखैगा दई, तब ह्वैगा कौंण हवाल ॥८॥

जोरी करि=बलपूर्वक। जिबहै=वध। दफतर=हिसाब से तात्पर्य ... दई=प्रभु। हवाल=रक्षक।

मुसलमानों पर व्यंग्य करते हुए कबीर कहते हैं कि ये बलपूर्वक जीव ... प्राण ले लेते हैं और उसे बड़े गौरव से 'हलाल' कहते हैं। किन्तु इनको ... पता चल जायेगा, जब ईश्वर इनके कर्मों का हिसाब देखकर कुकर्मों का ... देगा तब कौन रक्षा करेगा?

विशेष—मुसलमान 'मांस' के दो प्रकार बताते हैं—एक हराम, ... हलाल। 'हराम' उस मांस को कहते हैं जो स्वयं मरे हुए जीव का होता है। 'हलाल' का मांस वह होता है जिसमें वह जीव को स्वयं अपने हाथ से ... मार देते हैं, इसी का खाना श्रेष्ठ माना जाता है।

जोरी कीयां जुलम है, मांगै न्याव खुदाइ।
खालिक दरि खूनी खड़ा, मार मुहे मुहिं खाइ ॥९॥

खालिक=ईश्वर। दरि=द्वार।

जीव-वध में इस प्रकार बल-प्रयोग करना भारी अपराध है। ईश्वर ... तुमसे सब जीवों के प्रति न्याय-दया चाहता है। जब ईश्वर के द्वार पर ... खूनी खड़ा होगा तो इसके मुख पर तावड़-तोड़ प्रहार किए जायेंगे, ... वैसी ही यातना दी जायेगी, जैसी यह निरीह जीव को देता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सांई सेती चोरियां, चोरां सेती गुझ।
जांणैंगा रे जीवड़ा, मार पड़ैगी तुझ ।।१०।।

साईं=प्रभु। सेती=से। गुझ=मित्रता। जीवड़ा=जीवात्मा।

प्रभु से तू चोरी करता है और जो काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह आदि विषयों के चोर हैं उनसे तू मित्रता रखता है। तेरे इस विपरीत आचरण के कारण जब तुझे प्रभु दण्ड देंगे तभी तेरी बुद्धि ठिकाने आयेगी।

सेष सबूरी बाहिरा, क्या हज काबै जाइ।
जिनकी दिल स्याबति नहीं, तिनकौं कहां खुदाइ ।।११।।

सेष=शेख। सबूरी=सब्र, सन्तोष। हज=मक्का मदीना की तीर्थ यात्रा को मुसलमान हज कहते है। काबै=काबा, मक्का में एक पत्थर जिसमें मुसलमान बड़ी श्रद्धा रखते हैं। स्याबति=पूर्ण, पक्का, सच्चा।

हे शेख! तू सन्तोष से तो बहुत दूर है फिर भला तुझे हज और काबा दर्शन से शांति कैसे मिल सकती है? जिनका हृदय सच्चा नहीं है उन्हें ईश्वर कहीं भी प्राप्त नहीं हो सकता।

खूब खांड है खीचड़ी, मांहि पड़ै टुक लूंण।
पेड़ा रोटी खाइ करि, गला कटावै कौंण ।।१२।।

खांड=खांड के समान मधुर। टुक=थोड़ा सा। लूंण=नमक।

खिचड़ी जैसे साधारण भोजन में थोड़ा सा नमक पड़ा हो, वही खांड के समान मधुर भोजन है। पेड़ा और रोटी खाकर बाद में मृत्योपरान्त अपना गला कौन कटावे।

विशेष—पेड़ा और रोटी खाकर गला कटाने की बात कबीर ने इसलिए कही कि ऐश्वर्यमय जीवन बिताने के लिये अनुचित साधन अपनाकर धनोपार्जन करना पड़ता है। इस पाप के लिये उसे मृत्यु के पश्चात् दण्ड भोगना पड़ता है। अतः इस दण्ड से बचने के लिए सादा जीवन व्यतीत करना श्रेयस्कर बताया है।

पापी पूजा बैसि करि, भषैं मांस मद दोइ।
तिनकी दष्या मुकति नहीं, कोटि नरक फल होइ ।।१३।।

बैसि करि=बैठकर। मद=मदिरा या मादक द्रव्य। दष्या=दशा। मुकति=मुक्ति, मोक्ष।

पापी लोग पूजा के नाम पर आनन्दपूर्वक बैठकर मांस और मदिरा का सेवन करते हैं। ऐसे पापियों की मुक्ति सम्भव नहीं, उन्हें करोड़ों नरकों की यातनायें भोगनी पड़ती हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विशेष—कबीर का इंगित यहां शक्तों की ओर है जो भैंसें व बकरे आदि की बलि चढ़ाकर मदिरा का सेवन करते हैं।

सकल बरण इकत्र ह्वै, सकति पूजि मिलि खांहि।
हरि दासनि की भ्रांति करि, केवल जमपुरि जांहि ॥१४॥

सकति=शक्ति।

शाक्त शक्ति की पूजा बलि देकर करते हैं और फिर समस्त वर्णों के सदस्य उसे प्रसाद रूप में ग्रहण कर खाते हैं। लोग व्यर्थ भ्रमवश अपने को प्रभु-भक्त समझते हुए नरक में जाने का मार्ग अपनाते हैं।

कबीर लज्या लोक की, सुमिरै नांही साच।
जानि बूझि कंचन तजै, काठा पकड़ै काच ॥१५॥

लज्या=लाज।

कबीर कहते हैं कि मनुष्य लोकलाजवश कुरीतियों का पालन करता एवं सत्य को विस्मृत कर देता है। इस प्रकार जान-बूझ कर वह स्वर्ण प्रभु-भक्ति का परित्याग कर कांच, मिथ्या आचरणों को अपनाता है।

कबीर जिनि जिनि जाँणियां, करता केवल सार।
सो प्रांणी काहै चलै, झूठे जग की लार ॥१६॥

जिनि-जिनि=जिन्होंने। करता=कर्ता, ब्रह्म। लार=पंक्ति।

कबीर कहते हैं कि जिन-जिन लोगों ने यह जान लिया कि इस सृष्टि में ब्रह्म ही सब कुछ है वे मोह में पड़कर इस मिथ्या संसार के अनुकूल आचरण नहीं करते।

झूठे कौं झूठा मिलै, दूणां बधै सनेह।
झूठे कूं साचा मिलै, तब ही तूटै नेह ॥१७॥४२५॥

यदि मिथ्याचारी को मिथ्याचारी ही मिल जाय तो दोनों में दुगुना प्रेम बढ़ जाता है! किन्तु यदि झूठे शिष्य को सच्चा सद्गुरु मिल जाय तो उसका संसार से प्रेम सम्बन्ध टूट जाता है और माया-मोह दूर हो जाता है।

—×—

२३. भ्रम बिधौंसण कौ अंग

पाँहण केरा पूतला, करि पूजें करतार।
इही भरोसै जे रहे, ते बूड़े काली धार ॥१॥

पांहण=पाहन, पत्थर। पूतला=मूर्ति। काली=काल की, मृत्यु की।

कैसा भ्रम है कि संसार पत्थर की मूर्ति को ईश्वर मानकर पूजते हैं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मनुष्य भी इस मूर्ति को प्रभु मानते रहे वे विनाश की काली धारा में डूब गये।

काजल केरी कोठरी, मसि के कर्म कपाट।
पाँहनि बोई पृथमीं, पंडित पाड़ी बाट ॥२॥

पृथमीं=पृथ्वी। पाड़ी=निकाली। बाट=राह, मार्ग।

पंडितों ने अपने ढोंग से समस्त पृथ्वी पर पत्थरों की मूर्तियों को प्रस्थापित कर दिया, इस पर भी वे कहते हैं कि हमने मुक्ति का मार्ग ढूंढ निकाला है। एक पाप कर यह धोखा देना ऐसा ही है जैसे काजल की कोठरी में काले कर्मों—कुकर्मों—की किवाड़ लगा देना।

पांहन कु का पूजिए, जे जनम न देई जाब।
आंधा नर आसामुषी, यौंही खोवै आब ॥३॥

जाव=जवाब, उत्तर। आंधा=अज्ञानी। आब=पानी, सम्मान।

कबीरदास कहते हैं कि भला पत्थरं को पूजने से क्या लाभ जो जीवन-पर्यन्त (चाहे कितनी भी पूजा क्यों न की जाय) कोई उत्तर नहीं देता। अज्ञानी मनुष्य विभिन्न महत्वाकांक्षाओं के वशीभूत हो पत्थर पूजकर व्यर्थ अपना आत्मसम्मान नष्ट करता है क्योंकि वह मनुष्य होकर पत्थर के सम्मुख झुकता है। अथवा वह व्यर्थ ही पत्थर पूजने में जल नष्ट करता है (किन्तु पहला अर्थ ही अधिक समीचीन है।)

हम भी पांहन पूजते, होते रन के रोझ।
सतगुर की कृपा भई, डारया सिर थैं बोझ ॥४॥

रोझ=खच्चर, गदहे के समान ही भारवाही पशु जो गधे से कुछ बड़ा एवं अधिक पुष्ट होता है।

कबीरदास कहते हैं कि जिस भांति समस्त संसार मूर्ति-पूजा कर रहा है वैसे ही हम करते और रणक्षेत्र में रसद ढोने वाले खच्चरों के समान ही जीवनभार ढोते हुए होते, किन्तु वह तो सद्गुरु की कृपा हो गई कि उसने (ज्ञानचक्षु प्रदान कर) मूर्तियों का भार सिर से उतार दिया। भाव यह है कि सद्गुरु के उपदेश ने मुझे मूर्तिपूजा के अंध-विश्वास से बचा लिया।

जेती देषौं आत्मा, तेता सालिगरांम।
साधू प्रतषि देव हैं, नहीं पाथर सू कांम ॥५॥

प्रतषि=प्रत्यक्ष।

संसार में जितने मनुष्य हैं उतनी ही शालिग्राम की मूर्तियाँ (बहुदेवोपासना पर व्यंग्य)। हे मूर्खो! साधु ही साक्षात् देवता है, पत्थर की पूजा न कर उसकी संगति करो।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सेवैं सालिगराम कूं, मन की भ्रांति न जाइ।
सीतलता सुपिनैं नही, दिन दिन अधकी लाइ ॥६॥

भ्रांति=संशय, दुख, क्लेश। अधकी=अधिक।

शालिग्राम (मूर्ति) पूजा से मन का सन्ताप दूर नहीं हो सकता। पत्थर पूजा से शान्ति तो स्वप्न में भी प्राप्त नहीं होती, दिन-प्रतिदिन हृ का दाह बढ़ता जाता है क्योंकि मनोकामना पत्थर-पूजा से पूर्ण नहीं हो असफल होने पर वेदना ही हाथ आती है।

सेवैं सालिगरांम कूं, माया सेती हेत।
वोढें काला कापड़ा, नांव धरावैं सेत ॥७॥

हेत=प्रेम। वोढ़ें=ओढें। सेत=श्वेत।

हे मनुष्य! तू प्रभु मूर्ति की तो पूजा करता है एवं माया आकर्षणों संलिप्त रहता है। तू कुकर्मों का काला वस्त्र ओढ़कर भी धर्माचारी (श्वे सेत) कहलाने की कामना करता है?

जप तप दीसैं थोथरा, तीरथ व्रत बेसास।
सूवै सैंबल सेविया, यौं जग चल्या निरास ॥८॥

थोथरा=थोथा, निस्सार, व्यर्थ। सूवै=सुआ, शुक, तोता। सैंबल सेंवल एक वृक्ष विशेष जिसका फल बड़ा आकर्षक होता है, तोता अपनी चों मारकर जब उसे फोड़ता है तो वह खोखला निकलता है, बेचारा तोता निरा हो जाता है।

कबीरदास कहते हैं कि जप-तप, तीर्थ, व्रत एवं विभिन्न देवताओं विश्वास सब निस्सार दृष्टिगत होता है। इनके ऊपर आश्रित व्यक्ति उसी प्रकार निराश होता है जैसे तोता सेंवल के फल के ऊपर आश्रित रह निराश होता है।

विशेष--अलंकार-उपमा।

तीरथ त सब बेलड़ी, सब्र जग मेल्या छाइ।
कबीर मूल निकंदिया, कौंण हलाहल खाइ ॥९॥

वेलड़ी=जंगली वेल से तात्पर्य जो अन्य वनस्पति को आच्छन्न जकड़ सा लेती है।

तीर्थ, व्रत आदि वाह्याचार सब जंगली वेल के समान हैं जो समस्त पर छाकर उसे अपने प्रभाव में किये हुए हैं। कबीर ने इस मिथ्या बाह्य रूपी लता को समूल ही नष्ट कर दिया, भला उसके विषाक्त फलों को खाता? भाव यह है कि बाह्याचार से उत्पन्न दुःखों को कौन भोगे।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मन मथुरा दिल द्वारिका, काया कासी जांणि।
दसवां द्वारा देहुरा, तामैं जोति पिछाँणि ॥१०॥

दसवां द्वारा=दशम द्वार, ब्रह्मरन्ध्र।

कवीरदास कहते हैं कि व्यर्थ इधर-उधर तीर्थों में भटकने की आवश्यकता नहीं है। मनुष्य का मन ही मथुरा है, हृदय द्वारकापुरी एवं समस्त शरीर को ही काशी जानो जिसमें ब्रह्मरन्ध्र ही मन्दिर का द्वार है, वहां अपनी शक्तियां केन्द्रित कर निरंजन पुरुष की ज्योति से साक्षात्कार करना ही श्रेय है।

विशेष—१. (अ) मथुरा=भगवान् कृष्ण की जन्म-भूमि, वहीं उन्होंने कंस का संहार किया, हिन्दुओं का तीर्थ स्थल।

(ब) द्वारिका—भगवान् कृष्ण का मथुरा के पश्चात् निवास स्थान। 'कवीर बीजक' में इसका उल्लेख इस प्रकार है—

द्वारावती—"यहां श्री कृष्णचन्द्र जरासंध के उत्पातों के कारण मथुरा छोड़ कर जा बसे थे। यहीं उस समय यादवों की राजधानी थी। पुराणों में लिखा है कि कृष्ण के देह-त्याग के पीछे द्वारावती समुद्र में मग्न हो गई। पोरवन्दर से १५ कोस दक्षिण समुद्र में इस पुरी का स्थान लोग अब तक बताते हैं। द्वारावती का एक नाम द्वारिका है।

(स) कासी=काशी, हिन्दुओं का प्राचीन तीर्थ स्थल। हठयोगी साधकों का विशेष रूप से गढ़ रहा है।

(२) जोति पिछांणि=हठयोगी साधक मानते हैं कि ब्रह्म द्वार के भीतर परम पुरुष की ज्योति प्रकाशित होती रहती है, साधक को उसी से साक्षात्कार करना चाहिए। इसे 'निरञ्जन ज्योति' भी कहा जाता है जिसका अर्थ निरंजन पुरुष की ज्योति है।

कबीर दुनियां देहुरै, सीस नवांवण जाइ।
हिरदा भीतरि हरि बसै, तूं ताही सौं ल्यौ लाइ ॥११॥४३६॥

देहुरे=मन्दिर।

कबीर कहते हैं कि साधक संसार मन्दिर में जाकर पूजा करने का व्यर्थ उपक्रम करता है। प्रभु तो हृदय के भीतर निवास करते हैं तू उसी में अपनी वृत्तियों को केन्द्रित कर प्रभु प्राप्ति का प्रयत्न कर।

—०—

RajGuru Math, Shivala, Varaṇasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

२४. भेष कौ अंग

कर सेती माला जपै, हिरदै बहै डंडूल।
पग तौ पाला मैं गिल्या, भाजण लागी सूल ॥१॥

डडूल=आंधी या बवंडर। पाला=हिम। गिल्या=गल जाना। सूल=शूल वेदना।

हे ढोंगी ! तू हाथ से तो माला फेरता है अर्थात् वाह्य प्रदर्शन द्वारा भक्तात्मा होने का स्वांग भरता है वैसे तेरे हृदय में विषय-वासनाओं का बवंडर खड़ा रहता है। अब इस विषय-वासना में पड़े रहकर अपना पैर गला दे, तू यह समझे कि इससे वेदना दूर हो जायेगी तो यह मूर्खता होगी।

कर पकरैं अंगुरी गिनें, मन धावै चहुँ वोर।
जाहि फिरांयां हरि मिलै, सो भया काठ की ठौर ॥२॥

गिनैं=गिनना, गणना करना। वोर=ओर। फिरांयां=वृत्ति दूसरी ओर करने से। काठ की ठौर=काष्ठवत् जड़ जिस पर उपदेश आदि का कुछ प्रभाव ही नहीं पड़ता।

हे ढोंगी ! तू हाथ में माला ले कर अंगुलियों से उसकी मनकाओं को गिनता रहता है और तेरा मन अन्यत्र भटकता रहता है। जिस मन को संसार से विमुख कर प्रभु-भक्ति में लगाने से प्रभु मिलते वह मन तो वाह्याचारों एवं विषय-वासनाओं में पड़कर काष्ठवत् जड़ हो गया है, अब प्रभु-भक्ति किस द्वारा की जाय।

माला पहरैं मनमुषी, ताथैं कछू न होइ।
मन माला कौं फेरतां, जुग उजियारा सोइ ॥३॥

मनमुषी=एक प्रकार की माला का नाम।

हे साधक ! तू इस (काष्ठ की) माला को व्यर्थ घुमा रहा है, इससे लाभ नहीं होने का। यदि तू मन रूपी माला को फेर दे, मन को … जन्य आकर्षणों एवं विषय-वासना से परिपूर्ण संसार से हटा कर प्रभु … में लगा दे, तो इहलोक और परलोक दोनों प्रकाशित हो जायेंगे।

विशेष—रूपक अलंकार।

माला पहरे मनमुषी, बहुतैं फिरैं अचेत।
गाँगी रोलै बहि गया, हरि सूं नांहीं हेत ॥४॥

अचेत=असावधान, अज्ञानी। गांगी=गंगा के। रोलै=धारा, प्र… हेत=प्रेम, भक्ति।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस संसार में मनमुखी माला धारण कर घूमने वाले अज्ञानी बहुत से हैं। जिन्होंने प्रभु से प्रेम नहीं किया वे तो ऐसे ही हैं जैसे कोई गंगा के पास स्नान के लिए आकर उसके प्रवाह में बह जाय।

कबीर माला काठ की, कहि समझावै तोहि।
मन न फिरावै आपणां, कहा फिरावै मोहि ।।५।।

कबीर कहते हैं कि हे साधक ! यह काष्ठ की जड़ माला तुझे समझाती है कि मुझे फिराने से क्या लाभ, अपना मन संसार की ओर से फिरा कर प्रभु भक्ति की ओर क्यों नहीं करता। भाव यह है कि साधक ! माला फिराना सच्ची साधना नहीं, संसार से चित्तवृत्तियों को हटा प्रभु में केन्द्रित करना ही सच्ची भक्ति है।

कबीर माला मन की, और सँसारी भेष।
माला पहर्यां हरि मिलै, तौ अरहट कै गलि देष ।।६।।

भेष=दिखावा, प्रदर्शन मात्र। अरहट=रहट, पानी निकालने वाला कुएं में लगा हुआ सिंचाई का एक यन्त्र विशेष जिसमें बाल्टियों की माला होती है।

कबीर कहते हैं कि वास्तविक माला तो मन की ही है जिसे संसार से फिराकर प्रभु-भक्ति में लगाना है और सब मालाएं (मनमुखी, चन्दनादि की) तो सांसारिक, बाह्य, प्रदर्शनमात्र हैं। यदि माला के धारण करने से ही प्रभु-प्राप्ति हो जाती हो तो रहट को भी प्रभु-प्राप्ति हो जाती।

माला पहर्यां कुछ नहीं, रुल्य मूवा इहि भारि।
बाहरि ढोल्या हींगलू, भीतरि भरी भँगारि ।।७।।

रुल्य=दबा कर। मूवा=मरना। ढोल्या=ढोने, भार ढोने से तात्पर्य। हींगलू=भगवा रंगे हुए चोले, जिन्हें साधु धारण करते हैं। भंगारि=विषय-वासनाओं की गन्दगी।

माला धारण करने से प्रभु-भक्ति सिद्ध नहीं होती, व्यर्थ शरीर ही इसके भार से दबकर मरता है। हे साधक ! इस बाह्य वेश-भूषा के आडम्बर से साधु बनने से क्या लाभ, तेरे मन में तो विषय-विकारों की गन्दगी भरी हुई है।

माला पहर्यां कुछ नहीं, काती मन कै साथि।
जब लग हरि प्रगटै नहीं, तब लग पड़ता हाथि ।।८।।

काती=माया-आकर्षणों की कतरनी, कतर-ब्यौंत।
जब तक मन विषय-वासना के क्षेत्र में कतरब्यौंत करता रहेगा तब तक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

माला पहन प्रभु भक्ति का आडम्बर करने से क्या लाभ। माला की मनकों पर तो हाथ तभी तक पड़ता है जब तक प्रभु दिखायी नहीं देते, क्योंकि प्रेममय स्वरूप के सम्मुख इन बाह्य-मिथ्याचारों का अस्तित्व कहाँ?

माला पहर्यां कुछ नहीं, गांठि हिरदा की खोइ।
हरि चरनूं चित राखिये, तौ अमरापुर होइ ॥९॥

गांठि=माया जनित द्वैत भावना। अमरापुर=अमरपुरी, कबीर का तात्पर्य मुक्तात्माओं के लोक से है।

साधक! माला धारण करने से क्या लाभ, तू अपने हृदय के मायाजन्य द्वैत को दूर कर दे। यदि तू प्रभुचरणों में अपना चित्त लगाये रखे निश्चय ही मुक्तात्माओं के लोक में पहुंच जायगा।

माला पहर्यां कुछ नहीं, भगति न आई हाथि।
माथौ मूंछ मुंडाइ करि, चल्या जगत कै साथि ॥१०॥

माला धारण करने से कोई लाभ नहीं, उससे भक्ति की प्राप्ति सम्भव नहीं। हे साधक! तू शीश और मूंछ मुंडवा कर ढोंगी के समान साधु होने का स्वांग करता है भला—

"मूंड़ मुंड़ाये हरि मिलैं, तो सब कोइ लेय मुंडाय"

सांईं सेंती सांच चलि, औरां सूं सुध भाइ।
भावै लंबे केस करि, भावै घुरड़ि मुड़ाइ ॥११॥

साँच चलि=सच्चा आचरण कर। सुध भाई=सुधिपूर्वक, और निष्कपट व्यवहार। भावै=रुचिकर हो।

हे मनुष्य प्रभु के प्रति अपने कर्तव्य का पालन कर एवं अन्य प्राणियों से भी सरल और निष्कपट व्यवहार रख, साधु होने के लिए पर्याप्त एवं वांछनीय है। इतना करने के पश्चात् फिर चाहे तो लम्बे केश धारण कर जटा बनाओ या सिर मुंडा कर रहो उससे कोई अन्तर नहीं पड़ते।

केसों कहा बिगाड़िया, जे मूंडै सौ बार।
मन कौं काहे न मूंडिए, जामैं बिषै बिकार ॥१२॥

कबीरदास कहते हैं कि भला इन बालों ने क्या अहित किया जो इनको बारम्बार मुंडा देता है। तू अपने मन को विषय विकारों के मैल से हटाकर स्वच्छ क्यों नहीं करता? यह मन ही तो विषय वासनाओं का घर है।

मन मैवासी मूंडि ले, केसौं मूंडै कांइ।
जे कुछ किया सु मन किया, केसों कीया नांहि ॥१३॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मैवासी=मदमस्त या डाकू ।

हे साधु ! तू बारम्बार शीश क्यों मुंडाता है मन रूपी डाकू को क्यों नहीं मुंडता, स्वच्छ करता । जो कुछ भी पाप कर्म किये हैं वे मन ने किये हैं, केशों ने नहीं ।

मूंड मुंडावत दिन गए, अजहूँ न मिलिया राम ।
रांम नांम कहु क्या करै, जे मन के औरै कांम ॥१४॥

दिन गए=आयु का समय व्यतीत हो चला ।

शीश मुंडाते-मुंडाते आयु व्यतीत हो गई किन्तु आज तक प्रभु दर्शन नहीं हुए। लोग कहते हैं कि राम-नाम से भी शान्ति प्राप्त न हुई, भला बताइये कि राम-नाम के जिह्वा से उच्चारण मात्र से क्या हो सकता है, मन तो अन्य आकर्षणों में उलझा रहता है ।

स्वांग पहरि सोरहा भया, खाया पीया षूंदि ।
जिहि सेरी साधू नीकले, सो तौ मेल्ही मूंदि ॥१५॥

स्वांग पहरि=चमक-दमकपूर्ण बाह्य वेश-भूषा । सोरहा=सुन्दर । षूंदि=कूद-कूद कर, आनन्दपूर्वक । सेरी=गली, मार्ग । मेल्ही मूंदि=बन्द कर ली ।

हे मनुष्य ! चमक दमक पूर्ण बाह्य वेश-भूषा धारण कर आनन्दपूर्वक खाने पीने में ही मदमस्त बना रहा । हे मूर्ख ! अपने इस व्यवहार से तूने अपने लिए उस मार्ग को बन्द कर लिया जिस पर साधुजन संचरण करते हैं ।

बैसनौं भया तौ कां भया, बूझा नहीं बबेक ।
छापा तिलक बनाइ करि, दगध्या लोक अनेक ॥१६॥

बैसनौं=वैष्णव । बूझा=प्राप्त किया । बबेक=ज्ञान । दगध्या=जल चुका है, दुखित हो चुका है ।

छापा-तिलक आदि लगाकर यदि तूने वैष्णव वेष धारण कर लिया तो उससे क्या लाभ ? इस वाह्याडम्बर को धारण कर (हृदय में प्रभु प्रेम न होने पर) संसार से मुक्त नहीं हुआ वह सांसारिक तापों से दग्ध होता रहा । भाव यह है कि वाह्याकार, वेषभूषा, प्रधान नहीं हैं, वैष्णव का सच्चा गुण प्रभु भक्ति, आन्तरिक प्रेम ही है ।

तन कौं जोगी सब करैं, मन कौं बिरला कोइ ।
सब बिधि सहजै पाइए, जे मन जोगी होइ ॥१७॥

कबीरदास कहते हैं कि वाह्याडम्बर से शरीर को तो सब योगी बना सकते हैं किन्तु मन को संसार से विरक्त कर योगी बनाना बिरलों के लिए

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ही सम्भव है। जिसका मन योगी होता है उसे सब सिद्धियां स्वयं प्राप्त जाती हैं।

विशेष—मन को संसार से विरक्त कर समस्त सिद्धियां प्राप्त करने की बात कबीरदास जी ने इसलिये कही है कि संसार से तटस्थ, निर्लिप्त मन भक्ति में लगेगा, और प्रभु-भक्ति समस्त सिद्धि की दाता है ही अतः भक्ति कबीर का प्रमुख सम्बल है।

कबीर यहु तौ एक है, पड़दा दीया भेष।
भरम करम सब दूरि करि, सबही माँहि अलेष ॥१८॥

कबीरदास जी कहते हैं कि आत्मा और परमात्मा एक है, माया आवरण के कारण ही संसार में जीव और ब्रह्म की सत्ता पृथक्-पृथक् भासित होती है। द्वैत का मुख्य, एकमात्र कारण माया-आवरण ही है। जीवात्मा ! तू संसार-संशय एवं उससे परिचालित कर्मों का परित्याग कर तो तुझे सर्वत्र वह निराकार प्रभु ही दृष्टिगत होगा।

भरम न भागा जीय का, अनंतहि धरिया भेष।
सतगुर परचै बाहिरा, अंतरि रह्या अलेष ॥१९॥

भरम=भ्रम, संशय । जीय=हृदय । भेष=शरीर, जो विभिन्न जन्म-जन्मान्तरों में ग्रहण किये थे।

हे जीवात्मा ! तू संख्यातीत योनियों में भटक रहा है फिर भी तेरा संशय दूर नहीं होता। जिसे मनुष्य विभिन्न योनियों में भटक कर न पा उसी अलख ब्रह्म को सद्गुरु ने बाह्य परिचय मात्र से ही पहचान लिया।

जगत जहंदम राचिया, झूठी कुल की लाज।
तन बिनसें कुल बिनसि है, गह्यौं न रांम जिहाज ॥२०॥

जहंदम=जहन्नुम, नरक । राचिया=सृजा, बनाया है। तन= यहां जन्म से तात्पर्य ।

संसार में झूठे कुल-गौरव की प्रतिष्ठा के लिए नरक की सृष्टि है। इस शरीर, जन्म के नष्ट होते ही समस्त कुल-गौरव नष्ट हो जा इसीलिए हे मूर्ख ! तू संसार-सागर से पार जाने के लिए राम-नाम नौका का सम्बल क्यों नहीं पकड़ता ?

विशेष—रूपक अलंकार।

पष ले बूडी पृथमीं, झूठी कुल की लार।
अलष बिझायौं भेष मैं, बूडे काली धार ॥२१॥

पंष=पंक्ष। पृथमीं=पृथ्वी, संसार।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

समस्त संसार कुल-गौरव की आड़ में मिथ्या अहं का प्रदर्शन कर व्यर्थं नष्ट हो गया। बाह्य-वेषभूषा के आडम्बर में पूर्ण ब्रह्म को विस्मृत कर ढोंगी लोग काल-प्रवाह में नष्ट हो गये।

चतुराई हरि नां मिलै, ए बातां की बात।
एक निसप्रेही निरधार का, गाहक गोपीनाथ ॥२२॥

ए बातां की बात=सौ बातों की बात, सार तत्व, वास्तविकता। निसप्रेही=निस्पृह, निष्काम।

वास्तविक बात यह है कि प्रभु की प्राप्ति चतुराई (ज्ञान) से नहीं हो सकती। निस्पृह, निष्काम एवं निराश्रय भक्त को ही प्रभु अपनाते हैं।

नवसत साजे कांमनीं, तन मन रही सँजोइ।
पीव कै मनि भावै नहीं, पटम कीयें क्या होइ ॥२३॥

नवसत=नौ+सात=सोलह। साजे=शृंगार। पटम=शृंगार-सज्जा, मंडन आदि।

कामिनी यदि सोलह शृंगारों से सुशोभित हो तन मन को मुसज्जित करके प्रिय के सम्मुख जाय और तो भी प्रिय को सुन्दर न लगे तो फिर भला ऐसे शृंगार मण्डन से क्या लाभ? भाव यह है कि बाह्य-वेषभूषा का आडम्बर प्रभु को प्रसन्न नहीं कर सकता उसके लिए तो अमित प्रेम-परिपूर्ण स्वच्छ हृदय की भक्ति की ही आवश्यकता है।

विशेष—सोलह शृंगार—(१) शौच (२) उबटन (३) स्नान (४) केश-बन्धन (५) अंगराग (६) अञ्जन (७) जावक (महावर) (८) दन्त-रञ्जन (९) ताम्बूल (१०) वसन (११) भूषण (१२) सुगन्ध (१३) पुष्पहार (१४) कुंकुम (१५) भाल तिलक (१६) चिबुक-बिन्दु।

जब लग पीव परचा नहीं, कन्यां कँवारी जांणि।
हथ लेवा हौंसैं लिया, मुसकाल पड़ी पिछांणि ॥२४॥

परचा=परिचय, साक्षात्कार से तात्पर्य।

जिस भांति जब तक कुमारिका का प्रियतम से साक्षात्कार नहीं होता (चाहे विवाह हो जाय) तब तक वह कुआंरी ही कहलाती है, उसी प्रकार जब तक आत्मा का प्रभु से साक्षात्कार नहीं होता तो वह कुआंरी ही कहलाती है चाहे प्रभु-प्राप्ति के (भक्ति) मार्ग पर वह चल पड़े। जिस प्रकार वर कन्या का पाणिग्रहण तो बड़े उल्लासपूर्वक करता है किन्तु तदनन्तर जीवन की विषम परिस्थितियां अनेक कठिनाइयां उपस्थित कर देती हैं उसी भांति आत्मा प्रभु-भक्ति मार्ग पर अग्रसर तो बड़ी प्रसन्नता से हुई किन्तु बाद में साधना की विकटता उसे विचलित करती है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कबीर हरि की भगति का, मन मैं षरा उल्हास।
मैंवासा भाजै नहीं, हूंण मतै निज दास ॥२५॥

षरा=बहुत । उल्हास=उल्लास, आनन्द । मैंवासा=चोर, अहं का दर्प ।

कबीर कहते हैं कि साधक के मन में प्रभु-भक्ति का बड़ा उल्लास है किन्तु अहंदर्प रूप चोर हृदय से नहीं भागता और वह अपना प्रभाव भक्त पर डालकर उसे पथ-विचलित करना चाहता है।

मैंवासा मोई किया, दुरिजन काढ़े दूरि।
राज पियारे रांम का, नगर बस्या भरिपूरि ॥२६॥४६०॥

साधक कहता है कि मैंने अहं रूपी चोर को मार दिया है एवं काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह रूपी दुर्जनों को दूर कर दिया है। अब मेरे अन्तर बाह्य में प्रभु का ही राज्य रहता है, उसी की भक्ति से परिचालित होकर सब कार्य होते हैं।

२५. कुसंगति कौ अंग

निरमल बूंद अकास की, पड़ि गई भोमि बिकार।
मूल बिनंठा मांनवी, बिन संगति भठछार ॥१॥

भोमि=भूमि, पृथ्वी । बिनंठा=विनष्ट । मांनवी=मनुष्य । भठछार=भट्ठी की राख ।

जिस प्रकार वर्षा की निर्मल बूंद आकाश से पृथ्वी पर गिरकर विकृत हो जाती है। (गन्दले पानी के रूप में बहती है) उसी प्रकार मनुष्य सत्संगी के अभाव में समूल नष्ट हो भट्टी की राख के समान व्यर्थ हो जाता है।

मूरिष संग न कीजिए, लोहा जलि न तिराइ।
कदली सीप भवंग मुषी, एक बूंद तिहुं भाइ ॥२॥

मूरिष=मूर्ख । भवंग=भुजंग, सर्प ।

कबीर कहते हैं कि कभी भी मूर्खों का साथ नहीं करना चाहिए, जिस प्रकार लोहा जल पर नहीं तैर सकता उसी भांति ये जड़, अज्ञानी भी सद्विचारों को नहीं अपना सकते। यह संगति का ही प्रभाव है कि एक स्वाति बूंद विभिन्न संगतियों में पड़कर विभिन्न रूप धारण करती है, यदि वह केले में पड़ती है तो कपूर बनती है, सीप में पडकर मोती बन जाती है और सर्प के मुख में पड़कर विष बन जाती है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हरिजन सेती रूसणां, संसारी सूं हेत।
ते नर कदे न नीपजैं, ज्यूं कालर का खेत ॥३॥

सेती=से। रूसणां=अप्रसन्न होना। हेत=प्रेम। नीपजैं=पल्लवित होने के अर्थ में, समृद्धि से तात्पर्य। कालर=कल्लर, एक प्रकार की अनउपजाऊ कठोर भूमि, जिसे बन्जर भी कहते हैं।

जो लोग प्रभु-भक्तों से अप्रसन्न रहते हैं और संसार-बद्ध लोगों से प्रेम करते हैं वे उसी प्रकार कभी समृद्ध नहीं होते जिस प्रकार बन्जर भूमि में कुछ नहीं उगता। अथवा ऐसे लोगों में कभी भी भक्ति का आविर्भाव नहीं होता जिस प्रकार कल्लर खेत में कुछ नहीं उपजता।

विशेष—उपमा अलंकार।

मारी मरूं कुसंग की, केला कांठै बेरि।
वो हालै वो चीरिये, साषित संग न बेरि ॥४॥

कांठै=पास, समीप। बेरि=एक पेड़ विशेष जिसमें कांटे होते हैं। हालै=हिलना। चीरिये=फाड़ना। साषित=शाक्त। नबेरि=निवारण।

आत्मा प्रभु से कहती है कि मैं कुसंगति से उसी प्रकार दुखी हूं जिस प्रकार केला पास में खड़े बेरी के वृक्ष से। बेरी-वृक्ष जब पूर्ण स्वच्छन्दता से हिलता है तो उसके कांटे केले के पत्तों को चीर देते हैं उसी भांति मैं भी यहाँ शाक्तों की कुसंगति में पड़ कर दुखित हूं, अतः इन्हें दूर करो। (समाप्त कर दो)।

मेर नींसांणी मीच की, कुसंगति ही काल।
कबीर कहै रे प्रांणियां, बांणी ब्रह्म सँभाल ॥५॥

मेर=अहं। प्राणियां=प्राणी।

कबीर कहते हैं कि अहं ही मृत्यु का चिन्ह है एवं कुसंगति तो मृत्यु ही है। इसलिए हे प्राणी! तू वाणी द्वारा प्रभु भजन कर।

माषी गुड़ मैं गडि रही, पंष रही लपटाइ।
ताली पीटै सिरि धुनैं, मीठै बोई माइ ॥६॥

माषी=मक्खी। ताली पीटै=पंख फड़फड़ाती है। बोई=उत्पन्न होने के अर्थ में। माइ=माया।

कबीर कहते हैं कि आत्मा रूपी मक्खी माया रूपी गुड़ में चिपक गई है, जिस प्रकार मक्खी के पंख भी गुड़ में गड़ जाने पर वह उड़ने में असमर्थ होती है उसी भांति आत्मा भी माया में पूर्ण संलिप्त हो भवबन्धन से नहीं छूट पाती। चाहे मक्खी रूपी आत्मा कितना भी प्रयत्न करे किन्तु वह उससे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नहीं छूट सकती, माया की मधुरता में ऐसा ही आकर्षण है, जहां माया है वहां कभी न छोड़ने वाला आकर्षण अवश्य होगा।

ऊँचै कुल क्या जनमियाँ, जे करणी ऊँच न होइ।
सोवन कलस सुरै भर्या, साधूं निंद्या सोइ ॥७॥

सोवन=स्वर्ण। सुरै=मदिरा।

ब्राह्मण आदि सवर्ण हिन्दुओं पर व्यंग्य करते हुए कवीर कहते हैं कि व्यक्ति के कर्म उच्च नहीं हैं तो उच्च कुल में जन्म होने का क्या गौरव? स्वर्ण कलश भी यदि मदिरा से परिपूर्ण है तो साधुजन तो उसकी निन्दा ही करेंगे।

—×—

२६. संगति कौ अंग

देखा देखी पाकड़ैं, जाइ अपरचै छूटि।
बिरला कोई ठाहरै, सतगुर सांमीं मूठि ॥१॥

पाकड़ैं=ग्रहण करता है। अपरचै=अपरिचय, परिचय के बिना। सांमीं=सम्मुख। मूठि=मुट्ठी, पूरी शक्ति के साथ बाण प्रहार करने के अर्थ में।

दूसरे के अनुकरण पर ही प्रभु-भक्ति का मार्ग ग्रहण करना अधिक दूर तक नहीं चल पाता। भक्ति-मार्ग (प्रेम-रहस्य) से पूर्ण परिचय न होने के कारण वह छूट जाता है। सद्गुरु के उपदेश रूपी पूर्ण शक्ति से छोड़े गये बाण के सम्मुख प्रभु-भक्ति मार्ग से अनभिज्ञ साधक ठहर नहीं पाता।

देखा देखी भगति है, कदे न चढई रंग।
बिपति पड़्या यूं छाड़सी, ज्यूं कंचुली भवग ॥२॥

कदे=कभी भी।

देखा देखी, अनुकरण मात्र से ही (हृदय में प्रेम न होने पर) कभी सच्ची भक्ति नहीं हो सकती। साधना मार्ग में जब विकट स्थिति आती है ऐसे कच्चे साधक-भक्ति को क्षण भर में ऐसे ही त्याग देते हैं जैसे सर्प केंचुल को। भाव यह है कि उनके लिए भक्ति बाहर से लादा हुआ एक निर्मोक होती है, हृदय के सहज प्रेम से उद्भूत नहीं।

करिए तौ करि, जांणिये, सारीषा सूं संग।
लीर लीर लोई थई, तऊ न छाड़ै रंग ॥३॥

सारीषा=अपने समान। लीर-लीर=टुकड़े-टुकड़े। लोई=एक प्रकार का वस्त्र-विशेष। थई=हो गई।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जिससे प्रेम करना है उसे बिलकुल अपने समान ही बना लो जिससे दोनों मिलकर एकमएक हो जायें। लोई को देखो उसने रंग को अपने में कसे मिला लिया है कि चीर चीर होकर फट जाने पर भी वह अपना रंग नहीं छोड़ती।

यहु मन दीजै तास कौं, सुठि सेवग भल सोइ।
सिर ऊपरि आरास है, तऊ न दूजा होइ ॥४॥

तास कौं=उसको। सेवग=सेवक। आरास=बढ़ई के पास लकड़ी चीरने का एक औजार, यहां विपत्तियों से तात्पर्य है।

कबीर कहते हैं कि आप अपना मन अर्थात् प्रेम उसी को प्रदान कीजिए जो प्रभु का सच्चा भक्त हो। वह प्रेम में इतना दृढ़ हो गया हो कि चाहे आपत्ति रूपी आरा उसे चीर ही क्यों न दे, नष्ट ही क्यों न कर दे किन्तु वह अपने पंथ से विचलित न हो।

पांहण टांकि न तौलिए, हाडि न कीजै बेह।
माया राता मांनवो, तिन सूं किसा सनेह ॥५॥

पांहण=पत्थर। हाडि=हड्डी। बेह=विदीर्ण करना। राता=अनुरक्त। मांनवी=मनुष्य।

जिस प्रकार पत्थर में टांकी लगाकर तोलना एवं हड्डी को तोड़कर परीक्षा लेना कठिन है उसी प्रकार मायासंलिप्त व्यक्ति से भी प्रेम करना कठिन है। भाव यह है कि मायानुरक्त व्यक्ति प्रेम का पात्र नहीं।

कबीर तासूं प्रीति करि, जो निरबाहै ओड़ि।
बनिता बिबधि न राचिये, देषत लागै षोड़ि ॥६॥

निरबाहै=निवाहें। ओड़ि=अन्त तक। विबधि=समृद्धि व सम्पत्ति के अर्थ में।

कबीर कहते हैं कि जिससे जीवन पर्यन्त प्रेम-निर्वाह हो उसी से प्रेम करना चाहिए (ऐसा एकमात्र पात्र प्रभु ही है) कामिनी और सम्पत्ति में अनुरक्त नहीं होना चाहिए, इनके तो दर्शन मात्र से पाप लगता है।

कबीर तन पंषी भया, जहां मन तहां उड़ि जाइ।
जो जैसी संगति करै, सो तैसे फल खाइ ॥७॥

कबीर कहते हैं कि यह शरीर विषय-वासनाओं की तृप्ति के लिए पक्षी बन गया है, जहां इच्छा होती है वहीं उड़ जाता है। यह बुरी संगत का ही परिणाम है, जैसी संगति की है वैसे परिणाम भोगने पड़ेंगे।

काजल केरी कोठड़ी, तैसा यहु संसार।
बलिहारी ता दास की, पै सिर निकसणहार ॥८॥४७७॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जिस प्रकार काजल की कोठरी में धंस कर कोई बेदाग निष्कलंक नहीं लौटता वैसा ही यह संसार है जिसमें रह कर विषय-वासनाओं की कालि थोड़ी बहुत अवश्य लग जाती है। कबीर कहते हैं कि मैं उस भक्त की बलि हारी जाता हूं जो इसमें प्रवेश करके इसके प्रभावों से अछूता ही निक आता है।

—×—

२७. असाध कौ अंग

कबीर भेष अतीत का, करतूति करै अपराध।
बाहरि दीसै साध गति, माहैं महा असाध ॥१॥

अतीत=वैरागी।

कबीर कहते हैं कि वेश तो वैरागी के समान धारण किया हुआ है और कर्म पाप-परिपूर्ण है, जो इस प्रकार बाह्यावरण से साधु दृष्टिगत होते हैं, भीतर हृदय में अनेक कलुषताओं से भरे रहते हैं।

उज्जल देखि न धीजिये, बग ज्यूं माँडै ध्यान।
धोरै बैठि चपेटसी, यूं ले बूड़ै ग्यांन ॥२॥

धीजिए=विश्वास कर बैठिए। बग=बक, बगुला। माँडै=मछली धोरै=पास।

किसी की उज्ज्वल वेश-भूषा देखकर उसके उज्ज्वलमना होने का विश्वास मत कर बैठिए। हो सकता है कि वह मछली की खोज में एक टाँग से चुपचाप खड़े बगुले के समान हो। जिस भांति मछली के पास आने पर बगुला उसको चट कर जाता है उसी भांति वह तुमको अपने पूर्ण सम्पर्क में लाकर अपने ज्ञान के साथ ही समाप्त न कर दे।

विशेष—सहोक्ति अलकार, क्योंकि ज्ञान एवं प्राण का साथ ही साथ अन्त बताया गया है।

जेता मीठा बोलणां, तेता साध न जांणि।
पहली थाह दिखाइ करि, ऊँडै देसी आणि ॥३॥५८०॥

थाह=पार पाने योग्य उथला पानी। ऊडै=गहरे पानी में।

कबीर कहते है कि जितने भी मृदु भाषी हैं उन सबको ही साधु न समझो। वे लोग ऐसा ही करते हैं कि पहल उथला जल दिखाकर फिर गहरे पानी में ले जाकर डुबो देते हैं।

—×—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

२८. साध कौ अंग

कबीर संगति साध की, कदे न निरफल होइ।
चंदन होसी बांवना, नींब न कहसी कोइ ॥१॥

निरफल=निष्फल। बांवना=श्रेष्ठ। नींब=नीम।

कबीर कहते हैं कि साधु-संगति कभी भी व्यर्थ नहीं जाती। साधु-संगति से तुम नीम जैसे कड़वे से सुशीतल सुगन्धदायी चन्दन बन जाओगे फिर तुम्हें कोई नीम—कड़वा, बुरा—न कह सकेगा।

विशेष—गोस्वामी तुलसीदास जी भी 'रामचरितमानस' में सत्संग महिमा का वर्णन इस प्रकार करते हैं—

"बिनु सतसंग बिबेक न होई।
रामकृपा बिनु सुलभ न सोई॥
सत्संगत मुद मंगल मूला।
सोई फल सिधि सब साधन फूला॥
सठ सुधरहिं सतसगति पाई।
पारस परस कुधात सुहाई॥
बिधि बस सुजन कुसंगत परहीं।
फनि मनि सम निज गुन अनुसरहीं॥
बिधि हरि हर कवि कोविद बानी।
कहत साधु महिमा सकुचानी॥
सो मो सन कहि जात न कैसे।
साक बनिक मनि गुन गन जैसे॥

कबीर संगति साध की, बेगि करीजै जाइ।
दुरमति दूरि गँवाइसी, देसी सुमति बताइ ॥२॥

दुरमति=दुर्बुद्धि।

कबीरदास कहते हैं कि साधु जनों की संगति शीघ्रातिशीघ्र करो। उससे दुर्बुद्धि का नाश एवं सद्बुद्धि की प्राप्ति होती है।

मथुरा जावै द्वारिका, भावै जावै जगनाथ।
साध संगति हरिभगति बिन, कछू न आवै हाथ ॥३॥

कबीर कहते हैं कि मथुरा, द्वारिका जगन्नाथ या अन्य तीर्थस्थल चाहे जहां चले जाओ किन्तु साधुसंगति और प्रभु भक्ति के बिना कुछ भी प्राप्त नहीं हो सकता।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मेरे संगी दोइ जणां, एक बैष्णों एक राम।
वो है दाता मुकति का, वो सुमिरावै नांम ॥४॥

कबीर कहते हैं कि मेरे साथी दो ही हैं—एक तो वैष्णव एवं दूसरे प्रभु प्रभु तो मुक्ति को देने वाले हैं ही, वैष्णव भी प्रभु का नाम स्मरण कर ईश्वर भक्ति में प्रवृत्त करता है।

कबीर बन बन मैं फिरा, कारणि अपणैं रांम।
रांम सरीखे जन मिले, तिन सारे सब कांम ॥५॥

सारे=पूर्ण किये।

कबीर कहते हैं कि अपने प्रभु की खोज में मैं वन-वन भटकता फिरा मुझे प्रभु के समान ही प्रभु-भक्त मिल गये, जिन्होंने मेरा उद्देश्य सिद्ध कर दिया, मुझे प्रभु से मिला दिया।

कबीर सोई दिन भला, जा दिन संत मिलांहि।
अंक भरे भरि भेंटिया, पाप सरीरौं जांहि ॥६॥

सरीरौं=शरीर का।

कबीर कहते हैं कि वही दिवस श्रेष्ठ है, जिस दिन संत-दर्शन हो जाय उनको प्रेमपूर्वक आलिंगन कर भेंट करने से शरीर के समस्त पाप दूर हो जाते हैं।

विशेष—संगति की महिमा का ऐसा ही वर्णन महाकवि कालीदास ने **'मालविकाग्निमित्र'** नाटक में प्राप्त होता है—

"मन्दोऽप्यमन्दतामेति संसर्गेण विपश्चितः।
पंकच्छिदः फलस्येव निकषेणाविलं पयः॥" (२-७)

"विद्वान् के संसर्ग से मन्दबुद्धि मनुष्य भी बुद्धिमान् हो जाता है। जैसे गन्दा जल मैल को काटने वाली निर्मली के फल के सम्पर्क से शुद्ध हो जाता है।"

कबीर चंदन का बिड़ा, बैठ्या आक पलास।
आप सरीखे करि लिए, जे होते उन पास ॥७॥

बिड़ा=वृक्ष।

कबीर कहते हैं कि चन्दन का वृक्ष आक और पलाश के बीच उग आया किन्तु उसने उन वृक्षों को भी अपने समान सुगन्धिदायक बना दिया। इसी प्रकार साधुजन भी ससर्ग से दुष्टों को सच्चरित्र बना देते हैं।

विशेष—(१) अलंकार—अन्योक्ति एवं तद्गुण।

(२) कबीर ने आक के साथ पलाश जैसे सुन्दर और सुगन्धि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पुष्प वाले पेड़ को भी सम्मिलित कर लिया, इसके साथ धतूरा कहा जाता तो सुन्दर था किन्तु कबीर इसके दोषी नहीं। उन्होंने अपने वचनों को दुबारा तो पढ़ा नहीं न इसकी उन्हें आवश्यकता थी क्योंकि उनका एकमात्र प्रयोजन अपने भाव, हृदय में उमड़ते हुए सत्य, को बताना था, वह इससे स्पष्ट हो जाता है।

कबीर खाई कोट की, पांणीं पिवै न कोइ।
जाइ मिलै जब गंग मैं, तब सब गंगोदिक होइ ॥८॥

कोट=किला।

कबीर कहते हैं कि किले से निकलने वाली गन्दी खाई, नाले का पानी कोई नहीं पीता है किन्तु जब वही नाला गंगाजी में जाकर मिल जाता है तो पवित्र गंगा जल हो जाता है जिसका सब श्रद्धापूर्वक पान करते हैं।

विशेष—तुलसी से तुलना कीजिए—

"गगन चढ़हिं रज पवन-प्रसंगा॥"

जांनि बूझि साचहिं तजैं, करैं झूठ सूँ नेह।
ताकी संगति राम जी, सुपिनैं ही जिनि देहु ॥९॥

कबीर कहते हैं कि हे प्रभु! जो जान-बूझकर सज्जनों को परित्याग कर मिथ्याचारियों से सम्बन्ध रखते हैं उनकी संगति मुझ स्वप्न में भी मत दो।

कबीर तास मिलाइ, जास हियाली तूं बसै।
नहीं तर बेगि उठाइ, नित का गंजन को सहै ॥१०॥

तास=उससे। हियाली=हृदय। गंजन=दुख।

कबीर कहते हैं कि हे प्रभु! या तू मेरी भेंट उनसे करा दे जिनके हृदय में तेरा निवास है अन्यथा फिर मेरा जीवन ले ले, नित्य-प्रति कुसंगति का दुख कौन सहन करता रहे?

केती लहरि समंद की, कत उपजै कत जाइ।
बलिहारी ता दास की, उलटी मांहि समाइ ॥११॥

कबीर कहते हैं कि इस भवसागर में कितनी लहरें उठती और गिरती हैं, कितने मनुष्य आवागमन चक्र में पड़ जन्म-मृत्यु को प्राप्त होते हैं। मैं उस भक्त की बलिहारी जाता हूं जो जन्म धारण कर प्रभु-भक्ति के माध्यम से ब्रह्म में लीन हो जाता है।

काजल केरी कोठड़ी, काजल ही का कोट।
बलिहारी ता दास की, जे रहै रांम की ओट ॥१२॥

यह संसार काजल की कोठरी के समान है जिसकी सीमाएं विषय-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वासनाओं की कालिमाओं से ही युक्त हैं। कबीर कहते हैं कि मैं उस भक्त की बलिहारी जाता हूं जो संसार में रहकर भी इसकी वासना-का... से दूर रहता है।

भगति हजारी कपड़ा, तामैं मल न समाइ।
साषित काली काँबली, भावै तहां बिछाइ ॥१३॥४८॥

हजारी कपड़ा=वह वस्त्र जिसका मूल्य एक सहस्र रुपये हो, बहुमू... तात्पर्य। साषित=शाक्त, यहां शाक्त सम्प्रदाय या साधना से तात्पर्य।

भक्ति उस बहुमूल्य वस्त्र के समान है जिसमें तनिक सा भी पाप मैल छिप नहीं सकता। दूसरी ओर शाक्त-साधना वाले कम्बल के समान जिसे चाहो विछा दो। भाव यह है कि शाक्त साधना भक्ति-सम्प्र... की तुलना में निकृष्ट है।

—०—

२६. साध साषीभूत कौ अंग

निरबैरी निह-कांमता, सांई सेती नेह।
बिषिया सूं न्यारा रहै, संतनि का अंग एह ॥१॥

निह-कांमता=निष्कामता, कामना-विरत होना। विषिया=वि... वासनाएं। अंग=लक्षण, गुण।

कबीरदास कहते हैं कि किसी से वैरभाव न रखना, निष्कामता, प्रभु-... विषयों से दूर रहना यही सन्तों के लक्षण हैं।

संत न छाड़ै संतई, जे कोटिक मिलैं असंत।
चँदन भुवंगा बेठिया, तउ सीतलता न तजंत ॥२॥

सन्त करोड़ों असन्तों के बीच में रहकर भी अपनी वृत्ति का परि... नहीं कर सकता।। चन्दन के वृक्ष पर सर्प लिपटे रहते हैं तो भी वह ... शीतलता नहीं त्यागता।

विशेष—(१) अलंकार—अर्थान्तरन्यास।

(२) तुलना कीजिए—

जो रहीम ऊंची संगति, का करि सकत कुसंग।
चंदन विष व्यापै नहीं, लपटै रहत भुजंग॥

कबीर हरि का भांवता, दूरैं थैं दीसंत।
तन षीणां मन उनमनां, जग रूठड़ा फिरंत ॥३॥

भांवता=चाहने वाला, भक्त। दीसंत=दृष्टिगत होता है। षीणं=क्षीण।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कबीरदास कहते हैं कि प्रभु-भक्त दूर से ही दिखाई दे जाता है। उसका शरीर क्षीण, मन उन्मनी अवस्था में अर्थात् भीतर ही केन्द्रित एवं वह संसार से असम्पृक्त रहता है।

कबीर हरि का भांवता, झीणां पंजर तास।
रैंणि न आवै नींदड़ी, अंगि न चढ़ई मास ॥४॥

झीणां=क्षीण।

कबीरदास कहते हैं कि जो प्रभु-भक्त होता है उसका शरीर बड़ा क्षीण होता है क्योंकि वह अन्य साँसारिकों के समान निरंकुश नहीं होता। प्रभु की भक्ति में अनुरक्त रहने के कारण उसे रात को नींद नहीं आती और न वह शरीर से पुष्ट होता है।

अणरता सुख सोवणां, रातै नींद न आइ।
ज्यूं जल टुटै मंछली, यूं बेलत बिहाइ ॥५॥

अणरता=जो अनुरक्त नहीं है। रातै=जो अनुरक्त हैं। टुटै=समाप्त होने पर। बेलत=तड़प-तड़प कर।

जो प्रभु में अनुरक्त नहीं हैं वे सुख की नींद सोते हैं तथा जिनकी वृत्ति प्रभु में रमी हुई है वे सुख-निद्रा में सो नहीं पाते। उनकी अवस्था उस मछली के समान होती है जो जल समाप्त होने पर तड़पती है। वे भी प्रभु-वियोग में तड़पते हैं।

जिन्य कुछ जांण्यां नहीं, तिन्ह सुख नींदड़ी बिहाइ।
मैर अबूझी दूझिया, पूरी पड़ी बलाइ ॥६॥

कबीरदास कहते हैं कि जिन्होंने ज्ञानार्जन का कुछ प्रयत्न नहीं किया उन्होंने सम्पूर्ण आयु सुख-निद्रा में व्यतीत कर दी। मैं अज्ञानी जब उस ब्रह्म को जानने के लिये साधना में प्रवृत्त हुआ तो प्रभु-वियोग की यह विपत्ति मेरे गले पड़ गई।

जांण भगत का नित मरण, अण जांणें का राज।
सर अपसर समझै नहीं, पेट भरण सूं काज ॥७॥

जांण=ज्ञानी। अण जांणें=अज्ञानियों। राज=आनन्द से तात्पर्य। सर अपसर=अवसर-अनवसर। पेट-भरण=जीवन की पाशविक वृत्तियों के लिए।

ज्ञानी का तो नित्य मरण है क्योंकि उसे प्रभु-वियोग में शत-शत मृत्यु की वेदना को सहन करना पड़ता है। आनन्द तो केवल अज्ञानियों को प्राप्त है

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जिन्हें प्रभु-भक्ति से कोई प्रयोजन नहीं, केवल जीवन की पाशविक वृत्तियों को ही सन्तुष्ट करने में उनके कर्तव्य की इति-श्री हो जाती है।

जिहि घटि जांण बिनाण है, तिहिं घटि आवटणां घणा।
बिन षंडै संग्रांम है, नित उठि मन सौं झूझणां ॥८॥

जाँण-बिनाण=ज्ञान-विज्ञान । आवटणां=औटना, संतप्त होने के अर्थ में। घणा=अत्यधिक। षंडै=तलवार। झूझणां=युद्ध करना।

कबीरदास कहते हैं कि जिसके हृदय में ज्ञान-विज्ञान है अर्थात् जो विरही है उसके हृदय में विरह-वन्हि प्रज्वलित रहती है। उसे नित्य प्रति उठकर अपने मन से द्वन्द्व करना पड़ता है कि वह असद् मार्ग की ओर प्रवृत्त न हो। इस प्रकार विना तलवार के वहां नित्यप्रति युद्ध होता रहता है।

विशेष—विभावना अलंकार।

रांम बियोगी तन बिकल, ताहि न चीन्हैं कोइ।
तंबोली के पांन ज्यूं, दिन दिन पीला होइ ॥९॥

जो प्रभु-वियोगी होता है उसकी वेदना को कोई नहीं जान पाता। वह तो तमोली की दूकान पर रखे पान के समान दिन प्रतिदिन पीला हो जाता है।

पीलक दौड़ी सांइयां, लोग कहै पिंड रोग।
छांनै लंघण नित करै, रांम पियारे जोग ॥१०॥

पीलक=पीलापन । सांइयां=प्रभु । पिंड=पीलिया, एक रोग विशेष जिसमें व्यक्ति दिन-प्रतिदिन पीला पड़ता जाता है। छांनै=छिपकर। लंघण=व्रत।

हे प्रभु! तुम्हारे वियोग में पीड़ित होकर मेरा शरीर दिन-प्रतिदिन पीला पड़ता जाता है, सब यह कहते हैं कि इसे पीलिया हो गया है। राम के वियोग में मैं न कुछ खा सकता हूं, न पी सकता हूं इससे मैं और भी क्षीण होता जाता हूं जिससे प्रियतम से मिलन हो सके।

काम मिलावै रांम कूं, जे कोई जांणै राषि।
कबीर बिचारा क्या करै, जाका सुखदेव बोलैं साषि ॥११॥

यदि कर्मों को उचित रीति से सम्पन्न किया जाय तो कर्म ही प्रभु से मिला देते हैं। ऐसा कहकर मैं कोई मिथ्या तत्व प्रतिपादित नहीं कर रहा हूं, मेरे कथन की साक्षी तो शुकदेव जी ने भी दी है।

विशेष—(१) कबीर ने अपने वचनों की आप्तता, आर्षता घोषित करने के लिये स्थान-स्थान पर वैष्णवों के पूज्य ऋषियों एवं देवताओं द्वारा अपनी वाणी का समर्थन बताया है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(२) शुकदेव—"पुराण में कथा है कि व्यास जी के पुत्र शुकदेव जी माया के डर से १२ वर्ष तक माता के गर्भ में रहे थे। व्यास जी के बहुत समझाने पर बाहर आये, पर जन्मते ही वन को चल दिये, व्यास जी पुत्र मोह में विरह-कातर होकर पीछे-पीछे चले। मार्ग में कुछ ब्रह्मचारी श्रीकृष्ण सम्बन्धी आधा श्लोक पढ़ रहे थे उसे सुनकर शुकदेव जी को पूरा श्लोक जानने की इच्छा हुई। व्यास जी ने कहा मैंने अठारह हजार श्लोक बनाए हैं। भगवान् व्यास ने पुत्र को सम्पूर्ण पढ़ाया और कहा बिना गुरु के ज्ञान अधूरा रहता है। तुम महाराज जनक से अध्यात्म विद्या प्राप्त कर लो। शुकदेव जी ने पिता की यह आज्ञा स्वीकार कर ली और राजा जनक के पास जाकर ब्रह्म-विद्या प्राप्त की। इन्होंने राजा परीक्षित को भागवत की कथा सुनाई थी।"

—'कबीर बीजक'।

कांमणि अंग बिरकत भया, रत भया हरि नांइ।
साषी गोरखनाथ ज्यूं, अमर भये कलि मांहि ॥६२॥

कांमणि=कामिनी। रत=अनुरक्त।

कामिनी से विरक्त होना एवं प्रभु के नाम में अनुरक्त होना ही श्रेय है। इसके साक्षी गुरु गोरखनाथ हैं जिन्होंने कलियुग में भी इस आचरण से अमरता प्राप्त कर ली।

विशेष—

गोरखनाथ—"ये एक प्रसिद्ध योगी तथा महात्मा थे, ये नाथ सम्प्रदाय के प्रवर्तक माने जाते हैं। ये तन्त्र विद्या के आचार्य भी थे, इनके बनाये हुए संस्कृत में ग्रंथ भी हैं। नौ नाथ तथा चौरासी सिद्धों में इनकी गणना है, गोरखपुर में इनके नाम का मन्दिर भी है।"—कबीर बीजक

जदि बिषै पियारी प्रीति सूं, तब अंतरि हरि नांहि।
जब अंतर हरि जी बसै, तब बिषिया सूं चित नांहि ॥६३॥

विषै=विषय-वासनाएं।

जब तक विषय-वासनाएं प्रभु-भक्ति से अधिक प्रिय हैं तब तक हृदय में प्रभु का निवास नहीं हो सकता। जब हृदय में प्रभु का वास हो जायगा तब मन विषयों में नहीं लगेगा।

विशेष—तुलना कीजिए—

"तुम अपनायो तब जानिहौं, जब मन फिरि परिहएं।"
(विनय पत्रिका)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जिहिं घट मैं संसौ बस, तिहिं घटि रांम न जोइ।
रांम सनेही दास बिचि, तिणां न संचर होइ ॥१४॥

बिचि=मध्य में। तिणां=तृण।

जिस हृदय में मायाजनित द्वैत भावना है उसमें प्रभु का वास नहीं हो सकता। प्रभु एवं प्रेमी भक्त में तो इतनी सी भी दूरी नहीं होनी चाहिए कि उनके बीच तृण का भी संचार हो सके।

स्वारथ को सबको सगा, जब सगलाही जांणि।
बिन स्वारथ आदर करै, सो हरि की प्रीति पिछांणि ॥१५॥

सगा=निकट, सम्बन्धी। सगला=सम्पूर्ण।

कबीरदास कहते हैं कि समस्त संसार स्वार्थ सिद्धि के ही कारण सबको अपना सम्बन्धी बनाता है। यदि कोई बिना स्वार्थ ही के अपना आदर करे तो समझिए कि उसमें प्रभु-भक्ति अवशिष्ट है।

जिहि हिरदै हरि आइया, सो क्यूं छांनां होइ।
जतन जतन करि दाबिये, तऊ उजाला सोइ ॥१६॥

छांनां=छिपाना।

जिस हृदय के भीतर प्रभु का पदार्पण हो गया वह कैसे छिपाया जा सकता है, उसकी निर्मल ज्योति सर्वदा भसमान रहती है। चाहे ब्रह्म की उस निरंजन ज्योति को दबा-दबा कर मनुष्य कितना भी छिपाने का उपक्रम क्यों न करे तो भी उसका प्रकाश प्रकाशित ही होता रहेगा।

फाटै दीदै मैं फिरौं, नजरि न आवै कोइ।
जिहि घटि मेरा सांइंयां, सो क्यूं छांनां होइ ॥१७॥

फाटै=खोलकर। दीदै=नेत्र।

मैं नेत्र फाड़-फाड़ कर देख रहा हूं किन्तु फिर भी यहाँ कोई प्रभु-भक्त दृष्टिगत नहीं हो रहा है। जिस हृदय में मेरे स्वामी, ब्रह्म का निवास है वह छिपाया नहीं जा सकता। भाव यह है कि महात्मा अलग से ही दीख जाते हैं।

सब घटि मेरा सांइंयां, सूनीं सेज न कोइ।
भाग तिन्हौं का हे सखी, जिहि घटि परगट होइ ॥१८॥

सर्वत्र सब प्राणियों में प्रभु बसे हुए हैं, कोई भी हृदय-शय्या उनसे शून्य नहीं है। हे सखी! जिसके हृदय में भी वे उत्पन्न हो गए यह उस जीवात्मा का भाग्य है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पावक रूपी रांम है, घटि घटि रह्या समाइ।
चित चकमक लागै नहीं, ताथैं धूंवां ह्वै ह्वै जाइ ।।१६।।

कबीर कहते हैं कि प्रभु उस अग्नि के समान हैं जो भस्मावृत रह प्रत्येक के हृदय में समायी रहती है। किन्तु उसे चित्त, मन रूपी चकमक पत्थर का स्पर्श नहीं हो पाता जिससे प्रभु रूपी अग्नि के दर्शन नहीं होते, इसलिए केवल धुआँ ही धुआँ (विषय-वासनाओं की कालिमा) ही दृष्टिगत होती है। भाव यह है कि चित्तवृत्तियाँ प्रभु में केन्द्रित होने पर ही उसका दर्शन सम्भव है।

कबीर खालिक जागिया, और न जागै कोइ।
कै जागै विषई विष भर्या, कै दास बंदगी होइ ।।२०।।

खालिक=प्रभु।

कबीर कहते हैं कि केवल प्रभु ही जागता है और कोई नहीं। या जागता है तो विषयी व्यक्ति जागता है जो नाना भोगों में संलिप्त रहता है या फिर वह प्रभु-भक्त ही जागता है जो भक्ति में निमग्न रहता है।

कबीर चाल्या जाइ था, आगैं मिल्या खुदाइ।
मींरां मुझ सौं यौं कह्या, किनि फुरमाई गाइ ।।२१।।५१४।।

२१. फुरमाई=फरमाना। मींरां=प्रभु, कुछ स्थानों पर भी आज भी मीराँ-नामक देवता की पूजा होती है।

कबीर कहते हैं कि मैं यों ही अपनी धुन में मस्त चला जा रहा था कि आगे प्रभु मिल गये। उन्होंने मुझ से कहा कि तू अपने विचारों को गा कर प्रस्तुत क्यों नहीं करता ? इसीलिए मैं अपने विचारों को गा-गा कर प्रस्तुत कर रहा हूं।

—×—

३०. साध महिमां कौ अंग

चंदन की कुटकी भली, नां बँबूर की अबरांउं।
वैश्नों को छपरी भली, नां साषत का बड गाउं ।।१।।

कुटकी=छोटी सी गठड़ी से तात्पर्य। बँबूर=बबूल। अबरांउं=जंगल। बड़=बड़ा।

कबीर कहते हैं कि अच्छी वस्तु का थोड़ी मात्रा में प्राप्त होना ही अच्छा है जबकि बुरी वस्तु की बहुत बड़ी मात्रा में प्राप्ति भी अश्रेयस्कर है। चन्दन की लकड़ी का एक छोटा सा बन्डल ही बबूल वृक्ष के वन, जिसमें लकड़ी ही

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लकड़ी होती है, से श्रेष्ठ है। वैष्णवों की एक कुटिया ही शाक्तों के बड़े ग्राम से श्रेष्ठ है।

विशेष—अलंकार—अर्थान्तरन्यास।

पुरपाटण सूबस बसै, आनंद ठांयें ठांइ।
रांम सनेही बाहिरा, ऊजँड़ मेरे भाइ ॥१॥

सूबस=सुरीति ने। बसै=बसा हुआ। ठांयें ठांइ=अत्यधिक। बाहिरा=विना। ऊजँड़=उजाड़, शून्य।

कोई कितने ही सुन्दर ढंग से बसा हुआ नगर हो और उसमें आनन्दोल्लास का वार-पार न हो किन्तु यदि वह प्रभु-भक्त से शून्य हो तो निश्चय ही वह ऊजड़, शून्य प्रदेश, तुल्य है।

जिहिं घरि साध न पूजिये, हरि की सेवा नांहि।
ते घर मड़हट सारषे, भूत बसै तिन मांहि ॥३॥

मड़हट=मरघट, श्मशान।

जिस घर में साधु की सेवा एवं प्रभु-भक्ति नहीं है वह घर श्मशान तुल्य शून्य तथा भयानक है। उसके अन्दर तो सांसारिक क्लेशों के भूत घर किये रहते हैं।

है गै गैंवर सघन घन, छत्र धजा फरराइ।
ता सुख थैं भिष्या भली, हरि सुमिरत दिन जाइ ॥४॥

है=हय, अश्व। गै=गयंद, हाथी। सघन घन=घनीभूत जनसंकुल। भिष्या=भिक्षा।

यदि किसी के पास हाथी, घोड़े, अत्यधिक प्रजा से पूरित ग्राम, शीश पर छत्र एवं महल-अट्टालिकाओं पर फहराती ध्वजा आदि समस्त ऐश्वर्य हो किन्तु प्रभु-भक्ति न हो तो सब व्यर्थ है। दूसरी ओर यदि प्रभु-भक्ति में समस्त दिन व्यतीत हो जाता है और भिक्षा ग्रहण करनी पड़ती है तो यह उसकी अपेक्षा कहीं अधिक श्रेष्ठ है।

है गै गैंवर सघन घन, छत्रपती की नारि।
तास पटंतर नां तुल, हरिजन की पनिहारि ॥५॥

पटंतर=वरावर, समान।

हाथी, घोड़े एवं अमित ऐश्वर्यशाली राजा रानी भी प्रभु-भक्ति पनिहारिन की तुलना में ही रखी जा सकती हैं, वह उससे हेय है।

क्यूं नृप नारी नींदये, क्यूं पनिहारी कौं मांन।
वा मांग संवारै पीव कौं, वा नित उठि सुमिरै रांम ॥६॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मांन=सम्मान।

राजा की ऐश्वर्ययुक्त रानी की निम्नता एवं प्रभु-भक्त की पनिहारिन की श्रेष्ठता किस कारण बतायी गयी है ? एक (रानी) तो अपने लौकिक प्रियतम के लिए शृंगार-मण्डन करती है और दूसरी (पनिहारिन) सच्चे स्वामी प्रभु का नित्य प्रति भजन करती है। इसी अन्तर के कारण द्वितीय प्रथम से महान् है।

कबीर धनि ते सुंदरी, जिनि जाया बैसनौं पूत।
रांम सुमरि निरभै हुवा, सब जग गया अऊत ।।७।।

अऊत=निपूत।

कबीर कहते हैं कि वह स्त्री धन्य है जिसने वैष्णव पुत्र-रत्न प्रसूत किया क्योंकि वह प्रभु को स्मरण कर निर्भय हो जाता है और शेष संसार तो निपूत, निस्सन्तान ही रह गया।

कबीर कुल तौ सो भला, जिहि कुल उपजै दास।
जिहिं कुल दास न ऊपजै, सो कुल आक पलास ।।८।।

कबीर कहते हैं कि वही वंश श्रेष्ठ है जिसमें प्रभु-भक्त जन्म ले। जिस परिवार में प्रभु-भक्त जन्म न ले वह आक और पलाश के समान निष्प्रयोजन है।

विशेष—पलास—यहाँ कबीर फिर 'धतूरे' के स्थान पर 'पलाश' का प्रयोग कर जाते हैं।

साषत बांभण मति मिलै, बैसनौं मिलै चंडाल।
अंक माल दे भेटिये, मांनौ मिले गोपाल ।।९।।

कबीर कहते हैं कि शाक्त ब्राह्मणों से न मिलना ही अच्छा है। उनसे श्रेष्ठ तो वैष्णव चाण्डाल से मिलना है। उस चाण्डाल से तो प्रेमपूर्वक आलिंगनबद्ध होकर ऐसे मिलना चाहिए मानो प्रभु से ही मिलन हो रहा है।

रांम जपत दालिद भला, टूटी घर की छांनि।
ऊँचे मन्दिर जालि दे, जहां भगति न सारंगपांनि ।।१०।।

दालिद=दरिद्र। सारंगपांनि=विष्णु, वैसे तात्पर्य अनाम ब्रह्म से ही है।

कबीर कहते हैं कि प्रभु-भजन करते हुए दरिद्रता भी भली है, चाहे घर की आश्रयस्थली, छप्पर तक क्यों न टूट जाय, अर्थात् दरिद्र से दरिद्रतर अवस्था भी प्रभु-भक्ति करते हुए अच्छी है। ऐसे ऊंचे-ऊंचे आवासों को जहाँ प्रभु की भक्ति नहीं है जला देना चाहिए।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कबीर भया है केतकी, भवर सब भये दास।
जहां जहां भगति कबीर की, तहां तहां रांम निवास ॥११॥१२५॥

११. केतकी=एक पुष्प विशेष, जिसके चारों ओर भ्रमर-श्रेणी मंडराया करती है।

कबीर केतकी-सुमन सदृश आकर्षण का केन्द्र हो गया हैं जिसके चारों ओर अन्य भक्त मण्डली लगी रहती है। जहाँ-जहां कबीर की भक्ति है वहां प्रभु का विकास ही जानो।

—×—

३१. मधि कौ अंग

कबीर मधि अंग जेको रहैं, तौ तिरत न लागै बार।
दुहु दुहु अंग सूं लागि करि, डूबत है संसार ॥१॥

मधि=मध्यम मार्ग, समन्वयी मार्ग। यह प्रवृत्ति दो विरोधी विचार-धाराओं, वस्तुओं एवं वातावरण में सामंजस्य कर एक बीच का मार्ग निकालने की पक्षपाती है। कबीर से पूर्व बुद्ध ने 'मध्यमा प्रतिपदा' नाम से इसी मध्यम मार्ग की श्रेष्ठता प्रतिपादित की थी। तिरत=तरने में, पार जाने में।

कबीर कहते हैं कि जो जीवन में मध्यम मार्ग का अनुसरण करता है उसे इस संसार-सागर के पार करने में देर नहीं लगती। दो अति-विरोधी मतों के आश्रित होकर ही संसार संघर्ष में पड़कर नष्ट होता है।

विशेष—तुलना कीजिए—

"छोड़ कर जीवन के अतिवाद
मध्य पथ से लो सुगति सुधार।" —जयशंकर प्रसाद

× × ×

"मध्यमभयम्" (मध्यम मार्ग के अवलम्बन में कोई भय नहीं होता)
—शतपथ ब्राह्मण

कबीर दुबिधा दूरि करि, एक अंग ह्वै लागि।
यहु सीतल वहु तपति है, दोऊ कहिये आगि ॥२॥

दुविधा संशय।

कबीर कहते हैं कि दोनों अतिवादी मतों का अनुसरण अश्रेयस्कर है अतः इस संशय को दूर कर कि दोनों मतों में से किसको अपनाऊं, तू केवल मध्यम मार्ग का अनुसरण कर। यह मत शान्तिदायक एवं दूसरा परिताप-प्रद है—ऐसा कहना भी दाहक है इससे भी क्लेश उत्पन्न होता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अनल अकासां घर किया, मधि निरन्तर बास।
बसुधा ब्यौम बिरकत रहै, बिनठा हर बिसवास ॥३॥

अकासां=आकाश, शन्य, ब्रह्मरन्ध्र। विरकत=विरक्त।

कुण्डलिनी ने ब्रह्मरन्ध्र में जहाँ निरञ्जन ज्योति प्रकाशित रहती है वास कर लिया है, इस प्रकार अब वह मूलाधार एवं सहस्रदल कमल के बीच स्थित है। अब आत्मा पृथ्वी (मूलाधार) और आकाश (सहस्रदल कमल) सबसे असम्पृक्त हो गई है, उन्मनी अवस्था में उसका प्रत्येक मिथ्या विश्वास समाप्त हो गया है। इस मध्य मार्ग में पहुंचकर ही उसे आनन्द की प्राप्ति हो पायी।

बासुरि गमि न रैणि गमि, नां सुपनैं तरगंम।
कबीर तहां बिलंबिया, जहां छांहड़ी न घंम ॥४॥

वासुरि=दिन। छांहड़ी=छाँह, शीतलता। घंम=घाम, धूपताप।

कबीर ने अपना निवास ऐसे स्थान को बना लिया है जहाँ प्रत्येक प्रवृत्ति का सामञ्जस्य है, वहां मध्यममार्ग का पूर्ण आनन्द है। वहां न तो अधिक शीतलता है और न अधिक ताप एवं न दिन को, न रात को और न स्वप्न में कभी भी चिन्ता ही नहीं है।

जहि पैंडै पंडित गए, दुनियां परी बहीर।
औघट घाटी गुर कही, तिहिं चढ़ि रह्या कबीर ॥५॥

पैंडै=पगडण्डी, मार्ग। औघट=संकीर्ण एवं कठिन।

जिस मार्ग पर पण्डित गया उसी पर शेष जनता चल पड़ी किन्तु कोई भी अपने लक्ष्य पर नहीं पहुंच सका। सद्गुरु ने कबीर को ऐसी संकीर्ण घाटी का कठिन मार्ग बताया उस पर कबीर ने चढ़कर अपने लक्ष्य (ब्रह्म) को प्राप्त किया।

विशेष—औघट घाटी—औघट घाटी से तात्पर्य साधना की विकट-पगडंडी से है। कबीर ने अन्यत्र भी इस दुर्गमता का बोध पिपीलिका आदि से कराया है।

श्रगनृकथैं हूँ रह्या, सतगुर के प्रसादि।
चरन कवँल की मौज मैं, रहिस्यूं अन्तिरु आदि ॥६॥

श्रग=स्वर्ग। नृक=नरक। प्रसादि=कृपा, अनुकम्पा। चरन कवँल=प्रभु के चरण-कमल।

मैं सद्गुरु की कृपा से स्वर्ग और नरक के प्रपंच में न पड़ा। मैं तो प्रभु-भक्ति के आनन्द में अद्यतन आनन्द-मग्न हूं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हिंदू मूये रांम कहि, मुसलमान खुदाइ।
कहै कबीर सो जीवता, दुहू मैं कदे न जाइ ।।७।।

हिन्दू राम नाम रट कर अपने सम्प्रदाय की श्रेष्ठता के प्रतिपादन में मिटे तो मुसलमान खुदा को श्रेष्ठ बताने के चक्कर में नष्ट हो गये। कबीर कहते हैं कि जीवित तो वही हैं जो दोनों नामों को एक ही ब्रह्म के मानकर इस झगड़े में नहीं पड़ते कि कौन श्रेष्ठ है।

दुखिया मूवा दख कों, सुखिया सुख कौं झूरि।
सदा अनंदी रांम के, जिनि सुख दुख मेल्हे दूरि ।।८।।

झूरि=जूझता रहा।

संसार में दुखी व्यक्ति सर्वदा अपने दुख को रोता रहा और जो सुखी वह और भी सुख-प्राप्ति की आशा में जूझता रहा। वे रामभक्त ही आनन्दमग्न रहे जो सुख और दुख को समान समझ उनसे तटस्थ हो गये।

कबीर हरदी पीयरी, चूना ऊजल भाइ।
रांम सनेही यूं मिले, दून्यूं बरन गंवाइ ।।९।।

कबीर कहते हैं कि हल्दी पीले रंग की होती है और चूना श्वेत, किन्तु जिस प्रकार ये दोनों मिलकर अपने वास्तविक रंग को त्याग सुन्दर अनुराग के लाल रंग में परिवर्तित हो जाते हैं उसी प्रकार प्रभु-भक्त विविध विरोधी विचार धाराओं को भक्ति के सुन्दर कलेवर में खपा कर सुन्दर रूप प्रदान करते हैं।

काबा फिर कासी भया, रांम भया रहीम।
मोट चून मैदा भया, बैठि कबीरा जीम ।।१०।।

कबीर कहते हैं कि समन्वयी मध्यमार्गी प्रवृत्ति से मुसलमानों के तीर्थ-स्थल काबा एवं हिन्दुओं के तीर्थ स्थल काशी में कोई अन्तर नहीं रह जाता; दोनों के आराध्य राम और रहीम एक हो जाते हैं। इस प्रकार विभिन्न विरोधी धाराएं जो पहले मोटे आटे के समान भद्दी लगती थीं मध्य मार्ग के अनुसरण से सुन्दर मैदा के रूप में परिणत हो गईं, इससे प्राप्त आनन्द का कबीर उपभोग कर रहा है।

धरती अरू असमान बिचि, दोइ तूंबड़ा अबध।
षट दरसन संसै पड़्या, अरू चौरासी सिध ।।११।।

पृथ्वी और आकाश दो असम्बद्ध तूंबों के समान हैं इन दोनों के मध्य मार्ग की खोज नहीं की जा सकी। षट्-दर्शन एवं चौरासी सिद्ध भी मध्यम मार्ग की खोज में असफल रहे। (किन्तु वही कबीर ने खोज लिया मूलाधार (पृथ्वी) और शून्य (आकाश) के मध्य उन्मनी अवस्था में आत्मा को स्थित किए हुए है।)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विशेष—(१) षट्-दर्शन—साँख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा, वेदान्त।

(२) चौरासी सिद्धि—चौरासी सिद्ध ये हैं—

लूहिपा, लीलापा, विरूपा, डोम्भिपा, पबरीपा, सरहपा, कंकालीपा, मीनपा, गोरक्षपा, चोगंगिपा, वीणापा, शान्तिपा, तत्तिपा, चमरिपा, खंगमा, नागार्जुन, कराहपा, कर्णरिपा, थगनपा, तारोपा, शालिपा, तिलोपा, छत्रपा, भद्रपा, दोखन्धिपा, अजोगिपा, कालपा, धोकिपा, कंकणपा, कमरिपा, डेंगिपा, भदेपा, तन्धेपा, कुकुरिपा, कुसूलिपा, धर्मपा, महीपा, अचिन्तिपा, भलहपा, नलिनपा, भुसुकुपा, इन्द्रभूतिपा, मेकोपा कुठालिपा, कमरिपा, जालन्धरपा, राहुलपा, घवरिपा, मेदिनीपा, पंकजपा, घण्टापा, जोगीपा, चेलुकपा, गुण्डरिपा, लुचिकपा, निर्गुणापा जयानन्नपा, चर्षटिपा, चम्पकपा, भिखनपा, भलिपा, कुमरिपा, जवरिपा, मणिभद्रपा, मेखलापा, कनखलापा, कलकलपा, कुन्तलिपा, धहुलिपा, उधलिपा, कपालपा, किलपा, सागरपा, सर्वभक्षपा, नागबोधिपा, दारिकपा, पुतुलिपा, पनहपा, कोकलिपा, अनंगपा, लक्ष्मीकरापा, समुद्रपा एवं भलिपा।

—×—

३२. सारग्राही कौ अंग

पीर रूप हरि नांव है, नीर आन व्यौहार।
हंस रूप कोइ साध है, तत का जांनण-हार ॥१॥

पीर=क्षीर, दुग्ध। नांव=नाम। साध=साधु। तत=सार तत्व, प्रभु।

कबीर कहते हैं कि इस संसार में दूध के रूप में, प्रभु का नाम है और ससार के अन्य मिथ्या व्यवहार जल के समान हैं—ये दोनों साथ ही साथ तो मिले हुए हैं। कोई हंसात्मा तत्वविद् साधु ही सार तत्व, ब्रह्म (दुग्ध) को माया-जल से पृथक् कर ग्रहण कर पाता है।

विशेष—यह प्रसिद्ध है कि हंस दुग्ध मिश्रित जल में से दूध और जल को पृथक्-पृथक् कर दुग्ध को ग्रहण कर लेता है, इसी प्रकार हंसात्मा (मुक्तात्मा) साध संसार में माया-जल को ग्रहण नहीं करता अपितु अमृत रूप दुग्ध प्रभु नाम को ही ग्रहण करता है।

कबीर साषत को नहीं, सबै बैशनों जांणि।
जा मुखि रांम न उचरै, ताही तन की हांणि ॥२॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उचरै=उच्चरै, उच्चारित होना।

कबीर कहते हैं कि शाक्त तो कोई नहीं है समस्त प्राणी वैष्णव हैं जिस मुख से प्रभु-नाम-उच्चरित नहीं होता वही वैष्णव नहीं है, उसी ... होता है।

कबीर औगुंण नां गहै, गुंण ही कौं ले बीनि।
घट घट महु के मधुप ज्यूं, पर आत्म ले चीन्हि ॥३॥

कबीर कहते हैं कि दूसरों के अवगुणों पर दृष्टिपात मत करो, केवल गुणों को ही ग्रहण कर लो। जिस प्रकार मधुमक्षिका विविध सुमनों का तत्व मधु संचित कर छत्ते का निर्माण करती है उसी प्रकार तुम दूसरों के के सद्गुणों को परमात्मा का अंश जानकर अपना लो।

विशेष—उपमा अलंकार।

बसुधा बन बहु भाँति है, फूल्यौ फल्यौ अगाध।
मिष्ट सुबास कबीर गहि, बिषम कहै किहि साध ॥४॥

यह पृथ्वी विविध भांति के अच्छे-बुरे फल-फूलों से सुसज्जित हैं। कबीर कहते हैं कि हमें वहां से मीठे फलों को ही ग्रहण करना चाहिए, कटु फल ग्रहण करने से क्या लाभ ? भाव यह है कि संसार में अच्छे बुरे सब प्रकार के मनुष्य और सदसद् सब प्रकार के तत्व विद्यमान हैं, हमें उनमें से सद् ... को ग्रहण करना चाहिए।

—×—

३३. बिचार कौ अंग

रांम नांम सब को कहै, कहिबे बहुत बिचार।
सोई रांम सती कहै, सोई कौतिग-हार ॥१॥

सती=पतिव्रता।

प्रभु नाम का उच्चारण तो सभी करते हैं किन्तु इसके पीछे विभिन्न विचारधाराएं होती हैं। उसी राम नाम का उच्चारण भक्त सती-भाव से करता है और उसी राम-नाम का उच्चारण एक ढोंगी प्रदर्शन बनाकर करता है। भावना भेद से ही भक्ति और फल में अन्तर आ जाता है।

आगि कह्याँ दाझै नहीं, जे नहीं चंपै पाइ।
जब लग भेद न जांणिये, राँम कह्या तौ काँइ ॥२॥

आगि =आग, अग्नि। दाझै=दग्ध होना। चंपै=रखना।

कबीर कहते हैं कि केवल आग-आग चिल्लाने से ही आग पर पैर रखे बिना पैर नहीं जल सकता। इसी प्रकार जब तक माया और प्रभु का ज्ञात न हो जाय तब तक भजन से कोई लाभ नहीं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कबीर सोचि बिचारिया, दूजा कोई नाँहि।
आपा पर जब चीन्हियां, तब उलटि समाना मांहि ।।३।।

दूजा=अन्य संसार।

कबीर कहते हैं कि मैंने भली प्रकार चिन्तन-मनन कर यह निष्कर्ष निकाला कि संसार में प्रभु के अतिरिक्त अन्य कुछ है नहीं। इस प्रकार जब संसार में मुझे परम तत्व के दर्शन हो गये तब मेरी वृत्तियाँ अन्तर्मुखी हो प्रभु भक्ति में प्रवृत्त हो गईं।

कबीर पाँणों केरा पूतला, राख्या पवन सँवारि।
नांनां बांणी बोलिया, जोति धरी करतारि ।।४।।

सँवारि=सम्भाल कर। नांनां=विविध। जोति=ज्योति, प्रकाश।

कबीर कहते हैं कि मनुष्य पानी के बुलबुले के समान है जिसको प्राण तत्व की वायु ने सुरक्षित रखा हुआ है अन्यथा यह कब का फूट जाता। इस बुलबुले में ब्रह्म ने अपनी ज्योति, प्रकाश भर दिया है उसी के कारण यह विविध रूपों में अपना कार्य-कलाप करता है।

नौ मण सूत अलूझिया, कबीर घर घर बारि।
तिनि सुलझाया बापुड़े, जिनि जाणीं भगति मुरारि ।।५।।

मण=मन, तौल का एक माप। अलूझिया=उलझ गया। बापुड़े= बिचारे।

कबीर कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति इस संसार के मायादिक प्रपंच रूपी उलझे सूत को सुलझाने में लगा हुआ है किन्त इसको वही सुलझा सके हैं जिन्होंने प्रभु भक्ति के मर्म को पहचाना है अर्थात् प्रभु-भक्त ही इस भव-जाल से मुक्ति पा सके हैं।

विशेष—**नौ मण सूत**—नौ मन सूत कबीर ने सांसारिक जाल के लिए प्रयुक्त किया है। इसमें पंच विषय (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध), तीन गुण (सत, रज, तम) एवं मन को ही समस्त सांसारिक क्लेश और परितापों का उद्भावक माना है।

आधी साषी सिरि कटै, जोर बिचारी जाइ।
मनि परतीति न ऊपजै, तौ राति दिवस मिलि गाइ ।।६।।

कबीर कहते हैं कि यदि कोई आस्था एवं विश्वासपूर्वक मेरी आधी साखी का भी पाठ करेगा तो उसकी मुक्ति हो जायगी। किन्तु यदि मन में श्रद्धा और प्रेम नहीं है तो चाहे इन साखियों का गान अहर्निश करो कोई लाभ नहीं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सोई अषिर सोई बैयन, जन जू जू वाचवंत।
कोई एक मेलै लवणि, अमी रसांइण हुंत ॥७॥

अषिर=अक्षर। बैयन=वचन। जन=जन सामान्य। वाचवंत=... हैं, पाठ करते हैं। लवणि=नमक, सौन्दर्य। अमीं=अमृत। रसांइण=... रसमय।

कबीर कहते हैं कि उन्हीं सामान्य अक्षरों और वचनों में जिनका ... सामान्य नित्य प्रयोग करते हैं कवि अपने कौशल से ऐसा लावण्य ला दे... कि अमृत भरी रसयुक्त वाणी काव्य हो जाती है।

हरि मोत्यां की माल है, पोई काचै तागि।
जतन करी झंटा घंणां, टूटंगी कहूँ लागि ॥८॥

८. मोत्यॉं=मोतियों की। तागि=धागे में। झंटा=झंझट। घ... अत्यधिक।

कबीर कहते हैं कि प्रभु मोतियों की उस माला के समान है जो ... धागे में पिरोयी गई है। यदि इसे शास्त्रादि के चक्कर में पड़कर सुरक्षित ... की सोचोगे तो यह उलझ कर गुत्थी वन जायेगी और सम्भव है कि टूट ... जाय। भाव यह है कि प्रभु भक्ति से प्राप्य एवं तर्क से अप्राप्य है, हो ... है तर्क आपकी ईश्वर सम्बन्धी आस्था को ही निर्मूल कर आपको नास्तिक ... में परिवर्तित कर दे।

मन नहीं छाड़ै बिषै, बिषै न छाड़ै मन कौं।
इनकौं इहै सुभाव, पूरि लागी जुग जन कौं॥

कबीर कहते हैं कि मन विषय-वासनाओं में इतना उलझ गया है ... उन्हें छोड़ता ही नहीं और विषय-वासनाएं भी मन में इतनी घर कर ... कि वे वहां से नहीं हटतीं। मन और विषय-विकारों का ऐसा दूसरे से ... रहने का स्वभाव है, ये व्यक्ति को आक्रान्त रखते हैं।

खंडित मूल बिनास, कहौ किम बिगतह कीजै।
ज्यूं जल मैं प्रतिब्यंब, त्यूं सकल रांमहिं जांणीजै ॥१...

संसार के प्रत्येक पदार्थ में, तत्व में उस प्रभु का प्रतिबिम्ब है (यह ... मान जगत् उसी के प्रकाश से प्रकाशित है)। यदि कोई अनास्थावादी ... अविश्वास करना है तो वह संसार के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता, ... बिना बिम्ब के प्रतिबिम्ब कैसे हो सकता है? जब प्रतिबिम्ब—संसार— सम्मुख है तो बिम्ब—प्रभु—अवश्य ही होगा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सो मन सो तन सो बिषै, सो त्रिभवन-पति कहूँ कस ।
कहै कबीर ब्यंदहु नरा, ज्यूं जल पूर्या सकल रस ।।६।।५४६।।

कबीर कहते हैं कि अवतार को, जिसे संसार प्रभु मानकर पूजता है, मैं उसे त्रिभुवन-पति ब्रह्म कैसे कहूं ? क्योंकि मनुष्य के समान ही वह भी तन-मन-धारी हैं। इसलिए हे मनुष्यो ! उस निराकार प्रभु की वन्दना करो जो उसी प्रकार समस्त संसार में समाया हुआ है जिस प्रकार रसों में जल ।

—×—

३४. उपदेश कौ अंग

हरि जी यहै विचारिया, साषी कहौ कबीर ।
भौसागर मैं जीव हैं, जे कोइ पकड़ै तीर ।।१।।१।।

विचारिया=विचार किया, यहां निश्चय किया के अर्थ में । भौसागर=भव-सागर, संसार-समुद्र ।

कबीर कहते हैं कि प्रभु ने यही निश्चय कर कहा कि कबीर तुम अनुभव-संचित ज्ञान को साखियों के रूप में संसार के सम्मुख प्रस्तुत करो, कहो । इस संसार-समुद्र में बहुत से जीव तरने की आशा में पड़े हैं, कदाचित् कोई इन साखियों का सम्बल पाकर ही इस भवसागर से पार हो जाये ।

विशेष—निश्चय ही साखियों में वह ज्ञानामृत, जीवन-सिद्धान्तों का सार-तत्व एवं पथ-विभ्रान्त लोगों के लिए ऐसा दिव्य प्रकाश है कि उससे प्राणी जीवनमुक्त हो सकता है । कबीर की इस घोषणा में मिथ्या गौरव अथवा अहं-भाव किंचित् मात्र भी नहीं । यह उनका दृढ़ विश्वास है कि वे उस कंचन को प्रस्तुत कर रहे हैं जिसे प्रत्येक जौहरी कंचन कहेगा, अन्यथा नहीं ।

कली काल ततकाल है, बुरा करौ जिनि कोइ ।
अन बावैं लौहा दांहिणैं, बोवै सु लुणतां होइ ।।२।।

अन=अन्न, फसल के पौधों से तात्पर्य है । बावैं=बायां, वायां हाथ । लोहा=हंसिया या दांती । दांहिणैं=दक्षिण हाथ ।

कबीर कहते हैं कि कलियुग में कर्मफल तत्काल प्राप्त होता है अतः बुरे कर्म मत करो । जिस प्रकार कृषक वायें हाथ में फसल के पौधे पकड़कर एवं दाहिने हाथ में उनको काटने वाली हंसिया लेकर जो बोता है वही काटता है । उसी भांति जैसे कर्म करोगे उसका वैसा ही फल तत्क्षण भोगना पड़ेगा ।

कबीर संसा जीव मैं, कोइ न कहै समझाइ ।
बिधि बिधि बांणीं बोलता, सो कत गया बिलाइ ।।३।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

संसा=संशय, शंका से तात्पर्य। बिधि बिधि=विविध प्रकार बलाई=नष्ट हो गया।

कबीर कहते हैं कि मुझे जीव के अस्तित्व के विषय में विभिन्न आ... हैं। जो जीवात्मा अभी-अभी भिन्न-भिन्न प्रकार की बातें कर रहा था, ... जाने किधर विलुप्त हो गया, जीव की कैसी क्षणिक स्थिति ?

कबीर संसा दूरि करि, जांमण मरण भरंम।
पंचतत तत्तहि मिले, सुरति समाना मंन ॥४॥

जांमण-मरण=जन्म-मरण।

इससे पहली साखी में जो शंका उपस्थित की गई थी उसी का समा... करते हुए कबीर कहते हैं कि हे मन! तू शंका को दूर कर दे क्योंकि यह ... मरण तो भ्रम-मात्र है। इस शंका को दूर करने से जीवन्मुक्त हो जायेगा ... जिन पंचतत्वों ('क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा') से यह शरीर नि... हुआ है वे अपने तत्वों में मिल जायेंगे और तब मन सुरति अवस्था में ... ईश्वर का साक्षात्कार करेगा।

ग्रिही तौ च्यंता घणीं, बैरागी तौ भीष।
दुहु कात्यां बिचि जीव है, दौ हनैं संतौ सीष ॥५॥

च्यंता=चिंता। घणीं=अधिक। भीष=भिक्षा। दुहु कात्यां=कैं... दो फलकों का अर्थ। हनै=नष्ट करे।

कबीर कहते हैं कि गृही तो बहुत सी चिन्ताओं में ग्रस्त हैं और सं... भी भिक्षा की चिन्ता से मुक्त नहीं। इस प्रकार गृहस्थ और संन्यास ... अवस्थाओं में जीव उसी प्रकार नष्ट होता है जैसे कैंची के फलकों के ... कोई वस्त्र आदि। इन दोनों अवस्थाओं में साधु-शिक्षा ही चिन्ताओं को ... कर सकती है।

विशेष—तुलना कीजिए—

"प्रबोधाय विवेकाय हिताय प्रशमाय च।
सम्यक्तत्त्वोपदेशाय सतां सूक्तिः प्रवर्तते।"

—जैनाचार्य शुभचन्द्राचार्य कृत 'ज्ञानार्णव'

("सत्पुरुषों की उत्तम वाणी दूसरों को जगाने के लिये, सत्यासत्य ... विवेक के लिये, लोक-कल्याण के लिए, जगत् में शान्ति के लिए और ... में वास्तविक तत्व के उपदेश के लिये प्रवृत्त हुआ करती है।")

बैरागी बिरकत भला, गिरहीं चित्त उदार।
दुहूं चूकां रीता पड़ै, ताकूं वार न पार ॥६॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विरकत=विरक्त ।

कबीर कहते हैं कि संन्यासी को विरक्त एवं गृहस्थ को उदार-चित्त होना चाहिए। यदि ये दोनों अपने इन प्रकृत गुणों को परित्यक्त कर देंगे तो इतना अनर्थ होगा कि उसकी कोई सीमा नहीं रहेगी ।

जैसी उपजै पेड सूं, तसी निबहै ओरि ।
पैका पैका जोड़तां, जुड़िसी लाष करोड़ि ।।७।।

निवहै ओरि=अन्त तक सुरक्षित रख सके। पैका-पैका=पैसा-पैसा। जुड़िसी=जुड़ जाता, संग्रह हो जाता ।

कबीर कहते हैं कि जैसा सुन्दर एवं मधुर फल (आम आदि) पेड़ से गिरते समय होता है यदि उसे अन्त तक उसी रूप में सुरक्षित रखा जाय तो वह बहुत ही स्तुत्य प्रयास होगा, उसी भांति आत्मा जिस निर्दोष और निष्कलंक रूप में उस परम तत्व से पृथक् होते समय प्राप्त हुई थी, यदि वैसी ही निर्मल रहे तो बहुत अच्छा रहेगा। अब दूसरा भाव व्यक्त करते हुए कबीर कहते हैं कि जीवात्मा ! तूने समस्त जीवन-रत्न व्यर्थ गंवा दिया, प्रभु भक्ति न की। यदि तूने थोड़ा-थोड़ा भी प्रभु-भजन किया होता तो तू इस महान् सुकृत्य से जीवन-मुक्त हो जाता। क्योंकि पैसा-पैसा जोड़कर तो लाख और करोड़ों की सम्पत्ति संगृहीत की जा सकती है ।

कबीर हरि के नांव सूं, प्रीति रहै इकतार ।
तौ मुख तैं मोती झड़ैं, हीरे अंत न पार ।।८।।

कबीर कहते हैं कि यदि साधक का प्रभु-नाम से निरन्तर और दृढ़ प्रेम बना रहे तो उसके मुख से अनमोल वचनों के मुक्ता झड़ने लगें और उस वचनावली में सारतत्व रूपी अनमोल हीरों का अनन्त भण्डार होगा ।

ऐसी बांणी बोलिये, मन का आपा खोइ ।
अपना तन सीतल करै, औरन कौं सुख होइ ।।९।।

कबीर कहते हैं कि मन के अहं दर्प को नष्ट कर ऐसी वाणी बोलिए कि स्वयं का शरीर भी प्रफुल्लित हो और श्रोता भी उससे आह्लादित हों ।

विशेष—मनुस्मृति में मधुर वाणी की विविध प्रकार से प्रशंसा की गई है, कुछ उद्धरण द्रष्टव्य हैं—

"वाक्चैव मधुरा श्लक्ष्णा प्रयोज्या धर्ममिच्छता ।"

(जो धर्म-मार्ग का अनुसरण करना चाहता है उसे मधुर और स्निग्ध वाणी का ही प्रयोग करना चाहिए ।)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

"ययास्योद्विजते वाचा नालोक्यां तामुदीरयेत् ।"

(जिससे दूसरों को व्यथा हो ऐसी लोक-परलोक दोनों को बिगाड़ने वाली वाणी को न बोलना चाहिए ।)

"सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम् ।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः ।।" (मनु)

(मनुष्य को चाहिए कि वह सत्य बोले, प्रिय बोले, अप्रिय सत्य न बोले, असत्य प्रिय को भी न बोले, यह सनातन धर्म है ।)

कोइ एक राखै सावधान, चेतनि पहरै जागि ।
बरतन बासन सूं खिसै, चोर न सकई लागि ।।१०।।

कबीर कहते हैं कि साधक को सद्उपदेशों के द्वारा इतना सजग रहना चाहिए, उसे चेतना को इस प्रकार जागृत रखना चहिए कि (काम, क्रोध, लोभ, मोह रूपी) पंच चोरों में से कोई भी भीतर न आ सके । यदि बर्तन या वस्त्र के खिसकने की भी ध्वनि हो तो उसे जाग जाना चाहिए जिससे चोर पास भी न फटक सके । भाव यह है कि मन में कोई विकार आते ही साधक को उसे दूर कर देना चाहिए ।

—×—

३५. बेसास कौ अंग

जिनि नर हरि जठरांह, उदिकंथैं पंड प्रगट कियौ ।
सिरजे श्रवण कर चरन, जीव जीभ मुख तास दीयौ ।।
उरध पाव अरध सीस, बीस पषां इम रषियौ ।
अंन पान जहां जरै, तहां तैं अनल न चषियौ ।।
इहिं भांति भयानक उद्र में, उद्र न कबहुँ छंछरै ।
क्रसन क्रपाल कबीर कहि, इम प्रतिपालन क्यों करै ।।१।।

जठरांह=पेट में भी । उदिकंथैं=रज और वीर्य से । पंड=पिंड, शरीर । तास=उसमें, तात्पर्य मुख में । उरध पाव अरध सीस=ऊपर को पैर, नीचे को शीश, मातृगर्भ में शिशु की स्थिति उल्टी होती है । बीस पषां=बीस पक्ष अर्थात् दस मास । अंन=अन्न खाद्य पदार्थ । पान=पेय, दूध आदि । चषियौ = छुआ नहीं । उद्र=उदर । छंछरै=खाली रहा । इम=इस प्रकार, प्रभु ।

कबीर जीव के जन्म की स्थिति बताते हुए प्रभु-अनुकम्पा की महिमा का वर्णन करते कहते हैं कि जिस प्रभु ने माता के गर्भ में रज और वीर्य से शरीर निर्मित कर कान, हाथ, पैर, प्राण एवं मुख तथा मुख में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

न किया, जिसने ऐसी भयानक जठराग्नि में जहां खाद्य और पेय जल कर ष्ट हो जाते हैं ऐसी रक्षा की कि अग्नि का स्पर्श तक न हो सका और १० मास गर्भ में उलटे लटका कर परिपालन किया, जिसने ऐसे भयानक (अग्नियुक्त) में मेरे पेट को कभी खाली न रहने दिया, सर्वदा भोजन दिलाया, उन की महिमा का गान कहां तक करूं और कौन इस प्रकार पालन-पोषण कर ता है ?

भूखा भूखा क्या करै, कहा सुनावै लोग।
भांडा घड़ि जिनि मु दिया, सोई पूरण जोग ॥२॥

भांडा=पात्र, उदर से तात्पर्य। घड़ि=बना कर। मु=मुंह, मुख।

कबीर कहते हैं कि संसार के सम्मुख भूख-भूख क्यों चिल्लाते हो (चिल्लाना र्थ है, संसार तुम्हारी सहायता नहीं कर सकता) ? जिस प्रभु ने पेट बनाकर प्रदान किया है, केवल वही इसे भरने में, भोजन प्रदान करने में समर्थ । अतः उन्हीं का स्मरण कर।

रचनहार कूं चीन्हि लै, खैबे कूं कहा रोइ।
दिल मंदिर मैं पैसि करि, तांणि पछेवड़ा सोइ ॥३॥

खैबै=खाने को, सांसारिक आवश्यकताओं को। तांणि=तान कर। छेवड़ा=चादर।

कबीर कहते हैं कि हे जीव तू सांसारिक आवश्यकताओं की पूर्ति में क्यों यं मर रहा है ? तू अपने सृजनहार को पहचान ले, परमतत्व से साक्षात्कार र उन्हें हृदय में बसा ले और फिर निश्चिन्त होकर अनन्त सुख की नींद जा, जीवन्मुक्त हो जा।

रांम नांम करि बोंहड़ा, बांही बीज अघाइ।
अंति कालि सूका पड़ैं, तौ निरफल कदे न जाइ ॥४॥

बोंहड़ा=गेहूं, जौ आदि की फसल बोने को बांस की बनी एक लिका, जिसे कुछ स्थानों पर 'नलका' भी कहा जाता है। इसका लाभ यह ता है कि इससे बीज खूड़ (कतार) में ही गिरता है। बांही=बीज। घाई=भरपूर। सूका=वर्षाभाव।

कबीर कहते हैं कि हे साधक तू राम-नाम रूपी नलिका के द्वारा हृदय पी क्षेत्र (खेत) में प्रभु-भक्ति का भरपूर बीज बो दे। ऐसा करने से फिर हे बाद में सूखा भी रहे, वर्षा न भी हो, तो प्रभु-भक्ति रूपी फसल का ल तुझे अवश्य प्राप्त होगा, वह निष्फल नहीं जा सकती।

विशेष—(१) कबीर यह समझाते हैं कि नामस्मरण द्वारा प्रभु-भक्ति में प्रवृत्त होना चाहिए।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(२) कबीर का लोक-ज्ञान अपरिमित था, सत्य तो यह है कि जीवन और जगत् रूपी ग्रंथों के ही पन्ने पलट कर अपनी अमृतवाणी को दी थी। 'अंति कालि सूका पड़ै' के द्वारा जुलाहे कबीर का ... देखते ही बनता है। कृषक नलिका से बाज विशेष रूप से इसलिए ... कि बीज गहरा जा कर पड़ता है जहां अधिक नमी होती है, अतः ... दिन तक यदि वर्षा न भी हो तो वह बीज जमकर जड़ बनाये ... भक्ति-क्षेत्र में कबीर इसके माध्यम से बताना चाहते हैं कि यदि ... अनुकम्पा न भी हो, अन्त में उसे प्रभु-भक्ति का फल—जीवन्मुक्ति— प्राप्त होगा।

(३) सांगरूपक अलंकार।

च्यंतामणि मन मैं बसै, सोई चित मैं आंणि।
बिन च्यंता च्यंता करै, इहै प्रभू की बांणि ॥५॥

च्यंतामणि=एक मणिविशेष का नाम जिसके विषय में प्रसिद्ध ... उससे जो मांगते हैं वही प्राप्त होता है। आंणि=प्रवृत्त कर दे। ... प्रकृति, आदत, स्वभाव।

कबीर कहते हैं कि हे मनुष्य! तू चिंतामणि के लिए अन्यत्र भटकता है, वह ब्रह्मरूप चिंतामणि तो चित्त में ही है, उसमें ही समस्त ... को लगा दो। हे मनुष्य! तुझे चिन्ता की आवश्यकता नहीं क्योंकि ... कृपालु ईश्वर चिन्तामुक्त होता हुआ भी सबकी चिन्ता रखता है यही ... दयालु स्वभाव है।

कबीर का तूं चितवै, का तेरा च्यंता होइ।
अण च्यंता हरिजी करै, जो तोहि च्यंत न होइ ॥६॥

अण-च्यंता=बिना सोचा हुआ, अप्रत्याशित।

कबीर कहते हैं कि हे मनुष्य! तू क्यों व्यर्थ चिन्ता करता है, तेरे ... करने से हो भी तो कुछ नहीं सकता क्योंकि—

"मेरे मन कछु और है, साईं के कुछ और।"

यदि तू ईश्वर में विश्वास रख निश्चिन्त हो जाये तो वे अप्र... (लाभ) कर डालते हैं।

करम करीमां लिखि रह्या, अब कछू न लिख्या जाइ।
मासा घटै न तिल बधै, जौ कोटिक करै उपाइ ॥...

क़रीमां=प्रभु।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कबीर कहते हैं कि जो कुछ प्रभु को तुम्हारे भाग्य में लिखना था वह दिया अब इसके अतिरिक्त कुछ नहीं लिखा जा सकता। उस भाग्य-…न में किंचित् भी घट-बढ़ नहीं हो सकती, चाहे मनुष्य कोटिशः प्रयत्न क्यों करे।

जाकौ जेता निरमया, ताकौं तेता होइ।
रंती घटै न तिल बधै, जौ सिर कूटै कोइ ॥८॥

निरमया=निर्धारित किया है।

कबीरदास कहते हैं कि चाहे कोई अधिक प्राप्ति की आशा में कितना ही …न क्यों न करे किन्तु जितना जिसके लिए निर्धारित है उसको उतना ही …त हो सकेगा न तो उसमें तिलभर घट सकता है न तिलभर बढ़ सकता है।

च्यंता न करि अच्यंत रहु, सांई है संम्रथ।
पसु पंषेरू जीव जंत, तिनकी गाडि किसा ग्रंथ ॥९॥

संम्रथ=समर्थ, शक्तिमान्। गाडि=गणना।

कबीरदास कहते हैं कि हे मनुष्य! तू चिन्ता मत कर क्योंकि प्रभु सब …करने में समर्थ है (प्रभु के समर्थ होते हुए मनुष्य का उसके विधान में …ल देना शोभा नहीं देता)। मनुष्य की तो बात ही क्या, वह प्रभु तो इन संख्यातीत पशु-पक्षी तथा जीव-जन्तुओं का भी ध्यान रखता है जिनकी …ना कोई भी ग्रंथ नहीं कर सका।

संत न बांधै गांठडी, पेट समाता लेइ।
सांई सूं सनमुष रहै, जहां मांगै तहां देइ ॥१०॥

गांठड़ी=गठिया, पोटली।

कबीरदास कहते हैं कि सन्त जन अपनी आवश्यकता के अनुरूप ही सामग्री …ते हैं केवल संचय के लिए गठड़ी नहीं बाँधते। यदि मनुष्य प्रभु-भक्ति में …नुरक्त रहता है वह उसे जब भी जहाँ मांगता है दे देता है।

रांम नांम सूं दिल मिली, जन हम पड़ी बिराइ।
मोहि भरोसा इष्ट का, बंदा नरकि न जाइ ॥११॥

बिराई=विराग।

कबीरदास कहते हैं कि मेरा मन प्रभु में अनुरक्त हो गया है और शेष …ार से मुझे विरक्ति हो गई है। मुझे अपने इष्टदेव की अनुकम्पा का विश्वास …कि मुझे नरक की प्राप्ति नहीं होगी।

कबीर तूं काहे डरै, सिर परि हरि का हाथ।
हस्ती चढ़ि नहीं डोलिये, कूकर भुसैं जु लाष ॥१२॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कूकर=कुत्ता। भुसैं=भौंकें।

कबीरदास कहते हैं कि मन तू डरता क्यों है, तेरे ऊपर तो प्रभु का वरद हस्त है। देख चाहे कितने ही श्वान क्यों न भौंकें किन्तु चढ़े हुए का आसन नहीं डोल सकता अर्थात् वह अपदस्थ नहीं हो। उसी भाँति कबीर तू साधना मार्ग में उस उच्च स्थान पर पहुंच चुका विषय-वासना के श्वान चाहे कितना ही भौंकें किन्तु तेरा कुछ नहीं सकते।

मीठा खांण मधूकरी, भांति भांति कौ नाज।
दावा किसही का नहीं, बिन विलाइति बड़ राज ॥१३॥

दावा=अधिकार।

कबीरदास कहते हैं कि भिक्षा में भिन्न-भिन्न प्रकार के अन्न-निर्मित प्राप्त होते हैं जो खाँड के समान मीठे लगते हैं। इस प्रकार संन्यासी किसी भूप्रदेश के ही राजा के रूप में अपने हृदय साम्राज्य का उपभोग है, उस पर किसी का कुछ अधिकार नहीं होता। भाव यह है कि साधु एवं आत्मभोगी होता है।

मांनि महातम प्रेम रस, गरवा तण गुण नेह।
ऐ सबहीं अह लागया, जबहीं कह्या कुछ देह ॥१४॥

कबीरदास कहते हैं कि व्यक्ति का मान, महानता, प्रेमानन्द, गौरव एवं स्नेह ये सब उसी क्षण समाप्त हो जाते हैं जब हम किसी से कुछ लिए कहते हैं।

मांगण मरण समान है, बिरला बंचै कोइ।
कहै कबीर रघुनाथ सूं, मतिर मंगावै मोहि ॥१५॥

कबीरदास कहते हैं कि किसी से भी कुछ माँगना मरण तुल्य है विरला ही इससे बच पाता है। मैं तो प्रभु से प्रार्थना करता हूं कि किसी के सम्मुख याचना मत करा।

पांडल पंजर मन भवर, अरथ अनूपम बास।
रांम नांम सींच्या अंमी, फल लागा बेसास ॥१६॥

पांडल=एक पुष्प विशेष जिसका रंग बहुत तेज लाल होता है, पर बहुत बैठता है।

कबीरदास कहते हैं कि यह शरीर पांडुर-पुष्प के समान है मन रूपी भ्रमर का वास है। इस पुष्प में वह मनरूपी भ्रमर अर्थयुक्त अर्थात् सद्भाव रूपी गंध पाता है। इस सुमन का नाम रूपी अमृत से होता है जिस पर प्रभु विश्वास का सुन्दर फल

विशेष—सांगरूपक।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मेर मिटी मुकता भया, पाया ब्रह्म बिसास।
अब मेरे दूजा को नहीं, एक तुम्हारी आस ॥१७॥

मुकता=मुक्त, मोती के समान उज्ज्वल।

कबीरदास कहते हैं कि मेरा 'ममत्व' निकल जाने से मैं मुक्त हो गया या मोती के समान निर्मल और उज्ज्वल हो गया जिससे मेरा प्रभु में विश्वास हो गया है। हे प्रभु ! आपके अतिरिक्त अब मेरा और कोई नहीं, केवल तुम्हारे ही अपनाने की आशा है।

जाकी दिल में हरि बसै, सो नर कलपै कांइ।
एकै लहरि समंद की, दुख दलिद्र सब जाइ॥ १८॥

कलपै=दुखित होना।

कबीरदास कहते हैं कि जिस मनुष्य के हृदय में प्रभु का वास है वह व्यर्थ क्यों दुखित होता है। समुद्र की एक लहर ही मुक्ताओं का ढेर लगा कर दुख-दरिद्र मिटा देती है, उसी भाँति प्रभु-अनुकम्पा की एक लहर ही तेरे क्लेशों को विनष्ट कर देगी।

पद गांये लैलीन ह्वै, कटी न संसै पास।
सबै पिछोड़े थोथरे, एक बिनां बेसास ॥१९॥

थोथरे=खाली।

कबीरदास कहते हैं कि हे मनुष्य ! तूने प्रभु-भक्ति के पद तो आत्मलीन होकर गाये किन्तु फिर भी तेरे भ्रम का निवारण न हो सका क्योंकि एक प्रभु-विश्वास का अभाव था। बिना विश्वास के तो प्रभु-भक्ति के समस्त साधन व्यर्थ हो गये।

गावण हीं मैं रोज है, रोवण हीं मैं राग।
इक बैरागी ग्रिह मैं, इक गृही मैं बैराग ॥२०॥

जिस भांति गायन में ही रुदन है और रुदन में ही गान उसी भाँति प्रभु विश्वास के होते हुए वैराग्य में भी गृहस्थ रहा जा सकता है और गृहस्थी में भी वैराग्य-साधना हो सकती है—आवश्यकता तो केवल प्रभु-विश्वास की है।

गाया तिनि पाया नहीं, अण-गांयां थैं दूरि।
जिनि गाया बिसवास सूं, तिन रांम रह्या भरपूरि ॥२१॥५८०॥

जिन लोगों ने यह मिथ्या गर्व किया कि उन्होंने प्रभु-भक्ति की है उन्हें प्रभु न मिल सका और उन्होंने उसका गुणगान ही नहीं किया उनसे तो वह बहुत दूर हो गया किन्तु जिन्होंने विश्वासपूर्वक प्रभु-स्मरण किया उनमें प्रभु पूर्णरूपेण समा गया अर्थात उनका प्रभु से साक्षात्कार हो गया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

३६. पीव पिछांणन कौ अंग

संपटि मांहिं समाइया, सो साहिब नहीं होइ।
सफल मांड मैं रमि रह्या, साहिब कहिए सोइ ॥१॥

संपटि=सम्पुट, मंदिर में। साहिब=प्रभु। माँड=ब्रह्माण्ड, सं... सोइ=उसी को।

कबीरदास कहते हैं कि जो पत्थर का देवता मन्दिर में वन्द है वह प... नहीं हो सकता। जो समस्त संसार में सर्वत्र रम रहा है, उसी को ब्रह्म ... उचित है :

रहै निराला मांड थैं, सकल मांड ता मांहिं।
कबीर सेवै तास कूं, दूजा कोई नांहिं ॥२॥

मांड=ब्रह्माण्ड, संसार। निराला=अलग।

समस्त संसार उस प्रभु में समाया हुआ है तो भी वह सांसारिक ... मोह से सर्वथा निर्लेप रहता है। कबीर ऐसे ही अनुपम प्रभु की भक्ति ... है, वही उसके एकमात्र आश्रय हैं।

भोलै भूली खसम कै, बहुत किया बिभचार।
सतगुर गुरू बताइया, पूरिबला भरतार ॥३॥

भोलै=भोली, आत्मा। बिभचार=व्यभिचार, इन्द्रियों के नाना ... में गमन करना ही व्यभिचार है। गुरू=मन्त्र। पूरिबला=पहले का। ... =भर्ता, पति।

कबीर कहते हैं कि आत्मा संसार मोह में पड़कर अपने वास्तविक ... को विस्मृत कर बैठी और संसार की विषय-वासनाओं में गमन कर व्यभि... किया। जब सद्गुरु ने भक्ति का मन्त्र दिया तो आत्मा ने पूर्व-पति को ... कर लिया।

जाकै मुह माथा नहीं, नहीं रूपक रूप।
पुहुप बास थैं पतला, ऐसा तत अनूप ॥४॥५८४॥

कबीर उस परब्रह्म का स्वरूप समझाते हुए कहते हैं कि न तो जिसके ... है, न भाल, और न जिसका कोई सौंदर्य और आकार है, जो सुमन-सुगन्ध ... भी पतला है वह ऐसा अनुपम तत्व है।

—×—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

३७. विर्कताई कौ अंग

मेरै मन मैं पड़ि गई, ऐसी एक दरार।
फाटा फटक पषांण ज्यूं, मिल्या न दूजी बार ।।१।।

दरार=सम्बन्ध-विच्छेद की प्रतीक। फटक=स्फटिक, एक पत्थर विशेष।

कबीर कहते हैं कि अब मेरा संसार से सम्बन्ध विच्छेद हो गया है। जिस प्रकार स्फटिक पत्थर में पड़ी दरार को पुनः नहीं जोड़ा जा सकता उसी भांति अब मेरा मन संसार में नहीं रम सकता।

विशेष—उपमा अलंकार।

मन फाटा बाइक बुरै, मिटी सगाई साक।
जौ परि दूध तिवास का, ऊर्काट हूवा आक ।।२।।

वाइक बुरै=वुरी बातों से। सगाई=सम्बन्ध। साक=साख, विश्वास। तिवास=तीन दिवस का। ऊकटि=फट कर।

कबीर कहते हैं कि जिस प्रकार तीन दिन का रखा बासी दूध, जो आक के पौधे के समान विषाक्त हो जाता है, फट जाता है, उसी भाँति संसार की बुरी वातें देखकर मेरा मन उससे फट गया है, विरक्त हो गया है जिससे साँसारिक सम्बन्ध एवं विश्वास टूट गये हैं।

चंदन भागां गुण करै, जैसै चोली पंन।
दोइ जन भागां नां मिलैं, मुकताहल अरु मंन ।।३।।

चन्दन के टुकड़े-टुकड़े करने पर भी वह अपनी सुगन्ध नहीं त्यागता, जिस प्रकार चोली पहनी जाती है, उसी भाँति वक्षस्थल पर उसका शीतल लेप किया जा सकता है किन्तु दो वस्तुएं भग्न होने पर, टूट जाने पर पुनः नहीं मिल पातीं—एक तो मन और दूसरा मोती।

पासि बिनंठा कपड़ा, कदे सुरांग न होइ।
कबीर त्याग्या ग्यांन करि, कनक कामनी दोइ ।।४।।

विनंठां=विनष्ट हुआ, फटा-पुराना। सुरांग=अच्छा रंग।

जिस प्रकार फटे-पुराने जीर्ण वस्त्र पर रंग भली प्रकार नहीं चढ़ सकता, उसी प्रकार संसार से विरक्त मेरे मन पर सांसारिक आकर्षणों का रंग नहीं चढ़ सकता। कबीर ने ज्ञान पाकर स्वर्ण (धन) और कामिनी का परित्याग कर दिया है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चित चेतनि मैं गरक ह्व, चेत्य न देखै मंत।
कत कत की सालि पाड़िये, गल बल शहर ग्रनंत ।।५।।

कबीर कहते हैं कि हे मित्र ! चित्त को चैतन्यरूप परब्रह्म में लीन कर सावधान हो क्यों नहीं देखता ? इस संसार रूप बड़े नगर में न जाने कितनी चिन्ताएं एवं ताप हैं तू किस-किस को चिन्ता करेगा ? परब्रह्म की आराधना कर स्वयं अपना जन्म सफल कर।

जाता है सो जांण दे तेरी दसा न जाइ।
खेवटिया की नाव ज्यूं, घणें मिलेंगे ग्राइ ।।६।।

कबीर जीवात्मा को प्रबोध देते हुए कहते हैं कि जो संसार छोड़कर जा रहा है उसे जाने दे, व्यर्थ उसके पीछे ग्रश्रुपात मत कर। केवल यह ध्यान रख कि तेरा ग्राचार-व्यवहार ठीक रहे। तुझसे इस संसार में ग्रनेक लोग आकर उसी प्रकार मिल जायेंगे जिस प्रकार मल्लाह की नाव के किनारे ग्रा जाने पर बहुत से उसके साथ हो लेते हैं। भाव यह है कि इस ग्रावागमनपूर्ण संसार में जाने वाले की चिन्ता मत कर, जगत् के इस धारावाहिक क्रम में तुझे बहुत से मित्र मिल जायेंगे।

नीर पिलावत क्या फिरै, सायर घर घर बारि।
जो त्रिषावंत होइगा, तो पीवेगा झष मारि ।।७।।

कबीर कहते हैं कि हे साधक ! तू प्रभु भक्ति का उपदेशामृत प्रत्येक को पिलाने का क्यों प्रयत्न कर रहा है, क्योंकि इस भक्ति जल का सायर (सागर) प्रभु—सबके हृदय में विद्यमान है। जिसको प्रभु-भक्ति की प्यास होगी वह झख मार कर उसका पान करेगा अर्थात् प्रभु भजन करेगा।

सत गंठी कोपीन है, साध न मानै संक।
रांम ग्रमलि माता रहै, गिणैं इंद्र कौ रंक। ८।।

साधु ग्रपने हृदय में कोई साँसारिक वासना (काम वासना भी हो सकती है) नहीं रखता तो भी संयम के लिए वह सात गाँठ युक्त कोपीन धारण करता है। वह तो प्रभु-भक्ति में मदमस्त रहता है ग्रौर इसी प्रभु-भक्ति के गौरव में वह बड़े से बड़े राजा को भी भिक्षु समझता है।

दावै दाझण होत है, निरदावै निसंक।
जे नर निरदावै रहैं, ते गिणैं इंद्र कौं रंक ।।९।।

दावै=ग्रधिकार।

कबीरदास कहते हैं कि संसार में ग्रधिकार, स्वामित्व की इच्छा ही मनुष्य को दग्ध करती है, ग्रनुतप्त करती है। जो ग्रधिकार-भावना को विदूरित

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

देते हैं उन्हें किसी चोर आदि की शंका ही नहीं रहती। जो मनुष्य स्वामित्व की भावना का त्याग कर जीवन व्यतीत करेगा वह इतना महान् होगा कि बड़े से बड़े राजा को भी भिखारी समझेगा।

कबीर सब जग हंढिया, मंदिल कंधि चढाइ।
हरि बिन अपनां को नहीं, देखे ठोकि बजाइ ॥१०॥५६४॥

हंढिया=घूम लिया।

कबीरदास कहते हैं कि मैंने समस्त संसार में शरीर-भार को ढोते हुए घूम कर देख लिया है, और सुनिश्चित चिंतन और निरीक्षण के आधार पर देख लिया है कि प्रभु के अतिरिक्त अपना कोई और नहीं हैं।

विशेष—तुलना कीजिए—

"मैंने सीखी है जीवन की
कुछ और तरह परिभाषा।
अपने कहलाने वालों से
तुम रखना एक न आशा।
चकित न होना पथिक
तुम लख कर जग की झिल-मिल।
राग तुम्हें किससे परदेशी
दूर तुम्हारी मंजिल॥"

—o—

३८. समथाई कौ अंग

नां कुछ किया न करि सक्या, नां करणें जोग सरीर।
जे कुछ किया सु हरि किया, ताथैं भया कबीर कबीर ॥१॥

कबीरदास कहते हैं कि न तो मैंने कुछ सत्कर्म किया है और न मैं उसे करने में समर्थ हूं, न मेरा शरीर इतना शक्तिशाली है कि मैं कुछ सुकार्य कर सकूं। जो कुछ भी मैंने (परोपकार) किया है वह सब प्रभु ने ही किया है, उसी की कृपा से मैं इतना महान् हो गया हूं कि सब मेरा सम्मान करते हैं।

कबीर किया कछू न होत है, अनकीया सब होइ।
जे किया कुछ होत है, तौ करता औरै कोइ ॥२॥

कबीरदास कहते हैं कि मनुष्य के करने से कुछ भी नहीं हो सकता, जो हम करना नहीं चाहते हैं प्रभु-विधान से वह हो जाता है। यदि मनुष्य के प्रयत्न करने से कोई कार्य सफल भी हो जाता है तो उसका श्रेय और किसी को, प्रभु को, ही है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जिसहि न कोई तिसहि तूं, जिस तूं तिस सब कोइ।
दरिगह तेरी सांईयां, नांम हरू मन होई ॥३॥

जिसका संसार में कोई नहीं है उसके सहायक हे प्रभु! आप हैं और जिसके साथ आप हैं समस्त संसार उसका है। हे प्रभु! तेरे सम्मुख जाकर मन केवल तेरे नाम का ही स्मरण करता है।

एक खड़े ही लहैं, और खड़ा बिललाइ।
साईं मेरा सुलषनां, सूतां देइ जगाइ ॥४॥

सुलषनां = सुलक्षणयुक्त।

कबीर कहते हैं कि एक भक्त तो प्रभु का दर्शन खड़े होकर ही कर लेता है अर्थात् थोड़े से ही प्रयत्न से और दूसरा जिसका प्रभु में सच्चा अनुराग नहीं खड़ा-खड़ा प्रभु के लिये रोता पीटता है। मेरे प्रभु बड़े दयालु हैं कि उन्होंने मुझे संसार की माया-मोह-निद्रा से जगा कर चेतनायुक्त, ज्ञानयुक्त कर दिया।

सात समंद की मसि करौं, लेखनि सब बनराइ।
धरत सब कागद करौं, तऊ हरि गुंण लिख्या न जाइ ॥५॥

कबीर कहते हैं कि सातों समुद्र की यदि स्याही बनाकर समस्त वनों की लेखनी से, समस्त पृथ्वी रूप कागज पर यदि प्रभु के गुण लिखने बैठूं तो उनकी संख्या इतनी है कि यह सामग्री थोड़ी पड़ जायेगी और प्रभु के गुण समाप्त नहीं होंगे।

अबरन कौं का बरनिये, मौपैं लख्या न जाइ।
अपना बाना बाहिया, कहि कहि थाके माइ ॥६॥

अबरन=अवर्ण, निराकार, प्रभु, ब्रह्म।

कबीर कहते हैं कि निराकार प्रभु का क्या स्वरूप वर्णन किया जाय, मैं तो उसे देखने में असमर्थ हूं। इसीलिए प्रत्येक साधक ने उसे अपनी-अपनी रुचि के अनुरूप देखकर जितना वर्णन कर सके, किया है।

झल बांवैं झल दांहिनैं, झलहि मांहि व्यौहार।
आगैं पीछैं झलमई, राखैं सिरजनहार ॥७॥

झल=अग्नि। बावैं = वायें, वाम पार्श्व। दांहिनैं=दक्षिण पार्श्व। व्यौहार=क्रिया-कलाप।

कबीर कहते हैं कि इस संसार में जीवात्मा के वाम एवं दक्षिण पार्श्व में सांसारिक तापों की अग्नि जल रही है तथा जितना भी मनुष्य का कार्य-व्यवहार है सर्वत्र अग्नि ही अग्नि—दु:ख ही दु:ख—है। यहां तक कि आगे और पीछे मनुष्य का मार्ग इसी से अवरुद्ध है। केवल एक प्रभु ही इस संसार अग्नि से जीव की रक्षा कर सकते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सांईं मेरा बांणियां, सहजि करै व्यौपार।
बिन डांडी बिन पालड़ै, तोलै सब संसार॥८॥

बांणियां=बनिया, वणिक्।

कबीर कहते हैं कि मेरा स्वामी, प्रभु (प्रेम का) व्यापार करने वाला सच्चा व्यापारी है। तराजू के बिना ही समस्त संसार से इस व्यापार की तौल कर रहा है।

विशेष—भाव यह है कि जिस प्रकार सच्चा व्यापारी धन के बदले उतने ही मूल्य की वस्तु देता है, उसी प्रकार प्रभु से जो जितना अधिक प्रेम करता है, उस पर वह उतनी ही कृपा दृष्टि रखता है।

कबीर वार्या नांव परि, कीया राई लूण।
जिसहि चलावै पंथ तूं, तिसहिं भुलवै कौंण॥९॥

नांव=नाम, प्रभु नाम।

कबीर कहते हैं कि मैं तो प्रभु नाम की बलिहारी जाता हूं, इस नाम स्मरण से ही मेरा प्रभु से ऐसा अभिन्न साक्षात्कार हो गया कि मैं प्रभु से राई और नमक के समान एकमएक हो गया। हे प्रभु! जिसे आप भक्ति के सन्मार्ग पर चलाते हैं, उसे साँसारिक विषय-वासना कैसे पथ-भ्रष्ट कर सकती है?

कबीर करणीं क्या करै, जे रांम न करै सहाइ।
जिहिं जिहिं डाली पग धरै, सोई नवि नवि जाइ॥१०॥

कबीर कहते हैं कि यदि प्रभु सहायता न करे तो मनुष्य कुछ भी कर्म नहीं कर सकता। प्रभु की अनुकम्पा के अभाव में तो मनुष्य जिस-जिस शाखा को लक्ष्य तक पहुंचने का अवलम्ब बनाता है वही झुक जाती है। भाव यह है कि प्रभु सहायता बिना साधन व्यर्थ हो जाते हैं।

जदि का माइ जनमियां, कहूँ न पाया सुख।
डाली डाली मैं फिरौं, पातौं पातौं दुख॥११॥

कबीर कहते हैं कि हे प्रभु जब से मैंने जीवन धारण किया है कभी भी सुख प्राप्त नहीं किया। सुख प्राप्ति के लिये मैंने जितना अधिक प्रयत्न किया दुख ने उतना ही मुझे व्यथित किया।

विशेष—"तू डाल डाल मैं पात पात" लोकोक्ति को कबीर ने यहां प्रयुक्त कर बड़े सुन्दर रूप में दुख की महत्ता दिखाई है।

सांई सूं सब होत है, बंदे थैं कुछ नांहि।
राई थैं परबत करै, परबत राई मांहि॥१२॥६०६॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बंदे=मनुष्य ।

प्रभु सब कुछ करने में समर्थ है किन्तु मनुष्य कुछ नहीं कर सकता। शक्तिसम्पन्न प्रभु राई जैसे तुच्छ कण को पर्वताकार दे सकते हैं और पर्वत को राई के समान छोटा बना सकते हैं। असम्भवतम कार्य उनके लिए सम्भव है।

—×—

३६. कुसबद कौ अंग

अणी सुहेली सेल की, पड़तां लेइ उसास।
चोट सहारै सबद की, तास गुरू मैं दास ॥१॥

अणी=अनी, नोक। सुहेली=सहने योग्य। सेल=बरछी। पड़तां=घायल होकर गिरने पर भी।

बरछी की नोक की मार तो सही भी जा सकती है क्योंकि उसके लगने पर व्यक्ति गिर कर भी सांस लेता रहता है किन्तु कुशब्द, बुरी वाणी से व्यक्ति तत्क्षण मर जाता है। कबीर कहते हैं कि जो कुशब्द की चोट के आघात को चुपचाप सहन कर लेगा, वह मेरा गुरु है और मैं उसका शिष्य।

विशेष—(१) तुलना कीजिये—

"अग्निदाहादपि विशिष्टं वाक्पारुष्यम्।"

—'चाणक्य-सू

(वाणी की कठोरता अग्नि के दाह से भी अधिक कष्ट देती है।")

कुछ विद्वान् द्वितीय पंक्ति का अर्थ इस प्रकार भी करते हैं कि "सद्गुरु के शब्द की चोट जो झेल जाये वह गुरु है और मैं उसका दास", किन्तु यह अर्थ भ्रामक है क्योंकि यहाँ 'शब्द' कबीर पंथी गीत के अर्थ में नहीं आया। यहाँ तो (जैसा कि शीर्षक से ही स्पष्ट है) इसका अर्थ बुरे वचन ('कुसबद') से है।

खूंदन तौ धरती सहै, बाढ सहै बनराइ।
कुसबद तौ हरिजन सहै, दूजै सह्या न जाइ ॥२॥

खूंदन=पैरों की रगड़। बनराइ=वनराजि, वन-पंक्ति।

कबीर कहते हैं कि जिस प्रकार पैरों के नीचे रौंदने के कष्ट को पृथ्वी ही सहन कर सकती है और बाढ़ को रोकने में वन-पंक्ति ही समर्थ है, उसी प्रकार केवल प्रभु-भक्त, साधु ही बुरे वचनों को चुपचाप सह सकता है।

विशेष तुलना कीजिए—

"बंद अघात सहैं गिरि कैसे। खल के वचन संत सहँ जैसे ॥"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सीतलता तब जांणियें, समिता रहै समाइ।
पष छाडै निरपष रहै, सबद न दूष्या जाइ ॥३॥

पष=पक्ष, अपनत्व। दूष्या जाई=दूषित लगे, बुरा लगे, कटु लगे।

कबीर कहते हैं कि 'मैं' और 'तू' रहित समदृष्टि आने पर ही मनुष्य का स्वभाव शान्तिपूर्ण बन सकता है। अपनत्व छोड़कर निष्पक्ष रहने से किसी की (बुरी) वाणी भी असह्य नहीं लगती।

कबीर सीतलता भई, पाया ब्रह्म गियान।
जिहि बैसंदर जग जल्या, सो मेरे उदिक समान ॥४॥६१०॥

बैसंदर=अग्नि। उदिक=जल।

कबीर कहते हैं कि ब्रह्म ज्ञान प्राप्त होने से मेरा मन शीतल हो गया। जिस माया की अग्नि से समस्त संसार दग्ध हो रहा था, प्रभु-कृपा से वह मेरे लिए जल के समान शीतल और निर्मल हो गई है।

—×—

४०. सबद कौ अंग

कबीर सबद सरीर मैं, बिनि गुण बाजै तंति।
बाहरि भीतरि भरि रह्या, ताथैं छूटि भरंति ॥१॥

गुण=रस्सी, यहाँ तार, जो वीणा में लगे होते हैं, से तात्पर्य। तंति=तन्त्री, वीणा। भरंति=भ्रान्ति, माया का भ्रम।

कबीर कहते हैं कि शरीर में अक्षर ब्रह्म का अनहद नाद हो रहा है और इस प्रकार बिना तार के ही वीणा झंकृत हो रही है। यह अनहद नाद संसार में सर्वत्र और मनुष्य के शरीर के भीतर हो रहा है—इसमें रम जाने से माया भ्रम में मनुष्य नहीं पड़ता।

विशेष—योगियों की यह मान्यता है कि 'ब्रह्माण्ड' में सर्वत्र अनहद नाद हो रहा है और यही अनहद नाद 'पिण्ड'—शरीर—में भी हो रहा है। योगियों की इसी मान्यता को कबीर ने यहां प्रस्तुत किया है।

सती संतोषी सावधान, सबद भेद सुबिचार।
सतगुर के प्रसाद थैं, सहज सील मत सार ॥२॥

सती, सन्तोष प्राप्त व्यक्ति एवं संसार की विषय-वासनाओं से सचेत व्यक्ति, इस अनहद नाद की महिमा से परिचित होते हैं क्योंकि इनका मन निर्मल होता है। ये सब वर्ग सद्गुरु की कृपा से यह जान जाते हैं कि संसार के समस्त मतों, सम्प्रदायों का सार—अपने आचरण को ठीक रखना (सहज-शील) है जिससे चित्त निर्मल रहता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सतगुर ऐसा चाहिए, जैसा सिकलीगर होइ।
सबद मसकला फेरि करि, देह द्रपन करै सोइ ॥३॥

सिकलीगर=शान रखने वाला कारीगर। मसकला=पत्थर का एक घेरा सा, जो सिकलीगर की साइकिल-सी में लगा रहता है, पैर से पैडल घुमाकर ही इस पत्थर द्वारा शान लगायी जाती है। द्रपन=दर्पण, सिकलीगर जंग लगे चाकू आदि को भी शीशे के समान चमका देता है।

कबीर कहते हैं कि सद्‌गुरु को सिकलीगर के समान होना चाहिए शब्द रूपी पत्थर को घुमाकर उसके द्वारा साधक के शरीर को शीशे के समान चमका कर शुद्ध बना दे।

सतगुर साचा सूरिवाँ, सबद जु बाह्या एक।
लागत ही भै मिलि गया, पड़्या कलेजै छेक ॥४॥

साँचा=वास्तविक।,बाह्या=मारा, छोड़ा, यहाँ 'कहने' के अर्थ में, तीर के समान मर्मान्तक प्रभाव रखने के कारण ही इसे 'बाह्या' कहा है। भूमि। छेक=छिद्र, दरार, विभेद, यहाँ संसार से सम्बन्ध-विच्छेद होगा।

कबीर कहते हैं कि सद्‌गुरु ही सच्चा शूरवीर है। उसने केवल अपना शब्द रूपी वाण साधक के ऊपर छोड़ा जिसके लगते ही वह पृथ्वी पर शायी हो गया, समाधिस्थ हो गया और मेरा संसार से सम्बन्ध विच्छेद गया। भाव यह है कि गुरु कृपा से ही सब कृत्य सफल होते हैं।

हरि-सर जे जन बेधिया, सतगुण सीं गणि नांहि।
लागी चोट सरीर मैं, करक कलेजे मांहि ॥५॥

हरि-सर=प्रभु-वाण।

कबीर कहते हैं कि जो प्रभु-प्रेम पाश में एक वार फंस गया उस सातों गुणों युक्त सींगनियों से भी किये गये वाण का कुछ प्रहार नहीं हो सकता क्योंकि शब्द रूपी बाण की चोट तो साधक के शरीर में लगी है और वेदना हृदय-प्रदेश में हो रही है।

अलंकार—असंगति।

ज्यूं ज्यूं हरि गुण साँभलूं, त्यूं त्यूं लागै तीर।
साँठी साँठी झड़ि पड़ी, भलका रह्या सरीर ॥६॥

साँभलू=सम्हलता हूं, स्मरण करता हूं। साँठी-साँठी=लकड़ी-लकड़ी कबीर कहते हैं कि जितना ही अधिक मैं प्रभु-गुण का स्मरण करता उतना ही अधिक प्रभु-प्रेम का तीर मेरे हृदय में उसी प्रकार बैठता जाता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जैसे धनुष की प्रत्यंचा (गुण) को कोई जितना अधिक खींचेगा उतना ही अधिक तीर गहरा लगेगा। मेरे मुख से कही गई वाणी में जो सारतत्व था वह भाले की अनी के समान हृदय में प्रविष्ट हो गया और शेष निरर्थक बातें भाले की लकड़ी के समान बाहर ही टूट कर गिर गईं।

ज्यूं ज्यूं हरि गुण सांभलौं, त्यूं त्यूं लागै तीर।
लागैं थैं भागा नहीं, साहणहार कबीर ॥७॥

ज्यों-ज्यों, अधिकाधिक, मैं प्रभु गुणों का स्मरण करता हूं उनकी प्रेम-भक्ति का तीर मेरे हृदय में गहरे से गहरा पैठता है। उस प्रेम-वेदना से विचलित हो साधक प्रेम-पंथ से भागने लगा और जो उस ईश-विरह-वेदना को सहन कर जाता है, वही कबीरदास के समान भक्त बन जाता है।

सारा बहुत पुकारिया, पीड़ पुकारै और।
लागी चोट सबद की, रह्या कबीरा ठौर ॥८॥६१८॥

ढोंगी साधु ईश्वर प्रेम-वेदना का मिथ्याडम्बर कर बहुत प्रदर्शन करता है और जो उस ईश्वरीय पीडा से पीड़ित होते हैं उनकी वेदना कुछ और ही होती है। सद्गुरु के शब्द रूपी बाण की चोट लगकर कबीर तो एक स्थान पर स्थित हो गया है। भाव यह है कि सद्गुरु के उपदेश-बाण से वृत्तियां केन्द्रित हो प्रभु-भक्ति में लग जाती हैं।

—×—

४१. जीवन मृतक कौ अंग

जीवत मृतक ह्वै रहै, तजै जगत की आस।
तब हरि सेवा आपण करै, मति दुख पावै दास ॥१॥

जीवत=जीवित। दास=भक्त।

जो मनुष्य जीवित रहते हुए भी साँसारिक माया-जन्य आकर्षणों में उलझते हुए जीवन्मुक्त हो साँसारिक आशा-अभिलाषाओं का परित्याग कर देते हैं; उन्हें प्रभु अपनी सेवा में कर (अनुकम्पापूर्वक) उसका दुख दूर कर देते हैं।

कबीर मन मृतक भया, दुरबल भया सरीर।
तब पैंडे लागा हरि फिरै, कहत कबीर कबीर ॥२॥

कबीर-कबीर=भक्त के लिए सम्बोधन से तात्पर्य है।

कबीर कहते हैं कि यदि मन मर जाय, सांसारिक आकर्षणों में निश्चेष्ट हो जाय और शरीर प्रभु-भक्ति में दुर्बल हो जाय तब भक्त के पीछे भगवान् उसे पुकारते-फिरते हैं अर्थात् कथित आचरण से स्वयमेव भगवत्-प्राप्ति हो जाती है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कबीर मरि मड़हट गह्या, तब कोइ न बूझै सार।
हरि आदर आगैं लिया, ज्यूं गउ बछ की लार ॥३॥

मड़हट=श्मशान, संसार।

कबीर जीवन्मुक्त हो जीवित अवस्था में भी मरकर इस संसार रूपी श्मशा में उपेक्षित पड़ा रहा, समस्त संसार ने उससे सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। के प्रभु ने ही मुझे उस वत्सल भाव से ग्रहण किया जिस भाँति गाय अपने ब को, अर्थात् ममता और स्नेहपूर्वक।

घर जालौं घर ऊबरै, घर राखौं घर जाइ।
एक अचंभा देखिया, मड़ा काल कौं खाइ ॥४॥

यदि मैं इस साँसारिक घर-बार को जला देता हूं, इसके ममता-बन्धन नहीं पड़ता हूं तो वह वास्तविक घर—प्रभु-साक्षात्कार से प्राप्त घर—बचता और यदि इस साँसारिक गृह-रक्षा में पड़ माया बन्धन में पड़ता हूं तो वास्तविक घर—उद्देश्य—मोक्ष नष्ट हो जाता है। कबीर कहते हैं कि एक बहुत बड़ा आश्चर्य देखा है कि मृतक शव काल को समाप्त कर रहा (जबकि साधारण अवस्था में काल मृतक को खाता है) अर्थात् जीवन्मुक्त मनु काल की सीमा और शक्ति को समाप्त कर अमर हो रहा है।

मरतां मरतां जग मुवा, औसर मुवा न कोइ।
कबीर ऐसैं मरि मुवा, ज्यूं बहुरि न मरनां होइ ॥५॥

मुवा=समाप्त हो गया। औसर=अवसर।

मृत्यु को प्राप्त होता-होता ही संसार विनष्ट हो गया किन्तु अवसर र हुए मरना, जीवन्मुक्त होना, किसी ने नहीं जाना। कबीर अपने जीवन-का में ही इस प्रकार मृत्यु को प्राप्त हो गया कि संसार के आकर्षणों एवं विष से कोई सम्बन्ध ही नहीं रह गया अर्थात् जीवन्मुक्त हो गया कि अब उसे आवा गमन के इस संसार चक्र में पड़ना नहीं पड़ेगा।

बैद मुवा रोगी मुवा, मुवा सकल संसार।
एक कबीरा ना मुवा, जिनि के राम अधार ॥६॥

कबीर कहते हैं कि वैद्य अर्थात् संसार-ताप से पिंड छुड़ाने का प्रयत्न क वाला भी समाप्त हो गया और समस्त संसार भी उसके उपचार से ठी न होकर नष्ट हो गया, केवल वही बच रहे जिनके एक मात्र आध प्रभु थे।

मन मार्या ममिता मुई, अहं गई सब छूटि।
जोगी था सो रमि गया, आसणि रही बिभूति ॥७॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ममता='अयं परो वा' की भावना ।

सांसारिक विषयों में मन की गति अवरुद्ध होने पर ममत्व का मोह एवं का दर्प सब समाप्त हो गया । ऐसी अवस्था आने पर साधक प्रभु में रम और जिस आसन पर वह समाधिस्थ था वहाँ तो केवल शरीर—शव— रह गया ।

जीवन थैं मरिबौ भलौ, जौ मरि जानैं कोइ ।
मरनैं पहली जे मरें, तो कलि अजरावर होइ ।।८।।

अजरावर=आश्चर्यचकित ।

जीवन, जिसमें संसार-विषयों में ही मनुष्य उलझा रहता है, से तो मृत्यु ही छी है यदि कोई जीवनावस्था में ही मृत्यु को प्राप्त हो जाय अर्थात् संसार पूर्ण तटस्थ हो जीवन्मुक्त हो जाय ।

खरी कसौटी रांम की, खोटा टिकै न कोइ ।
रांम कसौटी सो टिकै, जौ जीवत मृतक होइ ।।९।।

प्रभु-भक्ति ही श्रेष्ठता की वास्तविक कसौटी है जिस पर कोई कुप्रवृत्ति-ष्य खरा नहीं उतर सकता । प्रभु-भक्ति की कसौटी पर तो वही खरा र सकता है जो जीवित अवस्था में ही संसार से मृतक के समान असम्बद्ध —यही जीवन्मुक्त अवस्था है ।

आपा मेट्यां हरि मिलै, हरि मेट्यां सब जाइ ।
अकथ कहांणी प्रेम की, कह्यां न को पत्ययाइ ।।१०।।

पत्ययाई=विश्वास करे ।

मनुष्य यदि अपने अहं-दर्प को समाप्त कर दे तो प्रभु-प्राप्ति सम्भव है किन्तु संसार के आकर्षणों के सम्मुख ईश्वर को विस्मृत कर दिया जाता है तो स्व नष्ट हो जाता है । प्रभु-प्रेम की यह विलक्षण गति अवर्णनीय है । यदि का वर्णन किया जाय तो कोई विश्वास नहीं कर सकता ।

निगुसांवां वहि जाइगा, जाकै थाघी नहीं कोइ ।
दीन गरीबी बंदिगी, करतां होइ सु होइ ।।११।।

निगुसांवां=स्वामीहीन । थाघी=नाव की पतवार ।

इस संसार में प्रभु-विश्वास के अवलम्ब बिना नष्ट हो जायगा, इस संसार-रता में जिसकी नौका का गुरुरूपी पतवार नहीं वह वह जायगा, समाप्त हो यगा । विनम्रता और श्रद्धा सहित दीनावस्था में भी प्रभु-भक्ति का कुछ न छ कार्य करता रह ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दीन गरीबी दीन कौं, दूंदर कौं अभिमान।
दुंदर दिल बिस सूं भरी, दीन गरीबी राम ॥१२॥

दीन=निर्धन। दूंदर=धनिक। विष=विषय-वासना एवं भावना।

जो निर्धन हैं उनमें विनम्रता है एवं दूसरी ओर धनिक में अभि... है। धनिक का हृदय विषय-वासनाओं एवं कलुषित भावनाओं से भरा... और निर्धन का हृदय प्रभु-भक्ति से ओत-प्रोत रहता है।

कबीर चेरा सत का, दासनि का परदास।
कबीर ऐसें ह्वै रह्या, ज्यूं पांऊँ तलि घास ॥१३॥

चेरा=चेला, शिष्य।

कबीर कहते हैं कि मैं साधु-सन्तों का शिष्य एवं प्रभु-भक्तों का दा... हूं। जिस प्रकार घास पैरों के नीचे रुंदकर भी प्रतिकार नहीं कर... भांति मैं भी सन्तों और भक्तों का विनम्र सेवक हूं।

रोड़ा ह्वै रहौ बाट का, तजि पाषँड अभिमान।
ऐसा जे जन ह्वै रहै, ताहि मिलै भगवान ॥१४॥

बाट का=मार्ग का।

कबीर कहते हैं कि हे साधक ! तू अपने में ऐसा विनीत भाव बना... प्रकार मार्ग में पड़ा रोड़ा सबका पदाघात चुपचाप सहता है। जब... ऐसा विनम्र भाव और अहं का विसर्जन हो जायगा तभी तुझे प्रभु... जायगी।

—x—

४२. चित कपटी कौ अंग

कबीर तहाँ न जाइए, जहाँ कपट का हेत।
जालूं कली कनीर की, तन रातौ मन सेत ॥१॥

कबीर कहते हैं कि जहां कपटपूर्ण स्नेह का प्रदर्शन मात्र हो वहां न... जाना चाहिए। कनीर-पुष्प ऊपर से लाल होता है और भीतर से श्वेत... अनुराग का लाल रंग कृत्रिम है क्योंकि हृयय में तो श्वेत—फीका—रं... पुष्प को नष्ट कर देना उपयुक्त है अर्थात् ऐसे कपटी-हृदय मनुष्य से प्रे... तोड़ देना चाहिए।

विशेष—'कली कनीर की'—का अर्थ कुछ विद्वानों ने कनेर के... लगाया है किन्तु कनेर का फूल पीला होता है। यहाँ कबीर का ता... हरिया के लाल-समन से है जो भीतर से श्वेत निकलता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

संसारी साषत भला, कंवारी कै भाइ।
दुराचारी बैश्नौं बुरा, हरिजन तहाँ न जाइ ।।२।।

कबीर शाक्तों के विरोधी एवं वैष्णवों के प्रशंसक हैं किन्तु मिथ्याचारी वैष्णव के वे शत्रु हैं—उससे तो अच्छा वे घृणित शाक्त को ही बताते हैं। वे कहते हैं संसार-लिप्त शाक्त, संन्यासी किन्तु दुराचारी वैष्णव से अच्छा है। संसारी शाक्त तो मन से कुमारी कन्या के समान निर्मल है और वह वैष्णव दूषित भावनाओं से परिपूर्ण, प्रभु भक्त को ऐसे वैष्णव के पास नहीं जाना चाहिए।

निरमल हरि का नांव सों, कै निरमल सुध भाइ।
कै लै दूणी कालिमां, भावै सौ मण साबण लाइ ।।३।।६३५।।

कै=अथवा। सुध भाइ=शुद्ध भाव। दूणी=दुगुनी। सौ मण=सौ मन, अपरिमित।

कबीर कहते हैं कि इस संसार में दो ही प्रकार के आचरण हो सकते हैं—प्रथम तो प्रभु का प्रेम-पूर्वक स्मरण और प्रत्येक व्यवहार में मन की पवित्रता रखना, अथवा दूसरा मार्ग यह है कि मनुष्य कुकर्मों में अधिकाधिक संलग्न रहे, फिर उस कालुष्य को चाहे तो भी सौ मन साबुन लगाकर भी समाप्त नहीं कर सकता है। भाव यह है कि एक मात्र प्रभु भक्ति ही संसार में काम्य है।

—x—

४३. गुरुसिष हेरा कौ अंग

ऐसा कोई नां मिलै, हम कौं दे उपदेस।
भौसागर मैं डूबतां, कर गहि काढ़ै केस ।।१।।

भौसागर=भव-सागर, संसार-समुद्र।

कबीर कहते हैं कि इस संसार में कोई ऐसा कृती मनुष्य (गुरु) नहीं मिला जो हमें उपदेश दे सके, जो इस संसार-समुद्र में मुझे डूबते हुए को हाथ और केश पकड़ कर निकाल ले।

ऐसा कोई नां मिलै, हम कौं लेइ पिछानि।
अपना करि किरपा करै, ले उतारै मैदानि ।।२।।

पिछानि=पहचान।

कबीर कहते हैं कि हमें संसार में ऐसा कोई मनुष्य नहीं मिला जो मेरे गुणों को पहचान कर मुझे शिष्य बना लेता और कृपापूर्वक अपना कर इस संसार-क्षेत्र के पार उतार देता।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ऐसा कोई नां मिलै, रांम भगति का गीत।
तन मन सौंपे मृग ज्यूं, सुनैं बधिक का गीत॥३॥

प्रभु भक्ति से परिपूर्ण कोई गुरु हमें न मिल सका जिसके उप पर हम अपना तन-मन, सर्वस्व, उसी प्रकार अर्पित कर देते जैसे मृग का तन्त्रीनाद सुन कर विमोहित हो रुक जाता है—फिर उसे यह नहीं रहती कि मेरे शरीर पर अनवरत बाण-वर्षा हो रही है।

ऐसा कोई नां मिलै, अपना घर देइ जराइ।
पंचू लरिका पटिक करि, रहै रांम ल्यौ लाइ॥४॥

हमें किसी ऐसे पूर्ण विरक्त के दर्शन नहीं हुए जो अपना द्वार भस्म कर देता और अपने काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, रूपी अथवा पाँचों इन्द्रियों रूपी लड़कियों से पूर्ण सम्बन्ध विच्छेद कर प्रभु प्रेम करता हो।

ऐसा कोई नां मिलै, जासौं रहिये लागि।
सब जग जलता देखिये, आपहीं अपणीं आगि॥५॥

कबीर कहते हैं कि मुझे कोई ऐसा सिद्ध नहीं मिला जिसका किया जाता। मैंने समस्त संसार को अपनी-अपनी धुन में व्यस्त अपनी चिन्ता-व्यथाओं में भस्म होते देखा है।

ऐसा [कोई नां मिलै, जासूं कहूं निसंक।
जासूं हिरदै की कहूं, सो फिरि मांडै कंक॥६॥

मांडै=गूंधना। कंक=कंकाल शरीर।

कबीर कहते हैं कि ऐसा व्यक्ति संसारमें कोई नहीं मिला जिससे नि होकर अपने मन की बात कह सकूं। जिससे मैं अपने हृदय का सम प्रकट कर देता हूं वही सब स्थितियों से अवगत हो मेरे शरीर को व्यथित करता है जैसे आटे को गूंध-गूंध कर, घूंसे मार-मार कर, जाती है।

ऐसा कोई नां मिलै, सब बिधि देइ बताइ।
सुनि मंडल मैं पुरिष एक, ताहि रहै ल्यौ लाइ॥७॥

ऐसा कोई सद्गुरु नहीं मिला जो योगसाधना के समस्त रहस्यों अवगत कराता और शून्य मण्डल में स्थित उस परम-पुरुष की अनन्त मेरा साक्षात्कार करा देता।

हम देखत जग जात है, जग देखत हम जांह।
ऐसा कोई नां मिलै, पकड़ि छुड़ावै बांह॥८॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हमारे देखते ही देखते सम्पूर्ण संसार विनष्ट हुआ जा रहा है और समस्त जगत् के सम्मुख मेरा भी विनाश हुआ जा रहा है। कोई ऐसा कृती (गुरु) नहीं मिला जो इस कालचक्र से मेरी भुजा पकड़ कर निकाल लेता।

तीनि सनेही बहु मिलैं, चौथै मिलै न कोइ।
सबै पियारे राम के, बैठे परबसि होइ ॥९॥

इस संसार में 'तीन' के तो प्रेमी बहुत हैं किन्तु एक उस परम प्रभु का प्रेमी कोई नहीं। यद्यपि सब प्रभु से कुछ न कुछ अनुराग रखते हैं किन्तु फिर भी वे मायाग्रस्त हो संसार में लिप्त हैं।

विशेष—"तीन सनेही बहु मिलैं" में तीन के विभिन्न अर्थ लिए जा सकते हैं—प्रत्येक सन्दर्भ में 'चौथे' का अर्थ कुछ बदल जायगा, यथा—

(१) (i) जागृत (ii) स्वप्न (iii) सुषुप्ति (iv) तुरीय—यही काम्य है।

(२) (i) धर्म (ii) अर्थ (iii) काम (iv) मोक्ष—यही काम्य है।

(३) (i) लोकैषणा (ii) वित्तैषणा (iii) पुत्रैषणा (iv) प्रभु प्राप्ति की इच्छा—यही काम्य है।

इनमें २ व ३ नं० में पर्याप्त समानता है।

माया मिलै महोबंती कूड़े आखै बैन।
कोई घायल बेध्या नां मिलै, साईं हंदा सैण ॥१०॥

महोबंती=मोहयुक्त। कूड़े=बुरे। आखै=कहती है। वेध्या=वेधा हुआ। साईं=प्रभु। सैंण=कटाक्ष।

इस संसार में सर्वत्र मोहमयी माया का साम्राज्य है जो कुवचन कहती है, मिथ्याचार कराती है। प्रभु की प्रेम-दृष्टि के कटाक्ष का घायल, उससे जिसका हृदय विंध गया है, ऐसा कोई नहीं मिलता।

सारा सूरा बहु मिलै, घायल मिलै न कोइ।
घाइल ही घाइल मिलै, तब रांम भगति दिढ़ होइ ॥११॥

सारा सूरा=अक्षत योद्धा, वीर।

संसार में ऐसे योद्धा तो अनेक मिले जो प्रभु-भक्ति से घायल नहीं थे किन्तु घायल कोई नहीं मिला। जब प्रभुभक्ति से घायल भक्त को अपने समान ही घायल मिल जाता है तो प्रभु-भक्ति परिपक्व होती है।

प्रेमी ढूंढ़त मैं फिरौं, प्रेमीं मिलै न कोइ।
प्रेमीं कौं प्रेमीं मिलै, तब सब विष अमृत होइ ॥१२॥

मैं प्रभु के प्रेमी को खोज रहा हूं किन्तु कोई प्रभु-प्रेमी नहीं मिल रहा है। जब एक भक्त को दूसरा भक्त मिल जाय तो संसार की विषय-वासनाओं का विष समाप्त हो जाता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हम घर जाल्या आपणां, लिया मुराड़ा हाथि।
अब घर जालौं तास का, जे चलै हमारे साथि ॥१३॥

मैंने अपना घर जला दिया है और ज्ञान-शलाका की मशाल लेकर साधना पथ में बढ़ रहा हूं। अब मैं उसका इस संसार से सम्बन्ध विच्छेद कर घर फूंक दूंगा जो मेरे साथ चलने के लिए प्रस्तुत हो—साधना के उसी पथ को अपनाने के लिए साथी का घर फुंकवाना आवश्यक है।

---

४४. हेत प्रीति सनेह कौ अंग

कमोदनीं जलहरि बसै, चंदा बसे अकासि।
जो जाही का भावता, सो ताही कै पास ॥१॥

कमुदनी=एक पुष्प विशेष, जो जल में होता है और चन्द्र दर्शन से विकसित होता है।

कुमुदिनी का वास जल में है और चन्द्रमा उससे बहुत दूर आकाश में स्थित है किन्तु फिर भी उनका प्रेम प्रसिद्ध है। वस्तुतः जो जिसका वास्तविक प्रेमी है वह दूर रहकर भी उसके बहुत सन्निकट है।

विशेष—अर्थान्तरन्यास अलंकार।

कबीर गुर बसै बनारसी, सिष समंदां तीर।
बिसार्या नहीं बीसरै, जे गुंण होइ सरीर ॥२॥

कबीर कहते हैं कि साधक का गुरु तो काशी में रहता है और शिष्य समुद्र तट पर बैठा तपस्या करता है किन्तु जो साधक गुणवान् है तो गुरु उसे दूर रहने पर भी नहीं भूल सकता।

जो हैं जाका भावता, जदि तदि मिलसी आइ।
जाकौं तन मन सौंपिया, सो कबहूं छांड़ि न जाइ ॥३॥

जदि-तदि=यदा-कदा।

जो जिसका प्रिय है वह उसे यदा कदा मिल ही जाता है। जिसको तन-मन सर्वस्व अर्पण किया जा चुका है वह कभी भी प्रिय से सम्बन्ध विच्छेद नहीं करेगा।

स्वामी सेवक एक मत, मन ही मैं मिलि जाइ।
चतुराई रीझै नहीं, रीझै मन कै भाइ ॥४॥६५३॥

स्वामी और सेवक—प्रभु और भक्त—दोनों मन में ही मिलकर एक-मत हो जाते हैं हृदयगत प्रेरणा उन्हें एक मेक कर देती है। प्रभु किसी के ज्ञान पर नहीं अपितु मन के प्रेम भाव पर ही रीझते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

४५. सूरा तन कौ अंग

काइर हुवां न छूटिये, कछु सूरा तन साहि।
भरम भलका दूरि करि, सुमिरण सेल संबाहि ॥१॥

काइर=कायर। सूरा=शूरता। साहि=सुशोभित कर, सराह। भरम भलका=भ्रम रूपी भाला। सुमिरण=प्रभु स्मरण। सेल=बरछी, एक अस्त्र-विशेष।

कबीर कहते हैं कि कायर रहने से तो संसार (के युद्ध क्षेत्र) से मुक्त नहीं हो सकता। माया-मोह, काम-क्रोध आदि से युद्ध करने में कुछ वीरता दिखा। इस संसार के भ्रम-रूपी भाले को दूर फेंक दे और प्रभु-स्मरणकी बरछी से असद् के संग्राम को जीत।

षूंणै पड़्या न छूटियो, सुणि रे जीव अबूझ।
कबीर मरि मैदान मैं, करि इंद्र्याँ सूं झूझ ॥२॥

षूंणों=कोने में, एकान्त में। अबूझ=अज्ञानी। मैदान=युद्ध क्षेत्र, संसार। झूझ=युद्ध।

कबीर कहते हैं कि हे मूर्ख जीवात्मा एकान्त में तपस्या करने से तेरी मुक्ति नहीं होगी। मुक्ति के लिए संसार के रणक्षेत्र में इन्द्रियों से युद्ध करना आवश्यक है। भाव यह है कि इन्द्रिय-जयी ही मुक्तात्मा है।

कबीर सोई सूरिवां, मन सूं मांडै झूझ।
पंच पयादा पाड़ि ले, दूरि करै सब दूज ॥३॥

सूरिवाँ=सूरमाँ-शूरमा, शूरवीर। पंच पयादा=काम, क्रोध मद, लोभ, मोह—पाँच पदाति, प्राचीन समय में चार कार की सेनाओं का उल्लेख प्राप्त होता है—गजसेना, रथसेना, अश्वसेना एवं पताति सेना। कबीर यहाँ पदाति के सैनिकों का उल्लेख करते हैं। दूज=द्वैध, द्वैत भावना।

कबीर कहते हैं कि शूर ीर वही है जो मन रूपी शत्रु से युद्ध करे और उसके काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह रूपी पाँचों पदाति सैनिकों को भगा दे तथा द्वैत भावना को भी रणक्षेत्र में न रुकने दे।

सूरा झूझै गिरद सूं, इक दिसि सूर न होइ।
कबीर यौं बिन सूरिवां, भला न कहिसी कोइ ॥४॥

गिरद=इर्द-गिर्द. चारों ओर।

युद्धपक्ष—वस्तुतः शूरवीर वही है जो चारों ओर घूमकर युद्ध करे—एक ही दिशा के शत्रुओं का नाश करने वाला सच्चा शूर नहीं। जो इस प्रकार युद्ध नहीं करता उसे कोई श्रेष्ठ योद्धा नहीं कह सकता।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

साधनापक्ष—साधक को अपने चारों ओर छाये माया-आकर्षणों ए असत् तत्वों से युद्ध करना चाहिए, जो केवल एकाध असत् तत्व से वह सच्चा साधक नहीं रहता। सच्चे साधक के लिए समस्त असत् संग्राम आवश्यक है।

कबीर आरणि पैसि करि, पीछैं रहै सु सूर।
सांईं सूं साचा भया, रहसी सदा हजूर ॥५॥

आरणि=अरण्य, वन। पैसि करि=प्रवेश कर। साचा भया= प्रति सच्चा। हजूर=कृपा प्राप्त।

कबीर कहते हैं कि इस संसार रूपी वन में प्रविष्ट हो जो पीछे इसके विषय-वासना जंजाल में न फंसा वही सच्चा शूरवीर है। वह प्रभु के प्रति अपने कर्तव्य का पालन कर सर्वदा उनका रहता है।

गगन दमांमाँ बाजिया, पड़्या निसानैं घाव॥
खेत बुहार्‌या सूरिवैं, मुझ मरणे का चाव ॥६॥

गगन=शून्य, ब्रह्माण्ड, सहस्रदल कमल। दमांमां=नगाड़ा। नि ध्वनि से। घाव=चोट। बुहार्‌या=साफ किया।

शून्य प्रदेश में कुण्डलिनी के विस्फोट से अनहद नाद हो रहा है ध्वनि सुनकर तन-मन उसी नाद से पूर्ण हो गया। साधक ने काम, क्रो लोभ, मोह आदि विषयों का कालुष्य हटा कर मन-क्षेत्र को स्वच्छ किया उसे जीवन्मुक्त होने की लालसा थी।

कबीर मेरै संसा को नहीं, हरि रं लागा हेत।
कांम क्रोध सूं झूझणां, चौड़े मांड्या खेत ॥७॥

संसा=शंका। हेत=प्रीति। झूझणाँ=युद्ध करना। चौड़े मांड्या विस्तृत क्षेत्र में, संसार-क्षेत्र में।

कबीर कहते हैं कि अब मैं प्रभु से प्रेम करके पूर्ण निशंक हो गया हूं तो इस संसार क्षेत्र में काम-क्रोधादि से युद्ध कर उन्हें समाप्त करता है।

सूरै सार सँबाहिया, पहर्या सहज सँजोग।
अब कै ग्यांन गयंद चढ़ि, खेत पड़न का जोग ॥८॥

सूरै=शूर ने। सार=लौह, लौह-निर्मित अस्त्र से तात्पर्य। संबाहि संभाल लिया। सहज संजोग=सहजावस्था का कवच धारण कर। ज अवसर।

साधक, शूर मनोयोग रूपी अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित एवं सहज

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

का कवच धारण कर कुप्रवृत्तियों से युद्ध के लिए प्रस्तुत हो गया है। अब की बार इस संसार-क्षेत्र से मुक्त होने का अवसर अवश्य ही आ गया है क्योंकि उपर्युक्त साधनों के साथ-साथ वह ज्ञान-हस्ती पर चढ़कर युद्ध करेगा। भाव यह है कि अब बार-बार साधक को संसार में इस युद्ध के लिए नहीं आना पड़ेगा, वह जीवन्मुक्त हो जायेगा।

सूरा तबही परषिये, लड़ै धणीं कै हेत।
पुरिजा पुरिजा ह्वै पड़ै, तऊ न छाड़ै खेत ॥९॥

परषिये=जानिए। धणीं=स्वामी। पुरिजा-पुरिजा=टुकड़े-टुकड़े।

सच्चे शूरवीर की परीक्षा यही है कि वह अपने स्वामी के लिए रणक्षेत्र में लड़कर टुकड़े-टुकड़े क्यों न हो जाय पर हार मान कर पीछे न हटे, उसी भाँति साधक को साँसारिक विषय-वासनाओं से युद्ध करना चाहिए।

खेत न छाड़ै सूरिवाँ, झूझै द्वै दल माँहिं।
आसा जीवन मरण की, मन मैं आणैं नाँहि ॥१०॥

सच्चे शूर के मन में जीवन-मरण—जय-पराजय—का कोई भाव नहीं होता वह तो युद्ध क्षेत्र में विना मुंह मोड़े दोनों पक्षों के मध्य जूझता रहता है।

विशेष—रूपक अलंकार।

अब तौ झूझ्यां हीं बणैं, मुड़ि चाल्यां घर दूरि।
सिर साहिब कौं सौंपतां, सोच न कीजै सूरि ॥११॥

बणैं=सम्भव है। मुड़ि=मुड़ना, लौटना। घर=संसार।

कबीर कहते हैं कि भक्त जब प्रभु-भक्ति के मार्ग पर पर्याप्त आगे बढ़ चुका हो और फिर यह सोचे कि वह लौट कर संसार-विषयों का पुनः रसास्वादन करे तो असम्भव है क्योंकि वह साँसारिक विषयों को बहुत दूर छोड़ चुका है। हे साधक! प्रभु-भक्ति में मंगल ही मंगल है अतः उसके लिए सर्वस्व समर्पित करने में आगा-पीछा सोचना वृथा है।

अब तौ ऐसी ह्वै पड़ी, मनकारु चित कीन्ह।
मरनैं कहा डराइये, हाथि स्यंधौरा लीन्ह ॥१२॥

ह्वै पड़ी=अवसर आ पहुंचा। मन का रुचित=जैसा मन को इच्छित था। हाथि=हाथ में। स्यंधौरा=सिंदूर रखने की डिब्बी।

कबीर कहते हैं कि अब तो साधना मार्ग में ऐसी स्थिति आ गई है कि मन प्रभु भक्ति में ही प्रवृत्त हो गया है, अतः अब प्रभु-मिलन निश्चित है। अतः हे संसार के चालाक मनुष्यो! अब मुझे प्रभु-भक्ति मार्ग से विचलित क्यों किया

RajGuru Math, Shivala, Varaṇasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चाहते हो, भला जब सती होने वाली स्त्री ने सिंदूर पात्र सम्भाल लिया हो तो उसे मृत्यु भय दिखाने का क्या लाभ, वह तो सती होगी ही। उसी भांति भ्र कबीर तो प्रभु को प्राप्त करके ही रहेगा।

विशेष—सती होने वाली स्त्री चिता पर जाने से पूर्व सोलह शृंगारों से विभूषित होती थी—अन्य लोग उसे मृत्यु का भय दिखाकर चिता पर जाने से रोकते थे, कुछ तो रुक जाती थीं किन्तु जिसने सौभाग्य-सिंदूर की डिब्बी मांग भरने के लिए उठा ली फिर तो उसके दृढ़ निश्चय की पुष्टि ही हो जाती थी। दृढ़ निश्चय के लिए कबीर का यह प्रयोग सर्वथा नवीन है।

जिस मरनैं थैं जग डरै, सो मेरे आनन्द।
कब मरिहूं कब देखिहू, पूरन परमांनंद ॥१३॥

जिस मृत्यु से संसार डरता है, वह मरण मेरे लिए आनन्ददायी होगा। मैं मृत्यु की उत्कण्ठापूर्वक प्रतीक्षा कर रहा हूं कि कब मर कर पूर्ण परब्रह्म से साक्षात्कार करूं।

विशेष—तुलना कीजिए—

तोड़ दो बंधन क्षितिज के देख लूं उस ओर क्या है।
जा रहे जिस पंथ से, युग कल्प उसका छोर क्या है।
फिर भला प्राचीर बनकर, क्यों आज मेरे प्राण घेरें।
फिर विकल हैं प्राण मेरे।" —महादेवी

कायर बहुत पमाँवहीं, बहकि न बोल सूर।
कांम पड़्या हीं जाणिये, किसके मुख परि नूर ॥१४॥

पमाँवहीं=बढ़-चढ़कर बातें करना। नूर=तेज, विजयोल्लास।

कायर व्यक्ति ही बहुत बढ़-चढ़कर बातें करते हैं, सच्चे शूर कभी भी बकवास नहीं करते, वे तो काम को करके ही दिखाते हैं। कार्य (युद्ध) पड़ने पर ही जाना जा सकता है कि शूरवीर अथवा कायर किसके मुंह पर विजयोल्लास झलकता है। भाव यह है कि शूर ही विजय प्राप्त करते हैं, बक-बक करने वाले कायर नहीं।

विशेष—तुलना कीजिए—

"Barking dog seldom bites."

जाइ पूछौ उस घाइलैं, दिवस पीड़ निस जाग।
बांहण-हारा जाणिहै, कै जांणें जिस लाग ॥१५॥

बाहण-हारा=मारने वाला, वार करने वाला। जिस लाग=जिसके लगती है, जिसके चोट पड़ती है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उस घायल व्यक्ति से उसकी पीड़ा की दशा पूछो जो अपनी पीड़ा से दिन में व्यथित होता है और रात को जागता है। उस पीड़ा का अनुभव केवल उसी को होता है अथवा उसका किंचित् अनुमान उसको हो सकता है जो (बाणों की) चोट करता है। भाव यह है कि प्रभु के प्रेम की पीर का अनुमान गुरु को हो सकता है और अनुभव केवल साधक को।

घाइल घूंमैं गहि भर्या, राख्या रहै न ओट।
जतन कियां जीवै नहीं, बणीं मरम की चोट ॥१६॥

प्रभु-प्रेम की पीर से आहत गुरु के उपदेश रूपी बाणों की चोट से भरा हुआ घूमता है, यदि कोई उसे छिपाना चाहे तो छिपा नहीं सकता। उसके मर्म-स्थल पर गुरु के उपदेश की ऐसी गहन-चोट लगी है कि प्रयत्न करने पर भी —माया के बंधन में उलझाने पर भी—संसार में नहीं रह सकता अर्थात् वह तो जीवन्मुक्त होकर रहेगा।

ऊंचा विरष अकासि फल, पंषी मूए झूरि।
बहुत सयांने पचि रहे, फल निरमल परि दूरि ॥१७॥

उस अलख ज्योति के फल का वास शून्य में है, जहाँ तक साधना का दुर्गम पथ है। इस विकट साधना-पथ में बहुत से जीवात्मा रूपी पक्षी हार कर निष्फल बैठ गये। अनेक चतुर लोग विविध प्रयत्न करने पर भी उस निर्मल फल को प्राप्त न कर सके। भाव यह है कि विरले ही साधना की विकट-यात्रा को पूर्ण कर उस अलख ज्योति रूपी निर्मल फल को प्राप्त कर सके।

दूरि भया तो का भया, सिर दे नेड़ा होइ।
जब लग सिर सौंपे नहीं, कारिज सिधि न होइ ॥१८॥

कबीरदास कहते हैं कि वह अलख ब्रह्म, निरंजन ब्रह्म, रूपी निर्मल फल यदि इतनी दूरी पर है तो चिन्ता की क्या बात है, वह शीश दान देने से, अर्थात् साधना मार्ग में सर्वस्व त्याग करने से निश्चय ही प्राप्त हो जाता है। जब तक सर्वस्व त्याग नहीं किया जायगा, तब तक प्रभु-प्राप्ति असम्भव है।

कबीर यहु घर प्रेम का, खाला का घर नांहि।
सीस उतारै हाथि करि, सो पैसे घर मांहि ॥१९॥

कबीरदास कहते हैं कि प्रभु-भक्त का मार्ग मौसी का घर नहीं जहाँ विविध प्रकार की सुख-सुविधाओं से पूर्ण आतिथ्य प्राप्त होता है, यह तो प्रेम-स्थली है। इसमें उसी का प्रवेश हो सकता है जो शीश हाथ में लेकर अर्थात् सर्वस्व त्याग के लिए प्रस्तुत हो इधर पदार्पण करे।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विशेष—

"अति तीक्षण प्रेम को पंथ महा,
तलवार की धार पै धावनो है।"—'बोधा'

कबीर निज घर प्रेम का, मारग अगम अगाध।
सीस उतारि पग तलि धरै, तब निकटि प्रेम का स्वाद ॥२०॥

कबीरदास कहते हैं कि हमारे प्रेम-निकेतन का मार्ग अत्यन्त अगम्य और अगाध है। उस प्रेम का आनन्द तभी प्राप्त किया जा सकता है जब शीश उतार कर पैरों के नीचे रख दिया जाय—अर्थात् जब सर्वस्व-बलिदान की तैयारी हो तभी उस प्रेम का आनन्द प्राप्त किया जा सकता है।

विशेष—घनानन्द के प्रेमादर्श से तुलना कीजिए—दोनों में पर्याप्त अंतर होते हुए भी बलिदान की भावना एक सी ही है—

"पूरन प्रेम को मंत्र महापन,
जा मधि सोधि सुधारि है लेख्यौ।
ताही के चारु चरित्र विचित्रनि,
यौं पचि कै रचि राखि विसेख्यौ॥
ऐसो हियो-हित पत्र पवित्र जु
आन कथा न कहूं अवरेख्यौ।
सो घन आनन्द जान अजान लौं,
टूक कियो, पर बांचि न देख्यौ॥"

प्रेम न खेतौं नींपजै, प्रेम न हाटि बिकाइ।
राजा परजा जिस रुचै, सिर दे सो ले जाइ ॥२१॥

नीपजै=उत्पन्न होता है।

प्रभु का प्रेम न तो किसी खेत में उत्पन्न होता है न किसी बाज़ार में विकता है। इसे तो राजा-प्रजा, धनी-निर्धन जो चाहे वह शीशदान देकर ले जा सकता है।

विशेष— महाकवि भवभूति ने भी अपने 'उत्तर रामचरित' में यही प्रतिपादित किया है कि प्रेम बाह्य कारणों पर आश्रित नहीं होता—

"व्यतिषजति पदार्थानान्तरः कोऽपि हेतु-
र्न खलु बहिरुपाधीन् प्रीतयः संश्रयन्ते।
विकसति हि पतंगस्योदये पुण्डरीकं
द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्तः॥" (६।१२)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(कोई अज्ञात आंतरिक कारण पदार्थों को सम्बद्ध कर देता है, प्रीति ...द्य कारण पर आश्रित नहीं होती । सूर्य के उदय होने पर कमल खिल जाता और चन्द्रमा के निकलने पर चन्द्रकान्त मणि पसीजने लगती है ।)

सीस काटि पासंग दिया, जीव सरभरि लीन्ह।
जाहि भावे सो आइ ल्यौ, प्रेम आट हंम कीन्ह ।।२२।।

कबीरदास कहते हैं कि हमने प्रेम का बाज़ार लगाया है जो चाहे इसमें से क्रय कर सकता है किन्तु उसे तराजू के पासंग को निकालने के लिए ...ना शीश चढ़ा कर प्राणों के मूल्य में यह प्रेम प्राप्त हो सकेगा ।

सूरै सीस उतारिया, छाड़ी तन की आस।
आगैं थैं हरि मुल किया, आवत देख्या दास ।।२३।।

शूरवीर साधक ने शरीर का मोह छोड़ प्रभु-भक्ति के लिए अपना शीश ...र दे दिया । अपने भक्त को आता देखकर स्वयं प्रभु ने साधना मार्ग के बीच ...ही बढ़कर उसका स्वागत किया ।

भगति दुहेलो रांम की, नहिं कायर का कांम।
सीस उतारै हाथि करि, सो लेसी हरि नांम ।।२४।।

प्रभु-भक्ति बड़ी कठिन है, यह कायर के लिए नहीं है । जो शीश उतार कर हाथ में ले ले, वही प्रभु का नाम ले सकता है ।

भगति दुहेली रांम की, जैसि खाँडे की धार।
जे डोलै तौ कटि पड़, नहीं तौ उतरै पार ।।२५।।

प्रभु-भक्ति अत्यन्त कठिन है जिस प्रकार 'तलवारि की धार पर धावनौ है।" यदि तनिक भी विचलित हुए तो सर्वनाश, अन्यथा दृढ़ रहने पर संसार-सागर के पार हो ही जाते हैं ।

भगति दुहेली रांम की, जैसि अगनि की झाल।
डाकि पड़े ते ऊबरे, दाधे कौतिगहार ।।२६।।

राम की भक्ति बड़ी कठिन है जैसे दहकती हुई अग्नि का कुण्ड । जो इसमें कूद पड़े वे तो पार हो गये, इसमें दग्ध नहीं हुए और जो केवल कौतूहलवश ...से देखते ही रहे वे भस्म हो गये ।

विशेष—विरोधाभास अलंकार ।

कबीर घोड़ा प्रेम का, चेतनि चढ़ि असवार।
ग्यांन षड़ग गहि काल सिरि, भली मचाई मार ।।२७।।

कबीर कहते है कि हे साधक तू प्रेम रूपी अश्व पर सावधानीपूर्वक चढ़

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जा। मृत्यु को शीश पर मंडराती हुई समझकर ज्ञान-कृपाण हाथ में लेकर मन की विषय-वासनाओं से युद्ध कर।

कबीर हीरावण जिया, महँगे मोल अपार।
हाड गला माटी गली, सिर साटैं ब्यौहार ॥२८॥

साटैं=तय किया। ब्यौहार=व्यापार।

कबीर कहते हैं कि प्रभु-प्रेम का अमूल्य हीरा बड़ा मंहगा प्राप्त हुआ है शरीर के अस्थि-चर्म को नष्ट कर और शीश को बलि देकर यह व्यापार किया है।

जेते तारे रैंणि के, तेतै बैरी मुझ।
धड़ सूली सिर कंगुरैं, तऊ न बिसारौं तुझ ॥२९॥

कबीर कहते हैं कि इस संसार में विषय-वासना रूपी मेरे उतने ही शत्रु जितने असंख्य अगणित रात्रि के नक्षत्र। यदि मेरा शीश काटकर किसी महल के कंगूरों पर और धड़ सूली पर लटका दिया जाय तो भी हे प्रभु! मैं तुम्हें विस्मृत नहीं कर सकता।

जे हार्या तौ हरि सवाँ, जे जीत्या तो डाव।
पारब्रह्म कूं सेवतां, जे सिर जाइ त जाव ॥३०॥

परब्रह्म की सेवा में यदि शीश व्यर्थ जाता है तो जाने दो क्योंकि यदि साधना पथ में हारेगा तो प्रभु जैसे प्रतिद्वन्दी के सम्मुख और यदि विजय प्राप्त हुई तब तो तेरी मनोवांछा—प्रभु-प्राप्ति—पूर्ण ही हो जायेगी अतः दोनों प्रकार से तेरा मंगल है।

विशेष—शूरवीर का ऐसा ही उच्च आदर्श तो होता है—

"जीवते लभ्यते लक्ष्मी, मृत चापि सुरांगणा"

'चन्दबरदायी'—पृथ्वीराज रासो।

सिर साटै हरि सेविये, छाड़ि जीव की बांणि।
जे सिर दीयाँ हरि मिले, तब लग हांणि न जांणि ॥३१॥

जीव भी मायाजन्य आकर्षणों में स्वाभाविक रुचि को त्याग कर शीश दान दे प्रभु भक्ति कीजिए। जो शीश-दान देकर प्रभु-प्राप्ति हो जाय तो यह सौदा बुरा नहीं है।

टूटी बरत अकास थैं, कोइ न सकै झड़ झेल।
साध सती अरु सूर का, अंणीं ऊपिला खेल ॥३२॥

बरत=एक मोटी रस्सी का ग्राम्य नाम। झड़=झटक। अणीं=नोंक ऊपिला=ऊपर।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जिस प्रकार नट की आकाश में बंधी मोटी रस्सी की झटक को टूटने पर कोई नहीं सम्भाल सकता, नट की मृत्यु निश्चित ही है उसी भांति साधना-भ्रष्ट साधक का सर्वनाश निश्चित है। साधक (योगी), सती एवं शूरवीर का कार्य तो तलवार की नोक पर चलने जैसा ही है।

सती पुकारै सलि चढ़ो, सुनि रे मींत समांन।
लोग बटाऊ चलि गये, हंम तुझ रहे निदांन ॥३३॥

कबीर कहते हैं कि जीवात्मा रूपी सती साधना की चिता पर चढ़कर कहती है कि हे श्मशान रूपी साधना स्थल! सुन अब मैं और तुम ही रह गये अन्य जो साथी (साधना क्षेत्र में गुरु) यहाँ तक आये थे वे चले गये। भाव यह है कि साधना में किसी का सम्बल ढूंढना वृथा है, केवल साधक और साधना-स्थली ही तो वहां है।

सती बिचारी सत किया, काठौं केज बिछाइ।
ले सूती पिव आपणां, चहुं दिसि अगनि लगाइ ॥३४॥

सती नारी ने काष्ठ-लकड़ियों की चिता चुनकर यथार्थ आचरण किया और उस चिता की चारों ओर से दग्धकारी दहकती अग्नि में अपने पति को लेकर भस्म हो गई। साधक को भी इसी भाँति अपनी आत्मा के साथ साधना-क्षेत्र में प्रभु से तादात्म्य कर लेना चाहिए।

सती सूरा तन साहि करि, तन मन कीया घांण।
दिया महौला पीव कूं, तब मड़हट करैं बषांण ॥३५॥

महौला=महत्त्व।

सती एवं शूरवीर ने शरीर को अलंकृत कर शरीर और मन दोनों को पूर्णतया नष्ट कर दिया। उन दोनों ने प्रिय को (शूर का स्वामी—राजा—ही उसका प्रिय है) इतना महत्त्व दिया तभी श्मशान उनकी प्रशंसा करता है, अर्थात् उनकी वीरगति के गीत गाये जाते हैं।

सती जलन कूं नीकली, पीव का सुमरि सनेह।
सबद सुनत जीव निकल्या, भूलि गई सब देह ॥३६॥

प्रभु का स्मरण कर जीवात्मा रूपी सती साधना मार्ग में दग्ध होने के लिए निकली। सद्‌गुरु के उपदेश को सुनते ही वह जीवन्मुक्त हो गई और उसने समस्त पार्थिव सम्बन्धों को विस्मृत कर दिया।

सती जलन कूं नीकली, चित धरि एकबमेख।
तन मन सौंप्या पीव कूं, तब अंतरि रही न रेख ॥३७॥

जीवात्मा रूपी सती प्रभु मिलन के लिये साधना पथ पर अग्रसर हुई,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उसके मन में केवल मात्र प्रभु का ही ध्यान था। जब उसने तन-मन सर्वस्व प्रभु को समर्पित कर दिया तो दोनों में कोई अन्तर न रहा।

हौं तोहि पूछौं हे सखी, जीवत क्यूं न मराइ।
मूंवा पींछैं सत करै, जीवन क्यूं न कराइ ॥३८॥

मुक्तात्मा सांसारिक आत्मा से प्रश्न करती है कि हे सखी ! तू जीवन्मुक्त क्यों नहीं हो जाती। यदि मृत्यु—नाश—को प्राप्त हो जाने पर तूने सत्याचरण—साधना मार्ग को अपनाना—किया तो उससे क्या लाभ ? जीते ही जीते क्यों न प्रभु प्राप्ति का उपाय करती।

कबीर प्रगट रांम कहि, छानैं रांम न गाइ।
फूस क जौड़ा दूरि करि, ज्यूं बहुरि न लागै लाइ ॥३९॥

छानैं=छिपकर। फूस क जौड़ा=फूंस का छप्पर या फूंस की टट्टी। लाई=अग्नि।

कबीर कहते हैं कि सबके सम्मुख प्रभु का नाम लो, छिपकर उसका जप करने से क्या लाभ ? माया-भ्रम रूपी इस फूंस के टट्टर को अपने से दूर कर दे जिससे सांसारिक तापों की अग्नि तुझे न व्यापे।

कबीर हरि सबकूं भजैं, हरि कूं भजै न कोइ।
जब लग आस सरीर की, तब लग दास न होइ ॥४०॥

कबीर कहते हैं कि प्रभु सबका ध्यान रखते हैं क्योंकि समस्त जीवों का स्मरण कोई नहीं करता (विरले ही करते हैं)। जब तक जीव को शरीर का मोह है तब तक वह भक्त नहीं हो सकता।

आप सवारथ मेदनीं, भगत सवारथ दास।
कबीरा रांम सवारथो, जिनि छाड़ी तन की आस ॥४१॥६९३॥

कबीर कहते हैं कि संसार अपने स्वार्थ से परिपूर्ण है; भक्त भी भक्ति का स्वार्थ तो रखे हुए है ही किन्तु कबीर तो केवल प्रभु के ही स्वार्थी हैं अर्थात् केवल प्रभु ही उन्हें मिल जायें यही सब कुछ है। इसी के लिए कबीर ने शरीर का मोह भी छोड़ दिया है।

—×—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

४६. काल कौ अंग

झूठे सुख कौं सुख कहै, मानत है मन मोद।
खलक चबीणां काल का, कुछ मुख मैं कुछ गोद ॥१॥

खलक=संसार।

कबीर कहते हैं कि संसार माया-जनित आकर्षणों से प्राप्त मिथ्यानन्द को सुख समझ कर मन में प्रसन्नता का अनुभव करता है। वास्तविकता यह है कि समस्त संसार काल का भोजन है जो कुछ तो उसके मुख में है और कुछ गोद में। कुछ तो विनाश को प्राप्त हो रहा है और कुछ विनाश को प्राप्त होने वाला है।

विशेष—'पंत' ने अपनी 'परिवर्तन' नामक प्रसिद्ध कविता में परिवर्तन—काल—का ऐसा ही चित्रण किया है—"अहे निष्ठुर परिवर्तन।

तुम्हारा ही ताण्डव नर्तन,
विश्व का करुण विवर्तन!
तुम्हारा ही नयनोन्मीलन,
निखिल उत्थान पतन।

आजक काल्हिक निस हमैं, मारगि माल्हंतां।
काल सिचांणां नर चिड़ा, औझड़ औच्यंतां ॥२॥

नर रूपी पक्षी के लिए काल बाज के समान है जो आज या कल की रात—शीघ्र ही—एक दम झपट कर हमें नष्ट कर देगा।

काल सिहंणैं यौं खड़ा, जागि पियारे म्यंत।
रांम सनेही बाहिरा, तूं क्यूं सोवै नच्यंत ॥३॥

सिहणें=सिरहाने, ऊपर।

हे प्रिय मित्र! जाग, सावधान हो, काल तेरे ऊपर खड़ा हुआ है। इसके अधिकार क्षेत्र से केवल प्रभु-भक्त ही बाहर हैं, अतः तू प्रभु-भक्ति कर, अज्ञान में मत पड़ा रह।

सब जग सूता नींद भरि, संत न आवै नींद।
काल खड़ा सिर ऊपरै, ज्यूं तोरणि आया बींद ॥४॥

समस्त संसार सुख-निद्रा में सोता है किन्तु साधु को नींद नहीं आती क्योंकि वह प्रभु-भक्ति में लगा रहता है। उसे पता है कि समय कम है काल सिर के ऊपर खड़ा है, जिस प्रकार दूल्हा आकर बहू को लेकर ही जाता है उसी भांति काल नष्ट करके ही हटता है।

आज कहै हरि काल्हि भजौंगा, काल्हि कहै फिरि काल्हि।
आज ही काल्हि करंतड़ां, औसर जासी चालि ॥५॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हे मनुष्य ! तू आज यह कहता है कि कल प्रभु का भजन करूंगा और कल के आने पर फिर अगली कल के लिए सोचता है। इस प्रकार कल ही कल में आयु व्यतीत हो जाती है और प्रभु-भक्ति नहीं हो पाती।

कबीर पल की सुधि नहीं, करै काल्हि का साज।
काल अच्यंता झड़पसी, ज्यूं तीतर को बाज ॥६॥

कबीर कहते हैं कि हे मनुष्य ! तुझे यह तो एक पल का भी ज्ञान नहीं कि इसमें क्या होगा—विनाश अथवा सृजन और तू सब कार्यक्रम कल—भविष्य—के लिए स्थगित कर रहा है। काल अचानक तुझे इस प्रकार झड़प लेगा जैसे तीतर को बाज अचानक झपट कर ले जाता है।

कबीर टग टग चोघतां, पल पल गई बिहाइ।
जीव जँजाल न छाड़ई, जम दिया दमांमां आइ ॥७॥

कबीर कहते हैं कि हे मनुष्य ! क्षण-क्षण कर तेरी समस्त आयु व्यतीत हो गई और तूने उदरपूर्ति के अतिरिक्त और कुछ न किया। जीव इस संसार के बंधन से मुक्त नहीं हुआ और इतने में मृत्यु ने आकर अपना स्वर-घोष कर दिया।

मैं अकेला ए दोइ जणां, छेती नांही कांइ।
जे जम आगें ऊबरौं, तो जुरा पहूंती आइ ॥८॥

छेती=कम। काँइ=कोई भी। जुरा=जरा, वृद्धावस्था।

कबीर कहते हैं कि मैं तो अकेला हूं और ये मेरे विनाशक दो—जरावस्था तथा मृत्यु। इन दोनों में कम कोई नहीं है। यदि मैं मृत्यु से बच भी जाऊं तो फिर यह वृद्धावस्था नहीं छोड़ेगी। मृत्यु और जरा ये दोनों मेरे विनाशक हैं।

बारी बारी आपणीं, चले पियारे म्यंत।
तेरी बारी रे जिया, नेड़ी आवै निंत ॥९॥

हे मनुष्य ! तेरे प्रियजन अपनी अपनी बारी पर इस संसार से विदा हो गये। अब दिन-प्रतिदिन तेरा मृत्यु अवसर भी निकट आ रहा है।

दौं की दाधी लकड़ी ठाढ़ी करे पुकार।
मति बसि पड़ौं लुहार कै, जालै दूजी बार ॥१०॥

अग्नि में जली कोयले के रूप में लकड़ी पुकार कर कहती है कि मैं लुहार के अधिकार में न चली जाऊं अन्यथा मुझे दुबारा जलना पड़ेगा (लुहार कोयला जलाकर अपनी भट्टी गरम करता है)। भाव यह है कि संसार-तापों से दग्ध जीवात्मा कालाग्नि से भयभीत है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जो ऊग्या सो आंथवे, फूल्या सो कुमिलाइ।
जो चिणियां सो ढहि पड़ै, जो आया सो जाइ ॥११॥

ऊग्या=उदित हुआ। आंथवै=अस्त होता है। जो चिणियां=जिसका निर्माण हुआ।

कबीर कहते हैं कि इस नश्वर संसार में जो उदित होता है उसका अस्त निश्चय है। जो कुसुम विकसित होता है वह अवश्य ही मुरझाएगा। जिसका निर्माण हुआ है उसका विध्वंस निश्चित है। जो जन्म लेकर इस संसार में आया है वह मृत्यु को प्राप्त होकर निश्चय ही यहां से जायगा।

जो पहर्या सो फाटिसी, नांव धर्या सो जाइ।
कबीर सोई तत्त गहि, जौं गुरि दिया बताइ ॥१२॥

जिस नवीन वस्त्र को धारण किया जाता है वह कभी न कभी अवश्य ही फटता है। जिसने जन्म लिया है वह मरण को अवश्य प्राप्त होगा। अतः हे कबीर! तू उस प्रभु-भक्ति के तत्व को ग्रहण कर जिसे तुझे सद्गुरु ने प्रदान किया है।

निधड़क बैठा राम बिन, चेतनि करै पुकार।
यहु तन जल का बुदबुदा, बिनसत नाहीं बार ॥१३॥

ज्ञानी स्पष्ट रूप में घोषणा करता है कि प्रभु-भक्ति बिना तू निधड़क क्यों बैठा है? यह शरीर तो पानी के बुद्बुद के सदृश है जिसे फूटने में देर नहीं लगती। अतः प्रभु-भक्ति कर।

पांणीं केरा बुदबुदा, इसी हमारी जाति।
एक दिनां छिप जांहिंगे, तारे ज्यूं परभाति ॥१४॥

कबीर कहते हैं कि हम सांसारिकों की जाति पानी के बुद्बुदों जैसी है जिनका अत्यन्त क्षणिक अस्तित्व है। एक दिन हम उसी प्रकार अचानक लुप्त हो जायेंगे जिस प्रकार प्रभात समय में नक्षत्रगण।

कबीर यहु जग कुछ नहीं, षिन षारा षिन मींठ।
काल्हि जु बैठा माड़ियां, आज मसांणां दीठ ॥१५॥

माड़िया=अलंकृत हो रहा था।

कबीर कहते हैं कि यह जग बड़ा क्षणिक है, क्षण भर में यहां मधुर अनुभूति होती है तो क्षण भर में ही कटु। कलतक जो व्यक्ति अलंकृत हो रहा था वही आज श्मशान में जल रहा था।

विशेष—'पन्त' से तुलना कीजिए—

"यही तो है असार संसार,
सृजन, सिंचन, संहार!

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आज सर्वोन्नत हर्म्य अपार;
रत्न दीपावलि, मन्त्रोच्चार,
उलूकों के कल भग्नविहार,
झिल्लियों की झनकार।"

× × ×

"अभी उत्सव औ, हास हुलास,
अभी अवसाद, अश्रु, उच्छ्वास।
अचिरता देख जगत की आप
शून्य भरता समीर निःश्वास।"

कबीर मंदिर आपणैं, नित उठि करती आलि।
मड़हट देष्यां डरपती, चौड़ै दीन्हीं जालि ॥१६॥

कबीर कहते हैं कि वह लज्जाशील नारी जो नित्य अपने भवन में परदा करती थी और श्मशान को देख डर जाया करती थी वही आज श्मशान के निर्जन, बे-रोक-टोक स्थान में जला दी गई। संसार कैसा नश्वर है?

मंदिर मांहि झबूकती, दीवा कैसी जोति।
हंस बटाऊ चलि गया, काढौ घर की छोति ॥१७॥

झबूकती=प्रकाशित करती, जगमगाती।

जो सुन्दर नारी कल तक अपने भवन को दीप-शिखा की भाँति अपने सौंदर्य से प्रकाशित रखती थी। उसकी अनन्त पथ की यात्री आत्मा के निकल जाने पर, निष्प्राण अवस्था में सब कहने लगे कि यह मिट्टी है इसे शीघ्र श्मशान ले चलो।

ऊँचा मंदर धौलहर, माँटी चित्री पौलि।
एक रांम के नांव बिन, जंम पड़गा रौलि ॥१८॥

पौलि=द्वार।

मिट्टी के रंगों से चित्रित सुन्दर-सुन्दर द्वार एवं ऊंचे-ऊंचे भवन तथा अट्टालिकाएं सब प्रभु-भक्ति के विना नष्ट हो जायेगा जब काल इन्हें विनष्ट कर देगा तो रोना ही पड़ेगा।

कबीर कहा गरवियौ, काल गहै कर केस।
नां जांणैं कहां मारिसी, कै घर कै परदेस ॥१९॥

कबीर कहते हैं कि इस संसार में गर्व किस बात का? सर्वदा तो मृत्यु मनुष्य के बाल पकड़ ए है, वह न जाने कहाँ, देश अथवा विदेश कहां उठा कर पटक दे, समाप्त कर दे।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कबीर जंत्र न बाजई, टूटि गए सब तार।
जंत्र बिचारा क्या करै, चले बजावणहार ॥२०॥

कबीर कहते हैं कि पंच तत्वों से निर्मित यह वाद्य-यन्त्र शरीर बजाने वाले आत्मा के अभाव में बजता नहीं, उसके समस्त तार टूट जाते हैं—

"प्रेम कुछ नहीं दो दिलों की जेल है,
शरीर कुछ नहीं पांच का मेल है,
दुनिया कुछ नहीं बच्चों सा खेल है।"

धवणि धवंती रहि गई, बुझि गए अंगार।
अहरणि रह्या ठमूकड़ा, जब उठि चले लुहार ॥२१॥

धवणि=भट्टी । धवंती=दहकती । अहरणि=अहरन, निहाई। ठमूकड़ा=हथौड़ा। लुहार=आत्मा से तात्पर्य।

आत्मा रूपी लुहार के चले जाने पर शरीर की कान्ति निस्तेज हो जाती है और ताप त्रय युक्त सांसारिक भट्टी दहकती रह जाती है। निहाई और हथौड़े रूपी मनुष्य के साज-सामान यहाँ व्यर्थ धरे रह जाते हैं। इन सबका प्रयोजन कर्त्ता आत्मा के शरीर में रहने तक ही था।

पंथी ऊभा पंथ सिरि, बुगचा बाँध्या पूठि।
मरणां मुह आगैं खड़ा, जीवण का सब झूठ ॥२२॥

ऊभा=प्रस्तुत। बुगचा=गठड़ी। पूठि=पीठ पर।

कबीर कहते हैं कि आत्मा रूपी अनन्त मार्ग का पथिक अपनी कर्म पोटली पीठ पर बाँध कर उस अनन्त पथ के लिए प्रस्तुत खड़ा है। जब मरण बिल्कुल सम्मुख ही है तो संसार में सब कुछ मिथ्या है।

यहु जिव आया दूर थैं, अजौं भी जासी दूरि।
बिच के बासै रमि रह्या, काल रह्या सर पूरि ॥२३॥

यह जीवात्मा रूपी अनन्त का पथिक बड़ी दूर से इस संसार में आया था और अभी इसे जाना भी बहुत दूर है। इस विश्राम स्थल—संसार—पर वह न जाने क्यों अधिक रुक गया है, अज्ञान में अचेत पड़ा है, यह भी नहीं देखता कि मृत्यु सिर पर खड़ी है।

रांम कह्या तिनि कहि लिया, जुरा पहूंती आइ।
मंदिर लागै द्वार थैं, तब कुछ काढणां न जाइ ॥२४॥

जिनको अपने मुख से प्रभु नाम कहना था वे कह चुके अब तो वृद्धावस्था आ पहुंची। जब मन्दिर के द्वार लग जाते हैं तब उसके भीतर से कुछ निकाला

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नहीं जा सकता, इसी भांति जब इस शरीर-सदन का द्वार—मुख—बन्द हो जायेगा तब इससे प्रभु-नाम नहीं निकाला जा सकता।

बरियां बीती बल गया, बरन पलट्या और।
बिगड़ी बात न बाहुड़ै, कर छिटक्यां कत ठौर ॥२५॥

बरियां=आयु। बरन=वर्ण।

कबीर कहते हैं कि हे जीव ! तेरी आयु व्यतीत हो चुकी है, समस्त शक्ति नष्ट हो गई है। वृद्धावस्था के आगमन से तेरा वर्ण भी कुछ और ही हो गया है। यदि अब बात बिगड़ गई तो फिर नहीं बन सकती, तुझ पश्चात्ताप करने का भी अवसर प्राप्त नहीं होगा—अतः इस अल्प समय में प्रभु-स्मरण कर ले।

बरियां बीती बल गया, अरू बुरा कमाया।
हरि जिन छाड़ै हाथ थैं, दिन नेड़ा आया ॥२६॥

हे मनुष्य ! तेरी आयु व्यतीत हो चुकी है, अब तक तूने बुरे ही बुरे कर्म किये हैं। अब प्रभु को अपने हाथ से मत जाने दे, तेरी मृत्यु निकट आ पहुंची है।

कबीर हरि सूं हेत करि, कूडै चित्त न लाव।
बांध्या बार षटीक के, तापसु किती एक आव ॥२७॥

कबीर कहते हैं कि हे मनुष्य ! तू प्रभु से प्रेम कर और बुरी भावनाओं को अपने चित्त में न आने दे। वधिक के द्वार पर बंधे पशु की आयु का क्या भरोसा अर्थात् काल न जाने कब तुझे चट कर जाय।

विष के बन मैं घर किया, सरप रहे लपटाइ।
ताथैं जियरै डर गह्या, जागत रैंणि बिहाइ ॥२८॥

कबीर कहते हैं कि मेरा इस संसार में ऐसा ही वास है जैसे विष-वन में मैंने घर बना लिया हो जिसमें दुर्वासनाओं के सर्प चारों ओर लिपटे रहते हैं। मैं इनसे भयभीत हूं इसलिए दिन रात जागता ही रहता हूं।

कबीर सब सुख राम है, और दुखां की रासि।
सुर नर मुनियर असुर सब, पड़े काल की पासि ॥२९॥

कबीर कहते हैं कि समस्त सुखों की राशि राम ही हैं शेष उपलब्धियों में तो दुख ही दुख हैं। देवता, मनुष्य, मुनिवर, राक्षस सब काल के बन्धन में बंधे हुए हैं— कोई इससे मुक्त नहीं। अतः हे मनुष्यो ! राम का भजन करो।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

काची काया मन अथिर, थिर थिर कांम करंत।
ज्यूं ज्यूं नर निधड़क फिरैं, त्यूं त्यूं काल हसंत ॥३०॥

यह नश्वर शरीर और चंचल मन है फिर भी मनुष्य अपने कार्यों को गहरी नींव देता है। ज्यों-ज्यों मनुष्य निडर होकर निश्चिन्तता से घूमता है मृत्यु उसकी मूर्खता पर हंसती है कि इस अल्प समय में यह प्रभु भजन क्यों नहीं करता ?

रोवणहारे भी मुए, मुए जलांवणहार।
हा हा करते ते मुए, कासनि करौं पुकार ॥३१॥

कबीर कहते हैं कि शव के लिए रोने वाले भी मृत्यु को प्राप्त हुए और जिन्होंने शव-दाह किया था वे भी मरे। जो प्रियजन आठ-आठ आँसू रोये थे वे भी मरे। जब सभी मरणशील हैं तो सहायता की पुकार किस से की जाय। केवल एकमात्र वही प्रभु अनश्वर हैं अतः मनुष्य ! उन्हीं की भक्ति कर।

जिनि हम जाए ते मुए, हम भी चालणहार।
जौ हम को आगैं मिले, तिन भी बंध्या भार ॥३२॥७२५॥

जिन माता-पिता ने हमें जन्म दिया वे भी मृत्यु को प्राप्त हो गये और अब हम भी उस अनन्त यात्रा के लिए प्रस्तुत हैं। यही तो जगत् का शाश्वत क्रम रहा है। जो हमें अनन्त पथ पर—मृत्यु पथ—पर आगे मिले वे भी अपने कर्मों की पोटली वाँधे हुए थे जिनके आधार पर उन्हें पुनः जन्म-मरण के चक्र में पड़ना था।

---

४७. सजीवनि कौ अंग

जहां जुरा मरण व्यापै नहीं, मुवा न सुणिये कोइ।
चली कबीर तिहि देसड़ें, जहाँ बैद बिधाता होइ ॥१॥

जहाँ जरा-मरण का भय ही नहीं और न किसी की मृत्यु सुनी है, हे कबीर ! तू उस देश को चल। यदि वहाँ कोई अधिक व्याधि हो भी गई तो स्वयं प्रभु वहाँ वैद्य हैं।

कबीर जोगी बनि बस्या, षणि खाये कँद मूल।
नां जाणौं किस जड़ी थैं, अमर भये असथूल ॥२॥

असथूल=स्थूल।

कबीर कहते हैं कि जीवात्मा रूपी योगी इस संसार रूपी वन में ही रह रहा था और साँसारिक विषयों से अपनी इन्द्रिय तृप्ति करता था। पता नहीं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

किस जड़ी-बटी से (भक्ति की अनुपम बूटी से) वह इस स्थूल शरीर के रहते हुए भी अमर हो गया—जीवन्मुक्त हो गया।

कबीर हरि चरणौं चल्या, माया मोह थैं टूटि।
गगन मँडल आसण किया, काल गया सिर कूटि ॥३॥

कबीर ने प्रभु चरणों को अपना लिया है, उसका संसार से मोह-सम्बन्ध समाप्त हो गया है, अब उसने शून्य में अपना निवास बना लिया जहां वह अमर हो गया है।

यहु मन पटकि पछाड़ि लै, सब आपा मिटि जाइ।
पंगुल ह्वै पिव पिव करै, पीछैं काल न खाइ ॥४॥

पछाड़ि लै=धो ले।

मन के कालुष्य को पटक-पटक धो देने पर मन का समस्त अहं नष्ट हो जाता है। मन जब विषय-वासनाओं की ओर नहीं दौड़ता तो प्रभु-नाम स्मरण करता है। इस अवस्था के आने पर मृत्यु तुम्हारा कुछ नहीं विगाड़ सकती।

कबीर मन तीषा किया, बिरह लाइ षरसाँण।
चित चर्णूं मैं चुभि रह्या, तहाँ नहीं काल का पांण ॥५॥

षर=प्रखर, तीक्ष्ण। साँण=शान, एक पत्थर विशेष जिस पर धार रखी जाती है। चर्णूं=चरणों। पाँणि=पाणि, हाथ, अधिकार।

कबीर कहते हैं कि मैंने प्रभु विरह की तीक्ष्ण शान पर रखकर मन को प्रभु-भक्ति के लिए प्रस्तुत किया है। अब मेरा मन प्रभु के चरणों में अनुरक्त रहता है। वहाँ मैं निश्चिन्त हूं क्योंकि काल की गति वहां नहीं है।

तरवर तास बिलंबिए, बारह मास फलंत।
सीतल छाया गहर फल, पंषी केलि करंत ॥६॥

तास=उस।

कबीर कहते हैं कि हे साधक तुम उस शून्य रूपी वृक्ष पर अपना बसेरा बना लो जो बारह-मास फलों की वर्षा करता है। जिसकी छाया अत्यन्त शीतल हैं—वहां ताप-त्रय नहीं व्यापते और फल भी भरपूर हैं तथा जीवन्मुक्त साधक रूपी स्वतन्त्र पक्षी वहां क्रीड़ा करते हैं।

दाता तरवर दया, फल, उपगारी जीवंत।
पंषी चले दिसावरां, बिरषा सुफल फलंत ॥७॥७३२॥

दिसावरां=विदेश। बिरषा=वृक्ष।

स्वयं स्वामी जो समस्त फलों के देने वाला है, वृक्ष है एवं वह दया के फल प्रदान करता है जिससे समस्त जीवों का हित होता है। ऐसा सुन्दर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होने पर भी जीवात्मा रूपी पक्षी अत्यन्त भटकते हैं, प्रभु को छोड़ सुख-प्राप्ति के अन्य व्यर्थ विधान करते हैं।

विशेष—कबीर ने यहाँ पक्षी के रूप में ऐसे व्यापारी का रूपक दिया है जो अपने प्रदेश स्थान की सुन्दर फसल छोड़कर अन्यत्र उससे अच्छी फसल टटोलने जाता है।

---

४८. अपारिष कौ अंग

पाइ पदारथ पेलि करि, कंकर लीया हाथि।
जोड़ी बिछुटी हंस की, पड़्या बगां कै साथि ॥१॥

पाइ=पाया हुआ। कंकर=कंकड़, रोड़ा, व्यर्थ की वस्तु। विछुटी=बिछुड़ी। बगां=बगुले।

कबीर कहते हैं कि पाये हुए अमूल्य पदार्थ प्रभु को छोड़कर व्यर्थ के इस बोझ माया को अपना लिया। हंस परमात्मा को छोड़कर माया रूपी कपटी बगुले के संसर्ग को अपना लिया।

एक अचंभा देखिया, हीरा हाटि बिकाइ।
परिषणहारे बाहिरा, कौड़ी बदलै जाइ ॥२॥

कबीर कहते हैं कि मैंने एक आश्चर्य देखा कि संसार के वाजार में प्रभु-भक्ति का अनमोल हीरा विक रहा था। वह हीरा परखने वाले जौहरियों की समझ से वाहर था इसीलिए वे उसका मूल्य कौड़ी—नगण्य बताने लगे।

कबीर गुदड़ी बीषरी, सौदा गया बिकाइ।
खोटा बांध्या गांटड़ी, इब कुछ लिया न जाइ ॥३॥

कबीर कहते हैं कि इस संसार के वाजार में सत्कृत्य रूपी समस्त सौदा बिक गया और उनको रखने वाली शरीर की यह खाली पोटली नष्ट हुई जा रही है, इस पोटली में कुकर्म रूपी खोटे सिक्के जिनके बदले सत्कृत्य बेच दिए, बाँध लिए हैं, अब इसका प्रतिकार भी तो कुछ नहीं किया जा सकता क्योंकि अन्त समय निकट आ पहुंचा है।

पैंडैं मोती बीखर्या, अंधा निकर्या आइ।
जोति बिनां जगदीश की, जगत उलंघ्यां जाइ ॥४॥

कबीर कहते हैं कि संसार मार्ग में ही प्रभु-भक्ति रूपी अमूल्य मोती बिखरे हुए हैं किन्तु अज्ञानांध जीव निकला हुआ जा रहा है। प्रभु प्रदत्त ज्ञान-ज्योति के अभाव में जीव संसार में उलझ कर ही रह जाता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कबीर यहु जग अंधला, जैसी अंधी गाइ।
बछा था सो मरि गया, ऊभी चांम चटाइ ॥५॥७३७॥

कबीर कहते हैं कि यह अज्ञानांध संसार मोहांध गाय कि भाँति है जो अपने वास्तविक बछड़े (प्रभु) के बिछुड़ जाने पर भी उसकी खाल (माया—जो फिर प्रभु से ही उत्पन्न है) को चाटे जाती है।

विशेष—गाय का बछड़ा मर जाने पर उससे दूध लेने के लिए मरे बछड़े की खाल में भुस भरवाकर खड़ा कर देते हैं। गाय उसे वास्तविक बछड़ा समझ दुलार करती है और दूध देती है। यही रूपक कबीर ने अपनाया है।

---

४६. पारिष कौ अंग

जब गुण कूं गाहक मिलै, तब गुण लाख बिकाइ।
जब गुण कौं गाहक नहीं, तब कौड़ी बदलै जाइ ॥१॥

जब श्रेष्ठ वस्तु को उसका पारखी ग्राहक मिल जाता है तो वह लाख रुपये के मूल्य पर बिक जाती है। जब गुणवान् वस्तु को पारखी ग्राहक नहीं मिलता है तो वह नगण्य मूल्य में बिक जाती है।

कबीर लहरि समंद की, मोती बिखरे आइ।
बगुला मंझ न जाणई, हंस चुणे चुणि खाइ ॥२॥

मंझन=मज्जन, स्नान। चुणे-चुणि=चुन-चुन कर।

कबीर कहते हैं कि भक्ति के सागर की लहर ने उपदेश या प्रभु-प्रेम के मौक्तिक बिखेर दिये। संसार-लिप्त पुरुष बगुले के समान उस लहर का उपयोग केवल नहाने भर के लिए कर सके और मुक्तात्मा रूपी हंसों ने प्रभु-प्रेम के मौक्तिकों को चुन-चुन कर ग्रहण कर लिया।

हरि हीराजन जौहरी, ले ले मांडिय डाटि।
जबर मिलैगा पारिषू, तब हीरां की साटि ॥३॥७४०॥

जन=भक्त। जौहरी=पारखी, जौहरी। जबर=जब भी।

प्रभु रूपी हीरे को भक्तरूपी जौहरी संसार के बाजार में सजाकर बैठा है। जब इस प्रभु-भक्ति रूपी हीरे का पारखी मिलेगा तभी हमारा सौदा तय हो सकेगा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

५०. उपजणि कौ अंग

नांव न जांणौं गांव का, मारगि लागा जांउं।
काल्हि जु काटां भाजिसी, पहिली क्यूं न खड़ांउं ।।१।।

कबीर कहते हैं कि मुझे जिस स्थान पर पहुंचना है वह मुझे अज्ञात है फिर भी मैं मार्ग पर बढ़ा ही जा रहा हूं। अब मैं सोचता हूं कि इस मार्ग पर कल ही विषय-वासना का कांटा चुभा था फिर भी मैंने उससे त्राण के लिए खड़ाऊं नहीं पहनी अर्थात् संयम नहीं किया।

सीष भई संसार थैं, चले जु साँई पास।
अविनासी मोहि ले चल्या, पुरई मेरी आस ।।२।।

सीप=शिक्षा।

संसार की दुर्दशा देखकर हमें यह शिक्षा मिली कि एक मात्र प्रभु ही काम्य है अतः मैं उनके पास को चल दिया, प्रभु-भक्ति मार्ग पर अग्रसर हुआ। सद्गुरु मुझे उस पंथ पर ले कर बढ़े अथवा प्रभु ने आगे वढ़कर मेरा स्वागत किया और मेरी इच्छा पूर्ण की।

इंद्रलोक अचरिज भया, ब्रह्मा पड़्या विचार।
कबीरा चाल्या रांम पैं, कौतिगहार अपार ।।३।।

जब कबीर राम से मिलने चला, प्रभु-भक्ति मार्ग पर अग्रसर हुआ, तो स्वर्ग में आश्चर्य छा गया एवं ब्रह्मा भी सोच में पड़ गये। इस आश्चर्य को देखने के लिए अपार जन समूह उमड़ पड़ा।

विशेष—आश्चर्य यह है कि मृत्यु के पश्चात् ही आत्मा परमात्मा से साक्षात्कार करती है किन्तु कबीर जीवित ही मरण को प्राप्त हो, जीवन्मुक्त हो, प्रभु से मिलने जा रहा है—यही आश्चर्य है।

ऊंचा चढ़ि असमान कूं, मेर उलंघे ऊड़ि।
पसू पँषेरू जीव जंत, सब रहे मेर मैं बूड़ि ।।४।।

असमान= आकाश, शून्य, ब्रह्मरन्ध्र। मेर=अहं। पँषेरू=पक्षी। जंत=जंतु।

कबीर कहते हैं कि पशु-पक्षी, जीव-जन्तु, सब अहं में डूब रहे हैं। हे साधक! इस अहं का परित्याग कर शून्य प्रदेश के लिए प्रस्थान कर।

सद पाँणी पाताल का, काढ़ि कबीरा पीव।
बासी पावस पड़ि मुए, विषै बिलंबे जीव ।।५।।

सद=अच्छा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कबीर कहते है कि हे साधक ! तू पाताल—बहुत गहरे—में नि सुन्दर ताजा जल पी। बासी पानी पीकर कितने ही विषयी जीव मरण को प्रा हो चुके हैं। भाव यह है कि तू गहन अनुभव पर आधृत सिद्धांतों को ही सम रख, स्वयं के अनुभव पर आधृत सिद्धांत मिथ्या नहीं हो सकते।

कबीर सुपनैं हरि मिल्या, सूतां लिया जगाइ।
आंणि न मींचौं डरपता, मति सुपनां ह्वै जाइ ॥६॥

कबीर कहते हैं कि इस संसार की अज्ञान रात्रि के बीच स्वप्न में प्रभु मुझे दर्शन दिया और ज्ञान-दान देकर मुझे अज्ञान निद्रा से जगा लिया। अ इसी कारण पुनः इस संसार में अज्ञान निद्रा में नहीं पड़ता, कहीं मुझे यह प्र अनुकम्पा द्वारा प्राप्त स्वप्न-तुल्य दुर्लभ और अप्राप्य न हो जाय।

गोव्यंद के गुंण बहुत हैं, लिखे जु हिरदै मांहि।
डरता पांणीं नां पीऊं, मति वै धोये जाहिं ॥७॥

कबीर कहते हैं कि मेरे हृदय-पट पर प्रभु के अनन्त गुण अंकित हैं। इस भय से माया रूपी जल का व्यवहार नहीं करता कि कहीं वे उससे धुल जाय।

कबीर अब तौ ऐसा भया, निरमोलिस निज नाउं।
पहली काच कथीर था, फिरता ठांवें ठाउं ॥८॥

निरमोलिस=शुद्ध। काच=कच्चा। कथीर=पारा।

कबीर कहते हैं कि अब प्रभु-भक्ति के द्वारा मेरा नाम शुद्ध (कंचन तु हो गया है अन्यथा पहले तो मैं कच्चा पारा ही था जो एक स्थान से दूसरे स्था पर भटकता रहता है। भाव यह है कि चचंलवृत्ति जीव भी प्रभु-भक्ति से सांसारिक माया-आकर्षणों में भटकता रहता था।

भौ समंद विष जल भर्‌या, मन नहीं बाँधै धीर।
सबल सनेही हरि मिले, तब उतरे पारि कबीर ॥९॥

कबीर कहते हैं कि विषय-वासनाओं के विष जल से भरे संसार-समुद्र देखकर मेरा मन विचलित हो रहा था। किन्तु अत्यन्त शक्तिशाली स्वयं प्र जैसा प्रेमी मिल जाने पर कबीर पार उतर गया।

भला सुहेला उतर्‌या, पूरा मेरा भाग।
रांम नांव नौका गह्या, तब पांणी पंक न लाग ॥१०॥

मेरा बड़ा भाग्य है कि मैं पूर्ण कुशलता से भवसागर पार उतर गया प्रभु-नाम रूपी नौका का आश्रय लेने से संसार की माया का जल एवं विष वासनाओं की कीचड़ छू भी नहीं सकते। राम नाम नौका पर्ण सुरक्षित है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कबीर केसौ की दया, संसा घाल्या खोइ।
जे दिन गये भगति बिन, ते दिन सालैं मोहि ॥११॥

कबीर कहते हैं कि प्रभु-कृपा से मेरा माया-भ्रम दूर हो गया। अब मुझे उन दिनों के व्यर्थ जाने का पश्चात्ताप है जो विना प्रभु-भक्ति के नष्ट हो गये हैं।

कबीर जाचण जाइथा, आगैं मिल्या अंच।
ले चाल्या घर आपणैं, भारी पाया संच ॥१२॥७५२॥

जाचण=याचना के लिए। अजंच=जो याचना नहीं करता। संच=शान्ति।

कबीर कहते हैं कि मैं संसार में सुख-याचना के लिए निकला था किन्तु मार्ग में मुझे वह प्रभु मिल गये जो कभी किसी से याचना नहीं करते। वे मुझे अपने घर ले गये—प्रभु-भक्ति का प्रदेश ही उनका घर हैं—वहां मुझे अमित शान्ति प्राप्त हुई।

—×—

५१. दया निरबैरता कौ अंग

कबीर दरिया प्रजल्या, दाझ जल थल झोल।
बस नांहि गोपाल सौं, बिनस रतन अमोल ॥१॥

प्रजल्या=प्रज्वलित हुआ। दाझैं=दग्ध हो गये। झोल=शुष्क कवाड़ कूड़ेरी।

कबीर कहते हैं कि संसार रूपी सरिता में विषय-वासनाओं की वडवानल प्रज्वलित हो उठी जिससे जल-थल एवं कवाड़ सब कुछ नष्ट हो गया। इस वासना-अग्नि ने वड़े-वड़े अमूल्य रत्नों को विनष्ट कर दिया, केवल प्रभु पर उसका कोई प्रभाव नहीं।

ऊंनमि विआई बादलो, बसण लागे अंगार।
उठि कबीरा धाह दे, दाझत है संसार ॥२॥

ऊंनमि=ऊंची होकर। धाह दे=दहाड़ दे, रोकर आवाज दे।

माया-मेघ ऊंचा होकर वर्षा करने लगा, वर्षा में उससे अंगार झड़े जिनसे समस्त संसार भस्म हो गया। कबीर अब तू रोकर चिल्लाती आवाज़ में, फूट-फूटकर, कह कि संसार विनष्ट हो रहा है।

विशेष—सामान्यत: तो बदली तब बरसती है जब वह नीची होती है किन्तु यह बदली ऊंची होकर बरस रही है। इससे झरते हुए अंगार विषय-वासना के परिणाम हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दाध बली ता सब दु:खी, सुखी न देखौं कोइ।
जहाँ कबीरा पग धरें, तहाँ टुक धीरज होइ ॥३॥७५५॥

दाध=अग्नि। बली=प्रज्वलित।

संमस्त संसार विषय-वासना अग्नि में जल रहा है, कोई भी सुखी नहीं है। जहां-जहां कबीर पदार्पण करते हैं वहाँ कुछ शान्ति हो जाती है।

—०—

५२. सुंदरि कौ अंग

कबीर सुंदरि यों कहै, सुणि हो कंत सुजाँण।
बेगि मिलौ तुम आइ करि, नहीं तर तजौं परांण ॥१॥

साधक की आत्मा रूपी सुन्दरी यह कहती है कि हे चतुर स्वामी— मेरी विनय सुनिए। आप आकर या तो शीघ्र दर्शन दो अन्यथा मैं प्राण दूंगी, संसार त्याग दूंगी।

कबीर जे को सुंदरी, जांणि करै विभचार।
ताहि न कबहूँ आदरै, प्रेम पुरिष भरतार ॥२॥

कबीर कहते हैं कि जो भी आत्मा रूपी सुन्दरी विविध विषयों में लि- रह व्यभिचारमय आचरण करती है उसे उसका स्वामी—प्रभु—कभी सम्मान प्रदान नहीं करता।

ज सुंदरि सांईं भजै, तजै आन की आस।
ताहि न कबहूं परहरै, पलक न छाड़ै पास ॥३॥

जो आत्मा रूपी सुन्दरी प्रभु का ही भजन करती है अन्य किसी की आ- नहीं रखती उसे वे कभी भी नहीं छोड़ते, एक पल के लिए भी उससे दूर न- हटते।

इस मन कौं मैदा करौं, नान्हां करि करि पीसि।
तब सुख पावै सुंदरी ब्रह्म झलकै सीस ॥४॥

हे साधक! इस मन को संयम के द्वारा पीस-पीस कर मैदा के स- चिकना, निर्मल कर ले। तभी ब्रह्मरन्ध्र में निरंजन ज्योति के दर्शन होंगे- आत्मा प्रसन्न होगी।

दरिया पारि हिंडोलनां, मेल्या कंत मचाइ।
सोई नारि सुलषणीं, नित प्रति झूलण जाइ ॥५॥७६०॥

शून्य स्थल के पार प्रभु का हिंडोलना है जिस पर उन्होंने स्वयं ग- बिछाया हुआ है। वही आत्मा रूपी नारी सलक्षणी है जो नित्य प्रति प्रि-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जाय उस पर झूलती है। अथवा सुलक्षणी नारी, (कुण्डलिनी) जो सोई हुई है उसे जगाकर नित्य प्रिय के साथ झूलने जाना चाहिए।

—o—

५३. कस्तूरियां मृग कौ अंग

कस्तूरी कुंडलि बसै, मृग ढूंढै बन मांहि।
ऐसें घटि घटि रांम है, दुनियां देखै नांहि ॥१॥

कैसी विडम्बना है कि मृग की नाभि में ही कस्तूरी का वास है किन्तु वह उसकी खोज में वन-वन भटकता है, ऐसे ही प्रभु का प्रत्येक मनुष्य के हृदय में निवास है किन्तु कोई उसे देख नहीं पाता।

कोइ एक देखै संत जन, जांकै पांचूं हाथि।
जाकै पांचूं बस नहीं, ता हरि संग न साथि ॥२॥

उस घट-घट वासी प्रभु को वह बिरला संत ही देख पाता है जिसका पाँचों इन्द्रियों पर पूर्ण अधिकार हो। जिसका इन पांचों इन्द्रियों पर अधिकार नहीं वह प्रभु का साक्षात्कार नहीं कर पाता।

सो सांईं तन मैं बसै, भ्रंम्यौ न जांणैं तास।
कस्तूरी के मृग ज्यूं, फिर फिरि सूंघै घास ॥३॥

वह परब्रह्म परमेश्वर प्रत्येक के हृदय में स्थित है किन्तु भ्रमवश कोई उसे पहचान नहीं पाता। जिस प्रकार कस्तूरी के नाभि में रहते हुए भी मृग घास को सूंघ-सूंघ कर उसे खोजता है, उसी भांति मनुष्य अन्य सांसारिक विषयों में उसे खोजने का व्यर्थ प्रयास करता है।

कबीर खोजी रांम का, गया जु सिंघल दीप।
रांम तौ घट भीतरि रमि रह्या, जौ आवै परतीत ॥४॥

कबीर कहते हैं कि साधक प्रभु को खोजने के लिए सिंहलद्वीप गया किन्तु यदि विश्वास सहित देखा जाय तो प्रभु तो हृदय के भीतर ही रमा हुआ है।

विशेष—नाथ-पंथ में सिंहलद्वीप को सिद्धपीठ माना गया है, नाथ-पंथी योगी इसकी यात्रा को बड़ा महत्व देते थे।

घटि बधि कहीं न देखिये, ब्रह्म रह्या भरपूरि।
जिनि जांन्यां तिनि निकटि है, दूरि कहैं ते दूरि ॥५॥

घटि-बधि=घट-बढ़कर, कम या अधिक।

ब्रह्म सर्वत्र समान रूप से परिव्याप्त है, वह कहीं कम या कहीं अधिक नहीं है। जो उसे जानते हैं उनके लिए वह निकट है, जो उसे दूर समझे बैठे हैं उनके लिए वह दूर ही है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मैं जांण्या हरि दूरि हैं, हरि रह्या सकल भरपूरि।
आप पिछांणें बाहिरा, नेड़ा ही थैं दूरि ॥६॥

मैं प्रभु को बहुत दूर समझता था किन्तु वह सर्वत्र परिव्याप्त है। यदि आप उसे दूर खोजने लगोगे तो वह पास होता हुआ भी दूर ही हो जायगा।

तिंणकैं ओल्है राम है, परवत मेरैं भांइ।
सतगुर मिलि परचा भया, तब हरि पाया घट मांहि ॥७॥

रामरूपी महान् तत्व अहं के पर्वत की ओट में छिपा हुआ है। सद्गुरु के मिलने पर अहं के विनष्ट हो जाने पर प्रभु से साक्षात्कार हुआ और मैंने उन्हें अपने हृदय में ही पा लिया।

रांम नांम तिहूँ लोक मैं, सकल रह्या भरपूरि।
यहु चतुराई जाहु जलि, खोजत डोलैं दूरि ॥८॥

कबीर कहते हैं कि ऐसी चतुरता, बुद्धिबल विनष्ट हो जाए जिसके कारण प्रभु को दूर खोजा जाता है। वह तो तीनों लोक—आकाश, पृथ्वी, पाताल में समान रूप से परिव्याप्त है।

ज्यूं नैनूं मैं पूतली, त्यूं खालिक घट मांहि।
मूरिख लोग न जांणहीं, बाहरि ढूंढण जांहि ॥९॥७६९॥

जिस भाँति नेत्रों के मध्य पुत्तलिका का वास है किन्तु हम उसे बिना दर्पण (गुरु) के नहीं देख सकते उसी भांति प्रभु तो हृदय में ही स्थित है, मूर्ख लोग इस रहस्य को न जानकर अन्यत्र प्रभु की खोज में भटकते हैं।

—०—

५४. निंद्या कौ अंग

लोग बिचारा नींदई, जिनह न पाया ग्यांन।
रांम नांव राता रहै, तिनहुं न भावै आंन ॥१॥

जिन मनुष्यों को ज्ञान-प्राप्ति नहीं हुई वे ज्ञानियों की निन्दा करते हैं किन्तु जो राम-नाम में अनुरक्त रहते हैं उन्हें अन्य किसी वस्तु की अपेक्षा नहीं रहती।

दोख पराये देखि करि, चल्या हसंत हसंत।
अपनैं च्यंति न आवई, जिनकी आदि न अंत ॥२॥

च्यंति=चित्त।

दूसरे के दोषों को देखकर मनुष्य उपहास करता है किन्तु अपने अवगुणों को जिनका कोई आदि और अन्त ही नहीं, कभी चित्त में भी नहीं लाता।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

निंदक नेड़ा राखिये, आंगणि कुटी बंधाइ।
बिन साबण पाणी बिना, निरमल करै सुभाइ ॥३॥

जो आपका निंदक हो उसे अपने पास ही सुविधापूर्वक रखना चाहिए क्योंकि वह बिना पानी और साबुन के स्वभाव को शुद्ध कर देता है।

न्यंदक दूरि न कीजिये, दीजै आदर मांन।
निरमल तन मन सब करै, बकि बकि आँनहिं आँन ॥४॥

नदक को दूर मत कीजिए, उसे सम्मानपूर्वक पास ही रखना उचित है। क्योंकि वह हमारे दोषों का कथन कर उन्हें सुधारने का अवसर दे तन-मन को शुद्ध कर देता है।

जे को नींदै साध कूं, संकटि आवै सोइ।
नरक माँहि जाँमैं मरै, मुकति न कबहूँ होइ ॥५॥

नींदै=निंदा करता है।

जो साधु की निंदा करता है उस पर स्वयं संकट टूटते हैं। वह नरकतुल्य इस संसार से मुक्त नहीं होता, जन्म और मृत्यु के आवागमन चक्र में पड़ा रहता है।

कबीर घास न नींदिये, जो पाऊं तलि होइ।
उड़ि पडै जब आंखि मैं, खरा दुहेला होइ ॥६॥

कबीर कहते हैं कि तुच्छ वस्तु को भी हीन समझ कर उपेक्षा मत करो। पैरों से प्रति-पल रौंदी जाने वाली घास की भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए क्योंकि जब उसी घास का क्षुद्र तृण उड़कर आंख में पड़ जाता है तो वेदना उत्पन्न कर देता है।

आपन यौं न सराहिए, और न कहिये रंक।
नां जांणौं किस ब्रिष तलि, कूड़ा होइ करंक ॥७॥

कबीर कहते हैं कि दूसरे को क्षुद्र कहते हुए अपनी इतनी सराहना मत करो क्योंकि यह पता नहीं कि यह अस्थिचर्ममय शरीर किस स्थान पर ढेरी हो जाय, निष्प्राण हो जाय।

कबीर आप ठगाइये, और न ठगिये कोइ।
आप ठग्यां सुख ऊपजै, और ठग्यां दुख होइ ॥८॥

कबीर कहते हैं कि स्वयं को ही धोखे में रखो, दूसरे को धोखे में मत डालो। अपने को धोखे में डालने से सुख की प्राप्ति होती है और दूसरों को ठगने से दुःख की।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अब कै जे सांईं मिलै, तौ सब दुख आषौं रोइ।
चरनूं ऊपरि सीस धरि, कहूँ ज कहणां होइ ।।९।।७७८।।

यदि अब की बार मुझे प्रभु मिल जायें तो अपनी सब व्यथा-कथा रो-रो कर उनसे कह दूं। उनके चरणों में शीश रखकर मन में जो भी कहने के लिए है सब कह डालूं।

—×—

५५. निगुणां कौ अंग

हरिया जाणैं रूंषड़ा, उस पांणीं का नेह।
सूका काठ न जांणईं, कबहूं बूठा मेह ।।१।।

प्रभु-भक्ति से पल्लवित भक्त रूपी हरित वृक्षों को ही प्रभु के कृपा-वारि का ज्ञान होता है। प्रभु-भक्ति से हीन शुष्क ठूंठ जैसे अन्य व्यक्तियों को भला क्या ज्ञात कि यह प्रभु-कृपा-वारि की वर्षा कब हुई।

विशेष—ठूंठ वृक्ष वर्षा के बाद भी शुष्क और अपल्लवित ही रहता है।

झिरिमिरि झिरिमिरि बरषिया, पांहण ऊपरि मेह।
माटी गलि सैंजल भई, पांहण वोही तेह ।।२।।

सैंजल=सजल।

पत्थरों के ऊपर प्रभु-स्नेह वारि की वर्षा हुई, उसके साथ चिपकी हरिभक्त रूपी मिट्टी की आत्मा तो सजल—प्रभु-अनुकम्पा युक्त—हो गई किन्तु वह पत्थर ज्यूं का त्यूं ही रहा।

पार ब्रह्म बूठा मोतियां, घड़ बांधी सिषरांह।
सगुरां सगुरां चुणि लिया, चूक पड़ी निगुरांह ।।३।।

परम प्रभु ने अपनी कृपा के मोतियों की वर्षा की, साधकों में उनके बीनने के लिए होड़ लग गई। जो सद्गुरु के शिष्य थे उन्होंने तो मौक्तिक चुग लिये और जो सद्गुरुहीन थे उनके हाथ कुछ न लगा।

कबीर हरि रस बरषिया, गिर डूंगर सिषरांह।
नीर मिवांणा ठाहरै, नाँ ऊंछा परड़ांह ।।४।।

डूंगर=टीला। सिषरांह=चोटियों पर। मिवांणा=नीचे में। ऊंछा=ऊंचे पर।

कबीर कहते हैं कि प्रभु-अनुकम्पा वारि की वर्षा पर्वत, टीलों और ऊंची-ऊंची चोटियों (अहं से परिपूर्ण शुष्क, कठोर और दम्भ युक्त मनुष्यों) पर हुई, किन्तु वहां वह प्रभु-भक्ति का जल नहीं ठहरा। जल तो ऊंचे पर नहीं, निम्न

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्थान में रुकता है। भाव यह है कि प्रभु की भक्ति और कृपा के अधिकारी विनम्र-हृदय भक्त ही हैं।

कबीर मूंडठ करमियां, नष सिष पाषर ज्यांह।
बांहणहारा क्या करै, बांण न लागै त्यांह ॥५॥

कबीर कहते हैं कि जिन्होंने मूर्खतापूर्ण कृत्यों के आवरण से अपने अंग-प्रत्यंग को ढक रखा है उन पर सद्गुरु के उपदेश वाण का कोई प्रभाव नहीं पड़ता, उसमें सद्गुरु का कोई दोष नहीं।

कहत सुनत सब दिन गए, उरझि न सुरझ्या मन।
कहि कबीर चेत्या नहीं, अजहूँ सुपहला दिन ॥६॥

कवीर कहते हैं कि व्यथा-कथा कहते-कहते समस्त आयु व्यतीत हो गई फिर भी मन जा एक बार संसार-भ्रम में पड़ा था, पड़ा ही रहा सुलझ नहीं पाया। आज ज्ञान-प्रकाश हो जाने पर भी हे जीव! तू सावधान नहीं होता, अज्ञानग्रस्त पड़ा है।

कहै कबोर कठोर कै, सबद न लागै सार।
सुध बुध कै हिरदै भिदै, उपजि बिवेक बिचार ॥७॥

कबीर कहते हैं कि कठोर-हृदय मनुष्यों पर उपदेश-बाण की चोट नहीं लगती। ज्ञान-प्राप्त व्यक्तियों के मर्म को भेद कर ही उपदेश-बाण विवेक और विचार की उत्पत्ति करते हैं।

मा सीतलता कै कारणैं, माग बिलंबे आइ।
रोम रोम विष भरि रह्या, अंमृत कहां समाइ ॥८॥

जिस भाँति बटोही मार्ग में विश्राम के लिए ठहर जाता है उसी भाँति आत्मा कहती है कि अनन्त यात्रा में थककर शीतलता की आशा में मैं भी संसार में रुक गई किन्तु परिणाम उल्टा निकला। इस विश्राम स्थली संसार के कण-कण में विषय-वासना का विष भरा हुआ है भला इससे अमृतांश निर्मल आत्मा के लिए स्थान कहां ?

सरपहि दूध पिलाइये, दूधैं बिष ह्वै जाइ।
ऐसा कोई नां मिलै, स्यूं सरपैं विष खाइ ॥९॥

सर्प को दूध पिलाने से दूध उसके मुख में जाकर विष ही वन जाता है। हमें कोई ऐसा साधक नहीं मिला जो विषयुक्त इस माया की सर्पिणी को खा जाता, नष्ट कर देता।

जालौं इहै बडपणां, सरलै पेड़ि खजूरि।
पंखी छांह न बीसवैं, फल लागैं ते दूरि ॥१०॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बड़पणां=बड़प्पन ।

कबीर कहते हैं कि खजूर के सीधे और ऊंचेपन का क्या लाभ ? पक्षी को तो दूर तक छाया तक नहीं मिलती और फल इतने ऊंचे पर लगता है कि उसका लाभ सब नहीं उठा सकते ।

ऊंचा कुल कै कारणैं, बंस बध्या अधिकार ।
चंदन बास भेदै नहीं, जाल्या सब परिवार ॥११॥

ऊंची जाति का होने के कारण बांस में अहम्मन्यता आ गई और अपने से छोटे चन्दन के सद्गुण—सुन्दर, शीतल, सुगंधि—को वह नहीं अपना सका, इसीलिए वह अपने परिवार—समूह सहित नष्ट हो गया ।

कबीर चंदन कै निड़ै, नींव भि चंदन होइ ।
बूडा बंस बडाइतां, यौं जिनि बूड़ै कोइ ॥१२॥७६०॥

कबीर कहते हैं कि दूसरे के सद्गुण ग्रहण करने से बुरा व्यक्ति भी अच्छा हो सकता है, देखो चन्दन के पास रहने से नीम भी उसकी सुगन्ध ग्रहण कर चन्दन जैसा ही बन जाता है किन्तु दूसरे के सद्गुण ग्रहण न करने पर जिस प्रकार बांस का परिवार सहित विनाश हुआ, ऐसी स्थिति किसी की न आवे। भाव यह है कि सभी दूसरों के सद्गुण अपनाने की चेष्टा करें ।

—×—

५६. बिनती कौ अंग

कबीर सांईं तौ मिलहिंगे, पूछहिंगे कुसलात ।
आदि अंति की कहूंगा, उस अंतर की बात ॥१॥

कबीर कहते हैं कि स्वामी मिलेंगे तो अवश्य ही, इस मिलन-वेला में कुशलता पूछे जाने पर मैं अपने हृदय की व्यथा-कथा आदि से अंत तक कहूंगा ।

कबीर भूलि बिगाड़ियां, तू नां करि मैला चित ।
साहिब गरवा लोड़िये, नफर बिगाड़ैं नित ॥२॥

कबीर कहते हैं कि तूने प्रभु को विस्मृत कर अपनी स्थिति को बिगाड़ लिया किन्तु फिर भी चित्त मलिन मत होने दे । प्रभु-भक्ति से अब भी तेरा उद्धार हो सकता है, यदि तू गर्व का परित्याग कर दे । यह दम्भ नित्य-प्रति हमारी स्थिति को बिगाड़ता है ।

करता केरे बहुत गुंण, औगुंण कोई नांहि ।
जो दिल खोजौं आपणीं, तौ सब औगुण मुझ मांहि ॥३॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्वामी में तो अनन्त गुण ही हैं, अवगुण तो उसमें कोई भी नहीं है। हे मनुष्य ! यदि तू आत्मदर्शन करे तो तू ही समस्त अवगुणों का केन्द्र है।

औसर बीता अलपतन, पीव रह्या परदेस।
कलंक उतारौ केसया, भांनौं भरंम अंदेस ॥४॥

अलपतन=अज्ञान में। भांनौं=नष्ट करूं।

मेरी समस्त आयु अज्ञान में ही व्यतीत हो गई और प्रिय मुझसे दूर रहा। अब मैं अपने हृदय से भ्रम और शंका को समाप्त कर अज्ञानी होने के कलंक को मिटा प्रभु-दास होना चाहता हूं।

कबीर करत है बीनती, भौसागर कै तांई।
बंदे ऊपरि जोर होत है, जंम कूं बरजि गुसांई ॥५॥

तांई=लिए, हित। बंदे=दास। जोर=अत्याचार। बरजि=वर्जित कर।

संसार के सागर तुल्य अपार जनसमूह के लिंए कबीर प्रभु से प्रार्थना करता है कि हे प्रभु ! मनुष्यों पर काल अत्याचार कर रहा है आप इसे रोक दीजिए।

हज काबै ह्वै ह्वै गया, केती बार कबीर।
मीरा मुझ मैं क्या खता, मुखां न बोलै पीर ॥६॥

कबीर न जाने कितनी बार काबा और हज कर आया किन्तु मुझे पता नहीं कि गुरुवर मुझसे क्यों रुष्ट हैं, बोलते तक नहीं। भाव यह है कि व्यर्था-डम्बरों में लिप्त रहने पर गुरु भी शिष्य को नहीं अपनाता।

ज्यूं मन मेरा तुझ सौं, यौं जे तेरा होइ।
ताता लोहा यौं मिलै, संधि न लखई कोइ ॥७॥७६७॥

कबीर कहते हैं कि हे प्रभु ! मेरा आपमें अपार प्रेम है, मेरी इच्छा है कि हम दोनों इस प्रेम में एकमेक हो जायं जिससे कोई दोनों के अन्तर को उसी प्रकार न जान सके जिस प्रकार गरम करके लोहे से लोह मिला देने पर दोनों की सन्धियों का पता नहीं चलता।

---

५७. साषीभूत कौ अंग

कबीर पूछै रांम कूं, सकल भवनपति-राइ।
सबही करि अलगा रहौं, सो बिधि हमहिं बताइ ॥१॥

कबीर समस्त भुवन-पति (१४ भुवन) प्रभु से पूछता है कि हे प्रभु !

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आप सब भुवनों की व्यवस्था कर उनमें रमे हुए भी उनके प्रभाव से कि प्रकार असम्पृक्त रहते हो, वह ढंग मुझे भी बता दो।

जिहि बरियां सांईं मिलै, तास न जांणै और।
सबकूं सुख दे सबद करि, अपणीं अपणीं ठौर ॥२॥

जिस क्षण तुझे प्रभु प्राप्ति हो जाय उस समय के समान महत्वमय अन्य समय को मत समझ। सबको यथास्थान अपने उपदेश से सुख पहुंचा।

कबीर मन का बाहुला, ऊंडा बहै असोस।
देखत हीं दह मैं पड़ैं, दई किसा कौं दोस ॥३॥८००॥

बाहुला=नाला, गढ़ा।

कबीर कहते हैं कि यह मन रूपी नाला बड़ा गंदला और गहरा है। जानते हुए भी यदि कोई इसमें गिर पड़े तो फिर किसे दोष दिया जा सकता है।

---

५८. बेली कौ अंग

अब तौ ऐसी ह्वै पडी, नां तू बड़ी न बेलि।
जालण आंणीं लाकड़ी, ऊंठी कूंपल मेल्हि ॥१॥

कबीर कहते हैं कि जलाने के लिए जो लकड़ी लाई गई थी वह पु पल्लवित होने लगी अर्थात् मन जिसे संयम से मारा था पुनः विषयों में प्रवृ होने लगा। इस अवस्था में इस संसार सागर के पार जाने के लिए न नेत न तूंबा—कोई सम्बल नहीं।

विशेष—तैरने के लिए तूंबे आदि का सहारा लिया जाता है।

आगैं आगैं दौं जलै, पीछैं हरिया होइ।
बलिहारी ता बिरष की, जड़ काट्या फल होइ ॥२॥

दौं=दावाग्नि। हरिया=हरित, पल्लवित।

माया रूपी बेल को आगे-आगे से यदि जलाया जाय तो यह पीछे ही पीछे तत्क्षण, पल्लवित होती जाती है। कबीर कहते हैं कि मैं उस वृक्ष की बलिहारी जाता हूं जिसकी जड़ काटने से, माया को समूल नष्ट करने से, फल ईश्वर प्राप्ति होती है।

जे काटौं तौ डहडही, सींचौं तौ कुमिलाइ।
इस गुणवंती बेलि का, कुछ गुण कह्या न जाइ ॥३॥

कबीर कहते हैं कि इस त्रिगुण—प्रकृति माया-बेलि की दशा का क्या वर्णन किया जाय? यदि इसे इन्द्रियों के कुल्हाड़े से काटा जाय, भोग कि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जाय, तो यह और अधिक बढ़ती है और यदि इसे प्रभु-भक्ति के जल से सिंचित किया जाय तो कुम्हला जाती है।

आंगणि बेलि अकासि फल, अण ब्यावर का दूध।
ससा साग की धूनहड़ी, रमैं बांझ का पूत ॥४॥

यह माया रूपी बेल संसार के सहन में फैली हुई है और इसे काट देने पर शून्य प्रदेश में निर्मल फल—परम-प्रभु की प्राप्ति होती है। सामान्यजनों को यह बात ऐसी ही विचित्र लगती होगी जैसे अनब्याही गाय का दूध अथवा खरगोश के सींग की शृंगी की बात कहना अथवा यह कहना कि वन्ध्या का पुत्र क्रीड़ा कर रहा है।

कबीर कड़ई बेलड़ी, कड़वा ही फल होइ।
सांच नांव तब पाइये, जे बेलि बिछोहा होइ ॥५॥

कबीर कहते हैं कि इस माया रूपी कड़वी बेल का फल भी ऐसा ही कड़वा होता है। वही प्रभु की खोज कर सकता है जो इस बेल से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर दे।

सींध भइ तब का भया, चहुँ दिसि फूटी बास।
अजहूँ बीज अंकूर है, भी ऊगण की आस ॥६॥८०६॥

सींध=सिद्ध, साधक। बास=प्रसिद्धि। ऊगण=उगने।

यदि कोई माया से सम्बन्ध विच्छेद कर साधक बन गया और उसकी प्रसिद्धि हो गई तो क्या हुआ, इसका विशेष महत्व नहीं। आज भी इस माया-बेलि का बीज शेष है, वह कभी भी पुनः अंकुरित हो सकता है, अतः हे साधक! सावधान रह।

---

५९. अबिहड़ कौ अंग

कबीर साथी सो किया, जाकै सुख दुख नहीं कोइ।
हिलि मिलि ह्वै करि खेलिस्यू, कदे बिछोह न होइ ॥१॥

कबीर ने उस परब्रह्म को अपना साथी बनाया है जिसे कभी भी सुख-दुख नहीं व्यापता। मैं उससे बड़े प्रेमभाव से क्रीड़ा करता हूं, उस प्रभु से मेरा कभी भी वियोग नहीं हो सकता।

कबीर सिरजनहार बिन, मेरा हितू न कोइ।
गुण औगुण बिहड़ै नहीं, स्वारथ बंधी लोइ ॥२॥

कबीर कहते हैं कि सृष्टा प्रभु के अतिरिक्त मेरा हितैषी अन्य कोई नहीं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है। अन्य संसारिक प्रियजन स्वार्थ के कारण मेरा ध्यान रखते हैं किन्तु वह परम प्रभु मुझे गुणयुक्त अथवा गुणहीन किसी भी दशा में नहीं छोड़ेगा। अतः वही मेरा सच्चा हितैषी है।

आदि मधि अरू अंत लौं, अबिहड़ सदा अभंग।
कबीर उस करता की, सेवग तजै न संग ॥३॥८०॥

कबीर कहते हैं कि आदि, मध्य, एवं अन्त किसी भी अवस्था में जिसका साथ नहीं छूटता, मैं उस प्रभु की सेवा और संसर्ग को कभी भी नहीं छोड़ूंगा।

———

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

पदावली भाग

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

राग गौड़ी

दुलहनीं गावहु मंगलचार,
हम घरि आये हो राजा राँम भरतार ।।टेक।।
तन रत करि मैं मन रत करि, पंचतत बराती ।
रामदेव मोरै पांहुनैं आये, मैं जोबन मैं माती ।।
सरीर सरोवर बेदी करिहूँ, ब्रह्मा बेद उचार ।
रांमदेव संगि भांवरि लैहूँ, धंनि धंनि भाग हमार ।।
सुर तेतीसूं कौतिग आये, मुनियर सहस अठ्यासी ।
कहैं कबीर हंम ब्याहि चलेहैं, पुरिष एक अबिनासी ।।१।।

दुलहनीं=सौभाग्यवती नारियो । मंगलचार=संस्कार के मंगलमय गीत । र=पति । रत=अनुरक्त । पंचतत=क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर । =अतिथि । भांवरि=विवाह-परिक्रमाएं । धंनि-धंनि=धन्य-धन्य । कौतिग= , करोड़ । मुनियर=मुनिवर ।

कबीर यहां परम-पुरुष से अपने आध्यात्मिक मिलन का वर्णन विवाह के रूपक, करते कहते हैं कि हे सौभाग्यवती नारियो ! तुम विवाह के मंगल गीत गाओ मेरे घर पर स्वामी राम—परम-प्रभु आये हैं। मेरी आत्मा प्रभु-भक्ति में क (जोवन में माती) है। स्वयं प्रभु मेरे द्वार पर अतिथि बनकर आये हैं। मैं स्वागत पति रूप में ही वरण करूंगी। मैं अपने शरीर और मन को उनके रंग, पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि एवं आकाश को वराती बनाकर अर्थात् उनको बना शरीर रूपी कुंड की वेदी पर प्रभु के साथ विवाह सम्बन्ध में बंध जाऊंगी। विवाह के संस्कार पर स्वमं ब्रह्मा वेद-मन्त्रों का उच्चारण करेंगे। अब आगे कबीर वर्णन करते हैं कि विवाह हो चुका है, वे कहते हैं कि इस प्रेम से प्रेमिका) के इस महामिलन को देखने के लिए तेंतीस करोड़ देवता एवं अट्ठासी मुनिवर आये थे। कबीर कहते हैं कि इस प्रकार हम अविनाशी परम पुरुष से सूत्र (अटूट प्रेम सम्बन्ध) जोड़ कर इस संसार से जा रहे हैं।

विशेष—कबीर यहाँ अपनी विचारधारा के प्रतिफूल तेंतीस करोड़ देवता एवं सहस्र मुनि ों तथा ब्रह्मा आदि का उल्लेख करते हैं, किन्तु इसका तात्पर्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यह नहीं कि कबीर बहुदेववाद अथवा अन्धविश्वास से अन्य देवी-देवताओं को ... थे। इन सबका उल्लेख केवल यहाँ उस परम-मिलन की अद्‌भुतता दिखाने के लिए किया है। इससे अन्यथा अर्थ निकालना कबीर के साथ अन्याय होगा।

बहुत दिनन थैं मैं प्रीतम पाये,
भाग बड़े घरि बैठें आये ।।टेक।।
मंगलचार मांहि मन राखौं, राम रसांइण रसनां चाषौं॥
मंदिर मांहि भया उजियारा, ले सूती अपनां पीव पियारा॥
मैं रनि रासी जे निधि पाई, हमह कहा यहु तुमहि बड़ाई॥
कहै कबीर मैं कछू न कीन्हां, सखी सुहाग रांम मोहि दीन्हां ।।३।।

थैं=में, (बहुत दिनों में)। रसांइण=रसायन। मंदिर=हृदय, ... सूती=सती।

कबीर उसी महामिलन का वर्णन करते कहते हैं कि मैंने बहुत दिनों में स्वामी के दर्शन किये हैं (जब से आत्मा परमात्मा से विछुड़ी है, तभी से ... तत्व के दर्शन नहीं हुए)। यह मेरा परम सौभाग्य है कि मैंने इस संसार में ही ... प्राप्त कर लिया। हे सखियो! (दूसरी आत्माओ) तुम अपना मन प्रभु ... गाये मंगल गीतों में ही लगाओ एवं जिह्वा से राम-नाम के अमूल्य रसायन का रसास्वादन करो। प्रभु आगमन से मेरे हृदय मन्दिर में प्रकाश हो उठा (ज्ञान ... प्रदीप्त हो उठी)। हे सती आत्मा! तू अपने प्रियतम से भेंट कर। मैंने यह ... और सुन्दर निधि जो प्राप्त की यह प्रभु की ही अनुकम्पा है; क्योंकि—

"सोई जानहिं जेई तुमहि जनाई, जानत तुम्ह तुम्हइ होइ जाइ।"

कबीर कहते हैं कि हे सखी! मैंने कुछ भी विशेष महत्व का कार्य नहीं ... किन्तु यह प्रभु की कृपा है कि उन्होंने मेरी आत्मा को अपनाया।

अब तोहि जांन न देहूं रांम पियारे,
ज्यूं भावै त्यूं होह हमारे ।।टेक।।
बहुत दिनन के बिछुरे हरि पाये, भाग बड़े घरि बैठें आये॥
चरननि लागि करौं बरिआई, प्रेम प्रीति राखौं उरझाई॥
इत मन मंदिर रहौ नित चोषै, कहै कबीर परहु मति धोषै॥

चोषै=भली प्रकार।

कबीर आत्मा के द्वारा कहलवाते हैं कि हे प्रियतम राम! अब मैं तुम्हें ... न होने दूंगी। जिस प्रकार भी आप मेरे पास रह सकते हैं वैसे ही रहिये। ... बहुत दिनों के बिछुड़े स्वामी को प्राप्त किया है और वे घर बैठे ही प्राप्त हो ...

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

...मेरा परम सौभाग्य है। मैं उन्हें प्रेम-वन्धन में बांध उनके चरणों में रहकर सेवा ...ंगी। हे स्वामी ! आप मेरे मन मन्दिर में नित्य भली प्रकार (सम्पूर्ण सुविधाओं ...हित) रहो। आप अन्यत्र जाकर धोखे में मत पड़िये अर्थात् मेरे जैसा सच्चा प्रेम ...त्र दुर्लभ होगा।

विशेष—आचार्य प्रवर रामचन्द्र शुक्ल ने 'चिन्तामणि' के 'श्रद्धा-भक्ति' निबन्ध ...म और भक्ति का अन्तर स्पष्ट करते हुए बताया है कि प्रेम में प्रेमी यह चाहता ...कि जिस प्रिय से उसकी प्रीति है उससे अन्य कोई प्रेम न करे, दूसरी ओर भक्ति ...त्र में भक्त यह चाहता है कि जिस आराध्य को मैं पूज्य मानता हूं उसे सब पूज्य ...ें। इस दृष्टि से देखने पर यहां कबीर की भावना भक्ति क्षेत्र की नहीं अपितु ...ी की ही भावना है, ईश्वर से यही प्रेम सम्बन्ध तो उन्हें रहस्यवादी कवि की कोटि ...खता है।

मन के मोहन बीठुला, यहु मन लागौ तोहि रे।
चरन कंवल मन मांनियां, और न भावै मोहि रे।।टेक।।
षट दल कंवल निवासिया, चहु कौं फेरि मिलाइ रे।
दहुं कै बीचि समाधियां, तहां काल न पासै आइ रे।।
अष्ट कंवल दल भींतरा, तहां श्रीरंग केलि कराइ रे।
सतगुर मिलै तौ पाइये, नहीं तो जन्म अक्यारथ जाइ रे।।
कदली कुसुम दल भीतरां, तहां दस आंगुल का बीच रे।
तहां दुवादस खोजि ले, जनम होत नहीं मींच रे।।
वंक नालि के अंतरै, पछिम दिसा की बाट।
नीझर झरै रस पीजिये, तहाँ भंवर गुफा के घाट रे।।
त्रिबेणी मनाह न्हवाइए, सुरति मिलै जौ हाथि रे।
तहां न फिरि मघ जोइये, सनकादिक मिलिहैं साथि रे।।
गगन गरजि मघ जोइये, तहां दीसै तार अनंत रे।
बिजुरी चमकि घन बरषिहैं, तरां भीजत हैं सब संत रे।।
षोडस कंवल जब चेतिया, तब मिलि गए श्री बनवारि रे।
जुरामरण भ्रम भाजिया, पुनरपि जनम निवारि रे।।
गुर गमि तैं पाईये झंषि मरे जिनि कोइ रे।
तहीं कबीरा रमि रह्या, सहज समाधी सोइ रे।।४।।

कबीर कहते हैं हे मन के स्वामी ! मेरा मन केवल आप में ही अनुरक्त है। ...के चरण-कमलों में ही मेरा मन लगता है, मुझे अन्य कुछ भी प्रिय नहीं है ! स्वा-...ष्ठान चक्र में मूलाधार चक्र से कुण्डलिनी को पहुंचाने में जो समाधि लगायी जायेगी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उससे मृत्यु भय विदूरित हो जायगा। अष्टम कमल—सुरति कमल—के मध्य ई... निवास है। यदि सद्गुरु प्राप्ति हो जाय तो वहाँ तक पहुंचा जा सकता है, ... यह जन्म व्यर्थ ही चला जाता है। कदली तुल्य रीढ़ की हड्डी के मध्य जो ... जाल है मूलाधार चक्र से हृदय-चक्र तक पहुंचने में दस अंगुल की दूरी है। ... द्वादश जल वाला कमल है जिसकी प्राप्ति से मृत्यु नहीं होती। सुषुम्णा यदि ... सहस्रार में जाकर बाईं ओर को विस्फोट करे तो वहाँ उस शून्य गुफा से अमृत-... होता है। यदि साधक को इस स्थान की प्राप्ति हो जाय तो वह त्रिवेणी-स्नान ... पुण्य लाभ यहीं करता है। वहाँ जाकर पुनः संसार की ओर दृक्पात करने की ... श्यकता नहीं, वहां तुम्हारा मिलन अन्य मुक्तात्माओं से भी हो जायगा। अनहद ... के द्वारा मेघ-गर्जन का सुख लाभ होता है और परब्रह्म के दर्शन होते हैं। वहाँ ... ज्योतिष्मान् परमेश्वर की कान्ति का विद्युत् प्रकाश है, एवं अमृत-स्रवण से ... मुक्तात्माएं स्नात हैं। षोडश-दल कमल—विशुद्ध चक्र—प्राप्ति पर साधक ... से तदाकार हो जाता है। इस स्थिति को प्राप्त कर जरा-मरण का भय भाव ... है और पुनः आवागमन में नहीं पड़ना पड़ता। यह परमपद गुरु कृपा के द्वारा ही ... जा सकता है वैसे चाहे कोई कितना ही प्रयत्न करे उसकी प्राप्ति नहीं कर ... कबीर तो अब उसी परमपद का लाभ सहज समाधि—द्वारा कर रहा है।

विशेष—१. नाथपंथी साधनानुरूप योग का वर्णन है। २. किन्तु ... चक्रों का वर्णन नाथ सम्प्रदाय से भिन्न स्थानों में प्राप्त होता। ३. प्रभु के ... नाम प्रयोग में कबीर पर वैष्णव प्रभाव देखा जा सकता है।

गोकल नाइक बीठुला, मेरौ मन लागो तोहि रे।
बहुतक दिन बिछुरें भये, तेरो औसेरि आवै मोहि रे॥टेक॥

करम कोटि को ग्रेह रच्यौ रे, नेह गये की आस रे।
आपहिं आप बंधाइया, द्वै लोचन मरहिं पियास रे॥
आपा पर संमि चीन्हिये, दीसै सरब समांन रे।
इहिं पद नरहरि भेटिये, तूं छाड़ि कपट अभिमांन रे॥
नां कतहुँ चलि जाइये, नां सिर लीजै भार।
रसनां रसहि विचारिये, सारंग श्रीरंग धार रे॥
साधैं सिधि ऐसी पाइये, किंबा होइ महोइ।
जे दिठ ग्यांन न ऊपजै, तौ अहटि रहै जिनि कोइ रे॥
एक जुगति एकै मिलै, किंबा जोग कि भोग।
इन दून्यूं फल पाइये, रांम नांम सिधि जोग रे॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रेम भगति ऐसी कीजिये, मुखि अंमृत बरिषै चंद।
आपही आप बिचारिये, तब केता होइ अनंद रे ॥
तुम्ह जिनि जानौं गीत है, यहु निज ब्रह्म बिचार।
केवल कहि समझाइया आतम साधन सार रे।
चरन कंवल चित लाइये, रांम नांम गुन गाइ ॥
कहै कबीर संसा नहीं, भगति मुकति गति पाइ रे ॥५॥

नाइक=नायक। बीठुला=विट्ठल, हिन्दुओं के आराध्य।

कबीर कहते हैं कि हे गोकुलनायक विट्ठल प्रभु ! मेरी आपसे प्रीति हो गई । आप मेरे से बहुत समय से बिछुड़ गये हो (आत्मा-परमात्मा से बहुत समय पूर्व ...ग हो चुकी), आपकी स्मृति मुझे व्यथित करती है। आपके दर्शनों की आशा में ...रे दोनों नेत्र प्यासे मरते हैं, मैं स्वय ही इस जगत् के बन्धन में बंध गया हूं जिसके ...स्वरूप स्नेहहीन व्यक्तियों से मैंने प्रेम सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास कर विविध ...ओं का तन्तु ताना। आगे कबीर कहते हैं कि वह सवत्र व्यापी प्रभु सबको समान ...प से दृष्टिगत होता है तथा जिस रूप में वह सृष्टि के कण-कण में व्याप्त है उसी ...ति स्वयं मैं भी, अतः अपने भीतर ही प्रभु को खोजने की चेष्टा करनी चाहिए, ...त्र नहीं। अतः हे मनुष्य ! तू कपट एवं मिथ्याभिमान का परित्याग कर अपना ... समर्पण प्रभु चरणों में कर दे। उस प्रभु की खोज में न तो इधर-उधर भटकने ... आवश्यकता है और न शीश पर शास्त्र ग्रन्थों का बोझ ढोने का। केवल जिह्वा से ...सहित उस परम प्रभु का ध्यान करते रहो ! साधना से ही यह सिद्धि प्राप्त हो ...ती है अथवा उस प्रभु से प्रेम द्वारा पूर्ण तादात्म्य स्थापित कर ही उनका साक्षात्कार ...नन्द प्राप्त किया जा सकता है। यदि मनुष्य की दृष्टि ज्ञानपूर्ण नहीं है तो वह ...सार में ही भटकती रहती है। अनन्य साधना से ही उस परमतत्व, एक अविनाशी ...ह्म की प्राप्ति हो सकती है अथवा एक समय में एक ही की साधना की जा सकती ...भोग की अथवा योग की; अर्थात् योग और भोग का असम्पृक्त होना वाछनीय है। ...म-नाम जपने से यह सिद्धि प्राप्त हो सकती है कि योग और भोग दोनों का आनन्द ... प्रभु-भक्ति में आने लगे। मनुष्य को ऐसी अपूर्व प्रेमपूर्ण भक्ति साधना करनी ...हिए कि उसके मुख में चन्द्रमा से अमृत स्रवित होने लगे और इस अवस्था में ...कर मनुष्य अपनी समस्त वृत्तियों को अन्तर्मुखी कर दे तो उसे अपरिमित आनन्द ...त हो। भाव यह है कि यदि मनुष्य कुण्डलिनी को ब्रह्मरन्ध्र में पहुंचा दे ...र वहां से स्रवित अमृत का पान करे तो वह अमर हो जाय, मुक्त हो ...य।

कबीर कहते हैं कि हे सांसारिको ! तुम यह समझते होगे कि यह कबीर ने ...हो मनोरंजनार्थ गीत गाया है, वस्तुतः यह तो मेरा स्वयं का ब्रह्म सम्बन्धी दृष्टि-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कोण है। मैंने तो केवल आत्म साधना की विधि का कथन मात्र किया है। यदि राम नाम स्मरण कर उनके चरणों में प्रेमपूर्वक अपने चित्त का विनियोग करो तो निस्संदेह ही भक्ति के द्वारा मुक्ति प्राप्त हो जायगी।

विशेष—यद्यपि इस पद में कबीर ने कुछ स्थलों पर योग-साधना की प्रक्रियाओं का उल्लेख किया है किन्तु वे विशेष महत्व 'प्रेम-भगति' को ही दे रहे हैं, यह इस पद के उत्तरार्द्ध से भली भाँति स्पष्ट है।

अब मैं पाइबौ रे पाइबो ब्रह्म गियान,
सहज समाध सुख मैं रहिबौ, कोटि कलप बिश्राम ॥टेक॥
गुर कृपाल कृपा जब कीन्हीं, हिरदै कंवल बिगासा।
भागा भ्रम दसौं दिस सूझ्या, परम जोति प्रकासा॥
मृतक उठ्या धनक कर लीयैं, काल अहेड़ी भागा।
उदया सूर निस किया पयांनां, सोवत थैं जब जागा॥
अविगत अकल अनूपम देख्या, कहतां कह्या न जाई।
सैंन करै मनही मन रहसै, गूंगै जांनि मिठाई॥
पहुप बिना एक तरवर फलिया, बिन कर तूर बजाया।
नारी बिना नीर घट भरिया, सहज रूप सो पाया॥
देखत कांच भया तन कंचन, बिन बानी मन मांनां।
उड़्या बिहंगम खोज न पाया, ज्यूं जल जलहि समांनां॥
पूज्या देव बहुरि नहीं पूजौं, न्हाये उदिक नांउं।
भागा भ्रम ये कही कहतां, आये बहुरि न आंऊ॥
आपै मैं तब आपा निरष्या अपन पैं आपा सूझ्या।
आपै कहत सुनंत पुनि अपनां, अपन पै आपा बूझ्या॥
अपनैं परचै लागी तारी, अपन पै आप समांनां।
कहै कबीर जे आप बिचारै, मिटि गया आवन जांनां॥६॥

कबीर ब्रह्म-दर्शन के पश्चात् अपनी मिलनानुभूति का वर्णन करते हैं कि अब मुझे ब्रह्म-ज्ञान की प्राप्ति हो गई है। उस सहज समाधि में ऐसा अपार सुख है कि करोड़ों कल्पों तक उसी स्थिति में रमा जाय।

कृपालु सद्गुरु ने जब कृपा द्वारा ज्ञान पंथ प्रशस्त किया तो हृदय में कमल का विकास हुआ जिससे मेरा संसार-विषयक भ्रम विदूरित हो गया और ज्योति प्रकाशित हो उठी। मेरा समाप्त आत्मज्ञान पुनरुज्जीवित हो प्रभु-मिलन के प्रयत्नरत हो गया जिससे काल रूपी वधिक जो संसार का वध करता है, डर कर भाग गया। जब मैं इस प्रकार चेतनावस्था में आ गया तो ज्ञान-सूर्य का उदय हो गया

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

...न-निशा समाप्त हो गई। इस स्थिति में मैंने उस अगम्य, अनादि, अनुपम प्रभु के ...न किये—उस दर्शनानन्द का वर्णन अवर्णनीय है। जिस भाँति गूंगा मिठाई के ...द का आनन्द मन ही मन भोगता है, उसकी अभिव्यक्ति नहीं कर सकता, केवल ... इंगितादि से ही उसे परितुष्टि प्राप्त करनी पड़ती है, वही दशा मेरी उस आनन्द ...अभिव्यक्ति देने में है। यह जो कुछ भी अभिव्यक्ति की वह तो उस आनन्द-दशा ...चक इंगित मात्र ही हैं। ऐसा लगता था जिस भाँति कोई वृक्ष बिना पुष्प के ही ...त हो गया है, अर्थात् वह अशरीरी होकर भी शोभायुक्त था जिसने बिना हाथ ...ही वाद्य बजा कर ध्वनि की अर्थात् वह बिना कारण कार्य करने में समर्थ है। माया ...नारी के बिना ही हृदयघट ज्ञान-जल से परिपूर्ण हो गया एवं मैंने उस परम प्रभु ...र्शन प्राप्त किये। देखते ही देखते क्षण भर में मेरा कांच तुल्य पार्थिव शरीर कंचन ...शुद्धता में परिणत हो गया। आत्मा रूपी हंस जाकर परमात्मा से उसी भाँति मिल ... जिस भाँति जल जल में जाकर एकमेक हो मिल जाता है। अब मैं सांसारिक ...विश्वासों द्वारा प्रस्थापित देवताओं की आराधना बहुत कर चुका, अब उनकी शरण ...हीं जाऊंगा। मेरा भ्रम दूर हो गया और अब मैं संसार में पुनः नहीं बंध सकता।

जब मैंने अपने हृदय के भीतर ही प्रभु की खोज की तो मुझ को उनके दर्शन ...। इस प्रकार अपनी आत्मा में ही परमतत्व से साक्षात्कार हुआ। आत्म-तत्व से ...चय होते ही मैं भव सागर तर गया, आत्मा का परमात्मा से मिलन हो गया। ...र कहते हैं कि जो आत्म तत्व का विचार करता है वह मुक्त हो आवागमन के ...से छूट जाता है।

विशेष—१. दृष्टांत, विभावना, उपमा, अनुप्रास आदि अलंकार स्वयं कबीर ...अटपटी वाणी में आ गये हैं। २. उस परम प्रभु से जिसने भी साक्षात्कार किया है ... उस मिलन दशा का वर्णन नहीं कर सकता क्योंकि वाणी उसकी अभिव्यक्ति में ...म एवं शब्द कोष अपर्याप्त है। इसीलिए कबीर ने जो भी अभिव्यक्ति उस ...नानुभूति को दी है वह केवल मात्र इंगित हैं क्योंकि उस दशा का वर्णन करते ...ते शब्द लड़खड़ाकर कुछ अटपटे हो उलटबासी से हो जाते हैं, यथा "पहुप बिना ...तरवर फलिया" आदि।

नरहरि सहजैं हीं जिनि जांनां।
गत फल फूल तत तर पलव, अंकूर बीज नसांनां ।।टेक।।
प्रगट प्रकास ग्यांन गुरगमि थैं, ब्रह्म अगनि प्रजारी।
ससि हर सूर दूर दूरंतर, लागी जोग जुग तारी ।।
उलटे पवन चक्र षट बेधा, मेर-डंड सरपूरा।
गगन गरजि मन सुंनि समांनां, बाजे अनहद तूरा ।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सुमति सरीर कबीर बिचारी, त्रिकुटी संगम स्वांमीं।
पद आनद काल थैं छूटैं, सुख मैं सुरति समांनीं ॥७॥

सहज साधना द्वारा ही प्रभु को जाना जा सकता है। इस साधना से ... रिक विषय-वासना के बीज और अंकुर समाप्त हो जाते हैं एवं इस संसार वृ... वास्तविक फल प्रभु की प्राप्ति होती है।

गुरु ने अपने सदुपदेश से ज्ञान का प्रकाश कर दिया एवं प्रभु की भ... साधक को लगा दिया। इस ज्ञान सूर्य के प्रकाश से हृदय प्रदेश का कोना कोना ... मान हो उठा एवं योग-साधना में साधक प्रवृत्त हुआ जिससे कुण्डलिनी को जाग्... उसने छहों चक्रों का वेधन किया और ऊर्ध्वगामी हो उसने शून्यस्थित ब्रह्मरन्... भेदन किया जिससे अमित आनन्ददायी अनहद नाद होने लगा। कबीर अपनी सु... द्वारा विचार कर यह घोषणा करते हैं कि शरीर की त्रिकुटी में प्रभु-साक्षात्कार ... जा सकता है और इस भाँति सुरति-निरति का परिचय कर मनुष्य परम प... अधिकारी हो कालबंधन से मुक्त हो सकता है।

विशेष—(१) "अनहद तूरा"—कुण्डलिनी जब षट्चक्रों का भेदन कर ... रन्ध्र में पहुंचती है तो अलख ज्योति के दर्शन होते हैं और शरीर का रोम प्रति... से प्रभु नाम का शब्द निकलता है—यही 'अनहद नाद' कहलाता है जिसे ... 'अनहद तूरा' कह रहे हैं। २. 'त्रिकुटी'—दोनों नेत्रों एवं नासिका मूल भाग ... बिन्दु, ध्यानावस्था में योगी यहीं अपना ध्यान लगाता है। ३. 'पद आनन्द'—... पद, मुक्त, हंसात्मा—योगियों ने इसे ही परम काम्य माना है।

मन रे मन हीं उलटि समांनां।
गुर प्रसादि अकलि भई तोकौं, नहीं तर था बेंगांनां ॥टेक॥
नेड़ै थैं दूरि दूर थै नियरा, जिनि जैसा करि जांनां।
औ लौं ठीका चढ्या बलींडै, जिनि पिया तिनि मांनां॥
उलटे पवन चक्र षट बेधा, सुंनि सुरति तै लागी।
अमर न मरै मरै नहीं जीवै, ताहि खोजि बैरागी॥
अनभै कथा कवन सौं कहिये, है कोई चतुर बबेकी।
कहै कबीर गुर दिया पलीता, सो झल बिरलै देखी॥८॥

अकलि=ज्ञान, विवेक। बेगांनां=आवारा। नेड़ै=पास, निकट। बलींडै ... यहां ऊर्ध्व स्थान से तात्पर्य। उलटे पवन=उल्टे होकर प्राणायाम करना। बबेकी ... विवेकी। झल=अलख ज्योति।

कबीर कहते हैं कि साधक का मन ऊर्ध्वमुखी हो गया है, इसे गुरुकृपा ... लाभ हो गया अन्यथा यह तो निपट आवारा—चारों ओर भ्रमित रहने वाला ...

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जब प्रभु को खोजने चलते हैं तो वह ऐसा लगता है कि वह दूर अर्थात् अन्यत्र है किन्तु सर्वत्र खोजने के पश्चात् परिणाम यही निकलता है कि वह कहीं अन्यत्र नहीं, हृदय में ही स्थित है। जो भी मनुष्य ऊपर चढ़ गया अर्थात् मन की वृत्तियों को ऊर्ध्वोन्मुखी कर प्रभु से प्रेम किया उसने उसकी प्राप्ति कर ली। अधोमुखी हो प्राणायाम साध कर षट्-चक्रों का भेदन कर यदि शून्य में सुरति को लगा दिया जाय तो मनुष्य आवागमन चक्र से विमुक्त हो जाय — हे साधक! तू उसी मार्ग की साधना कर। कबीर कहते हैं कि इस अपूर्व कथा का वर्णन किससे किया जाय, ऐसा कोई चतुर एवं विवेकवान् मनुष्य है? भाव यह है कि ऐसे बहुत कम लोग हैं जिन्हें इस योग-भावना का पात्र समझा जाये। कबीर कहते हैं कि सद्गुरु के ज्ञान-स्फुलिंग दान से उचित मार्ग का अवलम्बन और उस अलख ज्योतिस्वरूप परम प्रभु के दर्शन बिरले ही लोगों को होते हैं।

इहि तात रांम जपहु रे प्रांनीं, बूझौ अकथ कहांणी।
हरि कर भाव होइ जा ऊपरि, जाग्रत रैंनि बिहांनीं ।।टेक।।
डांइन डारै सुनहां डोरै, स्यंघ रहै बन घेरै।
पंच कुटंब मिलि झूझन लागे, बाजत सबद संघेरै ।।
रोहै मृग ससा बन घेरैं, पारधी बाँण न मेलै।
सायर जलै सकल बन दाझै मंछ अहेरा खेलै ।।
सोई पंडित सो तत ग्याता, जो इहि पदहि बिचारै।
कहै कबीर सोइ गुर मेरा, आप तिरै मोंहि तारै ।।६।।

डांइन=माया। स्यंघ=सिंह, काल। पंच कुटम्ब=पांच ज्ञानेन्द्रियाँ। रोहै=नाग। पारधी=अहेरी। सायर=सागर। मंछ अहेरा=साधक, योगी। तत ग्याता=तत्व ज्ञाता, उसके जानने वाला।

कबीर कहते हैं कि हे प्राणियो! संसार का सार यही है कि राम-नाम स्मरण कर प्रभु की अकथनीय कथा का चिन्तन किया जाय। जिसके हृदय में परम प्रभु का वास सबसे ऊपर है वह दिन-रात प्रेम-पीर से आहत हो जागता रहता है। हे साधक! सुन, ऐसे योगी के मार्ग में माया रूपी डाकिनी आकर्षण के विविध प्रपंच फैला बाधा डालती है और काल रूपी सिंह समस्त संसार रूपी वन पर अपना अधिकार किये हुए है। विषयादिक आकर्षणों की ध्वनि सुनकर मन रूपी मृग उस ओर भागता है एवं खरगोश के रूप में वासनाओं ने संसार को घेर रखा है किन्तु फिर भी साधक रूपी अहेरी बाण-वर्षा द्वारा इनको नष्ट नहीं करता। जब इस समस्त सृष्टि के जल-थल वासना अग्नि से भस्म होने लगते हैं, तब भी योगी रूपी अहेरी यहां निश्चिन्तता से क्रीड़ा करता है - उसे सांसारिकता नहीं व्यापती। कबीर कहते हैं कि वही व्यक्ति

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ज्ञानी है, मेरा गुरु है जो इस पद का विचारपूर्वक आचरण कर स्वयं भी इस सागर से तर जाय और कबीर (जैसे अन्य लोगों) को भी संसार-सिन्धु से तार दे।

विशेष—कबीर ने प्रस्तुत पद में सांगरूपक अलंकार का प्रयोग किया है। समस्त पद में शिकार खेलने का रूपक है।

कबीर अपने जिस पद के विषय में यह घोषणा करते हैं—

"सोई पंडित सो तत ग्याता, जो इहि पदहि विचारै"

उस पद का अर्थ बताने का साहस मुझ जैसा अल्पज्ञ कैसे कर सकता है? जो कुछ भी इसका अर्थ स्पष्टीकरण किया गया है वह केवल मात्र भाव की परिधि का स्पर्श है, उसकी वास्तविकता तक मेरी गति कहां?

अवधू ग्यांन लहरि धुनि मांडी रे।
सबद अतीत अनाहद राता, इहि बिधि त्रिष्णां षांडी ॥टेक॥
बन कै ससै समंद घर कीया, मंछा बसै पहाड़ी।
सुइ पीवै बांम्हण मतवाला, फल लागा बिन बाड़ी ॥
षाड बुणै कोली मैं बैठी, मैं खूंटा मैं गाड़ी।
तांणें बाणैं पड़ी अनंवासी, सूत कहै बुणि गाढी।
कहै कबीर सुनहु रे सतौ, अगम ग्यांन पद मांहीं।
गुरु प्रसाद सूई कै नांकै हस्ती आवै जांही ॥१०॥

षांडी = नष्ट की। ससै = खरगोश, यहां चंचल मन के लिए प्रयोग किया गया है। मंछा = आत्मा। पहाड़ी = शून्य रूपी पर्वत। बाड़ी = खेती। षाड = वस्त्र। कोली = जुलाहा। खूंटा = बुनाई में काम आने वाला एक खूंटा। गाड़ी = भी बुनाई से सम्बन्धित। तांणै-बाणै = ताना-बाना, वस्त्र में दो तरफ से पड़ने वाले सूत के धागे। गाढ़ी = बुनने वाले।

कबीर कहते हैं कि हे अवधूत! ज्ञान-लहर के उठने पर साधक समाधि में लीन हो गया। अनाहद नाद से उत्पन्न आनन्ददायी शब्द में ही उसकी वृत्तियां रम गईं। इस भाँति उसने साँसारिक तृष्णा को नष्ट कर दिया। जिसके फलस्वरूप संसार रूपी वन में भटकने वाले चंचल खरगोश रूपी मन ने शून्य-समुद्र में अपना वास-स्थान बना लिया एवं मछली रूपी पवित्र आत्मा शून्य-शिखर रूपी पर्वत पर जा बसी। वहां पहुंच कर प्रभु-भक्ति में मस्त मुक्तात्मा ब्राह्मण अमृत का पान करने लगा और इस प्रकार बिना ही खेती किये प्रभु रूपी अमूल्य फल की प्राप्ति साधक को हो गई। इस अवस्था में पहुंच कर आत्मा रूपी जुलाहन सुन्दर कर्म रूपी वस्त्र का निर्माण करती है। इस वस्त्र बुनने की प्रक्रिया में आत्मा ही कर्ता है एवं स्वयं ही साधन—'अहं ब्रह्मास्मि'।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विविध सुन्दर कर्मों का ताना-बाना डालकर वह उस वस्त्र का निर्माण कर रही है - सूत अर्थात् सत्कर्म स्वयं उसे पुण्य करने के लिए प्रेरित करते हैं। कबीर कहते हैं कि हे साधुओ ध्यानपूर्वक सुनो, इस अगम्य, अप्राप्य मुक्तपद को साधक गुरु कृपा से ही प्राप्त कर सकते हैं। गुरु कृपा से असम्भव भी सम्भव हो जाता है—सुई की नोंक जैसे सूक्ष्म स्थान के मध्य से हाथी जैसे विशालकाय पशु का आवागमन भी वे सम्भव कर सकते हैं।

विशेष—(१) विभावना, रूपक, अन्योक्ति, उलटबांसी आदि का प्रयोग है।

(२) भक्त के लिए अमिट, अगाध श्रद्धा वांछनीय है—जिसका गुरु पर ऐसा विश्वास हो कि सुई की नोंकमें से वह हाथियों का आवागमन सम्भव कर सकता है उस भक्त कबीरको ज्ञानाश्रयी शाखा में रख कर शुक्लजी ने वस्तुतः कबीर के साथ पूर्ण न्याय नहीं किया था। यद्यपि कबीर अंधविश्वास को तर्क की कसौटी पर रख कर धज्जियां उड़ा देते हैं किन्तु प्रेम-भक्ति क्षेत्र में यह तर्क काफूर हो जाता है। वहां तो शेष रहता है भावनाओं का प्राबल्य मात्र। अतः कबीर को इस उक्ति के आधार पर अंधविश्वासी कहना उनके साथ अन्याय होगा, यह तो उनकी सद्गुरु पर अगाध आस्था का द्योतक है।

एक अचंभा देखा रे भाई, ठाढ़ा सिंघ चरावै गाई ।।टेक।।
पहलैं पूत पीछैं भई माइ, चेला कै गुर लागै पाइ।
जल की मछली तरवर ब्याई, पकड़ि बिलाई मुरगै खाई।
बैलहि डारि गूंनि घरि आई, कुत्ता कूं लै गई बिलाई ।।
तलि करि साषा ऊपरि करि मूल, बहुत भाँति जड़ लागे फूल।
कहै कबीर या पद कौं बूझै, ताकूं तीन्यूं त्रिभुवन सूझै ।।११।।

डा० रामकुमार वर्मा जी ने अपनी पुस्तक 'संत कबीर' में उलटबाँसी में प्रयुक्त शब्दों के अर्थ निम्न प्रकार से दिये हैं—

[पुत्र=जीव। माता=माया। गुरु=शब्द। चेला=जीवात्मा। सिंह=ज्ञान। गाय=वाणी। मछली=कुंडलिनी। तरुवर=मेरुदण्ड। कुत्ता=अज्ञानी। बिल्ली=माया। पेड़=सुषुम्णा नाड़ी। फल-फूल=चक्र और सहस्रदल कमल। घोड़ा=मन। भैंस=तामसी वृत्तियां। बैल=पंच-प्राण। गोति=स्वरूप की सिद्धि। (इनमें से कुछ शब्द पद १२ में आये हैं] अधिकांश शब्दों के अर्थ से सहमत होते हुए भी कुछ शब्दों में हमारा मत उनसे भिन्न है जैसा कि अर्थ करते समय स्पष्ट होगा।

हे भाई! मैंने एक आश्चर्य देखा है। यह आश्चर्य साधना क्षेत्र का है। वहां ज्ञान रूपी सिंह समस्त इन्द्रियों का अर्थात् कर्मों का संचालन कर रहा है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस संसार में पहले तो पुत्र रूपी मनुष्य का जन्म हुआ—"ईश्वर अंश जीव अविनाशी"—फिर माता रूपी माया का आविर्भाव। माया प्रभु की दासी है—चेली है—उसी प्रभु का अंश जीव अर्थात् गुरु उसके पीछे लग रहा है—पैरों पड़ रहा है। भाव यह है कि प्रभु-दासी माया में संलिप्त रहता है। मूलाधार में स्थित कुण्डलिनी ने मेरुदण्ड की सुषुम्णा में अपना वास कर लिया है। माया ने विषय-वासना से पोषित जीवों को समाप्त कर दिया। गुणी आत्मा तामसी वृत्तियों रूपी बैलों का नाश करके अपने वास्तविक स्थान—शून्य महल—में आ गई एवं जो सांसारिकता में बद्ध विषय-वासना में लिप्त कुत्ते के समान निकृष्ट जीव थे उन्हें तो माया ने अपने बंधन में बाँध लिया। इस संसार रूपी वृक्ष की शाखाएं अधोमुखी एवं मूल ऊर्ध्वमुखी है। इस मूल-स्थान—ब्रह्मरन्ध्र—पर विविध कामनाओं को तृप्त करने वाला फल—अलख निरंजन दर्शन—प्राप्त होता है। कबीर कहते हैं कि जो मनुष्य इस पद के अर्थ को हृदयंगम कर (आचरण कर) सकेगा, उसे त्रिभुवन का ज्ञान सहज प्राप्त हो जायेगा।

विशेष—अधोमुखी वृक्ष का ऐसा ही वर्णन गीता में प्राप्त होता है, सुमित्रा-नन्दन पंत ने भी अपनी 'महात्मा जी के प्रति' कविता में लिखा है—

"अधोमूल अश्वत्थ विश्व, शाखाएं संस्कृतियाँ वर।"

हरि के षारे बड़े पकाये, जिनि जारे तिनि षाये।
ग्यान अचेत फिरैं नर लोई, ताथैं जनमि जनमि डहकाये ॥टेक॥
धौल मंदलिया बैलर बाबी, कऊवा ताल बजावै।
पहरि चोल नांगा दह नाचै, भैंसा निरति करावै॥
स्यघ बैठा पान कतरै, घूंस गिलौरा छावै।
उंदरी बपुरी मंगल गावै, कछू एक आनंद सुनावै॥
कहै कबीर सुनहुँ रे संतौ गडरी परबत खावा।
चकबा बैसि अगारे निगलै, समंद अकासां धावा ॥१२॥

प्रभु-भक्ति में अनुरक्त लोग साधना की भट्टी में तपे हैं, जिन्होंने वहां अपनी विषय-वासनाओं को भस्म कर दिया उन्होंने प्रभु को प्राप्त किया और जो अज्ञानी हैं वे तो संसार के माया प्रपंचों में भटकते फिरते हैं एवं उन्हें बारम्बार आवागमन के चक्र में पड़ना पड़ता है।

ढोल, मृदंग, ब्राम्वी आदि विविध वाद्य संसार में माया-आकर्षणों के रूप में बज रहे हैं, विषय-वासना की ओर एक दम लपकने वाला कौआ रूपी जीव भी इन आकर्षणों की गति में अपने को छोड़ देता है। विषय-वासना का वस्त्र धारण कर वह जीव निर्लज्ज होकर उन आकर्षणों में भटकता है एवं विविध तामसिक वृत्तियों का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

...उससे यह नृत्य कराता है। ज्ञान का सिंह निश्चिन्त होकर भ्रम के पान को ...र रहा है—नष्ट कर रहा है, माया रूपी घूंस उसे पथ भ्रष्ट कर विविध ...र्षणों की गिलौरी (पान में डालने की) देना चाहती है किन्तु ज्ञान उसके कहने में ...हीं आता। बेचारी मुक्तात्मा प्रभु-भक्ति के आनन्दप्रद-मंगल-गान (नाम-जप) ...ती है। कबीर कहते हैं कि हे साधुओ! सुनो, माया रूपी गड़रिनी ज्ञान के अचल ...त को नष्ट करना चाहती है किंतु कुण्डलिनी शून्यमें विस्फोट कर अलख निरञ्जन ...ज्योति के दर्शन करती है और समुद्र अर्थात् विषय-वासना में पड़ी आत्मा शून्य ...देश में पहुंच जाती है।

विशेष—यहां कबीर ने उलटवाँसी के माध्यम से योगसाधना की विविध क्रियाओं को पार कर प्रभु-प्राप्ति का ढंग बताया है।

चरषा जिनि जरै।
कातौंगी हजरी का सूत, नणद के भइया की सौं ॥टेक॥
जलि जाई थलि ऊपजी, आई नगर मैं आप।
एक अचंभा देखिया, बिटिया जायौ बाप॥
बाबल मेरा ब्याह करि, बर उत्यम ले चाहि।
जब लग बर पावै नहीं, तब लग तूं हीं ब्याहि।
सुबधी कै घरि लुबधी आयौ, आन बहू कै भाइ।
चूल्है अगनि बताइ करि, फल सौ दीयौ ठठाइ॥
सब जगही मर जाइयौ, एक बढ़इया जिनि मरै।
सब रांडनि कौ साथ चरषा को धरै॥
कहै कबीर सो पंडित ग्याता, जो या पदहि बिचारै।
पहलैं परचौ गुर मिलै, तौ पीछैं सतगुर तारै॥१३॥

कबीर प्रेमिका के रूप में कहते हैं कि यह शरीर रूपी चरखा नष्ट न हो ...योंकि मैं प्रियतम अर्थात् प्रभु की सौगन्ध खा कर कहती हूं कि इससे प्रभुभक्तिरूपी ...सम कर्मों का सूत कातूंगी।

जीवात्मा के रूप में कबीर आगे कहते हैं कि मैं अपने वास्तविक जन्म-स्थान ...से इस संसार रूपी नगर में स्वयं ही आ गई हूं। मैंने यह बड़ा आश्चर्य देखा कि ...माया रूपी प्रभु की बेटी ने (क्योंकि वह उनसे उत्पन्न है, इसलिए उनकी पुत्री) ...व (जो प्रभु का ही अंश है) रूपी पुत्र को जन्म दिया। अब आत्मा प्रभु से प्रार्थना ...करती है कि मेरा विवाह सम्बन्ध जो आत्मिक बन्धन है किसी उत्तम व्यक्ति के साथ ...कर दे और हे परमपिता जब तक कोई अन्य सुन्दर वर नहीं मिलता तब तक तुम्हीं ...मुझे पत्नी रूप में स्वीकार करो। सुबुद्धि रूप आत्मा को आकर्षित करने के लिए

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विषय-वासना का आकर्षण ले माया ने प्रपंच फैलाया । उसने आत्मा को वा
प्राप्य प्रभु—से तो दूर रखा और विषय-वासना की तप्त अग्नि में झोंक दि
समस्त संसार इसी प्रकार इस विषय-वासना अग्नि में भस्म हो नष्ट हो गया,
प्राप्त एक(कबीर की) ही आत्मा नष्ट न हुई । इसीलिए उस प्रिय की अचल
ने अन्य अभागिन आत्माओं के साथ शरीर रूपी चरखे को कुकर्मों में प्रवृ
होने दिया । कबीर कहते हैं कि जो इस पद का अर्थ हृदयंगम कर सके वही
है, वही ज्ञानी है । किसी का परिचय यदि पहले कुछ आचरण सम्बन्धी सिद्धा
हो जाता है तभी सद्गुरु उसकी जीवन नौका पार लगाते हैं ।

विशेष--(१) कबीर की आत्मा अपने 'बाप'—प्रभु—से ही दाम्पत्य
इसलिए स्थापित करना चाहती है कि यहाँ एक दूसरे की दूरी नहीं रहती - 'एक
दो तन' की उक्ति चरितार्थ हो जाती है । जो आत्माएं इस प्रकार प्रभु से
स्थापन न कर अन्य साँसारिक माया आकर्षणों में फंसी रहती हैं उन्हें
अभागिन—'राँडनि'—कहा है । (२) केवल मात्र उक्ति-वैचित्र्य लाने के लि
कबीर ने टेक वाली पंक्ति में 'प्रियतम' के लिए 'नणद के भइया' का
किया है ।

अब मोहि ले चलि नणद के बीर, अपनें देसा ।
इन पंचनि मिलि लूटी हूँ, कुसंग आहि बदेसा । टेक॥
गंग तीर मोरी खेती बारी, जमुन तीर खरिहानां ।
सातौं बिरही मेरे नोपजै, पंचूं मोर किसानां ।
कहै कबीर यहु अकथ कथा है, कहतां कही न जाई ।
सहज भाइ जिहिं ऊपजै, ते रमि रहे समाई ॥१९

कबीर की आत्मा प्रियतम से मनुहार करती कहती है कि हे प्रियतम
मुझे आप अपने देश में ले चलो । इस संसार रूपी विदेश में मुझे यहाँ
आकर्षणों (पंचनि) के सम्पर्क ने लूट लिया है । गंगा और यमुना अर्थात् इड़
पिंगला के तट पर मेरी खेती-बारी और खलिहान है—मेरा सर्वस्व वहीं है
गति वही है । अब तो पाँचों ज्ञानेन्द्रियां, छठा मन तथा सातवीं बुद्धि यही मे
की वास्तविक उत्पत्तियाँ हैं जिन्हें काम, क्रोध, मद, लोभ मोह रूपी कृषकों ने
किया है । अतः मुझे इस अवस्था से उबारो । कबीर कहते हैं कि संसार के
क्रिया-व्यापार की कथा और उससे युक्ति का उपाय अकथ्य है । जिस प्रक्रिया से
समाधि प्राप्त की जा सकती हैं मैं उसी में लगा हुआ हूं ।

अब हम सकल कुसल करि मांनां,
स्वांति भई तब गोब्यंद जांनां ॥टेक॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तन मैं होती कोटि उपाधि, उलटि भई सुख सहज समाधि ।।
जम थैं उलटि भया है रांम, दुख बिसर्‌या सुख कीया विश्रांम ।।
बैरी उलटि भये हैं मींता, साषत उलटि सजन भये चीता ।।
आपा जांनि उलटि ले आप, तौ नहीं ब्यापै तीन्यूं ताप ।।
अब मन उलटि सनातन हूवा, तब हम जांनां जीवत मूवा ।।
कहै कबीर सुख सहज समाऊं, आप न डरौं न और डराऊं ।।१५।।

स्वांति=शान्ति । गोब्यंद=गोविन्द, प्रभु, ब्रह्म । उपाधि=व्याधियां । ...न=स्वजन, हितैषी ।

कबीर कहते हैं कि जब मैंने प्रभु को जान लिया तभी चित्त को शान्ति हुई, ...सलिए अब तो मेरी कुशल ही कुशल है ।

संसार की मायालिप्त होने की जो स्वाभाविक गति है उससे विपरीत आचरण ...र अर्थात् वृतियों को जड़ोन्मुख से चिदुन्मुख कर देने से जो शरीर की कोटि-कोटि ...धियां थीं वे समस्त सहज समाधि में परिवर्तित हो गईं । अब काल भी बदल कर ...झे राम सम ग्राह्य और प्रिय हो गया है और इस प्रकार मैं दुख को विस्मृत कर ...ख-लाभ कर रहा हूं । काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह आदि जो आत्मा के शत्रु थे ...अब दास बन कर मित्र रूप में काम आ रहे हैं । शाक्त जैसे कुमार्गी, आचरण ...ष्ट भी सज्जन रूप में परिवर्तित हो गये हैं । यदि मनुष्य अपनी वृत्तियों को ...न्तर्मुखी कर दे तो उसे दैविक, दैहिक, भौतिक—तीनों तापों में से कोई भी ...भित नहीं कर सकता । जब मैं जीवन-मुक्त की स्थिति में आ गया तभी मेरा मन ...जो संसार माया में उलझा रहता था निर्मल हो कर अपने प्रकृत रूप (जिस रूप में ...ईश्वर ने उसे प्रदान किया था) में आ गया ।

कबीर कहते हैं कि मैं सहज-समाधि में अपने को लगाकर सुख लाभ करूंगा ...और संसार-तापों के भय से न तो स्वयं भयभीत होऊंगा और न किसी को ...भयभीत करूंगा ।

विशेष—पद की टेक पूर्णत: लोकगीत पर आधृत है । लोकगीतों में पति के ...लिए ननद के वीर का सम्बोधन बड़ा प्रिय है ।

संतौ भाई आई ग्यांन की आंधी रे ।
भ्रम की टाटी सबै उडांणीं, माया रहै न बांधी ।।टेक।।
हिति चित की द्वै थूंनीं गिरांनीं, मोह बलींडां तूटा ।
त्रिस्नां छांनि परी धर ऊपरि, कुबुधि का भांडा फूटा ।।
जोग जुगति करि संतौं बांधी, निरचू चुवै न पांणीं ।
कूड़ कपट काया का निकस्या, हरि की गति जब जांणीं ।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आँधी पीछैं जो जल बूठा, प्रेम हरी जन भींनां।
कहै कबीर भांन के प्रगटैं, उदित भया तम षींनां ॥

टाटी=टट्टी, छप्पर। उडांणी=उड़ गई। थूनी=छप्पर को रोकने के लिए प्रकार की टेक, जायसी ने भी नागमती के वियोग वर्णन में इस वस्तु का किया है। बलींडा=छप्पर को मजवूत करने के लिए उसके सिरे पर लगाये जाने फूंस का लम्बा-लम्बा एक भाग। कुबधि=कुबुद्धि। बूठा=बरसा। भांन= सूर्य। षींना=क्षीण।

कबीर कहते हैं कि हे संतो! ज्ञान की आँधी आयी जिससे माया-बन्धनों बंधी भ्रम की टट्टी, छपरिया नष्ट होकर उड़ गई। ज्ञान—आँधी के आते ही प्रेम द्वैत जनित भावना की थूनियां गिर गईं एवं मोह का बलींडा भी टूट गया। प्रकार तृष्णा की छान घर—संसार—से अलग जा पड़ी तथा कुबुद्धि का भेद गया कि वह किस गलत मार्ग पर थी। हे संतो! जीवात्मा ने यह छप्पर बड़े पूर्वक बांधा था जिससे ज्ञान की एक बूंद भी इस में न पड़ सके किन्तु इस आंधी ने इसे उड़ाकर शरीर के पापों रूपी कूड़े को निकाल बाहर किया। इस के पश्चात् प्रभु-भक्ति के जिस जल की वर्षा हुई उससे प्रभु-प्रेमी भीग गये। कहते हैं कि इस भाँति ज्ञान—प्रभाकर के उदित होते ही अज्ञानांधकार हो गया।

विशेष – सांग रूपक, रूपकातिशयोक्ति अलंकार।

अब घटि प्रगट भये राम राई, सोधि सरीर कनक की नांई ॥टेक॥
कनक कसौटी जैसैं कसि लेइ सुनारा सोधि सरीर भयो तन सारा।
उपजत उपजत बहुत उपाई, मन थिर भयो तवै थिति पाई ॥
बाहरि षोजत जनम गंवाया, उनमनीं ध्यांन घट भीतरि पाया।
बिन परचै तन काँच कथीरा, परचैं कंचन भया कबीरा ॥१३॥

शरीर को यौगिक-प्रक्रियाओं से कंचन के समान शुद्ध किया है तभी हृदय प्रभु के दर्शन हुए हैं। जिस प्रकार स्वर्णकार कसौटी पर कस कर स्वर्ण को शुद्ध कंचन बना लेता है उसी प्रकार योग-साधना से मैंने शरीर को शुद्ध किया। हृदय प्रभु-भक्ति उपजाने के लिए अनेक प्रयत्न किये किन्तु जब चचंल मन पूर्ण रूप शांत हो गया तभी शान्तिपूर्ण स्थिति भी प्राप्त हुई। मैंने व्यर्थ समस्त संसार में को खोजते हुए जीवन व्यर्थ कर दिया, उन्मनी की ध्यानावस्था से मैंने उसे हृदय में प्राप्त कर लिया। प्रभु से बिना परिचय के तो यह शरीर कच्चे मांस के समान था किन्तु उनसे साक्षात्कार होते ही यह विशुद्ध कंचन के रूप में परिवर्तित हो गया। तुलसी ने भी कहा है—

"शठ सुधरहि सत संगति पाई। पारस परस कुधात सुहाई ॥"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हिंडोलनां तहां भूलै आतम रांम।
प्रेम भगति हिंडोलनां, सब संतनि कौ विश्राम ॥टेक॥
चंद सूर दोइ खंभवा, बंक नालि की डोरि।
भूलें पंच पियारियां, तहां भूलै जीय मोर॥
द्वादस गम के अंतरा, तहां अमृत कौं ग्रास।
जिनि यहु अमृत चाषिया, सो ठाकुर हंम दास॥
सहज सुंनि कौ नेहरौ, गगन मंडल सिरिमौर।
दोऊ कुल हम आगरी जौ हम भूलें हिंडोल॥
अरध उरध की गंगा जमुनां, मूल कवल कौ घाट।
षट चक्र की गागरी, त्रिबेणीं सगम बाट॥
नाद व्यंद की नावरी, रांम नांम कनिहार।
कहै कबीर गुंण गाइ ले, गुर गंमि उतरौ पार ॥१८॥

प्रेम भक्ति के हिंडोले पर समस्त संत जन रमण करते हैं। उसी हिंडोले पर ...र भूल रहा है।

जिस भांति हिंडोले में दो खम्ब होते हैं उसी प्रकार इडा, पिगंला के दो स्तम्भ हैं ...के मध्य बंकनालि—सुषुम्णा—की डोर डाल रखी है जिस पर पांचों ज्ञानेन्द्रियां ...ती हैं अर्थात् समस्त चित्त वृत्तियां वहीं केन्द्रित हो गई हैं—मेरा मन भी वहीं ...ता—रमता है। जिस शून्य स्थान पर—ब्रह्मरन्ध्र में—द्वादश आदित्यों के आलोक ...प्रकाश प्रकाशित रहता है वहीं अमृत का कुण्ड है। जिस साधक ने इस अमृत ...पान कर लिया वह हमारा स्वामी है हम उसके सेवक। शून्य शिखर पर सहज-...वि में ही हमारा पीहर है, यहां भूलकर हम अपना पितृकुल एवं श्वसुर कुल ...तृ लोक एवं परलोक दोनों को ही श्रेष्ठता प्रदान कर देंगी।

अब दूसरा रूपक प्रस्तुत करते हुए कबीर कहते हैं कि कुण्डलिनी मूलाधार चक्र के ...ट से इड़ा-पिंगला रूपी मार्गों द्वारा षट् चक्रों की गगरी को उठाकर—भेदन कर—...क्र के संगम पर पहुंच कर विस्फोट करेगी जिससे जो अनहद नाद उत्पन्न होगा ...ही इस तीर्थ स्थल में नौका होगी जिसे नाम-स्मरण से खेया जायगा। कबीर कहते ...कि हे जीव! तू राम का गुणगान कर ले जिससे इस संसार-सरिता के पार उतरा ...सके।

को बीनैं प्रेम लागी री, माई को बीनैं।
रांम रसांइण माते री, माई को बीनैं ॥टेक॥
पाई पाई तूं पुतिहाई, पाई की तुरियां बेचि खाई री, माई कौ बीनैं।
ऐसें पाई पर बिथुराई, त्यूं रस बांनि बनायौ री, माई को बीनैं॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नाचै तांनां नाचै बांनां, नाचै कूंच पुराना री, माई को बीनै।
करगहि बंठि कबीरा नाचै, चूहै काट्या तांनां री, माई को बीनै।

कबीर कहते हैं कि प्रभु भक्ति के इस अनुपम वस्त्र को हे सखि ! कौन बुने मैं तो अब राम रसायन में मदमस्त हूं और कौन इस सुख को प्राप्त करता है। हे बुनकर सखि ! तूने अपना समस्त धन पाप-कर्मों में खर्च कर डाला, अब भक्ति-वस्त्र को कौन बुनेगा (वस्त्र बुनने में कुछ पूंजी की आवश्यकता होती है) बनकर सखि ! माया आकर्षणों में लिप्त रह गयी, अब इस प्रभु-प्रेम वस्त्र को कौन करे। बुनकर के अभाव में ताना-बाना दोनों इधर-इधर हो रहे हैं एवं वस्त्र का वही पुरातन ढर्रा चल रहा है जिसमें विषय-वासना ही प्रमुख थी। इसीलिए का कबीर यह देखकर प्रभु-भक्ति वस्त्र बुनने बैठ गये कि काल रूपी चूहा आयु को न कर रहा है।

भाव यह है कि संसार-रीति, माया-पथ, छोड़ शीघ्र ईश्वर-भजन करो।

मैं बुनि करि सिरांनां हो रांम, नालि करम नहीं ऊबरे॥
दखिन कूंट जब सुनहां भूंका, तब हम सुगन विचारा।
लरके परके सब जागत हैं, हम घरि चोर पसारा हो रांम॥
तांनां लीन्हां बांनां लीन्हां, लीन्हें गोड के पऊवा।
इत उत चितवत कठवन लीन्हां, मांड चलवनां डऊवा हो रांम॥
एक पग दोइ पग त्रेपग, संधें संधि मिलाई।
करि परपंच मोट बंधि आये, किलि किलि सबै मिटाई हो रांम॥
तांनां तनि करि बांनां बुनि करि, छाक परी मोहि ध्यांन।
कहै कबीर मैं बुंनि सिरांना, जानत है भगवांनां हो रांम॥

दखिन=दक्षिण। कूंट=कोने में, कोण—दिशा का। भूंका=स्वान भूंकने की ध्वनि। पऊवा=पाव भर। संधे=धीरे-धीरे। किलिकिलि=धीरे-धीरे छाक=सूक्ष्म भोजन, कलेवा जैसा।

कबीर कहते हैं कि मैंने साँसारिक कर्मों का तन्तुवाय तानना बन्द कर दिया क्योंकि इन कर्मों के द्वारा संसार से मुक्ति सम्भव नहीं। दक्षिण दिशा में जिस श्वान रूपी सांसारिक जीवों की व्यथित ध्वनि आ रही थी, भाव यह है उनको देखकर हमने अपने विषय में कुछ शकुन अनुमान किया। उसी समय मुझे आभास हुआ कि यम-नियम-संयम रूपी पुत्रों के जागने पर भी यह विषय-वासना चोर मेरे भीतर घुस आया। तभी मैंने ताना-बाना एवं सूत के पाव-पाव के आदि एकत्रित कर लिये अर्थात् अपने सम्पूर्ण प्राप्य को लेकर इस संसार से अन्यत्र जाकर अपने सुकर्मों का वस्त्र बुनने का निश्चय किया। कुछ पग बढ़कर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उनने उन दुष्कर्मों के अधूरे ताने-बाने में अच्छे कर्मों की संधि मिलाने का प्रयास, किन्तु यहां जो विषय-वासना में पड़कर पापों की गठरी बाँध ली थी वह सारे नष्ट हुई। इस भांति सत्कर्मों का ताना-बाना डाल मुझे वस्तुतः ग्राह्य भोज्य प्रभु-भक्ति—का ध्यान आया। कबीर कहते हैं कि प्रभु-भक्ति में प्रवृत्त होते ही विरत हो गया—यह सब प्रभु जानते हैं।

विशेष—लोकधुन पर आधृत, और आधृत ही क्या लोकधुन की ही संगीतात्मकता ने कबीर के अभीष्ट अर्थ की श्रीवृद्धि में अपूर्व योगदान दिया है।

तननां बुननां तज्या कबीर, रांम नांम लिखि लिया शरीर ।।टेक।।
जब लग भरौं नली का बेह, तब लग टटै रांम सनेह ।।
ठाढी रौवै कबीर की माई, ए लरिका क्यूं जीवें खुदाइ।
कहै कबीर सुनहु री माई, पूरणहारा त्रिभुवन राई ।।२१।।

कबीर कहते हैं कि मैं तो जीवन्मुक्त हो गया हूं इसीलिए कर्म-विरत हो, कर्म बुनने का व्यापार त्याग मैं तो प्रभु-भक्ति में अनुरक्त हो गया हूं। जब तक मैं जीवन-नलिका पर आयु रूपी सूत लपेटता रहूंगा तब तक मेरी राम में प्रीति रहेगी, भाव यह है कि जीवन-पर्यन्त मैं प्रभु-प्रेमानुरक्त रहूंगा। कबीर की मां माया—जिससे वह पहले पल्लवित होता रहा था आश्चर्यान्वित है कि यह मुझसे पृथक् होकर जीवित कैसे है किन्तु कबीर माया रूपी (झूठी) माँ को उत्तर कहते हैं कि जीवनदान देने वाला तो अनन्त शक्तिमय प्रभु है।

जुगिया न्याइ मरै मरि जाइ।
घर जाजरौ बलीडौ टेढौ, औलोती डर राइ ।।टेक।।
मगरी तजों प्रीति पाष सूं डांडी देहु लगाइ।
छींकौ छोडि उपरांह डौ बांधौ, ज्यूं जुगि जुगि रहौ समाइ ।।
बैसि परहडी द्वारा मुंदावौ, ल्यावों पूत घर घेरी।
जेठी धीय सासरै पठवौं, ग्यूं बहुरि न आवै फेरी ।।
लहुरी धीइ सबै कुल खोयौ, तब ढिग बैठन पाई।
कहै कबीर भाग बपरी कौ, किलि किलि सबै चुकांई ।।२२।।

जुगिया=जग। जाजरौ=जर्जर। बलींडौ=छप्पर के बीच में भीतर की लगने वाला एक वांस। टेढौ=टेढ़ा। औलोती=जहाँ छप्पर के अगले भाग से चू-चू कर गिरता है। मगरी=छप्पर की कमर। पाषें=पाखा, प्रायः मिट्टी, या पक्की ईंटों के बने ढलाव के एक विशेष प्रकार के स्तम्भ जिन पर छप्पर के टिके रहते हैं। डाँडी=यह भी छप्पर में ही लगने की एक लकड़ी होती है। छींकौ=एक विशेष प्रकार का लटकने वाला झूलना सा जिस पर प्रायः भोज्य पदार्थ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सुरक्षा की दृष्टि से रख दिये जाते हैं। 'कृष्ण-साहित्य'—विशेष रूप से सूर में इसका पर्याप्त वर्णन है, यथा—

'मैं बालक बहियन की छोटौ, छींकौ केहि विधि पायो।"

डौं=को। परहडी=घड़े रखने का स्थान विशेष जो एक प्रकार से में बनी अंगीठी के ऊपर की सिल्ली के समान होता है। जेठी धीय=बड़ी पुत्री तात्पर्य कुण्डलिनी से है। ग्यूं=जिससे। लहुरी धीय=छोटी पुत्री अर्थात् बपरी=बपुरी, बेचारी।

कबीर कहते हैं कि हे जीव! यदि तू अन्य साँसारिकों की भांति मरना है तो मर जा किन्तु तू तनिक यह तो ध्यान रख कि तेरा शरीर रूपी भवन हो चुका है, विषय-वासनाओं के दवाव से वलंडा रूपी शरीर का मेरुदण्ड है जिस से न जाने कब वर्षा की औलाती रूपी आशंका आ पड़े।

मैं प्रभु-प्रेम के पाखों पर शरीर को छोड़ दूंगा जिसमें नाम-जप लग जायेगी। उस स्थान पर प्रभु-प्राप्ति के फल को ऊंचे पर ही रखूंगा जि मेरे लिए बहुत समय तक सुरक्षित रहे। इस घर के द्वार जिनसे मन बाहर पलहंडी रूपी अंकुश से बन्द करवा दूंगा। कुण्डलिनी रूपी बड़ी लड़की श्वसुर गृह—वास्तविक घर—शून्य शिखर पर—पहुंचा देंगे जिससे वह कर इस संसार में न आ सके। माया रूपी छोटी लड़की ने तो समस्त कुल —को सम्पर्क में आते ही नष्ट कर दिया। कबीर कहते हैं कि यह अपना भाग्य है, छोटी का किया हुआ बड़ी लड़की—कुण्डलिनी—को करना पड़ रहा

विशेष—रूपक, सांगरूपक, रूपकातिशयोक्ति आदि अलंकार।

मन रे जागत रहिये भाई।
गाफिल होइ वसत मति खोवै, चोर मुसै घर जाई ॥टेक॥
षट चक्र की कनक कोठड़ी, बस्त भाव है सोई।
ताला कुंची कुलफ के लागे, उघड़त बार न हौई॥
पंच पहरवा सोइ गये हैं, बसतैं जागण लागी।
जुरा मरण व्यापै कुछ नांहीं, गगन मंडल लै लागी॥
करत विचार मनहीं मन उपजी, नां कहीं गया न आया।
कहै कबीर संसा सब छूटा, रांम रतन धन पाया ॥२३॥

गाफिल=चेतनाशून्य। चोर=पंच चोर—काम, क्रोध, मद, लोभ, मो पंच पहरवा=पाँच ज्ञानेन्द्रियां। बसतैं=कुण्डलिनी।

कबीर अपने मन को प्रबोध देते हुए कहते हैं कि हे मन! तू चेतना अपनी पूंजी को मत खो अन्यथा माया रूपी चोर का शरीर के घर में प्र जायेगा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यह शरीर षट्चक्रोंयुत स्वर्ण-कोठरी है जिसमें कुण्डलिनी सुप्तावस्था में पड़ी किन्तु जब प्राणायाम द्वारा कुण्डलिनी चक्रों का भेदन करती हुई ऊपर जायेगी तो रहस्य प्रकट हो जायेगा। इस अवस्था में पहुंचकर शरीर की पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ पहरेदार जो समस्त क्रिया व्यापार के संचालक हैं सो गये हैं अर्थात् उन्होंने गति स्थिर कर दी है। उनके सोते ही कुण्डलिनी जाग गयी और वह शून्य की अग्रसर होने लगी, वह ब्रह्मरन्ध्र पर पहुंच गई। वहां पहुंचने पर फिर जीवात्मा जन्म-मरण का भय नहीं रहता। मन में विचार करते ही करते यह सिद्धि प्राप्त है अथवा मन की वृत्तियों को अन्तर्मुखी कर देने पर ब्रह्म प्राप्ति हो गई इसके मुझे कहीं इधर-उधर न भटकना पड़ा। कबीर कहते हैं कि इस प्रकार राम रूपी रत्न को प्राप्त कर मैं संसार-संशय से छूट गया।

चलन चलन सबको कहत है, नां जांनौं बैकुंठ कहां है ॥टेक॥
जोजन एक प्रमिति नहीं जांनैं, बातनि हीं बैंकुंठ बषानैं।
जब लग है बैकुंठ की आसा, तब लग नहीं हरि चरन निवासा ॥
कहें सुनें कैसें पतिअइये, जब लग तहां आप नहीं जइये ॥
कहै कबीर यहु कहिये काहि, साध संगति वैकुंठहि आहि ॥२४॥

कबीर कहते हैं कि सब प्रभु लोक - शून्यगढ़ को जाने को कहते हैं किन्तु मार्ग किसी को ज्ञात नहीं है। जो व्यक्ति उस एक ब्रह्म की सीमाओं—शक्तियों से अवगत नहीं वह तो व्यर्थ में ही वैकुण्ठ की बात करता है, उसे प्रभु स्थान का भी नहीं। जब तक मन में वैकुण्ठ पहुंचने में कोई कामना प्रमुख है तब तक चरणों में निवास असम्भव है। उस प्रभु-लोक की बताई गई बातों को जब तक न देख लें विश्वास किस आधार पर करें? कबीर कहते हैं कि मैं यह किसे बताऊं कि साधु-संगति में ही प्रभु का वास है—वहीं वैकुण्ठ है।

अपनें बिचारि असवारी कीजैं, सहज कै पाइडै पाव जब दीजै ॥टेक॥
दे मुहरा लगांम पहिरांऊं, सिकली जीन गगन दौराऊं।
चलि वैकुंठ तोहि लै तारौं, थकहित प्रेम ताजनैं मारूं ॥
जन कबीर ऐसा असवारा, बेद कतेब दहूं थैं न्यारा ॥२५॥

कबीर कहते हैं कि हे साधक! आत्मविचार की सवारी करो और सहज-रूपि की रकाव में पैर रखो—प्रवृत्त होओ, मन को अंकुश का मुहरा पहना नियंत्रण लो और उसकी वृत्तियों को अन्तर्मुखी कर, जीन कस के, शून्य-शिखर की ओर दौड़ाओ। हे मन! चल तुझे प्रभु लोक ले जा कर तेरा उद्धार करूं और वहाँ तुझ सम्पूर्ण शक्ति से प्रेम का एक चाबुक मार दूं जिससे तू प्रभु-प्रेमानुरक्त हो। कबीर कहते हैं कि ऐसा ही साधक ठीक होता है जो वेद-शास्त्र, कुरान आदि ग्रन्थों के पचड़े से दूर रहता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अपनै मैं रँगि आपनपौ जानूं,
जिहि रँगि जांनि ताही कूं मांनूं ॥टेक॥
अभि अंतरि मन रंग समानां, लोग कहैं कबीर बौरानाँ ॥
रंग न चीन्हैं मूरखि लोई, जिहि रँगि रंग रह्या सब कोई।
जे रंग कबहूं न आवै न जाई, वहै कबीर तिहि रह्या समाई ॥२६॥

कबीर कहते हैं कि मैंने जब अपनी वृत्तियों को अन्तर्मुखी कर दि मुझे अपने वास्तविक रूप—कि मैं भी ब्रह्मांश हूं, अतः मेरा वास्तविक प्रिय है—के दर्शन प्राप्त हुए। जिसने भी प्रभु के रंग को पहचान लिया, मैं सम्मान दूंगा।

मेरे मन में प्रभु-प्रेम का रंग समाया हुआ है किन्तु संसार मुझे सां आचरणों से विरत देख पागल समझता है—

"राम वियोगी न जियै, जियै तो बौरा होय।"

मूर्ख, अज्ञानी प्रभु के प्रेम के रंग को नहीं पहचान पाते यद्यपि समस्त के अणु-अणु में उसी की शान्ति है। वह रंग इतना प्रगाढ़ है कि कभी छूटत है कबीर उसी रंग में (आपादचूड़) रंगा हुआ है।

विशेष—महा कवि सूरदास ने भी इसी भाव का पद कहा है।

"आपुन पौ आपुन ही में पायौ।
सब्दहिं सब्द भयो उजियारो, सतगुरु भेद बतायौ॥
ज्यों कुरंग-नाभी कस्तूरी, ढूंढत फिरत भुलायौ।
फिरि चेत्यो जब चेतन ह्वै करि, आपुन ही तनु छायौ॥

झगरा एक नबेरो रांम, जे तुम्ह अपनैं जन सूं काम ॥टेक॥
ब्रह्मा बड़ा कि जिनि रू उपाया, बेद बड़ा कि जहाँ थैं आया॥
यहु मन बड़ा कि जहां मन मानैं, रांम बड़ा कि रांमहिं जानैं।
कहै कबीर हूं खरा उदास, तीरथ बड़े कि हरि के दास॥२

कबीर कहते हैं कि हे प्रभु! यदि आपको अपने भक्तों से स्नेह है तो झगड़े को निपटा दो। वह यह कि ब्रह्मा बड़ा है या जिसने हमें उत्पन्न किया है बड़े हैं अथवा वह बड़ा है जहां से वेदों का उद्गम है। यह मन बड़ा है अथवा प्रभु जिसमें अब यह रमता है अथवा इन सबसे बड़े स्वयं आप हैं? यह सब आप ही जान सकते हैं। तीर्थस्थल बड़े हैं या उनसे भी बड़े हैं प्रभु-भक्त, भाव कि तीर्थस्थलों की अपेक्षा साधुसंगति अधिक श्रेयस्कर है। कबीर तो अब इस से उदास हो गया है—वह केवल प्रभु को ही सर्वोपरि मानता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विशेष—"ब्रह्मा बड़ा कि जिनि रू उपाया"—से यह ध्वनित होता है कि शरीर का स्रष्टा कबीर परब्रह्म को ही मानते हैं जबकि हिन्दुओं की पौराणिक मान्यतानुसार ब्रह्मा ही शरीर का निर्माता है। किन्तु इस विचार वैभिन्न्य से कबीर के अभिप्रेत अर्थ को पाठक तक पहुंचने में कोई कठिनाई नहीं होती।

दास र महि जानिहै रे, और न जानं कोइ ॥टेक॥
काजल देइ सबै कोई, चषि चाहन मांहि बिनांन।
जिनि लोइनि मन मोहिया, ते लोइन परवांन ॥
बहुत भगति भौसागरा, नांनां विधि नांनां भाव।
जिहि हिरदै श्रीहरि भेटिया, सो भेद कहूं कहूं ठाउं ॥
दरसन समि का कीजिये, जौ गुन नहिं होत समांन।
सींधव नीर कबीर मिल्यौ है, फटक न मिलै पखान ॥२८॥

कबीर कहते हैं कि प्रभु को भक्त के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं जानता। जिस प्रकार नेत्रों में काजल तो सभी डालते हैं किन्तु वह सुन्दर नेत्रों में ही शोभा पाता है। नेत्र की जिन सुन्दर पुत्तालिकाओं ने मन को मोहित कर दिया वे ही नेत्र प्रामाणिक रूप से सुन्दर हैं। संसार-सागर में विविध प्रकार की अनेक भक्ति-पद्धतियाँ हैं किन्तु जिसके माध्यम से हृदय में प्रभु के दर्शन हो जायं वह भक्ति तो किसी ही किसी—विरले को ही प्राप्त है। उन प्रभु भक्तों के दर्शन करके ही हे मानव ! क्या लाभ, यदि तुमने स्वयं में उनके समान गुण उत्पन्न न किये। कबीर को तो प्रभु-भक्ति रूपी समुद्र का पवित्र जल प्राप्त हो गया है, हे जीवात्मा ! तुझे चारों ओर भटकने से तो पत्थर की भी प्राप्ति नहीं हो सकती।

कैसैं होइगा मिलावा हरि सनां,
रे तू बिष बिकारन तजि मनां ॥टेक॥
रैतैं जोग जुगति जान्यां नहीं, तैं गुर का सबद मान्यां नहीं ॥
गंदी देही देखि न फूलिए, संसार देखि न भूलिए।
कहै कबीर मन बहु गुंनी, हरि भगति बिनां दुख फुन फुंनीं ॥२९॥

कबीर कहते हैं कि हे मन ! तू विषय-विकारों का परित्याग कर दे, अन्यथा पाप-पंक-पूरित शरीर से प्रभु से किस प्रकार मिलन होगा ? हे मन! तूने न तो यौगिक क्रियाओं को जाना और न सद्गुरु के उपदेश का पालन किया जिससे प्रभु प्राप्ति सम्भव होती। तू इस शरीर का जो निरा कूड़ा है व्यर्थ अभिमान मत कर और न संसार के विभिन्न माया-आकर्षणों में पड़ कर अचेत हो। कबीर कहते हैं कि इस संसार में चाहे कितने ही गुण क्यों न हों प्रभु-भक्ति विना वे सब दुख ही दख हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कासूं कहिये सुनि रामां, तेरा मरम न जानैं कोइ जी।
दास बबेकी सब भले, परि भेद न छानां होई जी ।।टेक।।
ए सकल ब्रह्मंड तैं पूरिया, अरू दूजा महि थांन जी।
मैं सब घट अतरि पेषिया, जब देख्या नैंन समांन जी ।।
रांम रसाइन रसिक हैं, अदभुत गति बिस्तार जी।
भ्रम निसा जो गत करै, ताहि सूझै संसार जी ।।
सिब सनकादिक नारदा, ब्रह्म लिया निज बास जी।
कहै कबीर पद पंक्यजा, अब नेड़ा चरण निवास जी ।।३०।।

मरम=रहस्य। बबेकी=विवेकी ज्ञानी। छानां=पाया। पेषिया=लिया। पंक्यजा=पंकज। नेड़ा=पास, निकट।

कबीर कहते हैं कि हे प्रभु! मैं तुम्हारी महिमा-वर्णन किस से कहूं, तुम्हारा भेद जानता ही नहीं। आपके भक्त बड़े ज्ञानी हैं किन्तु वे भी आपका नहीं पा सकते। इस समस्त ब्रह्माण्ड में आप परिपूर्ण हैं और फिर भी आपका कोई दूसरा ही है। मैंने जब अपने हृदय घट को समग्रतः देखा तो आपके दर्शन आपकी गति उसी प्रकार है जिस भाँति नेत्रों से देखते तो सबको हैं किन्तु हम अपने नेत्रों को (बिना दर्पण आदि के) नहीं देख सकते, आपके द्वारा ही समस्त व्यापार संचालित होते हैं किन्तु आपके दर्शन नहीं हो पाते। आपकी गति विचित्र है। प्रभु! आप रसिकों के लिए किसी अमूल्य रसायन सदृश हैं। जो संसार में अज्ञान-रात्रि को विनष्ट कर देता है उसे ही संसार का वास्तविक दृष्टिगत होता है। शिव, सनकादिक एवं नारदादि ऋषिगणों ने ब्रह्म को ही निवास बना लिया है अर्थात् वे उसमें ही रम गए हैं। कबीर कहते हैं कि अब वास भी प्रभु के पद-पद्मों में ही होगा।

विशेष—'सिव सनकादिक नारदा'—ये समस्त पौराणिक ऋषि और देवता हैं।

मैं डोरै डरै जांऊंगा, तौ मैं बहुरि न भौजलि आंऊंगा ।।टेक।।
सूत बहुत कछु थोरा, ताथैं लाइ लै कंथा डोरा।
कंथा डोरा लागा, तब जुरा मरण भौ भागा ।।
जहां सूत कपास न पूनीं, तहां बसै इक मूनीं।
उस मूनीं सूं चित लाऊंगा, तौ मैं बहुरि न भौजलि आंऊंगा ।।
मेरे डंड इक छाजा, तहां बसै इक राजा।
तिस राजा सूं चित लाऊंगा, तौ मैं बहुरि न भौजलि आंऊंगा ।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जहां बहु हीरा घन मोती, तहां तब लाइ लै जोती।
तिस जोतिहिं जोति, मिलाऊंगा, तौ मैं बहुरि न भौजलि ग्रांऊंगा ॥
जहां ऊगै सूर न चंदा, तहां देष्या एक ग्रनंदा।
उस ग्रानन्द सूं चित लांऊगा, तौ मैं बहुरि न भौजलि ग्रांऊंगा ॥
मूल बंध इक पावा, तहां सिध गणेस्वर रावा।
तिस मूलहि मूल मिलांऊंगा, तौ मैं बहुरि न भौजलि ग्रांऊंगा ॥
कबीरा तालिब तोरा, तहाँ गोपत हरी गुर मोरा।
तहां हेत हरी चित लांऊंगा, तौ मैं बहुरि न भौजलि ग्रांऊंगा ॥

भौजलि=भाभी, यहाँ सखी के अर्थ में प्रयुक्त हुग्रा है। थोरा=थोड़ा; ...ल। कंथा=साधुग्रों के धारण करने का एक वस्त्र विशेष। जुरा=जरा, ...वस्था। भौ=भय। पूनीं=रुई की कातने से पूर्व बनाई जाने वाली एक बत्ती ...। मूनीं=मुनि। ब्रह्म। राजा=स्वामी, ब्रह्म। लै जोती=निरंजन ज्योति। मूल ...=मूलाधार चक्र। सिद्ध गणेस्वर रावा=सिद्धि दाता गणपति, कुण्डलिनी।

कबीर कहते हैं कि यदि मैं प्रभु के प्रेम मार्ग पर अग्रसर हो गया तो हे ...! मैं फिर लौटकर इस संसार में नहीं ग्राऊंगा।

इस संसार में कर्म रूपी सूत का कोई ग्रोर छोर नहीं ग्रतः उसमें पड़ने की ...क्षा कंथा धारण करना, विरक्त होना अधिक श्रेयस्कर है। संसार से विरक्त होने ...र प्रभु-भक्ति को ग्रपनाने के कारण जरा-मरण का भय समाप्त हो जायेगा। जहाँ ..., कपास एवं पूनी ग्रादि अर्थात् कोई भी साँसारिक उपकरण नहीं है वहाँ ब्रह्म का ...वास है। मैं उन ही परम प्रभु से प्रेम करूंगा ग्रौर पुनः इस संसार में नहीं ग्राऊंगा। ...रे प्रेम नगर के ग्रनुपम (शून्य) भवन में एक राजा—ब्रह्म—का निवास है ग्रब मैं ...सी राजा की भक्ति करूंगा ग्रौर इस संसार में नहीं लौटूंगा। उस शून्य प्रदेश में ...त्यधिक मात्रा में हीरे ग्रौर मोती हैं एवं वहीं निरंजन ज्योति का वास है। मैं उसी ...रम-ज्योति स्वरूप से ग्रपनी ग्रात्मा की दीप-ज्योति मिला दूंगा। जहां सूर्य एवं ...न्द्रमा की भी गति नहीं है वहां - शून्य-स्थल—पर ब्रह्मानन्द की प्राप्ति हुई। ग्रब ...मैं उसी ग्रानन्द में चिरमग्न रहूंगा ग्रौर हे सखि मैं ग्रब पुनः इस संसार में नहीं ग्राऊंगा। ...मूलाधार चक्र में एक ऐसा स्थल है जहां सिद्धिसदन गणपति—इस ब्रह्म-प्राप्ति में ...सिद्धि प्रदान करने वाली कुण्डलिनी का वास है। उस मूल शक्ति को सृष्टि के मूल ...न ब्रह्म से मिला दूंगा ग्रौर फिर इस संसार में नहीं ग्राऊंगा। कबीर कहते हैं कि ...जहां ब्रह्मानन्दी साधक के गुरु का वास है—शून्य गढ़ में वहीं मेरे भी गुरु का, मैं भी ...प्रभु-प्रेम के कारण ग्रपनी चित्तवृत्तियों को वहीं केन्द्रित कर रहा हूं, ग्रतः ग्रब मैं इस संसार में नहीं ग्राने का।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant 2

संतौ धागा टूटा गगन बिनसि गया, सबद जु कहां समाई।
ए संसा मोहि निस दिन व्यापै, कोइ न कहै समझाई ॥टेक॥
नहीं ब्रह्मंड प्यंड पुंनि नांहीं, पंचतत भी नाहीं।
इला प्यंगुला सुषमन नांहीं, ए गुंण कहां समांहीं ॥
नहीं ग्रिह द्वार कछू नहीं तहियां, रचनहार पुनि नांहीं।
जोवनहार अतीत सदा संगि, ये गुंण तहां समांही ॥
तूटै बँधै बँधै पुंनि तूटे, जब तब होइ बिनासा।
तब को ठाकुर अब को सेवग, को काकै बिसवासा ॥
कहै कबीर यहु गगन न बिनसै, जौ धागा उनमानां।
सीखें सुनें पढ़ें का होई, जौ नहीं पदहि समांनां ॥२३॥

बिनसि=विनष्ट। ब्रह्मंड=ब्रह्माण्ड। प्यंड=पिंड, शरीर। पंचतत=पंच 'क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा।'

कबीर कहते हैं कि हे सन्तो! जीवन का यह सूत्र टूट जाने पर शरीर समाप्त हो जाती है तो गुरु का सदुपदेश कहाँ समायेगा? मुझे तो यही भ्रा अहर्निश त्रस्त करती है कि जीवात्मा गुरु-उपदेश द्वारा किस प्रकार जीवन्मुक्त हो शरीर की सत्ता समाप्त होने पर ब्रह्माण्ड और पिण्ड तथा पंचतत्व एवं इड़ा—पि आदि का कोई महत्व शेष नहीं रह जाता। न गृह, द्वार अथवा सृजक-मृतक के तो कोई भी नहीं रह जाता। उस अगम्य, अनादि ईश्वर में ही आत्मा का लय जाता है। यह जीवन-सूत्र टूटता है, बंधता है और यही जीवन-क्रम चलता रह इसी के द्वारा जो पहले कभी स्वामी रहा होगा उसे किसी का सेवक बनना पड़ता कबीर कहते हैं कि इस ज्ञान के श्रवण मात्र से कुछ नहीं होता, वास्तविक तत्व हृदयंगम कर उन्मन अवस्था से ब्रह्म से तद्रूप हो जाने पर शून्य—ब्रह्म से आ विलग नहीं होती।

ता मन कौं खोजहु रे भाई, तन छूटे मन कहां समाई ॥टेक॥
सनक सनंदन जै देवनांमां, भगति करी मन उनहुँ न जाना।
सिव विरंचि नारद मुनि ग्यानीं, मन की गति उनहूँ नहीं जानीं ॥
ध्रू प्रहिलाद बभीषन सेषा, तन भीतरि मन उनहूँ न देषा।
ता मन का कोई जानैं भेव, रंचक लीन भया सुषदेव ॥
गोरष भरथरी गोपीचंदा, ता मन सौं मिलि करैं अनन्दा।
अकल निरंजन सकल सरीरा, ता मन सौं मिलि रह्या कबीरा ॥२४॥

कबीर कहते हैं कि हे भाइयो! उस मन की गति का पता लगाओ जो श के छूटने पर भी न जाने कहां रमण करता है। सनक सनन्दन आदि जो ऋषिगण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

...ने अपार भक्ति करके भी मन का रहस्य न पाया। शिव एवं नारद जैसे विरक्त ...ी, महामुनि भी मन की गति को न जान पाये। परम-भक्त ध्रुव, प्रह्लाद, ...ग एवं शेषनाग भी शरीर स्थित मन की गति से अवगत न हो सके। उस ...पूर्ण मन का भेद भला कोई क्या जान सकेगा ? शुकदेव मुनि ने थोड़ी सी उसकी ...को जान पाया अथवा फिर गोरखनाथ, भर्तृहरि, गोपीचन्द जैसे नाथपंथी योगियों ...न की गति को जानकर पूर्ण आनन्द प्राप्त किया। जो मन शरीर में अलख निरं-...ज्योति स्वरूप परमात्मा के समान समाया हुआ है उससे कबीर ने पूर्ण परिचय ...त कर लिया है।

विशेष—पद की प्रथम और अन्तिम पंक्ति से ऐसा आभास होता है कि मन ...प्रयोग कबीर ने इन दो पंक्तियों में आत्मा के लिए किया है।

भाई रे बिरले दोसत कबीर के, यहु तत बार बार कासों कहिये।
मांनण घड़ण संवारण संम्रथ, ज्यूं राषै त्यूं रहिए ॥टेक॥
आलम दुनीं सबै फिरि खोजी, हरि बिन सकल अयानां।
छह दरसन छ्यांनवै पाषंड, आकुल किनहूं न जानां॥
जप तप संजम पूजा अरचा, जोतिग जग बौरानां।
कागद लिखि लिखि जगत भुलानां, मनहीं मन न समाना॥
कहै कबीर जोगी अरू जंगम, ए सब झूठी आसा।
गुर प्रसादि रटौ चात्रिग ज्यूं, निहचै भगति निवासा॥३४॥

बिरलै=कोई ही। दोसत=साथी, क्योंकि कबीर का साधना मार्ग बड़ा ...ठ है अतः उसके साथ चलने के लिए बिरले ही साथी मिलते हैं। तत=तत्व, ...। आलम=दुनिया, संसार। दुनी=दुनिया। छह दरसन=षट्दर्शन, शिक्षा, ...द, निरुक्त, व्याकरण, ज्योतिष, कल्प।

कबीर कहते हैं कि मेरे साथी बहुत कम हैं—इस सत्य का बारम्बार उद्घाटन ...किस-किस के सम्मुख करूं। वह परम प्रभु भरण, पोषण, एवं दोष-संवारण सब ...ों में समर्थ है, अतः वह जिस प्रकार रख रहा है मनुष्य को वैसे ही रहना चाहिए। ...ं सर्वत्र सृष्टि में खोज कर देख लिया किन्तु प्रभु बिना सर्वत्र शून्य, निर्जनता के ...र कुछ नहीं है। षट्दर्शन एवं अन्य विविध शास्त्र ग्रन्थों (जिन्हें कबीर केवल मात्र ...ण वर्ग का पाखण्ड मानते हैं) में प्रभु की खोज के बड़े व्यग्र प्रयत्न किये गए हैं ...तु कोई भी उन्हें पूर्णरूपेण जानने में समर्थ नहीं हो सका। उसी को जानने के ...ए, संसार जप, तप, नियम-संयम, पूजा-अर्चना, ज्योतिष आदि विविध प्रपंचों में ...न हो रहा है। उसकी खोज के लिए पुस्तक पर पुस्तक, एवं विविध धर्म-...न्थों के ढेर के ढेर लिख कर मन ही मन प्रफुल्लित हैं किन्तु इनमें किसी से भी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

उसका वास्तविक रूप प्रकट नहीं होता। कबीर कहते हैं कि योगी आदि विभिन्न के साधक उसकी खोज में झूठी आशा ले ले कर मर रहे हैं, इनके द्वारा गृहीत से वह प्राप्त नहीं होता वह तो निश्चयपूर्वक गुरु उपदेश के द्वारा ग्रहण दृढ़ भक्ति द्वारा प्राप्त होता है।

कितेक सिव सकर गए ऊठि,
राम संमाधि अजहूं नहीं छूटि ॥टेक॥
प्रलै काल कहू कितेक भाष, गये इंद्र से अगिणत लाष।
ब्रह्मा खोजि पर्यौ गहि नाल, कहै कबीर वै राम निराल ॥३५॥

इस पद में कबीर प्रभु की अगम्यता का वर्णन करते कहते हैं कि शिव जैसे न जाने कितने तपस्वी प्रभु की प्राप्ति-इच्छा में समाधि लगा-लगा कर मान गये किन्तु प्रभु की समाधि—निद्रा—आज भी नहीं टूटी, जो उन्हें सकें। न जाने कितनी सृष्टियों का सृजन एवं विनाश हो गया और इन्द्र जैसे कितने लक्ष देवता उनसे पराजित हो गये। ब्रह्मा उन्हें खोजते-खोजते कमल पकड़ कर बैठ रहा, किन्तु कबीर कहते हैं कि वे अद्भुत राम किसी को भी नहीं हो सके।

विशेष—पद की प्रत्येक पंक्ति में हिन्दुओं के किसी न किसी धार्मिक का कबीर को ध्यान है जिनके आधार पर वे ब्रह्म की अगम्यता रहे हैं।

अच्यत च्यंत ए माधौ, सो सब मांहि समांनां।
ताहि छाड़ि जे आंन भजत हैं, ते सब भ्रंमि भुलांनां ॥टेक॥
ईस कहै मैं ध्यांन न जांनूं, दुरलभ निज पद मोहीं।
रंचक करूणां कारणि केसौ, नांव धरण कौं तोहीं॥
कहौ धौं सबद कहा थै आव, अरू फिरि कहां समाई।
सबद अतीत का मरम न जानैं, भ्रंमि भूली दुनियाई॥
प्यंड मुकति कहां ले कीजै, जौ पद मुकति न होई।
प्यंडें मुकति कहत हैं मुनि जन, सबद अतीत था सोई॥
प्रगट गुपत गुपत पुनि प्रगट, सो कत रहै लुकाई।
कबीर परमांनंद मनाये, अकथ कथ्यौ नहीं जाई ॥३६॥

वह अनुपम ब्रह्म समस्त सृष्टि में समा रहा है, उस परम-प्रभु को छोड़ अन्य का भजन करते हैं वे लोग सांसारिक भ्रम में भ्रमित हैं।

प्रभु स्वयं कहते हैं कि मैं ध्यान द्वारा प्राप्य नहीं हूं. मुझे प्राप्त करना कठिन है। हे प्रभु! आप अपने दासों—भक्तों—पर थोड़ी सी तो दया-दृष्टि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

...वे आपका नाम जपने में समर्थ हो सकें। भला बताओ तो शब्द ब्रह्म, नाद-...ह, कहां से उत्पन्न होता है और फिर कहाँ समा जाता है। सद्‌गुरु के उपदेश का ...र रहस्य नहीं जानता वह केवल मात्र माया-भ्रम में उलझा हुआ है। इस शरीर ...ही मुक्ति को लेने से क्या लाभ यदि मुक्ति स्वरूप परम-पद की प्राप्ति न हुई। ...वन्मुक्त मुनिगण यह बताते हैं कि वह अनहद नाद ही तो ब्रह्म था। वह प्रभु कभी ...र्णीय हो जाते हैं और कभी अदृश्य, अगम्य—न जाने वह किधर छिपे हुए हैं। ...ीर को अब परमानन्दस्वरूप परब्रह्म की प्राप्ति हो गई है, इस आनन्द का वर्णन ...हीं किया जा सकता।

सो कछू बिचारहु पंडित लोई,
जाकै रूप न रेष बरण नहीं कोई ।।टेक।।
उपजै प्यंड प्रांन कहां थैं आवैं, मूवा जीव जाइ कहां समावै।
इंद्री कहां करहि बिश्रांमां, सो कत गया जो कहता रांमा ।।
पंचतत तहां सबद न स्वादं, अलख निरंजन बिद्या न बादं।
कहै कबीर मन मनहिं समानां, तब आगम निगम झूठ करि जाना ।।३७।।

भला पण्डित लोग अर्थात् ज्ञानी उसका क्या विचार कर सकते हैं जिसकी न ...ई रूप रेखा है और न कोई वर्ण—जो सर्वथा निराकार है, उसको पाने का प्रयत्न ...ी बड़ा यत्न साध्य है।

शरीर की उत्पत्ति पर उसमें प्राणों का संचार न जाने कहां से हो जाता है ...ौर जीव की मृत्यु पर वही प्राण न जाने कहां जाकर समा जाता है? जीव के ...रणोपरान्त न जाने इन्द्रियाँ, जो संसार के नाना विषयों में अनुरक्त थीं कहाँ जाकर ...ो जाती हैं और वह हंसात्मा जो शरीर को सजीव बनाये था न जाने कहाँ चला ...या? जहां जाते हैं वहां पंचतत्व निर्मित यह भौतिक संसार नहीं है, केवल वह ...लख निरंजन ब्रह्म ही ज्योतिष्मान् है। वहाँ किसी लौकिक विद्या अथवा विचार धारा ...ी गति नहीं है। कबीर कहते हैं कि जब मन की वृत्तियों को अन्तर्मुखी कर ब्रह्म ...में केन्द्रित कर दिया जाता है तब आगम-निगम आदि की समस्त शास्त्रीय विचार-...धारा मिथ्या प्रतीत होने लगती है और केवल ब्रह्म का ही ध्यान रहता है।

जौ पैं बीज रूप भगवाना,
तौ पंडित का कथिसि गियाना ।।टेक।।
नहीं तन नहीं मन नहीं अहंकारा, नहीं सत रज तम तीनि प्रकारा ।।
विष अमृत फल फले अनेक, बेद रु बोधक हैं तरु एक।
कहै कबीर इहै मन माना, कहिधूं छूट कवन उरझाना ।।३८।।

कबीर कहते हैं कि यदि ब्रह्म बीज रूप ही एक है जिससे असंख्य फलों वाली

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

यह सृष्टि फली है तो फिर पंडित इसी बात के रहस्योद्‌घाटन के लिये क्या कथन करेगा ? वह ब्रह्म न तो शरीरधारी है और न मनयुक्त है एवं सत्त्व, रज, तीनों गुणों से परे है। इस संसार में उसी की सृष्टि के रूप में विष और अमृत फलों से युक्त वृक्ष लगे हुए हैं किन्तु उन सबका मूल उत्स एक ही है। कबीर कहते कि इस प्रकार समस्त सृष्टि का नियामक एक ही ब्रह्म को मान लेने में ही आनन्द और शान्ति है, कौन इस व्यर्थ के झगड़े में पड़कर उलझे ?

पांडे कौंन कुमति तोहि लागी,
तूं रांम न जपहि अभागी ॥टेक॥

बेद पुरांन पढत अस पांडे, खर चंदन जैसें भारा।
रांम नांम तत समझत नांही, अंति पड़ं मुखि छारा॥
बेद पढ्यां का यहु फल पांडे, सब घटि देखैं रांमां।
जन्म मरन थैं तौ तूं छूटै, सुफल हूंहि सब कांमां॥
जीव बधत अरू धरम कहत हौ, अधरम कहां हैं भाई।
आपन तौ मुनिजन ह्वै बैठे, का सनि कहौं कसाई॥
नारद कहै ब्यास यौं भाषैं, सुखदेव पूछौ जाई।
कहै कबीर कुमति तब छूटै, जे रहौ रांम ल्यौ लाई॥३६॥

हे पांडे जी ! आप किस दुर्बुद्धि के फेर में पड़कर विविध पाखण्ड कर्मों के जंजाल फैलाते हो, हे अभाग्यवान् राम-नाम क्यों नहीं जपता ? व्यर्थ में वेद पुराण पढ़ने से क्या लाभ ? वास्तविक ज्ञान तो प्रभु-भक्ति है, यह पुस्तकीय ज्ञान ऐसा ही है जैसे गधे पर चन्दन लदा हुआ हो और वह उसका कुछ भी लाभ न उठा सके। यदि तूने राम-नाम का रहस्य नहीं जाना तो अंत में मुख में धूलि पड़ेगी अर्थात् मृत्यु को प्राप्त होगा। हे पाण्डे जी ! वेद पढ़ने का तो यही लाभ है कि प्रत्येक के हृदय में प्रभु की अवस्थिति समझो। इससे तू जन्म-मरण के आवागमन चक्र से मुक्त हो जाएगा और तेरे समस्त कार्य सफल हो जायेंगे। यदि तुम पशुवलि करने को भी धर्म कहते हो तो फिर अधर्मपूर्ण कार्य कौन सा रह गया ? तुम स्वयं पशुवध करके तो मुनि कहलाते हो फिर भला कसाई किसे कहोगे ? । व्यास जी, नारद जी और शुकदेव जैसे ऋषियों द्वारा इस मत की पुष्टि कराते हैं। कबीर कहते हैं कि यह कुबुद्धि जो तुम्हें ऐसे क्रूर कर्म करने के लिए प्रेरित करती है तभी छूट सकती है जब तुम अपनी वृत्तियां राम में केन्द्रित कर दो।

पडित बाद बदंते झूठा।
रांम कह्यां दुनियां गति पावै, खांड कह्यां मुख मीठा ॥टेक॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पावक कह्यां पाव जे दाझै, जल कहि त्रिषा बुझाई।
भोजन कह्यां भूष जे भाजै, तौ सब कोई तिरि जाई ।।
नर कै साथि सूवा हरि बोलै, हरि परताप न जानै।
जो कबहूं उड़ि जाइ जँगल मैं, बहुरि न सुरतैं आनै ।।
साची प्रीति विषै माया सूं, हरि भगतनि सूं हासी।
कहै कबीर प्रेम नहीं उपज्यौ, बांध्यौ, जमपुरि जासी ।।४०।।

पंडित लोग व्यर्थ के विभिन्न वाद प्रस्थापित कर ईश्वर के झूठे स्वरूप से ...कराते हैं। भला यदि राम-राम कहने मात्र से संसार से मुक्ति हो जाय ...खांड का नाम-मात्र लेने से मुंह मिष्टान्न का स्वाद ले ले, अग्नि का नाम लेने ...पैर जल जाय और जल कह देने भर से तृषा परितृप्त हो जाय, भोजन कहने ...भूख की परितृप्ति हो जाय तो सब ही अपनी इच्छानुकल तृप्ति पा लें। मनुष्य ...सिखाये जाने पर तोता भी राम-नाम उच्चारण करता है किन्तु वह प्रभु प्रताप ...अवगत नहीं होता। यदि कभी वह अपने पिंजड़े से छूट जाय तो पुनः कभी ...प्रभु की स्मृति भी नहीं आ सकती। जो जीवात्मा माया के विविध विषयों से ...प्रेम रखते हैं और प्रभु भक्तों का उपहास करते हैं उनके हृदय में कभी भी प्रभु-...उत्पन्न नहीं हो सकता और वे आवागमन के बंधन में बंधे मृत्यु को प्राप्त ...हैं।

जौ पैं करता बरंण विचारै,
तौ जनमत तीनि डांडि किन सारै ।।टेक।।
उतपति व्यंद कहां थैं आया, जो धरी अरू लागी माया।
नहीं को ऊंचा नहीं को नींचा, जाका प्यंड ताही का सींचा ।।
जे तूं बांमन बभनीं जाया, तौ आंन बाट ह्वै काहे न आया।
जे तूं तुरक तुरकनीं जाया तौ भीतरि खतनां क्यूं न कराया ।।
कहै कबीर मधिम नहीं कोई, सो मधिम जा मुखि रांम न होई ।।४१।।

कबीर कहते हैं कि यदि सृष्टि कर्ता प्रभु भी वर्ण-विचार करे तो मनुष्य के ...लेते ही उसे तीन खण्डों में विभाजित कर दे। समस्त जीवों का मूल उत्स एक ...है और फिर सब माया-बंधन में पड़ते हैं। समस्त जीव समान है क्योंकि शरीर एक ...सांचे में ढले हुए हैं, इसलिए कोई उच्च और निम्न नहीं है। हे ब्राह्मण! यदि ...अपनी उच्चता का गर्व है तो तू शेष संसार के समान ही मातृ-गर्भ से क्यों जन्मा ...अन्य मार्ग से क्यों नहीं आया? और हे तुर्क! यदि तू अपनी श्रेष्ठता में किसी ...कुछ समझता ही नहीं तो मातृ-उदर में ही खतना कराकर अन्य लोगों से अपनी ...ता प्रमाणित करता। कबीर कहते हैं कि कोई नीच नहीं है, केवल वही नीच है ...के मुख से राम-नाम का उच्चारण नहीं होता।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

विशेष—ख़तना—मुसलमानों में ४-५ वर्ष की अवस्था में बालक की इन्द्रिय के अग्र भाग की खाल काटने का एक संस्कार होता है।

कथता बकता सुरता सोई, आप बिचारै सो ग्यांनी होई ।।टेक।।
जैसें अगिन पवन का मेला, चंचल चपल बुधि का खेला।
नव दरवाजे दसूं दुवार, बूझि रे ग्यांनी ग्यांन विचार।।
देही माटी बोलै पबनां, बूझि रे ग्यांनी मूवा स कौनां।
मुई सुरति बाद अहंकार, बह न मूवा जो बोलणहार।।
जिस कारनि तटि तीरथि जांही, रतन पदारथ घट हीं माहीं।
पढ़ि पढ़ि पंडित बेद बषांणैं, भींतरि हूती बसत न जांणैं।।
हूं न मूवा मेरी मुई बलाइ, सो न मुवा जो रह्या समाइ।
कहै कबीर गुरु ब्रह्म दिखाया, मरता जाता नजरि न आया।
बलाइ=अहं।

जो अपनी वृत्तियों को अन्तर्मुखी कर विचार करता है वही ज्ञानी है, उपदेशक है, वही प्रभु प्रेमानुरक्त है। जिस प्रकार वायु के संस्पर्श से अग्नि प्र... हो उठती है उसी भाँति सर्वत्रगामी और तीव्र बुद्धि के द्वारा ही यह आत्म... सम्भव है। शरीर में नौ द्वार एवं ब्रह्मरन्ध्र हैं, हे ज्ञानी! ज्ञान द्वारा तू इन... का अनुमान कर। शरीर तो मिट्टी मात्र है जिसको प्राणवायु जीवन प्रदान... है, हे ज्ञानी जो (आत्मा) मर गया वह कौन था, उसके स्वरूप पर विचार... कबीर स्वयं ज्ञानी से किए गए प्रश्न का उत्तर देते कहते हैं कि आत्मा नष्ट नहीं... मनुष्य की मृत्यु पर नष्ट तो अहं, मिथ्या दम्भ एवं स्वार्थवृत्ति होती है। जिन... मनुष्य विविध तीर्थों की यात्रा का श्रम उठाता है वह रत्न और अमूल्य पदार्थ... प्रभु तो हृदय में ही वास करते हैं। पण्डित व्यर्थ में उद्‌घोष गिरा से वेदों का... च्चार करता है किन्तु अन्तर में रहने वाले ब्रह्म से परिचित नहीं होता। ... मनुष्य नहीं मरता केवल मात्र उसका अहं नष्ट हो जाता है और वह जो... संसार में रमा हुआ है परमात्मा आत्मा के रूप में रह जाता है। कबीर कहते... सद्‌गुरु ने मुझे ज्ञान-दृष्टि प्रदान कर ब्रह्म के दर्शन करा दिये जिससे मैं जीवन... के आवागमन चक्र से मुक्त हो गया।

हम न मरैं मरिहै संसारा, हंम कूं मिल्या जियावनहारा ।।टेक।।
अब न मरौं मरनैं मन मांनां, तेई मूए जिनि राम न जानां।
साकत मरै संतन जीवै, भरि भरि रांम रसाइन पीवै।।
हरि मरिहैं तौ हमहूँ मरिहैं, हरि न मरै हंम काहे कूं मरिहैं।
कहै कबीर मन मनहि मिलावा, अमर भये सुख सागर पावा।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कबीर इस पद में प्रभु प्राप्ति के पश्चात् अपनी मन:स्थिति का वर्णन करते ...हैं कि अब मेरा मरण नहीं हो सकता क्योंकि मुझे तो जीवन या अमरता प्रदान ...वाले प्रभु के दर्शन हो गये । अब मैंने मन में दृढ़ निश्चय कर लिया है कि मैं ...को प्राप्त नहीं होऊंगा—मरते तो वे हैं जो प्रभु-महिमा से अवगत नहीं होते ...मैं तो प्रभु से साक्षात्कार कर चुका हूं । शाक्त तो बलि आदि की विविध हिंसा-क्रियाओं में ही पड़ा हुआ नष्ट हो जाता है और साधु जन भरपूर मात्रा में राम-रसायन—प्रभुभक्ति—का पान करते हैं, अतः ... हो जाते हैं। यदि प्रभु की ...ति हो जायेगी तो हमारा भी नाश हो जायेगा किन्तु जब वही नहीं मरेगा तो ...कैसे मर सकते हैं ? क्योंकि हम तो उस अंशी के ही अंश हैं । कबीर कहते हैं कि ...को प्रभून्मुख कर देने से सुख-सागर की प्राप्ति हो कर मनुष्य अमर हो जाता है ।

कौंन मरै कौन जनमै आई, सरग नरक कौंनै गति पाई ।।टेक।।
पंचतत अबिगत थै उतपनां, एकैं किया निवासा ।
बिछुरे तत फिरि सहजि समांनां, रेख रही नहीं आसा ।।
जल मैं कुंभ कुंभ मैं जल है, बाहरि भीतरि पांनीं ।
फूटा कुंभ जल जलहि समांनां, यहु तत कथौ गियानीं ।।
आदें गगनां अंतें गगना, मधे गगनां भाई ।
कहै कबीर करम किस लागै, झूठी संक उपाई ।।४४।।

अविगत=ब्रह्म । एकैं=एक में ही । संक=शंका । उपाई=उपाय ।

कबीर कहते हैं कि भला कौन मरता जीता है एवं मरणोपरान्त कौन स्वर्ग ...नरक प्राप्त करता है—ये तो विश्वासमात्र ही हैं । प्रभु से उत्पन्न पंचतत्व—...ी, जल, आकाश, अग्नि, वायु—एकत्र रूप में आने पर मनुष्य का रूप धारण कर ...शरीर नष्ट हो जाने पर, उससे विलग हो, ये पंचतत्व पुनः उसी ब्रह्म में समा ...ते हैं और फिर मनुष्य का कुछ चिन्ह भी संसार में नहीं रह जाता । वस्तुतः यह ...ट इसी प्रकार है कि संसार के जल में शरीर रूपी एक घट है जिसमें भीतर भी ...ही विद्यमान है—शरीर में समस्त तत्व इस सृष्टि के ही हैं—एवं उसके बाहर ...संसार रूपी जल है ही । शरीर रूपी घट के फूट जाने पर शरीर घट-स्थित जल ...आत्मा शेष संसार में व्याप्त परमात्मा से मिल गई । इस प्रकार सृष्टि के आदि, ...और अन्त में अर्थात् सर्वत्र परमात्मा का ही निवास है कबीर कहते हैं कि संसार ...माया-आकर्षण तथा संसार-भ्रम मिथ्या है, यहाँ तो केवल कर्म ही प्रधान है ।

कौंन मरै कहु पंडित जनां, सो समझाइ कहौ हम सनां ।।टेक।।
माटी माटी रही समाइ, पवनैं पवन लिया सँगि लाइ ।
कहै कबीर सुंनि पंडित गुंनी, रूप मूवा सब देखै दुनीं ।।४५।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

हे ज्ञानी पंडित भक्त ! हमें बताओ तो सही कि मरता कौन है। ... नहीं केवल मिट्टी का दूसरी मिट्टी में मिल जाना है, पवनाँश का सम्पूर्ण ... में व्याप्त वायु से मिलन है। कबीर कहते हैं कि ज्ञानी पण्डित ! सुन, सब ... शरीर को नष्ट होता देख उसे मरण कहते हैं किन्तु यह कोई नहीं देखता ... व्यष्टि का समष्टि से, अंश का अंशी से, आत्मा का परमात्मा से मिलन है।

जे कौ मरै मरन है मींठा,
गुर प्रसादि जिनही मरि दीठा ।।टेक।।
मूवा करता मुई ज करनीं, मुई नारि सुरति बहु धरनीं।
मूवा आपा मूवा मांन, परपंच लेइ मूवा अभिमांन॥
रांम रमें रमि जे जन मूवा, कहै कबीर अबिनासी हूवा॥

कबीर कहते हैं कि सद्गुरु कृपा से जिन्हें मरण के दर्शन हो जाते हैं ... मरना चाहें तो मरण ही उनके लिए मधुर है क्योंकि वह प्रभु-दर्शन का ... है। जो साँसारिक कर्मों के लिए मर जाता है अर्थात् उनसे विरक्त हो जाता ... कर्म-दोष या कर्म-पाप नहीं लगता। व्यक्ति को कामिनी एवं अन्य मायाकर्षणों ... हो जाना चाहिए। अहं और दम्भ को नष्ट कर एवं मिथ्या-मान को भी ... व्यक्ति साँसारिक प्रपंच से अलग हो जाता है। कबीर कहते हैं कि इस भांति ... के लिए मर कर जो प्रभु-भक्ति में लीन रहते हैं फिर वे प्रभु में मिल कर ... को प्राप्त हो जाते हैं।

जस तूं तस तोहि कोई न जान,
लोग कहैं सब आंनहिं आंन ।।टेक।।
चारि बेद चहुँ मत का बिचार, इहि भ्रंमि भूलि पर्‌यौ संसार।
सुरति सुमृति दोइ को बिसवास, बाझि पर्‌यौ सब आसा पास।
ब्रह्मादिक सनकादिक सुर नर, मैं बपुरौ धूं का मैं का कर।
जिहि तुम्ह तारौ सोई पैं तिरइ, कहै कबीर नांतर बांध्यौ मरई।

कबीर कहते हैं कि हे प्रभु ! आप जैसे हैं उस रूप में आपको ... जानता सब और ही और रूप में आपका स्वरूप वर्णन करते हैं। चारों ... समस्त मत-मतान्तरों का उद्देश्य भी आपका स्वरूप वर्णन है किन्तु संसार ... विश्वास कर व्यर्थ भूल में पड़ा हुआ है—वहाँ ईश्वर का वास्तविक स्वरूप ... प्रभु को प्राप्त करने के लिए केवल दो ही उपाय हैं—प्रेम और स्मृति ग्रंथ ... शेष उपायों के द्वारा इन्हीं के चारों ओर घूमता है। आगे कबीर पूर्व कथन ... रखती हुई बात कहते हैं कि ब्रह्मादिक एवं सनकादिक आदि ऋषिगण ... देवता तथा मनुष्य भी उनका भेद न जान सके तो मैं बेचारा भला उनको ...

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

...ता हूं? कबीर कहते हैं कि हे प्रभु! जिसे आप इस संसार सिंधु से तारना ...ते हैं तो तर जाता है, अन्यथा शेष मनुष्य तो माया-बंधन में पड़े ही मर जाते ...और आवागमन के चक्र में पुनः पड़ते हैं।

विशेष—१. अन्तिम पंक्ति से तुलना कीजिए—

"सो जानई जेहि तुम्हई जनाई, जानत तुम्म तुम्मई होइ जाई।"

२. ब्रह्म का स्वरूप वर्णन करने में कबीर की बड़ी विचित्र स्थिति हो जाती ...प्रस्तुत पद के पूर्वार्द्ध में कबीर चुनौती देकर वेदादि की प्राप्ति को भ्रम बताते हैं ...तु इससे थोड़ा आगे बढ़कर वे प्रभु प्राप्ति के दो ही उपाय बताते हैं—प्रेम व ...ति ग्रंथ। यह कैसा विरोधाभास है? फिर और आगे बढ़कर उसी कबीर के मुख ...जो धर्म ग्रन्थों की प्राप्ति को इस प्रकार चुनौती देता है कि उसने वास्तविक सत्य ...साक्षात्कार किया है, उसका ब्रह्म से मिलन हुआ है, हम यह सुनते हैं कि जब ...बड़े ऋषिगण ही उस प्रभु को न जान सके तो भला मैं क्या जान सकता हूं? ...तुतः इन कथनों में ऊपर से ही विरोधाभास लक्षित होता है, उनके मूल में एक ...क की विभिन्न मनःस्थितियों का दर्शन होता है।

लोका तुम्ह ज कहत हौ नंद कौ नंदन, नंद कहौ धूं काकौ रे।
धरनि अकास दोऊ नहीं होते, तब यहु नंद कहां थौ रे।।टेक।।
जांमैं मरै न सकुटि आवै, नांव निरंजन जाकौ रे।
अबिनासी उपजै नहिं बिनसै, संत सुजस कहैं ताकौ रे।।
लष चौरासी जीव जंत मैं भ्रमत नंद थाकौ रे।
दास कबीर कौ ठाकुर ऐसो भगति करै हरि ताकौ रे।।४८।।

हे पण्डित! नन्दलाल श्रीकृष्ण को प्रभु बताते हो किन्तु यह तो बताओ कि ...र कौन है? और कहां का वासी है? जब पृथ्वी और आकाश—सृष्टि में कुछ ...नहीं था केवल मात्र परब्रह्म था क्या तुम्हारा यह नन्द तब भी था? कबीर कहते ...कि वास्तविक प्रभु तो वही है जिसका नाम अलख-निरंजन है। वह न तो जन्म ...ता है और न मरण को प्राप्त होता है और न कभी उस पर संकट आता है। वह ...विनाशी प्रभु न तो जन्म लेता है, न मरता है; हे साधुजनो! तुम उसी का गुण-...करो। नन्द तो, जो कृष्ण का पिता है, आवागमन के चक्र में पड़कर चौरासी ...योनियों में भ्रमित होता रहा है अर्थात् वह तो सामान्य मनुष्य है किन्तु कबीर ...स्वामी ऐसे हैं जो इन सब साँसारिक बातों से परे हैं उसी की भक्ति काम्य है।

निरगुण रांम निरगुण रांम जपहु रे भाई,
अबिगत की गति लखी न जाई।।टेक।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

चारि बेद जाकै सुमृत पुरांनां, नौ व्याकरनां मरम न जांनां।
सेस नाग जाकै गरड़ समांनां, चरन कंवल कंवला नही जांनां॥
कहै कबीर जाकै भेदै नांही, निज जन बैठे हरि की छांहीं॥

कबीर कहते हैं कि हे भाई ! तुम निर्गुण ब्रह्म की भक्ति करो। उस प्रभु की गति का किसी को पता नहीं। चारों वेद एवं समस्त स्मृति एवं पुराण तथा नव-व्याकरण इस निर्गुण ब्रह्म के रहस्य को न जान सके। शेषनाग को निगल वाहन गरुड़ चट कर जाता है उस प्रभु के रहस्य को उनके चरण कमलों में वाली लक्ष्मी नहीं जान पातीं। कबीर कहते हैं कि परम प्रभु के रहस्य को कोई जान पाया किन्तु प्रभु-भक्त उनके रहस्य को पहचानकर उन्हीं की शरण में रहे।

विशेष—कबीर के ब्रह्म की विशेषता यही है कि उसे जहां निर्गुण वहाँ उसका सम्मिलन वैष्णवों के आराध्य विष्णु आदि से कर देते हैं। किन्तु नामों को भी कबीर ने अवतार के नाम के रूप में नहीं अपनाया, उनका निर्गुण जनता में प्रचलित इष्टदेव के नामों से अभिहित हो सर्वसाधारण के अधिक आ जाता है।

मैं सबनि मैं औरनि मैं हूँ सब।
मेरी बिलगि बिलगि बिलगाई हो,
कोई कहौ कबीर कोई कहौ रांम राई हो ॥टेक॥
नां हम बार बूढ नाहीं हम, नां हमरै चिलकाई हो।
पठए न जांऊं अरवा नहीं आंऊं, सहजि रहूं हरिआई हो।
वोढन हमरै एक पछेवरा, लोक बोलैं इकताई हो।
जुलहै तनि बुनि पांन न पावल, फारि बुनी दस ठांई हो।
त्रिगुंण रहित फल रमि हम राखल, तब हमरौ नांउं रांम राई
जग मैं देखौं जग न देखै मोहि, इहि कबीर कछु पाई हो ॥

कबीर का ब्रह्म स्वयं कहता है कि मैं सर्वत्र व्याप्त हूं और सृष्टि के पदार्थ में सब कुछ मैं ही हूं। यह नाना रूपात्मक जगत् मेरे विभिन्न रूपों का है। कोई मुझे किसी नाम से पुकारता है और कोई किसी अन्य नाम से। मैं न जल-प्रवाह में डूब सकता हूं एवं न मैं किसी वाह्य प्रकाश से प्रकाशित हूं। मैं न जाता हूं और न कहीं आता हूं, मैं तो स्वाभाविक रूप से, प्रयत्न न करते हुए संसार (विद्वानों से तात्पर्य) मुझे एक परमतत्व के रूप में जानता है। जुलाहा जिस प्रकार एक ही थान को बुनकर उसके दस टुकड़े कर देता है उसी भाँति मैं एक हुए भी सर्वत्र रहता हूं। मुझे मेरी सत्-रज्-तम त्रिगुणात्मक प्रकृति भी नहीं इसी अद्‌भुतता के कारण मेरा नाम राम पड़ा। कबीर ने उसके स्वरूप को

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

...किया है, इसीलिए वे कहते हैं कि ब्रह्म तो समस्त जगत् को देखता है किन्तु ...उस परमात्मा को नहीं देखता।

लोका जांनि न भूलौ भाई।
खालिक खलक खलक मैं खालिक, सब घट रह्यौ समाई ॥टेक॥
अला एकै नूर उपनाया, ताकी कैसी निंदा।
ता नूर थैं सब जग कीया, कौन भला कौन मंदा ॥
ता अला की गति नहीं जांनीं, गुरि गुड़ दीया मींठा।
कहै कबीर मैं पूरा पाया, सब घटि साहिब दीठा ॥५१॥

खालिक=प्रभु। खलक=संसार। नूर=रत्न। मंदा=बुरा। गुरि=सद्गुरु। ...ज्ञानोपदेश। पूरा=पूर्ण ब्रह्म। साहिब=स्वामी, ब्रह्म। दीठा=दृष्टिगत ...।

हे पंडित! तुम प्रभु-महिमा को जानते हुए भी उसे भूलो मत अर्थात् प्रभु ...विस्मृत कर संसार की विषय-वासनाओं में मत पड़े रहो। वह ब्रह्म परिव्याप्त ...इस प्रकार वह प्रभु प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में बसा हुआ है। एक प्रभु से ...समस्त संसार का निर्माण हुआ है अतः दूसरे की निन्दा कर प्रभु को ही निन्दित ...है। जब समस्त संसार उसी एक ज्योति से प्रकाशित है तो फिर भला अच्छा ...बुरा, उच्च और निम्न का भेद कैसा? सद्गुरु के मधुर ज्ञानोपदेश से प्रभु के दर्शन ...उसकी गति अगम्य है। कबीर कहते हैं कि मुझे पूर्ण ब्रह्म के दर्शन हो गये, ...मुझे प्रत्येक के हृदय में उसका वास दृष्टिगत होता है।

रांम मोहि तारि कहाँ लै जैहो।
सो बैकुंठ कहौ धूं कैसा, करि पसांव मोहि दैहो ॥टेक॥
जो मेरे जीव दोइ जांनत हौ, तौ मोहिं मुकति बताओ।
एकमेक रमि रह्या सबनि मैं, तौ काहे भरमावौ ॥
तारण तिरण जबै लग कहिये, तब लग तत न जांनां।
एक रांम देख्या सबहिन मैं, कहै कबीर मन मांनां ॥५२॥

तारि=उतार कर, संसार-सागर से तार कर। पसाव=कृपा करके। तत= ...त, सत्य, ब्रह्म।

हे प्रभु! मेरी समझ में नहीं आता कि आप मुझे इस संसार से तार कर ...ले जाओगे। हिन्दुओं का यह विश्वास है कि संसार सागर से पार होकर मनुष्य ...कुंठ में जाता है, तो हे प्रभु! आप मुझे कृपा कर जो यह लोभ प्रदान करेंगे वह ...सा है? यदि आप अपने में और मेरी जीवात्मा में द्वैत भावना से अन्तर देखते हैं ...तो मुझे मुक्ति का साधन बताइये जिससे मैं आपके स्वरूप में लीन हो एकमेक हो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जाऊं। यदि वह एक ब्रह्म सर्वत्र समस्त वस्तुओं एवं पदार्थों में परिव्याप्त है मुझे इस द्वैत—भ्रम में क्यों डाला गया। तारने एवं तरने की तो बातें सूझती हैं जब तक प्रभु को नहीं जाना जाता। कबीर मन में प्रभु की सत्ता कार कर सर्वत्र राम की ही झांकी देखते हैं।

सोहं हंसा एक समांन, काया के गुण आंनहि आंन ॥टेक॥
माटी एक सकल संसारा, बहु बिधि भांडे घड़ै कुंभारा॥
पंच बरन दस दुहिये गाइ, एक दूध देखौ पतिआइ।
कहै कबीर संसा करि दूरि, त्रिभवननाथ रह्या भरपूर ॥५३॥

सोहं=सोऽहं, ब्रह्म। हंसा=आत्मा। काया=शरीर। आंनहि आं ही अन्य। संसा=संशय।

कबीर कहते हैं कि ब्रह्म और आत्मा में कोई अन्तर नहीं, केवल मा के ही गुण भिन्न हैं, वही माया में संलिप्त है। समस्त संसार में एक ही सृष्टि निर्माता ब्रह्म रूपी कुम्भकार ने उसी मिट्टी के विविध आकारधारी रूपी घड़े निर्मित कर दिये हैं। संसार ने पंच वर्ग रूपी काम, क्रोध, मद, और दसों इन्द्रियों द्वारा एक आनन्द प्राप्ति ही काम्य बना ली है। कबीर कि संसार के माया-जन्य भ्रम को दूर कर दे और प्रभु का भजन कर समस्त संसार में परिव्याप्त है।

प्यारे रांम मनहीं मनां।
कासूं कहूं कहन कौं नाहीं, दूसर और जनां ॥टेक॥
ज्यूं दरपन प्रतिब्यंब देखिए, आप दवासूं सोई।
संसौ मिट्यौ एक कौ एकै, महा प्रलै जब होई॥
जौ रिझऊं तौ महा कठिन है, बिन रिझयैं थैं सब खोटी।
कहै कबीर तरक दोइ साधै, ताकी मति है मोटी ॥५४॥

हे प्रभु! मैं आपका महिमागान मन ही मन कर लेता हूं, मैं किसके गुण-वर्णन करूं, कोई अन्य प्रभु-भक्ति में अनुरक्त नहीं मिलता। जिस प्रका में प्रतिबिम्ब है, उसी भांति इस संसार में आपका प्रतिबिम्ब है। संसार नाश तो तभी हो सकता है जब महाप्रलय होकर सब कुछ नष्ट हो जाय और मात्र एक प्रभु ही शेष रह जाय। यदि मैं प्रभु को अपने प्रेम द्वारा आकर्षित का प्रयत्न करूं तो यह प्रेम-निर्वाह बड़ा कठिन है। कबीर कहते हैं कि जो तर्क बल से संसार और प्रभु दोनों की सत्यता प्रमाणित करने का प्रयास कर निर्बुद्धि हैं, क्योंकि एकमात्र प्रभु से प्रेम ही मनुष्य का श्रेय है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हम तौ एक एक करि जांनां ।
दोइ कहैं तिनहीं कौं दोजग, जिन नांहिन परिचांनां ।।टेक।।
एकै पवन एक ही पांनीं, एक जोति संसारा ।
एक ही खाक घड़े सब भांडे, एकही सिरजनहारा ।।
जैसें बाढी काष्ट ही काटै, अगिनि न काटै कोई ।
सब घटि अंतरि तूं ही व्यापक, धरै सरूपैं सोई ।
माया मोहे अर्थ देखि करि, काहे कूं गरबांनां ।
निरभै भया कछू नहीं व्यापै, कहै कबीर दिवांना ।।५५।।

दोइ=द्वैत । दोजग=दोज़ख, नरक । खाक=मिट्टी । भाँड=पात्र । बाढ़ी=बढ़ई । अगिनि=अग्नि । तूं ही=तू ही, ब्रह्म । सरूपैं=स्वरूप । अर्थ=धन । ...रबांनां=गर्व करना, मिथ्या दम्भ के अर्थ में प्रयोग ।

कबीर कहते हैं कि हमने तो प्रभु को एक ही परब्रह्म के रूप में जाना है । ...जो व्यक्ति प्रभु को एक से अधिक बताते हैं अथवा जो प्रभु और संसार दोनों को सत्य ...मानते हैं, वे नरक के अधिकारी हैं । संसार में एक ही पवन परिव्याप्त है ...एवं जल भी एक ही है । समस्त संसार एक ही परम ज्योति के प्रकाश से ...अथवा एक ही सूर्य से प्रकाशित है । एक ही मिट्टी से सृजनकार ब्रह्म ने मनुष्यों ...के रूप में विविध आकार के पात्रों का निर्माण किया है । इन सबसे यही सिद्ध ...होता है कि प्रभु एक ही है । जिस प्रकार बढ़ई काष्ठ की लकड़ी को ही काटता है, ...अग्नि को कोई नहीं काट सकता, उसी भांति भौतिक उपादानों को तो सब नष्ट कर ...सकते हैं किन्तु परम ज्योति स्वरूप ब्रह्म को नष्ट नहीं किया जा सकता । हे प्रभु! समस्त ...संसार के हृदय में आपका वास है, एक प्रकार से समस्त संसार के रूप में प्रभु ही ...विविध रूपों में भासित है । हे मनुष्य ! क्यों व्यर्थ मिथ्यादम्भ करता है, तेरा चंचल ...मन धन एवं अन्य माया-प्रलोभनों में सहज ही फंस जाता है । कबीर कहते हैं कि ...प्रभु-प्रेमानुरक्त भक्त को किसी प्रकार का सांसारिक भय नहीं रह जाता, वह तो ...प्रभु-प्रेम में ही लीन रहता है ।

अरे भाई दोइ कहां सो मोहि बतावौ,
बिचिहि भरम का भेद लगावौ ।।टेक।।
जोनि उपाइ रची द्वै धरनीं, दीन एक बीच भई करनीं ।
रांम रहीम जपत सुधि गई, उनि माला उनि तसबी लई ।
कहै कबीर चेतहु रे भौंदू, बोलनहारा तुरक न हिंदू ।।५६।।

दोइ=दो, यहाँ तात्पर्य एक से अधिक का है, बहुदेववाद । तसबी=मुसलमानों के जपने की माला का विशेष नाम । भौंदू=मूर्ख, बुद्धू ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कबीर कहते हैं कि एक से अधिक कहां से आ गये, हे बहुदेववादियो ! इस बात का उत्तर दो। यदि वह एक से अधिक है तो उसने एक से अधिक का निर्माण क्यों नहीं किया। सब धर्मों का मिलन बिन्दु तो एक ही है केवल उनकी आचरण पद्धति में अन्तर है। हिन्दू और मुसलमानों ने अपने-अपने आ को पृथक्-पृथक् स्वीकार कर इस सत्य को विस्मृत कर दिया और हठधर्मी ने माला को और दूसरे ने तसबी को अपनाया। कबीर कहते हैं कि भेद बुद्धि वाले हे भौंदुओ ! (बुद्धुओ) मनुष्य के शरीर में बोलने वाली आत्मा न तो है और न मुसलमान—वह इस भेद बुद्धि से परे है।

ऐसा भेद बिगूचन भारी।
बेद कतेब दीन अरू दुनियां, कौंन पुरिष कौन नारी॥
एक बूंद एकै मल मूतर, एक चाम एक गूदा।
एक जोति थैं सब उतपनां, कौन बांम्हन कौन सूदा॥
माटी का प्यंड सहजि उतपनां, नाद रु व्यंद समांनां।
बिनसि गयां थैं का नांव धरिहौ, पढ़ि पुनि भ्रंम जांनां॥
रज गुन ब्रह्मा तम गुन संकर, सत गुन हरि है सोई।
कहै कबीर एक रांम जपहु रे, हिंदू तुरक न कोई॥५८

बेद=चारों वेद। कतेब=किताब, कुरान, मुसलमानों का धर्म ग्र बूंद=वीर्य की एक बूंद से तात्पर्य। सूदा=शूद्र। प्यंड=पिंड, शरीर। ना शब्द। रुव्यंद=रुण्ड।

कबीर कहते हैं कि भेद-बुद्धि ने भारी वितण्डा खड़ी कर रखी है। इ बुद्धि ने ही विविध धर्म ग्रन्थों, मतों एवं देशों में विभेद कर रखा है। वास्तवि यह है कि स्त्री और पुरुष में भी कोई अन्तर नहीं है, सब ही उस परब्र अंश हैं।

समस्त मनुष्य एक ही वीर्य की बूंद से उत्पन्न हुए हैं। सब समान ह मल-मूत्र का त्याग करते हैं। सब में एक ही चर्म और समान ही मांस है। स जन्म परम ज्योति स्वरूप एक ब्रह्म से ही है फिर भला ब्राह्मण और शूद्र का कैसा ? मिट्टी से सबके शरीर की उत्पत्ति एक समान भाव से ही होती है। शरीर में नाद-ब्रह्म की अवस्थिति है। यदि यह शरीर नष्ट हो गया तो मृत्यु उपरान्त आत्मा को क्या सम्बोधन दोगे ? भाव यह है कि नाम-रूप का भेद मि है—सब में समान रूप से ब्रह्म का वास है। इस सत्य के होते हुए भी संसार पोथी ज्ञान में उलझा हुआ है। हिन्दुओं का यह विश्वास कि ब्रह्मा में रजो शंकर में तमोगुण एवं विष्णु में सतगुण प्रधान है—भ्रामक है। इसीलिए कबीर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

...कि तुम एक परब्रह्म का ही भजन करो। हिन्दू और मुसलमान सब एक हैं, अतः ...के आराध्य भी एक ही हैं।

हंमारै रांम रहीम करीमा केसो, अहल रांम सति सोई।
इनकै काजी मुलां पीर पैकंबर, रोजा पछिम निवाजा।
इनकै पूरब दिसा देव दिज पूजा, ग्यारसि गंग दिवाजा॥
तुरक मसीति देहुरै हिंदू, दहूठां रांम खुदाई।
जहाँ मसीति देहुरा नांहीं, तहां काकी ठकुराई॥
हिंदू तुरक दोऊ रह तूटी, फूटी अरू कनराई।
अरध उरध दसहूँ दिस जित तित, पूरि रह्या रांम राई।
कहै कबीरा दास फकीरा, अपनी रहि चलि भाई।
हिंदू तुरक का करता एकै, ता गति लखी न जाई॥५८॥

हंमारै=हमारे। करीमा=करीम। केसो=केशव। बिसमिल=बिस्मिल्लाह। ...म्भर=विश्वम्भर, विश्व का भरण पोषण करने वाला। मुलां=मुल्ला। ...कंबर=पैगम्बर, धर्म दूत। रोजा=रमजान के दिनों में उपवास रखने को रोजा ...हते हैं। दिज=द्विज, ब्राह्मण। मसीति=मस्जिद। देहुरै देवालय। ठकुराई= ...भुता, स्वामित्व। रहि=राह, मार्ग। करता=कर्ता, ब्रह्म।

कबीर यहां सब मत-मतान्तरों द्वारा आराधित प्रभु को नामों की विभिन्नता ...होते हुए भी एक ही मानते हैं। कहते हैं कि हमें तो प्रभु, राम, रहीम, केशव, अल्लाह समस्त रूपों में समान भाव से मान्य है। बिस्मिल्लाह न कहकर यदि उसे विश्वम्भर कह दिया जाय तो भी वह वही प्रभु रहेगा कोई दूसरा नहीं।

एक ओर मुस्लिमों के यहाँ काजी, मुल्ला, पीर तथा पैगम्बर एवं रोजा तथा पश्चिम दिशा की ओर मुंह उठाकर नमाज पढ़ने की मान्यता है तो दूसरी ओर हिन्दुओं के यहाँ पूर्व दिशा की ओर मुख करके ब्राह्मण और अन्य देवताओं की पूजा विधि है और एकादशी व्रत तथा गंगा स्नान की मान्यता है। भला एक ही प्रभु के लिए उपासना पद्धति का यह व्यवधान कैसा? मुसलमान मस्जिद एवं हिन्दू मन्दिर में प्रभु का वास मानते हैं इस प्रकार वे राम और अल्लाह में भेद उत्पन्न कर देते हैं। भला जहाँ मन्दिर और मस्जिद नहीं है, वहां किस प्रभु का शासन है? इस प्रकार हिन्दू और मुसलमान व्यर्थ अपने बीच भेद की दीवार खड़ी कर त्रुटिपूर्ण आचरण करते हैं और परस्पर लड़ते हुए एक दूसरे से कतराते रहते हैं।

भक्त कबीरदास जी कहते हैं कि हे मनुष्य! तू अपने उचित मार्ग का अवलम्बन कर क्योंकि ऊपर-नीचे अत्र-तत्र-सर्वत्र वही सर्वशक्तिमान् एक ही ब्रह्म बसा हुआ है। हिन्दू और मुस्लिम दोनों का निर्माता एक ही ब्रह्म है, उसकी गति को कोई नहीं देख पाता।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

काजी कौन कतेब बषांनैं ।।
पढ़त पढ़त केते दिन बीते, गति एकै नहीं जांनैं ।।टेक।।
सकति से नेह पकरि करि सुनति, यहु नबदूं रे भाई।
जौर षुदाइ तुरक मोहि करता, तौ आपै कटि किन जाई।
हौं तौ तरक किया करि सुनति, औरति सों का कहिये।
अरध सरीरी नारि न छूटै, आधा हिंदू रहिये ।।
छाड़ि कतेब रांम कहि काजी, खून करत हौ भारी।
पकरी टेक कबीर भगति की, काजी रहे झष मारी ।।५४।।

कतेब=किताब, कुरान शरीफ। खून करत हो भारी=बहुत अन्याय करते हो। सुनति=मुसलमानों की खतने की रस्म।

कबीर कहते हैं कि हे काजी ! क्यों व्यर्थ कुरान के पाठ के चक्कर में पड़े हुए हो ? इसका पाठ करते-करते तुम्हें न जाने कितना समय व्यतीत हो गया है किन्तु तुम अब भी प्रभु महिमा से परिचित नहीं हो सके। ये मुसलमान शक्तिपूर्वक बालक का खतना कराते हैं, यह इनका आदर्श है। यदि तुर्क प्रभु प्रभुत्व का इसी प्रकार उपयोग करें तो काजी ही कट जाय, मार दिया जाय। यदि तुम तुर्क होकर खतनें कराने से पवित्र होते हो तो फिर स्त्री को क्या उत्तर दोगे ? अर्ध शरीरी भाव ही अच्छा है, अतः हे मुसलमानो ! अपनी पवित्रता बनाने के लिए हिन्दुओं के आधे आचरण करो। हे मुल्ला ! तुम कुरान आदि धर्म ग्रन्थों को छोड़ राम नाम का जप करो, इससे अन्यथा करने पर तुम भारी अन्याय कर रहे हो। कबीर कहते हैं कि मैंने तो भक्ति का दृढ़ सम्बल प्राप्त कर लिया है, धर्मनिष्ठ मुसलमान, काजी, मुझे मुसलमान बनाने का व्यर्थ उपक्रम करते रह गये।

विशेष--१. प्रथम दो पंक्तियों में पुस्तकीय ज्ञान की निस्सारता पर जो बात कबीरदास जी ने यहाँ कही है, वही बात 'साखी' में भी बड़े सुन्दर ढंग से प्रकट की है, यथा—

"पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पण्डित भया न कोय।
एकै आषर प्रेम का, पढ़ै सो पण्डित होय ।।"

"छाड़ि कतेब········भारी" चरण से ज्ञात होता है कि कबीर की वैष्णव भक्ति में कितनी दृढ़ और गहन आस्था थी। उनकी इस अटूट निष्ठा का द्योतक यहाँ में प्रयुक्त 'खून करत हो भारी' प्रयोग है। आगे वह इसी की पुष्टि करते हुए कहते हैं "पकरी टेक कबीर भगति की।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मुलां कहां पुकारै दूरि, रांम रहीम रह्या भरपूरि ।।टेक।।
यहु तौ अलह गूंगा नांही, देखै खलक दुनीं दिल माहीं ।
हरि गुंन गाइ बंग मैं दीन्हां, काम क्रोध दोऊ बिसमल कीन्हां ।।
कहै कबीर यह मुलनां झूठा, रांम रहीम सबनि मैं दीठा ।।६०।।

कबीर कहते हैं कि हे मुल्ला जी ! आप बाँग देकर प्रभु को दूर से बुलाने का प्रयत्न क्यों करते हो ? उसे अल्लाह कहो या राम वह तो सर्वत्र रमा हुआ है। यह गूंगा तो नहीं है, उसे तो समस्त संसार में तथा अपने हृदय में देखा जा सकता है। कबीरदास जी कहते हैं कि यह बांग लगाने वाला मुल्ला भ्रम में पड़ा है, वह राम और रहीम सभी नामों को धारण करने वाला ब्रह्म सर्वत्र व्याप्त है। अतः मैंने तो प्रभु का गुणगान कर बांग को अलग कर दिया है अर्थात् बाँग का मेरे लिए कोई प्रयोजन नहीं। प्रभु-स्मरण से मेरे शत्रु काम तथा क्रोध भी समाप्त हो गये हैं।

विशेष—१. "यहु तो अल्लाह गूंगा नहीं" में 'गूंगा' शब्द के स्थान पर 'बहरा' शब्द होता तो अधिक उपयुक्त था क्योंकि मुल्ला के बांग देने की बात कही गई है। २. 'खलक दुनी' में पुनरुक्ति दोष दृष्टिगत होता है। यदि इसका अर्थ इस प्रकार कर दिया जाय कि संसार 'उसे समस्त दुनिया में और हृदय में देखे' तो यह दोष नहीं रहता।

पढि ले काजी बंग निवाजा,
एक मसीति दसौं दरवाजा ।।टेक।।
मन करि मका कबिला करि देही, बोलनहार जगत गुर येही ।
जहाँ न दोजग मिस्त मुकांमां, इहां हीं रांम इहां रांहमांनां ।।
बिसमल तांमस भरंम कं दूरी, पंचूं भषि ज्यूं होइ सबूरी ।
कहै कबीर मैं भया दिवांनां मनवां मुसि मुसि सहजि समांनां ।।६१।।

कबीर कहते हैं कि हे काजी ! तू मसजिद में जो नमाज पढ़ता है वह झूठी है, अब तू प्रभु नाम का स्मरण कर सच्ची नमाज पढ़। इस एक शरीर रूपी मसजिद के दस द्वार हैं, उन सबसे यही राम नाम ध्वनि आनी चाहिए। तू मन को मक्का और शरीर को कबला के समान पवित्र तीर्थधाम बना ले। तेरे भीतर ब्रह्म का जो अंश समाया है वही तेरा पूज्य गुरु है। अतः तू अपना ध्यान वहाँ केन्द्रित कर, उस ब्रह्म में लगा, जहां न स्वर्ग है और न नरक। वह एक मात्र ब्रह्म ही राम और रहीम आदि नामों से पुकारा जाता है। तू अपनी समस्त तामसी वृत्तियों को समाप्त कर माया-भ्रम को भगा दे। यदि तू पाँचों इन्द्रियों से अर्थात् सम्पूर्ण चित्तवृत्तियों से प्रभु का भजन करेगा तो तुझे शान्ति प्राप्त होगी।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कबीर कहते हैं कि मैं तो प्रभु-प्रेम का दीवाना हो गया हूं और चुपचाप—संसार से असम्पृक्त हो सहज समाधि में लीन रहने लगा है।

मुलां करि ल्यौ न्याव खुदाई,
इहि बिधि जीव का भरम न जाई ।।टेक।।
सरजो आंनैं देह बिनासै, माटी बिसमल कीता।
जोति सरूपी हाथि न आया, कहौ हलाल क्या कीता ।।
वेद कतेब कहौ क्यूं झूठा, झूठा जोनि बिचारै।
सब घटि एक एक करि जांनैं, भीं दूजा करि मारै।।
कुकड़ी मारे बंकरी मारे, हक हक करि बोलै।
सबै जीव सांई के प्यारे, उबरहुगे किस बोलै।।
दिल नहीं पाक पाक नहीं चीन्हां, उसदा षोज न जांनां।
कहै कबीर भिसति छिटकाई, दोजग ही मन मांनां ।।६३।।

कबीर कहते हैं कि हे मौलवी साहब ! इन वाह्याचारों के ढोंग में न ईश्वर के न्याय के अनुरूप आचरण करो। इस मिथ्याचार से जीवात्मा का भ्र नहीं होगा, उसे मुक्ति प्राप्त नहीं होगी। जीव-हत्या द्वारा तुमने उस परमेश्वर निर्मित जीव के शरीर को नष्ट कर उसके शव को भी समाप्त कर दिया। इस करने का क्या लाभ जब वह ज्योतिस्वरूप परम ब्रह्म ही तुम्हें दृष्टिगत न हुआ। कुरान आदि शास्त्र ग्रन्थों को झूठा कहने से क्या लाभ ? वस्तुतः झूठे वे नहीं वे लोग हैं जो उन पर विचार नहीं करते। यदि आप सब प्राणिमात्र के हृदय उसी ब्रह्म की अवस्थिति मानते हैं तो जीवहत्या करते समय आप उसमें अपने ही प्राण क्यों नहीं मानते ? तुम बकरी और मुर्गी जैसे निरीह जीवों को मारकर धर्म और पुण्य की बातें बढ़-चढ़ कर करते हो। समस्त जीवमात्र ही परमेश्वर प्रिय हैं, यह निर्मम हत्याएं कर तुम किस भाँति मुक्त हो सकोगे ? तुम्हारा हृदय स्वच्छ नहीं है और न तुम उस परम पवित्र प्रभु को पहचान पाये और न खोजने का कभी प्रयत्न ही किया। कबीर कहते हैं कि मुल्ला जी ! आपने प्रभु संसार में (संसार के जीवों में) द्वैत भावना स्थापित कर भ्रम का वातावरण रखा है।

या करीम बलि हिकमति तेरी,
खाक एक सूरति बहु तेरी ।।टेक।।
अर्ध गगन मैं नीर जमाया, बहुत भांति करि नूरनि पाया।
अवलि आदम पीर मुलांनां, तेरी सिफति करि भये दिवांनां।।
कहै कबीर यहु हेत बिचारा, या रब या रब यार हमारा ।।६४।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करीम=ईश्वर। बलि=बलिहारी। हिकमति=सराहनीय प्रयत्न, यहां ...ज्ञा से तात्पर्य। खाक=मिट्टी।

कबीर कहते हैं कि हे प्रभु! मैं तुम्हारी माया पर बलिहारी जाता हूं जिसने ...विचित्र सृष्टि की रचना की है। इस संसार में मिट्टी एक ही है किन्तु उसी से तुमने विविध भांति के जीव निर्मित कर दिये। तुम्हारी यह विचित्र माया ही तो ...कि आकाश के कुछ भाग में न जाने कैसे जलमय मेघों की सृष्टि कर दी। आपके ...ोतिस्वरूप का साक्षात्कार बड़े प्रयत्नसे ही हो पाता है। संसार में जितने भी वली, ...दम तथा अन्य पीर आदि श्रेष्ठ व्यक्ति हुए हैं वे केवल आपकी कृपा और भक्ति ...हुए हैं। कबीर कहते हैं कि इसीलिए मैंने आपकी प्रिय भक्ति को ही अपना लक्ष्य ...र्धारित कर लिया है।

काहे री नलनीं तूं कुमिलांनीं,
तेरे ही नालि सरोबर पांनीं ॥टेक॥
जल मैं उतपति जल मैं बास, जल मैं नलनीं तोर निवास।
ना तलि तपति न ऊपरि आगि, तोर हेतु कहु कासनि लागि॥
कहै कबीर जे उदिक समांन, ते नहीं मूए हंमारे जान ॥६४॥

कबीर कहते हैं कि हे कमलिनि! तू क्यों कुम्हला रही है? तेरी नालिका ...ो सदैव जल पूर्ण सरोवर में रहती है। इस जल में ही तेरा जन्म हुआ और जल में ...ी तू प्रारम्भ से अन्त तक निवास करती है। तू तो थल की गरमी से भी दूर है ...ौर न सूर्य का ताप तुझे झुलसा सकता है (क्योंकि रात्रि में विकसित होती है) फिर ...किस कारण से सूखती जाती है। कबीर कहते हैं कि जो जल के समान ही हो गये, ...ल से एकरूप हो गये—जहां तक मेरा ज्ञान है वे तो अमर ही हो गये हैं।

विशेष—१. यहाँ महात्मा कबीर ने अन्योक्ति के माध्यम से जीव की स्थिति ...के विषय में प्रकाश डाला है। वे कहते हैं कि जीव! जब तू जलस्वरूप ब्रह्म के नित्य-...सम्पर्क में है तो फिर तू व्यथित और भ्रमित क्यों है? यदि तू अपने को उस जल—...ब्रह्म के ही समान कर ले अर्थात् अपनी आत्मा को पूर्ण शुद्ध कर उस अंशी के समान ...ही बना दे तो तुझे कोई भव-बाधा न हो, तू मुक्त हो जाय।

२. अपने प्रसिद्ध पद—

"जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है. बाहर भीतर पानी।
फूटो कुम्भ जल जलहि समाना, इहि तथ कथ्यौ ज्ञानी॥"

...में भी कबीर ने यही प्रतिपादित किया है कि द्वैत का बंधन हटते ही आत्मा परमात्मा ...के स्वरूप का साक्षात्कार कर लेती है।

इब तूं हसि प्रभू मैं कुछ नांहीं,
पंडित पढि अभिमांन नसांहीं ॥टेक॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मैं मैं मैं जब लग मैं कीन्हां, तब लग मैं करता नहीं चीन्हां।
कहै कबीर सुनहु नरनाहा, नां हम जीवत न मूंवाले माहां॥

कबीर कहते हैं कि हे प्रभु ! मैं कुछ नहीं हूं, आप ही सर्वस्व हैं, आप ही समस्त चर-अचर के विधायक हैं—हे पंडित ! तू इस सत्य का साक्षात्कार करके अपने अहं को विदूरित कर दे। जब तक मैंने अहं का परित्याग नहीं कर दिया तब तक मैं प्रभु के स्वरूप का साक्षात्कार नहीं कर पाया। कबीर कहते हैं कि हे श्रेष्ठ सन्तो ! सुनो मैं इस अहं-दर्प का परित्याग कर न जीवित—संसारसम्पृक्त और न मृत—संसार से असम्पृक्त की स्थिति में हूं अर्थात् जीवन्मुक्त हूं।

विशेष—महात्मा कबीर द्वारा वर्णित यह जीवन्मुक्त स्थिति गीता के निष्काम योगी की सी दशा है।

अब का डरौं डर डरहि समांनां,
जब थैं मोर तोर पहिचांनां ॥टेक॥
जब लग मोर तोर करि लीन्हां, भै भै जनमि जनमि दुख दीन्हां।
आगम निगम एक करि जांनां, ते मनवां मन मांहि समांनां॥
जब लग ऊंच नींच करि जांनां, ते पसुवा भूले भ्रम नांनां।
कहि कबीर मैं मेरी खोई, तबहि रांम अबर नहीं कोई॥६६॥

कबीर कहते हैं कि अब मैं जीवन्मुक्त स्थिति में आकर संसार के तापों एवं मायादिक के भय से भयभीत होऊं ? मैं तो अहं और परं की भावना को विदूरित कर भय-मुक्त हो गया हूं। जब तक मैं अहं और परं जनित द्वैत भावना में फंसा रहा तब तक मैं आवागमन चक्र में पड़कर जन्म-मरण का दुःख भोगता रहा। आगम निगम आदि जितने भी धर्म ग्रंथ हैं उन सबकी एकमत मान्यता यही है कि वह प्रभु हृदय के भीतर ही अवस्थित है। जब तक मनुष्य मनुष्यों में ही ऊंच और नीच का विभेद करता है तब तक वह मनुष्य नहीं अपितु नाना संशयों में पड़ा हुआ पशु मात्र है।

कबीर कहते हैं कि जब मैंने अहं का परित्याग कर समस्त चर-अचर को एक माना तब मुझे सर्वत्र ब्रह्म ही ब्रह्म दृष्टिगत हुआ।

विशेष— कविवर सुमित्रानन्दन पन्त के निम्न भाव से तुलना कीजिए—

"एक ही तो असीम उल्लास विश्व में पाता विविधाभास।

बोलनां का कहिये रे भाई, बोलत बोलत तत नसाई ॥टेक॥
बोलत बोलत बढ़ै बिकारा, बिन बोल्यां क्यूं होइ बिचारा।
संत मिलै कछु कहिये कहिये, मिलै असंत मुष्टि करि रहिये॥
ग्यानीं सूं बोल्यां हितकारी, मूरखि सूं बोल्यां झष मारी।
कहै कबीर आधा घट डोलै, भर्‌या होइ तौ मुषां न बोलै॥६७॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कबीर कहते हैं कि व्यर्थ तर्क से क्या लाभ, तर्कजाल में उलझकर वास्तविक ...का नाश हो जाता है। व्यर्थ बक-बक करने से ही वितण्डा खड़ी होती है, किन्तु ...ने नहीं तो विचार-विमर्श कैसे हो ? इसके विषय में कबीर की नीति यह है ...दि संत मिले तो उससे विचार विमर्श कीजिए और यदि दुर्जन मिले तो चुप ...ही श्रेयस्कर है। ज्ञान-सम्पन्न से तो वार्तालाप हितकारी है और मूर्ख से तो ...ा झख मारना ही है। जिस प्रकार आधा भरा हुआ घट ही छलकने पर ध्वनि ...है और पूर्ण भरा होने पर वह न छलकता है और न बोलता है इसी भांति ज्ञानी ...रे की ज्ञानपूर्ण बात सुनकर चुप रहता है, उसका आदर करता है किन्तु जो ...े रिक्त हैं वे दूसरे की ज्ञानपूर्ण बात सुनकर उसे कुतर्क का विषय बना ...है।

विशेष—दृष्टान्त अलंकार।

बागड़ देस लूवन का घर है,
तहां जिनि जाइ दाझन का डर है ।।टेक।।
सब जग देखौं कोई न धीरा, परत धूरि सिरि कहत अबीरा।
न तहां सरवर न तहां पांणीं, न तहां सतगुर साधू बांणीं ।।
न तहां कोकिल न तहां सूवा, ऊँचे चढ़ि चढ़ि हंसा मूवा।
देस मालवा गहर गंभीर, डग डग रोटी पग पग नीर ।।
कहै कबीर घरहीं मन मांनां, गूंगे का गुड़ गूंगै जांनां ।।६८।।

उस प्रिय के देश का मार्ग अग्नि के समान दाहक बाधाओं से परिपूर्ण है—...ना-स्थली पथ अत्यन्त विकट है। कबीर कहते हैं कि मैंने समस्त संसार को देखा ...तु उसमें कोई ऐसा धैर्यवान् दृष्टिगत न हुआ जो उस पथ का अवलम्बन कर ...। कुछ प्रयत्न तो करते हैं किन्तु उसमें परिपक्वता के अभाव के कारण उन्हें ...फलता ही प्राप्त होती है। उस मार्ग में श्रान्त पथिक के परिश्रमशमनार्थ न तो कोई ...वर है और न जल का कोई अन्य साधन एवं साधना मार्ग में प्रवृत्त होने पर सद्-...की उपदेश वाणी और सज्जनों के सत्संग का सम्बल भी शेष नहीं रहता। वहाँ ...न की कलित काकली और तोते के रूपाकर्षण के लिए भी स्थान नहीं, अर्थात् ...सी प्रकार का सुख उपलब्ध नहीं। वहाँ तो हंसात्मा उच्चतर सोपान को प्राप्त ...हो जाती हैं। इस भाँति वह प्रभु का स्थान अत्यन्त कठिन साधना के उपरान्त ...होता है। वहां पहुंचकर तो पग-पग तृप्ति ही तृप्ति है (डग-डग रोटी पग-पग ...र)। कबीर कहते हैं कि मेरा मन तो उसी स्थान पर रम रहा है, उस आनन्द का ...वर्णन उसी प्रकार नहीं कर सकता जिस भांति गूंगा मनुष्य गुड़ के मिठास को ...ही मन प्रसन्न हो सराहता है, उसे अभिव्यक्ति नहीं दे सकता।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विशेष—कबीर साधना मार्ग की विकटता बताकर साधक को उससे नहीं करते अपितु उस पथ की विषमताओं से उसे सचेत कर धैर्य, दृढ़ता, आदि गुणों से परिपूर्ण कर ईश्वर-भक्ति पथ पर लगाना चाहते हैं।

अवधू जोगी जग थैं न्यारा।
मुद्रा निरति सुरति करि सींगी, नाद न षंडै धारा। टेक॥
बसै गगन मैं दुनी न देखै, चेतनि चौकी बैठा।
चढ़ि अकास आसण नहीं छाड़ै, पीवै महा रस मींठा॥
परगट कंथा मांहैं, जोगी, दिल में दरपन जोवै।
सहंस इकीस छ सं धागा, निहचल नाकै पोवै॥
ब्रह्म अगनि मैं काया जारै, त्रिकुटी संगम जागै।
कहै कबीर सोई जोगेस्वर, सहज सुंनि ल्यौ लागै॥६९॥

यहाँ कबीर हठयोगी साधना का वर्णन करते हैं कि योगी समस्त पृथक् आचरण करने वाला व्यक्ति होता है। उसका तो मुद्रा, इड़ा-पिंगला, अनहद नाद से सी अटूट सम्बन्ध होता है।

वह तो साधना की मुद्रा ग्रहण कर शून्य में लय लगाता है; इस शून्य स्थल – ब्रह्मरन्ध्र—पर पहुंचकर वहाँ स्रवित होने वाले अमृत का पान है। वह विरागी के वेश में रहता हुआ हृदय में उसी अनूप का दर्शन करता इक्कीस सहस्र छः सौ नाड़ियों में अर्थात् सम्पूर्ण तन-मन में ईश्वर को रमा इस भांति जब वह ब्रह्म की अलखस्वरूप निरंजन-ज्योति से शरीर को निर्मल है तो त्रिकुटी में ब्रह्म का साक्षात्कार करता है। कबीर कहते हैं कि वही साध श्वर है जो सहजावस्था को प्राप्त कर अपनी चित्तवृत्तियों को शून्य में देता है।

विशेष— 'परगट कंथाँ·· ···जोवै'' में दीपक अलंकार है।

अवधू गगन मंडल घर कीजै।
अमृत भरै सदा सुख उपजै, बंक नालि रस पीवै॥टेक॥
मूल बांधि सर गगन समांनां, सुषमन यों तन लागी।
काम क्रोध दोऊ भया पलीता तहां जोगणीं जागी॥
मनवां जाइ दरीबै बैठा, मगन भया रसि लागा।
कहै कबीर जिय संसा नांहीं, सबद अनाहद बागा॥७०॥

हे अवधूत! तुम शून्य—ब्रह्मरन्ध्र—को अपना स्थायी वास बना लो सदैव अमृत स्रवित होता है जिससे अमित आनन्द की प्राप्ति होती है। सुषुम्ना का वहां पहुंचाकर उसके द्वारा साधक को इस अमृत का पान करना चाहिए।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

...मूलाधार चक्र से कुण्डलिनी जागृत हो सुषुम्णा के माध्यम से ऊर्ध्वगामी हो ...जिसमें काम, क्रोध आदि विकारों ने जलकर पलीते का कार्य किया और इस ...स्फोट द्वारा ही तो योगिनी-रूप-कुण्डलिनी सुषुप्तावस्था से जागृत हो गई। शून्य ...पहुंचकर मन उस सहजावस्था में पहुंच गया जहाँ अलख के दर्शन का आनन्द ...आनन्द विद्यमान है। कबीर कहते हैं कि इस अवस्था में पहुंचकर साधक ...न में कोई भ्रम या माया का संशय नहीं रह जाता है और वह अनहद नाद के ...नन्द में लय हो परमात्म-स्वरूप हो जाता है।

विशेष—१. 'मूल'—मूलाधार चक्र से तात्पर्य, षट्चक्रों में यह सबसे पहला ...है जहां कुण्डलिनी सुषुप्तावस्था में पड़ी रहती है। २. 'जोगणीं'—कुण्डलिनी के ...योग-साधना में बहुप्रयुक्त शब्द। ३. 'सबद अनहद'— अनहद नाद, शून्य में ...म्णा के माध्यम से कुण्डलिनी के विस्फोट करने पर अमृत स्रवण के साथ-साथ ...र के रोम-रोम से 'अहं ब्रह्मास्मि' जैसी ध्वनि उठती है, अथवा घण्टे के नाद जैसा ...सुनाई देता है, यही अनहद नाद कहलाता है। इस स्थिति में पहुंचकर योगी ...के शरीर की दशा को भी भूल जाता है। उसे इस शब्द के अतिरिक्त अन्य कुछ ...ई नहीं देता।

कोई पीवै रे रस रांम नांम का, जी पीवै सो जोगी रे।
संतौ सेवा करौ रांम की, और न दूजा मोगी रे ।।टेक।।
यहु रस तौ सब फीका भया, ब्रह्म अगनि परजारी रे।
ईश्वर गौरी पीवन लागे, रांम तनीं मतिवारी रे।।
चंद सूर दोइ भाठी कीन्हीं, सुषमनि चिगवा लागी रे।
अमृत कूं पी सांचा पुरया, मेरी त्रिष्णां भागी रे।।
यहु रस पीवै गूंगा गहिला, ताकी कोई न बूझै सार रे।
कहै कबीर महा रस मँहगा, कोई पीवैगा पीवणहार रे ।।७१।।

कबीर कहते हैं कि प्रभु-भक्ति के अनुपम रस का पान ही श्रेयस्कर है जो ...का पान करता है वही वस्तुतः योगी है। इसलिये हे साधुजनो! तुम परम प्रभु ...ही भक्ति करो अन्य कोई इस पूजा और भक्ति का पात्र नहीं है।

हृदय में ईश्वर भक्ति जग जाने पर साँसारिक विषय-वासनाओं के आकर्षण ...र रस निस्सार और छछे अनुभव होने लगते हैं। शिव और पार्वती इस भक्ति ...का पान कर ही राम-नाम में मदमस्त रहते हैं।

जब मैंने इड़ा और पिंगला की भट्टी बनाकर प्रभु-भक्ति की अग्नि को ...षुम्णा के पलीते द्वारा प्रज्वलित किया तो मुझे अमृत की प्राप्ति हो गई, निरंजन ...ज्योति के दर्शन हो गये एवं मेरी तृष्णाएं परितृप्त हो गईं। इस अनुपम रस का पान

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तो कोई ऐसा व्यक्ति ही करेगा जिसे संसार पागल समझे और वह इस रस कर गूंगा ही बन जाता है, उसे अभिव्यक्ति प्रदान नहीं कर सकता। कबीर कि इस महारस को प्राप्त करने के लिये महान् त्याग और संयम तथा अट्ट आवश्यकता है, इसलिए यह कुछ मंहगा है। अतः बिरले ही इसका पान कर

अवधू मेरा मन मतिवारा।
उन्मनि चढ्या मगन रस पीवै, त्रिभुवन भया उजियारा॥
गुड़ करि ग्यांन ध्यांन कर महुवा, भव भाठी करि भारा।
सुषमन नारी सहजि समांनी, पीवै पीवनहारा॥
दोइ पुड़ जोड़ि चिगाई भाठी, चुया महा रस भारी।
काम क्रोध दोइ किया बलीता, छूटि गई संसारी॥
सुंनि मंडल मैं मंदला बाजै, तहां मेरा मन नाचै।
गुर प्रसादि अमृत फल पाया, सहजि सुषमनां काछै॥
पूरा मिल्या तबैं सुष उपज्यौ, तन की तपति बुझानी।
कहै कबीर भवबंधन छूटै, जोतिहि जोत समानी॥

कबीर यहां मदिरा खींचने की प्रक्रिया के रूपक द्वारा हठयोगी ब्रह्म-प्राप्ति का मार्ग बताते कहते हैं कि हे अवधूत ! मेरा मन प्रभु-भक्ति में है। वह उन्मनी अवस्था द्वारा शून्य में पहुंच अमृत का पान करता है। इस के पान से मुझे प्रत्येक लोक का ज्ञान प्राप्य है। भाव यह है कि सृष्टि के का ज्ञान मेरे साधक को है।

अब कबीर मदिरा खींचने की विधि द्वारा बताते हैं कि किस भाँति रस को प्राप्त किया है। मैंने ज्ञान को गुड़ और ध्यान को महुवा अथवा संसार को ही अपनी भट्टी बना लिया। इस भट्टी में अग्नि प्रज्वलित लिए काम और क्रोध (को नष्ट कर) का पलीता बना दिया एवं इंगला-पिंगला समन्वय कर इस भट्टी कों तैयार किया। इस साज के पूरा हो जाने पर स्रवण होने लगा। सुषुम्णा नामक नाड़ी सहजावस्था में पहुंच गई और मैंने इस महारस का पान किया। इस अमृत पान से मुझे ज्ञात हुआ कि रन्ध्र में अनहद नाद हो रहा है जिसकी ध्वनि से मेरा मन आत्म-विस्मृत में लीन हो गया। इस भाँति गुरु कृपा से यह अमृत प्राप्त किया और सुषुम्णा वस्था में ही रहने लगी। कबीर कहते हैं कि इस भांति अंशी में, आत्मा के में विलय हो जाने से मनुष्य विमुक्त हो जाता है। किन्तु यह सब तभी भव-ताप और बन्धन तभी नष्ट हो सकते हैं जब कोई ज्ञान-परिपूर्ण सद्गुरु मिले।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

छाकि पर्यो आतम मतिवारा,
पीवत रांम रस करत विचारा ।।टेक।।
बहुत मोलि महँगै गुड़ पावा, लै कसाब रस रांम चुवावा।
तन पाटन मैं कीन्ह पसारा, मांगि मांगि रस पीवै बिचारा।
कहै कबीर फाबी मतिवारी, पीवत रांम रस लगी खुमारी ।।७३।।

कबीर कहते हैं कि मेरी आत्मा प्रभु भक्ति का रसपान कर मदमस्त है। यह इस प्रभु प्रेम-रस का पान कर प्रभु का ही विचार करती है। मैंने बहुत मूल्य चुका कर गुरुचरणों में बैठ और सत्संग से यह ज्ञान का मूल्यवान् गुड़ खरीदा है एवं योग भावना के अन्य साधना द्वारा अमृत को प्राप्त किया। शरीर रूपी वस्त्र में रस के लिये इतनी तृषा बढ़ गई है कि वह मांग-मांग कर उसका पान करती है। राम रसा-यन से मदमस्त फक्कड़ कबीर कहता है कि राम-भक्ति रस का पान करने पर उसका नशा ऐसा चढ़ता है कि फिर उतरता नहीं।

बोलौ भाई रांम की दुहाई।
इहि रसि सिव सनकादिक माते, पीवत अजहूँ न अघाई ।।टेक।।
इला प्यंगुला भाठी कीन्हीं, ब्रह्म अगनि परजारि।
ससि हर सूर द्वार दस मूंदे, लागी जोग जुग तारी ।।
मन मतिवाला पीवै रांम रस, दूजा कछू न सुहाई।
उलटी गंग नीर बहि आया, अंमृत धार चुवाई ।।
पंच जने सो संग करि लीन्हें, चलत खुमारी लागी।
प्रेम पियालै पीवन लागे, सोवत नागिनी जागी ।।
सहज सुंनि मैं जिनि रस चाष्या, सतगुर थैं सुधि पाई।
दास कबीर इहि रसि माता, कबहूँ उछकि न जाई ।।७४।।

अघाई=तृप्ति। द्वार दस=शरीर के दस द्वार—दो आंख, दो नासिका-विवर, दो कर्ण-छिद्र, एक मुख, एक मलद्वार, एक मूत्रद्वार एवं एक ब्रह्मरन्ध्र या दशम द्वार। उलटी गंग=कुण्डलिनी की ऊर्ध्वगति। पंच जने=पांच इन्द्रियाँ। नागिनी =कुण्डलिनी।

कबीर कहते हैं कि हे भाइयो! प्रभु की भक्ति करो क्योंकि इस अनुपम भक्ति रस का पान कर शिव और सनकादिक जैसे भी आज तक परितृप्त नहीं हुए। उनकी कामना है कि अभी इस रस का पान और करें, और करें। हृदय में ब्रह्म ज्योति प्रज्वलित कर इड़ा और पिंगला नाड़ियों की भट्टी बना ली। इंगला-पिंगला के मध्य सुषुम्णा के द्वारा कुण्डलिनी को ऊर्ध्वगामी कर सहजावस्था की प्राप्ति की। इस प्रकार सुषुम्णा के माध्यम से कण्डलिनी द्वारा ब्रह्मरन्ध्र में विस्फोट से अमृत का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

स्रवण होने लगा प्रभु भक्ति में मस्त मेरा मन उस महारस के पान से संसार के रसों के आनन्द को भूल गया। इस अमृत पान के साथ-साथ पांचों इन्द्रियां तल्लीन थीं। इस महारस से ही ये सब झूम रही थीं। इस भांति सुषुप्त कुण्डलिनी जागृत हो गई। सद्गुरु से ज्ञान लाभ कर ही साधक इस सहज शून्य के अनुपम रस को प्राप्त कर सकता है। दास कबीर तो इसी रस को पान कर मदमस्त है, इसकी खुमारी कभी नहीं जा सकती।

राम रस पाईया रे, ताथैं बिसरि गये रस और॥टेक॥
रे मन तेरा को नहीं, खैंचि लेइ जिनि भार।
बिरषि बसेरा पंषि का, ऐसा माया जाल॥
और मरत का रोइए, जो आया थिर न रहाइ।
जो उपज्या सो बिनसिहै ताथैं दुख करि मरै बलाइ॥
जहां उपज्या तहां फिरि रच्या रे, पीवत मरदन लाग।
कहै कबीर चित चेतिया, ताथैं रांम सुमरि बैराग॥४॥

कबीर कहते हैं कि मैंने राम रस की प्राप्ति कर ली है, इससे मुझे सांसारिक तुच्छ रस विस्मृत हो गये। आगे कबीर मन को प्रवोध देते कहते हैं हे मन! तेरा इस संसार में कोई नहीं है फिर तू क्यों व्यर्थ में दूसरों का बोझ ढोता है उनके लिये क्यों अनेक पाप कर्म करता है। इस संसार का माया-जाल तो ऐसा है जैसे पक्षी का रात को किसी पेड़ पर अल्प समय का बसेरा! मनुष्यों के मरने का दुःख भी क्यों किया जाय, यहाँ तो जो भी आया है वह तो जायगा ही। जो उत्पन्न हुआ है वह अवश्य ही मरेगा अतः शोक करना वृथा है। यह जन्म-मरण, सृष्टि संहार का क्रम अटूट है किन्तु फिर भी लोग वस्तु स्थिति भूलकर इसका रचना करने में लगे हैं। कबीर कहते हैं कि चित्त जब तक सावधान हो कर विषय वासना परित्याग नहीं कर देता तब तक प्रभु भक्ति कहां? अतः निर्मल मन से प्रभु भजन ही श्रेय है।

राम चरन मनि भाए रे।

अस ढरि जाहु रांय के करहा, प्रेम प्रीति ल्यौ लाये रे॥टेक॥
आब चढ़ी अंबली रे अंबली, बबूर चढ़ी नग बेली रे।
द्वै थर चढ़ि गयौ रांड कौ करहा, मनह पाट की सैली रे॥
कंकर कूई पतालि पनियां, सूनैं बूंद बिकाई रे।
बजर परौ इहि मथुरा नगरी, कांन्ह पियासा जाई रे॥
एक दहिड़िया दही जमायौ, दुसरी परि गई साई रे।
न्यूंति जिमांऊं अपनौं करहा, छार मुनिस की डारी रे॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इहि बंनि बाजै मदन भेरि रे, उहि बनि बाजै तूरा रे।
इहि बंनि खेलै राही रुकमनि, उहि बंनि कान्ह ग्रहोरा रे॥
ग्रासि पासि तुरसी कौ बिरवा, माँहि द्वारिका गांऊं रे।
तहां मेरौ ठाकुर रांम राइ है, भगत कबीरा नांऊं रे॥७६॥

...मनि=मन को। ग्रम्बली=ग्राम। नगवेली=ग्राकाश वेल। करहा=करघा। ...सैली=ऊन, रेशम या बालों की एक माला सी जिसे योगी गले ग्रथवा शीश ...धारण करते हैं। कूई=कुइया, छोटा कुग्रां। बजर=ग्राग लगाना। न्यूति= ...। रुकमनि=श्रीकृष्ण भगवान् की प्रियतमा किन्तु यहां माया से तात्पर्य। ...ग्रहीरा=यहाँ ब्रह्म से ग्रर्थ। तुरसी=तुलसी, एक सुगन्धित एवं पूज्य ...।

कबीर कहते हैं कि मेरे मन को रामचरण, प्रभु भक्ति ग्रत्यन्त प्रिय है। मैं ... मैं ग्रपनी समस्त चित्तवृत्तियां केन्द्रित कर उन्हीं के रग में रंग जाऊं यह मेरी ...छा है। जो लता ग्राम जैसे सुमधुर फल के वृक्ष का ग्रवलम्बन करती है वह तो ...न के समान ही मधुर हो जाती है ग्रौर जो शूलयुक्त बबूल वृक्ष का ग्राश्रय लेती ...वह तो व्यर्थ की ग्राकाशवेलि ही बनती है, इसी प्रकार जो व्यक्ति प्रभु भक्ति का ...श्रय लेते हैं वे मुक्ति का मधुर फल प्राप्त करते हैं ग्रौर साँसारिकता का मार्ग ...वलम्बन करने वाले भवबाधाग्रों के शूलों से विद्ध होते हैं।

ग्रब ग्रागे वे योग साधना का रूपक वांधते हुए कहते हैं कि इड़ा ग्रौर पिंगला ...षुम्ना से सम्बद्ध हो गई एवं मन ही स्वयं सेल्ही बन गया (जिसे योगी गले ग्रथवा ...शीश पर धारण करते हैं)। मूलाधार चक्र में कुण्डलिनी रूपी पनिहारिन है जिसे ...प्रदेश में ग्रमृतोपम जल लेने जाना है। इस ससार रूपी मथुरा नगरी में तो ग्राग ...लग जाय क्योंकि जीव की यहाँ तृप्ति नहीं होती, उसकी वास्तविक तृप्ति तो उस ...रन्ध्र में स्रवित ग्रमृत का पान करने से होती है। इस संसार रूपी वन में तो रुक्मिणी-...माया—का नृत्य हो रहा है ग्रौर उस शून्य लोक में, ब्रह्मलोक में ब्रह्मरूपी कृष्ण का ...लीलाप्रसार हो रहा है। उस द्वारिकापुरी—ब्रह्मलोक—में सर्वत्र तुलसी के पवित्र ...पादप महक रहे हैं। वहीं पर मेरे स्वामी-ब्रह्म का निवास है, मैं उन्हीं की भक्ति ...करता हूं।

विशेष—द्वारिका—कुछ राजनैतिक कारणों से भगवान् कृष्ण ने मथुरा छोड़कर ...नगरी को ग्रपनी राजधानी बना लिया था। पोरबन्दर से लगभग २३ मील ...दक्षिण समुद्र में इस स्थान की ग्रवस्थिति मानी जाती है। कहते हैं कि श्रीकृष्ण के ...निधनोपरान्त यह पुरी समुद्र जल में मग्न हो गई। जिस प्रकार कबीर साहित्य के ...संदर्भ में राम-कृष्ण ग्रादि वैष्णव नाम भिन्न ग्रर्थ रखते हैं उसी प्रकार वैष्णव तीर्थ-

RajGuru Math, Shivala, Varanaşi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

स्थल भी कबीर काव्य में भिन्नार्थ रखते हैं—अधिकाँशत: उनका प्रयोग ब्रह्म अर्थ में ही हुआ है।

थिर न रहै चित थिर न रहै, च्यंतांमणि तुम्ह कारणि हो।
मन मैले मैं फिरिफिरि आहौं, तुम सुनहुँ न दुख बिसरावन हो॥
प्रेम खटोलवा कसि कसि बांध्यौ, बिरह बान तिहि लागू हो।
तिहि चढ़ि इंदऊँ करत गवंसियां, अंतरि जमवा जागू हो॥
महरू मछा मारि न जानैं, गहरै पैठा धाई हो।
दिन इक मगर मछ लै खैहै, तब को रखिहै बंधन भाई हो॥
महरू नांम हरइये जांनैं, सबद बूझै बौरा हो।
चारै लाइ सकल जग खायौ, तऊ न भेटि निसहुरा हो॥
जौ महाराज चाहौ महरईये, तौ नाथौ ए मन बौरा हो।
तारो लाइकैं सिष्टि बिचारौ, तब गहि भेटि निसहुरा हो॥
टिकुटी भई कांन्ह कै कारणि, भ्रंमि भ्रंमि तीरथ कीन्हा हो।
सो पद देहु मोहि मदन मनोहर जिहि पदि हरि मैं चीन्हा हो॥
दास कबीर कीन्ह अस गहरा, बूझै कोई महरा हो।
यहु संसार जात मैं देखौं, ठाढा रहौ कि निहुरा हो॥७॥

थिर=स्थिर। च्यंतांमणि=चिन्तामणि, ब्रह्म। मैले=मेले। फिरिफिरि=बारम्बार। खटोलवा=खटोला, खाट का छोटा रूप। बान=पतली-पतली ... को जिनसे खाट बुनी जाती है वान कहते हैं। जमवा=यम, कुभावनाएं। ... =दया करना।

हे प्रभु! आपके दर्शनों के लिये व्याकुल मेरा यह मन स्थिर नहीं ... भ्रमित होता रहता है। हे दुःखमोचन प्रभु! आप मेरी पुकार सुनते नहीं, ... मन के मेले में वारम्बार आकर दर्शन दीजिये। मैंने प्रेम रूपी खटोला वड़े ... तैयार किया है जिसमें विरह का वान लगाकर इसे स्थायित्व प्रदान किया है। ... प्रेम-खटोले पर चढ़कर मेरी समस्त इन्द्रियां आपसे मिलने के लिए प्रस्थान ... किन्तु तभी मन में विषय-वासनाओं के रूप में यम का आविर्भाव हो जाता है। ... व्यक्ति—प्रभु भक्ति में लीन भक्त—सरिता के तट पर उथले जल में मछलि... सांसारिक क्षणिक आनन्द—प्राप्त करना ही अपना लक्ष्य नहीं वनाता अपि... तो गहरे पैठ कर हरि-हीरा हा प्राप्त करता है। उसी को वास्तव में सद्गुरु ... जो सन्तों के उपदेश (सवद) को हृदयंगम करता हो। समस्त संसार चारों ... में पड़ नष्ट हो रहा है किन्तु तो भी उसे ब्रह्म दर्शन नहीं होता। हे प्रभु! ... आप मुझ पर दया करना चाहते हैं तो इस मन का प्रबाध देकर उचित मार्ग ...

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

...। मैं आपका ही ध्यान करता हुआ आपको प्राप्त करूं। मैं व्यर्थ भ्रमित ...तीर्थों में भटकता रहा किन्तु मुक्ति तो ब्रह्म-ध्यान से ही होती है। हे प्रभु ! ...मुझे वही अवस्था प्रदान करो जिसमें मैं आपसे साक्षात्कार कर सकूं।

कबीर कहते हैं कि काई श्रेष्ठ व्यक्ति ही कबीर की इस गम्भीर बात को ...सकता है। मैं इस संसार को पतन मार्ग पर जाता देखता हूं, हे प्रभु ! मैं भी ...लोगों की श्रेणी में ही सम्मिलित हो जाऊं या आप मुझे कृपा कर सद्बुद्धि प्रदान ...दे हैं जिससे मैं मुक्त हो सकूंगा।

बीनती एक रांम सुंनि थोरी, अब न बचाइ राखि पति मोरो ॥टेक॥
जैसें मंदला तुमहि बजावा, तैसें नाचत मैं दुख पावा ॥
जे मसि लागी सबै छुड़ावौ, अब मोहि जिनि बहु रूपक छावौ ॥
कहै कबीर मेरी नाच उठावौ, तुम्हारे चरन कवल दिखलावौ ॥७८॥

थोरी=थोड़ी, अल्प। मंदला=वाद्य विशेष।

कबीर कहते हैं कि हे प्रभु ! मेरी थोड़ी सी प्रार्थना सुन लीजिए, अब आप ...से दूर मत रहो और मेरी लाज रख लो। आपकी माया ने जो आकर्षण जाल ...ता, मैं उसी के फेर में पड़कर बहुत दुखित हुआ। मेरी जितनी भी पाप-कालिमा ...आप कृपापूर्वक उसे छुड़ाकर मुझे विविध योनियों के जन्म-मरण से विमुक्त कर ...। कबीर कहते हैं कि हे प्रभु ! आप मुझे अपने चरण-कमलों के दर्शन करा कर ...संसार-प्रपंच से मुक्त कर दो।

मन थिर रहै न घर ह्वै मेरा, इन मन घर जारे बहुतेरा ॥टेक॥
घर तजि बन बाहरि कियौं बास, घर बन देखौं दोऊ निरास ॥
जहां जांऊं तहां सोग संताप, जुरा मरण कौ अधिक बियाप।
कहै कबीर चरन तोहि बंदा, घर मैं घर दे परमांनंदा ॥७६॥

कबीर यहां यह बताते हैं कि मन आनन्द की खोज में व्यर्थ बाहर भटकता ...क्योंकि वास्तविक आनन्द—परमानन्द ब्रह्म—मन में ही है।

वे कहते हैं कि यह मेरा चित्त स्थिर नहीं रहता, इसकी इस अस्थिरता ने ...से सुख नष्ट कर दिये। इसने आनन्द की खोज में घर—अन्तर—का परित्याग ...कर संसार के चक्कर काटे, फलस्वरूप घर और बाहर दोनों स्थान पर इसे निराशा ...प्राप्त हुई। जहाँ-जहाँ मैं जाता हूं वहीं-वहीं शोक और सांसारिक ताप विद्यमान ...और संसार में वही जरा-मरण के द्वारा आवागमन का चक्र चल रहा है। कबीर ...कहते हैं कि हे प्रभु ! अब मैं आपके श्री चरणों की वन्दना करता हूं अतः आप मुझे ...हृदय में ही दर्शन दीजिए।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

कसैं नगरि करौं कुटवारी, चंचल पुरिष विचषन नारी ॥टेक॥
बैल बियाइ गाइ भई बांझ, बछरा दूहै तीन्यूं सांझ।
मकड़ी घरि माषी छछि हारी, मास पसारि चील्ह रखवारी॥
मूसा खेवट नाव बिलइया, मींडक सोवै साप पहरइया।
नित उठि स्याल स्यंघ सूं झूझै, कहै कबीर कोई बिरला बूझै ॥८०॥

कबीर कहते हैं कि मैं प्रभु के पावन नगर में किस प्रकार प्रवेश करूं (क्योंकि मार्ग में अनेक बाधाएं हैं)। यह जीवात्मा अत्यंत चंचल है और इसको पथभ्रष्ट करने वाली माया जैसी चतुर स्त्री है जो विविध आकर्षणों से इसे अपने वश में करना चाहती है।

ईश्वर से ही समस्त जगत् की उत्पत्ति हुई है, माया से नहीं वह तो बांझ ही रही। त्रिकाल में अर्थात् सर्वदा ईश्वर से, ब्रह्म से ही फल प्राप्ति होती है। ब्रह्म रन्ध्र (मकड़ी घरि) कुण्डलिनी (माषी) अमृत (छाछि) का व्यापार कर रही है। सांसारिक प्रलोभनों से रक्षा सुषुम्णा (चील) ही करती है क्योंकि उसी में सारी मनःप्रवृत्तियाँ केन्द्रीभूत हो जाती हैं। साँसारिक पुरुषों की स्थिति ऐसी है कि वे माया रूपी नौका में बैठे हुए हैं और उसका खेवनहार भी विषय-वासना संचालित है। अज्ञानान्ध जीव सोता रहता है और नित्यप्रति उठकर जीव रूपी शृगाल माया के महान् आकर्षण रूपी सिंह से संघर्ष करता है। कबीर कहते हैं कि इसका भाव कोई विरले ही समझ सकते हैं।

भाई रे चूंन बिलूंटा खाई,
बाघनि संगि सबहिन कै, खसम न भेद लहाई ॥टेक॥
सब घर फोरि बिलूंटा खायौ, कोई न जांनै भेव।
खसम निपूतौ आंगणि सूतौ, रांड न देई लेव॥
पाड़ोसनि पनि भई बिरांनीं, मांहि हुई घर घालै।
पंच सखी मिलि मगल गांवैं, यहु दुख याकौं सालै॥
द्वै द्वै दीपक घरि घरि जोया, मंदिर सदा अंधारा।
घर घेहर सब आप सवारथ, बाहरि किया पसारा॥
होत उजाड़ सबै कोई जांनैं, सब काहू मनि भावै।
कहै कबीर मिलै जे सतगुर, तौ यहु चून छुड़ावै ॥८१॥

चूंन=पुण्य—सत्कर्मों का पुण्य। बिलूंटा=माया। खाई=नष्ट करती है। बाघनि=माया। खसम=स्वामी, पति, ईश्वर। लहाई=प्राप्त किया। भेव=भेद।

कबीर कहते हैं कि हे भाई! समस्त सत्कर्मों के पुण्य को यह माया रूपी बिल्ली खाये जा रही है, नष्ट कर रही है। यह माया सब के साथ लग जाती

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

...प्रकार कोई भी ब्रह्म को प्राप्त नहीं कर पाता। इस शरीर-आगार को माया ...आकर्षण नष्ट किये दे रहे हैं इस भेद को कोई नहीं जानता। ईश्वर रूपी ...तो पुत्रहीन है, अर्थात् उसका आंगन सूना है अर्थात् वह ममत्व बंधन में नहीं ...। यह माया किसी को प्रभु का पुत्र नहीं बनने देती। इसी भावना से निकट ...ति भी कभी-कभी दूर का हो जाता है और माया जीव और ब्रह्म के मध्य ...खड़ी करने में सफल हो जाती है। पांचों ज्ञानेन्द्रियां अपने-अपने स्वाद में लिप्त ...द मनाती हैं यह स्थिति भक्त को अच्छी नहीं लगती।

संसार के व्यक्ति अपने-अपने घरों में तो प्रकाशार्थ कई-कई दीपक प्रज्वलित ...हैं किन्तु उनके हृदय मन्दिर में सदैव अज्ञानांधकार रहता है। मनुष्य अपनी ...के भीतर तो स्वार्थ-साधना में तत्पर रहता ही है साथ ही बाहर भी उसी की ...रना चाहता है। जब व्यक्ति सर्वथा नष्ट हो जाता है तो सब उसकी मूर्खता ...सन्न होते हैं। कबीरदास जी कहते हैं कि यदि कोई सद्गुरु मिल जाय वही इस ...में सत्कर्मों के आटे (पुण्य) को बचा सकता है।

विषिया अजहूं सुरति सुख आसा,
हूंण न देइ हरि के चरन निवासा ।।टेक।।
सुख मांगें दुख पहली आवै, ताथैं सुख मांग्या नहीं भावै।
जा सुख थैं सिव ब्रिरंचि डरांनां, सो सुख हमहु साच करि जाना ।।
सुखि छ्याड्या तब सब दुख भागा, गुर के सबद मेरा मन लागा।
निस बासुरि बिषैतनां उपगार, बिषई नरकि न जातां बार ।।
कहै कबीर चंचल मति त्यागी, तब केवल रांम नांम ल्यौ लागी ।।८२।।

कबीर कहते हैं कि मेरा मन अब भी विषय-वासना जनित आनन्द-प्राप्ति की ...मे भटक रहा है, इसीलिए यह मुझे प्रभु-चरणों का आश्रय नहीं लेने देता।

मुझे वह विषय-वासना का सुख रुचिकर नहीं जिसकी इच्छा करने पर दुख ...मार्ग में आता है जिस विषय-वासना के रसानन्द से शिव एवं ब्रह्मा जैसे महान् ...भी भयभीत हो प्रार्थना करते हैं कि इस सुख से हमें बचाओ, मैं उसी सुख को ...त्विक सुख मान बैठा। सांसारिक सुख का परित्याग करने पर ही मेरे समस्त भव ...नष्ट हो गये और मन गुरु के उपदेशानुसार चलने लगा। यदि हे मनुष्य ! तू ...दिन विषय-वासना में संलिप्त न रहता तो नरक का भागी न होता। कबीर ...हैं कि जब मैंने चंचल बुद्धि, जो विषय-वासनाओं में भटकती रहती थी, का परि-...त्याग कर दिया तभी मेरी राम से लगन लगी।

तुम्ह गारडू मैं विष का माता, काहे न जिवावौ मेरे अंमृतदाता ।।टेक।।
संसार भवगम डसिले काया, अरु दुख दारन व्यापै तेरी माया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

सापनि एक पिटारै जागै, अह निसि रोवै ताकूं फिरि फिरि लागै॥
कहै कबीर को को नहीं राखे, रांम रसांइन जिनि जिनि चाखे॥

कबीर कहते हैं कि हे प्रभु! माया के साँप द्वारा काटे गये आप मेरे विष का अन्त क्यों नहीं कर देते क्योंकि आप उस सर्प के लिए गरुड़ स्वरूप हैं। हे अमृतमय प्रभु! आप मेरा उद्धार कीजिए। यह समस्त संसार सर्प है जो जीव के शरीर को डसता है, विषयुक्त कर देता है। फिर ऊपर से तेरी माया अनेक दारुण दुखों से व्यथित करती है। इस संसार के पिटारे में माया रूपी सर्पिणी का स्थायी वास है। उसके दंश से मानव दिन-रात रोता है किन्तु फिर भी बारम्बार उसका ही आलिंगन करता है।

कबीरदास जी कहते हैं कि इस माया—सर्पिणी से वही बच सकते हैं जिन्होंने प्रभु-भक्ति का मधुर रसायन चखा है।

माया तजूं तजी नहीं जाइ,
फिर फिर माया मोहि लपटाइ ॥टेक॥
माया आदर माया मांन, माया नहीं तहां ब्रह्म गियांन।
माया रस माया कर जांन, माया कारनि तजै परान॥
माया जप तप माया जोग, माया बाँधे सबही लोग।
माया जल थलि माया आकासि, माया ब्यापि रही चहूँ पासि॥
माया माता माया पिता, अति माया अस्तरी सुता।
माया मारि करै व्योहार, कहै कबीर मेरे रांम अधार॥

कबीर यहां माया-प्रभाव का उल्लेख करते कह रहे हैं कि माया का मैं परित्याग करना चाहता हूं किन्तु उसका आकर्षण इतना प्रबल है कि वह बारम्बार मुझे अपने में संलिप्त कर लेती है। संसार में मनुष्य ने माया को ही आदर सम्मान सब कुछ समझ लिया है। जहां का प्रभाव नहीं है, वहीं प्रभु का ज्ञान हो गया है। माया में ही समस्त रस और माया में ही समस्त आनन्द मानकर वह उसके लिए प्राण भी छोड़ देता है। आज माया ही जप, तप और योग सब कुछ हो गई है—इस भांति माया ने समस्त जगत् को अपने बंधन में बांध रखा है। पृथ्वी, समुद्र, आकाश सर्वत्र अपना प्रभाव दिखा रही है। संसार में समस्त सम्बन्ध—माता, पिता, पत्नी और पुत्री माया जनित मिथ्या हैं। कबीर कहते हैं कि मैं माया को नष्ट कर आचरण करता हूं और मेरे एकमात्र आधार प्रभु ही हैं।

ग्रिह जिनि जांनौ रूड़ौ रे।
कंचन कलस उठाइ लै मंदिर, रांम कहे बिन धूरौ रे ॥टेक॥
इन ग्रिह मन डहके सबहिन के, काहू कौ पर्यौ न पूरौ रे।
राजा रांणां राव छत्रपति, जरि भये भसम कौ कूरौ रे॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सबथैं नींकी संत मंडलिया, हरि भगतनि कौ भेरौ रे।
गोबिंद के गुन बैठे गैहैं, खैहैं टूकौ टैरौ रे॥
ऐसैं जांनि जपौ जग-जीवन, जम सूं तिनका तोरौ रे।
कहै कबीर रांम भजबे कौं, एक आध कोई सूरौ रे॥८५॥

उन स्वर्ण-कलशधारी मन्दिरों को जिनमें राम नाम, प्रभु-नाम का उच्चारण ...हीं होता वे केवल कंकण-पत्थर से बने भूतों के घर हैं। इन मन्दिर नामधारी घरों ...नके ही चित्त को भ्रमित किया है किन्तु ये किसी को भी तत्वदर्शन न करा सके। ...जा, ताल्लुकेदार एवं अन्य छत्रपति समस्त ही मृत्यु के पश्चात् जल कर भस्म के ढेर ...त रह गये—उनका कोई आज अस्तित्व भी नहीं। इन सबसे श्रेष्ठ तो सन्त-समूह ...है। वे बेचारे रूखी-सूखी खाकर आनन्दसहित प्रभु गुणगान करते हैं। कबीर कहते हैं ...कि हे मनुष्य! प्रभु को इस प्रकार भक्तिभाव से भजो कि संसार बंधन से मुक्त हो ...जाओ। वे आगे कहते हैं कि प्रभु-भजन करने के लिए तो कोई एकाध विरला ही ...तत्पर होता है।

रजसि मींन देखि बहु पांनी, काल जाल की खबरि न जांनी॥टेक॥
गारै गरब्यौ औघट घाट, सो जल छाड़ि बिकानौं हाट।
बंध्यौ न जांनैं जल उदमादि, कहै कबीर सब मोहे स्वादि॥८६॥

संसार-जल में लिप्त रहने वाले मछलीरूपी जीव विषय-वासना का आकर्षण ...देखकर उसमें फंस गया किन्तु उसने काल, मृत्यु-रूप जाल का भय न जाना। भाव ...यह है कि यदि यह इस काल-पाश से परिचित होता तो विषय-वासना रूप जल में न ...पड़ता। प्रभु भक्ति के तट पर जाकर मनुष्य के मिथ्या अहं का नाश हो जाता है। ...इसलिए जीव रूपी मछली को इस विषय-जल को छोड़ यहाँ से, संसार से चल देना ...चाहिए। कबीर कहते हैं कि जो संसार बन्धन में बंधा हुआ है वह प्रभु भक्ति के ...रहस्य को नहीं जान पाता। कबीर कहते हैं कि सब मनुष्य संसार के माया-मोह में ...पड़े हुए हैं।

काहे रे मन दह दिसि धावै, बिषिया संगि संतोष न पावै॥टेक॥
जहां जहां कलपै तहां तहां बंधनां, रतन कौ थाल कियौ तैं रंधनां।
जो पै सुख पईयत इन मांहीं, तौ राज छाड़ि कत बन कौं जांही॥
आनंद सहत तजौ विष नारी, अब क्या झीषै पतित भिषारी।
कहै कबीर यहु सुख दिन चारि, तजि बिषिया भजि चरन मुरारि॥८७॥

कबीर कहते हैं कि हे मन! तू क्यों व्यथ भ्रमित होता फिरता है? तू ...विषयानन्दों में संलिप्त है किन्तु फिर भी तुझे सन्तोष नहीं—तृष्णाओं के पीछे बावला ...हुआ फिरता है। जिस-जिस स्थान की कल्पना मनुष्य करता है वहीं पर उसे माया-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

मोह का बन्धन बांध लेता है। आत्मा रूपी पूर्ण स्वच्छ स्वर्ण थाली को उसने ... से कलुषित कर दिया है। जो मनुष्य को इस सांसारिक वैभव, विलास एवं ... जनित आनन्दों में ही सुख प्राप्त होता और वैराग्य से प्रभु-प्राप्ति में नहीं, तो ... राजा लोग अतुलित सम्पत्ति और वैभव का परित्याग कर वन का मार्ग क्यों ... करते ? हे पतित जीव! अब पाप कर्म कर क्यों भिखारी सदृश दीन बनकर सुख-शान्ति की प्रार्थना करता है। यदि तुम विषयों के भोग एवं नारी के संसर्ग का परित्याग ... दो तो वह आनंन्दस्वरूप ब्रह्म सहज प्राप्त हो जायेगा। इसीलिए कबीरदास जी ... हैं कि हे मनुष्य! तू इस विषय-वासना के सुख को त्याग दे क्योंकि यह क्षणिक ... और प्रभु का ही भजन कर।

जियरा जाहि गौ मैं जांनां।
जो देख्या सो बहुरि न पेष्या, माटी सूं लपटांनां ॥टेक॥
बाकुल बसतर किता पहिरबा, का तप बनखंडि बासा।
कहा मुगधरे पांहन पूजै, कागज डारै गाता ॥
कहै कबीर सुर मुनि उपदेसा, लोका पंथि लगाई।
सुनौं संतौ सुमिरौ भगत जन, हरि बिन जनम गवाई ॥८८॥

कबीर कहते हैं कि मैं अब यह जान गया हूं कि मन प्रभु-मिलन के लिए ... अवश्य जायगा। जिसने उस ब्रह्म से साक्षात्कार कर लिया फिर वह इस विषय-वासनापूर्ण संसार की ओर नहीं देखता। प्रभु-भक्ति में व्याकुल साधक को वेश... की चिन्ता की क्या आवश्यकता है एवं न ही वह वन में जाकर साधना करता ... वह तो मन में ही प्रभु-मिलन सुख प्राप्त कर लेता है। कबीरदास जी लोक-वेद सम्मत ... साधुजनों की वाणी का आश्रय लेकर कहते हैं कि जड़ पाहन मूर्ति को पूजने एवं ... सम्मुख तपस्या करके अपने शरीर को सुखाने से क्या लाभ ? इसलिए हे साधुजनो एवं प्रभु भक्तो! ईश्वर-प्राप्ति के बिना यह जीवन व्यर्थ है।

हरि ठग जग कौं ठगौरी लाई, हरि के बियोग कैसें जीऊं मेरी माई ॥टेक॥
कौंन पुरिष को काकी नारी, अभि अंतरि तुम्ह लेहु बिचारी।
कौंन पूत को काकौ बाप, कौंन मरैं कौंन करै संताप ॥
कहै कबीर ठग सौं मनमांनां, गई ठगौरी ठग पहिचांनां ॥८९॥

कबीर अपनी आत्मा के द्वारा कहलाते हैं कि हे सखि! प्रभु बड़े भारी ... हैं जिन्होंने अपने प्रेम सें समस्त संसार को ठग रखा है। उनके वियोग में भला मैं कैसे जीवन धारण करूं ? भला तनिक मन में विचार करके सोचो तो सही कि इस संसार में कौन किसका पति और कौन किसकी पत्नी है। कौन किसका पुत्र और कौन किसका पिता है, भला इनमें कौन किसके दुख से मरा है। ये समस्त संसार-सम्बन्ध ...

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

...या हैं। कबीर कहते हैं कि मेरा मन तो एक ठग से लग गया है, इस संसार-भ्रम ...नष्ट होने पर मैंने उस ठग स्वरूप परमात्मा को पहचान लिया है।

विशेष—सभंगपद यमक अलंकार।

साइं मेरे साजि दई एक डोली, हस्त लोक अरू मैं तैं बोली ॥टेक॥
इक झंझर सम सूत खटोला, त्रिस्नां बाव चहूँ दिसि डोला।
पांच कहार का मरम न जांनां, एकैं कह्या एक नहीं मांनां॥
भूभर घांम उहार न छावा, नैहर जात बहुत दुख पावा।
कहै कबीर बर बहु दुख सहिये, रांम प्रीति करि सगही रहिये ॥६०॥

भूभर=गर्म रेत, तप्त बालू। नैहर=पीहर।

कबीर कहते हैं कि मेरे शरीर रूपी एक डोली का निर्माण प्रभु ने कर दिया। ...इस संसार में इधर-उधर भटकती फिर रही है। यह मानव-शरीर एक कच्चे सूत ...निर्मित खटोले के समान है जिसको तृष्णा चारों ओर घुमाती फिरती है। इसे ...चों ज्ञानेन्द्रियां बिना समझे बूझे चारों ओर विषय-तुष्टि में भटकाती फिरती हैं। ...सी अवस्था में आत्मा प्रियतम ब्रह्म के पास कैसे जाय क्योंकि उधर मार्ग में तप्त ...लू है एवं परिश्रम दूर करने के लिए छाया तक का आश्रय नहीं है। कबीरदासजी ...कहते हैं कि चाहे कितने ही दुख सहने पड़ जाँय किन्तु कभी भी राम-प्रेम, प्रभु-भक्ति ...का आश्रय नहीं छोड़ना चाहिए।

विशेष—पाँच कहार=से तात्पर्य पांचों ज्ञानेन्द्रियों—आंख, नाक, कान, ...रसना, त्वचा—से है। जिस प्रकार कहार डोली को इधर-उधर ले जाते हैं उसी ...भांति इन्द्रियां मानव शरीर को शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श के विषयों का आस्वाद ...कराती उसे पाप-पंक में लिप्त कराती हैं।

बिनसि जाइ कागद की गुड़िया,
जब लग पवन तबै लग उड़िया ॥टेक॥
गुड़िया कौ सबद अनाहद बोलै, खसम लियें कर डोरी डोलै।
पवन थक्यौ गुड़िया ठहरांनीं, सीस धुनै धूनि रोवै प्रांनी॥
कहै कबीर भजि सारंग पानीं, नहीं तर ह्वै है खैंचा तांनीं ॥६१॥

कबीर कहते हैं कि यह मेरा शरीर कागज निर्मित गुड़िया के तुल्य क्षणिक अस्तित्व का है। जब तक इसमें प्राणवायु का संचार है, इसका अस्तित्व तभी तक ...। यह शरीर योगसाधना द्वारा अनाहद शब्द सुनने की स्थिति, ब्रह्मसाक्षात्कार ...प्त कर लेता है। जब इस कागज की गुड़िया—शरीर—में स्थित प्राण वायु निकल ...जाता है तब इसका अस्तित्व समाप्त हो जाता है एवं अन्य पारिवारिक बड़ा हृदय-विदारक रुदन कर उठते हैं। कबीर कहते हैं कि हे मनुष्य! तू प्रभु का भजन कर अन्यथा संसार बन्धनों में पड़ा हुआ तू इधर-उधर खिंचता रहेगा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

मन रे तन कागद का पुतला।
लागै बूंद बिनसि जाइ छिन मैं, गरब करै क्या इतना ॥टेक॥
माटी खोदहिं भींत उसारै, अंध कहै घर मेरा।
आवै तलव बांधि लै चालै, बहुरि न करिहै फेरा॥
खोट कपट करि यहु धन जोयौं, लै धरती मैं गाड़्यौ।
रोक्यौ घटि साँस नहीं निकसै, ठौर ठौर सब छाड़्यौ॥
कहै कबीर नट नाटिक थाके, मदला कौंन बजावै।
गये पषनियां उझरी बाजी, को काहू कै आवै ॥९२॥

बिनसि=नष्ट । भींत=दीवार, भित्ति । उसारे=फूस निर्मित छप्पर। तलव=मृत्यु । खोट=पाप । नाटिक=नाटिका । मंदला=एक वाद्य विशेष।

कबीर कहते हैं कि हे मन ! तू इस शरीर पर क्यों व्यर्थ इतना गर्व करता है, इसके लिए क्यों व्यर्थ इतने सम्भार करता है ? इसका अस्तित्व तो उस कागज के पुतले के समान क्षणिक है जो बूंद पड़ते ही नष्ट हो जाता है।

मिट्टी खोदकर कच्ची दीवार पर छप्पर डालकर जो टूटा फूटा रहने का स्थान बनाया है उसे ही यह अज्ञानी जीव अपना घर बताता है। मृत्यु जब आयेगी तो इस मनुष्य शरीर को समाप्त कर जायगी फिर इस संसार को तू देख भी नहीं सकता। यह जो धनराशि तूने विविध पाप-कर्म करके एकत्रित कर पृथ्वी में गाड़ी है वही मृत्यु के समय तेरे प्राणों को निकलने में बाधा देती है, सोचता है मैं इसे किस स्थान पर छोड़ जा रहा हूं। कबीर कहते हैं कि यह शरीर अब इस संसार नाटक में अभिनय करता-करता परिश्रान्त हो गया फिर भला अब इस वाद्य से ध्वनि कौन निकाल सकता है । सब साथी चले गये, छूट गये, कौन किसका साथ देता है ?

झूठे तन कौं कहा रखइये, मरिये तौ पल भरि रहण न पइये ॥टेक॥
षीर षांड़ घृत प्यंड संवारा, प्रान गये ले बाहरि जारा।
चोवा चंदन चरचत अंगा, सो तन जरै काठ के संगा॥
दास कबीर यहु कीन्ह बिचारा, इक दिन ह्वै है हाल हमारा ॥९३॥

इस मिथ्या शरीर को, जिसका अस्तित्व मृत्यु के एक क्षण अनन्तर नहीं रह पाता, क्या संवारा जाय। खीर, मिष्टान्न, घी आदि जैसे स्वादिष्ट एवं पौष्टिक पदार्थों से जिस शरीर का पोषण किया मृत्यु हो जाने पर उसी को घर से बहुत दूर श्मशान में ले जा कर भस्म कर देते हैं। चन्दन आदि विविध सुगन्धित पदार्थों के अंगराग से जिसका मण्डन किया था वही लकड़ी के साथ रखकर चिता पर जला दिया जाता है। अतः इस शरीर के पोषण से क्या लाभ ? अतः कबीरदास जी विचार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

...कर यह कहते हैं कि एक दिवस हमारी भी यही गति होगी अतः क्यों न शरीर का ...ह त्याग प्रभु भजन किया जाय ?

देखहु यहु तन जरता है, घड़ी पहर बिलंबौ रे भाई जरता है ।।टेक।।
काहे कौं एता किया पसारा, यहु तन जरि बरि ह्वै है छारा ।
नव तन द्वादस लागी आगी, मुगध न चेतैं नख सिख जागी ।।
कांम क्रोध घट भरे बिकारा, आपहि आप जरै संसारा ।
कहै कबीर हम मृतक समांनां, राम नांम छूटे अभिमांनां ।।९४।।

बिलंबौ = रुको । पसारा = प्रसार, सम्भार । बरि है = प्रज्वलित होगा ।

कबीर कहते हैं कि यह शरीर जिसके लिए तुम पाप-पंक में फंसते हो, भस्म ...कर अस्तित्वहीन हो जाता है । तुम थोड़े समय वाद देख लेना कि यह जलता है ...या नहीं—अर्थात् अवश्य जल जायेगा । क्यों व्यर्थ तुमने इसके लिए पाप कर्म किये, ...यह तो जल कर क्षार हो जायेगा । इस शरीर को वारह प्रकार की अग्नियां जलाकर नष्ट कर देंगी किन्तु जो संसार में लिप्त है वह यह देखकर भी प्रभु भक्ति में नहीं ...लगता । मनुष्यों के हृदय में काम-क्रोध आदि विकार भरे हुए हैं, इनके ताप से संसार स्वयं भस्म होता जाता है । कबीर कहते हैं कि मैं तो जीवन्मुक्त हूं, क्योंकि मैंने प्रभु का आश्रय ले लिया है । ईश्वर भजन से ही संसार में मिथ्याभिमान नष्ट होता है ।

तन राखनहारा को नाहीं, तुम्ह सोचि विचारि देखौ मन मांहीं ।।टेक।।
जोर कुटंब अपनौं करि पार्यौ, मूड ठोकि ले बाहरि जार्यौं ।
दगाबाज लूटैं अरू रोवैं, जारि गाडि पुर षोजहिं षोवैं ।।
कहत कबीर सुनहुं रे लोई, हरि बिन राखनहार न कोई ।।९५।।

कबीर कहते हैं कि मन में यह भली भाँति विचार कर देख लिया कि इस शरीर को बचाने वाला कोई भी नहीं है । जिस परिवार का पालन-पोषण जीवनपर्यन्त किया वे ही थोड़ी देर सिर पीटकर मृत्यूपरान्त इसे घर से निकाल देते हैं । ये सांसारिक वड़े धोखेबाज हैं जो उसे जीते जी लटते हैं और मरने पर रोते भी हैं एवं मरने पर जलाकर या दफन करके फिर खूंटे अथवा कब्र के ऊपर कुछ चिनवाते हैं । कबीर अपनी शिष्या लोई को सम्बोधित करके कहते हैं कि इस मनुष्य की रक्षा प्रभु के अतिरिक्त और कोई नहीं कर सकता ।

विशेष—१. "जारि गाडि षोवैं—" के द्वारा कबीर ने उन सामाजिक कुरीतियों पर व्यंग्य किया है जिनके कारण मरने पर हिन्दुओं में जला देने पर मनुष्य का अस्तित्व पूर्णरूपेण समाप्त कर देते हैं किन्तु फिर भी किसी स्थान पर उनके नाम का खूंटा इस विश्वास से बना देते हैं कि वह यहां वास करेगा । इसी प्रकार मुसलमानों में कब्र के ऊपर पक्की आलीशान दरगाह सी बना देते हैं । कैसी जीवन की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

विडम्बना है कि जिसे जीते जी पारिवारिक लोग लूटते-खसोटते हैं मरने पर उसके लिए क्या ठाटबाट खड़े कर देते हैं।

अब क्या सोचै आइ बनी, सिर परि साहिब रांम धनी ।।टेक।।
दिन दिन पाप बहुत मैं कीन्हां, नहीं गोब्यद की संक मनी।
लेट्यौ भोमि बहुत पछितांनौं, लालचि लागौ करत घनी ।।
छूटी फौज आंनि गढ घेर्यौ, उड़ि गयौ गूड़र छाड़ि तनी।
पकर्यौ हंस जम ले चाल्यौ, मंदिर रोवै नारि घनी ।।
कहै कबीर रांम किन सुमिरत, चीन्हत नांहिन एक चिनी।
जब जाइ आइ पड़ोसी घेर्यौ, छांड़ि चल्यौ तजि पुरिष पनी ।।९६।।

संक=भय। भोमि, भूमि, पृथ्वी। घनीं=अत्यधिक।

कबीर कहते हैं कि हे मूर्ख जीव! अब जब शीश पर मृत्यु आ चढ़ी है तब क्या सोचता है कि प्रभु सर्वोपरि है, यह बात तो पहले सोचने की है। जब तो प्रभु का कोई भय न मानते हुए मैंने प्रतिदिन बड़े-बड़े पाप कर्म किये। जब लोभ और लालच में बुरी तरह ग्रस्त था किन्तु अब पृथ्वी पर लोट-लोट कर पश्चात्ताप करता हूं। जब मृत्यु ने इस शरीर रूपी किले पर आक्रमण कर दिया तो आत्मा इस शरीर को छोड़कर चली गई। प्राणों को पकड़कर यम लेकर चल दिया तो घर पर बहुत सम्बन्धी रोने लगे। कबीर कहते हैं कि राम का स्मरण कोई नहीं करता, उस पहचानने योग्य को कोई नहीं पहचानने का प्रयत्न करता। जब इस शरीर को मृत्यु आ दबाती है तो सब अपने मनुष्यत्व को खो यहां से चल देते हैं।

सुवटा डरपत रहु मेरे भाई, तोही डराई देत बिलाई।
तीनि बार रूंधै इक दिन मैं, कबहूं क खता खवाई ।।टेक।।
या मंजारी मुगध न मानैं, सब दुनियां डहकाई।
राणां राव रंक कौं ब्यापै, करि करि प्रीति सवाई ।।
कहत कबीर सुनहु रे सुवटा, उबरे हरि सरनांई।
लाषों मांहि तें लेत अचांनक, काहू न देत दिखाई ।।९७।।

सुवटा=तोता, यहां जीव से तात्पर्य। विलाई=माया। खता खवाई=धोखा हो जायगा, चट कर जायगी। मंजारी=बिल्ली। डहकाई=बहकाई। सरनांई=शरण।

हे शुक रूप जीव तू यहां इसी प्रकार से भय-त्रस्त रहेगा क्योंकि यहां यह माया रूपी बिल्ली तुझे चट कर जाने के लिए बैठी हुई है। यह तुझे दिवस में अनेक बार रूंध देती है किन्तु यह तो तेरा भाग्य है कि तू अब तक बचा है, किसी बार धोखा हो जायेगा और यह बिल्ली तुझे चट कर जायगी। तू इस बिल्ली के मोह में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

...पड़, इससे प्रेम न कर, इसने समस्त संसार को इसी प्रकार बहका रखा है। यह ...को राजा, भिखारी सबको प्रेम सिखा कर अपने फन्दे में डाल लेती है। कबीरदास ...कहते हैं कि हे तोते रूप जीव! सुन। यह माया-बिल्ली लाखों मनुष्यों के समूह में ...चुपचाप ही व्यक्ति को चट कर जाती है, इससे निस्तार प्रभु शरण द्वारा ही ...म्भव है।

का मांगू कुछ थिर न रहाई,
देखत नैंन चल्या जग जाई ।।टेक।।
इक लष पूत सवा लष नातो, ता रावन घरि दिवा न बाती।
लंका सा कोट समंद सी खाई, ता रावन की खबरि न पाई।।
आवत संग न जात संगाती, कहा भयौ दरि बांधे हाथी।
कहे कबीर अंत की बारी, हाथ झाड़ि जैसें चले जुवारी।।९८।।

कबीर कहते हैं कि मैं तुमसे हे प्रभु क्या मांगू, देखते ही देखते संसार यूं ही ...ता जाता है। इस संसार में ऐसा कुछ भी तो नहीं हैं जो स्थिर है। जिस महाराजा ...रावण के एक लाख पुत्र एवं सवा लाख नाती थे उसका भी अन्त समूल ऐसा हो गया ...कि उसके घर में कोई दीपक जलाने वाला भी शेष न रहा। जिसका लंका जैसा ...भव्य किला और उसके चारों ओर विशाल समुद्र पर उसका आधिपत्य था, उसी ...रावण का आज चिन्ह तक शेष नहीं है। चाहे कोई द्वार पर हाथी बांध-बांधकर ...कितना ही वैभवशाली क्यों न कहला ले किन्तु न तो उसके साथ कुछ संसार में आया ...था और न उसके साथ कुछ संसार से जायगा। कबीर कहते हैं कि मृत्यु के समय ...वैसे ही खाली हाथ मनुष्य जाता है जैसे जुए में हारने पर जुआरी खाली हाथ ...जाता है।

रांम थोरे दिन कौं का धन करनां,
धंधा बहुत निहाइति मरनां ।।टेक।।
कोटी धज साह हस्तो बंध राजा, क्रिपन को धन कौंनें काजा।
धंन कै गरिब रांम नहीं जांनां, नागा ह्वै जंम पैं गुदरांनां।।
कहै कबीर चेतहु रे भाई, हंस गया कछु संगि न जाई।।९९।।

कबीर कहते हैं कि हे प्रभु! थोड़े दिन स्थिर रहने वाले इस सांसारिक धन ...का क्या करना, इसके लिए न जाने कितने प्रयत्न जी तोड़कर करने पड़ते हैं। यदि ...कोई साहूकार अथवा राजा अपने द्वार पर हाथी बांध कर भवन पर सौ पताकाएं ...फहरा दे और कृपण अपने कोष में अतुलित धन जमा कर ले तो इसका किसी और को ...क्या लाभ? ये लोग धनाभिमान में प्रभु को भी नहीं पहचान पाते किन्तु जब यम ...इन्हें ले जाता है तो नंगे होकर जाते हैं। कबीर कहते हैं कि सब सावधान हो प्रभु-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

भक्ति का भजन करो क्योंकि प्राण निकल जाने पर कुछ भी साथ नहीं जाता, सांसारिक वैभव यथावत् यों ही धरा रह जाता है।

काहे कूं माया दुख करि जोरी,
हाथि चूंन गज पांच पछेवरी ॥टेक॥
नां को बंध न भाई साथी, बांधे रहे तुरंगम हाथी।
मैड़ी महल बावड़ी छाजा, छाड़ि इये सब भूपति राजा॥
कहै कबीर रांम ल्यौ लाई, धरी रही माया काहू खाई ॥१००॥

कबीर कहते हैं कि हे जीव ! तूने यह माया, धन-सम्पत्ति व्यर्थ क्यों दुःख उठा-उठा कर संचित की है। तुझे मृत्यु होने पर लाल रंग का वही पाँच गज का प्राप्त होगा अन्य कुछ नहीं।

इस संसार में कोई किसी का न बन्धु है न सखा, समस्त संसार-सम्बन्ध मिथ्या हैं फिर क्यों व्यर्थ, धनिक लोग द्वार पर हाथी घोड़े बाँध कर वैभव को प्रदर्शन करते हैं। झोंपड़ी, महल, सरोवर एवं अन्य भवन सब को यहीं छोड़कर बड़े-बड़े राजा मृत्यु-गामी हो गये। कबीर कहते हैं कि मूढ़ जीव ! तू प्रेम सहित प्रभु भक्ति कर। और माया को कोई नहीं खाये जाता।

माया का रस षांण न पावा,
तब लग जम बिलवा ह्वै धावा ॥टेक॥
अनेक जतन करि गाड़ि दुराई, काहू सांची काहू खाई।
तिल तिल करि यहु माया जोरी, चलती बेर तिणां ज्यूं तोरी।
कहै कबीर हूँ ताका दास, माया मांहैं रहै उदास ॥१०१॥

जम=यम, मृत्यु। बिलवा=बिलौंटा, नर बिल्ली। दुराई=छिपाई। तिणां =तिनका।

कबीर कहते हैं कि मनुष्य अपनी विविध दुःखों सहित एकत्रित धन सम्पत्ति का आस्वाद भी नहीं कर पाया था कि मृत्यु रूपी बिलौंटा आ धमका। यह अनेक प्रयत्न करके गाड़ और छुपा कर रखी थी किन्तु सत्य-सत्य बताओ इसका उपभोग आज तक कोई कर पाया है। कण-कण एकत्रित कर तो यह माया संचित की किन्तु इस संसार से चलते समय तृण के समान इससे सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। कबीर कहते हैं कि मैं उसी का दास हूं, उसी का भक्त हूं जो माया के मध्य रहता हुआ भी उससे संलिप्त न हो।

विशेष—कबीर भी यहाँ वेदान्तियों के समान 'पद्मपत्रमिवाम्भसि' का आदर्श बताते हैं, वास्तव में यह आदर्श बहुत ऊंचा है और कदाचित् कबीर इस स्तर पर पहुंच गये थे तभी वे इतनी दृढ़ता-पूर्वक इस मत की प्रस्थापना करते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मेरी मेरी दुनियां करते, मोह मछर तन धरते।
आगैं पीर मुकदम होते, वै भी गये यौं करते ॥टेक॥
किसकी ममां चचा पुनि किसका, किसका पंगुड़ा जोई।
यहु संसार बजार मंड्या है, जानैंगा जन कोई॥
मैं परदेसी काहि पुकारौं, इहां नहीं को मेरा।
यहु संसार ढूंढि सब देख्या, एक भरोसा तेरा॥
खांहि हलाल हरांम निवारैं, भिस्त तिनहु कौं होई।
पंच तत का मरम न जांनैं, दोजगि पड़िहै सोई॥
कुटंब कारणि पाप कमावै, तूं जांणैं घर मेरा।
ए सब मिले आप सवारथ, इहां नहीं को तेरा॥
सायर उतरौ पंथ सँवारौ, बुरा न किसी का करणां।
कहै कबीर सुनहु रे संतौ, ज्वाब खसम कूं भरणां ॥१०५॥

कबीर कहते हैं कि सब मनुष्य अहं, अथवा ममत्व-भावना के कारण विविध शरीर धारण करते हैं। जो पहले समाज में सम्मानीय स्थानों और पदों की शोभा थे उन्हें भी चौरासी लाख योनियों में भटकना पड़ता है। इस संसार में माता-पिता आदि के जो सम्बन्ध हैं वे सब मिथ्या हैं, यहां कोई किसी का नहीं है। यह संसार एक बाजार के समान है जिसमें थोड़ी देर की पैंठ लगाकर सब अपने-अपने गन्तव्य स्थान को चल देते हैं। हे प्रभु ! मैं इस जगत् में परदेशी सदृश हूं मैं किसे अपना कहूं, एकमात्र अवलम्ब तेरा ही है। ये सांसारिक सम्बन्धी परिश्रम की कमाई खाकर आराम करते हैं और इस प्रकार भ्रष्ट आचरण करते हैं। यह मानव यह नहीं समझता कि इस शरीर का मोह कैसा ? यह तो मृत्यु के पश्चात् पंचतत्व में समाहित हो जाता है। इस रहस्य को न समझ सकने के कारण ही ये जीव, नरक को भोगते हैं। हे जीव ! तू परिवारियों के लिए पाप कर्म कर धन संचित करता है और यह विश्वास करता है कि ये सब मेरे हैं। यह तेरा मिथ्या भ्रम है। यहां इस संसार में तेरा कोई नहीं हैं, सब अपना स्वार्थ साधन कर रहे हैं।

कबीर कहते हैं कि हे सज्जनो! तुम अपना परलोक संवार लो, किसी का बुरा न सोचो क्योंकि तुम्हें अन्ततः उस स्वामी, ब्रह्म, को अपने कर्मों का उत्तर देना होगा।

रे यामैं क्या मेरा क्या तेरा,
लाज न मरहिं कहत घर मेरा ॥टेक॥
चारि पहर निस भोरा, जैसें तरवर पंखि बसेरा।
जैसैं बनियं हाट पसारा, सब जग का सो सिरजनहारा॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

ये ले जारे वै ले गाड़े, इनि दुखिइनि दोऊ घर छाड़े।
कहत कबीर सुनहु रे लोई, हम तुम्ह बिनसि रहैगा सोई ॥१०॥

कबीर कहते हैं कि हे मूर्ख मनुष्य ! तुझे इस संसार को अपना कहते लज्जा तक नहीं आती—इसमें 'मेरा और तेरा' भला क्या रखा है ? तेरी इस संसार में क्षणिक स्थिति ऐसी ही है जैसे रात्रि में चार प्रहर व्यतीत करने के लिए पक्षीगण पेड़ पर बसेरा डाल लेते हैं अथवा जैसे वणिक पैंठ में जाकर थोड़ी ही देर के लिए वहां अपनी दुकान लगा कर उसे अपनी कहने लगता है और समस्त जगत् के स्वामी उस प्रभु को भूल जाता है। जो कृपण धन को संचित करते हैं एवं जो उसे विषय भोगों में नष्ट करते हैं वे दोनों ही दुःखी होकर इस संसार से जाते हैं। कबीर कहते हैं कि हे लोई (शिष्या का नाम) ! हम तुम अर्थात् सब संसार तो नष्ट हो जायेगा केवल ब्रह्म ही चिरन्तन और सत्य है, अतः उसी का भजन करो।

नर जांणैं अमर मेरी काया, घर घर बात दुपहरी छाया ॥टेक॥
मारग छाड़ि कुमारग जोवैं, आपण मरै और कूं रोवैं।
कछू एक किया कछू एक करणां, मुगध न चेतै निहचै मरणां ॥
ज्यूं जल बूंद तैसा संसारा, उपजत बिनसत लगै न बारा ॥
पंच पंषुरिया एक ससीरा, कृष्ण कवल दल भवर कबीरा ॥१०॥

कबीर कहते हैं कि मनुष्य यह सोचता है कि मेरा यह शरीर अमर है किन्तु उसे यह ज्ञात नहीं कि यह दुपहरी की छाया के सदृश क्षणिक एवं अस्तित्वहीन है। वह सन्मार्ग को छोड़ कुमार्ग को ग्रहण कर लेता है, स्वयं भी तो इसे मरना है फिर और का मरण देखकर क्यों व्यर्थ रुदन करता है ? कुछ तो दुष्कर्म उसने पहले ही किये हैं और कुछ अब और करेगा, वह यह नहीं सोचता कि संसार में लिप्त रहने से क्या लाभ ? निश्चय ही उसे एक दिन मरना है। यह संसार जल की एक बूंद के तुल्य है जिसे उत्पन्न होते और नष्ट होते देर नहीं लगती। इस एक शरीर में पाँच संचालक—आँख, नाक, कान, रसना एवं त्वचा—उसे विविध वासना-विषयों में भ्रमित करते रहते हैं। कबीर तो सहस्रदल कमल में स्थित ब्रह्म में लीन हो गया है।

मन रे अहरषि बाद न कीजै, अपनां सुकृत भरि भरि लीजै ॥टेक॥
कुंभरा एक कमाई माटी, बहु बिधि जुगति बणाई।
एकनि मैं मुकताहल मोती, एकनि ब्याधि लगाई।
एकनि दीनां पाट पटंबर, एकनि सेज निवारा।
एकनि दीनीं गरै गूदरी, एकनि सेज पयारा ॥
सांची रही सूंम की संपति, मुगध कहै यहु मेरी।
अंत काल जब आइ पहूँता, छिन मैं कीन्ह न बेरी ॥

RajGuru Maṭh, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कहत कबीर सुनौं रे संतौ, मेरी मेरी सब झूठी।
चड़ा चींथड़ा चूहड़ा ले गया, तणीं तणगती टटी ।।१०५।।

ग्रहरषि=ग्रहर्निश। सुकृत=पुण्य। कुँभरा=कुम्हार। जुगति=युक्ति ...। सूम=कृपण। पहूंता=पहुंचा। चड़ा चींथड़ा=जर्जर वस्त्र। चूहड़ा=...।

कबीर कहते हैं कि हे मन! तू ग्रहर्निश संसार-जाल में ही मत उलझा रहा ...। पुण्य कर्म कर अपना परलोक संवार ले। कुम्हार एक ही मिट्टी के द्वारा ... प्रयत्न करके बहुत सी वस्तुएं निर्मित कर देता है, किसी एक पात्र में मुक्ता-... भरे रहते हैं और दूसरा व्याध के पास होता है जिसमें वह रक्त-मांस आदि ... वस्तुएं रखता है उसी प्रकार सब मनुष्य उस ब्रह्म से ही निर्मित हैं किन्तु एक को ... विविध कार की सुन्दर-सुन्दर वेषभूषाएं प्राप्त हैं तो दूसरे को बिछाने के लिए वस्त्र ... नहीं प्राप्त होते। एक के शरीर पर चिथड़े होते हैं तो दूसरे को सुन्दर शय्या प्राप्त ... है। यह सब अपने-अपने कर्मों का ही फल है। कृपण तक की सम्पत्ति यहां ... रह जाती है, संसार में बद्ध जीव सम्पत्ति पर अपना स्वत्व बताता है और ... मृत्यु आ पहुंचेगी ता पल भर में सब कुछ समाप्त हो जायेगा। कबीर कहते हैं ... हे सज्जनो! साधुओ! इस संसार में तुम जिस-जिस वस्तु को अपनी बताते हो ... सब झूठ है। इस जर्जर शरीर को काल रूपी चूहा ले गया तो सब सम्बन्ध ... चरमरा कर टूट जायेंगे।

हड़ हड़ हड़ हड़ हसती है, दिवांनपनां क्या करती है।
आडी तिरछी फिरती है, क्या च्यौं च्यौं म्यों म्यों करती है ।।टेक।।
क्या तूं रंगी क्या तूं चंगी, क्या सुख लोड़ै कीन्हां।
मोर मुकदम सेर दिवांनी, जंगल केर षजीनां।।
भूले भरमि कहा तुम्ह राते, क्या मदुमाते माया।
रांम रंगि सदा मतिवाले, काया होइ निकाया।।
कहत कबीर सुहाग सुंदरी, हरि भजि ह्वै निस्तारा।
सारा षलक खराब किया है, मांनस कहा बिचारा ।।१०६।।

हड़ हड़=खिलखिला कर, अट्टहासपूर्वक। च्यौं च्यौं म्यौं म्यौं=चिल्ल पों ...ना, उथल पुथल का वातावरण बनाना। मीर=मुसलमान समाज की श्रेष्ठ ... जिसका अर्थ प्रथम होता है। मुकदम=मुकद्दम, पहले ग्रामों में हुआ करते थे, ... सम्माननीय व्यक्ति के अर्थ में। मदुमाते=मदमाते। निस्तारा=छुटकारा। ...क=संसार। मांनस=मनुष्य।

कबीर माया को सम्बोधित करते कहते हैं कि तू खिलखिलाकर अट्टहासपूर्वक ...कर क्या उत्पात किया चाहती है। तू ऐसा पागलपन क्यों कर रही है? तू कभ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

इधर उधर शान्ति भंग करती क्यों फिर रही है ? कोई व्यक्ति तेरे रंग में र... सुख प्राप्त कर रहा हो,भले ही वह मीर-मुकद्दम कोटि का श्रेष्ठतम व्यक्ति क्यों न... वह वन में गड़े अज्ञात खजाने के समान निरर्थक आनन्दोपभोग में लगे हैं क्योंकि... आनन्द का किसी को लाभ तो प्राप्त होता ही नहीं है। इसलिए तुम भ्रम में... हुए माया के रंग में मत पड़ो। यह माया सबको मदमस्त बना देती है। प्रभु-भ... के रस में रंगे हुए सर्वदा (स्थायी) आनन्द का सुख लाभ करते हैं। उसी से ... निष्पाप होता है। कबीरदास जी कहते हैं कि इस माया ने तो समस्त संसार... अपने दूषित प्रभाव से विषाक्त बना दिया है, फिर बेचारे मनुष्य की तो बा... क्या ? अतः हे आत्मारूपी सुन्दरी ! तू प्रभु का भजन कर, उसी से ... सम्भव है।

हरि कै नांइ गहर जिनि करऊं, रांम नांम चित मुखां न धरऊं॥
जैसें सती तजै स्यंगार, ऐसें जियरा करम निवार।
राग दोष दहूँ मैं एक न भाषि, कदाचि ऊपजै तौ चिंता न राषि।
भूलै विसरय, गहर जौ होई, कहै कबीर क्या करिहौ मोही॥

मुखां=मुख में। स्यंगार=शृंगार। निवार=परित्याग।

कबीर कहते हैं कि जो मनुष्य प्रभु के सम्मुख भी अहं भाव का प... नहीं करते हैं वे ऐसे लोग होते हैं जो कभी राम-नाम, प्रभु नाम को हृदय अथवा... में आने ही नहीं देते। वे आगे जीव को समझाते हैं कि जैसे सती नारी शृंगा... पूर्ण परित्याग कर देती है उसी प्रकार तू कर्मों का पूर्ण त्याग कर कर्म-वि... जा एवं राग-द्वेष दोनों में से किसी में भी अपना मन न लगा और यदि कभी... द्वेष उत्पन्न भी हो जाय तो तू उस पर विचार ही न कर, वह स्वयं समा... जायेगा। कबीर कहते हैं कि यदि धूलि में विषयरस हुआ तो वह मोह कर... कुछ नहीं बिगाड़ सकता, भाव यह है कि हे मनुष्य ! यदि तू इस उ... स्थिति को प्राप्त कर ले तो माया-मोह, विषय-विकार तुझे प्रभु-भक्ति पथ से... नहीं सकते।

विशेष—यह स्थिति गीता के जीवन्मुक्त, स्थितप्रज्ञ पुरुष जैसी ही है... तुलना कीजिए—

(१) 'दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृह।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते॥" २।५६

"दुःखों की प्राप्ति में उद्वेगरहित है मन जिसका और सुखों की प्राप्ति में... हो गई है स्पृहा जिसकी तथा नष्ट हो गये हैं राग, भय और क्रोध जिसके... मुनि स्थिरबुद्धि कहा जाता है।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(२) विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः ।
रसवर्जं रसोप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ।" २।५९

"यद्यपि इन्द्रियों के द्वारा विषयों को न ग्रहण करने वाले पुरुष के केवल विषय तो निवृत्त हो जाते हैं, परन्तु राग नहीं निवृत्त होता और इस पुरुष का तो राग भी परमात्मा को साक्षात् करके निवृत्त हो जाता है।

(३) "इन्द्रियस्येन्द्रिस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ ।" ३।३८

"इसलिए मनुष्य को चाहिए कि इन्द्रिय-इन्द्रिय के अर्थ में अर्थात् सभी इन्द्रियों के भोगों में स्थित जो राग और द्वेष हैं उन दोनों के वश में नहीं होवे, क्योंकि दोनों ही इसके कल्याणमार्ग में विघ्न करने वाले महान् शत्रु हैं।"

मन रे कागद कीर पराया ।
कहा भयौ ब्यौपार तुम्हारै, कल तर बढ़ै सवाया ।।टेक।।
बडैं बोहरै सांठो दीन्हौं, कल तर काढ्यो खोटं ।
चार लाष अरू असी ठीक दे, जनम लिष्यौ सब चौटै ।।
अब की बेर न कागद कीर्‌यौ, तौ धर्म राइ सूं तूटै ।
पूंजी बितड़ि बंदि लै दैहै, तब कहै कौंन कै छूटै ।।
गुरदेव ग्यांनी भयौ लगनियां, सुमिरन दीन्हौं हीरा ।
बड़ी निसरनी नांव रांम कौ, चढ़ि गयौ कीर कबीरा ।।१०८।।

पराया=दूसरे का । तर=तक । सवाया=सवा गुना । वौहरे=व्यापार करने वाला महाजन ।

कबीर कहते हैं कि मन ! तूने दूसरे वौहरे का कागज भरा है। ये पाप जो तू कर रहा है उसी प्रकार कल तक सवा गुने बढ़ जायेंगे जिस भाँति वौहरे का सूद। यह तेज वौहरा कल तक तुझ पर सूद वढ़ा कर न जाने क्या-क्या दोष लगा देगा जिसका फल तुझे चौरासी लाख योनियों में जन्म लेकर भटकते हुए भोगना पड़ेगा। यदि अब की बार इस मनुष्य जन्म में कागज का सब पाप-कर्म रूपी ऋण नहीं चुका दिया तो मृत्यु-पश्चात् धर्मराज तुझसे रुष्ट हो जायेंगे। पूंजी के बढ़ जाने पर तुझे जब बन्दी कर देगा तब तुझे कौन मुक्त करायेगा ? सद्‌गुरु रूपी लगनिया ही तुझे स्मरण का हीरा देकर इससे मुक्त करा सकता है। जिसके द्वारा राम नाम की सीढ़ी को पाकर इस संसार में बद्ध कबीर भी भक्ति के चरम सोपान—मोक्ष को प्राप्त कर लेगा ।

धागा ज्यूं टूटै त्यूं जोरि ।
तूटै तूटनि होयगो, नां ऊं मिलै बहोरि ।।टेक।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

उरझ्यो सूत पांन नहीं लागै, कूच फिरै सब लाई।
छिटकै पवन तार जब छूटै, तब मेरौ कहा बसाई॥
सुरझ्यौ सूत गुढ़ी सब भागी, पवन राखि मन धीरा।
पंचूं भइया भये सनमुखा, तब यहु पान करीला॥
नांन्हीं मैंदा पीसि लई है, छांणि लई द्वै बारा।
कहैं कबीर तेल जब मेल्या, बुनत न लागी बारा॥१०६॥

ऊँ=वह, ब्रह्म ! बहोरि=दुबारा । पंचू भइया=पाँचों भाई, इन्द्रियां । मैंदा=वारीक आटे को छानकर निकाली जाती है । छांणि=छान

कबीर कहते हैं कि प्रभु भक्ति का धागा यदि टूट जाता है तो उसे जोड़ अवश्य लेना चाहिए क्योंकि यह टूटने का क्रम तो चलता ही रहे वह प्रभु पुनः प्राप्त नहीं हो सकते । उलझा हुआ सूत पिंडी के रूप में परि किया जा सकता,चाहे आप उसे मुहल्ले के सब व्यक्तियों से करा देखिये । यदि वासना रूप वायु के चलने पर प्रभु-भक्ति का तार टूट जाय तो मेरा क्या कर्म-सूत के सुलझ जाने पर सब गांठें, मन के सन्ताप, दूर हो जाते हैं प्रकार प्राणों में धैर्य का संचार होता है । पांचों इन्द्रियां जब अपने वश में हैं, तभी यह कर्म रूपी सूत पान (जिसके ऊपर सूत लपेटा जाता है) पर है । कबीर कहते हैं कि इस कर्म सूत को कलफ लगाने के लिए जो प्रयत्न वार की छनी मैंदा लगाई और थोड़ा सा स्नेह (तेल) चुपड़कर कर्म-सूत से जो सुन्दर वस्त्र बुना उसे बुनते थोड़ी भी तो देर न लगी ।

विशेष—१. कबीर ने यहाँ भक्ति को जुलाहे कर्म से सम्बन्धित द्वारा स्पष्ट किया है, इससे उनकी उपमा और रूपक योजना में कुछ दुरूह आ गयी है । किन्तु तदि उसे जुलाहे-कर्म-ज्ञान के सन्दर्भ में देखें तो स्पष्ट है ।

२. उपमा, रूपक, रूपकातिशयोक्ति आदि अलंकार स्वाभाविक में आ गये हैं ।

ऐसा औसर बहुरि न आव, रांम मिल पूरा जन पाव॥
जनम अनेक गया अरू आया, की बेगारि न भाड़ा पाया।
भेष अनेक एकधूं कैसा, नांनां रूप धरै नट जैसा॥
दांन एक मांगों कवलाकंत, कबीर के दुख हरन अनंत॥

औसर=अवसर । पूरा जन=पूर्ण पुरुष, ब्रह्म । भाड़ा= कवलाकंत=कमलाकान्त, लक्ष्मीपति विष्णु, ब्रह्म ।

कबीर कहते हैं कि यह मनुष्य जन्म जैसा सुअवसर फिर प्राप्त नहीं है अतः भक्ति द्वारा अपना लोक बना लो जिससे पूर्णपुरुष नारायण की प्राप्ति

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

...नाना योनियों में जन्म गंवा-गंवा कर आया है किन्तु सबमें तूने व्यर्थ कर्म ...जिनका तुझे कोई फल नहीं प्राप्त होगा । हे प्रभु ! उन विभिन्न जन्मों में ...वेष नट के समान धारण किये हैं, भाव यह है कि भिन्न-भिन्न योनियों में ...न स्वरूप प्राप्त किया है। कबीर कहते हैं कि हे लक्ष्मीकान्त ! हे प्रभु ! मैं एक ही वरदान मांगता हूं, वह यह कि आप मेरे अनन्त दुखों को दूर ...ए।

विशेष—१. कबीर का पुनर्जन्म में दृढ़ विश्वास ऐसे ही पदों से प्रकट ...है।

२. कबीर पर वैष्णव प्रभाव की घोषणा यत्र-तत्र प्रभु के लिए आये यह वैष्णव ...करते हैं।

हरि जननीं मैं बालिक तेरा,
काहे न औगुंण बकसहु मेरा ।।टेक।।
सुत अपराध करै दिन केते, जननीं कै चित रहैं न तेते ।
कर गहि केस करै जौ घाता, तऊ न हेत उतारै माता ।
कहै कबीर एक बुधि विचारी, बालक दुखी दुखी महतारी ।।१११।।

हे प्रभु आप माता हैं और मैं तुम्हारा अबोध बालक हूं । तुम मेरे अवगुणों, ...क्षमा क्यों नहीं कर देते ? बालक दिवस में न जाने कितने अपराध करता है ...माता के हृदय में उनमें से एक भी नहीं रह जाता । माता का हाथ पकड़ कर ...बाल आदि खींचकर बालक उसे दुख पहुंचाता है किन्तु तो भी माता उस ...स्नेह छाया नहीं हटाती । कबीर बुद्धिपूर्वक विचार कर एक बात कहता है ...कि यदि पुत्र दुखी रहता है तो माता भी उसके दुख से व्यथित रहती है। ...है कि प्रभु मैं दुखी हूं, आप मेरे दुख से व्यथित हो मेरा दुख हर ...।

विशेष—१. कबीर के सम्बन्ध भावना के ये पद उन्हें ईश्वर के बहुत समीप ...र वैष्णव रहस्यवादी भक्तों के साथ-साथ सूर, तुलसी जैसे भक्तों की कोटि ...में देते हैं।

२. प्रभु से ऐसे ही निकट सम्बन्ध स्थापित कर हृदय निवेदन की प्रथा ...न है, तुलना कीजिए—

"त्वमेव माता च पिता त्वमेव । त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या दविणं त्वमेव । त्वमेव सर्वं मम देव देव ।।"

गोब्यंदे तुम्ह थैं डरपौं भारी ।
सरणाई आयौ क्यूं गहिये, यहु कौंन बात तुम्हारी ।।टेक।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

धूप दाझतैं छांह तकाई, मति तरवर सचपाऊं।
तरवर मांहैं ज्वाला निकसै, तौ क्या लेइ बुझाऊं॥
जे बन जलै त जल कूं धावै, मति जल सीतल होई।
जलही मांहि अगनि जे निकसै, और न दूजा कोई॥
तारण तिरण तिरण तूं तारण, और न दूजा जांनौं।
कहै कबीर सरनांई आयौं, आंन देव नहीं मांनौं॥११॥

गोब्यंदे=गोविन्द, प्रभु। दाझतैं=जलते हुए, झुलसते हुए। तकाई=
तरवर=तरुवर। सचपाऊं=शान्ति पाऊं। सरनांई=शरण में।

कबीर कहते हैं कि हे प्रभु! मुझे आपसे बड़ा भय लगता है, इसीलिए शरण में आया हूं। किन्तु आप शरण में आये हुए की भी रक्षा नहीं कर रहे आपका कैसा न्याय है? संसार के माया-मोह की अग्नि में जलते हुए मैंने शीतल भक्ति का सहारा तका किन्तु अब उस प्रभु, जिस तरुवर की भक्ति छा की शरण में आकर भी शान्ति लाभ नहीं हो रहा है। यदि तरु-से ही अग्नि लगे तो मैं उस पाप-ताप को कैसे शान्त करूंगा? यदि संसार रूपी वन ज और मैं प्रभु रूप शीतल जल की ओर आऊं किन्तु यदि वह जल भी शीतल तो मेरी क्या दशा होगी? कबीर कहते हैं कि हे प्रभु। आप ही मेरे उद्धारक संसार-सागर से पार उतारने वाले हैं, मेरा सहायक और कोई नहीं हैं। हे प्र तो एकमात्र आपकी ही शरण में आ गया हूं, किसी अन्य आराध्य को नहीं जा मेरे एकमात्र आधार आप ही हैं, अतः मेरी रक्षा कीजिए।

मैं गुलांम मोहि बेचि गुसांईं, तन मन धन मेरा रांमजी कै तांईं।
आंनि कबीरा हाटि उतारा, सोई गाहक सोई बेचनहारा॥
बेचै रांम तौ राखै कौंन, राखै रांम तौ बेचै कौंन।
कहै कबीर मैं तन मन जार्‌या, साहिब अपना छिन न बिसार्‌या।

कबीर कहते हैं कि हे प्रभु! मैं तुम्हारा दास हूं, मेरा तन, मन, धन आपके लिए ही है अतः आप मुझे चाहें तो बेच दें। उस स्वामी ने कबीर को इस संसार रूपी बाजार में रख दिया है—वस्तुतः वही मेरा बेचने वाला है और क्रय करने वाला यदि मुझे राम बेच देना चाहें तो फिर भला कौन ऐसा है जो संसार में रख सके एवं यदि वह रखना चाहें तो फिर भला बेच कौन सकता है। कबीर कहते हैं कि मैंने प्रभु के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया है, अतः मेरा प्रभ के लिए ही है।

अब मोहि राम भरोसा तेरा, और कौंन का करौं निहोरा॥टेक॥
जाके रांम सरीखा साहिब भाई, सो क्यूं अनंत पुकारन जाई।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

...जा सिरि तीनि लोक कौ भारा, सो क्यूं न करै जन की प्रतिपारा।
कहै कबीर सेवौ बनवारी, सींचौ पेड़ पीवैं सब डारी।।११४।।

कबीर कहते हैं कि हे प्रभु ! अब मुझे केवल मात्र आपका ही आश्रय है, अब ...स की वन्दना आपके अतिरिक्त करूं? जिसके पूर्ण समर्थ राम जैसे स्वामी हैं उसे ...त्र किसी और की वन्दना करने से क्या लाभ जिस प्रभु राम पर तीनों लोकों के ...न-पोषण का भार है, वह भला अपने भक्त की हितचिन्ता क्यों न करे। ...र कहते हैं कि प्रभु की भक्ति करने में ही मंगल है। जिस प्रकार पेड़ की जड़ को ...ने से समस्त शाखाएं स्वयं जल प्राप्त कर लेती हैं उसी भांति प्रभु-भक्ति से ...स्त कामनाएं स्वयं सफलीभूत हो जाती हैं।

जियरा मेरा फिरै उदास।
रांम बिन निकसि न जाई सास, अजहूं कौंन आस।।टेक।।
जहां जहां जाऊं रांम मिलावै न कोई, कहौ संतौ कैसें जीवन होई।
जरै सरीर यहु तन कोई न बुझावै, अनल दहै निस नींद न आवै।।
चंदन घसि घसि अंग लगांऊं, रांम बिनां दारन दुख पाऊं।
सत संगति मति मन करि धीरा, सहज जांनि रांमहि भज कबीरा।।११५।।

कबीर कहते हैं कि मेरा मन संसार से उदास रहता है। मुझे शंका है कि ...हीं बिना राम भक्ति के ही यह जीवन समाप्त न हो जाय। हे साधुओं ! मुझे ...ताओ कि मैं कैसे जीवन धारण करूं, जहां-जहां भी प्रभु दर्शन की आशा में जाता ...मुझे कोई भी प्रभु से साक्षात्कार नहीं कराता। मेरा यह शरीर रात-दिन पापाग्नि ...दग्ध होता रहता है किन्तु कोई इसका ताप नहीं मिटाता। शरीर की शान्ति के ...लिए चाहे मैं शरीर पर घिस-घिस कर चन्दन लगाऊं किन्तु बिना प्रभु-भक्ति के मैं ...दुखों की दारुण व्यथा से व्यथित हो रहा हूं। कबीर कहते हैं कि हे मन ! तू साधु-...संगति करता हुआ राम भक्ति में अपनी चित्तवृत्तियां केन्द्रित कर।

रांम कहौ न अजहूँ केते दिना, जब ह्वै है प्रांन प्रभू तुम्ह लीनां।।टेक।।
...भौ भ्रमत अनेक जन्म गया, तुम्ह दरसन गोव्यंद छिन न भया।
भ्रम्य भूलि पर्‌यौ भव सागर, कछू न बसाइ बसोधरा।।
कहै कबीर दुखभंजनां, करौ दया दुरत निकंदनां।।११६।।

कबीर कहते हैं कि हे मन ! तुझे कितने दिन इस संसार में व्यतीत हो गये ...तु आज तक तूने प्रभु का नाम उच्चारण नहीं किया। अब वह समय आ पहुंचा है ...ब ईश्वर इस जीवन को समाप्त कर देगा। इस जग के भ्रम में पड़े हुए अनेक जन्म ...व्यतीत हो गये किन्तु प्रभु दर्शन एक क्षण के लिए भी न हो सका। इस भ्रम में ...भ्रमित हो कर ही मैं संसार समुद्र में पड़ा हूं, इससे निकलने के लिए प्रभु मेरा कोई

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

वश नहीं चलता। कबीर कहते हैं कि हे दुख भञ्जन प्रभु! अब एक दम इस ... से पार निकाल दो।

हरि मेरा पीव माई, हरि मेरा पीव, हरि बिन रहि न सकै मेरा जीव ॥टेक॥
हरि मेरा पीव मैं हरि की बहुरिया, रांम बड़े मैं छुटक लहुरिया।
किया स्यंगार मिलन कै तांई, काहे न मिलौ राजा रांम गुसांई॥
अब की बेर मिलन जो पांऊं, कहै कबीर भौ-जलि नहीं आंऊं॥११...॥

कबीर कहते हैं कि हे सखि! सुन। प्रभु मेरे प्रियतम हैं, उनके अभाव ... मेरे प्राण पल भर भी नहीं रह सकते। वे मेरे पति हैं तो मैं उनकी पत्नी। वे महान् हैं मैं क्षुद्र। मैंने प्रेम पथ पर अग्रसर हो शृंगार किया किन्तु राम प्रियतम न ... क्यों नहीं मिल रहे हैं? कबीर कहते हैं कि उस प्रियतम से यदि अबकी बार मि... हो गया तो फिर मैं इस संसार-जल में डूबने के लिए नहीं आऊंगा।

रांम बान अन्ययाले तीर, जाहि लागे सो जांनैं पीर ॥टेक॥
तन मन खोजौं चोट न पांऊं, ओषद मूली कहां घसि लांऊं।
एकहीं रूप दीसै सब नारी, नां जानौं को पीयहि पियारी॥
कहै कबीर जा मस्तकि भाग, नां जांनूं काहू देइ सुहाग॥११८॥

ओषद=औषध। मूली=मूलि। दीसै=दृष्टिगत।

कबीर कहते हैं कि राम भक्ति का बाण लगा है, इसकी वेदना को वही ... सकता है जिसको स्वयं यह बाण लगा है। इस बाण का प्रहार देखने के लिए मैं तन मन को खोजता हूं किन्तु कहीं घाव दृष्टिगत नहीं होता वैसे वेदना शरीर के ... प्रत्यंग में है। इसलिए यदि कोई उपचार भी करूं तो समझ में नहीं आता कि औषध किस स्थान पर लगाऊं। संसार में जितनी भी आत्माएं हैं वे सब एक ही रूप में दृष्टि-गोचर होती हैं किन्तु यह कहना बड़ा कठिन है कि इनमें प्रभु को यह प्रिय हों। कबीर कहते हैं कि ज्ञात नहीं किस पुरुष का ऐसा भाग्य होगा जिसे वह प्रियतम अचल सौभाग्य प्रदान कर अंगीकार करेंगे।

आस नहीं पूरिया रे, रांम बिन को कर्म काटणहार ॥टेक॥
जद सर जल परिपूरता, चात्रिग चितह उदास।
मेरी विषम कर्म गति ह्वै परी, ताथैं पियास पियास॥
सिध मिलै सुधि नां मिलै, मिलै मिलावै सोइ।
सूर सिध जब भेटिये, तब दुख न ब्यापै कोइ॥
बोछै जलि जैसें मछिका, उदर न भरई नीर।
त्यूं तुम्ह कारनि केसवा, जन ताला बेली कबीर॥११९॥

कबीर कहते हैं कि प्रभु के बिना कोई न तो आशा को पूर्ण कर सकता और न इस भव-बन्धन का ही विदूरित कर सकता है। जिस प्रकार ...

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

...के परिपूर्ण रहने पर भी चातक की प्यास नहीं मिटती उसी भांति ...भी गति बड़ी विचित्र हो गई है, इसीलिए इस संसार के आनन्दों ...मेरी तृप्ति नहीं हो रही है। साधु इत्यादि सज्जन-गण तो मिल जाते हैं किन्तु ...प्रभुदर्शन प्राप्त भक्त नहीं मिलता जो प्रभु से मिला दे। जब ऐसा व्यक्ति मिल ...तब कोई दुख शेष नहीं रह जायगा। पानी में पड़े हुए भी जैसे ...का पेट जल से ही नहीं भरता (वायु-भक्षण भी करती है) उसी भांति ...कहते हैं कि इस संसार के आनन्दों में भी आपके बिना मेरी तृप्ति सम्भव ...हीं।

रांम बिन तन की ताप न जाई, जल मैं अगनि उठी अधिकाई ।।टेक।।
तुम्ह जलनिधि मैं जल कर मीनां, जल मैं रहौं जलहिं बिन षीनां ।।
तुम्ह प्यंजरा मैं सुवनां तोरा, दरसन देहु भाग वड़ मोरा।
तुम्ह सतगुर मैं नौतम चेला, कहै कबीर रांम रमूं अकेला ।।१२०।।

कबीर कहते हैं कि इस संसार में रहते हुए तो इस शरीर के ताप और भी बढ़ते ...हैं। बिना प्रभु के इन तापों का शमन सम्भव नहीं। यदि प्रभु आप समुद्र हैं मैं जल पर ही जीवन धारण करने वाली मछली हूं किन्तु विडम्बना है कि मैं अन्तर्यामी प्रभु के पास रहते हुए भी उनके दर्शन के लिए तड़पती हूं। यदि आप ...पिंजड़े हैं तो मैं उसमें आबद्ध तोता हूं जिसकी सीमाएं वह पिंजड़ा ही है। हे प्रभु ! ...यदि आप दर्शन दें तो सह मेरा वड़ा भाग्य होगा।। यदि आप सद्गुरु हैं तो मैं आपका आज्ञाकारी शिष्य हूं। कबीर कहते हैं कि वह प्रभु एक ही है और सर्वत्र ...रमण करता है।

गोव्यंदा गुंण गाईये रे, ताथैं भाई पाईये परम निधांन ।।टेक।।
ऊंकारे जग ऊपजै, बिकारे जग जाइ।
अनहद बेन बजाइ करि, रह्या गगन मठ छाइ ।।
झूठै जग डहकाइया रे, क्या जीवण की आस।
रांम रसांइण जिनि पीया तिनिकौं बहुरि न लागी रे पियास ।।
अरध षिन जीवन भला, भगवंत भगति सहेत।
कोटि कलप जीवन ब्रिथा, नांहिन हरि सूं हेत ।।
संपति देखि न हरषिये, बिपति देषि न रोइ।
ज्यूं सपति त्यूं बिपति है, करता करै सु होइ ।।
सरग लोक न बांछिये, डरिये न नरक निवास।
हूंणां था सो ह्वै रह्या, मनहु न कीजै झूठी आस ।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

क्या जप क्या तप संजमां, क्या तीरथ ब्रत अस्नान।
जो पैं जुगति न जांनियै, भाव भगति भगवान।
सुंनि मंडल मैं सोधि लै, परम जोति परकास।
तहूवां रूप न रेष है, फूलनि फूल्यौ रे अकास।
कहै कबीर हरि गुंण गाइ लै, सत संगति रिदा मंझारि।
जो सेवग सेवा करै, ता संगि रमैं रे मुरारि ॥१२१॥

कवीर कहते हैं कि हे मनुष्य ! तू प्रभु का गुणगान कर, इसी उपाय से परमनिधान ब्रह्म की प्राप्ति सम्भव है। 'ओ३म्कार' का स्मरण करने से संसार है और पाप-कर्मों से तो इस लोक में भी जीवन नष्ट हो जाता है। वह ब्रह्म अनहद नाद उत्पन्न कर शून्य में रम रहा है। समस्त संसार जीवन की आशा में वृथा जग के धोखे में पड़ा हुआ है। जिन्होंने राम-भक्ति का अमूल्य रस पान कर लिया उन्हें फिर संसार-रसों की प्यास शेष नहीं रह जाती।

यदि प्रभु से प्रेम नहीं है तो कोटि-कोटि युगों का दीर्घ जीवन वृथा और प्रभु भक्ति-युक्त एक क्षण का जीवन भी श्रेष्ठ है। सम्पत्ति-सुख को देखकर हर्षित नहीं होना चाहिए और न विपत्ति को देखकर दुखित होना चाहिए। स्वर्ग लोक की इच्छा करना और नरक से भयभीत होना भी उचित नहीं है क्योंकि मन में इन मिथ्या आशा-आकाँक्षाओं को रखने से क्या लाभ ? जो होना है वह तो होकर ही रहेगा—

"सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।" २।३८ (गीता)

× × ×

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि ॥" २।४७ (गीता)

प्रभु जप, तप, संयम, तीर्थ, व्रत, स्नान आदि विविध कर्मों से प्राप्त नहीं होते जब तक प्रेम—भक्ति सहित उनसे हृदय-निवेदन नहीं किया जाता तब तक सब व्यर्थ है।

हे साधक! तू उस अलख निरंजन ज्योतिष्मान् को शून्यमण्डल, ब्रह्मरन्ध्र, में खोज ले। वहां उसका न तो कोई आकार है और न वर्ण, बिना वृन्त के ही पुष्प के समान वह वहां विकास पा रहा है। कबीर कहते हैं कि हे मानव! तू प्रभु का गुणगान कर साधु संगति कर, क्योंकि इसी से प्रभुप्राप्ति होगी। जो प्रभु की सेवा प्रेमाभक्ति द्वारा करता है उसे उनका नैकट्य अवश्य ही प्राप्त होता है।

विशेष—अनहदबेन=अनहदवेणु, अनहद नाद से तात्पर्य।
गगन मठ=शून्यस्थान, ब्रह्मरन्ध्र, सहस्रदल कमल से तात्पर्य।
सुंनि मण्डल=शून्यमण्डल, " " "।
परम जोति परकाश=नाथ पंथी योग साधना में ब्रह्म को परम ज्योतिस्वरूप निरंजन, निराकार माना गया है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मन रे हरि भजि हरि भजि हरि भजि भाई ।
जा दिन तेरो कोई नांहीं, ता दिन रांम सहाई ।।टेक।।
तंत न जानूं मंत न जांनूं, जांनूं सुंदर काया ।
मीर मलिक छत्रपति राजा, ते भी खाये माया ।।
बेद न जांनूं भेद न जांनूं, जानं एकहि रांमां ।
पंडित दिसि पछिवारा कीन्हां, मुख कीन्हौं जित नांमां ।।
राजा अंबरीक कै कारणि, चक्र सुदरसन जारै ।
दास कबीर कौ ठाकुर ऐसौ, भगत की सरन ऊबारै ।।१२२।।

कबीर कहते हैं कि हे मन ! तू सर्वदा प्रभु का स्मरण कर । जब मनुष्य मृत्यु को प्राप्त होगा तब उसका राम के अतिरिक्त और कोई सहायक नहीं होगा । कबीर आगे कहते हैं कि मैं तन्त्र, मन्त्र— किसी भी पूजा-विधान से जानकारी नहीं रखता, केवल रूप-सौन्दर्य में भटका रहता हूं । यह शरीर नाशवान् है— सबको माया नष्ट कर देती है मीर, राव, राजा, छत्रपति सब ही नष्ट हो जाते हैं । हे प्रभु ! मैं वेदादि शास्त्रों के ज्ञान से परिचित नहीं हूं, मैं तो एकमात्र आपको ही जानता हूं । पण्डित लोग व्यर्थ के विधि-विधानों में पड़े रहते हैं किन्तु मैं तो नामस्मरण में ही विश्वास रखता हूं । कबीर के प्रभु बड़े दयालु हैं, वे भक्त को दुख से उबारकर शरण में ले लेते है, इन्होंने राजा अम्बरीष की दुर्वासा से सुदर्शन चक्र द्वारा बचाकर रक्षा की ।

विशेष=१ बडी विचित्र बात है कि कबीर प्रभु को वैष्णवों के अवतार न मानते हुए भी अम्बरीष आदि की कथा के साथ सम्बद्ध करते हैं किन्तु उनका वास्तविक अर्थ यही लक्षित होता है कि विष्णु, राम, कृष्ण, आदि को वे पूर्ण ब्रह्म के रूप में स्वीकार करते हैं । दूसरे शब्दों में यदि यह कहें कि अपने पूर्ण ब्रह्म के लिए उन्होंने इन वैष्णव नामों को स्वीकार कर लिया था तो अत्युक्ति न होगी । ऐसा करने से उनका अलख निरंजन ब्रह्म जनसाधारण के स्तर पर उतरकर सर्वग्राह्य बन जाता है ।

२. अम्बरीष—"वैवस्वत मनु के पौत्र महाराज नाभाग के पुत्र थे । यह परम प्रसिद्ध वैष्णव भक्त थे, इन्हीं के कारण दुर्वासा ऋषि का विष्णु के चक्र ने पीछा किया था ।"—कबीर बीजक ।

रांम भणि रांम भणि रांम चिंतामणि, भाग बड़े पायौ छाड़ै जिनि ।।टेक।।
असंत संगति जिनि जाइ रे भुलाइ, साध संगति मिलि हरि गुंण गाइ ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

क्या जप क्या तप संजमां, क्या तीरथ व्रत अस्नान।
जो पैं जुगति न जांनियै, भाव भगति भगवान।
सुंनि मंडल मैं सोधि लै, परम जोति परकास।
तहूवां रूप न रेष है, फूलनि फूल्यौ रे अकास।
कहै कबीर हरि गुंण गाइ लै, सत संगति रिदा मंझारि।
जो सेवग सेवा करै, ता संगि रमैं रे मुरारि ॥१२१॥

कबीर कहते हैं कि हे मनुष्य! तू प्रभु का गुणगान कर, इसी उपाय से परमनिधान ब्रह्म की प्राप्ति सम्भव है। 'ओ३म्कार' का स्मरण करने से संसार ... है और पाप-कर्मों से तो इस लोक में भी जीवन नष्ट हो जाता है। वह ब्रह्म अनहद नाद उत्पन्न कर शून्य में रम रहा है। समस्त संसार जीवन की आशा में वृथा जग के धोखे में पड़ा हुआ है। जिन्होंने राम-भक्ति का अमूल्य रस पान कर लिया उन्हें फिर संसार-रसों की प्यास शेष नहीं रह जाती।

यदि प्रभु से प्रेम नहीं है तो कोटि-कोटि युगों का दीर्घ जीवन वृथा और प्रभु भक्ति-युक्त एक क्षण का जीवन भी श्रेष्ठ है। सम्पत्ति-सुख को देखकर हर्षित नहीं होना चाहिए और न विपत्ति को देखकर दुःखित होना चाहिए। स्वर्ग लोक की इच्छा करना और नरक से भयभीत होना भी उचित नहीं है क्योंकि मन में इन मिथ्या आशा-आकाँक्षाओं को रखने से क्या लाभ? जो होना है वह तो होकर ही रहेगा—

"सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।" २।३८ (गीता)

× × ×

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि ॥" २।४७ (गीता)

प्रभु जप, तप, संयम, तीर्थ, व्रत, स्नान आदि विविध कर्मों से प्राप्त नहीं होते जब तक प्रेम—भक्ति सहित उनसे हृदय-निवेदन नहीं किया जाता तब तक सब व्यर्थ है।

हे साधक! तू उस अलख निरंजन ज्योतिष्मान् को शून्यमण्डल, ब्रह्मरन्ध्र, में खोज ले। वहां उसका न तो कोई आकार है और न वर्ण, बिना वृन्त के ही पुष्प के समान वह वहां विकास पा रहा है। कबीर कहते हैं कि हे मानव! तू प्रभु का गुणगान कर साधु संगति कर, क्योंकि इसी से प्रभुप्राप्ति होगी। जो प्रभु की सेवा प्रेमाभक्ति द्वारा करता है उसे उनका नैकट्य अवश्य ही प्राप्त होता है।

विशेष—अनहदबेन=अनहदवेणु, अनहद नाद से तात्पर्य।
गगन मठ=शून्यस्थान, ब्रह्मरन्ध्र, सहस्रदल कमल से तात्पर्य।
सुंनि मण्डल=शून्यमण्डल, ,, ,, ,, ।
परम जोति परकाश=नाथ पंथी योग साधना में ब्रह्म को परम ज्योतिस्वरूप निरंजन, निराकार माना गया है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मन रे हरि भजि हरि भजि हरि भजि भाई।
जा दिन तेरो कोई नांहीं, ता दिन रांम सहाई ।।टेक।।
तंत न जानूं मंत न जांनूं, जांनूं सुंदर काया।
मीर मलिक छत्रपति राजा, ते भी खाये माया।।
बेद न जांनूं भेद न जांनूं, जानं एकहि रांमां।
पंडित दिसि पछिवारा कींन्हां, मुख कीन्हौं जित नांमां।।
राजा अंबरीक कै कारणि, चक्र सुदरसन जारै।
दास कबीर कौ ठाकुर ऐसौ, भगत की सरन ऊबारै।।१२२।।

कबीर कहते हैं कि हे मन ! तू सर्वदा प्रभु का स्मरण कर। जब मनुष्य मृत्यु को प्राप्त होगा तब उसका राम के अतिरिक्त और कोई सहायक नहीं होगा। कबीर आगे कहते हैं कि मैं तन्त्र, मन्त्र— किसी भी पूजा-विधान से जानकारी नहीं रखता, केवल रूप-सौन्दर्य में भटका रहता हूं। यह शरीर नाशवान् है— सबको माया नष्ट कर देती है मीर, राव, राजा, छत्रपति सब ही नष्ट हो जाते हैं। हे प्रभु ! मैं वेदादि शास्त्रों के ज्ञान से परिचित नहीं हूं, मैं तो एकमात्र आपको ही जानता हूं। पण्डित लोग व्यर्थ के विधि-विधानों में पड़े रहते हैं किन्तु मैं तो नामस्मरण में ही विश्वास रखता हूं। कबीर के प्रभु बड़े दयालु हैं, वे भक्त को दुख से उबारकर शरण में ले लेते है, इन्होंने राजा अम्बरीष की दुर्वासा से सुदर्शन चक्र द्वारा बचाकर रक्षा की।

विशेष=१ बडी विचित्र बात है कि कबीर प्रभु को वैष्णवों के अवतार न मानते हुए भी अम्बरीष आदि की कथा के साथ सम्बद्ध करते हैं किन्तु उनका वास्तविक अर्थ यही लक्षित होता है कि विष्णु, राम, कृष्ण, आदि को वे पूर्ण ब्रह्म के रूप में स्वीकार करते हैं। दूसरे शब्दों में यदि यह कहें कि अपने पूर्ण ब्रह्म के लिए उन्होंने इन वैष्णव नामों को स्वीकार कर लिया था तो अत्युक्ति न होगी। ऐसा करने से उनका अलख निरंजन ब्रह्म जनसाधारण के स्तर पर उतरकर सर्वग्राह्य बन जाता है।

२. अम्बरीष—"वैवस्वत मनु के पौत्र महाराज नाभाग के पुत्र थे। यह परम प्रसिद्ध वैष्णव भक्त थे, इन्हीं के कारण दुर्वासा ऋषि का विष्णु के चक्र ने पीछा किया था।"—कबीर बीजक।

रांम भणि रांम भणि रांम चिंतामणि, भाग बड़े पायौ छाड़ै जिनि ।।टेक।।
असंत संगति जिनि जाइ रे भुलाइ, साध संगति मिलि हरि गुंण गाइ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

रिदा कबल मैं राखि लुकाइ, प्रेम गांठि दे ज्यूं छूटि न जाइ॥
अठ सिधि नव निधि नांव मंझारि, कहै कबीर भजि चरन मुरारि ॥१२३॥

कबीर कहते हैं कि हे मनुष्य ! तू राम रूप चिंतामणि का भजन कर। उन व्यक्तियों के भाग्य बड़े महान हैं जो इस संसार से मुक्त हो गये हैं। वे नर भी भाग्यशाली हैं जो दुर्जनों की संगति छोड़कर साधु-संगति या प्रभु गुणगान करते हैं। कबीर कहते हैं कि वह ब्रह्म शून्य स्थान में छिपा हुआ वैठा है। उसे प्रेम भक्ति के द्वारा वहां रोके रखो कभी अन्यत्र न चला जाय। कबीर कहते हैं कि आठों सिद्धि, नवों निधि का सुख प्रभु नाम में ही है अत: उन्हीं के चरण कमलों का ध्यान करो।

विशेष—१. चिंतामणि एक मणि विशेष जिसकी प्राप्ति से समस्त कामनाएं तृप्त हो जाती हैं।

२. **आठ सिद्धि**—अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व।

३. **नवनिधि**—पद्म, महापद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील, वर्च।

४. **कहै कबीर भजि चरण मुरारि**—कबीर निराकार ईश्वर के उपासक हैं किन्तु उन पर वैष्णव प्रभाव इतना प्रबल है कि वे उस निराकार को कहीं-कहीं साकार वना देते हैं। निराकार के 'चरन' भजने की कैसी संगति।

निरमल निरमल रांम गुंण गावै, सो भगता मेरे मनि भावै ॥टेक॥
जे जन लेहिं रांम कौ नांउं, ताकी मैं बलिहारी जाउं।
जिहिं घटि रांम रहे भरपूरि, ताकी मैं चरनन की धूरि॥
जाति जुलाहा मति कौ धीर, हरषि गुंण रमैं कबीर ॥१२४॥

कबीर कहते हैं कि जो भक्त निर्मल-मन होकर राम के गुणों का गान करता है वह मेरे मन को अच्छा लगता है। जो भक्त प्रभु का स्मरण करता है मैं उसकी बलि-बलि जाता हूं। वैसे मैं जुलाहे जैसी पिछड़ी जाति का हूं किन्तु भक्ति पथ में बड़ा धैर्यवान् हूँ, मैं हर्षित हो कर राम का गुणगान करता हूं।

जा नरि रांम भगति नहीं साधी, सो जनमत काहे न मूवौ अपराधी ॥टेक॥
गरभ मुचे मृचि भई किन बांझ, सूकर रूप फिरै कलि मांझ।
जिहि कुलि पुत्र न ग्यांन बिचारी, वाकी बिधवा काहे न भई महतारी॥
कहै कबीर नर सुंदर सरूप, रांम भगति बिन कुचल करूप ॥१२५॥

कबीर कहते हैं कि जिसने प्रभु भजन नहीं किया वह अपराधी, पापी जन्म लेते ही क्यों न मर गया। वह तो मनुष्य के रूप में सुअर जैसा इस कलियुग में रह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

...हा है, वह गर्भ में ही क्यों न समाप्त हो गया, उसकी मां बांझ क्यों न हो गई। ...जिस परिवार में पुत्र-ज्ञान सम्पन्न नहीं हुआ उसकी जनना उसे जन्म देने से पूर्व विधवा ...क्यों नहीं हो गई। कबीर कहते हैं कि चाहे मनुष्य कितना ही रूपवान् क्यों न हो किन्तु ...प्रभु भक्ति के बिना वह दुश्चरित्र और करूप है।

विशेष—पद के भाव की तुलना कीजिए—

"येषां न विद्या न तपो न दानम्, ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मृत्युलोके भुवि भारभूता, मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति ॥"

रांम बिनां ध्रिग ध्रिग नर नारी, कहा तैं आइ कियौ संसारी ॥टेक॥
रज बिनां कैंसौ रजपूत, ग्यांन बिना फोकट अवधूत।
गनिका कौ पूत पिता कासौं कहै, गुर बिन चेला ग्यांन न लहै ॥
कवारी कंन्यां करै स्यंगार, सोभ न पावै बिन भरतार।
कहै कबीर हूं कहता डरूं, सुषदेव कहै तौ मैं क्या करौं ॥१२६॥

कबीर कहते हैं कि वे नर-नारी जिन्होंने संसार में आकर प्रभु को नाम नहीं लिया धिक्कारने योग्य हैं। जिस भांति वैभव के बिना, राजरूपी ठाट के बिना राजपुत्र अथवा राजपूत का कोई अर्थ नहीं, उसी प्रकार बिना ज्ञान के योगी किस काम का। सद्गुरु के बिना शिष्य ज्ञान लाभ वैसे ही नहीं कर सकता जैसे वेश्या-पुत्र यह कहने का सौभाग्य प्राप्त नहीं कर पाता कि वह अमुक का पुत्र है। कबीर कहते हैं कि शुकदेव आदि प्रतिष्ठित मुनिगण कहते हैं कि बिना गुरु के और प्रभु-भक्ति के मनुष्य वैसे ही है जैसे कुमारी कन्या बिना पति के व्यर्थ ही शृंगार करती है।

विशेष—सुखदेव—इन्हें 'शुकदेव' भी कहा जाता है। "पुराण में कहा है कि व्यास जी के पुत्र शुकदेव जी माया के डर से बारह वर्ष तक माता के गर्भ में रहे थे। व्यास जी के बहुत समझाने पर बाहर आए, पर जन्मते ही वन को चल दिये, व्यास जी पुत्र मोह में विरह कातर होकर पीछे-पीछे चले। मार्ग में कुछ ब्रह्मचारी श्री कृष्ण सम्बन्धी आधा श्लोक पढ़ रहे थे उसे सुनकर शुकदेव जी को पूरा श्लोक जानने की इच्छा हुई। व्यास जी ने कहा मैंने अठारह हजार श्लोक बनाए हैं। भगवान् व्यास ने पुत्र का सम्पूर्ण भागवत पढ़ाया और कहा बिना गुरु के ज्ञान अधूरा रहता है। तुम महाराजा जनक से अध्यात्मविद्या प्राप्त कर लो। शुकदेव जी ने पिता की यह आज्ञा स्वीकार करली और राजा जनक के पास जाकर ब्रह्म विद्या प्राप्त की।"—
कबीर बीजक !

जरि जाव ऐसा जीवनां, राजा रांम सूं प्रीति न होई।
जन्म अमोलिक जात है, चेति न देखै कोई ॥टेक॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

मधुमाषी धन संग्रहै, मधुवा मधु ले जाई रे।
गयौ गयौ धंन मूंढ जनां, फिरि पीछैं पछिताई रे॥
बिषिया सुख कै कारनैं, जाइ गनिका सूं प्रीति लगाई।
अंधै आगि न सूझई, पढ़ि पढ़ि लोग बुझाई॥
एक जनम कै कारणैं, कत पूजौ देव सहंसौ रे।
काहे न पूजौ रांम जी, जाकौ भगत महेसौ रे॥
कहै कबीर चित चंचला, सुनहू मूंढ मति मोरी।
बिषिया फिरि फिरि आवई, राजा रांम न मिले बहोरी॥१२७॥

अमोलिक=अमूल्य। चेति=सावधान हो। मधुमाषी=मधु मक्खी। मधुवा=शहद एकत्र करने वाला। गनिका=वेश्या। सहंसौ=सहस्र। महेसौ=शिव।

कबीर कहते हैं कि ऐसा जीवन, जिसमें प्रभु से प्रेम न हो समाप्त हो जाय। यह अमूल्य जन्म प्रभु भक्ति बिना व्यर्थ व्यतीत हुआ जा रहा है किन्तु कोई सावधान होकर इसका कुपरिणाम नहीं देखते। मधुमक्खी मधु संचित करती है किन्तु उसे मधु-विक्रेता इकट्ठा कर ले जाता है और वह पीछे पछताती रहती है, इसी भांति मनुष्य तू विविध पाप-कर्मों से जो सम्पत्ति संचित कर रहा है उसका उपभोग करने के लिए तू शेष कहाँ रहेगा? इस मनुष्य जन्म के चले जाने पर हे मूर्ख तू पीछे पछतायगा। विषयानन्द प्राप्त करने के लिए ही वेश्या से लोग प्रेम सम्बन्ध स्थापित करते हैं। अज्ञानांध को दूर का दृष्टिगोचर नहीं होता चाहे कोई उन्हें कितना ही शास्त्रसम्मत वचनों द्वारा समझावे। इस एक जन्म के लिए क्यों सहस्रों देवताओं की आराधना करते हो, उस एक परम प्रभु राम को क्यों नहीं भजते जिनका भजन शिव भी करते हैं।

कबीर कहते हैं कि हे चंचल मूर्ख-अज्ञानी मन मेरी बात सुन। यह विषय-वासना का आनन्द तो तुझे अन्य जन्मों में भी प्राप्त हो जायेगा किन्तु फिर प्रभु दर्शन और प्रभु-भक्ति का अवसर प्राप्त नहीं होगा।

रांम न जपहु कहा भयौ अंधा,
रांम बिनां जंम मेलै फंधा ॥टेक॥
सुत दारा का किया पसारा, अंत की बेर भये बटपारा॥
माया ऊपरि माया मांडीं, साथ न चलै षोषरी हांडीं॥
जपौ रांम ज्यूं अंति उबारै, ठाढी बांह कबीर पुकारै॥१२८॥

मेलै=डालेगा। दारा=स्त्री, पत्नी।

कबीर कहते हैं कि हे जीव! तू राम नाम क्यों नहीं जपता, अज्ञानांध क्यों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

...ता है। प्रभु भक्ति बिना काल तुझे कवलित कर जायगा। अब तो तू पुत्र-पत्नी ...के लिए पाप कर्मों का प्रसार कर रहा है किन्तु मृत्यु के समय कोई तेरा साथ ...देगा। माया-मोह का बन्धन मिथ्या है, तेरे साथ तो खाली हांडी तक नहीं ...गी—फिर तू क्यों पाप कर्मों में रत है। हे मनुष्यो राम का भजन करो जो संसार ...र से बाँह पकड़कर उबार लेता है।

डगमग छाड़ि दे मन बौरा।
अब तौ जरें बरें बनि आवै, लीन्हौं हाथ सिंधौरा ।।टेक।।
होइ निसंक मगन ह्वै नाचौ, लोभ मोह भ्रम छाड़ौ।
सूरौ कहा मरन थैं डरपै, सती न संचै भांडौ।।
लोक बेद कुल की मरजादा, इहै गलै मैं पासी।
आधा चलि करि पीछा फिरिहै, ह्वै है जग मैं हासी।।
यहु संसार सकल है मैला, रांम कहैं ते सूचा।
कहै कबीर नाव नहीं छाड़ौं, गिरत परत चढ़ि ऊँचा ।।१२६।।

कबीर कहते हैं कि हे पागल मन! तू यह चंचलता त्याग दे। अब तो मैंने ...थ में प्रभु भक्ति का खांडा ले लिया है, जैसे भी होगा तुझे सीधा कर दूंगा अतः तू स्वयं ही सन्मार्ग पर आ जा। प्रभु-भक्ति में मग्न हो संसार-दुखों से निशंक हो ...नाचते रहो और लोभ, मोह, माया-भ्रम का परित्याग कर दो। शूरवीर मरण से नहीं ...डरते और सती स्त्री मोह में नहीं आती, उसी भांति भक्त प्रभु-भक्ति पथपर अडिग ...है। लोक-शास्त्र एवं कुल-मर्यादा के बन्धन शूर और सती को मर्यादा में रखते हैं। ...किन्तु भक्त इन सब की कोई चिन्ता किए बिना भक्ति मार्ग पर चल दिया है, यदि ...अब वह आधे मार्ग से ही लक्ष्य को प्राप्त किये बिना लौट पड़े तो उसकी संसार ...में हंसी होगी।

कबीर कहते हैं कि यह समस्त संसार मेला है जहां आवागमन लगा ही रहता है जो यहां प्रभु का नाम लेते हैं वही अमर हैं इसीलिए प्रभु नाम का सम्बल नहीं छोड़ना चाहिए, गिरते पड़ते कैसे भी हो प्रभु-मिलन के लिए कटिबद्ध रहना चाहिए।

का सिधि साधि करौं कुछ नाहीं,
रांम रसांइन मेरी रसनां मांहीं ।।टेक।।
नहीं कुछ ग्यांन ध्यान सिधि जोग, ताथैं उपजै नांना रोग।
का बन मैं बसि भये उदास, जे मन नहीं छाड़ै आसा पास।
सब कृत काच हरी हित सार, कहै कबीर तजि जग ब्यौहार ।।१३१।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

सिधि=सिद्ध। रसांइन=रसायन। काच=कच्चे।

कबीर कहते हैं कि मैं प्रभु प्राप्ति के लिए अन्य साधनाएं, विधि-विधान करूं क्योंकि मेरी जिह्वा पर तो ब्रह्म-प्राप्ति का अचूक रसायन राम-नाम किन्तु कोई न तो प्रभु का नाम ले और न अन्य ज्ञान, ध्यान, जप, तप आदि उसमें अनेक दुखों का आविर्भाव होता है। विरक्त हो वन में जाकर संन्यासी का कोई लाभ नहीं यदि मन आशा-तृष्णा का परित्याग न कर सका। कबीर हैं कि यह सब सांसारिक कर्म मिथ्या हैं, इस संसार का कार्य-व्यापार त्याग चाहिए, क्योंकि केवल प्रभु-भक्ति ही सत्य है।

जौ तैं रसनां रांम न कहिबौ,
तौ उपजत बिनसत भरमत रहिबौ ॥ठेक॥
जैसी देखि तरवर की छाया, प्रांन गयें कहु का की माया।
जीवत कछू न कीया प्रवांनां, मूवा मरम को काकर जांनां॥
कंधि काल सुख कोई न सोवै, राजा रंक दोऊ मिलि रोवैं।
हंस सरोवर कँवल सरीरा, रांम रसांइन पीवैं कवीरा ॥१३१॥

कबीर कहते हैं कि हे जिह्वा! यदि तू राम नाम का उच्चारण नहीं तो यह जीवात्मा वारम्वार जन्म-मृत्यु के फेर में पड़ी रहेगी। दूसरे की धनसम्पत्ति का अपने को कोई लाभ नहीं होता। मानव जीवनभर तूने ऐसा कोई कर्म नहीं किन्तु मरते समय तक ज्ञान को कंकर-पत्थर जानता रहा। मृत्यु के समय सुखी कोई नहीं रहता, राजा और भिखारी सब इस समय दुखित होते हैं।

इस सरोवर रूपी शरीर में सहस्रदल कमल से निःसृत अमृत का पान कर रहा है।

का नांगें का बांधे सोंम, जौ नहीं चीन्हसि आतम-रांम ॥टेक॥
नागें फिरें जोग जे होई, बन का मृग मुकति गया कोई।
मूंड मुंडायें जौ सिधि होई, स्वर्ग ही भेड़ न पहुँती कोई॥
ब्यंद राखि जे खेलैं है भाई, तौ षुसरै कौंण परम गति पाई।
पढ़ें गुनें उपजै अहंकारा, अधधर डूबे वार न पारा॥
कहै कबीर सुनहु रे भाई, रांम नांम बिन किन सिधि पाई ॥१३२॥

नांगें=नंगे। चाम=चमड़ा, यहाँ शरीर से तात्पर्य है। चीन्हसि= पहचाना।

कबीर कहते हैं कि योगियों का आडम्बर भर कर चाहे नग्न हो जाओ संसारी बन कर वस्त्र धारण कर लो किन्तु जब तक हृदयस्थित परमात्मा को पहचानो तब तक इस सबका क्या प्रयोजन है, क्या लाभ है? यदि नग्न रहने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

...साधना पूर्ण हो जाय तो वन में जो मृग सर्वदा निर्वस्त्र रहता है मुक्त न हो जाता ? यदि शीश पर केश न रखने मात्र से ही योगी हो जाते तो आये ...मुंडने वाली भेड़ स्वर्ग की अधिकारी न बन गई होती । यदि शरीर की रक्षा ...द्वारा योगसाधना हो जाती तो खुसरो को परमगति किस भांति प्राप्त होती है । ...कहते हैं कि ज्ञान को पढ़ने से उसे आत्मसात् करके भी यदि अहंकार उत्पन्न हो ...तो वह नर संसार समुद्र के अतल में डूब जाता है । राम नाम के बिना तो किसी ...को परमपद प्राप्ति नहीं हुई ।

हरि बिन भरमि बिगूते गंदा ।
जापैं पांऊं आपनपौ छुडावण, ते बीधे बहु फंधा ।।टेक।।
जोगी कहैं जोग सिधि नीकी, और न दूजी भाई ।
लुंचित मुंडित मोनि जटाधर, ऐ जु कहै सिधि पाई ।।
जहां का उपज्या तहां बिलांनां, हरि पद बिसर्या जबहीं ।
पंडित गुनीं सूर कवि दाता, ऐ जु कहैं वड़ हंमहीं ।।
वार पार की खबरि न जांनीं, फिर्यौ सकल बन ऐसैं ।
यहु मन बोहि थके कऊवा ज्यूं, रह्यौ ठग्यौ सौ बैसैं ।।
तजि बांवें दांहिणैं बिकार, हरि पद दिढ करि गहिये ।
कहै कबीर गूंगै गुड़ खाया, बूझै तौ का कहिये ।।१३३।।

भरमि=भ्रम । बीधे=पांधता है । फंधा=फंदा, वन्धन । सिधि=सिद्धि । ...=अच्छी, श्रेष्ठ । लुंचित मुंडित=सिरघुटाये योगी । मोनि=मौन धारण ...ने वाले । बिलाँनां=समाप्त होना । वार-पार=आदि-अंत ।

कबीर कहते हैं कि बिना प्रभु के मनुष्य भ्रम के पाप-पंक में फंसा रहता है । ...के पास भी अपनी मुक्ति के लिए जाता हूं वही स्वयं अनेक बन्धनों में बंधा हुआ ...अथवा वह ऐसे उपाय बताता है जिससे और वन्धनों की सृष्टि होती है । योगी के ...यदि मुक्ति की आशा से जाओ तो वह यही बताता है कि योग-साधना ही मुक्ति ...सर्वोत्तम उपाय है, अन्य व्यर्थ हैं । शीश घुटा देने वाले साधु, मौन धारण करने ...मुनि कहते हैं कि हमने सिद्धि —ब्रह्म—को प्राप्त कर लिया है । कबीर कहते हैं ...यदि किसी साधना में प्रभु के चरण कमलों को विस्मृत कर दिया गया है तो वह ...वहीं की वहीं समाप्त हो जायगी । पण्डित, गुणवान्, शूरवीर और कवि अपने ज्ञान ...में मरे जाते हैं और कहते हैं कि हम ही श्रेष्ठ हैं । इन्हें तो आदि – अन्त किसी ...कुछ ज्ञान ही नहीं, व्यर्थ ही संसार में घूमते हैं । मन इन विभिन्न साधनावलम्बियों ...द्वारा इसी प्रकार ठगा रह गया है जैसे जहाज़ से उड़ा कौवा चारों ओर समुद्र ...पर भ्रमित हो जाता है । कबीर कहते हैं कि इन सबका कथन मिथ्या है क्योंकि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

जो ब्रह्म का साक्षात्कार कर चुका उसकी अनुभूति तो गूंगे के गुड़ सदृश है, का वर्णन कैसे करे ? अतः हे मनुष्य ! अथवा हे मन ! तू इधर-उधर के कर्मों को छोड़कर प्रभु के चरण-कमलों को निष्ठापूर्वक दृढ़ता से पकड़ ले।

चलौ बिचारी रहौ सँभारी, कहता हूँ ज पुकारी।
रांम नांम अंतर गहि नांहीं, तौ जनम जुवा ज्यूं हारी ॥टेक॥
मूंड़ मुड़ाइ फूलि का बैठे, कांननि पहरि मंजूसा।
बाहरि देह षेह लपटांनीं, भीतरि तौ घर मूसा॥
गालिब नगरी गाँव बसाया, हांम कांम अहंकारी।
घालि रसरिया जब जंम खैंचै, तब का पति रहै तुम्हारी॥
छांड़ि कपूर गांठि बिष बांध्यौ, मूल हूवा न लाहा।
मेरे रांम की अभै पद नगरी, कहै कबीर जुलाहा ॥१३४॥

कबीर कहते हैं कि हे मनुष्यो ! यदि तुमने राम-नाम, प्रभु-नाम, को हृ धारण नहीं किया तो ऐसा समझो कि यह जन्म जुए में हार दिया। मैं पुकार कर इस विचार की घोषणा करता हूं, इससे तुम सावधान हो जाओ। हे संन्या तुम शीश घुटा कर, कानों में मंजूषा धारण कर अभिमान में क्या बैठे हो ? बाहर ही तो शरीर पर भस्म रमा रखी है, तुम्हारा हृदय तो विषय-वासना से गन्दा है। इन बाह्याडम्बरों से ही तो प्रभु प्राप्ति नहीं हो जाती ? उस प्रभु का अत्यन्त उच्च स्थल पर है किन्तु वहाँ पहुंचने में दम्भ और काम बहुत बाधक रस्सी डाल कर जब काल तुम्हें खींचेगा तब तुम्हारी क्या लज्जा शेष रह जा प्रभु रूप कपूर को छोड़कर विष रूपी विषय-वासनाओं को सहेज रहा है, इस मानव न तुझे मूल — ब्रह्म—ही प्राप्त होगा और न कुछ लाभ प्राप्त होगा। जुलाहा कहते हैं कि मेरे प्रभु का वास अभय स्थान पर है, उसे प्राप्त कर किसी भांति के तापों का भय शेष नहीं रह जाता।

कौंन बिचारि करत हौ पूजा,
आतम रांम अवर नहीं दूजा ॥टेक॥
बिन प्रतीतैं पाती तोड़ै, ग्यान बिनां देवलि सिर फोड़ै॥
लुचरी लपसी आप संवारै, द्वारै ठाढा रांम पुकारै।
पर-आत्म जौ तत बिचारै, कहि कबीर ताकै बलिहारै ॥१३५॥

कबीर कहते हैं कि तुम क्या सोचकर दूसरे की पूजा कर रहे हो वह हृदयस्थ है, अन्यत्र कहीं नहीं। बिना विश्वास के पूजा में नैवेद्य चढ़ाना तो तोड़ने के समान ही है एवं बिना ज्ञान के मन्दिर पर माथा टेकना पत्थर पर रखना मात्र ही है। हे मनुष्य ! तू विषय-वासनाओं में फंसा हुआ है और उधर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के लिए तुझे पुकार लगा रहे हैं। कबीर उन पुरुषों की बलिहारी जाते हैं आत्मा का विचार करते हैं, उसकी प्राप्ति के लिए कटिबद्ध रहते हैं।

भयौ तिलक गरें जपमाला, मरम न जांनैं मिलन गोपाला ।।टेक।।
प्रति पसू करै हरिहाई, गरै काठ वाकी बांनि न जाई।
सेत करणीं मनि काली, कहा भयौ गलि माला घाली ।।
ही प्रेम कहा भयौ रोयें, भीतरि मैल बाहरि कहा धोये।
गल स्वाद भगति नहीं धीर, चीकन चंदवा कहै कबीर ।।१३६।।

कबीर कहते हैं कि यदि मनुष्य प्रभु मिलन के रहस्य से परिचित नहीं तो गले माथे पर तिलक लगा लेने से क्या लाभ ? जंगल में भागने वाले पशु के गले प्रकार काठ का पाया पड़ा रहने पर भी वह भागने से बाज नहीं आता, चाहे पर वह पाया कितना ही उसके पैरों में लगे, इस भांति जीव भी यह जानते विषयों के आन्दद में पाप-पंक में फंसना है इस ओर जाये विना बाज नहीं। यदि किसी का मन संसार स्वांग में बुरी तरह फंसा हुआ है तो गले में ढोंग माला धारण करने का कोई लाभ नहीं। प्रेम शून्य स्थिति में प्रभु के लिये रोने –भीतर मन में तो पाप, विषय-विकार हैं, बाहर से शरीर को धोने का क्या ? कबीर कहते हैं कि भक्ति पथ में साँसारिक आनन्द नहीं, वह बड़ा धैर्यपूर्ण है एवं वह पथ चन्दन तुल्य शीतल और चिकना है।

ते हरि के आवैहि किहि कांमां, जे नहीं चीन्हैं आतमरांमां ।।टेक।।
थोरी भगति बहुत अहंकारा, ऐसे भगता मिलैं अपारा ।।
भाव न चीन्हैं हरि गोपाला, जांनि क अरहट कै गलि माला।
कहै कबीर जिनि गया अभिमानां, सो भगता भगवन्त समांनां ।।१३७।।

कबीर कहते हैं कि वे लोग प्रभु के किस प्रयोजन के जो उसके हृदयस्थ स्व-को नहीं पहचानते। ऐसे भक्त तो अनेक मिल जाते हैं जिनमें भक्ति तो थोड़ी होती है किन्तु भक्ति का दम्भ अधिक। वे लोग सोचते हैं कि प्रभु गले में माला कर प्रेम-भाव नहीं देखते—यह उनका भ्रम है। कबीर कहते हैं कि जिस भक्त अभिमान चला गया वह तो फिर प्रभु के समान ही हो जाता है। भाव यह है कि में अभिमान का त्याग अत्यावश्यक है।

कहा भयौ रचि स्वांग बनायौ, अंतरिजांमीं निकटि न आयौ ।।टेक।।
विषई विषै दिढावै गावै, रांम नांम मनि कबहूं न भावै ।।
पापी परलै जांहि अभागे, अमृत छाड़ि बिषै रसि लागे।
कहै कबीर हरि भगति न साधी, भग मुषि लागि मूये अपराधी ।।१३८।।

कबीर कहते हैं कि साधु की इस ढोंग साधना क्या लाभ यदि उसने हृदयस्थ को प्राप्त न किया। विषयी का मन सर्वदा विषयों में भ्रमित रहता है उसे प्रभ-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

नाम कभी भी रुचिकर नही लगता। ऐसे व्यक्ति अभागे हैं क्योंकि वे स्वयं ... में फंसे रहते हैं, प्रभु भक्ति के अमृत को त्याग कर विषयों में रुचि लेते हैं। ... कहते हैं कि ऐसे लोग प्रभु भक्ति की साधना तो करते नहीं और स्त्री के पीछे ... वासना से लगकर पाप कमा नष्ट हो जाते हैं।

जौ पैं पिय के मनि नहीं भांयें, तौ का पारोसनि कैं हुलराये॥टेक॥
का चूरा पाइल झमकांयैं, कहा भयौ बिछुवा ठमकांयैं॥
का काजल स्यंदूर कै दीयैं, सोलह स्यंगार कहा भयौ कीयैं।
अंजन मंजन करै ठगौरी, का पचि मरै निगौड़ी बौरी॥
जौ पैं पतिब्रता ह्वै नारी, कैसैं हीं रहौ सो पियहि पियारी।
तन मन जीवन सौंपि सरीरा, ताहि सुहागनि कहैं कबीरा॥१३...

चूरा=चूड़ियाँ। पाइल=पायल। झमकायें=बजाने से। बिछुवा=...
स्यंदूर=सिन्दूर।

कबीर कहते हैं कि यदि यह आत्मा प्रिय—प्रभु—को अच्छी नहीं लगे ... पड़ौसियों के प्रसन्न करने से क्या लाभ? न ही फिर कोई सोलह श्रृंगार का ... शेष रहता है, इसलिए चूड़ी, पायल एवं बिछुओं की मधुर ध्वनि अर्थात् इनके ... करने से क्या लाभ? सिंदूर एवं काजल लगाने का भी कोई अर्थ उस अवस्था ... रह जाता। यह पागल आत्मा स्नानादि द्वारा स्वच्छ हो इन श्रृंगारों के द्वारा ... को रिझाना चाहती है, किन्तु इसे यह ज्ञात नहीं कि जो पतिव्रता नारी है वह ... भी प्रकार से रहे अन्ततः प्रिय को प्यारी ही लगेगी। कबीर कहते हैं कि सुहागिन ... का एक-मात्र लक्षण यह है कि वह तन-मन-जीवन से—सर्वात्मना—अपने को ... की शरण में डाल दे।

विशेष—आत्मा का वास्तविक पति परमात्मा है। परमात्मा के अतिरिक्त ... विषयों में उसका प्रसार व्यभिचार है। इसलिये वे भक्ति के लिये सर्वात्म-... आवश्यक मानते हैं।

दूभर पनियां भर्या न जाई, अधिक त्रिषा हरि बिन न बुझाई॥टेक॥
ऊपरि नीर ले ज तलि हारी, कैसैं नीर भरै पनिहारी॥
ऊधर्यौ कूप घाट भयौ भारी, चली निरास पंच पनिहारी।
गुर उपदेस भरी ले नीरा, हरषि हरषि जल पीवै कबीरा॥१४०॥

कबीर यहां कमल कुआं से निसृत अमृत रस प्राप्ति को पनिहारिन के ... भरने की क्रिया से उपमा देकर समझाते कहते हैं कि वह कमल कुएं में भरा ... पानी प्राप्त करना बड़ा दुष्कर है। जीवात्मा की आनन्द के लिए प्यास उस परम... के बिना शान्त नहीं होती। ब्रह्मरन्ध्र पर तो वह जल स्थित है और पानी ...

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पनिहारिन-कुण्डलिनी—तल (मूलाधार चक्र) पर। उस औंधे कुएं पर जहाँ घाट कठिन है, पाँचों इन्द्रियों रूपी पनिहारिनों के लिये जल भरना अत्यंत कठिन है क्योंकि पूर्णरूप से वहां केन्द्रित नहीं रहतीं। कबीर ने वही दुष्प्राप्य जल—अमृत—कुण्डलिनी से ज्ञान प्राप्त कर भर लिया है और वह हर्षित हो होकर इसका पान करता है।

कहौ भईया अंबर कासूं लागा,
कोई जांणैंगा जांननहार सभागा ॥टेक॥
अंबरि दींसै केता तारा, कौंन चतुर ऐसा चितरनहारा।
जे तुम्ह देखौ सो यहु नाहीं, यहु पद अगम अगोचर मांहीं॥
तीनि हाथ एक अरधाई, ऐसा अंबर चीन्हौं रे भाई।
कहै कबीर जे अंबर जांनैं, ताही सूं मेरा मन मांनैं ॥१४१॥

कबीर कहते हैं कि शून्य—ब्रह्मरन्ध्र—की क्या स्थिति है यह कोई भाग्य-शाली तत्ववेत्ता ही जान सकता है। कौन ऐसा सुजान है जो उस शून्य में कौन-कौन तारे हैं यह जान सके अर्थात् उसमें स्थित अलख निरंजन ब्रह्म को देख सके। जिस संसार को तुम देख रहे हो अर्थात् विषय-वासनाओं में फंस रहे हो, वहां आनन्द नहीं है, वह तो अगम्य, अलख ब्रह्म के ही पास स्थित है। यह शून्य साढ़े तीन हाथ की कुण्डलिनी के द्वारा ही पहचाना जा सकता है। कबीर कहते हैं कि मेरा मन तो उसी में मग्न रहता है, हर्षित होता है जो शून्य को पहचान गया है—जिसने प्रभु का साक्षात्कार कर लिया है।

विशेष—कबीर ने यहाँ उस भक्त की प्रशंसा की है जो ईश्वर से साक्षात्कार कर शून्य-रहस्य को समझ गया है।

तन खोजौ नर नां करौ बड़ाई, जुगति बिना भगति किनि पाई ॥टेक॥
एक कहावत मुलां काजी, रांम बिनां सब फोकटबाजी॥
नव ग्रिह बांभण भणता रासी, तिनहूं न काटी जम की पासी।
कहै कबीर यहु तन काचा, सबद निरंजन रांम नांम साचा ॥१४२॥

कबीर कहते हैं कि हे मनुष्य! तुम अपने चरित्र पर दृष्टिपात करो, व्यर्थ अपनी डींग मत हांको। प्रयत्न—साधना—बिना भक्ति किसी को भी प्राप्त नहीं हुई है। एक कहावत है कि जितने भी धर्मानुष्ठान करने वाले मुल्ला, काजी (या पंडित) हैं वे प्रभु भक्ति के सब व्यर्थ हैं। नव ग्रह, पंडित अथवा अन्य कोई राशिधारी मृत्यु के फंदे को न काट सका। कबीर कहते हैं कि यह शरीर तो मिथ्या है, सत्य तो केवल राम नाम ही है जिससे प्रभु प्राप्ति होती है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

विशेष—नव ग्रह—नौ ग्रह—

१. सूर्य, २. चन्द्र, ३. भौम, ४. बुध, ५. बृहस्पति, ६. शु , ७. शनि, ८. ... ९. केतु ।

जाइ परौ हमरौ का करिहै,
आप करै आपै दुख भरिहै ॥टेक॥
उभ्झड़ जातां बाट बतावै, जौ न चलै तौ बहु दुख पावै ॥
अंधे कूप क दिया बताई, तरकि पड़ै पुनि हरि न पत्याई।
इंद्री स्वादि बिषै रसि बहिहै, नरकि पड़ै पुंनि रांम न कहिहै॥
पंच सखी मिलि मतौ उपायौ, जंम की पासी हंस बंधायौ।
कहै कबीर प्रतीति न आवै, पाषंड कपट इहै जिय भावै ॥

कबीर यहाँ ऐसे मनुष्य को फटकारते हैं जो सद्गुरु के बताये हुए मार्ग पर चलता नहीं है किन्तु विपत्ति पड़ने पर पुनः सद्गुरु (कबीर) की शरण में आकर कहता है 'त्राहि माम् त्राहि माम्' । वे कहते हैं कि तुम स्वयं जैसा तुमने किया है उसका फल भोगो हम कोई सहायता नहीं कर सकते । जो ऊबड़ खावड़ मार्ग पर चलता है और यदि उसे अच्छा पथ बतलाया जाय और वह उस पर न चले तो बड़े दुख पाता है । जो कूप मंडूक ज्ञानान्ध है यदि उसे प्रभु के विषय में कुछ बताया जाय तो वह बिगड़ तो उठेगा किन्तु प्रभु के अस्तित्व में विश्वास नहीं करेगा । जो मनुष्य इन्द्रियों से संचालित हो नाना विषय-रसों में सिक्त रहते हैं और प्रभु नाम नहीं लेते वे नरक के अधिकारी हैं । पाँचों इन्द्रियों ने जीव को ऐसी कुमति दे दी कि वह मृत्यु बंधन से विमुक्त नहीं हो सकता । ऐसे लोगों का प्रभु-भक्ति में विश्वास नहीं होता, उन्हें केवल कपट और पाखण्ड में ही रुचि रह जाती है ।

ऐसे लोगनि सूं का कहिये ।
जे नर भये भगति थैं न्यारे, तिनथैं सदा डराते रहिये ॥टेक॥
आपण देही चरवा पांनीं, ताहि निंदैं जिनि गंगां आंनीं ॥
आपण बूड़ैं और कौं बोड़ैं, अगनि लगाइ मंदिर मैं सोवैं।
आपण अंध और कूं कांनां, तिनकौं देखि कबीर डरांनां ॥

कबीर कहते हैं कि ऐसे मनुष्यों से कुछ भी नहीं कहा जा सकता जो भक्ति से अलग रहते हैं, उनसे तो दूर ही दूर रहना अच्छा । ऐसे लोग अपने कुचरित्र को गंगा तुल्य पवित्र समझते हैं। वे स्वयं तो पाप-गर्त में डूबते ही हैं अन्य लोगों को भी ले डूबते हैं, इस प्रकार संसार के अन्य मनुष्यों को भी विषय-वासना की ओर प्रेरित कर स्वयं निश्चिन्तता से बैठ जाते हैं । कबीर कहते हैं कि ये लोग स्वयं अज्ञानी होते ही हैं, दूसरों में भी अज्ञान का प्रसार करते हैं, इनसे हमें भय लगता है क्योंकि ये लोक-घातक हैं ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हरि जन सूं जगत लरत है, फुंनिगा कैसें गरड़ भषत हैं ॥टेक॥
विरज एक देखहु संसारा, सुनहा खेदै कुंजर असवारा ॥
एक अचंभा देखा, जंबक करै केहरि सूं लेखा।
कहै कबीर रांम भजि भाई, दास अधम गति कबहूं न जाई ॥१४५॥

कबीर कहते हैं कि हे प्रभु ! आपके भक्त का समस्त संसार विरोधी है। समस्त ...गला भक्ति में लगा हुआ है। कबीर कहते हैं कि श्वान (सुनहां—कुत्ता) अर्थात् संसार-वासना ग्रस्त व्यक्ति प्रभु भक्ति के हाथी पर चढ़े हुए भक्त को ...ता है। यह इसी भाँति है मानो गीदड़ शेर से लेखा जोखा ले। कबीर कहते हैं हे भाई ! प्रभु का भजन कर, इससे भक्त को कभी भी अधोगति प्राप्त नहीं ...।

विशेष – सुनहां—"सोनहा। कुत्ता कुत्ते की जाति का छोटा जंगली जानवर जो ...में रहता है और बड़ा हिंसक होता है, यह शेर को भी मार डालता है।"—कबीर ...क।

है हरिजन थैं चूक परी, जे कछु आहि तुम्हारौ हरी ॥टेक॥
मोर तोर जब लग मैं कीन्हां, तब लग त्रास बहुत दुख दीन्हां।
सिध साधिक कहैं हम सिधि पाई, रांम नांम बिन सबै गंवाई ॥
जे बैरागी आस पियासी, तिनकी माया कदे न नासी।
कहै कबीर मैं दास तुम्हारा, माया खंडन करहु हमारा ॥१४६॥

कबीर कहते हैं कि प्रभु भक्त पर इसलिए दयालु नहीं हैं कि उससे कुछ दोष हो ...होगा। मेरी जब तक अहं-परत्व की भावना समाप्त नहीं हुई थी तब तक ...बहुत दुख सहने पड़े। सिद्धि साधक वृथा यह मिथ्या दम्भ भरते हैं कि हमने ...द्धि प्राप्त कर ली है किन्तु वस्तुत: बिना राम नाम के उनकी जो भी संचित सत्कर्मों ...पूंजी होती है वह समाप्त हो जाती है। जिस विरक्त की तृष्णाएं शान्त नहीं हुई ...वह कभी भी माया-बन्धन से विमुक्त नहीं हो सकता।

कबीर कहते हैं कि हे प्रभु मैं आपका भक्त हूं, मुझे माया-बन्धन से विमुक्त कर ...दें।

सब दुनीं संयानीं मैं बौरा, हंम बिगरे बिगरौ जिनि औरा ॥टेक॥
मैं नहीं बौरा रांम कियौ बौरा, सतगुरु जारि गयौ भ्रम मोरा।
विद्या न पढ़ूं बाद नहीं जांनूं, हरिगुंन कथत सुनत बौरांनूं ॥
काम क्रोध दोऊ भये बिकारा, आपहि आप जरैं संसारा।
मींठो कहा जाहि जो भावै, दास कबीर रांम गुंन गावै ॥१४७॥

कबीर कहते हैं कि जिनकी द्वैत भावना नष्ट नहीं हुई है वे सब चतुर हैं और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

मैं प्रभु प्रेमदीवाना । मुझे सब पागल बताते हैं, और कोई पागल मत बनो। मूर्खो ! मैं स्वयं पागल नहीं प्रभु ने मुझे पागल कर दिया है—

"राम वियागी ना जियै, जियै तो बौरा होय ।"

सद्‌गुरु ने मेरा संशय विदूरित कर दिया है । मैं न तो शास्त्रग्रंथों के ज्ञा तत्वज्ञं हूँ और न ही शास्त्रार्थ ही करता हूं, केवल प्रभु के गुण का गायन श्रवण करता हूं । उसी से मैं प्रभु प्रेम में पागल हूं । काम और क्रोध दोनों विष जिनकी अग्नि में यह संसार स्वतः ही दग्ध हो रहा है । कबीर कहते हैं कि यह अपनी अपनी रुचि का प्रश्न है, मधुर तो वही है जो जिसको रुचिकर लगे। अपनी रुचि के अनुकूल प्रिय प्रभु का गुणगान करता है ।

अब मैं रांम सकल सिधि पाई, आंन कहूँ तौ रांम दुहाई ।।टेक।।
इहिं चिति चाषि सबै रस दीठा, रांम नांम सा और न मीठा।
औरे रसि ह्वै है कफ गाता, हरि-रस अधिक अधिक सुखदाता ॥
दूजा बणिज नहीं कछू बाषर, रांम नांम दोऊ तत आषर।
कहै कबीर जे हरि रस भोगी, ताकूं मिल्या निरंजन जोगी ।।१४

कबीर कहते हैं कि अब मैंने राम के रूप में समस्त सिद्धियाँ प्राप्त कर ली यदि अब मैं अन किसी का आश्रय ग्रहण करूं तो मुझे राम की ही सौगंध है। समस्त रसों का स्वाद ग्रहण कर देख लिया है किन्तु उनमें राम नाम सदृश मधुर नहीं है । अन्य सांसारिक रस तो व्याधियों के जन्मदाता हैं किन्तु प्रभु भक्ति रस पान करने से अधिकाधिक आनंद प्राप्त होता है । इस संसार में और कोई व्या सारपूर्ण नहीं केवल राम नाम का व्यापार ही सार है । कबीर कहते हैं कि जो भवितरस के आस्वादक हैं उन्हें योग का निरंजन पद सहज ही प्राप्त हो जाता है।

विशेष—निरंजन जोगी—योग का निरंजन पद, जब साधक योग-साधना शून्य-स्थित ब्रह्म—अलख निरंजन —ज्योतिस्वरूप परमात्मा, को प्राप्त कर रमण करने लगता है, तब वह निरंजन पद का अधिकारी कहलाता है। कबीर के द्वारा, प्रभु गुणगान के द्वारा भी उसी की बात कहते हैं ।

रे मन जाहि जहां तोहि भावै, अब न कोई तेरै अंकुस लावै ।।टेक।।
जहां जहां जाइ तहां तहां रांमां, हरि पद चीन्हि कियौ विश्रामा ।।
तन रंजित तब देखियत दोई, प्रगट्यौ ग्यांन जहां तहां सोई।
लीन निरंतर वपु बिसराया, कहै कबीर सुख सागर पाया ।।१४

कबीर अपने मन को वश में कर फिर उसे इतना स्वतन्त्रता प्रदान करते हैं कि वह जहाँ चाहे, चला जाय किन्तु अब वह उस नियन्त्रण में है कि जहां भी जावेगा प्रभु ही प्रभु मिलेंगे ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वे कहते हैं कि हे मन ! तू जहाँ चाहे चला जा अब तुझ पर कोई नियन्त्रण नहीं ...। जहां जहां भी तू जायेगा तुझे मेरे संसार में राम ही राम दृष्टिगत होंगे। ...में प्रभु चरण-कमलों को पहचान कर पूर्ण निश्चित हूं। जब शरीर का रोम-रोम, ...प्रत्यंग, मस्ती रस में स्नात हो जाता है तो ज्ञान का स्वतः उदय हो जाता है। ...और कहते हैं कि प्रभु भक्ति में पूर्णरूपेण लीन हो, आत्म-विस्मृत हो मैंने सुख के ...सागर को प्राप्त कर लिया है।

बहुरि हम काहे कूं आवहिगे।
बिछुरे पंचतत की रचनां, तब हम रांमहिं पांवहिगे ।।टेक।।
पृथ्वी का गुण पांणी सोष्या, पांनीं तेज मिलांवहिगे।
तेज पवन मिलि पवन सबद मिलि, सहज समाधि लगांवहिगे ।।
जैसें बहुकंचन के भूषन, ये कहि गालि तवांवहिगे।
ऐसें हम लोक वेद बिछुरें, सुंनिहि मांहि समांवहिगे ।।
जैसें जलहि तरंग तरंगनीं, ऐसें हम दिखलांवहिगे।
कहै कबीर स्वांमीं सुख सागर, हंसहि हंस मिलांवहिगे ।।१५०।।

कबीर कहते है कि हम इस संसार में पुनः क्यों कर आयेंगे, इस पचंतत्व निर्मित ...शरीर की सत्ता छूट जाने पर प्रभु की प्राप्ति होगी। पृथ्वी का गुण धूलि में क्षार ...रूप में, जल का जल में, एवं अग्नि अग्नि में लय हो जायेगी। प्राणवायु वायु में ...प्रवेश कर जायगी, इस प्रकार इस मृण्मय सत्ता से विमुक्त हो हम सहज समाधि ...लाभ करेंगे। जिस प्रकार विभिन्न आकार-प्रकार के स्वर्ण-निर्मित आभूषण पिघलकर ...सोने में ही परिवर्तित हो जाते हैं उसी भांति हम इस संसार से छूटने पर पुनः ...परमात्म स्वरूप में समाहित हो जायेंगे। जिस भांति लहर जल से उत्पन्न हो उसी में ...समा जाती है उसी प्रकार हम पुनः परमात्मा के स्वरूप में लय हो जायगे। कबीर ...कहते हैं कि इस प्रकार शरीर की सत्ता छूट जाने पर हम उस सुख सागर स्वरूप ब्रह्म ...में एकाकार हो जायेंगे।

विशेष—कबीर ने यहां वेदान्तियों के समान ही अंश-अंशी, आत्मा-परमात्मा के सम्बन्ध को जल-तरंग-न्याय आदि के द्वारा स्पष्ट किया है।

कबीरौ संत नदी गयौ बहि रे।
ठाढ़ी माइ कराड़ै टेरै, है कोई ल्यावै गहि रे ।।टेक।।
बादल बांनीं रांम घन उनयां, बरिषै अंमृत धारा।
सखी नीर गंग भरि आई, पीवै प्रान हमारा ।।
जहां बहि लागे सनक सनंदन, रुद्र ध्यांन धरि बैठे।
सुयं प्रकास आनंद बमेक मैं, घन कबीर ह्वै पैठे ।।१५१।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

कबीर कहते हैं कि संत—प्रभु-भक्त—तो ईश्वर-भक्ति की सरिता के प्रवाह में बह चुका है, माया किनारे पर खड़ी कोटिशः टेर लगाती है किन्तु अब कोई उसे वहां से निकाल नहीं सकता। बादल, जिससे यह सरिता उमड़ी, स्वयं प्रभु नाम था जिससे अमृत-वर्षा (भक्ति की) हुई। आत्मा इस पुनीत गंगा तट पर उस जल को भरने आई थी उसी को अब हम छक-छक कर पान कर रहे हैं। जिस भक्ति की सरिता के प्रवाह में सनक-सनन्दन जैसे ऋषि बहे और महेश जिसके लिए ध्यानावस्थित हैं उसी आनन्दायिनी भक्ति धारा में कबीर डूब चुका है।

विशेष—सनक सनन्दन—"सनक, सनन्दन, सनत्कुमार और सनातन जो ब्रह्मा के पुत्र कहे जाते हैं। ये एक बार भगवान् से मिलने बैकुण्ठ गये थे, वहां द्वारपालों के रोकने पर उन्हें तीन जन्म तक राक्षस होने का शाप दिया था।"—कबीर बीजक।

अवधू कांमधेन गहि बांधी रे।
भांडा भंजन करै सबहिन का, कछू न सूझै आंधी रे ॥टेक॥
जौ ब्यावै तौ दूध न देई, ग्याभण अंमृत सरवै।
कौली घाल्यां बीडरि चालै, ज्यूं घेरौं त्यूं दरवै॥
तिहिं धेन थैं इंछ्या पूगी, पाकड़ि खूंटै बांधी रे।
ग्वाड़ा मांहैं आनंद उपनौं, खूंटै दोऊ बांधी रे॥
साई माइ सास पुनि साई, साई याकी नारि।
कहै कबीर परम पद पाया, संतौ लेहु बिचारी ॥१५२॥

कबीर कहते हैं कि हे अवधूत! मैंने प्रभु भक्ति की कामधेनु पकड़कर बांधी है, यह सबके साँसारिक उपकरण, मिथ्याडम्बरों रूपी पात्रों को फोड़ देती है। यदि यह माया की ओर चली जाय तो फल नहीं देती, दूध नहीं देती और यदि अपनी गम्भीरता बनाये रखे तो अमृतोपम आनन्द प्रदान करती है। मन पर बड़े नियन्त्रण रख इसे प्राप्त किया जा सकता है। इस कामधेनु से मनुष्य की समस्त इच्छाएं परितृप्त हो जाती हैं। यदि इसे दृढ़तापूर्वक साधा जाय तो यह ग्वाल (भक्त) को अमित आनन्द प्रदान करती है। फिर तो यह भक्त के लिए उसकी चित्तवृत्तियों के अनुकूल हो जाती है। कबीर कहते हैं कि हे संतो! मैंने भक्ति की इसी कामधेनु से प्रभु को प्राप्त कर लिया है।

जगत गुर अनहद कींगरी बाजै, तहां दीरध नाद ल्यौ लागै ॥टेक॥
त्री अस्थांन अंतर मृगछाला, गगन मडल सींगीं बाजै।
तहुआं एक दुकांन रच्यो है, निराकार व्रत साजै॥
गगन हीं भाठी सींगी करि चूंगी, कनक कलस एक पावा।
तहुवां चवैं अमृत रस नीझर, रस ही मैं रस चुवावा॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अब तौ एक अनूपम बात भई, पवन पियाला साजा।
तीनि भवन मैं एकै जोगी, कहौ कहां बसै राजा॥
बिनर जांनि परणऊं परसोतम, कहि कबीर रंगि राता।
यह दुनियां कांइ भ्रमि भुलांनी, रांम रसांइन माता॥१५३॥

कबीर कहते हैं कि साधक या भक्त उस अवस्था में पहुंच गया है कि वहां अनहद नाद का आनन्ददायी स्वर समा बांध रहा है और साधक ने वहां अपनी चित्त-वृत्तियों को केन्द्रित कर रखा है। त्रिकुटी के मध्य ही वह रहकर शून्यमण्डल—ब्रह्मरन्ध्र में होने वाले विस्फोट-शब्द को सुन रहा है। वहीं अपना स्थायी वास बनाकर वह अलख निरंजन की साधना में दत्तचित्त है। अब आगे वे मदिरा खींचने के रूपक द्वारा स्पष्ट करते हैं कि शून्य स्थल की भट्टी बनाकर सहस्र दल कमल के स्वर्ण पात्र के द्वारा सींगी की उड़ीक लगा दी है जिससे अमृत निस्सृत हो रहा है। इस अमृत का पान साधक की आत्मा करती है। इसको पीकर साधक सर्वोपम एवं सर्वश्रेष्ठ बन जाता है, इसीलिए तीन लोकों के स्वामी के समान उसे अपना वैभव इस समय प्रतीत होता है। कबीर कहते हैं कि पूर्ण पुरुषोत्तम के रंग में कबीर पूर्णतः रंग गया है और वह अन्य किसी को नहीं जानता। यह जगत् माया-भ्रम में उलझा हुआ है किन्तु मैं राम-रसायन के आनन्द से मदमस्त हूं।

विशेष—यहाँ कबीर ने योगसाधना का सम्पूर्णतः वर्णन किया है। योग-साधना के अनहद नाद, गगन, त्रिकुटी, सींगी, गगन-भाठी, रसचर्वणा—सबका वर्णन नाथपंथी योगसाधनानुकूल किया है।

ऐसा ग्यांन बिचारि लै, लै लाइ लै ध्यांनां।
सुंनि मंडल मैं घर किया, जैसें रहै सिचांनां॥टेक॥
उलटि पवन कहां राखिये, कोई भरम बिचारै।
सांधै तीर पताल कूं, फिरि गगनहि मारैं॥
कंसा नाद बजाव ले, धुंनि निमसि ले कंसा।
प्यंड परें जीव कहां रहै, कोई मरम लखावै॥
जीवत जिस घरि जाइये, ऊँधै मुषि नहीं आवै।
सतगुर मिलै त पाईये, ऐसी अकथ कहांणीं॥
कहै कबीर संसा गया, मिले सारंग पांणीं॥१५४

कबीर कहते हैं कि हे साधक! तू ऐसा ज्ञान अर्जित कर ले जिससे प्रभु में अपनी वृत्तियाँ केन्द्रित कर शून्यमण्डल में अपना स्थायी वास बना सके। प्राणायाम द्वारा संसार के इस माया-भ्रम को विदूरित कर देना चाहिए। मूलाधार चक्र से कुण्डलिनी को शून्य तक पहुंचाने में प्रवृत्त कर दे। फिर उसके विस्फोट से अपरिमित

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

आनन्ददायी अनहद नाद को सुने। अनहद नाद के सुनाई देते ही ब्रह्म ही ब्रह्म सर्वत्र दृष्टिगत होता है। फिर साधक आत्मविस्मृत हो अपने शरीर को भी भूल जाता है, फिर भला शरीर के अचेत होने पर जीव-आत्मा कहाँ जायगी—वह जीवन्मुक्त अवस्था को प्राप्त कर लेगी। किसी सद्गुरु के मिलने से ही इस अकथ साधना का रहस्य समझ में आ सकता है। कबीर कहते हैं कि संसार-भ्रम विदूरित होने पर प्रभु-प्राप्ति सुनिश्चित है।

है कोई संत सहज सुख उपजै, जाकौं जप तप देउ दलाली।
एक बूंद भरि देइ रांम रस, ज्यूं भरि देइ कलाली ॥
काया कलाली लांहनि करिहूं, गुरू सबद गुड़ कीन्हां।
कांम क्रोध मोह मद मंछर, काटि काटि कस दीन्हां ॥
भवन चतुरदस भाठी पुरई, ब्रह्म अगनि परजारी।
मूंदे मदन सहज धुनि उपजी, सुखमन पोतनहारी ॥
नीझर झरै अंमी रस निकसै, तिहि मदिरावल छाका।
कहै कबीर यहु बास बिकट अति, ग्यांन गुरू ले बांका ॥१५५॥

यहां कबीर मदिरा के रूपक द्वारा भक्ति का वर्णन करते हैं। वे कहते हैं कि कोई ऐसा सज्जन, साधु, गुरु, है जिसको में अपने समस्त सत्कृत्य दलाली के रूप में दे दूं और वह केवल इतना कर दे कि कलश के समान मेरे पात्र में एक बूंद रामभक्ति की मदिरा डाल दे। यह शरीर ही कलाल बन गया है एवं सद्गुरु की वाणी गुड़ है। काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह को काट-काट कर इस गुड़ को नियन्त्रित कर दिया है। चौदह भुवनों की भट्टी बनाकर इसमें ब्रह्म की अग्नि प्रज्वलित कर दी है। उस मदिरा के पात्र को कामदेव के द्वारा ऊपर से बन्द कर दिया है (काम का परित्याग कर दिया है) अब अनहद नाद की सहज ध्वनि हो रही है जिसकी मुख्य संचालिका सुषुम्णा नामक नाड़ी है। उस शून्य ब्रह्मरन्ध्र से अमृत-निर्झर का स्रवण निरन्तर हो रहा है जिससे साधक खूब छक गया है। कबीर कहते हैं कि इस शून्य स्थल पर वास बड़ा कठिन है जहां पर ज्ञानी सद्गुरु ही साधक को ले जा सकता है।

विशेष—१. योग की समाधि का वर्णन किया गया है—इसका विस्तृत उल्लेख अन्यत्र किया जा चुका है।

२. **'चौदह भुवन'**—सात स्वर्ग—भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्ग लोक, जनलोक, तपलोक, सत्यलोक एवं सात पाताल अतल, वितल, तल, सुतल, महातल, रसातल, पाताल।

अकथ कहांणीं प्रेम की, कछू कही न जाई।
गूंगे केरी सरकरा, बैठे मुसकाई ॥टेक ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भोमि बिनां अरू बीज बिन, तरवर एक भाई।
अनत फल प्रकासिया, गुर दीया बताई।।
मन थिर बैसि बिचारिया, रांमहि ल्यौ लाई।
झूठी अनभै बिस्तरी, सब थोथी बाई।।
कहै कबीर सकति कछु नांहीं, गुर भया सहाई।
आंव्रण जांणी मिटि गई, मन मनहि समाई।।१५६।।

सरकरा=शर्करा। भोमि=भूमि। थिर=स्थिर। ल्यौ=लगन। अनभै=...र्भय। थोथी=निस्सार। आंवण जाँणी=आवागमन।

कबीर कहते हैं कि ईश्वरीय प्रेम की कथा अकथनीय है जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता, वह तो गूंगे की शर्करा के समान है जिसका वह आस्वादन और ...ंता मन ही मन कर लेता है।

वे आगे कहते हैं कि बिना भूमि ओर बीज के एक भक्ति का तरुवर पल्लवित हो रहा है। उस पर लगे अनन्त आनन्ददायी ब्रह्म रूप फल को सद्‌गुरु ने बता दिया है जिससे मन स्थिर होकर प्रभु के ध्यान में लग गया है। यह माया का निस्संकोच ...सार सर्वथा मिथ्या है, इसका कोई लाभ नहीं। कबीर कहते हैं कि जिस अवस्था का वर्णन किया गया है उसकी प्राप्ति के लिए गुरु का अनुकूल होना आवश्यक है, गुरुकृपा से ही इस भक्ति को प्राप्त किया है जिसके द्वारा आवागमन, जन्म-मृत्यु, का ...द बन्धन छूट गया है एवं मन अन्तर्मुखी हो ब्रह्म में एकाकार हो गया है।

विशेष—वेदान्तियों के समान उस ब्रह्म के आनन्द को कबीर ने भी मूकास्वा-दनवत कहा है।

संतौ सो अनभै पद गहिये।
कला अतीत आदि निधि निरमल,
ताकूं सदा बिचारत रहिये।।टेक।।
सो काजी जाकौं काल न ब्यापै, सो पंडित पद बूझै।
सो ब्रह्मा जो ब्रह्म बिचारै, सो जोगी जग सूझै।।
उदै न अस्त सूर नहिं ससिहर, ताकौ भाव भजन करि लीजै।
काया थैं कछू दूरि बिचारै, तास गुरू मन धीजै।।
जायौं जरै न काट्यौ सूकै, उतपति प्रलै न आवै।
निराकार अषंड मंडल मैं, पांचौं तत समावै।।
लोचन अछित सबै अंधियारा, बिन लोचन जन सूझै।
पड़दा खोलि मिलै हरि ताकूं, जो या अरथहि बूझै।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

आदि अनंत उभै पख निरमल, द्रिष्टि न देख्या जाई।
ज्वाला उठी अकास प्रजल्यौ, सीतल अधिक समाई॥
एकनि गंध बासनां प्रगट, जग थैं रहै अकेला।
प्रांन पुरिस काया थैं बिछुरै, राखि लेहु गुर चेला॥
भागा भर्म भया मन असथिर, निद्रा नेह नसांनां।
घट की जोति जगत प्रकास्या, माया सोक बुझांनां॥
बंकनालि जे संमि करि राखै, तौ आवागमन न होई।
कहै कबीर धुनि लहरि प्रगटी, सहजि मिलैगा सोई॥१५७॥

अनभैपद=ब्रह्मपद । कलाअतीत=कालातीत, आदि-अन्तविहीन। निि निरमल=निर्मल ब्रह्म ।

कबीर कहते हैं कि संत वही है जो परमपद को प्राप्त कर, कालातीत निर्म ब्रह्मनिधि का निरन्तर ध्यान करता रहता है जिसको मृत्यु-भय नहीं, वही काजी है तथा जो ब्रह्म पद के रहस्य को जान लेता है वही पण्डित—ज्ञानी है। ब्राह्मण वह है जो ब्रह्म का विचार करे और जोगी वही है जो सम्पूर्ण जगत् का द्रष्टा है। जि प्रभु के समीप सूर्य, चन्द्र आदि किसी की सत्ता नहीं है उसी का प्रेमसहित भजन करो। जो गुरु इस शरीर को छोड़ ब्रह्म की भी बात सोचता है उसी को आत्मसमर्पण कर दो। वह ब्रह्म न तो जलाने पर जल सकता है, काटने पर सूख भी नहीं सकता— उत्पत्ति-प्रलय कुछ भी नहीं व्यापती। ऐसे निराकार ब्रह्म के शून्यमण्डल में ही समस्त मानसिक शक्तियां एवं वत्तियां केन्द्रित हो गई हैं। भक्ति में आगा-पीछा कर (आंख खोलकर) चलने से समस्त संसार में अंधकार ही अंधकार दृष्टिगत होता है किन्तु इस भक्ति पथ पर आंखमूंद कर केवल प्रभु प्रेम का आश्रय लेकर चलने पर सब कुछ प्राप्त हो जाता है। जो इस रहस्य को समझ लेता है उसका भ्रम-आवरण नष्ट कर प्रभु उसे दर्शन देते हैं। वह ब्रह्म आदि से अन्त—प्रत्येक पक्ष से ऐसा निर्मल है कि साँसारिक दृष्टि से उसे नहीं देखा जा सकता। उसके प्रकट होते ही निर्मल ज्योति आविर्भूत हाती है एवं आकाश जलने लगता है, शून्यमण्डल में केवल ब्रह्म ही ब्रह्म रह जाता है। उसका सुगन्ध से समस्त संसार सुवासित हो उटता है क्योंकि वह समस्त संसार में अनूठा जो है। साधक के प्राण उसके इस पंचतत्वनिर्मित शरीर को छोड़ गुरु उद्योग से ब्रह्म में लीन हो जाते हैं। उसके दर्शन से भ्रम भाग जाता है, मन अस्थिर उसी के लिए व्याकुल हो जाता है। संसार-मोह सर्वथा विनष्ट हो जाता है। उस हृदयस्थ ज्योति से ही समस्त संसार आलोकित दीख पड़ता है, माया जाल नष्ट हो जाता है—"लाली मेरे लाल की जित देखूं तित लाल।"

वे आगे कहते हैं कि यदि मेरुदण्ड में स्थित इड़ा, पिंगला, सुषुम्णा का समन्वय

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

...करता रहे तो न तो उसे आवागमन चक्र में बंधना पड़े और ब्रह्म की प्राप्ति ... वह सर्वदा अनहद नाद को सुनता रहे।

विशेष—१. योगसाधना का वर्णन इस पद में किया गया है।

२. "जार्यौ जरै.....समावै" में गीता के निम्नस्थ श्लोक से कितनी ...नता है, यथा—

"नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥" २।२३

इस आत्मा को शस्त्रादि नहीं काट सकते हैं, न इसे अग्नि जला सकती है, न इसे गीला कर गला नहीं सकता और न वायु इसे सुखा सकती है।

३. अनुप्रास, अतिशयोक्ति, विरोधाभास आदि अलंकार स्वाभाविक रूप से ...ग गये हैं।

जाइ पूछौ गोबिंद पढ़िया पंडिता, तेरा कौंन गुरू कौंन चेला।
अपणें रूप कौं आपहि जांणैं, आपैं रहै अकेला॥टेक॥
बांझ का पूत बाप बिन जाया, बिन पांऊं तरबरि चढ़िया।
अस बिन पाषर गज बिन गुड़िया, बिन षडै संग्रांम जुड़िया॥
बीज बिन अंकूर पेड़ बिन तरबर, बिन साषा तरवर फलिया।
रूप बिन नारी, पुहप बिन परमल, बिन नीरै सरवर भरिया॥
देव बिन देहुरा पत्र बिन पूजा, बिन पांषां भवर बिलंबिया।
सूरा होइ सु परम पद पावै, कीट पतंग होइ सब जरिया॥
दीपक बिन जोति जोति बिन दीपक, हद बिन अनाहद सबद बागा।
चेतनां होइ सु चेति लीज्यौ, कबीर हरि के अंगि लागा॥१५८॥

कबीर ब्रह्म का स्वरूप बताते हुए कहते हैं कि उस प्रभु से जाकर पूछ लो कि उसका कौन गुरु है, वह किसका चेला है तो कुछ भी ज्ञात नहीं होगा। क्योंकि वह न किसी से उत्पन्न है और न किसी से पालित-पोषित, वह तो सर्वथा अकेला है उसके आदि अन्त को भी कोई नहीं जानता, वह स्वयं ही अपने स्वरूप को जानता है अन्य कोई नहीं।

वह ब्रह्म वन्ध्या के बिन जाये पुत्र के समान है। वह बिना पैरों के वृक्ष पर चढ़ने की सामर्थ्य रखता है। वह बिना बीज के प्रस्फुटित अंकुर और पेड़ के समान है। माया से असम्पृक्त होते हुए भी वह 'एकोऽहम् बहु स्याम्' को चरितार्थ करता है। आकारहीन सुन्दरी एवं बिना परिमल विकास के पुष्पित कुसुम है। वह बिना जल के ही सरोवर को भरने की सामर्थ्य रखता है। वह उसी भाँति है जैसे बिना इष्ट देव की मूर्ति के भी देवालय हो सकता है, बिना पत्र-पुष्प के पूजा तुल्य है। वह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

बिना पुष्प-राजि के भ्रमित होने वाले भ्रमर के समान है। इस परम-विचित्र को जो शूरवीर है वही प्राप्त कर सकते हैं, वे तो संसार में ही नष्ट हो जाते वह बिना दीपक के ही ज्योतिष्मान् है, एवं असीम और अनहद है। कबीर कहते हैं हे मनुष्यो ! यदि तुम्हें सावधान हो इस प्रभु को पाना है तो शीघ्र चेत जाओ, तो प्रभु को प्राप्त कर चुका है ।

पंडित होइ सु पदहि बिचारै, मूरिष नांहिन बूझै।
बिन हाथनि पांइन बिन कांननि, बिन लोचन जग सूझै ॥टेक॥
बिन मुख खाइ चरन बिन चालै, बिन जिभ्या गुण गावै।
आछै रहै ठौर नहीं छाड़ै, दह दिसिहीं फिरि आवै॥
बिनहीं तालां ताल बजावै, बिन मदल पट ताला।
बिनहीं सबद अनाहद बाजै, तहां निरतत है गोपाला॥
बिनां चोलनैं बिना कंचुकी, बिनहीं संग संग होई।
दास कबीर औसर भल देख्या, जांनैंगा जन कोई।।१५९॥

कबीर कहते हैं कि जो ज्ञानी हैं वही इस पद का भाव, अर्थ, मर्म, हृदयं कर सकते हैं, मूर्ख लोग नहीं। अब वे प्रभु-स्वरूप का कथन करते कहते हैं कि बिना हाथ, पैर, कान, नेत्र एवं जिह्वा के समस्त जगत् दृष्टिगत हो जाता है। अपने स्थान पर स्थिर रहता हुआ भी दशों दिशाओं में घूम आता है। वह बिना तल के तान बजा सकता है एवं बिना मृदंग आदि के ताल-तुकमय संगीत का कर सकता है। जहां किसी बाह्य शब्द के अनहद नाद हो रहा है वहीं प्रभु निवा करते हैं, वहीं उनका नृत्य चल रहा है किन्तु वह नृत्य (कृष्ण के समान नहीं अपि बिना किसी वस्त्र एवं वेशभूषा के प्रत्येक स्थान पर हो रहा है। कबीर कहते हैं मैं उपयुक्त अवसर देखकर इस प्रभु रहस्य का कथन कर रहा हूं कोई विरला ही इसे जान सकता है।

है कोई जगत गुर ग्यांनीं, उलटि बेद बूझै।
पांणीं में अगनि जरै, अंधेरे कौं सूझै ॥टेक॥
एकनि दादुरि खाये पंच भवंगा।
गाइ नाहर खायौ काटि अंगा॥
बकरी बिघार खायौं, हरनि खायौ चीता।
कागिल गर फांदियां, बटेरै बाज जीता॥
मूसै मंजार खायौ, स्यालि खायी स्वांनां।
आदि कौं आदेस करत, कहै कबीर ग्यांनां ॥१६०॥

कबीर कहते हैं कि इस संसार में कोई ऐसा ज्ञानी है जो इस उलटे ज्ञान पार को स्पष्ट कर सके। सहस्र-दल कमल से अमृत झर रहा है, वहीं ज्योतिस्व

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

...प्रकट हो रहा है जो संसार से आंख बन्द किये साधक को दिखता है। कुण्डलिनी ...साधना ने पाँचों इन्द्रियों रूपी भुजंगनियों को चट कर लिया, नियन्त्रण में कर ...। गाय तुल्य सीधे साधक ने भ्रम के सिंह को काट-काट कर खा लिया, विदूरित ...दिया। यह कर्म ऐसा ही है जैसे बकरी ने बघेरे को एवं हरिण ने चीते को खा ...। जो माया जीव को अपने फन्दे में फंसाये रहती थी उसी जीव ने साधना द्वारा ...को अपने कब्जे, नियन्त्रण में कर लिया—इस प्रकार बटेर बाज से जीत गई। ...उसी भांति अद्भुत है जैसे चूहा बिल्ली (माया) को, तथा बिल्ली ने श्वान को ...लिया हो।

ज्ञानी कबीर इस कथन द्वारा प्रभु का ही सन्देश अर्थात् प्रभु-भक्ति का सन्देश ...ना चाहते हैं।

विशेष—१. उलटवांसी के माध्यम से अद्भुत रस की प्रतिष्ठा हुई है। २. ...पमा, विरोधाभास, अतिशयोक्ति आदि अलंकार स्वाभाविक रूप से आये हैं।

ऐसा अद्भुत मेरे गुरि कथ्या, मैं रह्या उभेषं।
मूसा हसती सौं लड़ै, कोई बिरला पेषै ॥टेक॥
मूसा पैठा बांबि मैं, लारै सापणि धाई।
उलटि मूसै सापणि गिली, यहु अचिरज भाई॥
चींटी परबत ऊषण्यां, ले राख्यौ चौड़ै।
मुर्गा मिनकी सूं लड़ै, झल पांणीं दौड़ै॥
सुरहीं चूंषै बछतलि, बछा दूध उतारै।
ऐसा नवल गुंणी भया, सारदूलहि मारै॥
भील लुक्या वन बीझ मैं, ससा सर मारै।
कहै कबीर ताहि गुर करौं, जो या पदहि बिचारै॥१८१॥

कबीर कहते हैं कि सद्गुरु ने उस ब्रह्म का स्वरूप निरूपण ऐसी अद्भुत विधि ...किया कि मैं आश्चर्य चकित हो देखता ही रह गया। मन मायारूपी हाथी से ...ता है जिसको कोई भक्त ही देख पाता है। साधक साधना स्थित हो बैठ जाता ...एवं माया रूपी सर्पिणी उसकी ओर को लपकती है किंतु आश्चर्य यह कि उस साधक ...माया को परास्त कर दिया। यह कार्य वैसा ही हुआ कि चौड़े में चींटी ने पर्वत ...को उखाड़ कर रख दिया हो। माया और साधक का युद्ध होता है। ब्रह्मरन्ध्र से ...त अमृतोपम जल के मध्य ज्योतिस्वरूप ब्रह्म रहता है। इस प्रकार आत्मा रूपी ...ब्रह्मरन्ध्र रूपी बछड़े के नीचे चूस रही है, अमृत का पान कर रही है। अब यह ...साधक साधना द्वारा इतना सबल हो गया कि माया के सिंह को मार गिराता है। ...रूपी भील संसार-वन में छिप गया है और साधक फिर भी उसे बाण मार-मार ...कर नष्ट कर रहा है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कबीर कहते हैं कि मैं उसे अपना गुरु बना लूंगा जो इस पद को विचारे।

अवधू जागत नींद न कीजै ।
काल न खाइ कलप नहीं व्यापै, देही जुरा न छीजै ॥टेक॥
उलटी गंग संमुद्रहि सोखै, ससिहर सूर गरासै ।
नव ग्रिह मारि रोगिया बैठे, जल मैं व्यंब प्रकासै ॥
डाल गह्यां थैं मूल न सूझै मूल गह्यां फल पावा ।
वंबई उलटि शरप कौं लागी, धरणि महा रस खावा ॥
बैठि गुफा मैं सब जग देख्या, बाहरि कछू न सूझै ।
उलटै धनकि पारधी मार्यो, यहु अचिरज कोइ बूझै ॥
औंधा घड़ा न जल मैं डुबै, सूधा सूभर भरिया ।
जाकौं यहु जग घिण करि चालै, ता प्रसादि निस्तरिया ॥
अंबर बरसै धरती भीजै, यहु जांणैं सब कोई ।
धरती बरसै अंबर भीजै, बूझै बिरला कोई ॥
गांवणहारा कदे न गावै, अणबोल्या नित गावै ।
नटवर पेषि पेषनां, पेषै, अनहद बेन बजावै ॥
कहणीं रहणीं निज तत जांणैं, यहु सब अकथ कहाणीं ।
धरती उलटि अकासहि ग्रासै, यहु पुरिसां की बांणीं ॥
बाझ पियालै अमृत सोख्या, नदी नीर भरि राख्या ।
कहै कबीर ते बिरला जोगी, धरणि महारस चाख्या ॥१६३॥

कबीर कहते हैं कि हे अवधूत ! ज्ञान प्राप्त कर पुनः अज्ञान-निद्रा में मत पड़ो । जागृत रहने से मृत्यु बन्धन कभी नहीं बाँधता तथा शरीर जरावस्था द्वारा जीर्ण नहीं होता । सुषुम्णा में इड़ा और पिंगला का समन्वय हो जाने पर कुण्डलिनी ऊर्ध्वगति से शून्य कमल में पहुंच वहाँ से स्रवित अमृत का पान करती है। नौ चक्रों का भेदन कर साधक उस अमृत में ज्योतिस्वरूप अलख निरंजन ब्रह्म के दर्शन करता है। किन्तु यदि साधक कुण्डलिनी को मूलाधार से ऊपर न चढ़ावै तो उस ब्रह्म-रस की प्राप्ति नहीं हो सकती अपितु मूलाधार चक्र से ही साधना प्रारम्भ करने से ही उसकी प्राप्ति होगी । कुण्डलिनी वहां से उलटी होकर ऊर्ध्वगति से चल दी और उसने शून्य में पहुंच महारस का पान किया । मन को अंतर्मुखी करने से ही ब्रह्म के दर्शन होता है, इस दर्शन से संसार का प्रत्येक रहस्य प्रकट हो जाता है, किन्तु यदि मन बाहर विषय-वासनाओं में ही भटकता रहा तो फिर कुछ प्राप्त नहीं हो सकता। साधक ने इस प्रकार समाधिस्थ हो कुण्डलिनी की ऊर्ध्वगति से इस ब्रह्म ज्ञान को प्राप्त किया । इस आश्चर्य को जानने वाले थोड़े ही हैं ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

...जिस भांति उल्टा घट जल में डूबता नहीं है और सीधा ऊपर तक भर कर ...ता है उसी भांति जिन्होंने अपने आत्म-घट को संसार से उल्टा कर लिया है ...गर में डूब नहीं सकते किन्तु जो संसार की ओर ही इसका मुख किये रहेंगे ...व ही यहां डूब जायेंगे। जो इस संसार से घृणा करके चलता है अर्थात् इसके ...ों में लिप्त नहीं होता वह मुक्त हो जाता है। आकाश से बादलों के बरसने ...ब कोई ही जानता है। किन्तु औंधे कुएं—ब्रह्मरन्ध्र—से अमृत वर्षा के ...ने कोई-कोई ही परिचित होता है। जो प्रभु के गुणों का गान सर्वदा अपने ...करता रहता है वह कभी-कभी चिल्ला कर प्रार्थना नहीं करता, जो उसका ...न में प्रतिपल नहीं लेता वही बाँग दे देकर प्रभु का नाम पुकारता है। यदि उस ...र ब्रह्म को देखना है तो देखो, वह अनहद नाद की वेणु की स्वर लहरी छेड़ता ...ायक का कथन, वास और प्रत्येक कर्म कलाप इस अलख से ही सम्बन्धित ...चाहिए। यह महापुरुषों का कथन है कि कुण्डलिनी उलट कर आकाश-शून्य में ...र अमृत का पान करती है। यह अमृत कुण्ड कभी सूख नहीं सकता, सरिता के ...में सर्वदा प्रवाहित रहता है। कबीर कहते हैं कि कोई विरला योगी ही इस महारस ...ब्रह्मरन्ध्र से स्रावित अमृत का पान करता है।

विशेष—१. योगसाधना का उसके पारिभाषिक शब्दों एवं परिभाषानुसार ...न हुआ है। २. अतिशयोक्ति, अनुप्रास, विरोधाभास, उपमा, आदि अलंकारों का ...ा है। ३. उलटवाँसियों की अद्भुत रसपूर्ण विरोधाभासयुक्त प्रतीकात्मकता ...नीय है।

रांम गुन बेलड़ी रे, अवधू गोरखनाथि जांणी।
नाति सरूप न छाया जाकै, बिरध करै बिन पांणीं ॥टेक॥
बेलड़िया द्वै अणीं पहूँती, गगन पहूंती सैली।
सहज बेलि जब फूलण लागी, डाली कूपल मेल्ही ॥
मन कुंजर जाइ बाड़ी बिलंब्या, सतगुर बाही बेली।
पंच सखी मिलि पवन पयंप्या, बाड़ी पांणीं मेल्ही ॥
काटत बेली कूपले मेल्हीं, सींचताड़ीं कुमिलांणीं।
कहै कबीर ते बिरला जोगी, सहज निरंतर जाणीं ॥१६३॥

...हे अवधूत ! गोरखनाथ जैसे सन्त ने रामगुणलता को पहचाना था। उसका न ...कुछ स्वरूप है, स्वरूपविहीन होने से उसकी छाया भी नहीं है एवं बिना माया-जल ...ही उसकी वृद्धि होती है, माया बिना ही वह पल्लवित और पुष्पित होती है। ...यह रामगुणवेली पृथ्वी से आकाश तक फैली हुई है। जब सहज समाधि लगने लगी ...तो यह बेली और अधिक पल्लवित हुई। सद्गुरु ने मनरूपी हाथी को इस लता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के पास भेज दिया अर्थात् मन प्रभु गुणगान करने लगा। पाँचों इन्द्रियां विषय- हट कर इधर ही लग गईं, इसी को सिंचित करने लगीं। माया-वेली को काट इस राम-गुण-लता पर नवीन पल्लव प्रस्फुटित हाते हैं और माया-वेली का सिंचन करने से यह कुम्हला जाती है। कबीर कहते हैं कि कोई विरला योगी ही साधना के मर्म को समझ पाता है।

रांम राइ अविगत बिगति न जानं,
कहि किम तोहि रूप बषानं ।।टेक।।
प्रथमे गगन कि पुहमि प्रथमे प्रभू, प्रथमे पवन कि पाँणीं।
प्रथमे चंद कि सूर प्रथमे प्रभू, प्रथमे कौंन बिनांणीं।।
प्रथमे प्राण कि प्यंड प्रथमे प्रभू, प्रथमे रक्त कि रेतं।
प्रथमे पुरिष कि नारि प्रथमे प्रभू, प्रथमे बीज कि खेतं।।
प्रथमे दिवस कि रैंणि प्रथमे प्रभू, प्रथमे पाप कि पुन्यं।
कहै कबीर जहां बसहु निरंजन, तहां कुछ आहि कि सुन्यं।।१६

कबीर कहते हैं कि हे भाई ! राजा राम, प्रभु का स्वरूप कथन करना कठिन है, मैं उनके स्वरूप का वर्णन किस भांति कर सकता हूं। पृथ्वी और आका पहले हुए अथवा प्रभु ? वायु, पवन, चन्द्र, सूर्य और प्रभु इनमें पहले कौन जन्मा पहले प्राण हुए कि शरीर, पहले रक्त हुआ कि रज, पहले नारी हुई अथवा पु पहले बीज का अस्तित्व है कि क्षेत्र का ? पहले रात्रि हुई थी या दिवस ? पाप-पुण्य में किस की धारणा उद्भूत हुई ?—जिस भांति ये सब प्रश्न बड़े वि और निरुत्तर कर देने वाले हैं उसी प्रकार प्रभु के स्वरूप, आकार-प्रकार के विष कुछ नहीं कहा जा सकता।

कबीर कहते हैं कि जहाँ अलख निरंजन ज्योति स्वरूप परमात्मा का निवा वहाँ शून्य के अतिरिक्त और कुछ नहीं।

अवधू सो जोगी गुर मेरा, जो या पद का कर नवेरा ।।टेक।।
तरवर एक पेड़ बिन ठाढ़ा, बिन फूलां फल लागा।
साखा पत्र कछू नहीं वाकै, अष्ट गगन मुख बागा।।
पैर बिन निरति करां बिन बाजै, जिभ्या हींणां गावै।
गावणहारे कै रूप न रेषा, सतगुर होइ लखावै।।
पंषी का षोज मींन का मारग, कहै कबीर बिचारी।
अपरंपार पार परसोतम, वा मूरति की बलिहारी।।१६५।।

कबीर कहते हैं कि हे अवधूत ! जो योगी इस पद का अर्थ स्पष्ट कर दे मेरा गुरु है। एक पेड़ बिना तने के खड़ा है एवं बिना पल्लवित हुए ही उस पर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

...हैं। उस पर शाखा एवं पत्र भी कुछ नहीं हैं, वह केवल अष्ट-चक्रों के भेदनो-...प्राप्त होता है। वह ब्रह्म बिना पैर एवं साज के नृत्य कर रहा है और रसना ...गान – अनहद नाद करता है। उस गायक का कोई स्वरूप और आकार-प्रकार ...केवल सद्गुरु ही उसे दर्शा सकते हैं। कबीर विचारपूर्वक कहते हैं कि ब्रह्म तक ...का मार्ग पक्षी की गति के समान एवं मीन के कार्य जैसा है। वह अपार, ...पूर्ण पुरुषोत्तम है, मैं उस प्रभु की बलिहारी जाता हूं।

अब मैं जांणिबौ रे केवल राइ की कहांणी।
मंझा जोति रांम प्रकासै, गुर गमि बांणी ॥टेक॥
तरवर एक अनत मूरति, सुरता लेहु पिछांणी।
साखा पेड़ फूल फल नांहीं, ताकी अंमृत वांणी ॥
पुहप बास भवरा एक राता, बारा ले उर धरिया।
सोलह मंझैं पवन झकोरै, आकासे फल फलिया।
सहज समाधि विरष यहु सींच्या, धरती जल हर सोष्या।
कहै कबीर तास मैं चेला, जिनि यहु तरवर पेष्या ॥१६६॥

कबीर कहते हैं कि मैं उस प्रभु का रहस्य जान गया हूं। गुरु उपदेश से यह ज्ञात ...कि अनन्त प्रकाश के मध्य उस ज्योति स्वरूप ब्रह्म का निवास है। शून्य तरु पर ...अनन्त सौदर्यमयी मूर्ति— ब्रह्म—है। 'सुरत' द्वारा, सहजसमाधि द्वारा उसके दर्शन ...जा सकते हैं। उस तरु की शाखा, पत्र, तना इत्यादि सामान्य वृक्ष की भांति ...हैं अपितु वहां तो केवल मात्र अमृत का ही स्रवण होता है। उस तरुवर के ...पर मधु-लोभी मधुकर—साधक—पहुंचता है। और उस अमृत को अपने ...में संचित कर लेता है। इस प्रकार सोलह पवनों से वह स्पर्श करता है और ...फल शून्य में ही लगा हुआ है। सहज समाधि के द्वारा इस वृक्ष का अभि-...किया जाता है, उसे सांसारिकता का स्पर्श तक नहीं होता। कबीर कहते हैं ...मैं उस साधक भक्त का शिष्य हूं जिसने ब्रह्मस्वरूप इस अद्भुत वृक्ष को देख ...है।

राजा रांम कवन रंगैं, जैसैं परिमल पुहप संगैं ॥टेक॥
पंचतत ले कीन्ह बंधान, चौरासी लष जीव समांन।
बेगर बेगर राखि ले भाव, तामैं कीन्ह आपको ठांव ॥
जैसैं पावक भंजन का बसेष, घट उनमान कीया प्रवेस।
कह्या चाहूँ कछू कह्या न जाइ, जल जीव ह्वै जल नहीं बिगराइ ॥
सकल आतमां बयतै जे, छल बल कौं सब चीन्हि बसे।
चीनियत चीनियत ता चीन्हिलै से, तिहि चीन्हिअत धूंका करके ॥
आपा पर सब एक समांन, तब हम पाया पद निरबांण।
कहै कबीर मन्य भया संतोष, मिले भगवंत गया दुख दोष ॥१६७॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कबीर कहते हैं कि प्रभु उसी प्रकार सर्वत्र व्यापक और सबके साथ है जैसे पुष्प के साथ सुगन्ध ! हे मनुष्य उसने समान पंच तत्वों से इस सृष्टि का निर्माण किया है और वह चौरासी लाख जीव-योनियों पर सम दृष्टि रखता है। तू प्रभु को हृदय में निष्ठा-पूर्वक बसा ले जिससे तू संसार में कुछ समय अपने अस्तित्व को स्थिर कर सके। जिस भांति अग्नि किसी वस्तु में शीघ्र प्रवेश करती है, उसी प्रकार कुंडलिनी ने ऊर्ध्वगति प्राप्त कर शून्य में प्रवेश किया है। अब मेरी गति ऐसी हो गयी है कि कुछ कहना तो चाहता हूं किन्तु कुछ कह नहीं सकता, यह आत्मा उसी अंशी का अंश है किन्तु अपनी कलुषता से उस परमात्मा का कुछ नहीं बिगाड़ सकता। जितनी भी मुक्तात्माएं हैं वे सब संसार के माया-भ्रम को विदूरित कर ही मुक्त हुई हैं। शनैः शनैः ऐसा अभ्यास कर जो उस प्रभु को अवसर पाकर (धूंका) पहचान ले। जब 'अहं परं' की भावना का परित्याग कर दिया तभी यह मुक्ति-पद प्राप्त हुआ। कबीर वर्णन करते हैं कि प्रभु के मिलने से मेरे दुख तथा क्लेश नष्ट हो गये और को परितोष प्राप्त हुआ।

अंतर गति अनि अनि बांणीं।
गगन गुपत मधुकर मधु पीवत, सुगति सेस सिव जांणीं ॥टेक॥
त्रिगुन त्रिविधि तलपत तिमरातन, तंती तंत मिलांनीं।
भागे भरम भोइन भये भारी, बिधि बिरंचि सुषि जांणीं ॥
बरन पवन अबरन बिधि पावक, अनल अमर मरै पांणीं।
रबि ससि सुभग रहे भरि सब घटि, सबद सुंनि थितिमांहीं ॥
संकट सकति सकल सुख खोये, उदिध मथित सब हारे।
कहै कबीर अगम पुर पटण प्रगटि पुरातन जारे ॥१६॥

कबीर कहते हैं कि हृदय में प्रभु का वास है। शून्य लोक में ब्रह्म रन्ध्र में मधुकर—आत्मा—अमृत रूपी जिस मधु का पान कर रही है उसके मधुर रस को नाग व शिव ही जान सकते हैं। यह आत्मा त्रिगुणात्मक त्रिविधि-युक्त संसार के माया-मोह में उलझ रही थी किन्तु इस अमृत पान से तत्व—आत्मा— अंश परम तत्व, परमात्मा, अंशी से एकाकार हो जाती है जिसके द्वारा संसार भ्रम का मोह जंजाल दूर हो गया—इस सुख का अनुभव ब्रह्मा आदि ही जान सकते हैं। इस स्थिति में पहुंचने पर क्षिति, जल, पावक, गगन, वायु आदि तत्व परम तत्व में लीन हो जाते हैं—शरीर का महत्व नहीं रहता। सूर्य, चन्द्र, नक्षत्रादि सब अनहद नाद सुनकर रूपेण स्थित हो गये, साधक स्थितप्रज्ञ स्थिति में आ गया। इस संसार का वारि-विलोने में ही मनुष्य ने अपने समस्त सुखों को नष्ट कर डाला है। कबीर कहते हैं कि अगम्य प्रभु के लोक की प्राप्ति पुरातन पापों का प्रक्षालन करने से ही होती है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विशेष:— १. त्रिगुण—सत, रज, तम।
२. त्रिविधि—वेद विधि, लोक विधि, कुल विधि।
३. विधि विरंचि—में पुनरुक्ति दोप है, जो कबीर के लिए क्षम्य है क्योंकि हिन्दू ...ग्रों के संबन्ध में उनका ज्ञान उतना ही है जितना कि हम एक अपढ़ विधर्मी से ...आशा कर सकते हैं—मुसलमान से। वस्तुत: उनका यह ज्ञान ही नहीं समस्त ज्ञान ...संग से प्राप्त किया हुआ है। वैसे उनके लिए विधर्मी शब्द प्रयुक्त करना उपयुक्त ...वे तो राम-रसायन पीकर मद मस्त हैं—उनका पालन पोषण ही केवल मुसलमान ...जुलाहा दम्पति के द्वारा हुआ, वैसे उनकी शिराओं में हिन्दू रक्त दौड़ रहा था। इस ...सम्बन्ध में आचार्यवर डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी जी के शब्द द्रष्टव्य हैं—"संयोग ...से वे ऐसे युग-संधि के समय उत्पन्न हुए थे जिसे हम विविध धर्म-साधनाओं और ...मनोभावनाओं का चौराहा कह सकते हैं। उन्हें सौभाग्यवश सुयोग भी अच्छा मिला ...था। जितने प्रकार के संस्कार पड़ने के रास्ते हैं वे प्राय: सभी उनके लिए बंद थे। ...वे मुसलमान होकर भी असल में मुसलमान नहीं थे। वे हिन्दू होकर भी हिन्दू नहीं ...थे। वे साधु होकर भी साधु (अगृहस्थ) नहीं थे। वे वैष्णव होकर भी वैष्णव नहीं ...थे। वे योगी होकर भी योगी नहीं थे। वे कुछ भगवान की ओर से ही सबसे न्यारे ...बन कर भेजे गये थे। कबीर ऐसे ही मिलन बिन्दु पर खड़े थे, जहाँ से एक ओर ...हिन्दुत्व निकल जाता है दूसरी ओर मुसलमानत्व; ......"[1]

इस पद का कला पक्ष भी दर्शनीय है, यहाँ प्रत्येक शब्द ढपली पर गाने में चाहे ...जिस रूप में नहीं निकल गया है अपितु प्रत्येक शब्द ढपली के स्वर पर थिरक २ कर ...मधुर स्वर लहरी उत्पन्न करने के लिए निकला है।

लाधा है कछू लाधा है, ताकी पारिष को न लहै।
अबरन एक अकल अबिनासी, घटि घटि आप रहै॥टेक॥
तोल न मोल माप कछु नाहीं, गिणंती ग्यान न होई।
नां सो भारी नां सो हलवा, ताकी पारिष लषै न कोई॥
जामैं हक सोई हम हीं मैं, नीर मिलें जल एक हूवा।
यौं जांणें तौ कोई न मरिहै, बिन जांणं थैं बहुत मूवा॥
दास कबीर प्रेम रस पाया, पीवणहार न पाऊं।
विधनां बचन पिछाणत नाहीं, कहु क्या काढ़ि दिखाऊं॥१६६॥

वह अरूप अविनाशी ब्रह्म घट-घट व्यापी है, यह जानते हुए भी कोई उसके विषय में कुछ भी जान नहीं सका है। न उसका कोई भार अथवा माप है, न उसे अंकों की गणना द्वारा जाना जा सकता है। न वह भारी ही है और न हल्का ही, उसे कोई

१. हिन्दी साहित्य।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भी पहचान नहीं सकता। हम उसके अन्दर समाहित हैं और वह हम सबके हृदय में रम रहा है, जिस प्रकार जल के दो प्रकार मिलकर एकमेक हो जाते हैं, उसी प्रकार उस अंशी से अंश मिलकर तद्रूप हो जाता है। यदि मनुष्य उसको जान लें तो फिर कोई न मरे और बिना उसे जाने तो समस्त संसार मृत्यु को प्राप्त हो ही रहा है। कबीर कहते हैं कि मैंने उस प्रभु के प्रेम रस को प्राप्त कर लिया है किन्तु अब मुझे अन्य कोई उसका पीने वाला नहीं मिलता। ब्रह्मा तक तो मेरे शब्दों का अर्थ नहीं समझ पाता है फिर भला प्रभु मिलन से सम्बन्धित आनन्द को अभिव्यक्ति कैसे दूं (गूंगे का गुड़ ही जो ठहरा)।

हरि हिरदै रे अनत कत चाहौ,
भूलै भरम दुनीं कत बाहौ ॥टेक॥
जग परबोधि होत नर खाली, करते उदर उपाया।
आत्म रांम न चीन्हैं संतौ, क्यूं रमि लै रांम राया॥
लागैं प्यास नीर सो पीवै, बिन लागैं नहीं पीवै।
खोजैं तत मिलै अबिनासी, बिन खोजैं नहीं जीवै॥
कहै कबीर कठिन यह करणीं, जैसी षडे धारा।
उलटीं चाल मिलै परब्रह्म कौं, सो सतगुरू हमारा ॥१७०॥

कबीर कहते हैं कि वह प्रभु तो प्रत्येक हृदय में स्थित है किन्तु फिर भी जगत भ्रम में भटक कर उसे अन्यत्र खोजता है। इस मूर्ख, अज्ञानग्रस्त संसार को समझाने से तो बुद्धि खाली होती है, यह तो उदरपूर्ति के ही साधनों में भटका हुआ है। ये घट-वासी प्रभु को भी नहीं पहचानते, इसीलिए सृष्टि के कण-कण में व्याप्त प्रभु के दर्शन इन्हें नहीं हो सकते। जिस प्रकार तृषित को ही खोजने पर जल की प्राप्ति होती है, बिना खोज (साधन) के नहीं उसी भाँति जो प्रभु को साधना द्वारा प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं उन्हें ही उसकी प्राप्ति होती है। कबीरदास कहते हैं कि किन्तु यह साधना मार्ग इतना ही कठिन है जितना तलवार की धार पर गमन करना—

"अति तीछण प्रेम कौ पंथ महा,
तरवार की धार पै धावनौ है।"

वे आगे कहते हैं कि जो अपनी कुण्डलिनी शक्ति को ऊर्ध्वगामी कर साधना द्वारा प्रभु को प्राप्त करता है, वह योगी हमारे लिए गुरुवत् पूज्य है।

रे मन बैठि कितै जिनि जासी, हिरदै सरोवर है अबिनासी ॥टेक॥
काया मधे कोटि तीरथ, काया मधे कासी।
काया मधे कवलापति, काया मधे बैकुंठबासी॥
उलटि पवन षटचक्र निवासी, तीरथराज गंग तट बासी॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गगन मंडल रबि ससि दोइ तारा, उलटी कूंची लागि किवारा ।
कहै कबीर भई उजियारा, पंच मारि एक रह्यो निनारा ।।१७१।।

कबीर कहते हैं कि हे मन ! तू व्यर्थ इधर-उधर क्यों भटक रहा है ? वह स्वामी प्रभु तो हृदय सरोवर में ही विद्यमान है । अन्यत्र जाकर तीर्थ-पूजा की क्या आवश्यकता है, इस शरीर में ही करोड़ों काशी आदि तीर्थ हैं । इस शरीर में ही लक्ष्मी-पति वैकुण्ठवासी भगवान् विष्णु विद्यमान हैं । इसलिए तू प्राणायाम साधना से कुण्डलिनी को ऊर्ध्वगामी कर षट्चक्रों का भेदन करता हुआ तीर्थराज प्रयाग (त्रिकुटी) एवं (ब्रह्मरन्ध्र) तट का वासी हो । उस शून्यमण्डल में सूर्य, चन्द्र, तारे का प्रकाश अनन्त ज्योतिस्वरूप परमात्मा—का वास है । उसके किवाड़ लगे हैं जिसे कुण्डलिनी उलटी कर खोलना है । कबीर कहते हैं कि पाँचों इन्द्रियों को वहीं केन्द्रस्थित करने से ज्ञान-स्वरूप परमात्मा का दर्शन प्राप्त होता है ।

रांम बिन जन्म मरन भयौ भारी ।
साधिक सिध सूर अरु सुरपति, भ्रमत गये हारी ।।टेक।।
ब्यंद भाव भ्रिग तत जंत्रक, सकल सुख सुखकारी ।
श्रवत सुनि रवि ससि सिब सिव, पलक पुरिष पल नारी ।।
अंतर गगन होत अंतर धुंनि, बिन सासनि है सोई ।
घोरत सबद समंगल सब घटि, ब्यंदत ब्यंदै कोई ।।
पांणीं पवन अवनि नभ पावक, तिहि संगि सदा बसेरा ।
कहै कबीर मन मन करि बेध्या, बहुरि न कीया फेरा ।।१७२।।

साधक, सिद्ध, शूरवीर एवं देवराज इन्द्र सब इस संसार में भटक-भटक कर हार गये किन्तु बिना प्रभु के तो वे जन्म-मरण के बन्धन में ही बंधे रहते हैं । प्रभु-नाम एक ऐसा मन्त्र है जो समस्त प्राणियों के लिये सुखदायी है । शिव, सूर्य, चन्द्र आदि सब जानते हैं कि वह प्रभु कभी पल में स्त्री और तो कभी पल में पुरुष रूप में परिवर्तित हो जाता है । शून्य मण्डल में उसके रहते हुए एक मंगल ध्वनि होती है एवं वह प्रभु बिना साँस प्राण वायु के भी जीवित है । यह अनहद शब्द प्रत्येक हृदय में गूँज रहा है किन्तु बिरले ही इसको सुनकर प्रभु वन्दना करते हैं । उस ईश्वर के सम्पर्क में क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर-सब सर्वदा साथ रहते हैं । कबीर कहते हैं कि मन को मैंने इतनी दृढ़ता से नियन्त्रित किया है कि यह पुनः विषय-वासनाओं में लिप्त नहीं होगा ।

नर देही बहुरि न पाईये, ताथैं हरषि हरषि गुंण गाईये ।।टेक।।
जे मन नहीं तजै बिकारा, तौ, क्यूं तिरिये भौ पारा ।
जब मन छाड़ै कुटिलाई, तब आइ मिलै राम राई ।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ज्यूं जींमण त्यूं मरणां, पछितावा कछू न करणा।
जांणि मरै जे कोई, तौ बहुरि न मरणां होई॥
गुर वचनां मंझि समावै, तब रांम नांम ल्यौ लावै।
जब रांम नांम ल्यौ लागा, तब भ्रम गया भौ भागा॥
ससिहर सूर मिलावा, तब अनहद बेन बजावा।
जब अनहद बाजा बाजै, तब सांई संगि बिराजै॥
होइ संत जनन के संगी, मन राचि रह्यौ हरि रंगी।
धरौ चरन कवल बिसवासा, ज्यूं होइ निरभै पद वासा॥
यहु काचा खेल न होई, जन षरतर खेलै कोई।
जब षरतर खेल मचावा, तब गगन मंडल मठ छावा॥
चित चंचल निहचल कीजै, तब रांम रसांइन पीजै।
जब रांम रसांइन पीया तब काल मिट्या जन जीया॥
यूं दास कबीरा गावै, ताथैं मन कौं मन समझावै।
मन हीं मन समझाया, तब सतगुर मिलि सचुपाया॥१७३॥

हे मनुष्य ! तू पुनः इस मानव शरीर को प्राप्त नहीं कर पायेगा, इस उल्लास और प्रसन्नता सहित प्रभु का गुणगान कर क्योंकि प्रभु भक्ति इसी में सम्भव है। जो यह मन विषय-वासनाओं को नहीं त्यागेगा तो यह संसार-साग किस भांति पार होगा। जब मन कुटिलता छोड़ निर्मल हो जायेगा तो भगवान् आकर तुझसे मिलेंगे। जो मनुष्य जीवन धारण किये हुए है वह मरेगा अवश्य फिर इस भाँति पछताने से कुछ नहीं होगा कि काश हम प्रभु भक्ति के लिये होते। यदि कोई जीते जी मर जाय, जीवन्मुक्त स्थिति को प्राप्त कर ले तो फिर बार-बार जन्म मृत्यु के बन्धन में बंधना न पड़े। जो साधक, भक्त, गुरु उपदे अपना मन लगा देगा वही प्रभु नाम से अपना ध्यान लगा सकता है। प्रभु से प्रेम पर इस संसार का भ्रम विदूरित हो जाता है। यदि सूर्य-चन्द्र रूप इड़ा-पिंगला जाँय (कुण्डलिनी उस मार्ग से शून्य भेदन करे) तो अनहद नाद की वेणु मुखरि जाती है। जब यह अनहद शब्द बजता है तभी भक्त को ज्योतिरूप भगवान् के होते हैं। अब यह मन प्रभु के रंग में रंग साधु पुरुषों की संगति में रहता है। मैं प्रभु के चरण कमलों का विश्वासी हो गया हूं इससे ही तो वहाँ (चरणों में निर्भय की प्राप्ति होती है। यह प्रभु भक्ति कोई कच्चा खेल नहीं है, इसे कोई धैर्यवा खेल सकता है। जब साधना के रूप में यह कठिन खेल प्रारम्भ हो जाता है तो शून्य मण्डल का वासी बन जाता है। मन को पूर्णरूपेण स्थिर कर प्रभु-भक्ति मधुर रस पान करना चाहिए जिसके पान करते ही काल—मृत्यु—का भय समाप्त

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

...है। इस प्रकार भक्त कबीर प्रभु-भक्ति का निरूपण करते हैं और मन ही मन ...न को प्रबोध देते हैं। जब मन स्वयं ही मन को समझाने लगता है तभी सच्चे ...की प्राप्ति होती है जिससे प्रभु दर्शन होता है।

अवधू अगनि जरै कै काठ।
पूछौं पंडित जोग संन्यासी, सतगुर चीन्हैं बाट ॥टेक॥
अगनि पवन मैं पवन कवन मैं, सबद गगन के पवनां।
निराकार प्रभु आदि निरंजन, कत रवंते भवनां ॥
उतपति जोति कवन अंधियारा, घन बादल का बरिषा।
प्रगट्यौ बीज धरनि अति अधिकै, पारब्रह्म नहीं देखा।
मरना मरै न मरि सकै, मरनां दूरि न नेरा ॥
द्वादस द्वादस सनमुख देखैं, आपैं आप अकेला।
जे बांध्या ते छुछंद मुकता, बांधनहार बांध्या ॥
बांध्या मुकता मुकता बांध्या, तिहि पारब्रह्म हरि लांघा।
जे जाता ते कौंण पठाता, रहता ते किन राख्या ॥
अमृत समांनां, विष मैं जांनां, विष मैं अमृत चाख्या।
कहै कबीर बिचार बिचारी, तिल मैं मेर समांनां ॥
अनेक जनम का गुर गुर करता, सतगुर तब भेटांनां ॥१७४॥

हे अवधूत ! यह माया में वासना अग्नि लग रही है अथवा जीव में जो प्रभु का अंश है ? यह बात मैं योगी, संन्यासी, ज्ञानी सभी से पूछता हूं किन्तु इसके ज्ञाता तो केवल सद्गुरु ही हैं। अग्नि तो प्राणवायु—वायु – में समा जाती है किन्तु यह पव किस में समाता हैं ? यह वायु भी अनहद नाद के महाशब्द में लीन हो जाती है। वह प्रभु तो निराकार, निरंजन एवं अनादि है वह किसी मन्दिर—भवन – में कब रहता है। उस ज्योतिस्वरूप परमेश्वर के प्रकट होते ही अज्ञानांधकार शेष नहीं रह जाता एवं उस अनुपम बादल से अमृत वर्षा होने लगती है। इस प्रकार से प्रभु का दर्शन होता है किन्तु यह संसार फिर भी अपने तापों से दुखित है, प्रभु के दर्शन का प्रयास नहीं करता। प्रभु को प्राप्त करने में मरना पड़ता है, अर्थात् साधना-स्थली कठिन है. यह मरण बड़ा कठिन है, सरल नहीं। मरकर, जीवन्मुक्त होकर प्रभु-प्राप्ति करते समय द्वादश आदित्यों का प्रकाश दृष्टिगत होता है और आत्मा वहाँ ब्रह्म के ...थ अकेली रह जाती है। जो संसार में बद्ध हैं उनकी गति छछून्दर तुल्य है, स्रष्टा ही ने उन्हें माया-बंधन में बाँध दिया है। जो बन्धन में पड़े हुए हैं वे मुक्त होने का प्रयास क्यों नहीं करते, वे पारब्रह्म परमेश्वर की आराधना नहीं करते। जो प्रभु भक्ति मार्ग में प्रवृत्त हुआ चाहता है उसे कौन भेजता है वह तो स्वयं वहाँ चला जाता है और जो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

उस मार्ग को ग्रहण नहीं करता भला उसे किसने रोका है ? इस कठिन प्र भक्ति के द्वारा मैंने अमृत का पान किया है इस विष में ही, कष्ट में ही अमृत की प्राप्ति होती है। कबीर विचारपूर्वक कहते हैं कि भक्ति अपनाने से पलभर में ही मेरा अंहत्व समाप्त हो गया और अनेक जन्म के पुण्य फलों द्वारा मुझे उस सद्गुरु की प्राप्ति हुई जिसने प्रभु से मिला दिया।

अवधू ऐसा ग्यान बिचारं।
भेरैं चढे सु अधधर डूबे, निराधार भये पार ॥टेक॥
ऊघट चले सु नगरि पहूंते, बाट चले ते लूटे।
एक जेवड़ी सब लपटांनें, के बांधे के छूटे॥
मंदिर पैसि चहूँ दिसि भीगे, बाहरि रहे ते सूका।
सरि मारे ते सदा सुखारे, अनमारे ते दूषा॥
बिन नैंनन के सब जग देखै, लोचन अछते अंधा।
कहै कवीर कछु समझि परी है, यहु जग देख्या धंधा ॥१७५॥

हे अवधूत ! तू ऐसे अनुपम ज्ञान का विचार कर जिसमें संसार आश्रय ढूंढने पर मनुष्य डूब जाता है और संसार से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर देने पर वह इस सागर से पार हो जाता है। जो उल्टी चाल, कुण्डलिनी की ऊर्ध्वगति, से चले वे प्रभु के उस प्रदेश (शून्य) में पहुंच गये किन्तु जो मार्ग आदि में सीधे ही अन्य सांसारिकों की भाँति चले वे तो लुट कर सर्वस्व गंवा कर बैठ गये। एक माया रज्जु से समस्त संसार बंधा हुआ है। वहां शून्य मन्दिर में जो कोई भी पहुंचा वह उस अनुपम अमृत रस से भीग कर अमर हो गया और जो बाहर रह गया वह सूखा ही रहा, उसे वह अद्भुत अमृत प्राप्त नहीं हुआ। जिन्होंने अपने मन को मार दिया है वे सर्वदा सुखी रहे और जिन्होंने उसे स्वतन्त्र छोड़ दिया वे तो दुखी हैं ही। वह बिना नेत्रों के ही समस्त संसार की गतिविधि को देख लेता है और इस प्रकार नेत्र वाले अन्धों से अच्छा है। कबीर कहते हैं कि अन्ततः यह समझ में आया कि संसार धोखे से परिपूर्ण है।

विशेष—१. विरोधाभास, विभावना आदि अलंकार।

२. संसार को इसी प्रकार सब सन्तों, समस्त विचारकों ने एवं सामान्य प्राणी तक ने धोखा प्रपंच, छल, माया, ही माना है। पं० प्रतापनारायण मिश्र अपने "धोखा" निबन्ध में कितने सुन्दर ढंग से इसी बात को प्रस्तुत करते हैं—

"सच है ! भ्रमोत्पादक भ्रमस्वरूप भगवान् के बनाये हुए भव (संसार) में जो कुछ है भ्रम ही है। जब तक भ्रम है, तभी तक संसार है, वरंच संसार का स्वामी तभी तक है फिर कुछ भी नहीं।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जग धंधा रे जग धंधा, सब्र लोगन जांणै ग्रंधा ।
लोभ मोह जेवड़ी लपटानी, बिनही गांठि गह्यो फंदा ।।टेक।।
ऊंचै टीबै मछ बसत है, ससा बसै जल मांहीं ।
परबत ऊपरि लोक डूबि मूवा, नीर मूवा धूं कांहीं ।।
जलै नीर तिण षड सब उबरै, बैसंदर ले सींचै ।
ऊपरि मूल फूल तिन भीतरि, जिनि जान्या तिनि नीकै ।।
कहै कबीर जांनहीं जांनैं, ग्रन-जांनत दुख भारी ।
हारी बाट बटाऊ जीत्या, जांनत की बलिहारी ।।१७६।।

"यह संसार प्रपंच है—इसके ग्रतिरिक्त कुछ भी नहीं" इस तथ्य से सब ...नत हैं । यहां जीव को लोभ, मोह की रज्जु विना गाँठ डाले फन्दा बना कर ...ाये रहती है । ऊंचे टीले, शून्य-शिखर पर मछली—ब्रह्म—बसता है ग्रौर ...रगोश, कुण्डलिनी, नीचे मूलाधार चक्र पर स्थित है । इस शून्य पर्वत के ऊपर ग्रर्थात ...े पाने के प्रयत्न में वहुतसे नष्ट हो गये किन्तु वहाँ से स्रवित ग्रमृत की प्राप्ति ...िसी को नहीं होती । उस जल को जिसने भी प्राप्त कर लिया वे सब मुक्त हो गये । ...स वृक्ष की जड ऊपर तथा फल नीचे हैं जिन्होंने उसे जान लिया वे ही श्रेष्ठ हैं । ...कबीर कहते हैं कि जानने का प्रयत्न किये से ही उसे जाना जा सकता है, बिना जाने ...ो उससे महान् वेदना होती है, संसार-ताप विदूरित नहीं होते । साधना मार्ग में एक ...िन वह ग्रवश्य ग्रा जाता है जब लक्ष्य—ब्रह्म—सम्मुख ग्रा जाता है, कबीर उस ...क्ष्य प्राप्त भक्त की वलिहारी जाता है ।

विशेष—विभावना, रूपकातिशयोक्ति, रूपक ग्रादि ग्रलंकार ।

ग्रवधू ब्रह्म मतै घरि जाइ ।
कालिह जु तेरी बंसरिया छीनीं, कहा चरावै गाइ ।।टेक।।
तालि चुगैं बन तीतर लउवा, परवति चरै सौरा मछा ।
बन की हिरनीं कूवै बियांनीं, ससा फिरै ग्रकासा ।।
ऊंट मारि मैं चारै लावा, हस्ती तरंडवा देई ।
बंबूर की डरियां बनसी लैहूँ, सीयरा भूंकि भूंकि पाई ।।
ग्रांब कैं बौरे चरहल करहल, निबिया छोलिछोलि खाई ।
मोरे ग्राग निदाष दरी बल, कहै कबीर समझाई ।।१७७।।

हे ग्रवधूत ! ब्रह्म का रहस्य जान पाना बड़ा कठिन है क्योंकि कल जिसने ...री बाँसुरी चुराई, उस चोर से गायों के चराने की ग्राशा कैसे की जाये ? ग्रथवा ...कल जिसने स्वयं तेरी बाँसुरी कृष्णरूप में चुराई थी उससे इन्द्रियों के वश में रखने ...की ग्राशा कैसे की जाये । वन रूपी संसार जीवरूप तीतर को नष्ट कर रहा है ग्रौर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

सुसरी मछली रूपी माया पर्वत सदृश संसार को खा रही है। मृग तुल्य वन-वन भटकने वाला मन हृदयकूप में केन्द्रित हो गया और खरगोश रूप कुण्डलिनी आकाश—शून्य मण्डल—में रम रही है। मैंने अहं के ऊंचे ऊंट को समाप्त कर दिया है। माया रूपी हस्तिनी स्वयं अब मेरी चेरी है। शुष्क साधना रूप बबूल वृक्ष पर मधुर फल लग रहे हैं जिन्हें कुण्डलिनी के द्वारा साधक प्राप्त कर रहा है। आम की डाली (भक्ति) पर बैठकर मनभावन स्वादों से युक्त फल प्राप्त किये जा सकते हैं। कबीर कहते हैं कि मुझे तो दाख आदि सब कुछ प्राप्त हो गये हैं।

विशेष—रूपकातिशयोक्ति, विरोधाभास, विभावना आदि अलंकार।

कहा करौं कैसें तिरौं, भौ जल अति भारी।
तुम्ह सरणा-गति केसवा, राखि राखि मुरारी ।।टेक।।
घर तजि बन खडि जाइये खानि खइये कंदा।
बिषै बिकार न छूटई, ऐसा मन गंदा ।।
बिष बिषिया कौ बासनां, तजौं तजी नही जाई।
अनेक जतंन करि सुरझिहौं, फुनि फुनि उरझाई ।।
जीव अछित जोबन गया, कछू कीया न नीका।
यहु हीरा निरमोलिका, कौडी पर बीका ।।
कहै कबीर सुनि केसवा, तूं सकल बियापी।
तुम्ह समांनि दाता नहीं, हंम से नहीं पापी ।।१७८।।

कबीर अपने प्रभु की वन्दना करते कहते हैं कि मैं हे प्रभु ! इस गम्भीर संसार सागर-जल से कैसे पार पाऊं ? केवल आप ही हमारे एक मात्र आश्रय हैं, अतः हे नाथ रक्षा करो ! यह मन तो इतना पाप-पूर्ण है कि घर का परित्याग कर संन्यास लेने पर वन में जाकर तपस्या करते हुए, खाने में कंद आदि पर ही जीवन निर्भर रखते हुए भी इसके विषय-विकार नहीं छूट सकते। यह विषय-वासना का विष कितना ही त्यागने का प्रयत्न करो किन्तु छोड़ते नहीं बनता। इस भव-जाल से मुक्त होने का कितना ही प्रयत्न करो किन्तु इसमें अधिकाधिक उलझते जाते हैं—

"ज्यौं-ज्यौं भज्यो चहत है, त्यौं-त्यौं उरझत जात।"

हे जीवात्मा ! तेरा यह सुन्दर यौवन काल व्यर्थ ही समाप्त हो गया, उसमें तूने कोई सत्कर्म ही नहीं किया। यह तेरा हीरे के समान अमूल्य मानव-जीवन कौड़ी के मूल्य में चला गया। कबीर कहते हैं कि हे ईश्वर ! आप सर्वत्र व्यापी हैं आपके समान उदार, औघड़ दानी कोई नहीं है और मुझ जैसा पापी कोई नहीं है, अतः मेरा उद्धार करो।

विशेष—यह पद बड़ा ही सरस, भक्त की दैन्यपूर्ण मधुर भावनाओं से परिपूर्ण है। इसमें अपना लघुत्व और इष्ट का महत्व तो तुलसी के ही समान है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बाबा करहु कृपा जन मारगि लावो, ज्यूं भव बंधन षूटै।
जुरा मरन दुख फेरि करंन सुख, जीव जनम थैं छूटै ॥टेक॥
सत गुर चरण लागि यौं बिनऊं, जीवन कहां थैं पाई।
जा कारनि हम उपजें बिनसें, क्यूं न कहौ समझाई॥
आसा-पास षंड नहीं पाड़ै, यौं मन सुनि न लूटै।
आपा पर आनंद न बूझै, बिन अनभै क्यूं छूटै॥
कह्यां न उपजै उपज्यां नहीं जांणें, भाव अभाव बिहूनां।
उदै अस्त जहां मति बुधि नांहीं, सहजि रांम ल्यौ लीनां।
ज्यूं बिंबहि प्रतिबिंब समांनां, उदिक कुंभ बिगरांनां।
कहै कबीर जांनि भ्रम भागा, जीवहि जीव समांनां॥१७९॥

कबीर कहते हैं कि हे गुरुवर! कृपा करके दास को उचित पथ पर लगा दो ...से संसार का यह असह्य बन्धन छूट जाय एवं जीव जन्म-मरण से छूट, आवागमन ...मुक्त हो जाय। सद्गुरु के चरण छूकर मैं यह प्रार्थना करता हूं कि कृपा कर इस ...न का प्रयोजन बतायें। जिस (भक्ति) के लिए हम जन्मे हैं उस उद्देश्य को हमें ...कर कहें। आशा, तृष्णा, जब तक पीछा नहीं छोड़ देती तब तक शून्य स्थित ...तिस्वरूप आनन्दमय का आनन्द प्राप्त नहीं किया जा सकता है।

अहं आनन्द की प्राप्ति में बहुत बाधक है। बिना साँसारिक भय भागे भला ...सम्भव कहाँ? जिस बात को सद्गुरु कहते हैं उसका तू अनुगमन नहीं करता ...अभावों के संसार में ग्रस्त रहता है। जहाँ वासनाओं—माया आदि का न उदय ...और न अस्त—वहीं प्रभु के पास कबीर ने अपनी वृत्ति रमा दी है जिस भाँति ...म्ब-प्रतिबिम्ब एक ही हो जाते हैं, जल और कुम्भ के भीतर का जल मायारूप कुम्भ ...टूटने ही एक हो जाते हैं उसी प्रकार भ्रम के नष्ट होते ही जीव परमात्मा में लीन ...जाता है।

संतौ धोखा कासूं कहिये।
गुंण मैं निरगुंण निरगुंण मैं गुंण है, बाट छाड़ि क्यूं बहिये॥टेक॥
अजरा अमर कथै सब कोई, अलख न कथणां जाई।
नाति सरूप बरण नहीं जाकै, घटि घटि रह्यौ समाई॥
प्यंड ब्रह्मंड कथै सब कोई, वाकै आदि अरू अंत न होई।
प्यंड ब्रह्मंड छाड़ि जे कथिये, कहै कबीर हरि सोई॥१८०॥

कबीर ईश्वर के सम्बन्ध में कहते हैं कि यह रहस्य किससे कहा जाय वह ...गुण होते हुए भी निर्गुण है और निर्गुण होते हुए भी सगुण है। उचित पथ को ...कर इस भ्रम में कभी नहीं पड़ना चाहिए कि वह निर्गुण है अथवा सगुण। वह ब्रह्म

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

तो अजर अमर अलख है—ऐसा सब मानते हैं किन्तु फिर भी उसके स्वरूप का विश्लेषण नहीं किया जा सकता। न जिसकी कोई रूप-रेखा आकार है वह सबके हृदय में रम रहा है। सब यह कहते हैं कि जो शरीर—पिंड—में है वही ब्रह्माण्ड में है किन्तु फिर भी उसका आदि और अन्त नहीं जाना जा सकता। पिंड—शरीर छोड़कर जो सूक्ष्म रूप शून्यवासी ब्रह्म है, कबीर के मत से वही सब कुछ है।

पषा पषी कै पेषणैं, सब जगत भुलांनां।
निरपष होइ हरि भजै, सो साध सयांनां ।।टेक।।
ज्यूं षर सूं षर बंधिया, यूं बंधे सब लोई।
जाकै आतम द्रिष्टि है, साचा जन सोई ।।
एक एक जिनि जांणियां, तिनहीं सत्र पाया।
प्रेम प्रीति ल्यौ लीन मन, ते बहुरि न आया ।।
पूरे की पूरी द्रिष्टि, पूरा करि देखै।
कहै कबीर कछू समझि न परई, या कछू बात अलेखै ।।१८।।

पषापषी=पक्ष-विपक्ष, तेर-मेर, अहं-पर।

यह संसार अहं पर, तेरे-मेरे के फेर में पड़ा हुआ भ्रमित है। निष्पक्ष—इन दोनों सीमाओं से ऊपर उठकर ईश्वर भक्ति करता है, वही ज्ञानी और साधु है। जिस प्रकार गधे से गधा, मूर्ख से मूर्ख बंधा हुआ एक दूसरे को जिधर ठेल देते हैं वही इस जगत् की गति हो रही है। जिस व्यक्ति को आत्मज्ञान प्राप्त है वही सच्चा है। जिन्होंने उस एक परमात्मा के स्वरूप को जान लिया है उन्हें ही शान्ति की प्राप्ति होती है। जिस मनुष्य का मन प्रभु-प्रेम में लगन सहित लीन है, वह पुनः संसार में नहीं आता, मुक्त हो जाता है। ऐसे पूर्ण मनुष्य की दृष्टि सर्वांग-सम्पूर्ण होती है और वह पूर्ण-पुरुष ब्रह्म को पा लेता है। कबीर इतना कहने के पश्चात् भी कहते हैं कि उसका रहस्य कुछ समझ में नहीं आता है।

अजहूं न संक्या गई तुम्हारी, नांहि निसंक मिले बनवारी ।।टेक।।
बहुत गरब गरबे संन्यासी, ब्रह्मचरित छूटी नहीं पासी ।।
सुद्र मलेछ बसैं मन मांहीं आतमरांम सु चीन्ह्यां नाहीं।
संक्या डाइणि बसै सरीरा, ता कारणि रांम रमै कबीरा ।।१८।।

हे साधक ! आज भी तुम्हारा संशय नष्ट नहीं हुआ, बिना निश्शंक हुए प्रभु प्राप्ति नहीं होती। संन्यासी मिथ्यादम्भ में मरे जाते हैं किन्तु न तो उन्हें प्रभु दर्शन होता है और न वे भव-बन्धन से मुक्त ही होते हैं। संसार के अन्य प्राणियों को शूद्र म्लेच्छ कहने से क्या, ये सब तो दुर्भावनाओं के रूप में तुम्हारे मन में ही रहती हैं। इसी कारण तुम आत्मस्थित ब्रह्म को न पहचान पाये। इस शरीर में शंका रूपी डायन का वास है जिसे निकालने के लिए कबीर अपने प्रभु की भक्ति करता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नब भूले हो पाषंडि रहे, तेरा बिरला जन कोई राम कहै ।।टेक।।
होइ अरोकि बूंटी घसि लावै, गुर बिन जैसें भ्रमत फिरै ।
है हाजिर परतीति न आवै, सो कैसें परताप धरै ।।
यूं सुख त्यूं दुख द्रिढ़ मन राखै, एकादसी इकतार करै ।
दसी भ्रमैं लष चौरासी, गर्भ बास आव सदा मरै ।।
मैं तैं तजै तजै अपमारग, चारि बरन, उपरांति चढ़ै ।
ते नहीं डूबै पार तिरि लघै, निरगुण अगुण संग करै ।।
होइ मगन रांम रँगि राचै, आवागमन मिटै धापै ।
तिनह उछाह सोक नहीं व्यापै, कहै कबीर करता आपै ।।१८३।।

समस्त मानव प्रभु को विस्मृत कर संसार के जंजाल में उलझे हुए हैं, कोई ही प्रभु का नाम लेता है। सद्गुरु विना चाहे उसे जानने के कितने ही प्रयत्न जायं किन्तु सब व्यर्थ। वह प्रभु विद्यमान है किन्तु इस बात का विश्वास-दर्शन-ी को नहीं है कि वह किस भांति इतना अनुपम है। मनुष्य को सुख-दुख में वृत्ति रखते हुए मन सहित दसों इन्द्रियों को प्रभु में केन्द्रित रखना चाहिए। वह तो शरीर द्वादश-अंगों की पूर्ति में ही भटकता रहता है जिससे बार-बार में आ चौरासी लाख योनियों में यातना भोगनी पड़ती हैं। जो व्यक्ति चारों वर्णों भेद भाव छोड़ अहं-पर की भावना को विदूरित कर देते हैं वे इस संसार-सागर डूबते नहीं हैं अपितु उस परब्रह्म का साक्षात्कार कर लेते हैं। मग्न होकर प्रभु-ति में लगने से आवागमन चक्र से व्यक्ति विमुक्त हो जाता है। ऐसे लोगों की सम अवस्था का प्राप्त कर लेती है और वे ब्रह्म से मिल जाते हैं।

विशेष—१. गीता के 'स्थितप्रज्ञ' योगी की भाँति सुख-दुख में समान भाव ने का उपदेश है—

"सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।" —२।३८

२. "एकादसी इकतार करे"—समस्त—११—वृत्तियों को प्रभु में केन्द्रित दे, ग्यारह: आँख, कान, नाक, रसना, त्वचा, हाथ, पाँव, गुदा, लिंग, मुख,—न्द्रियां तथा एक मन।

३. "द्वादसी भ्रम"—शरीर के बारह प्रमुख अंग, उन्हीं की इच्छा पूर्ति में रहना। बारह प्रमुख अंग – शिर, नेत्र, कर्ण, प्राण, मुख, हाथ, पैर, नाक, कण्ठ, गुदा, शिश्न।

तेरा जन एक आध है कोई।
काम क्रोध अरु लोभ बिवर्जित, हरिपद चीन्हैं सोई ।।टेक।।
राजस तांमस सातिग तीन्यूं, ये सब तेरी माया।
चौथे पद कौं जे जन चीन्हैं, तिनहि परम पद पाया।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

असतुति निंद्या आसा छांडै, तजै मांन अभिमांनां।
लौहा कंचन समि करि देखै, ते मूरति भगवानां॥
च्यंतै तौ माधौ च्यंतामणि, हरिपद रमैं उदासा।
त्रिस्नां अरु अभिमांन रहित हैं, कहै कबीर सो दासा॥१८४॥

कबीर कहते हैं कि हे प्रभु! तेरी भक्ति करने वाला भक्त तो साधक ही है जो काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि पंच विषयों से दूर आपके चरणों का प्रयत्न करता है।

सत, रज, तम,-त्रिगुणात्मक संसार तो तेरी ही माया है किन्तु जो इन तटस्थ हो प्रभु आराधना करते हैं वे प्रभु के परम पद से साक्षात्कार कर लेते जो भक्त निज प्रशंसा, परनिन्दा, संसार तृष्णा को छोड़ मानाभिमान को त्याग है और लोह-स्वर्ण, सुख-दुख, सबको समान मानता है वस्तुतः वह तो प्रभु समान आदरणीय, पूज्य है। यदि तू किसी वस्तु की चिन्ता करता है तो चिन्ता स्वरूप प्रभु का विचार कर, संसार से उदासीन हो भक्ति में लग। यह प्रभु का मार्ग, कबीर के विचार से तृष्णा और अभिमान रहित मनुष्य के ही है।

हरि नांमैं दिन जाइ रे जाकौ,
सोई दिन लेखै लाइ रांम ताकौ॥टेक॥
हरि नांम मैं जन जागै, ताकै गोब्यंद साथी आगै।
दीपक एक अभंगा, तामैं सुर नर पडैं पतंगा॥
ऊंच नींच सम सरिया, ताथैं जन कबीर निसतरिया॥१८५॥

जिस व्यक्ति का समस्त दिवस प्रभु गुणगान में बीतता है वही दिवस प्रभु प्रिय है। जिस भक्त का आधार राम नाम ही है उसकी प्रभु सहायता करते हैं। माया का एक प्रज्वलित आकर्षणमय दीपक है, उसमें देवता और मनुष्य शलभ समान पड़-पड़कर प्राण दे रहे हैं। जो भक्त ऊंच-नीच, सुख-दुख में समदृष्टि रखता है उससे कबीर तर जायेगा अर्थात् वह कबीर को प्रिय है।

जब थैं आतम-तत बिचारा।
तब निरबैर भया सबहिन थैं कांम क्रोध गहि डारा॥टेक॥
ब्यापक ब्रह्म सबनि मैं एकै, को पंडित को जोगी।
रांणा राव कवैन सूं कहिये, कवन बैद को रोगी॥
इनमैं आप आप सबहिन मैं, आप आपसूं खेलै।
नांनां भांति घड़े सब भांडे, रूप धरे धरि मेलै॥
सोचि बिचारि सबै जग देख्या, निरगुण कोई न बतावै।
कहै कबीर गुणीं अरु पंडित, मिलि लीला जस गावै॥१८६॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जब से मैंने आत्म तत्व, प्रभु रहस्य, पर विचार करना प्रारम्भ किया है, तभी ...े किसी से द्वेष नहीं रह गया है एवं काम, क्रोध को मैंने उठाकर पटक दिया ...ण्डित, ज्ञानी और योगी—सभी में वही एक ब्रह्म व्यापक है। राजा, राव, ...ण पुरुष और वैद्य तथा रोगी, चिकित्सक तथा चिकित्सा कराने वाले—सब ही ...मान हैं क्योंकि इन सबमें वही ब्रह्म स्थित है जो स्वयं अपनी क्रीड़ा-लीला स्वयं ...नन्द के लिये कर रहा है। संसार में यह विभिन्नता तो उसी भांति हैं जिस ...अनेक प्रकार के घड़े, स्वरूप में भिन्न होते हुए भी एक ही मिट्टी के बने होते ...बीर कहते हैं कि मैंने भली-भाँति विचार कर देख लिया है कि लीलामय भगवान् ...स्वरूप गुण-गान तो सब ज्ञानी और गुणीजन करते हैं किन्तु उस निर्गुण परब्रह्म ...कोई नहीं पहचानता।

तू माया रघुनाथ की, खेंलण चढ़ी अहेड़ै।
चतुर चिकारे चुणि चुणि मारे, कोई न छोड्या नैड़ै ।।टक।।
मुनियर पीर डिगंबर मारे, जतन करंता जोगी।
जंगल महि के जंगम मारे, तूं र फिरै बलिवंती ।।
वेद पढंतां ब्राह्मण मारा, सेवा करतां स्वामीं।
अरथ करतां मिसर पछाड्या, तूं र फिरै मैंमंती ।।
साषित कै तूं हरता करता, हरि भगतन कै चेरी।
दास कबीर रांम कै सरनैं, ज्यूं लागी त्यूं तोरी ।।१८७।।

रघुनाथ=प्रभु! अहेड़ै=शिकार, आखेट। नैड़ै=पास। मुनियर=श्रेष्ठ ...। डिगम्बर=दिगम्बर। जतन=यत्न, साधना। बलिवंती=बलशाली। मिसर= ...थ, पंडितों की जाति विशेष। मैं मंती=मदमस्त। साषित=शाक्त।

कबीर कहते हैं कि प्रभु की माया इस संसार में आखेट को निकली है। चतुर ...रूप भोले मनुष्यों को इसने छान-छान कर मार डाला है, कोई भी अपने पास जीवित ...हीं छोड़ा। इसने मुनिवर, पीर, दिगम्बर एवं साधनारत योगी सबको भ्रष्ट किया, ...मों को नहीं छोड़ा। इस पृथ्वी पर इसने जंगल के जंगल अपनी मार से साफ कर ...। हे प्रभु-माया! तू अत्यन्त शक्तिमती है। इसने शास्त्र-ग्रन्थों, धर्म-ग्रन्थों में ...रत ब्राह्मण, तार्किक मिश्र, प्रभु सेवा में रत मनुष्य किसी को नहीं मुक्त किया, ...भी यह मदमस्त फिर रही है। शाक्त लोगों के यहाँ तो तू निस्संकोच रमी रहती ...किन्तु प्रभु-भक्त के पास चोरी-छिपे जाती है। कबीर कहते हैं जो प्रभु की शरण ...चला जायेगा, वह इससे मुक्त हो जायेगा, इसे ही उल्टा समाप्त कर देगा।

विशेष—सांगरूपक अलंकार।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

जग सूं प्रीति न कीजिये, संमझि मन मेरा।
स्वाद हेत लपटाइए, को निकसै सूरा ॥टेक॥
एक कनक अरु कांमनीं, जग मैं दोइ फंदा।
इनपै जौ न बंधावई, ताका मैं बंदा॥
देह धरें इन मांहि बास, कहु कैसें छूटै।
सीव भये ते ऊबरे, जीवत ते लूटे॥
एक एक सूं मिलि रह्या, तिनहीं सचुपाया।
प्रेम मगन लै लीन मन, सो बहुरि न आया॥
कहै कबीर निहचल भया, निरभै पद पाया।
ससा ता दिन का गया, सतगुर समझाया ॥१८८॥

कबीर मन को प्रबोध देते हुए कहते हैं कि हे मन! तू इस संसार के मोह में मत पड़। इससे तो कोई शूरवीर ही मुक्त हो पाता है।

इस संसार में दो ही बन्धन है। प्रथम धन, द्वितीय रूप यौवन सम्पन्न नारी। जो इन दोनों के बन्धन में नहीं पड़ता है मैं उसका दास हूं। इस पंच तत्वमय भौतिक शरीर के रहते हुए इनका वास कैसे छूट सकता है? जो शिव के समान योगी साधक हो जाय तब तो इस माया-पाश से मुक्त हो सकता है। जो उस एक पूर्ण ब्रह्म से मिल गया, शान्ति का लाभ तो उसने ही किया है। जिसका मन प्रभु भक्ति में तल्लीन हो गया वह मुक्त हो जाता है, पुनः इस संसार बन्धन में नहीं फंसता। कबीर कहते हैं कि इस प्रकार ही निश्चल हो निर्भय पद की प्राप्ति सम्भव है। संसार-संशय उसी दिन समाप्त हो गया, जब सद्गुरु ने ज्ञानोपदेश दे प्रभु-भक्ति मार्ग में प्रवृत्त किया।

रांम मोहि सतगुर मिलै अनेक कलानिधि, परम तत सुखदाई।
कांम अगनि तन जरत रही है,
हरि रसि छिरकि बुझाई ॥टेंक॥
दरस परस तैं दुरमति नासी, दीन रटनि ल्यौ आई।
पाषंड भरंम कपाट खोलि कैं, अनभै कथा सुनाई॥
यहु संसार गंभीर अधिक जल, को गहि लावै तीरा।
नाव जिहाज खेवइया साधू, उतरे दास कबीरा ॥१८९॥

कबीर कहते हैं कि हे प्रभु! मुझे अनेक कलाओं में पारंगत, अमित सन्तोष देने वाले अनेक सद्गुरु मिले किन्तु फिर भी मेरा शरीर कामाग्नि से दग्ध होता रहा। उसकी शान्ति तो प्रभु भक्ति का रस छिड़क कर ही हो सकी। प्रभु के दर्शन एवं स्पर्श से कुबुद्धि का नाश हो गया और मन प्रभु-भक्ति में लवलीन रहा। जिससे पाखंड

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

...भ्रम के कपाट खुलकर प्रभु की रहस्यपूर्ण कथा ज्ञात हुई। यह जगत् गहरे जल ...पूर्ण है, इसमें जीवात्मा को पकड़ कर कौन पार लगा सकता है? इस शरीर ...नौका के केवट तो साधुजन हैं जिससे कबीर पार निकल सकता है।

दिन दहूँ चहू कै कारणैं जैसैं सैंवल फूले।
झूठी सूं प्रीति लगाइ करि, साचे कूं भूले ।।टेक।।
जो रस गा सो परहर्या, बिड़राता प्यारे।
आसति कहूं न देखिहूँ, बिन नांव तुम्हारे ।।
सांची सगाई रांम की, सुनि आतम मेरे।
नरकि पडें नर बापुड़े, गाहक जम तेरे ।।
हंस उड्या चित चालिया, सगपन कछू नांहीं।
माटी सूं माटी मेलि करि, पीछैं अनखांहीं ।।
कहै कबीर जग अंधला, कोई जन सारा।
जिनि हरि मरम न जांणिया, तिनि किया पसारा ।।१६०।।

...इस तृष्णा के कारण सैंवल फल के समान ऊपर से प्रसन्न रहता हुआ भी भीतर ...भीतर दग्ध होता रहता हूं। इन मिथ्या सांसारिक आकर्षणों से प्रेम कर उस सच्चे ...को मैं विस्मृत कर वैठा हूं। हे प्रभु! जिस रस को स्वाद में मैं अच्छा समझ ...ता हूं वही नाश का कारण सिद्ध होता है। आपके नाम बिना प्रभु! कहीं भी रक्षा ...गत नहीं होती। हे मन! तू सुन, एक राम से ही सम्बन्ध सत्य है, शेष सम्बन्ध ...या है। अन्त में तो हे मनुष्य! यदि प्रभु-भक्ति न की तो तुझे नरक में पड़ना ...गा और यमदूत तुझे आकर ले जायेंगे। जिस समय तेरी आत्मा यहां से महा ...याण करेगी उस समय तेरा यहां कोई भी निकट सम्बन्धी नहीं होगा। मिट्टी से ...मिट्टी मिल जायगी तो वाद में बिलखने से क्या? कबीर कहते हैं कि जिन्होंने प्रभु-...भक्ति का रहस्य न समझा, वे संसार के आकर्षण-जाल में पड़ते हैं। इस प्रकार समस्त ...जग अज्ञानान्ध है।

माधौ मैं ऐसा अपराधी, तेरी भगति हेत नहीं साधी ।।टेक।।
कारनि कवन आइ जग जनम्यां, जनमि कवन सचुपाया।
भौ जल तिरण चरण च्यंतामणि, ता चित घड़ी न लाया ।।
पर निंद्या पर धन पर दारा, पर अपवादें सूरा।
ताथैं आवागमन होइ फुनि फुनि, ता पर संग न चूरा।
कांम क्रोध माया मद मंछर, ए संतति हम मांहीं ।।
दया धरम ग्यांन गुर सेवा, ए प्रभु सूपिनैं नांहीं।
तुम्ह कृपाल दयाल दमोदर, भगत-बछल भौ-हारी।
कहै कबीर धीर मति राखहु, सासति करौ हमारी ।।१६१।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

हे प्रभु ! मैं ऐसा अपराधी हूं कि मुझ से आपकी भक्ति की साधना नहीं होती। न जाने मैं क्यों इस जगत् में आकर उत्पन्न हुआ, इस अमूल्य मानव-जीवन प्राप्ति का क्या सुख ? इस संसार-सागर-जल से निस्तार के लिए आपके श्रीचरण चिन्तामणि के समान दुख दूर करने वाले थे किन्तु उनमें मैंने पल भर भी ध्यान नहीं लगाया। मैं परनिन्दा, परधन लालसा, पर स्त्री गमन एवं दूसरों पर दोषारोपण करने में लगा रहा। इसी कारण से बार-बार मैं आवागमन के चक्र में पड़ता हूं और फिर भी तनिक देर के लिए भी साधु सगंति नहीं करता। काम, क्रोध, मोह, लोभ, मोह का निवास प्रतिपल मुझ में रहता है। दया, धर्म, ज्ञान, गुरु सेवा—जैसे सद्गुणों से मेरा सम्बन्ध स्वप्न तक में नहीं है। हे प्रभु ! आप कृपालु, दयालु, वत्सल एवं दुख विदूरित करने वाले हैं। कबीर कहते हैं कि हे प्रभु मुझे कृपा कर बुद्धि एवं ज्ञान प्रदान करो।

रांम राइ कासनि करौं पुकारा,
ऐसे तुम्ह साहिब जाननिहारा ।।टेक।।
इंद्री सबल निबल मैं माधौ, बहुत करैं बरियाई।
ल धरि जांहि तहां दुख पइये, बुधि बल कछू न बसाई।।
मैं बपरौ का अलप मूंढ मति, कहा भयौ जे लूटे।
मुनि जन सती सिध अरु साधिक, तेऊ न आयें छूटे।।
जागी जती तपी संन्यासी, अह निसि खोजैं काया।
मैं मेरी करि बहुत बिगूते, बिषै बाघ जग खाया।।
ऐकत छांड़ि जांहि घर घरनीं, तिन भी बहुत उपाया।
कहै कबीर कछु समझि न परई, बिषम तुम्हारी माया ।।१६२।।

हे प्रभु ! आप तो सब कुछ जानते ही हैं, मैं आपके अतिरिक्त और किससे अपनी व्यथा कथा कहूं ? हे माधव ये इन्द्रियां अत्यन्त शक्तिशाली हैं और मैं निर्बल हूं। ये मुझे नाना विषयों में भटकाती हैं। जहां कहीं भी ये ले जाती हैं वहीं दारुण व्यथा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इन इन्द्रियों के सम्मुख बुद्धि परास्त हो जाती है। इनके जाल से मुनि, सती, सिद्ध, साधक कोई भी मुक्त नहीं हुआ फिर मैं बेचारा अल्पज्ञ, मूर्ख भला कैसे इनके विपरीत चलता। योगी, यति, तपस्वी, संन्यासी आदि प्रभु को शरीर के मध्य खोजने का प्रयास करते हैं किन्तु वे यह नहीं जानते कि अहं ने समस्त संसार को नष्ट कर दिया है और विषय-वासनाओं का वास भी जग को नित्य प्रति चट कर रहा है। जो संन्यास के द्वारा भी प्रभु को खोजते २ हार गये, वनको छोड़कर घर जाकर गृहस्थ बन गये। कबीर कहते हैं कि हे प्रभु ! तुम्हारी यह विषम माया मेरी समझ में नहीं आती, यह एक रहस्य ही है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

माधौ चले बुनांवन माहा, जग जीतें जाइ जुलाहा ।।टेक।।
नव गज दस गज गज उगनींसा, पुरिया एक तनाइ ।
सात सूत दे गंड बहतरि, पाट लगी अधिकाई ।।
तुलह न तोली गजह न मापी, पहजन सेर अढाई ।
अढाई मैं जे पाव घटै तौ, करकस कर बजहाई ।।
दिन की बेठि खसम सूं काजै, अरज लगीं तहां ही ।
भागी पुरिया घर हा छाड़ी, चल जुलाह रिसाई ।।
छोछी नलीं कांमि नहों आव, लहटि रही उरझाई ।
छांडि पसारा रांम कहि बौरे, कहै कवीर समझाई ।।१९३।।

बनांवन=बुनने । नव गज=नौ गज । दस गज=दस गज । उगनींसा= ...नीस ।

प्रभु ! आपने इस संसार रूपी वस्त्र का निर्माण बुनकर किया है किन्तु आपके वस्त्र को माया नष्ट कर रही है । नवद्वार एवं दसों इद्रियां इस उन्नीस गज से थान रूपी संसार का निर्माण किया है । सात धातुओं के सूत का इसमें पाट ...गा हुआ है । इसका विस्तार इतना है कि न इसे तोला जा सकता है और न ...ा जा सकता है यदि इसमें तनिक भी मात्रा कम हो तो संसार का क्रय नहीं चल ...गा । हे मनुष्य ! तू दिन भर अपने व्यवसाय की जो पेंठ लगाये उसमें प्रभु-नाम ...रण के अतिरिक्त और कुछ न हो । इस प्रकार के व्यवसाय से माया घर छोड़ कर ...ल जायगी । संसार में झूठे सम्बन्धों की यह नलिका किसी कार्य नहीं आती, यह ...ो और गुत्थी को उलझाती है । कबीर समझाते हुए कहते हैं कि हे अज्ञानी जीव ! ...ू विषय-वासनाओं से अपनी गति रोक राम-नाम का स्मरण कर ।

विशेष—१. रूपक, रूपकातिशयोक्ति आदि अलंकार । २. नव गज=नव द्वार —दो नेत्र, दो कान, दो नासिका विवर, मुख, गुदा, लिंग । ३. दस गज= दस इन्द्रियां —आंख, कान, नाक, रसना, त्वचा, हाथ, पांव, गुदा, लिंग, मुख । ४. सात सूत— ...धातु—रस, रक्त, मांस, वसा, मज्जा, अस्थि, शुक्र ।

बाजै जंत्र बजावै गुंनीं, राम नाँम बिन भूली दुनी ।।टेक।।
रजगुन सतगुन तमगुन तीन, पंच तत ते साज्या बींन ।
तीनि लोक पूरा पेखनाँ, नाच नचावै एकै जनां ।।
कहै कबीर संसा करि दूरि, त्रिभवन नाथ रह्या भरपूरि ।।१९४।।

यह संसार रूपी वाद्य बज रहा है जिसे एक गुणी (ब्रह्म) ही बजाता है । प्रभु-नाम बिना समस्त संसार भ्रम में पड़ा हुआ है । रज, सत, तम त्रिगुणात्मक प्रकृति ...एवं पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश—पंचतत्वों से इस वाद्य—संसार—का निर्माण हुआ है । समस्त सृष्टि—तीनों लोक—को देखकर यही निष्कर्ष निकला कि इसका

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

संचालक वह प्रभु ही है। कबीर कहते हैं कि माया-भ्रम को दूर कर मन में प्र विश्वास जमा लो कि इस संसार में ब्रह्म सर्वत्र व्यापक है।

जंत्री जंत्र अनूपम बाजै, ताका सबद गगन मैं गाजै ॥टेक॥
सुर की नालि सुरति का तूंबा, सतगुर साज बनाया।
सुर नर गण गंध्रप ब्रह्मादिक, गुर बिन तिनहूँ न पाया॥
जिभ्या तांति नासिका करहीं, माया का मैंण लगाया।
गमां बतीस मोरणां पांचौं, नीका साज बनाया॥
जंत्री जंत्र तजं नहीं बाजै, तब बाजै जब बावै।
कहै कबीर सोई जन साचा, जंत्री सूं प्रीति लगावै ॥१६५॥

यह हृदय-तन्त्री प्रभु के नाम से बज रही है जिसका अनुपम शब्द—अ नाद—शून्य लोक में हो रहा है। सुरति के तूम्बे को स्वर—भक्तिस्वर से बां ही सद्गुरु ने इस संगीत का सृजन किया है। देव, मनुज, गन्धर्व, ब्रह्मादि कि भी उस परमप्रभु को विना गुरु की सहायता के प्राप्त नहीं किया है। जिह्वा नासिका के तन्तु पर माया को नष्ट कर उस पर लाग लगायी है। बत्तीस दांतों अ मुख एवं पाँचों इन्द्रियों को भी बाद्य में प्रयुक्त किया है—इस प्रकार प्रभु भक्ति यह सुन्दर वाद्य बनाया है। यह वाद्य-यन्त्र नाम का आश्रय छोड़ने पर नहीं बज जब बजता है तब नामोच्चारण का संगीत मुखरित हो। कबीर कहते हैं कि व भक्त सच्चा है जो इस प्रभु-भक्ति के वाद्य से अपना मन लगा ले।

अवधू नादैं व्यद गगन गाजै, सबद अनाहद बोलै।
अंतरि गति नहीं देखै नैड़ा, ढूंढत बन बन डोलै ॥टेक॥
सालिगरांम तजौं सिव पूजौं, सिर ब्रह्मा का काटौं।
सायर फोडि नीर मुकलांऊं, कुंवा सिला दे पाटौं॥
चंद सूर दोइ तूंबा करिहूँ, चित चेतनि की डांडी।
सुषमन तंती बाजण लागी, इहि बिधि त्रिष्णां षांडी॥
परम तत आधारी मेरे, सिव नगरी घर मेरा।
कालहि षंडूं मीच बिहंडूं, बहुरि न करिहू फेरा॥
जपौं न जाप हतौं नहीं गूगल, पुस्तक ले न पढांऊं।
कहै कबीर परंम पद पाया, नहीं आंऊं नहीं जांऊं ॥१६६॥

हे अवधूत! इस शरीर में ही उस प्रभु का शब्द होता रहता है। वह दिव्य निनाद 'अनहदनाद' होता है। मनुष्य उस प्रभु का पाने के लिए वन-व तो भटकता है किन्तु अपने अन्तस् में खोजने का प्रयास नहीं करता। शालिग्राम का परित्याग कर शिव की उपासना करने का क्या प्रयोजन? मैं तो ब्रह्मा तक का अस्तित्व समाप्त कर दूंगा। सागर—जिसकी पूजा होती

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

...को फोड़ जल को सुखा दूंगा और कुएं में पत्थर डालकर उसे अटवा दूंगा। इड़ा ...ना के तूम्बों को मन की सतर्कता की डन्डी पर बांध कर सुषुम्णा नाड़ी की ताँत ... प्रभु-भक्ति का अलौकिक राग अलाप कर मैं तृष्णा का अन्त कर दूंगा। वह ... ब्रह्म ही मेरे इष्ट हैं और उनका देश ही मेरा घर है। मैं समय के व्यवधान को ...कर मृत्यु का नाश कर दूंगा और इस भाँति पुनः इस जगत् में नहीं आऊंगा। ... मैं मन्दिर या मस्जिद में बैठकर गूगल धूम्र का ठाठ खड़ा कर जाप करूंगा ... शास्त्रग्रन्थों आदि का उपदेश दूंगा कबीर कहते हैं कि मैंने तो अब परमपद ... कर लिया है, मैं आवागमन से विमुक्त हो गया हूं।

बाबा पेड़ छाडि सब डालीं लागे, मूंढे जत्र अभागे।
सोइ सोइ सब रैंणि बिहांणीं, भोर भयौ तब जागे ।।टेक।।
देवलि जांऊं तौ देवी देखौं, तीरथि जांऊं त पाणीं।
ओछी बुधि अगोचर वांणीं, नहीं परंम गति जांणीं ।।
साध पुकारैं समझत नांहीं, आंन जन्म के सूते।
बांधे ज्यूं अरहट की टीडरि, आवत जात बिगूते ।।
गुर बिन इहि जग कौंन भरोसा, काकै संगि ह्वै रहिये।
गनिका कै घरि बेटा जाया, पिता नांव किस कहिये ।।
कहै कबीर यह बिरोध्या, बूझी अमृत बांणी।
खोजत खोजत सतगुर पाया, रहि गई आंवण जाणीं ।।१६७।।

कबीर कहते हैं कि इस संसार के अभागे लोग मूल—प्रभु—को छौड़ शाखा —माया—आराधना में लगे हुए हैं। इस अज्ञान में ही उन्होंने आयु व्यतीत ...र डाली और जब सुबह होने को है, जीवन का अन्त निकट है, तब इन्हें सुधि ...यी है। यदि मैं मन्दिर में जाता हूं तो देव प्रतिमा दिखाई देती है ...और तीर्थस्नान में जल किन्तु प्रभु—ब्रह्म—कहीं नहीं। यह बुद्धि अत्यल्प है जो ...परमतत्व का रहस्य जानने में अक्षम है। साधुजन इस विषयसंलिप्त मनुष्य को बराबर ...पुकारते हैं किन्तु यह तो दूसरे जन्म को भी भ्रष्ट करके रहेगा और जिस भाँति रहट ...में डोंगियों, बाल्टियों का धारावाहिक क्रम चलता रहता है उसी प्रकार यह भी ...आवागमन चक्र से विमुक्त नहीं होगा। इस संसार में बिना सद्गुरु के कोई साथी नहीं, ... मनुष्य की स्थिति वेश्यापुत्र के समान, अनामधारी पिता के पुत्र के समान, हो ...जाती है। कबीर अनुपम वाणी कहते हैं कि यह बड़ा चित्र-विचित्र है। सद्गुरु की ...सहायता से खोजते-खोजते प्रभु को पा लिया और जो रह गये वे आवागमन से विमुक्त नहीं हुए।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

भूली मालिनी है गोव्यंद जागतौ जगदेव,
तूं करै किसकी सेव ।।टेक।।
भूली मालनि पाती तोड़ै, पाती पाती जीव।
जा मूरति कौं पाती तोड़ै, सो मूरति नर जीव ।।
टांचणहारै टांचिया, दे छाती ऊपरि पाव।
जे तूं मूरति सकल है, तौ घड़णहारे कों खाव ।।
लाडू लावण लापसी, पूजा चढ़ै अपार।
पूजि पुजारा ले गया, दे मूरति कै मुहि छार ।।
पाती ब्रह्मा पुहपे विष्णु, फूल फल महादेव।
तीनि देवौं एक मूरति, करै किसकी सेव ।।
एक न भूला दोइ न भूला, भूला सब संसारा।
एक न भूला दास कबीरा, जाकै रांम अधारा ।।१९८।।

हे मालिनी ! तू भ्रम में पड़ी हुई है ! तू तनिक यह तो विचार कर कि पत्ते। पुष्प तोड़ इससे किस प्रभु की सेवा करेगी ? तू व्यर्थ फूल-पत्ते तोड़ रही है क्योंकि इनमें से प्रत्येक जीव—जीवन है किन्तु तू जिस इष्ट-मूर्ति के लिए इनका नाश कर रही है वह निर्जीव प्रस्तर है। काल छाती पर पांव धर कर बढ़ता आ रहा है यदि तेरी मूर्ति सत्य है तो उस काल को समाप्त कर दे, उस मूर्ति से इसका नाश करा दे। उस मूर्ति पर लड्डू, लवणयुक्त पकवान और अन्य विविध मिष्टान्न अपरिमित मात्रा में चढ़ते हैं किन्तु पुजारी सबको अपने घर ले जाता है और उसे खाक भी नहीं मिलता। फूल, पत्र, फल सबमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों का निवास है और तीनों देव एक ही हैं—केवल उनका स्वरूप पृथक् है, अब बता तू किसकी अर्चना करेगी। मालिनी ! यह स्थिति तेरी ही नहीं या एक दो की ही नहीं, समस्त संसार इसी भांति भ्रम में पड़ा हुआ है। कबीर कहते हैं कि केवल एक प्रभु-भक्त जिसके राम ही आधार हैं, भ्रम में नहीं पड़ा है।

सेइ मन समझि संमर्थ सरणांगता, जाकी आदि अंति मधि कोइ न पावै।
कोटि कारिज सरैं देह गुंण सब जरैं, नैंक जौ नाव पतिब्रत आवै ।।टेक।।
आकार की ओट आकार नहीं ऊबरै, सिव बिरंचि अरू बिष्णुं तांई।
जास का सेवक तास कौं पाइहै, इष्ट कौं छांडि आगै न जांहीं ।।
गुंणमई मूरति सेइ सब भेष मिली, निरगुण निज रूप बिश्रांम नांहीं।
अनेक जुग बंदिगी बिबिध प्रकार की, अंति गुंण का गुण हीं हमांहीं ।।
पांच तत तीनि गुण जुगति करि सांनियां, अष्ट बिन होत नहीं क्रंम काया।
पाप पुन बीज अंकूर जांमैं मरै, उपजि बिनसै जेती सर्ब माया ।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कितम करता कहैं, परम पद क्यूं लहैं, भूलि भ्रम मैं पड़या लोक सारा।
कहै कबीर रांम रमिता भजैं, कोई एक जन गए उतरि पारा ॥१९९॥

हे मन ! तू उस समर्थ प्रभु की जिसका आदि, मध्य, अवसान कोई न पा सेवा कर, भक्ति कर। यदि उस प्रभु का नाम एकाग्रमन हो अल्प समय के भी ले लिया जाय तो मनुष्य के करोड़ों कार्य सफल हो जाते हैं तथा देह के ष्ट हो जाते हैं। यदि इस शरीर की भूख—तृप्ति में ही लगे रहेंगे तो शिव, ब्रह्मा किसी भी उपास्य का स्वरूप प्रत्यक्ष नहीं होगा। तू जिसका भक्त है उसको ही प्राप्त कर लेगा किन्तु अपने आराध्य को छोड़ अन्यत्र भटकने की आवश्य- नहीं। इष्ट को पूजने से सब तृप्तियाँ हो जाती हैं, निर्गुण ब्रह्म को अपने कार्य से नहीं, सृष्टि संचालन में वह सर्वदा व्यस्त रहता है। अनेक युगों तक अनेक प्रकार जा करने पर भी वह प्रभु हमें प्राप्त न हो सका। पांचों तत्वों, तीन गुणों समेत उपाय करने पर भी योग की अष्टांग साधना बिना उस प्रभु की प्राप्ति नहीं। इसी मार्ग से पाप-पुण्य, जन्म-मरण, माया, विषय-वासना आदि समस्त पचड़ों अन्त हो जाता है। इस सृष्टि का कर्त्ता कहता है कि तुम्हें किस भांति परम-पद प्राप्ति हो सकती है क्योंकि समस्त संसार संशय से ग्रसित है।

कबीर कहते हैं कि राम-नाम स्मरण से कितने ही भक्त इस भवसागर को पार कर गये।

रांम राइ तेरी गति जांणी न जाई।
जो जस करिहै सो तस पइहै, राजा रांम नियाई।टेक॥
जैसी कहै करै जो तैसी, तौ तिरत न लागै बारा।
कहता कहि गया सुनता सुंणि गया करणीं कठिन अपारा॥
सुरही तिण चरि अंमृत सरवैं, लेर भवंगहि पाई।
अनेक जतन करि निग्रह कीजै, बिषै विकार न जाई॥
संत करै असंत की संगति, तासूं कहा बसाई।
कहै कबीर ताके भ्रम छूटैं, जे रहे रांम ल्यौ लाई॥२००॥

हे राजा राम, परम प्रभु, तेरा रहस्य किसी को ज्ञात नहीं होता। राजा राम यी है जो जैसा कर्म करता है तदनुकूल ही वह फल भोगता है। जिसकी सत् कहनी करणी में अन्तर नहीं होता उसे भवसागर से पार जाते देर नहीं लगती। सद्- कहने और सुनने में कठिन नहीं इन्हें व्यवहार में लाना कठिन है। शून्य—ब्रह्म- —से अमृत स्रवित होता है, वहाँ मधुलोभी कोई विरली आत्मा ही पहुंच पाती है न्तु सामान्य लोगों के साथ आप कितने ही उपाय संसार छुड़ाने के कर लें किन्तु विषय-विकार को नहीं छोड़ सकते। यदि सज्जन दुर्जन की संगति करने लगे तो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भला उसका क्या उपचार ? कबीर कहते हैं कि उसी का संसार-संशय विनष्ट होता है जिसकी वृत्तियां राम में केन्द्रित हों।

कथणीं बदणीं सब जंजाल,
भाव भगति अरु रांम निराल ॥टेक॥
कथै बदै सुणैं सब कोई, कथें न होई कीयें होइ।
कूड़ी करणी रांम न पावै, साच टिकै निज रूप दिखावै।
घट मैं अग्नि घर जल अवास, चेति बुझाइ कबीरदास ॥२०१॥

कबीर कहते हैं कि व्यर्थ का धार्मिक उपदेश, मिथ्याचरण, यह सब वृथा है, केवल प्रभु की भावपूर्ण भक्ति ही सत्य है। साधना का कथन, टीका-टिप्पणी और श्रवण तो सब करते ही हैं किन्तु प्रयोजन सिद्धि मौखिक लेन-देन से नहीं अपितु आचरण से होती है। बुरे आचरण से प्रभु-प्राप्ति सम्भव नहीं, केवल सत्याश्रित होने पर ही वह प्रभु अपना रूप दिखाते हैं। इस मन में विषयाग्नि और मायाजल भरा है, कबीर कहते हैं कि सावधान हो इसे समाप्त कर दे।

—×—

राग आसावरी

ऐसी रे अवधू की बांणीं, ऊपरि कूवटा तलि भरि पांणी ॥टेक॥
जब लग गगन जोति नहीं पलटै, अबिनासी सूं चित नहीं चिहुटै।
जब लग भवर गुफा नहीं जांनैं, तौ मेरा मन कैसैं मांनैं॥
जब लग त्रिकुटी संधि न जांनैं, ससिहर कै घरि सूर न आनैं।
जब लग नाभि कवल नहीं सोधै, तौ हीरै हीरा कैसैं बेधैं॥
सोलह कला संपूरण छाजा, अनहद कै घरि बाजें वाजा।
सुषमन कै घरि भया अनंदा, उलटि कवल भेटे गोव्यंदा॥
मन पवन जब परचा भया, ज्यूं नाले रांषी रस मइया।
कहै कबीर घटि लेहु बिचारी, औघट घाट सींचि ले क्यारी ॥२०२॥

गगन=शून्य। जोति=ज्योतिस्वरूप ब्रह्म। भवर गुफा=ब्रह्मरन्ध्र। त्रिकुटी=आंख नाक मस्तिष्क का सन्धि स्थल, भौहों के बीच का स्थान। नाभि कवल=नाभि पर स्थित मणिपूरक चक्र—"इसमें दस दल होते हैं। यह नील वर्ण का होता है, इसका लोक स्वः है। इसका ध्यान करने से क्रमशः डँ, टँ, णँ, तँ, थँ, दँ, धँ, नँ, पँ, फँ की ध्वनि झंकृत होती है। इसके सिद्धि लाभ से मनुष्य संहार पालन में समर्थ तथा वचन रचना में चतुर हो जाता है और उसकी जिह्वा पर सरस्वती निवास करती है

RajGuru Maṭh, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कबीर कहते है कि योगी का उपदेश इस भांति है—ऊपर शून्य लोक में कुआ ...तु उससे पानी प्राप्त करने का साधन कुण्डलिनी (जल) नीचे है, मूलाधार में स्थित है। जब तक शून्य में ज्योतिस्वरूप परमात्मा का दर्शन नहीं होता तब ...उस अलख निरंजन से मन कैसे लगे ? जब तक मन को शून्यदल, ब्रह्मरन्ध्र, का भी नहीं फिर उसे कैसे परितोष प्राप्त हो। जब तक साधक को त्रिकुटी का ज्ञान ...हैं तब तक चन्द्र, सूर्य, इड़ा, पिंगला कैसे एकमेक हों। जब तक नाभि में स्थित ...पूरक चक्र का भेदन साधक नहीं कर लेता तब तक मणि रूप प्रभु को कैसे प्राप्त ...गा ? वह सोलह कलाओं से पूर्ण ब्रह्म वहां बसा हुआ है जहां घण्टे की चोट ...कर अनहद नाद का निरन्तर घोष हो रहा है। जब सुषुम्णा के द्वारा शून्यकमल ...ल हो अमृत स्रवित होने लगता है तो अपरिमित आनन्द का सृजन होता है। जब ...और परमात्मा का साक्षात्कार हुआ तो दोनों उसी प्रकार एकमेक हो गये जिस ...ति नाले का जल (गंगा की) पवित्र धारा में मिलकर एक हो जाता है। कबीर ...ते हैं कि इस भांति तुम मन में विचार कर उस अलख निरंजन को प्राप्त कर लो।

मन का भ्रंम मन हीं थैं भागा, सहज रूप हरि खेलण लागा।।टेक।।
मैं त तैं मैं ए द्वै नांहीं, आपै अकल सकल घट मांहीं।
जब थैं इनमन उनमन जांना, तब रूप न रेष तहां ले बांनां।।
तन मन मन तन एक समांना, इन अनभै मांहैं मन मांनां।
आतमलीन अषंडित रांमां, कहै कबीर हरि मांहि समानां।।२०३।।

मन से भ्रम के भाग जाने पर चित्त, हृदय, प्रभु-भक्ति में रमने लगा। 'मैं तू' ...'पर' का भेद मिथ्या है। समस्त प्राणिमात्र के हृदय में एक वही प्रभु विद्यमान है। जब से इस मन को उन्मनी अवस्था का ज्ञान हुआ है तभी से इसका वास उस ...भु के लोक में हो गया है जिसका कोई रूप, आकार, नहीं है। शरीर और हृदय ...नों समान ही हैं और इन्हीं के मध्य मनभावन प्रभु का वास है। वह प्रभु आत्म-...त एवं अविभाज्य है, कबीर कहते हैं कि उसी प्रभु में मेरा मन रम गया है।

आत्मां अनंदी जोगी, पीवै महारस अंमृत भोगी।।टेक।।
ब्रह्म अगनि काया परजारी, अजपा जाप उनमनीं तारी।
त्रिकुट कोट मैं आसण मांडै, सहज समाधि विषै सब छांडै।।
त्रिबेंणी बिभूति करै मन मंजन, जनकबीर प्रभू अलष निरजन।।२०४।

आत्मानंदी योगी ब्रह्मरन्ध्र से स्रवित उस अमृतोपम महारस का पान करता है। वह ब्रह्माग्नि से शरीर के पाप-भस्म कर उन्मनावस्था द्वारा अनहद नाद का श्रवण ...ता है। त्रिकुटी के किले में समाधि लगाकर साधक बैठ जाता है, यह सहज समाधि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

समस्त विषय-रसों से मुक्त कर देती है। जब मन इड़ा, पिंगला, सुषुम्णा से प्रवाहित त्रिवेणी में स्नान करने लगता है तो अलख निरंजन, ज्योतिस्वरूप परमात्मा का दर्शन होता है।

या जोगिया की जुगति जु बूझै,
रांम रमैं ताकौं त्रिभुवन सूझै ॥टेक॥
प्रगट कंथा गुपत अधारी, तामैं मूरति जीवनि प्यारी।
है प्रभू नेरै खोजें दूरि, ग्यांन गुफा मैं सींगी पूरि॥
अमर बेलि जो छिनछिन पीवै, कहै कबीर सो जुगि जुगि जीवै ॥

जो मनुष्य इस योगी की साधना को समझ लेगा उसे प्रभु-दर्शन हो जायेगा और साथ ही त्रिभुवन-समस्त सृष्टि उसके लिए दृश्य हो जायेगी। प्रकट में तो योगी प्रभु कथा कहता ही रहता है, वैसे उसकी आधारी भी प्रभु की प्रिय मूर्ति है वह उसी के द्वारा जीवन धारण करता है। प्रभु तो पास में ही; अन्तर में ही स्थित उसे दूर कहाँ खोजते हो? ज्ञान से वह प्राप्य है। कबीर कहते हैं कि शून्यकमल उत्पन्न अमरबेलिरस का जो प्रतिपल पान करता है, सर्वदा अनहद नाद का श्रवण करता है वह युग-युग तक अमर रहता है। उसे काल-बन्धन नहीं व्यापता।

सो जोगी जाकै मन मैं मुद्रा
राति दिवस न करई निद्रा ॥टेक॥
मन मैं आसण मन मैं रहणां मन का जप तप मन सूं कहणां।
मन मैं षपरा मन मैं सींगी, अनहद बेन बजावै रंगी॥
पंच परजारि भसम करि भूका, कहै कबीर सो लहसं लंका ॥२०६॥

कबीर कहते हैं कि योगी वही है जो अहर्निश जागृत, सावधान, रहता हुआ मन में ही खेचरी मुद्रा को धारण करता है। वह मन में ही समाधिस्थ हो रहता है, जप-तप आदि साधना के जितने भी सोपान हैं सब की पूर्ति वहीं करता है। योगी के खप्पर और सींगी, अनहद नाद—ये सब सम्भार उसके मन में ही रहते हैं। कबीर कहते हैं कि शून्यलोक रूपी लंका को वही प्राप्त कर सकता है जो काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह—पाँच विकारों को नष्ट कर दे।

विशेष—कबीर ने यद्यपि योगसाधना पर पर्याप्त पद-रचना की है किन्तु वे विशेष बल मनःसाधना पर ही देते हैं। इसे हम अन्तर्मुखी वृत्ति भी कह सकते हैं।

बाबा जोगी एक अकेला, जाकै तीर्थ व्रत न मेला ॥टेक॥
झोली पंत्र बिभूति न बटवा, अनहद बेन बजावै।
मांगि न खाइ न भूखा सोवै, घर अंगनां फिरि आवै।
पांच जनां की जमाति चलावै, तास गुरू मैं चेला॥
कहै कबीर उनि देसि सिधाये, बहुरि न इहि जगि मेला ॥२०

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

...कबीर कहते हैं कि योगी संसार में अपने ही ढंग का एक होता है। इसे तीर्थ, मेला आदि से कोई प्रयोजन नहीं होता। उसके पास सामान्य साधुओं के समान ...झोली होती है, न शरीर पर मली हुई क्षार, न पैसे संचित करने के लिए ...। वह तो अनहद नाद के श्रवण में ही मस्त रहता है। वह न तो भिक्षा मांग ...खाता है न भूखा हो रहता है, वह तो शून्यलोक, ब्रह्म रन्ध्र, से स्रवित अमृत का ...करता है। कबीर कहते हैं कि जो पंच विषयों अथवा काम, क्रोध, मद, लोभ, ...पंच विकारों की सेना को नष्ट कर दे ऐसे योगी को मैं गुरु बना लूं। वे आगे ...हैं जो साधक उस प्रभु के शून्य लोक को प्राप्त कर लेता है वह पुनः इस संसार ...आवागमन के चक्र में नहीं पड़ता।

जोगिया तन कौ जंत्र बजाइ,
ज्यूं तेरा आवागवन मिटाइ ।।टेक।।
तत करि तांति धर्म करि डांडी, सत की सारि लगाइ।
मन करि निहचल आसंण निहचल, रसनां रस उपजाइ।।
चित करि बटवा तुचा मेषली, भसमैं भसम चढ़ाइ।
तजि पाषंड पांच करि निग्रह, खोजि परम पद राइ।।
हिरदै सींगी ग्यांन गुणि बांधौ, खोजि निरंजन साचा।
कहै कबीर निरंजन की गति, जुगति विनां प्यंड काचा ।।२०८।।

कबीर कहते हैं कि हे मनुष्य! इस शरीर रूपी वाद्य की साधना कर जिससे ...जन्म-मृत्यु का चक्र समाप्त हो जाय। तू इस वाद्य में परम-तत्व का तंतु एवं ...की डंडी लगा और सत्य-व्यवहार, सत्य आचरण की इस तंतु पर पुट लगा दे। ...को दृढ़ और एकाग्र कर समाधिस्थ हो जा एवं अपनी जिह्वा में प्रभु-भक्ति, प्रभु-...का रस उत्पन्न कर। इस हृदय को ही प्रभु गुण स्मरण संरक्षण का वटुआ, ..., बना ले और अपनी शरीर त्वचा को योगियों के धारण करने की मेखला समझ ...। काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह को भस्म कर उन्हीं की विभूति बना ले। पाखण्ड ...परित्याग कर पाँच विषयों को छोड़ परमप्रभु की खोज की साधना करो। हृदय ...शृंगी को ज्ञान रज्जु से बाँध दो और इस प्रकार अलख निरंजन ज्योतिस्वरूप ...परमात्मा, ब्रह्म को खोज लो। कबीर कहते हैं कि ब्रह्म का रहस्य विना साधना के ...प्त नहीं किया जा सकता, बिना योग साधना के यह शरीर वृथा है।

अवधू ऐसा ज्ञांन बिचारी, ज्यूं बहुरि न ह्वै संसारी ।।टेक।।
च्यंत न सोज चित बिन चितवै, बिन मनसा मन होई।
अजपा जपत सुंनि अभि-अंतरि, यहु तत जानैं सोई।।
कहै कबीर स्वाद जब पाया, बंक नालि रस खाया।
अमृत झरै ब्रह्म परकासै, तब ही मिलै रांम राया ।।२०९।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कबीर कहते हैं कि हे अवधूत ! तू ऐसे ज्ञान—प्रभु-रहस्य— का विचार कर जिससे तुझे पुनः इस जगत् में आकर दुख न उठाना पड़े । उसे (ब्रह्म को) न चिंता न कोई शोक, वह बिना ही हृदय और नेत्र के सृष्टि को देखता है एवं बिना मानसिक भावनाओं के भी मन रसता है । इस तत्व को तो कोई विरले साधक ही जान सकते हैं जिसमें हृदय के भीतर ही अजपा जाप, अनहद नाद, शून्य लोक, ब्रह्म लोक, ध्वनित होता है । कबीर कहते हैं कि मैंने उस महारस का स्वाद तब पाया जब सुषुम्णा के माध्यम से कुण्डलिनी ने विस्फोट कर अमृत प्राप्त किया । जब वहाँ से अमृत स्रवित होने लगता है तो वह ज्योतिस्वरूप परमात्मा—ब्रह्म प्रकट होता है और उसका साक्षात्कार होता है ।

विशेष—विभावना अलंकार ।

गोब्यंदे तुम्हारै बन कंदलि, मेरो मन अहेरा खेलै ।
बपु बाडी अनग मृग, रचिहीं रचि मेलै ।।टेक।।
चित तरउवा पवन षेदा, सहज मूल बांधा ।
ध्यांन धनक जोग करम, ग्यांन बांन सांधा ।।
षट चक्र कंवल देघा, जारि उजारा कीन्हां ।
कांम क्रोध लोभ मोह, हाकि स्यावज दीन्हां ।।
गगन मंडल रोकि बारा, तहां दिवस न राती ।
कहैं कबीर छांडि चले, बिछुरे सब साथी ।।२१०।।

कबीर कहते हैं कि हे प्रभु ! आपके कदली वन में मेरा मन रूपी आखेटक आखेट कर रहा है । हृदय रूपी वृक्ष पर प्राणायाम साधना कर इसे सहज समाधि से बांध दिया है । योगकर्मानुरूप ध्यान के धनुष पर ज्ञान वाण से लक्ष्य संधान—प्रभु प्राप्ति—किया है । इस वाण से षट्चक्र कमल जो मार्ग में है उनका भेदन कर ज्ञान लोक विकीर्ण किया है । काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह को हाँककर भगाकर, उस लक्ष्य को प्राप्त करने में सहायता ली । समस्त चित्तवृत्तियों को शून्यलोक में केन्द्रीभूत कर दिया है जहाँ न अंधकार है न प्रकाश अर्थात् सम अवस्था है । इस प्रकार कबीर कहते हैं कि हम तो अब इस प्रकार से सम्बन्ध-विच्छेद कर प्रभुलोक में चल दिए ।

विशेष—रूपक, सांगरूपक, अनुप्रास, रूपकातिशयोति अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग है ।

(२) योगसाधना षट्चक्रों के स्थान पर प्रायः अष्ट-चक्रों का ही उल्लेख प्राप्त होता है किन्तु कबीर ने अनेक स्थलों पर षट्चक्रों का ही वर्णन किया है । इन्होंने शून्यचक्र एवं सुरति कमल को छोड़ दिया है । वे षट्चक्र निम्नस्थ प्रकार हैं :—

(i) **मूलाधार**—इसका स्थिति स्थान योनि माना गया है । इसमें चार दल हैं हैं । यह रक्त वर्ण का होता है, इसका लोक भू है । इसका ध्यान करने से एक प्रकार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

...ध्वनि झंकृत होती है,वह क्रमशः वँ, शँ, षँ, सँ की होती है। इसके सिद्ध लाभ होने ...मनुष्य वक्ता, सर्वविद्याविनोदी, आरोग्य, मनुष्यों में श्रेष्ठ, आनन्दचित्त तथा काव्य-...में समर्थ होने आदि के विशेष गुण से युक्त हो जाता है।

(ii) **स्वाधिष्ठान चक्र**—इसका स्थिति स्थान पेडू माना गया है। इसमें छः ...होते हैं। यह सिंदूर वर्ण का होता है। इसका लोक भुवः है। इसका ध्यान करने ...क प्रकार की ध्वनि झंकृत होती है वह क्रमशः भ, मँ, यँ, रँ, लँ, वँ की होती है। ...के सिद्ध लाभ से अहंकार, विकार का नाश, योगियों में श्रेष्ठ, मोह रहित और गद्य ...की रचना में समर्थ विशेष गुण मनुष्य में उत्पन्न हो जाता है।

(iii) **मणिपूरक चक्र**—इसका स्थान नाभि कहा जाता है। इसमें दस दल ...हैं। यह नील वर्ण का होता है, इसका लोक स्वः है। इसका ध्यान करने से ...: डं, ढं, णं, तं, थं, दं, धं, नं, पं, फं की ध्वनियां झंकृत होती है। इसके सिद्ध ...होने से मनुष्य संहार पालन में समर्थ तथा वचन रचना में चतुर हो जाता है ...र उसकी जिह्वा पर सरस्वती निवास करती है।

(iv) **अनाहत चक्र**—इसका स्थिति स्थान हृदय में होता है। इसमें द्वादश दल ...ते हैं। यह अरुण वर्ण का होता है। इसका लोक महः है। इसका ध्यान करने से ...प्रकार का अनहद नाद झंकृत होता है। वह क्रमशः कं, खं, गं, घं, ङं, चं, छं, जं, ...ञं, टं, ठं का होता है। इसके सिद्ध लाभ से मनुष्य वचन रचना में समर्थ, ईशित्व ...द्धि प्राप्त योगेश्वर, ज्ञानवान्, इन्द्रियजित्, काव्य शक्ति वाला हो जाता है।

(v) **विशुद्ध चक्र**—यह चक्र कण्ठ स्थान में स्थित है। इसके षोडश दल होते ...। यह धूम्र वर्ण का होता है। इसका लोक जनः है। इसका ध्यान करने से क्रमशः ...से लेकर अः तक सोलह स्वरों की अनहद ध्वनि झंकृत होती है। इसके ध्यान सिद्ध ...ने पर मनुष्य काव्य रचना में समर्थ, ज्ञानवान्, उत्तम वक्ता, शान्त चित्त, त्रिलोक-...र्शी सर्वहितकारी, नीरोग, चिरजीवी और तेजस्वी होता है।

(vi) **आज्ञा चक्र**—यह दोनों भ्रुवों के मध्य में स्थित है। इसमें दो दल होते ...। यह श्वेत वर्ण होता है। इसका लोक तपः है। इसका ध्यान करने से हं, शं का ...हद नाद क्रमशः ध्वनित होता है। इसके सिद्ध लाभ से योगी को वाक्य-सिद्धि प्राप्त ...ती है।

साधन कंचू हरि न उतारं, अनभ ह्वै तौ अर्थ बिचारै ॥टेक॥
बांणी सुरंग सोधि करि आंणौं, आणैं नौ रंग धागा।
चंद सूर एकंतरि कीया, सीवत बहु दिन लागा ॥
पंच पदार्थ छोड़ि समांनां, हीरै मोती जड़िया।
कोटि बरस लूं कंचूं सींयां, सुर नर धंधै पड़िया ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

निस बासुर जे सोवैं नांहीं, ता नरि काल न खाई।
कहै कबीर गुर परसादैं, सहजैं रह्या समाई ॥२११॥

प्रभु बिना साधना के प्राप्त नहीं हो सकते, हे साधक ! यदि तुझे सांसारिक तापों का भय नहीं है तो इस पद का अर्थ स्पष्ट कर, हृदयगंम कर।

शरीर के नव द्वारों को गुरु उपदेश की सुरम्य वाणी से संचालित कर दिया है। इस भक्ति वस्त्र को सीने में मुझको बहुत समय लगा है। सीने से पूर्व इड़ा पिंगला को मिला दिया गया था। पांच विषयों का रस छोड़कर मैंने इसमें हीरे और माणिक जड़ दिये हैं। समस्त संसार, देव-मनुष्य सभी विषय-वासना जंजाल में पड़े हुए और मैंने इस साधना वस्त्र को दीर्घ समय तक सीयां है। जो व्यक्ति, भक्त, अहर्निश सावधान रह प्रभु-भक्ति में संलग्न रहते हैं उन्हें मृत्यु नहीं व्यापती। कबीर कहते कि मैं तो गुरु कृपा से सहज-समाधि में लगा हुआ हूं।

जीवत जिनि मारै मूवा मति ल्यावै,
मास बिहूंणां घरि मत आवै हो कंता ॥टेक॥
उर बिन पुर बिन चंच बिन, बपु बिहूंनां सोई।
सो स्यावज जिनि मारै कंता, जाकै रगत मास न होई।
पैंली पार के पारधी, ताकी धुनही पिनच नहीं रे।
ता बेली कौ ढूंक्यौ मृग लौ, ता मृग कैसी सनही रे॥
मार्‌या मृग जीतता राख्या यहु गुर ग्यांन मही रे।
कहै कबीर स्वामीं तुम्हारे मिलन कौ, बेली है पर पात नहीं रे ॥२१

आत्मा के माध्यम से कबीर जीव को सम्बोधित करते कहते हैं कि स्वामिन् ! तू जीवन्मुक्त स्थिति को प्राप्त कर ले। (मांस—गौमांस) महारस की प्राप्ति बिना तेरा घर आना व्यर्थ है। वह ब्रह्म हृदय विहीन, नगर विहीन, मुख विहीन एवं रूप आकार से परे है। वही साधक श्रेष्ठ है, योगी है जो इस रक्त मांस विहीन आखेट को प्राप्त करे। जिस धनुष से उस दूसरे तट पर स्थित लक्ष्य का संधान किया जाता है उसमें न तो प्रत्यंचा है और न बांस की खप्पच ही। उस अनुपम अमृत-वेलि को मन रूपी मृग ने अन्य तृष्णाओं से आवृत कर लिया है। इसलिए मन-मृग से मित्रता कैसी ? गुरु का उपदेश तो यही है कि इस मृग को मारकर, नियन्त्रित कर उस अमर वेलि को प्राप्त किया जाय। कबीर कहते हैं कि हे प्रभु ! आपसे मिलन के लिए साधना, या भक्ति-लता का ही साधन है, माया का नहीं।

धीरौ मेरे मनवां तोहि धरि टांघौं, तैं तौ कीयौ मेरे खसम सूं पांगौं ॥टेक॥
प्रेम की जेवरिया तेरे गलि बांधूं, तहां लै जांउं जहां मेरौ माधौ।
काया दगरीं पैसि किया मैं बासा, हरि रस छाड़ि विष रसि माता।
कहै कबीर तन मन का ओरा, भाव भगति हरि सूं गठजोरा ॥२१

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हे मेरे मन ! तनिक रुक, मैं तुझे अभी दण्डित करता हूं, तूने प्रभु, स्वामी, विश्वासघात कैसे किया ? मैं तेरे गले में प्रेम-रज्जु बाँधकर तुझे वहां ले जाऊंगा ...वान् है। इस शरीर की क्षुधा-पूर्ति में ही तू व्यस्त रहता है, प्रभु-भक्ति के ...को त्याग विषय-वासनाओं में उलझा रहता है ! कबीर कहते हैं कि मैं तन-...स्व प्रभु को अर्पित कर चुका हूं और अब भगवान् से ही मेरा सम्बन्ध रह ...।

पारब्रह्म देख्या हो, तब बाड़ी फूली, फल लागा बडहूली।
सदा सदाफल दाख बेजौरा कौतिकहारी भूली ।।टेक।।
द्वादस कूवा एक बनमाली, उलटा नीर चलावै।
सहजि सुषमनां कूल भरावै, दह दिसि बाड़ी पावै।।
ल्यौकी लेज पवन का ढ़ींकू, मन मटका ज बनाया।
सत की पाटि सुरति का चाठा, सहजि नीर मुकलाया।।
त्रिकुटी चढ्यौ पाव ढौ ढारै, अरध उरध को क्यारी।
चंद सूर दोऊ पांणति कहिहैं, गुर मुषि बीज बिचारी।।
भरी छाबड़ी मन बैकुंठा, सांई सूर हिया रंगा।
कहै कबीर सुनहु रे संतौ, हरि हंम एकै संगा ।।२१४।।

जब ईश्वर के दर्शन हो जाँय तभी यह भक्ति-लतिका पल्लवित होती है और ...इस पर परम फल लगता है। साधक आत्मा उस सदैव मधुर रहने वाले दाख ...मधुर पदार्थ को प्राप्त कर आश्चर्य में पड़ जाती है। वहाँ पर बारह पंखु-...युत और एक कमल कुंआ है जिसका अधिष्ठाता एक ब्रह्म ही है और वहां पर ...वित होता रहता है। सहज समाधि द्वारा सुषुम्णा के माध्यम से कुण्डलिनी ...कर वहाँ दसों बावड़ियों का सृजन करती है। प्राणायाम की ढेंकुली पर लय की ...से मन-गागरी को भर, सत्य की घिर्री एवं सुरति द्वारा खींच इस प्रभु-भक्ति ...जल को प्राप्त किया जाता है। त्रिकुटी पर आकर मन केन्द्रित हो जाता है, ...गरी ढुलक जाती है जिससे इधर-उधर बने क्षेत्र की क्यारियाँ उस अनुपम प्रभु-...जल से अभिसिंचित हो जाती हैं। चन्द्र और सूर्य, इड़ा-पिंगला दोनों उस क्षेत्र ...जोतकर उत्तम कृषि योग्य बना देती हैं जिसमें गुरु-वाणी के उत्तम बीज का वपन ...है। इस भांति ईश्वर-भक्ति से समस्त क्षेत्र पल्लवित हो उठा और हृदय प्रभु ...में ही रंग गया। कबीर कहते हैं कि इस स्थिति में पहुंचकर मैंने प्रभु का ...कार कर लिया है।

रांम नांम रंग लागौ, कुरंग न होई।
हरि रंग सौ रंग और न कोई ।।टेक।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और सबै रंग इहि रंग थैं छूटैं, हरि-रंग लागा कदे न खूटै।
कहै कबीर मेरे रंग रांम राई, और पतंग रंग उड़ि जाई ॥२१॥

कबीर कहते हैं कि मेरा अन्तर प्रभु भक्ति के रंग से रंग गया है और वह छुट नहीं सकता क्योंकि इस ईश्वर-भक्ति रंग के समान और कोई रंग नहीं। कबीर कहते हैं कि मेरे पर तो राम-भक्ति का ही रंग चढ़ चुका है और रंग पतंग के रंग के समान क्षणिक हैं।

कबीरा प्रेम कूल ढरै, हंमारै रांम बिनां न सरै।
बांधि लै धोरा सींचि लै क्यारी, ज्यूं तूं पेड़ भरै ॥टेक॥
काया बाड़ी मांहैं माली, टहल करै दिन राती।
कब्रहूँ न सोवै काज संवारे, पांणतिहारी माती॥
सेझै कूवा स्वाति अति सीतल, कबहूँ कुबा वनहीं रे।
भाग हंमारे हरि रखवाले, कोई उजाड़ नहीं रे॥
गुर बीज जमाया कि रखि न पाया, मन की आपदा खोई।
औरै स्यावढ करै षारिसा, सिला करै सब कोई॥
जौ घरि आया तौ सब ल्याया, सबही काज संवार्‍या।
कहै कबीर सुनहु रे संतौ, थकित भया मैं हार्‍या ॥२१६॥

कबीर कहते हैं कि प्रभु प्रेम के तट पर ही निवास श्रेय है क्योंकि प्र[भु के] बिना हमारा निर्वाह सम्भव नहीं। संयम का बांध बांधकर इस क्यारी को प्रभु [प्रेम] के भरपूर जल से अभिसिंचित कर ले। वह अनुपम माली—ब्रह्म—इस शरीर [रूपी] क्षेत्र के अन्तर्गत ही रहता है जो दिन रात सृष्टि पालन में तत्पर रहता है। [वह] माली, क्षेत्र को उर्वर करने वाला कभी भी नहीं सोता। इस खेती की सिंचाई के [लिये] सहज का अत्यन्त शीतल और मधुर जल वाला कुंआ है। यह हमारा परम सौ[भाग्य] है कि इस खेती के रक्षक स्वयं श्री भगवान् हैं, इसकी कोई हानि नहीं कर सक[ता]।

गुरु ने सदुपदेश का वीज इस क्षेत्र में डाला था। मन की चंचलता ने [उसे] विनष्ट कर दिया। जौहरी, पारखी ही उस बीज को पहचान सकते हैं, शेष तो [...] को प्राप्त करते हैं। जो इस प्रभु भक्ति को घर ले आये तो समस्त कामनाएं तृप्त हो जाती हैं। कबीर कहते हैं कि हे सन्तो! मैं इस तथ्य का कथन करते-[करते] हार गया किन्तु फिर भी संसार अपनी विषय-वासनाओं में गति नहीं छोड़ता।

राजा राम बिनां तकती धो धो।
राम बिनां नर क्यूं छूटौगे, जम करै नग धो धो धो ॥टेक॥
मुद्रा पहर्‍यां जोग न होई, घूंघट काढ्यां सती न कोई॥
माया कै संगि हिलि मिलि आया, फोकट साटै जनम गँवाया।
कहै कबीर जिनि हरि पद चीन्हां, मलिन प्यंड थैं निरमल कीन्हां ॥२१[७]॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ईश्वर के विना इस संसार में व्यर्थ-परिश्रम के अतिरिक्त कुछ नहीं है। काल तुम्हें वारम्वार परेशान करेगी विना राम के भला कैसे उससे मुक्ति

मुद्रा धारण कर लेने मात्र से ही कोई साधु-योगी—नहीं वन जाता जैसे घूंघट मात्र से किसी नारी में सतीत्व नहीं आ जाता। जो मनुष्य माया के साथ रहा उसने तो अपना जीवन वृथा ही गंवा दिया। कबीर कहते हैं कि प्रभु के चरणों को पहचान लिया उन्होंने इस पाप मलिन शरीर को पुण्य- दिया।

है कोई रांम नांम बतावै, बस्तु अगोचर मोहि लखावै ।।टेक।।
रांम नांम सब कोई बखांनै, रांम नांम मरम न जांनैं ।।
ऊपर की मोहि बात न भावै, देखै गावैं तौ सुख पावै।
कहै कबीर कछू कहत न आवै, परचै विनां मरम को पावै ।।२१८।।

ऐसा कौन इस संसार में है जो मुझे राम-नाम का मर्म समझाकर उस अगो- को प्राप्त करा दे। राम नाम का गुणगान तो सब कोई करता है किन्तु रहस्य से सब अनभिज्ञ हैं। कबीर कहते हैं कि मुझे बाह्याडम्बर, भक्ति के बहुत घृणा है, उस प्रभु के गुणगान और दर्शन से ही वास्तविक सुख प्राप्त है। उसका रहस्य बिना साक्षात्कार के बताना असम्भव ही है।

गोब्यंदे तूं निरंजन तूं निरंजन तूं निरंजन राया।
तेरे रूप नाहीं रेख नाहीं मुद्रा नहीं माया ।।टेक।।
समद नाहीं सिषर नाहीं, धरती नाहीं गगनां।
रवि ससि दोउ एकै नाहीं, बहत नांहीं पवनां ।।
नाद नांहीं ब्यंद नांहीं, काल नहीं काया।
जब तें जल ब्यंब न होते, तब तूंहीं राम राया ।।
जप नांहीं तप नांहीं, जोग ध्यांन नहीं पूजा।
सिव नांही सकती नांहीं, देव नहीं दूजा ।।
रुग न जुग न स्यांम अथरबन, बेद नहीं ब्याकरनां।
तेरी गति तूंहीं जांनैं, कबीरा तो सरनां ।।२१९।।

हे ईश्वर! तू निरंजन है, तू साधारण नेत्रों से न देखे ज़ाने के कारण अलख है। तेरा कोई रूप, आकार, मुख, मुद्रा नहीं, माया का भी तुझ तक प्रसार तू न तो समुद्र है, न पर्वतशिखर, न पृथ्वी एवं तू सूर्य-चन्द्र दोनों में से एक नहीं है, न वायु ही तू है। न तू नाद है, न मृत्यु और न शरीर। जब सृष्टि में आदि की भी सत्ता नहीं थी तब हे प्रभु आपही का अस्तित्व था। न तू जप-तप,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

योग, ध्यान अथवा पूजा से प्राप्य है। तू न शिव है और न शक्ति—न इसके रिक्त अन्य कोई देवता है। न तू ऋग्, यजु, अथर्व और सामवेद और न इन में से ही तू कोई है। हे प्रभु ! आपकी गति केवल आप ही जानते हैं, कबीर तो की शरण में पड़ा हुआ है।

राम कै नांइ नींसांन बागा, ताका मरम न जानैं कोई।
भूख त्रिषा गुण वाकै नांहीं, घट घट अंतरि सोई ॥टेक॥
बेद बिर्बजित भेद बिर्बजित, बिर्बजित पाप रु पुंन्यं।
ग्यान बिर्बजित ध्यान बिर्बजित, बिर्बजित अस्थूल सुंन्यं॥
भेष बिर्बजित भीख बिर्बजित, बिर्बजित ड्यभक रूपं।
कहै कबीर तिहूँ लोक बिर्बजित, ऐसा तत्त अनूपं ॥२२०॥

यहां कबीर ईश्वर के अद्भुत स्वरूप का कथन करते हुए कहते हैं कि राम का कोई चिन्ह है ही नहीं उसका रहस्य कोई नहीं जानता। उसे न भूख लगती है। वह तो प्रत्येक हृदय में वसा हुआ है। वह वेद, भेद एवं पाप-पुण्य की भाषाओं से अलग है। ज्ञान, ध्यान, स्थूल एवं सूक्ष्म इन परिधि से भी वह दूर वाह्याडम्बर, भिक्षाटन, दम्भ आदि के स्वरूप से भी वह प्राप्त नहीं हो सकता। कबीर कहते हैं कि वह ब्रह्म तो ऐसा अनुपम, चित्र-विचित्र है कि वह तीनों लोकों में अनोखा है।

रांम रांम रांम रमि रहिए, साषित सेती भूलि न कहिये ॥टेक॥
का सुनहां कौं सुमृत सुनांयें, का साषित पैं हरि गुन गांये।
का कऊवा कौं कपूर खवाय, का बिसहर कौं दूध पिलांये॥
साषित सुनहां दोऊ भाई, वो नीदै वौ भौंकत जाई।
अंमृत ले ले नींब स्यंचाई, कहै कबीर वाकी बांनि न जाई ॥२२१॥

साषित=शाक्त। सेती=शक्ति। सुनहा=श्वान। सुमृत=स्मृति। बिसहर=विषधर।

कबीर कहते हैं कि हे शाक्त ! तुम भूलकर भी शक्ति का जप मत करो सदैव राम-नाम में अपनी वृत्ति रमाये रहो। जिस भाँति श्वान को स्मृति सुनाने से कोई लाभ नहीं उसी प्रकार शाक्त के सम्मुख प्रभु-गुण गान का कोई महत्व या अर्थ नहीं। उसके सम्मुख यह ऐसे ही निरर्थक है जिस भाँति कौए को कपूर जैसी सुगन्धित वस्तु खिलाने से वह अपना दुष्ट स्वभाव नहीं छोड़ता तथा सर्प दूध पिलाने से डसना करना नहीं छोड़ता। शाक्त और श्वान दोनों एक जैसे ही हैं, शाक्त दूसरों की निन्दा में सर्वदा भौंकता रहता है, कुत्ता भी भौंकता है। चाहे उसे कितना ही प्रभु-भक्ति का अमृत दिया जाय किन्तु उसकी आदत नहीं छूटती।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विशेष—१. उदाहरण अलंकार। २. कबीर की तीव्र शाक्त विरोधी भावना स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आई है।

अब न बसूं इहिं गांइ गुसाईं,
तेरे नेवगी खरे सयांनें हो रांम ।।टेक।।
नगर एक तहां जीव धरम हता, बसैं जु पंच किसानां।
नैंनूं निकट श्रवनूं रसनूं, इंद्री कह्या न मांनैं हो रांम ।।
गांइ कु ठाकुर खेत कु नेपै, काइथ खरच न पारै।
जोरि जेवरी खेति पसारै, सब मिलि मोकौं मारै हो रांम ।।
खोटौ महतौ विकट बलाही, सिर कसदम का पारै।
बुरो दिवांन दादि नहि लागै, इक बांधै इक मारै हो रांम ।।
धरमराइ जब लेखा मांग्या, बाकी निकसी भारी।
पाँच किसांनां भाजि गये हैं, जीव धर बांध्यौ पारी हो रांम ।।
कहै कबीर सुनहु रे संतौ, हरि भजि बांधौ भेरा।
अब की बेर बकसि बंदे कौं, सब खत करौं नबेरा ।।२२२।।

हे प्रभु ! मैं आपके सम्मुख प्रार्थना करता हूं कि इस संसार रूपी ग्राम में पुनः नहीं बसूंगा। यहां रहकर जीवात्मा का धर्म नष्ट हो गया है। उस नगर में पांच विषयों के रूप में पंच कृषक वास करते हैं। इन्द्रियां मेरा कहना मानती ही नहीं, वे दौड़-दौड़ कर इन विषयों में लिप्त रहती हैं। गांव का स्वामी काल इस शरीर रूपी क्षेत्र को नाप रहा है, और कायस्थ-पटवारी भी अपना हिस्सा नहीं छोड़ता। जर्जर वन्धनों की रज्जु में ये मेरे अस्तित्व को वाँध रहे हैं—इस प्रकार हे राम ! ये सब मिलकर मुझे मारे दे रहे हैं। इस गाँव का मुकद्दम और अन्य कर्मचारी भी दुर्जन हैं जो आसामी को मार कर ही छोड़ेंगे। पुलिस के जो दीवान हैं वे भी कुचरित्री हैं, जो इन आततायियों से मुझे नहीं वचाते, रक्षक ही भक्षक हैं। मृत्यु होने पर जब धर्मराज ने कर्मों का लेखा-जोखा देखा तो मेरी ओर वहुत हिसाब निकला। इस स्थिति को देखकर पंच विषयों के कृषक भाग गये हैं।

कबीर कहते हैं कि हे सज्जनो ! साधुओ ! प्रभु का स्मरण करते हुए इस जीवन-बेड़े को बांध लो। हे प्रभु ! अबकी वार मुझे क्षमा कर दो, दया-दान दे दो मैं पिछला समस्त हिसाब सत्कर्मों से चुकता कर दूंगा।

विशेष—१. सांगरूपक अलंकार।

२. सूर से तुलना कीजिए—

"अबकी माधव मोहि उधारो।
मगन हौं भव-अंबुनिधि में कृपासिंधु मुरारी ।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नीर अति गम्भीर माया लोभ लहरि तरंग।
लिए जात अगाध जल में गहे ग्राह अनंग॥
मीन इन्द्रिय अतिहि काटत मोट अघ सिर भार।
पग न इत-तन धरन पावत उरझि मोह सेवार॥
काम क्रोध समेत तृष्णा पवन अति झकझोर।
नहिं चितवन देत तिय सुत नाम नौका ओर॥
थक्यो बीच बेहाल विह्वल सुनहु करुनामूल।
स्याम भुज गहि काढ़ि डारहु 'सूर' व्रज के कूल॥"

इसी प्रकार अन्य भक्तों ने इस जन्म की दारुण व्यथा दिखाते हुए प्रभु से ए बार उद्धार कर देने की कामना की है।

ता भै थैं मन लागौ राम तोही, करौ कृपा जिनि बिसरौ मोही ॥टेक॥
जननी जठर सह्या दुख भारी, सो संक्या नहीं गई हमारी॥
दिन दिन तन छीजै जरा जनावै, केस गहें काल बिरदंग बजावै॥
कहै कबीर करुणांमय आगैं, तुम्हारी क्रिपा बिना यहु बिपति न भागैं ॥२३

जठर=उदर। छीजै=नष्ट होता है। जरा=वृद्धावस्था। बिरदंग= मृदंग।

हे प्रभु ! मैं इस संसार-ताप भय से आपका आश्रय ग्रहण कर रहा हूं, दयामय दया कीजिए। मातृ उदर में बारम्बार ताप और दुख सहता हूं किन्तु फि भी यह संसार संशय नष्ट नहीं होता। दिन अनुदिन यह शरीर क्षीण होता हुअ वृद्धावस्था के आगमन की सूचना देता है और मृत्यु सर्वदा हम पर छाय हुई आनन्द मना रही है। कबीर दीनबन्धु प्रभु के सम्मुख यह प्रार्थना करता है कि आपकी अनुकम्पा बिना यह दारुण-दुख दूर नहीं होगा अतः कृपा करो।

कब देखूं मेरे राम सनेही, जा बिन दुख पावै मेरी देही ॥टेक॥
हूँ तेरा पथ निहारूं स्वांमी, कब रमिलहुगे अंतरजांमी।
जैसें जल बिन मींन तलपै, ऐसैं हरि बिन मेरा जियरा कलपै॥
निस दिन हरि बिन नींद न आवै, दरस पियासी रांम क्यूं सचुपावै।
कहै कबीर अब बिलंब न कीजै, अपनौं जांनि मोहि दरसन दीजै ॥२२४॥

हे प्रभु ! मैं आपके दर्शन कब प्राप्त करूंगा, आपके अभाव में यह शरीर प्रतिपल वेदना का अनुभव कर रहा है। मैं आपका मार्ग तभी से जोह रहा हूं, हे प्रभु आप कब दर्शन दोगे ? जिस भांति जल के अभाव में मछली व्यथित होती है वही स्थिति मेरी आपके अभाव में है। मुझे अहर्निश प्रभु-दर्शन के बिना नींद नहीं आती है। भला जो स्वामी के दर्शन की भूखी है वह शान्ति लाभ कैसे करेगी ?

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कबीर कहते हैं कि हे प्रभु ! आप मुझे अपना ही जानकर अब दर्शन देने में कृपा कीजिए ।

वो मेरा रांम कबै घरि आवै, ता देखें मेरा जिय सुख पावै ।।टेक।।
विरह अगिनि तन दिया जराई, बिन दरसन क्यूं होइ सराई ।।
निस बासुर मन रहै उदासा, जैसे चातिग नीर पियासा ।
कहै कबीर अति आतुरताई, हमकौं बेगि मिलौ रांमराई ।।२२५।।

कबीर अपनी आत्मा के माध्यम से कहते हैं कि हे मेरे स्वामी राम ! आप मुझे दर्शन दोगे जिससे मेरा मन आह्लादित हो जायेगा। यह शरीर विरहाग्नि में दग्ध हो रहा है, दर्शन के विना यहाँ शीतलता, शान्ति, सम्भव नहीं। जिस प्रकार चातक स्वाति नक्षत्र के जल के लिए तृषित रहता है उसी भाँति मेरा मन प्रभु दर्शन के लिए बेचैन रहता है। कबीर विरहातुर होकर मनुहार करते हैं कि हे प्रभु ! मुझे शीघ्र दर्शन दो।

मैं सासने पीव गौंहनि आई ।
सांई संगि साध नहीं पूगी, गयौ जोबन सुपिनां की नांई ।।टेक।।
पंच जनां मिलि मंडप छायौ, तीनि जनां मिलि लगन लिखाई ।
सखी सहेली मंगल गांवें, सुख दुख माथै हलद चढ़ाई ।।
नांनां रंगैं भांवरि फेरी, गांठि जोरि बाबै पति ताई ।
पूरि सुहाग भयौ बिन दूलह, चौक कै रंगि धर्‌यौ सगौ भाई ।।
अपने पुरिष मुख कबहूँ न देख्यौ, सती होत समझी समझाई ।
कहै कबीर हूं सर रचि मरि हूं, तिरौं कंत ले तूर बजाई ।।२२६।।

कबीर आत्मा से कहलाते हैं कि मैं इस संसार रूपी श्वसुर गृह में नवपरिणीता वधू के रूप में आई थी किन्तु कभी भी मेरा अपने स्वामी (प्रभु) से साक्षात्कार नहीं हुआ। यह आयु (जोबन) यूं ही बीत गई। यद्यपि मेरा साँसारिक रीति से विवाह हुआ था किन्तु साक्षात्कार आज तक नहीं हुआ। पांचों इन्द्रियों ने मिलकर विवाह-मंडप रचाया था और तीनों गुणों ने लग्न लिखी थी। साँसारिक साथियों ने मिलकर मंगल गान इस विवाहोत्सव पर गाये थे और मेरे शरीर पर सुख दुख की हलद चढ़ा दी थी। अनेक रंगों की परिक्रमाएं कर गठ-बन्धन आदि की समस्त क्रियाएं सम्पूर्ण कीं। चौक के रंगों को सगे भाई ने रखा था। इस भांति बिना पति के ही विवाह की समस्त क्रियाएं सम्पन्न कर दी गईं। इस आत्मा ने अपने स्वामी का मुख देखने का सौभाग्य कभी भी प्राप्त नहीं किया है। कबीर कहते हैं कि हे आत्मा ! अब ऐसे सुकर्म कर कि मंगल वाद्य बजाकर प्रियतम का स्वागत कर सके।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

धीरैं धीरैं खाइबौ अनत न जाइबौ, रांम रांम रांम रमि रहिबौ ॥टेक॥
पहली खाई आई माई, पीछैं खैहूं सगौ जवाई।
खाया देवर खाया जेठ, सब खाया सुसर का पेट ॥
खाया सब पटण का लोग, कहै कबीर तब पाया जोग ॥२२७॥

कबीर कहते हैं कि 'राम-राम' जपने से ही जीव का कल्याण होगा, इसलिए अपने सांसारिक सम्बन्धों को तो धीरे-धीरे समाप्त करना ही श्रेयस्कर है।

पहले जीवात्मा ने माया (अपनी माँ, क्योंकि जीव माया सृष्टि है) समाप्त किया तदनन्तर उससे उत्पन्न विषय-वासना के जितने भी आकर्षण थे समाप्त कर दिया। देवर, जेठ, श्वसुर—जितना भी माया का परिवार था समाप्त कर ही भक्तात्मा ने प्रभु-भक्ति, योग, को प्राप्त किया है।

मन मेरौ रहटा रसनां पुरइया,
हरि कौ नांउं लै लै काति बहुरिया ॥टेक॥
चारि खूंटी दोइ चमरख लाई, सहजि रहटवा दियौ चलाई॥
सासू कहै काति बहू ऐसैं, बिन कातैं निसतरिबौ कैसें।
कहै कबीर सूत भल काता, रहटां नहीं परम पद दाता ॥२२८॥

कबीर अपनी आत्मा को सम्बोधित कर कहते हैं कि हे बहू ! तू प्रभु नाम ले-ले कर भक्ति का सूत कात। मेरा मन ही चरखे का घेरा है जिस पर जिह्वा की माल चढ़ी हुई है। चारों पदार्थों को खूंटों के रूप में स्थापित कर दोनों लोकों की चमरख लगायी है और 'सहजसमधि' की घेरी को चला दिया है। गुरु जिस आत्मा को कहते हैं कि तू इस भांति भक्ति का सूत कात, विना इसे काते तेरा उद्धार सम्भव नहीं। कबीर कहते हैं कि हे आत्मा ! तू इस सूत को कात ले, मन के वश में मत पड़ मन रूपी रहट (घेरा) परमपद का दाता नहीं, उसकी प्राप्ति तो भक्ति से होती है।

विशेष—साँगरूपक, रूपक, रूपकातिशयोक्ति अलंकार।

अब की घरी मेरो घर करसी, साध संगति ले मोकौं तिरसी ॥टेक॥
पहली को घाल्यौ भरमत डोल्यौ, सच कबहूं नहीं पायौ।
अब की धरनि धरी जा दिन थैं, सगलौ भरम गमायौ ॥
पहली नारि सदा कुलवंती, सासू सुसरा मानैं।
देवर जेठ सबनि की प्यारी, पिय कौ मरम न जानैं ॥
अबकी धरनि धरी जा दिन थैं, पीय सूं बांन बन्यूं रे।
कहै कबीर भाग बपुरी कौं, आइ रु रांम सुन्यूं रे ॥२२९॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कबीर कहते हैं कि अब मैं साधु-संगति से इस भवसागर से तर जाऊंगा और ...ने वास्तविक घर पहुंच जाऊंगा। मैं अपने पहले किये हुए कुकर्मों के बल पर ही ...संसार में भ्रमित हो रहा हूं और सत्य का साक्षात्कार नहीं कर पा रहा हूं किन्तु ...जिस समय मैंने प्रभु-भक्ति का संकल्प किया है मेरा समस्त भ्रम विदूरित हो ...या है साधक आत्मा बड़ी सती होती है जो प्रिय का ही ध्यान करती हुई गुरुजनों ...भी सम्मान करती है किन्तु यह साँसारिक आत्मा प्रियतम (प्रभु) की चिन्ता न ...रती हुई वासना में लिप्त रहती है। यह पहली, साधक, आत्मा का ही भाग्य होता है कि प्रभु उससे मिलते हैं।

मेरी मति बौरी रांम बिसार्‌यौ, किहि बिधि रहनि रहूं हो दयाला।
सेजैं रहूं नैंन नहीं देखौं, यहु दुख कासौं कहू हो दयाल ॥टेक॥
सासु की दुखी सुसर की प्यारी, जेठ कै तरसि डरौं रे।
नणद सहेली गरब गहेली, देवर कै बिरह जरौं हो दयाल ॥
बाप सावकौ करै लराई, माया सद मतिवालो।
सगौ भईया लै सलि चढ़िहूं, तब ह्वै हूं पीयहि पियारी ॥
सोचि बिचारि देखौ मन मांहीं, औसर आइ बन्यूं रे।
कहै कबीर सुनहुं मति सुंदरि, राजा रांम रमूं रे ॥२३०॥

कबीर कहते हैं कि हे दीनबन्धु! मैं किस भांति जीवन-धारण करूं। यह कैसी विडम्बना है कि आप सदैव समीप रहते हो किन्तु आपका दर्शन नहीं होता, इस व्यथा-कथा को किससे कहा जाय। यह आत्मारूपी दुलहन मायारूपी सास से तो दुखी है किन्तु प्रभु-रूप श्वसुर की प्यारी है एवं काल के कारण तो यह थर-थर काँपती है। सखियां इसे वासना पथ पर चलने को प्रेरित करती हैं किन्तु यह किसी और के ही प्रेम में घुली जा रही है। यह माया अपने जन्म देने वाले पिता—प्रभु से ही विरोध ठान रही है। यह आत्मा मायाजन्म आकर्षणों को चाहे वे भाई तुल्य ही प्रिय क्यों हों जब तक मार नहीं देती तब तक प्रियतम को प्रिय नहीं हो सकती। कबीर कहते हैं कि मन में भली भाँति सोच समझ कर देख लो यह, इस जन्म के रूप में, प्रभु-भक्ति अवसर आ गया है। इसलिए प्रभु का भजन करो।

विशेष—१. रूपक, अन्योक्ति, विरोधाभास।

२. टेक की तीसरी 'पंक्ति से विद्यापति के भाव की तुलना कीजिए—

"एकहि पलंग पर कान्ह रे, मोर लख दूरं देस मान रे।"

अवधू ऐसा ग्यांन बिचारी, तार्थैं भई पुरिष थैं नारी ॥टेक॥
नां हूं परनी नां हूं क्वारी, पूत जन्यूं द्यौ हारी।
काली मूंड कौ एक छोड्‌यौ, अजहूं अकन कुवारी ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बाम्हन कै बम्हनेटी कहियौं, जोगी कै घरि चेली।
कलमां पढि पढि भई तुरकनी, अजहूं फिरौं अकेली ॥
पीहरि जांऊं न रहूं सासुरै, पुरषहि अंगि न लांऊं।
कहै कबीर सुनहु रे संतो, अगहि अंग न छुवांऊं ॥२३१॥

परनीं=परिणीता। क्वारी=कन्या।

हे अवधूत! तू इस रहस्य को समझने की चेष्टा करो, जिससे 'ब्रह्म' परम-पुरुष होते हुए भी माया रूप में क्यों सृष्टि करता है? यह वैसा ही है जैसे कि स्त्री न तो परिणीता है और न क्वारी किन्तु फिर भी पुत्र को जन्म देती है। इस माया ने किसी भी मनुष्य को धर्मनिष्ठ नहीं रहने दिया किन्तु फिर भी यह आज भी क्वारी ही है। यह ढोंगी पंडितों के घर तो अपना पूर्ण प्रभुत्व जमा लेती है किन्तु ज्योति-स्वरूप परमात्मा की साधना में लगे हुए साधक की यह चेरा मात्र है। यह शास्त्र ग्रन्थों को भी पढ़कर व्यभिचार नहीं छोड़ती। आत्मा कहती है कि अब मैं इस संसार रूपी श्वसुर गृह में नहीं रहना चाहती, अपने प्रभु के लोक—पीहर—को जाना चाहती हूं। इसलिए मैं अब तनिक भी विषय-वासना में नहीं पड़ंगी। कबीर कहते हैं कि हे सन्तो अब मेरी आत्मा पूर्ण निर्मल रहेगी जिससे प्रभु से मिलन हो सके।

मींठी मींठी माया तजी न जाई, अग्यांनीं पुरिष कौं भोलि भोलि खाई ॥टेक॥
निरगुंण सगुंण नारी, संसारि पियारी, लषमणि त्यागी गोरषि निवारी।
कीड़ी कुंजर मैं रही समाई, तीनि लोक जीत्या माया किनहूं न खाई ॥
कहै कबीर पद लेहु बिचारी, संसारि आइ माया किनहुं एक कहीं षारी ॥२३२॥

कबीर कहते हैं कि ऊपर से मीठी-मीठी इस माया का परित्याग करते नहीं बनता। अज्ञानी मनुष्य को तो यह भोला समझ-कर खूब नष्ट करती है। यह निर्गुण और सगुण रूप माया बड़ी भयानक है। लक्ष्मण और गोरखनाथ जी जैसे इसको त्याग चुके हैं। इसने तीनों लोकों को विजित कर चिऊंटी से हाथी जैसे बड़े पदार्थ तक में अपना अस्तित्व बना रखा है किन्तु इसे कोई समाप्त नहीं कर सका। कबीर कहते हैं कि यह तुम भली भांति समझ लो कि संसार में आकर माया से विरले ही बचते हैं।

मन कै मैलौ बाहरि ऊजलौ किसौ रे,
खांडे की धार जन कौ धरम इसौ रे ॥टेक॥
हिरदा कों बिलाव नैंन बग ध्यांनीं।
ऐसी भगात न होइ रे प्रांनीं ॥
कपट की भगति करै जिन कोई।
अंत की बेर बहुत दुख होई ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

छांडि कपट भजौ रांम राई।
कहै कबीर तिहूँ लोक बड़ाई ।।२३३।।

यदि मन विषय-वासना विकारों से दूषित है तो शरीर को उज्ज्वल रखने से क्या ...भ? अन्तर और बाह्य—दोनों की ही शुद्धता वांछनीय है। भक्त का कर्तव्य ...लवार की धार पै धावनों' है।

हृदय में कपट रखते हुए बगला भक्त के समान नेत्रमूंदे से भक्ति-साधना नहीं ...ती। जो भक्ति में कपटपूर्ण व्यवहार करता है, अन्ततः उसे दारुण दुख उठाने पड़ते ...। यदि कपट छोड़कर प्रभु राम का भजन किया जाय तो भक्त का यश तीनों लोकों ... फैल जाता है।

चोखौ बनज व्यौपार करीजै,
आइनैं दिसावरि रे रांम जपि लाहौ लीजै ।।टेक।।
जब लग देखौं हाट पसारा, उठि मन बणियों रे, करि ले बणज सवारा।
वेगे हो तुम्ह लाद लदांनां, औघट घाटा रे चलनां दूरि पयांनां।।
खरा न खोटा नां परखानां, लाहे कारनि रे सब मूल हिरांनां।
सकल दुनीं मैं लोभ पियारा, मूल ज राखै रे सोई बनिजारा।।
देस भला परिलोक विरांनां, जन दोइ चारि नरे पूछौ साध सयांनां।
सायर तीर न वार न पारा, कहि समझावै रे कबीर बणिजारा ।।२३४।।

कबीर जीवात्मा की तुलना वणिक् से करते हुए कहते हैं कि इस विदेश (संसार) में आकर भले कर्मों का व्यापार करना ही श्रेयस्कर है, अतः हे वणिक् (जीव) तुम राम नाम जपो। शीघ्रता-पूर्वक तुम अपना सामान बाँध लो, भक्ति कर्म कर लो क्योंकि तुम्हारा लक्ष्य दूर है और साधना की विकट पगडंडी के द्वारा तुम्हें वहाँ जाना होगा। इस संसार में तुमने लाभ के लोभ में खरे-खोटे कर्मों की कुछ भी पहचान न की, जिस से लाभ के स्थान पर पूर्वसंचित सत्कर्मों का मूलधन भी गंवा बैठे। समस्त संसार लोभ के वशीभूत है, जो कोई प्रभु-भक्ति के मूलधन की रक्षा करता है वही वास्तविक भक्त है। जिन दो चार सज्जनों से परामर्श किया उन्होंने यही सद्विचार बताया कि अपना देश ही अच्छा है। यह विदेश तो बाधाओं एवं व्यथाओं से परिपूर्ण है। भक्त कबीर समझाते हुए कहते हैं कि शूरवीर का तीर या तो पार ही कर देता है अन्यथा वे तार ही नहीं छोड़ते। भाव यह है कि ऐसी भक्ति करो जो इस संसार सागर से पार हो अपने वास्तविक देश—प्रभु-लोक—में पहुंच जाओ।

विशेष—सांगरूपक अलंकार।

जौ मैं ग्यांन बिचार न पाया,
तौ मैं यौंहीं जन्म गंवाया ।।टेक।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यहु संसार हाट करि जांनं, सबको बणिजण आया।
चेति सकै सो चेतौ रे भाई, मूरिख मूल गंवाया॥
थाके नैंन बैंन भी थाकै, थाकी सुंदर काया।
जांमण मरण ए द्वै थाके, एक न थाकी माया॥
चेति चेति मेरे मन चंचल, जब लग घट मैं सासा।
भगति जाव पर भाव न जइयौ, हरि के चरन निवासा॥
जे जन जांनि जपैं जग जीवन, तिनका ग्यांन न नासा।
कहै कबीर वै कबहूं न हारैं, जांनि न ढारैं पासा॥२३५॥

यदि मने ज्ञान एवं मनन-चिन्तनपूर्ण विचार को प्राप्त न किया तो मेरा यह जन्म व्यर्थ ही चला जायगा। यह संसार तो एक बाज़ार—पैंठ है। वहाँ सब कर्म-व्यापार करने आये हैं। हे जीव! यदि तू इस विषय-वासना पूर्ण संसार में सावधान हो प्रभु का भजन कर सके तो ठीक है, अन्यथा अज्ञानियों ने अपने पूर्व संचित सत्कर्मों के मूलधन को भी गंवा दिया है। यह सुन्दर शरीर, नयन तथा वाणी सभी कुछ परि-श्रान्त और क्लान्त हो चुकी हैं, जन्म-मरण के चक्र में पड़ जीव ऊब गया है किन्तु माया फिर भी पराजित नहीं हुई। हे मेरे चंचल मन! तू प्राणों के रहते सावधान हो जा। हरि-चरणों की शरण और भक्ति-भाव के बिना माया-प्रभाव दूर नहीं हो सकता। जो भक्त-जन संसार की स्थिति को जानते हुए करुणामय का भजन करते हैं उनका ज्ञान नष्ट नहीं होता। वे कभी भी इस माया से पराजित नहीं होते और पुनः इस भव-बंधन में नहीं पड़ते।

लावौ बाबा आगि जलावो घरा रे,
ता कारनि मन धंधै परा रे॥टेक॥
इक डांइनि मेरे मन मैं बसै रे, नित उठि मेरे जीय कौं डसै रे।
या डांइन्य के लरिका पांच रे, निस दिन मोहि नचांवैं नाच रे॥
कहै कबीर हूं ताकौ दास, डांइनि कै संगि रहै उदास॥२३६॥

कबीर कहते हैं कि भाइयो! मुझे अग्नि ला दो, आज मैं इस गृह को भस्मसात् कर दूं जिसके कारण मन सर्वदा बंधन में पड़ा रहा है।

मेरे मन में एक माया रूपी डंकिनी का वास है जो नित्य उठ कर मन को सालती है। इस माया-डंकिनी के पांच पुत्र—पांच विषय अथवा पंच विकार—(काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह) हैं जो अहर्निश मुझे अपने जाल में फांसे रहते हैं। कबीर कहते हैं कि मैं उस भक्त का दास हूं जो इस माया डायन से उदासीन रहता है, इसके प्रभाव में नहीं आता।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बंदे तोहि बंदिगी सौं कांम, हरि बिन जांनि और हरांम।
दूरि चलणां कूंच बेगा, इहां नहीं मुकांम ।।टेक।।
इहां नहीं कोई यार दोस्त, गांठि गरथ न दांम।
एक एकैं संगि चलणां, बींचि नहीं विश्रांम।
संसार सागर विषम तिरणां, सुमरि लै हरि नांम ।।
कहै कबीर तहां जाइ रहणां, नगर बसत निधांन ।।२३७।।

हे जीवात्मा ! तुझे तो प्रभु-भक्ति से ही प्रयोजन है। ईश्वर के अतिरिक्त और सो तो तू वृथा-जंजाल जान। तुझे अभी दूर जाना है, संसार तीर्थ में ही नहीं रुक ना है क्योंकि तेरी मंजिल यहां नहीं है। इस संसार में तेरा कोई मित्र—हितैषी नहीं है, सब स्वार्थ के सम्बन्धी हैं तथा तेरे पास कुछ भी सम्पति नहीं है जिसके आधार पर तू अपना लक्ष्य प्राप्त कर सके। उस अपनी मंजिल की डगर पर तुझे निरंतर चलना होगा, तनिक भी विश्राम का अवसर नहीं है। इस भवसागर को पार करना बड़ा कठिन है, इसलिए ईश्वर-नाम का गुणगान कर ले। कबीर कहते हैं कि हमें अपने उसी देश में जाकर रहना चाहिए जहां कृपानिधान ब्रह्म का वास है।

झूठा लोग कहैं घर मेरा।
जा घर मांहैं बोलै डोलै, सोई नहीं तन तेरा ।।टेक।।
बहुत वंध्या परिवार कुटंब मैं, कोई नहीं किस केरा।
जीवत आंषि मूंदि किन देखौ, संसार अंध अँधेरा ।।
बस्ती मैं थै मारि चलाया, जगलि किया बसेरा।
घर कौं खरच खबरि नहीं भेजीं, आप न कीया फेरा ।।
यस्ती घोड़ा वैल वांहणीं, संग्रह किया घणेरा।
भीतरि बीबी हरम महल मैं, साल मिंया का डेरा ।।
बाजी की वाजीगर जांनैं, कै बाजीगर का चेरा।
चेरा कबहूं उभकि न देखै, चेरा अधिक चितेरा ।।
नौ मन सूत उरझि नहीं सुरझै, जनमि जनमि उरझेरा।
कहै कबीर एक रांम भजहु रे, बहुरि न ह्वैगा फेरा ।।२३८।।

इस संसार में आकर लोग व्यर्थ ही यह उद्घोषणा करते हैं कि यह घर मेरा है। अरे मूर्ख ! घर में तेरा यह सुन्दर शरीर बोलता है और संचरण करता है वह शरीर भी तेरा नहीं है।

हे जीव ! तू इस संसार के परिवार आदि वंधन में बहुत बंध चुका है किन्तु वास्तव में कोई भी तेरा नहीं है। तुम जीवन्मुक्त स्थिति प्राप्त कर इस संसार को देखो ला ता यह अंधकार पूर्ण ही ज्ञात होगा अथवा यदि तुम झूठे को ही मर कर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

देख लो तो थोड़े समय के पश्चात् तुम्हें कोई स्मरण नहीं करेगा। कुछ लोग घर त्याग विरक्त हो वन में आ जाते हैं। गृह की वे खवर तक नहीं लेते और स्वयं उधर जाते भी नहीं किन्तु इस अवस्था में भी वे वंधन मुक्त नहीं रहते।

सांसारिक व्यक्ति हाथी, घोड़ा, बैल आदि ऐश्वर्य और सम्पति का संचय करता है। साथ ही अपने अन्तःपुर में विषय-वासना की पूर्ति के लिए सुन्दरी भी रखता है किन्तु भक्त इधर आँख उठाकर भी नहीं देखता क्योंकि वह इस माया-मोह से सावधान रहता है। भक्ति साधना को या तो गुरु ही जानते हैं अथवा उनका शिष्य ही इससे परिचित होता है। पंच विषय, तीन गुण एवं एक मन का जो जंजाल है वही जीव को जन्म-जन्म में, आवागमन के चक्र में फांसता है। कवीर कहते हैं कि एक प्रभु नाम के जपने से जीव आवागमन के चक्र में नहीं पड़ेगा।

विशेष—१. रूपक, अनुप्रास, रूपकातिशयोक्ति।

२. 'नौ मन सूत'—पांच विषय—शब्द, रूप, रस, गंध, स्पर्श; तीन गुण—सत, रज, तम; एवं मन से ही समस्त कुकर्मों का जंजाल खड़ा होता है। इन्हें अपने वश में कर ले तो फिर वह मुक्त हो जाय।

हावड़ि धावड़ि जनम गवावै,
कबहूं न रांम चरन चित लावै॥टेक॥
जहां जहां दांम तहां मन धावै, अंगुरी गिनतां रैनि बिहावै।
तृया का बदन देखि सुख पावै, साध की संगति कबहूं न आवै॥
सरग के पंथि जात सब लोई, सिर धरि पोट न पहुँच्या कोई।
कहै कबीर हरि कहा उबारे, अपणें पाव आप जौ मारे॥२३६॥

कवीर कहते हैं कि हे मनुष्य! इस आपाधापी, में वासना कर्मों के प्रति देखो तब अनुरक्त रहने, में ही तैंने अपना जीवन व्यर्थ नष्ट कर दिया है। जहां-जहां धन प्राप्ति की आशा रहती मन वहीं भटकता रहता है और हिसाब लगाते-लगाते ही तेरी रात्रि कटती है। सुन्दरी को देखने को प्रति समय लालायित रहता है किन्तु साधुओं की संगति में तेरी वृत्ति नहीं रमती। शीश पर पाप-कर्मों का भार रख कर स्वर्ग लोक जाने का उपक्रम करते हैं किन्तु वहाँ तक पहुंच कोई नहीं पाता है। कबीर कहते हैं कि प्रभु भी उसका उद्धार क्या करें जो स्वयं विषय-वासनाओं को घातक जानते हुए भी उनमें संलिप्त रहता है।

प्रांणी काहे कै लोभ लागि, रतन जनम खोयौ।
बहुरि हीरा हाथ न आवै, रांम बिना रोयौ॥टेक॥
जल बूंद थें ज्यनि प्यंड बांध्या, अगिन कुंड रहाया।
दस मास माता उदरि राख्या, बहुरि लागी माया॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एक पल जीवन की आश नांहीं, जम निहार सासा।
बाजीगर संसार कबीरा, जांनि ढारौ पासा ॥२४०॥

हे मनुष्य तूने किस लोभ में पड़ इस अमूल्य जीवन को व्यर्थ नष्ट कर दिया ...मणितुल्य मानव जीवन पुनः प्राप्त नहीं होगा, अब तू राम-भक्ति बिना ...ड़ित होता रह। उस प्रभु की लीला बड़ी विचित्र है जिसने वीर्य की एक बूंद ...शरीर का निर्माण कर दस मास तक मातृ-उदर की जठराग्नि के अग्निकुण्ड ...सुरक्षित रखा किन्तु फिर भी तू उसे विस्मृत कर माया में पड़ा रहता है। ...ति तो तब है जब एक क्षण के लिये भी जीवन-अस्तित्व की आशा नहीं ...प्रति श्वास पर यम का पहरा है—फिर भी तू सावधान हो प्रभु-भक्ति नहीं ...? कबीर कहते हैं कि यह संसार तो बाजीगर के समान है जो इसमें ज्ञान ...है वही इसके पाशों से विमुक्त हो सकता है।

फिरत कत फूल्यौ फूल्यौ।
जब दस मास उरध मुखि होते, सो दिन काहे भूल्यौ ॥टेक॥
जौ जारै तौ होइ भसम तन, रहत कृम ह्वै जाई।
काचै कुंभ उद्यक भरि राख्यौ, तिनकी कौन बड़ाई ॥
ज्यूं माषी मधु संचि करि, जोरि धन कीनो।
मूयें पीछें लेहु लेहु करि, प्रेत रहन क्यूं दीनूं ॥
ज्यूं घर नारी संग देखि करि, तब लग संग सुहेलौ।
मरघट घाट खैंचि करि राखे, वह देखहु हंस अकेलौ ॥
रांम न रमहु मदन कहा भूले, परत अंधेरें, कूवा ॥
कहै कबीर सोई आप बंधायौ, ज्यूं नलनी का सूवा ॥२४१॥

हे मनुष्य ! तू फला-फूला, आह्लादित क्यों घूम रहा है। जब दस मास तक ...उदर में व्यथा भोगी थी उसे क्यों विस्मृत कर बैठा ? यदि वह तब इस शरीर ...भस्म करना चाहता तो आज कहीं कीड़े के रूप में तुम्हारा अस्तित्व होता। वह ...तो इतना महान् है कि यदि चाहे तो बिना पके, कच्चे घड़े में ही जल भर कर ...सकता है, उसकी महिमा का वर्णन कहां तक किया जाय ? जिस भाँति मधु-...थोड़ा-थोड़ा करके बहुत सा मधु एकत्रित कर लेती है उसी भांति तुम प्रभु-...को नित्य नाम-जप करके संचित कर लो। मृत्यु के पश्चात् इस शरीर का ...लाभ नहीं ? बुरे कर्मों को कर प्रेत योनि में पड़ना अच्छा नहीं। जो नारी प्रियतम ...प्रेम करती थी और साथ-साथ लगी फिरती थी वही श्मशान में इस ...को निकाल कर चिता पर रख देती है और आत्मा अकेली ही इस संसार से ...प्रयाण करती है, कोई सगा-सम्बन्धी उसके साथ नहीं जाता। जो व्यक्ति प्रभु-...न करता हुआ, विषय-वासना में संलिप्त रहता है, वह अज्ञान-कूप में पड़कर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आप ही बन्धन में उसी प्रकार पड़ जाता है जिस भांति 'नलिनी का तोता' श्रम-रत रहता है।

विशेष—उपमा, रूपक, दृष्टान्त अलंकार।

जाइ रे दिन ही दिन देहा, करि लै बौरी रांम सनेहा ॥टेक॥
बालापन गयौ जोबन जासी, जुरा मरण भौ संकट आसी।
पलटे केस नैंन जल छाया, मूरिख चेति बुढ़ापा आया॥
रांम कहत लज्या क्यूं कीजै, पल पल आउ घटै तन छीजै।
लज्या कहै हूं जमकी दासी, एकैं हाथि मुदिगर दूंजै हाथि पासी॥
कहै कबीर तिनहूँ सब हार्या, रांम नांम जिनि मनहु बिसार्या॥

बौरी=पागल। पलटे=परिवर्तित हो गये। लज्या=लज्जा। आउ= मुदिगर=मुगदड़, व्यायाम के लिये प्रयुक्त होता है।

कबीर कहते हैं कि हे पागल अज्ञानी मूर्ख मनुष्य! दिन व्यतीत हु अतः प्रभु से प्रेम कर ले। शैशव व यौवन व्यतीत हो गये, वृद्धावस्था भी बी है और मृत्यु ऊपर खड़ी है। केश श्वेतता में परिवर्तित हो गये और नेत्रों मंद हो इनमें पानी ढलने लगा, हे अज्ञानी! अब तो इन्हें वृद्धावस्था के चि सावधान होजा। तुम्हारी आयु प्रति पल घटती जा रही है, राम-नाम के में लज्जा क्यों आती है? लज्जा तो तब आयेगी जब यम-दासी मृत्यु के एक इस जीवन को समाप्त करने के लिये मुगदड़ और दूसरे हाथ में पुनः आवा में फांसने के लिये बधन होगा। कबीर कहते हैं कि जिनके मन में राम जाता है, उनसे समस्त माया-आकर्षण परास्त हो जाते हैं।

मेरी मेरी करतां जनम गयौ,
जनम गयौ परि हरि न कह्यौ ॥टेक॥
बारह बरस बालापन खोयौ, बीस बरस कछू तप न कीयौ।
तीस बरस कै रांम न सुमिर्यौ, फिरि पछितानौं बिरध भयौ॥
सूकै सरवर पालि बधावै, लुणें खेत हठि बाड़ि करै।
आयौ चोर तुरंग मुसि ले गयौ, मोरी राखत मुगध फिरै॥
सीस चरन कर कंपन लागे, नैंन नीर अस राल बहै।
जिभ्या बचन सूध नहीं निकसै, तब सुकरित की बात कहै॥
कहै कबीर सुनहु रे संतौ, धन संच्यो कछु संगि न गयौ।
आई तलब गोपाल राइ की, मैंडी मंदिर छाड़ि चल्यौ॥

हे मानव! अहं के अथवा अपने-पराये के फेर में पड़े तेरी समस्त व्यतीत हो गई किन्तु फिर भी तूने प्रभु का नाम नहीं लिया। आयु के बारह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

...में व्यर्थ खो दिये, २० वर्ष तक यौवन के मद में मस्त रहा और प्रभु के ...हीं किया। तीस वर्ष तक संसार की उधेड़-बुन में लगा रहा और फिर पश्चा-...ताप करने से क्या, वृद्धावस्था आ पहुंची। संसार के कर्मों में लगे रहना ऐसे ही है जैसे ...सरोवर को पाल बांधने और कटे हुए खेत की सुरक्षा के लिये बाड़ लगाने का ...। मृत्यु रूपी चोर तुरन्त आकर समस्त कमायी हुई सम्पत्ति को ले गया और ... के रक्षक का अस्तित्व तक नहीं रहा। अब वृद्धावस्था आने पर शीश, हाथ, ...कांपने लगे और नेत्रों से जल तथा मुख से राल वृद्धावस्था के चिन्ह स्वरूप गिरने ...एवं जब वाणी जरा के कारण अभिव्यक्ति में अक्षम हो गयी तब तुझे भक्ति ...सूझी है। कबीर कहते हैं कि सन्तो! जीवन भर एकत्रित किया धन साथ नहीं ...। अतः जब प्रभु भक्ति का मन होता है तो यह गृह द्वार त्याग देना ...हए।

जाहि जाती नांव न लीया, फिरि पछितावैगौ रे जीया ।।टेक।।
धंधा करत चरन कर घाटे, आउ घटी तन खींना।
बिषै बिकार बहुत रुचि मांनीं, माया मोह चित दीं न्हां।
जागि जागि नर काहे सोवै, सोइ सोइ कब जागैगा।
जब घर भीतरि चोर पड़ैंगे, तब अंचलि किस कै लागैगा ।।
कहै कबीर सुनहु रे संतौ, करि ल्यौ जे कछु करणां।
लख चौरासी जोनि फिरौगे, बिनां रांम की सरनां ।।२४४।।

कबीर कहते हैं कि यदि आयु रहते प्रभु का नाम नहीं लिया तो फिर बाद में ...ताना पडेगा। साँसारिक कर्म करते-करते पग भी थक गये और आयु व्यतीत हो ..., शरीर क्षीण हो गया। विषय-वासना में जीव ने बहुत अनुरक्ति दिखायी और ...मोह में उलझा रहा। हे मनुष्य! तू जाग, कब तक पड़ा सोता रहेगा। जब इस ...र रूपी गृह में मृत्यु का चोर आ धमकेगा तो किसका आश्रय ग्रहण करोगे? ...र कहते हैं कि हे मनुष्यो! जो कुछ सत्कर्म करना है, वह कर लो अन्यथा बिना ...श्रा के तो चौरासी लाख योनियों में पड़ आवागमन के चक्र में भटकना पड़ेगा।

माया मोहि मोहि हित कीन्हां,
ताथै मेरौ ग्यांन ध्यांन हरि लीन्हा ।।टेक।।
संसार ऐसा सुपिन जैसा, जीव न सुपिन समांन।
सांच करि नरि गांठि बांध्यौ, छाडि परम निधांन ।।
नैंन नेह पतंग हुलसै, पसू न पेखै आगि।
काल पासि जु मुगध बांध्या, कलंक, कांमिनीं लागि ।।
करि बिचार बिकार परहरि, तिरण तारण सोइ।
कहै कबीर रघुनाथ भजि नर, दूजा नांहीं कोइ ।।२४५।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

आप ही बन्धन में उसी प्रकार पड़ जाता है जिस भांति 'नलिनी का तोता' भ्रम-रत रहता है।

विशेष—उपमा, रूपक, दृष्टान्त अलंकार।

जाइ रे दिन ही दिन देहा, करि लै बौरी रांम सनेहा ॥टेक॥
बालापन गयौ जोबन जासी, जुरा मरण भौ संकट आसी।
पलटे केस नैंन जल छाया, मूरिख चेति बुढ़ापा आया॥
रांम कहत लज्या क्यूं कीजै, पल पल आउ घटै तन छीजै।
लज्या कहै हूं जमकी दासी, एकैं हाथि मुदिगर दूंजै हाथि पासी॥
कहै कबीर तिनहूँ सब हार्‌या, रांम नांम जिनि मनहु बिसार्‌या॥

बौरी=पागल। पलटे=परिवर्तित हो गये। लज्या=लज्जा। आउ=आयु। मुदिगर=मुगदड़, व्यायाम के लिये प्रयुक्त होता है।

कबीर कहते हैं कि हे पागल अज्ञानी मूर्ख मनुष्य! दिन व्यतीत हो रहे हैं अतः प्रभु से प्रेम कर ले। शैशव व यौवन व्यतीत हो गये, वृद्धावस्था भी बीत रही है और मृत्यु ऊपर खड़ी है। केश श्वेतता में परिवर्तित हो गये और नेत्रों की ज्योति मंद हो इनमें पानी ढलने लगा, हे अज्ञानी! अब तो इन्हें वृद्धावस्था के चिह्न देख सावधान होजा। तुम्हारी आयु प्रति पल घटती जा रही है, राम-नाम के स्मरण में लज्जा क्यों आती है? लज्जा तो तब आयेगी जब यम-दासी मृत्यु के एक हाथ में इस जीवन को समाप्त करने के लिये मुगदड़ और दूसरे हाथ में पुनः आवागमन में फांसने के लिये बधन होगा। कबीर कहते हैं कि जिनके मन में राम-नाम जाता है, उनसे समस्त माया-आकर्षण परास्त हो जाते हैं।

मेरी मेरी करतां जनम गयौ,
जनम गयौ परि हरि न कह्यौ ॥टेक॥
बारह बरस बालापन खोयौ, बीस बरस कछू तप न कीयौ।
तीस बरस के रांम न सुमिर्‌यौ, फिरि पछितानौं बिरध भयौ॥
सूकै सरवर पालि बधावै, लुणैं खेत हठि बाड़ि करै।
आयौ चोर तुरंग मुसि ले गयौ, मोरी राखत मुगध फिरै॥
सीस चरन कर कंपन लागे, नैंन नीर अस राल बहै।
जिभ्या बचन सूध नहीं निकसै, तब सुकरित की बात कहै॥
कहै कबीर सुनहु रे संतौ, धन संच्यो कछु संगि न गयौ।
आई तलब गोपाल राइ की, मैंडी मंदिर छाड़ि चल्यौ॥

हे मानव! अहं के अथवा अपने-पराये के फेर में पड़े तेरी समस्त आयु व्यतीत हो गई किन्तु फिर भी तूने प्रभु का नाम नहीं लिया। आयु के बारह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

...में व्यर्थ खो दिये, २० वर्ष तक यौवन के मद में मस्त रहा और प्रभु के लिये नहीं किया। तीस वर्ष तक संसार की उधेड़-बुन में लगा रहा और फिर पश्चा-...करने से क्या, वृद्धावस्था आ पहुंची। संसार के कर्मों में लगे रहना ऐसे ही है जैसे ...रोवर को पाल बांधने और कटे हुए खेत की सुरक्षा के लिये बाड़ लगाने का ...। मृत्यु रूपी चोर तुरन्त आकर समस्त कमायी हुई सम्पत्ति को ले गया और ...के रक्षक का अस्तित्व तक नहीं रहा। अब वृद्धावस्था आने पर शीश, हाथ, ...पने लगे और नेत्रों से जल तथा मुख से राल वृद्धावस्था के चिन्ह स्वरूप गिरने ...एवं जब वाणी जरा के कारण अभिव्यक्ति में अक्षम हो गयी तब तुझे भक्ति ...सूझी है। कबीर कहते हैं कि सन्तो! जीवन भर एकत्रित किया धन साथ नहीं ...। अतः जब प्रभु भक्ति का मन होता है तो यह गृह द्वार त्याग देना ...है।

जाहि जाती नांव न लीया, फिरि पछितावैंगौ रे जीया ।।टेक।।
धंधा करत चरन कर घाटे, आउ घटी तन खींना।
बिषै बिकार बहुत रुचि मांनीं, माया मोह चित दींन्हां।
जागि जागि नर काहे सोवै, सोइ सोइ कब जागैगा।
जब घर भीतरि चोर पड़ैंगे, तब अंचलि किस कै लागैगा ।।
कहै कबीर सुनहु रे संतौ, करि ल्यौ जे कछु करणां।
लख चौरासी जोनि फिरौगे, बिनां रांम की सरनां ।।२४४।।

कबीर कहते हैं कि यदि आयु रहते प्रभु का नाम नहीं लिया तो फिर बाद में ...ना पड़ेगा। साँसारिक कर्म करते-करते पग भी थक गये और आयु व्यतीत हो ..., शरीर क्षीण हो गया। विषय-वासना में जीव ने बहुत अनुरक्ति दिखायी और ...मोह में उलझा रहा। हे मनुष्य! तू जाग, कब तक पड़ा सोता रहेगा। जब इस ...र रूपी गृह में मृत्यु का चोर आ धमकेगा तो किसका आश्रय ग्रहण करोगे? ...र कहते हैं कि हे मनुष्यो! जो कुछ सत्कर्म करना है, वह कर लो अन्यथा बिना ...कृपा के तो चौरासी लाख योनियों में पड़ आवागमन के चक्र में भटकना पड़ेगा।

माया मोहि मोहि हित कीन्हां,
ताथै मेरौ ग्यांन ध्यांन हरि लीन्हा ।।टेक।।
संसार ऐसा सुपिन जैसा, जीव न सुपिन समांन।
सांच करि नरि गांठि बांध्यौ, छाडि परम निधांन ।।
नैंन नेह पतंग हुलसै, पसू न पेखै आगि।
काल पासि जु मुगध बांध्या, कलंक, कांमिनी लागि ।।
करि बिचार बिकार परहरि, तिरण तारण सोइ।
कहै कबीर रघुनाथ भजि नर, दूजा नांहीं कोइ ।।२४५।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

माया ने मोह कर प्रेम का ऐसा बन्धन डाला कि मेरा (जीव का) ज्ञान और विचार हरण कर लिया। संसार स्वप्नवत् मिथ्या है किन्तु इसकी सत्ता स्वप्न तुल्य भी नहीं है। हे जीवात्मा ! तू सत्य तत्व को गाँठ बाँध सब कुछ प्रभु के ऊपर छोड़ दे। जिस प्रकार शलभ पशु-बुद्धि के कारण अग्नि को नहीं देखता उसी भांति कलंकस्वरूप सुन्दरी पर मनुष्य दीवाना बना है, यह नहीं देखता कि वह काल-बन्धन में बंधा हुआ है। इसलिये विचार कर विचारों को त्याग उसी तरण-तारण प्रभु का स्मरण क्योंकि उसके अतिरिक्त कोई ऐसा नहीं है जो तेरे बेड़े को पार लगा दे।

ऐसा तेरा झूठा मीठा लागा, ताथैं साचे सूं मन भागा ॥टेक॥
झूठ के घर झूठा आया, झूठा खान पकाया।
झूठी सहन क झूठा बाह्या, झूठै झूठा खाया ॥
झूठा ऊठण झूठा बैठण, झूठी सबै सगाई।
झूठ के घरि झूठा राता, साचे को न पत्याई ॥
कहै कबीर अलह का पंगुरा, साचे सूं मन लावौ।
झूठे केरी संगति त्यागौ, मन बंछित फल पावौ ॥२४६॥

हे मनुष्य तेरी वृत्ति मिथ्या आनन्दों में—विषयानन्दों में, इतनी रमी तुझे वास्तविक, सत्यानन्द मिथ्या लगने लगा, इसीलिये तू प्रभु-भक्ति नहीं करता। तेरा समस्त अन्तर-बाह्य और वातावरण झूठ—विषय-वासना—से प्रेरित रहता है। उठना, बैठना और स्नेहपूर्ण सम्बन्ध सब मिथ्या हैं। ठीक भी है जो वासना-संलिप्त हैं वे झूठ में ही अनुरक्त रहेंगे, सत्य, ब्रह्म, का वे विश्वास नहीं करते। कबीर कहते हैं कि हे जीव ! तू ईश्वरांश है अतः उसी सत्य स्वरूप प्रभु में अपना मन लगा। यदि तुम दुर्जनों की संगति का परित्याग कर दो तो मनवांछित फल प्राप्त करोगे।

कौंण कौंण गया रांम कौंण कौंणन जासी,
पड़सी काया गढ़ माटी थासी ॥टेक॥
इंद्र सरीखे गये नर कोड़ी, पांचौं पांडौं सरिषी जोड़ी।
धू अबिचल नहीं रहसी तारा, चंद सूर की आइसी बारा ॥
कहै कबीर जग देखि संसारा, पड़सी घट रहसी निरकारा ॥

हे मनुष्य ! इस संसार से कौन-कौन चले गये और अभी कौन-कौन जायेंगे, यह शरीर मृत्यपरान्त मिट्टी में ही मिल जायगा। इन्द्र जैसे अधिपति और पांडव जैसे यशस्वी मनुष्य भी मृत्यु मुख में चले गये। पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र भी ता संसार में अचल नहीं है। कबीर कहते हैं कि संसार,की क्षणभंगुरता देख हृदयस्थित निराकार ब्रह्म की अर्चना करो।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ताथैं सेविये नारांइणां,
प्रभू मेरौ दीनदयाल दया करणा ।।टेक।।
जौ तुम्ह पंडित आगम जांणौं, बिद्या व्याकरणां।
तंत मंत सब ओषधि जांणौं, अंति तऊ मरणां ।।
राज पाठ स्यंघासण आसण, बहु सुंदरि रमणां।
चंदन चीर कपूर बिराजत, अति तऊ मरणां ।।
जोगी जती तपी संन्यासी, बहु तीरथ भरमणां।
लुंचित मुंडित मोनि जटाधर, अंति तऊ मरणां ।।
सोचि बिचारि सबै जग देख्या, कहूं न ऊबरणां।
कहै कबीर सरणाई आयौ, मेटि जामन मरणां ।।२४८।।

कबीर कहते हैं कि हे प्रभु ! मैं आपकी वन्दना करता हूं, अतः दीनदयाल मुझ पर अनुकम्पा करना। हे पंडित चाहे तुम आगम निगम, व्याकरण आदि ग्रंथों में निष्णात हो किन्तु अन्त में मरना तुम्हें भीं होगा। तन्त्र, मन्त्र एवं ि आदि समस्त रखी रह जाती हैं। राज्य वैभव, सिंहासन, आसन बहुत सी रियां जो चन्दन, कपूर के अंगराग लगाकर सुन्दर वस्त्र पहनती हैं—जिनके पास साधन हैं अन्त में उन्हें भी मरना होगा। योगी, यती, तपस्वी, आदि जो बहुत र्थों का भ्रमण करते हैं तथा जैन साधु, मौनधारी, जटाधारी जो भी हैं—उन्हें रना होगा। कबीर कहते हैं कि मैंने भली भाँति विचार कर देख लिया है कि ई भी संसार-परिपाटी से ऊपर नहीं है। मैं तो आपकी शरण में आ गया हूं अतः आवागमन छुड़ा, मुझे मुक्त कर दो।

७ पांडे न करसि बाद बिबादं,
या देही बिन सबद न स्वादं ।।टेक।।
अंड ब्रह्मंड खंड भी माटी, माटी नवनिधि काया।
माटी खोजत सतगुर भेट्या, तिन कछू अलख लखाया ।।
जीवत माटी मूवा भी माटी, देखौ ग्यांन बिचारो।
अंति कालि माटी मैं बासा, लेटै पांव पसारी।
माटी का चित्र पवन का थंभा, ब्यंद सँजोगि उपाया।
भांनैं घड़ै संवारै सोई, यहु गोब्यंद की माया।
माटी का मंदिर ग्यान का दीपक, पवन बाति उजियारा।
तिहि उजियारै सब जग सूझै, कबीर ग्यांन बिचारा ।।२४९।।

हे पंडित ! व्यर्थ शास्त्रार्थ मत कर। इस शरीर के रहते हुए ही मन संगीत र स्वाद तथा अन्य विषयों में लिप्त होता है। यह सृष्टि, सुन्दर शरीर और सृष्टि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

की प्रत्येक वस्तु मिट्टी ही है। इस मिट्टी के बनाने वाले को खोजने की चाह में सद्गुरु के दर्शन हुए जिनकी कृपा से कुछ अलख-निरंजन का ज्ञान प्राप्त हुआ। विचारपूर्वक देखो तो संसार में समस्त मिट्टी ही मिट्ठी है, मनुष्य जीवित में भी पांच तत्वों से निर्मित मिट्टी का पुतला मात्र है जो मरकर भी क्षार हो है। अन्त में कब्र में पड़ लम्बे पांव कर मिट्टी में ही मिलना होता है। यह मनुष्य नहीं मिट्टी की मूर्ति मात्र है जिसे पवन ने आधार दे रखा है। प्रभु की यही माया है कि एक ही मिट्टी से उसने भिन्न-भिन्न प्रकार के घड़ों के रूप में हमारा कर दिया है। इस मिटटी से बने मन्दिर (शरीर) में ज्ञान के दीपक को वायु द्वारा प्रज्वलित कर आलोकित करने से समस्त संसार दृष्टिगत हो जाता है।

मेरी जिभ्या बिस्न नेंन नारांइन, हिरदै जपौं गोबिंदा।
जंम दुवार जब लेख मांग्या, तब का कहिसि मुकंदा ॥टेक॥
तूं बांह्मण मैं कासी का जुलाहा, चीन्हि न मोर गियाना।
तैं सब मांगे भूपति राजा, मोरे रांम धियाना ॥
पूरब जनम हम बांह्मन होते, वोछै करम तप हींनां।
रांमदेव की सेवा चूका, पकरि जुलाहा कींन्हां ॥
नौंमी नेम दसमीं करि सजम, एकादसी जागरणां।
द्वादसी दांन पुनि की बेलां, सर्व पाप छ्यौ करणां ॥
भौ बूड़त कछू उपाइ करीजे, ज्यूं तिरि लंघै तीरा।
रांम नांम लिखि भेरा बांधो, कहै उपदेस कबीरा ॥२५०॥

हे मेरी जिह्वा ! तू हृदय में भगवान् को रख, प्रभु के अनन्त गुणों, ना गुणगान कर। हे प्रभु ! जब यमराज कर्मों का हिसाब माँगेगा तो उसे मैं क्या दूंगा। हे शास्त्रार्थी पंडित ! तू ब्राह्मण है, किन्तु मैं भी पंडितों की नगरी का जुलाहा हूं—कोई ऐरा-गैरा नत्थू-खैरा नहीं। तू राजाओं द्वारा आश्रित है, मेरे तो भगवान् ही हैं। पिछले जन्म में मैं ब्राह्मण ही था किन्तु प्रभु-भक्ति न कर इसीलिए इस जुलाहा जाति में जन्म ग्रहण करना पड़ा। नवमी, दशमी और एक द्वादशी के जो व्रत माहात्म्य हैं सबको भली भांति करने से समस्त पापों का प्र हो जायेगा ? हे अज्ञानी ! तू संसार-सागर में डूब रहा है, अतः शीघ्र कोई कर ले जिससे तू उस पार पहुंच सके। कबीर इसके लिए मार्ग बताते हैं कि राम के बेड़े से अपनी नौका बांध दो, नया पार लग जायगी।

कहु पांडे सुचि कवन ठांव,
जिहि घरि भोजन बैठि खाऊं ॥टेक॥
माता जूठी पिता पुनि जूठा, जूठे फल चित लागे।
जूठा आंवन जूठा जांनां, चेतहु क्यूं न अभागे ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अंन जूठा पांनी पुनि जूठा, जूठे बैठि पकाया।
जूठी कड़छी अंन परोस्या, जूठे जूठा खाया॥
चौका जूठा गोबर जूठा, जूठी का ढीकारा।
कहै कबीर तेई जन सूचे, जे हरि भजि तजहिं बिकारा॥२५१॥

हे पाण्डे ! यदि तुम खान पान में इतना छुआछात रखते हो तो फिर बताओ कौन सा स्थान है जहाँ जूठन नहीं जिससे मैं वहां बैठकर भोजन ग्रहण कर माता-पिता तथा अन्य स्नेही सब झूठे हैं, झूठे प्रलोभनों में फंसे हुए हैं। जन्म-मरण नित्य है फिर हे अभागे जीव ! तू सावधान क्यों नहीं होता ? अन्न-पानी को बनाने वाला सभी तो मिथ्या है। यह भोजन परोसा भी झूठे चमचे से है और जिससे वह लिया है—सब ही तो झूठा है। कबीर कहते हैं कि केवल वे ही सच्चे हैं जो विषय-वासना विकारों का परित्याग कर प्रभु भजन करते हैं।

हरि बिन झूठे सब ब्यौहार, केते कोऊ करौ गँवार॥टेक॥
झूठा जप तप झूठो ग्यांन, रांम रांम बिन झूठा ध्यांन।
विधि न खेद पूजा आचार, सब दरिया मैं वार न पार॥
इंद्री स्वारथ मन के स्वाद, जहां साच तहां मांडै वाद।
दास कबीर रह्या ल्यौ लाइ, भर्म कर्म सब दिये बहाइ॥२५२॥

कबीर कहते हैं कि ईश्वर के बिना जगत् का समस्त कार्य-व्यापार निस्सार है; कोई मूर्ख कितने ही कर्म करे किन्तु बिना प्रभु-आश्रय के उनका कोई महत्व नहीं। विधान, पूजा-आचार, सब कुछ प्रभु बिना नदी में बोरने योग्य हैं। इन्द्रिय-जन्य एवं मन के स्वार्थ जहां सत्य स्वरूप ब्रह्म है नष्ट हो जाते हैं। कबीर ने तो प्रभु से अपनी लौ लगा ली है इसलिए संसार संशय और समस्त कर्म छोड़ दिये हैं।

चेतनि देखै रे जग धंधा।
रांम नांम का मरम न जांनै, माया कै रसि अंधा॥टेक॥
जनमत हीरू कहा ले आयो, मरत कहा ले जासी।
जैसे तरवर बसत पंखेरू, दिवस चारि के बासी॥
आपा थापि अवर कौ निंदैं, जन्मत हीं जड़ काटी।
हरि की भगति बिना यहु देही, धब लोटै ही फाटी॥
कांम क्रोध मोह मद मछर, पर अपवाद न सुणियें।
कहै कबीर साध की संगति, रांम नांम गुन भणिये॥२५३॥

कबीर कहते हैं कि सावधान होकर इस संसार-चक्र को देखो कि मानव ईश्वर-नाम की महिमा न जानता हुआ किस भांति माया-मोह में अन्धा हो रहा है। संसार में आकर हीरे जैसे अमूल्य जीवन की क्या गति कर दी ? मरने पर तो यह मिट्टी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

में मिल ही जायगा। यहाँ इस संसार में तो जीवन इतना ही क्षणिक है जितना का पेड़ पर बसेरा। जन्म से ही यह प्रवृत्ति बना ली है कि दूसरों की और स्वा में ही तेरा समय कटता है। प्रभु-भक्ति के बिना यह शरीर मिट्टी में मिल जा दूसरों की निन्दा को न सुनते हुए काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह का परित्याग दीजिए। कबीर कहते हैं कि हे जीवात्मा! साधु-संगति करता हुआ प्रभु-भक्ति लगा रह।

विशेष—साधु संगति के महत्व पर उक्ति देखिए—

"शठ सुधरहिं सत संगति पाई, पारस परस कुधात सुहाई।"

रे जम नांहि नवै व्यौपारी, जे भरैं जगाति तुम्हारी ।।टेक।।
बसुधा छाड़ि बनिज हम कीन्हों, लाद्यो हरि को नांऊं।
रांम नांम की गूंनि भराऊं, हरि कै ठांडै जांऊं।।
जिनकं तुम्ह अगिवानीं कहियत, सो पूंजी हंम पासा।
अब तुम्हारौ कछु बल नांहीं, कहै कबीरा दासा ।।२५४।।

हे यम (मृत्यु)! अब तुम्हारे सम्मुख प्रभु-भक्त झुकेगा नहीं जिससे तु यश बढ़ता है, अब वह उधर नहीं जायगा। इस संसार को त्याग कर हमने भक्ति का व्यापार प्रारम्भ कर दिया है और व्यापार के लिए प्रभु-नाम का कोष पास संचित कर लिया है। राम-नाम की सामग्री लादकर मैं ईश्वर के लो जाऊंगा। तुम अपने को ईश्वर दूत उद्घोषित करते थे किन्तु अब वही राम-ना सम्पति हमारे पास है। अब तुम्हारा कुछ भी बल हमारे-ऊपर नहीं चल सकता।

मींयां तुम्ह सौं बोल्यां बणि नहीं आवै।
हम मसकीन खुदाई बंदे, तुम्हारा जस मनि भावै ।।टेक।।
अलह अवलि दीन का साहिब, जोर नहीं फुरमाया।
मुरिसद पीर तुम्हारै है को, कहौ कहां थैं आया।।
रोजा करैं निवाज गुजारैं, कलमैं भिसत न होई।
सतरि कावे इक दिल भींतरि, जे करि जानैं कोई।।
खसम पिछांनि तरस करि जिय मैं, माल मनीं करि फीकी।
आपा जांनि सांई कूं जांनैं, तब ह्वै भिस्त सरीकी।।
माटी एक भेष धरि नांनां, सब मैं ब्रह्म समानां।
कहै कबीर भिस्त छिटकाई, दोजग ही मन मानां ।।२५५।।

हे मियां! तुमसे बोलने, परस्पर व्यवहार करने का ढंग भी नहीं आता। सब एक ही खुदा के बन्दे हैं, यह जानकर भी तुम दूसरों से मनमाना व्यवहार हो। वह अल्लाह, प्रभु, दीनबन्धु है, उसने तुम्हें शक्ति प्रयोग की आज्ञा नहीं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

...म्हारा कोई गुरु अथवा शिष्य भी है ? तुम्हारा आगमन कहां से हुआ है ? भाव यह कि तुम तो दूसरों से निकृष्ट हो। काबा आदि तीर्थ स्थान यदि तुम खोजकर देखो मन के अन्दर ही हैं, व्यर्थ इधर-उधर भटकने की आवश्यकता नहीं। स्वामी को ...य में पहचान कर मन में उसका अनवरत भजन करो। आत्म तत्व-का परिज्ञान कर ...प्रभु को जान जाओगे तो श्रेष्ठ साधुओं की पंक्ति में गिने जाओगे। हम सब जीव ...क ही मृत्तिका से निर्मित पात्र हैं, सब में ब्रह्म की समान स्थिति है, अतः सबको समान ...मझो। कबीर कहते हैं कि इस भाँति संसार से निस्तार सम्भव है, वैकुण्ठ (बहिश्त) ...प्त हो जायेगा।

अलह ल्यौ लांयें काहे न रहिये,
अह निसि केवल राम नांम कहिये ॥टेक॥
गुरमुखि कलमां ग्यांन मुखि छुरी, हुई हलाल पचूं पुरी।
मन मसीति मैं किनहूं न जांनां, पंच पीर मालिम भगवांनां ॥
कहै कबीर मैं हरि गुंन गांऊं, हिंदू तुरक दोऊ समझाऊं ॥२५६॥

ईश्वर से अपनी लगन लगाये रहो और अहर्निशि प्रभु-नाम का जाप करो। गुरु उपदेश से प्राप्त ज्ञान-कटारी से पांच इन्द्रियों के विषय की समाप्ति हो गई। मन रूपी मस्जिद में प्रभु की स्थिति को किसी ने नहीं पहचाना। पांचों इन्द्रियों की वृत्ति अब प्रभु में ही केन्द्रित हो गई है। कबीर कहते हैं कि मैं प्रभु-गुणगान करता हुआ हिन्दू-मुसलिम दोनों को ही समझाकर एकता लाने में प्रयत्नरत हूं।

रे दिल खोजि दिलहर खोजि, नां परि परेसांनी मांहि।
महल माल अजीज औरति, कोई दस्त गीरी क्यूं नांहि ॥टेक॥
पीरां मुरीदां काजियां, मुलां अरू दरवेस।
कहां थें तुम्ह किनि कीये, अकलि है सब नेस ॥
कुरांना कतेबां अस पढि पढि, फिकरि या नहीं जाइ।
टुक दम करारी जे करै, हाजिरां सूर खुदाइ ॥
दरोगां बकि बकि हूंहि खुसियाँ, बे-अकलि बकहिं पुमांहि।
हक साच खालिकखालक म्यानैं सो कछू सच सूरति मांहि ॥
अलह पाक तूं नापाक क्यूं, अब दूसर नांहीं कोइ।
कबीर करम करीम का, करनीं करै ज़ांनै सोइ ॥२५७॥

हे मन ! तू उस हृदय-स्वामी परमात्मा को खोज और व्यर्थ के साँसारिक कर्मों में मत उलझ। ये महल, सम्पत्ति, धन-वैभव, पत्नी तथा अन्य प्रियजन कोई तेरे साथ नहीं जायेगा। पीर, पैगम्बर, काजी, मुल्ला और दरवेश—तुम्हारा सृजन उस परमात्मा के द्वारा ही तो हुआ है, अब तुम अपने को जगत् का नियामक समझ रहे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

हो—तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है। कुरान आदि धर्म ग्रंथों का पारायण कर तुम्हें प्रभु की चिन्ता नहीं। किन्तु जो एकदम प्रभु, खुदा, के लिए व्याकुल हो जाते हैं और उसे पाने का प्रयत्न करते हैं, वे ही वास्तव में शूरवीर कहलाने के अधिकारी हैं। दरोगा आदि राज्य कर्मचारी राजमद में अन्धे हो गालियां बक-बक कर प्रसन्न होते हैं वे कैसे अज्ञानी हैं? उन्हें उस सर्वशक्तिमान् की शक्ति का ज्ञान नहीं जो इस सृष्टि में सर्वत्र रमा हुआ है। हे प्रभु-भक्त! जब ईश्वर पवित्र है तो तू भी है उसी का अंश है. जब तुझे संसार के किसी विषयाकर्षण से प्रयोजन नहीं रह गया तो तू भी पवित्र ही है। भक्त के जो भी कर्म होते हैं वे प्रभु को ध्यान में रखते हुए उसी के लिए होते हैं।

खालिक हरि कहीं दर हाल।
पंजर जसि करद दुसमन, मुरद करि पैमाल ॥टेक॥
भिस्त हुसकां दोजगां, दुंदर दराज दिवाल।
पहनांम परदा ईत आतस, जहर जंगम जाल ॥
हम रफत रहबरहु समां, मैं खुर्दा सुमां बिसियार।
हम जिमीं असमांन खालिक, गुंद मुसिकल कार ॥
असमांन म्यानैं लहंग दरिया, तहां गुसल करदा बूद।
करि फिकर रह सालक जसम, जहां स तहां मौजूद ॥
हंम चु बूंदनि बूंद खालिक, गरक हम तुम पेस।
कबीर पनह खुदाइ को, रह दिगर दावानेस ॥२५८॥

ईश्वर प्रत्येक स्थल पर वर्तमान है। वह शत्रु का सर्वनाश ही कर देता है और अपने दास को समृद्धता प्रदान करता है। उस भक्त के लिये दादुर रूप विकार—काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह को नष्ट कर, नरक को भी स्वर्ग बना देता है। यह संसार विषवन के सदृश है जिसमें आज्ञानान्धकार तथा विषय-वासना की ईति और अग्नि है। मैं तो इस भयंकर वन से गुरु के साथ चल बच लिया। हे प्रभु मैं दीन हूं और आप महान्। मैं पृथ्वी पर हूं और ईश्वर आकाश, शून्य, पर—दोनों का मिलन कठिन है, आकाश के बीच, शून्य के मध्य एक अमृत सरिता है। जहां मुक्तात्माएं स्नान करती हैं। (ब्रह्मरन्ध्र से अमृत स्रवण का वर्णन है)। हे मन! तू ईश्वर का चिन्तन करता हुआ संसार-भय से निश्चिंत रह, जहाँ तू चाहेगा वह प्रभु वहीं उपस्थित हो जायेगा क्योंकि वह सर्वत्र-व्यापक है। हम—जीवात्माएं तो उस प्रभु रूप जल से उत्पन्न ही बूंद हैं जो मिलकर एकमेक हो जाती हैं। कबीर कहते हैं कि हे मनुष्य तू सर्वदा उस ईश्वर की शरण ग्रहण करता हुआ प्रभु का ध्यान कर।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विशेष—१. "हम चु बूंदनि······पेख" से तुलना कीजिए—

"जल में कुम्भ, कुम्भ में जल हैं, बाहर भीतर पानी।
फूटा कुम्भ जल जलहि समाना, इहि तथ कथ्यौ ग्यानी ॥"

२. कबीर की भाषा पर फारसी और पंजाबी का अत्यधिक प्रभाव देखा जा सकता है।

अलह रांम जिऊं तेरे नांई,
वंदे ऊपरि मिहर करै मेरे सांई ॥टेक॥
क्या ले माटी भुंइ सूं मारैं, क्या जल देह न्हवायें।
जार करै मसकीन सतावै, गुंन हीं रहै छिपायें॥
क्या तू जू जप मंजन कीयें, क्या मसीति सिर नांयें।
रोजा करैं निमाज गुजारैं, क्या हज काबै जांयें॥
ब्रांह्मण ग्यारसि करै चौबींसौ, काजी महरम जांन।
ग्यारह मास जुदे क्यूं कीये, एकहि मांहि समांन॥
जौर खुदाइ मसीति बसत हैं, और मुलिक किस केरा।
तीरथ मूरति रांम निवासा, दुहु मैं किनहूं न हेरा॥
पूरिब दिसा हरी का बासा, पछिम अलह मुकांमो।
दिल ही खोजि दिलै दिल, भींतरि, इहां रांम रहिमांनां॥
जेती औरति मरदां कहिये, सब मैं रूप तुम्हारा।
कबीर पंगुड़ा अलह रांम का, हरि गुर पीर हमारा ॥२५६॥

अलह=अल्लाह। वन्दे=बन्दा, मनुष्य, भक्त। मिहर=कृपा। भुंई=भूमि। मसकीन=निर्मल। मसीति=मस्जिद। हज काबै=मुस्लिम समाज के तीर्थ स्थल। ग्यारसि=एकादशीव्रत। महरम=मुहर्रम। मुलिक=देश, स्थान। पंगुड़ा=दास, भक्त।

हे प्रभु! मैं तो आप ही के समाश्रय से जीवन-धारण किये हुए हूं, कब मेरे ऊपर कृपा करोगे? जल में स्नान करने और शरीर से भस्म लपेटने से क्या लाभ? इस सब ढोंग को करते हुए तुम लोग निर्बल को सताते हो और अपने अवगुणों पर इन बाह्याडम्बरों का पर्दा डाले रहते हो। इस जप, तप, स्नान, ध्यान का क्या लाभ है और मस्जिद में मत्था टेकने का क्या प्रयोजन है। रोज़ा रखे, नमाज़ पढ़े अ·· हज-काबा की धार्मिक यात्रा का, ब्राह्मण के वर्ष में चौबीस एकादशी व्रत रखने का एवं काजी के मुहरम मनाने का कोई लाभ नहीं यदि ये प्रत्येक जीव को, प्रत्येक मनुष्य को समान नहीं समझते। इतने दीर्घ समय तक दोनों भेद-भाव क्यों रखे रहे? हिन्दू-मुस्लिम दोनों समान हैं। जो ईश्वर केवल मस्जिद में ही रहता है तो फिर अन्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

संसार की अवस्थिति कैसे है ? तीर्थ और पत्थर प्रतिमा दोनों में ही भगवान् वताते हैं किन्तु वास्तविकता यह है कि दोनों में से कहीं भी उसके दर्शन प्राप्त हुए। मुस्लिम मानते हैं कि पश्चिम दिशा में अल्लाह का निवास है, इसलिए वे उधर ही मुंह करके नमाज़ पढ़ते हैं, दूसरी ओर हिन्दू मानते हैं कि वह पूर्व में है, इसलिए पूर्व को मुख करके ही सन्ध्योपासना आदि कर्म करते हैं। अरे अज्ञानी जीव! अपने मन को खोज कर देख लो, ईश्वर वहीं स्थित है। हे प्रभु! संसार में जितने भी स्त्री पुरुष हैं सबमें आपका स्वरूप विद्यमान है। कबीर तो परमेश्वर का दास हो गया है, वही उसका पीर, पैगम्बर, गुरु सर्वस्व है।

मैं बड़ मैं बड़ मैं बड़ मांटी,
मण दसना जट का दस गांठी ।।टेक।।
मैं बाबा का जोध कहांऊं, अपणीं मारी गींद चलांऊं ।।
इनि अहंकार घणें घर घाले, नाचत कूदत जमपुरि चाले ।
कहै कबीर करता की बाजी, एक पलक मैं राज बिराजी ।। ६०।।

मनुष्य अहं दर्प में किसी को कुछ नहीं समझता, इसीलिए मदमस्त फूला-फूला फिरता है। मैं उस ईश्वर का अंश कहाकर भी अपने अहं से परिचालित हो संसार में भटकता फिरता हूं। इस अहंकार ने बहुतों का सर्वनाश कर दिया और वे सांसारिक आकर्षणों में बंधे हुए ही मृत्यु के गाल में चले गये। कबीर कहते हैं कि उस ईश्वर की माया बड़ी विचित्र है, वह एक क्षण में ही कुछ से कुछ कर देते हैं।

काहे बीहो मेरे साथी, हूं हाथी हरि केरा।
चौरासी लख जाके मुख मैं, सो च्यंत करैगा मेरा ।।टेक।।
कहौ कौंन षिबै कहौ कौंन गाजै, कहां थैं पांणीं निसरै।
ऐसी कला अनंत हैं जाकै, सो हंम कौं क्यूं बिसरै ।।
जिनि ब्रह्मंड रच्यौ बहु रचना, बाव बरन ससि सूरा।
पाइक पच पुहमि जाकै प्रकटैं, सो क्यूं कहिए दूरा ।।
नैंन नासिका जिनि हरि सिरजे, दसन बसन बिधि काया।
साधू जन कौं सो क्यूं बिसरै, ऐसा है रांम राया ।।
को काहू का मरम न जांनै, मैं सरनांगति तेरी।
कहै कबीर बाप रांम राया, हुरमति राखहु मेरी ।।२६१।।

कबीर कहते हैं कि मेरा साथी कौन बनेगा ? मैं प्रभु-भक्ति रस का मदमस्त हाथी हूं। जा सन्त चौरासी लाख योनियों की व्यथा को समझ प्रभु-भक्ति में लग गया है, वही मेरा साथी हो सकता है। यह बताओ कि कौन खाने और पीने की व्यवस्था करता है, जो बैठा ही बैठा अपनी अनन्त कलाओं से संसार की व्यवस्था

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

[क]रता है वह हमें कैसे भुला सकता है ? जिस प्रभु ने सृष्टि की रचना कर वायु, आकाश [सूर्य]ं, चन्द्र, पंचाग्नि, पृथ्वी आदि का सृजन किया है वह दूर नहीं सर्वत्र परिव्याप्त है। राजा राम वड़े दयालु हैं उन्होंने कितसे सुन्दर नेत्र, नासिका, आदि अंग-प्रत्यंग [की] रचना की हैं, वे भला दयालु राजा राम अपने भक्त को किस प्रकार विस्मृत कर [स]कते हैं।

कबीर कहते हैं कि हे प्रभु ! आपका रहस्य कोई नहीं जानता। मैं आपकी [श]रण चाहता हूं। हे पिता परमेश्वर ! आप मुझे सद्बुद्धि प्रदान कर मेरी रक्षा करें।

राग सोरठि

हरि कौ नांव न लेह गंवारा, क्या सौचै बार बारा ।।टेक।।
पंच चोर गढ मंझा, गढ लूटैं दिवस र संझा ।।
जौ गढपति मुहकम होई, तौ लूटि सकै न कोई ।।
अंधियारै दीपक चहिये, तव वस्त अगोचर लहिये।
जब बस्त अगोचर पाई, तव दीपक रह्या समाई ।।
जौ दरसन देख्या चहिये, तौ दरपन मंजत रहिये।
जब दरपन लागै काई, तब दरसन किया न जाई ।।
का पढ़िये का गुनियें, का बेद पुराना सुंनियें।
पढ़े गुनें मति होई, मैं सहजैं पाया सोई ।।
कहै कबीर मैं जांनां, मैं जांनां मन पतियानां।
पतियानां जौ न पतीजै, तौ अंधे कूं का कीजै ।।२६२।।

हे अज्ञानी जीव ! तू न जाने किस चिन्ता में व्यस्त है जो प्रभु नाम का स्मरण नहीं करता। पांच विकारों अथवा पंच विषयों के चोर इस शरीर रूपी किले को अहर्निशि लूट रहे हैं। यदि इस किले में उसके स्वामी—प्रभु की ही आराधना हो तो कोई इसे लूट नहीं सकता। जव इस शरीर रूपी वस्ती में ज्ञानदीप बुझकर अज्ञानांधकार हो जाता है तभी इसे चोर लूटते हैं। जव यह बस्ती—बुद्धि—अज्ञान तिमिर से परिपूर्ण होती है तो ज्ञान-दीप कहीं भी नही सूझता। जो तुम प्रभु का दर्शन प्राप्त करना चाहते हो तो इस हृदय रूपी दर्पण का परिष्कार करते हुए इसे उज्ज्वल रखो। जब दर्पण पर विषयों की काई जम जाती हैं तो प्रभु दर्शन नहीं होता। शास्त्र ग्रन्थों के पठन-पांठन, श्रवण का कोई लाभ नहीं है, मैंने उस प्रभु को सहज साधना द्वारा प्राप्त कर लिया है। कबीर कहते हैं कि मैं उस परमेश्वर के रहस्य से परिचित हो गया हूं और विश्वास सहित उन्हें अपने मन में बसा लिया है। यदि कोई मेरा विश्वास नहीं करता तो उस अज्ञानान्ध मनुष्य का क्या बनाया जा सकता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

अंधे हरि बिन को तेरा, कवन सं कहत मेरी मेरा ।।टेक।।
तजि कुलाक्रम अभिमांनां, झूठे भरमि कहा भुलांनां ।
झूठे तन की कहा बडाई, जे निमष मांहि जरि जाई ।।
जब लग मनहिं बिकारा, तब लगि नहीं छूटै संसारा ।
जब मन निरमल करि जानां, तब निरमल मांहि समानां ।।
ब्रह्म अगनि ब्रह्म सोई, अब हरि बिन और न कोई ।
जब पाप पुंनि भ्रंम जारी, तब भयौ प्रकास मुरारी ।।
कहै कबीर हरि ऐसा, जहां जैसा तहां तैसा ।
भूलै भरमि परै जिनि कोई, राजा रांम करै सो होई ।।२६३।।

हे अज्ञानांध नर ! ईश्वर के बिना तेरा कौन हितैषी है ? तू किससे स्नेह सम्ब जोड़ता है। कुलाभिमान एवं झूठे भ्रम का परित्याग करना ही श्रेयस्कर है। मिथ्या मृण्मय शरीर का अभिमान क्या, इसे नष्ट होते पल भी नहीं लगता। जब त मन विषय-वासना में पड़ा हुआ है तब तक इस संसार से मुक्ति सम्भव नहीं। ज यह मन निर्मल हो जायेगा तभी उस शुद्ध स्वरूप ब्रह्म से भेंट सम्भव है। ब्रह्म अग्नि है, ब्रह्म ही सब कुछ है। प्रभु के बिना अब मेरा और कोई अवलम्ब नहीं जब पाप-पुण्य और भ्रम की द्वैत भावना समाप्त हो गई, तभी ज्योतिस्वरूप परमात का प्रकाश विकीर्ण हुआ। कबीर कहते हैं कि वह प्रभु ऐसा अद्भुत है कि क कैसा है तो कहीं किसी और स्वरूप का। भूल कर भी किसी को संसार संशय संलिप्त नहीं होना चाहिए। इस संसार में वही होता है जो प्रभु को स्वीकार है।

मन रे सर्यौ न एकौ काजा,
तार्थै भज्यौ न जगपति राजा ।।टेक।।
बेद पुरांन सुमृत गुन पढि पढि, पढि गुनि मरम न पावा ।
संध्या गाइत्री अरु षट करमा, तिन थैं दूरि बतावा ।।
बनखंडि जाई बहुत तप कीन्हां, कंद मूल खनि खावा ।
ब्रह्म गियांनीं अधिक धियांनीं, जंम कै पटैं लिखावा ।।
रोजा किया निमाज गुजारी, बंग दे लोग सुनावा ।
हिरदै कपट मिलै क्यूं सांईं, क्या हज काबै जावा ।।
पहर्यौ काल सकल जग ऊपरि, मांहि लिखे सब ग्यांनीं ।
कहै कबीर ते भये षालसैं, रांम भगति जिनि जांनी ।।२६४।।

हे मन ! तुझसे प्रभु-भक्ति की साधना न हो सकी, तूने संसार में आकर और कुछ तो किया ही नहीं ईश्वर को भी नहीं भजा। वेद, पुराण, स्मृति आदि धर्म-ग्रन्थ पढ़कर उस ईश्वर का रहस्य नहीं जाना जा सकता। संध्या, गायत्री-जप और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

की भक्ति के अन्य कर्मों से वह प्रभु दूर ही दूर रहा। वन प्रदेश में जाकर तपस्या करने, कन्द, मूल-फल खाने, ब्रह्म ज्ञान प्राप्त करने का उपक्रम रचने अर्थात् ध्यान धारण करने से मृत्यु को ही आमन्त्रित किया क्योंकि मन में तो कपट भरा हुआ था। रोज़ा रखने, नमाज़ की उच्चध्वनि लोगों को सुनाने और हज्ज करने का कोई लाभ नहीं हुआ क्योंकि हृदय में तो कपट भरा हुआ था। कबीर कहते हैं कि मृत्यु ने अपनी सूची में समस्त संसार को सम्मिलित कर लिया, केवल वही बच रहे जो प्रभु-भक्ति के रहस्य को जान कर उसमें प्रवृत्त हो गये थे।

मन रे जब तैं रांम कह्यौ,
पीछै कहिबे कौं कछू न रह्यौ ॥टेक॥
का जोग जगि तब दांनां, जौ तैं रांम नांम नहीं जांनां ॥
कांम क्रोध दोऊ भारे, तार्थें गुरु प्रसादि सब जारे।
कहै कबीर भ्रम नासी, राजा रांम मिले अबिनासी ॥२६५॥

हे मन! जब से मैंने राम-नाम जपा है तब से और कुछ वाणी का विषय संसार में रह ही नहीं गया। योग साधना और जप-तप का क्या लाभ यदि राम नाम का रहस्य न समझ सके। काम और क्रोध दोनों जीवन को भारस्वरूप बना देते हैं किन्तु गुरुप्रसाद से वे समाप्त हो गये। कबीर कहते हैं कि माया-भ्रम के नाश होने पर अविनाशी प्रभु के दर्शन हो जाते हैं।

रांम राइ सो गति भई हंमारी, मो पै छूटत नहीं संसारी ॥टेक॥
ज्यूं पंखी उड़ि जाइ अकासां, आस रही मन मांहीं।
छूटी न आस टूटयौ नहीं फंधा, उडिबौ लागौ कांहीं ॥
जो सुख करत होत दुख तेई, कहत न कछू बनि आवै।
कुंजर ज्यूं कसतूरी का मृग, आपैं आप बँधावै ॥
कहै कबीर नहीं बस मेरा, सुनिये देव मुरारी।
इत भभीत डरौं जम दूतनि, आये सरनि तुम्हारी ॥२६६॥

राम-नाम को न जपने से हमारी जो दुर्गति हो रही है वह अवर्णनीय है फिर भी मुझसे यह संसार छोड़ते नहीं बनता। जिस प्रकार पक्षी मन में प्राप्ति की इच्छा रखते हुए आकाश में ऊंचा ही ऊंचा उड़ता है, उसी भाँति साँसारिक इच्छाएं और आशाएं तृप्त नहीं होतीं और मन संसार के माया-मोह में भटकता रहता है। मैं जितने भी सुख के उपक्रम करता हूं उनसे अन्ततः दुख ही मिलता है। जिस प्रकार कस्तूरी-मृग सुगन्धि को नाभि में रखे हुए भी मस्त हाथी के समान उसकी खोज में भटकता है उसी प्रकार मैं प्रभु के हृदयस्थ होते हुए भी आनन्द की खोज में स्थान-स्थान पर भटक रहा हूं। कबीर कहते हैं कि हे प्रभु! ऐसी दयनीय स्थिति में मेरा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

कुछ बस नहीं चलता और मैं मृत्यु, काल—गाल से भयभीत हुआ आपकी शरण में आया हूं, मेरी रक्षा करो।

रांम राइ तूं ऐसा अनभूत अनूपम, तेरी अनभै थैं निस्तरिये।
जे तुम्ह कृपा करौ जग जीवन, तौ कतहूँ भूलि न परिये ॥टेक॥
हरि पद दुरलभ अगम अगोचर, कथिया गुर गमि बिचारा।
जा कारंनि हम ढूंढत फिरते, आथि भर्‌यो संसारा॥
प्रगटी जोति कपाट खोलि दिये, दगधे जंम दुख द्वारा।
प्रगटे बिस्वनाथ जगजीवन, मैं पाये करत बिचारा॥
देख्यत एक अनेक भाव है, लेखत जात अजाती।
बिह कौ देव तबि ढूंढत फिरते, मडप पूजा पाती॥
कहै कबीर करुणांमय किया, देरी गलियाँ बहु बिस्तारा।
रांम कै नांव परंम पद पाया, छूटै बिघन बिकारा ॥२६७॥

हे प्रभु ! आप ऐसे अद्भुत, अनुपम हैं कि वर्णन नहीं किया जा सकता। आपकी कृपा से यह भवसागर निश्शंक पार किया जा सकता है। हे जगन्नाथ! यदि आप किसी पर कृपा करो तो वह कभी भी पथ-विचलित नहीं हो सकता। सद्गुरु ने अत्यंत कठिनता से प्राप्य प्रभु-पद का मार्ग-दर्शन करा दिया जिससे मैंने साधना द्वारा उसे खोजने का प्रयास किया और संसार को त्याग दिया। वह अनन्तप्रकाशक ज्योतिस्वरूप परमात्मा प्रकट हुआ और मेरे अज्ञान-कपाट खुल गये; जिससे मृत्यु एवं अन्य साँसारिक दुख नष्ट हो गये। निखिल सृष्टि के जीवनदाता विश्वम्भर को मैंने सतत साधना द्वारा प्राप्त किया है। उस प्रभु को देखकर हृदय में अनेक भावनाएँ प्रकट हुईं, उनका वर्णन नहीं किया जा सकता ये साँसारिक लोग विश्वदेव को मण्डप, मन्दिर आदि में पूजा-पत्र आदि के माध्यम से खोजने का व्यर्थ उपक्रम करते हैं। कबीर कहते हैं कि उस करुणानिधान प्रभु का प्रसार सृष्टि के अण-प्रति-अणु में है। प्रभु-नाम से साँसारिक बाधाओं, व्यथाओं का अन्त हो परम-पद की प्राप्ति होती है।

रांम राइ को ऐसा बैरागी,
हरि भजि मगन रहैं विष त्यागी ॥टेक॥
ब्रह्मा एक जिनि सिष्टि उपाई, नांव कुलाल धराया।
बहु बिधि भांडै उनहीं घड़िया, प्रभू का अंत न पाया॥
तरवर एक नांनां बिधि फलिया, ताकै मूल न साखा।
भौजलि भूलि रह्या रे प्रांणी, सौ फल कदे न चाखा॥
कहै कबीर गुर बचन हेत करि, और न दुनियां आथी।
माटी का तंन मांटीं मिलिहै, सबद गुरू का साथी ॥२६८॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस संसार में प्रभु का ऐसा कौन सा प्रेमी है जो संसार से विरक्त रह, विषयों का परित्याग कर ईश्वर-भक्ति में तल्लीन रहे। परमेश्वर की लीला ज्ञानातीत है, उसने एक ब्रह्मा के द्वारा एक ही प्रकार के समान तत्वों से के समान विविध घटरूपी जीव-सृष्टि का निर्माण कर दिया। प्रभु-भक्ति का शाखा विहीन वृक्ष अनेक प्रकार से सर्वत्र फूल रहा है किन्तु प्राणी संसार-माया-मोह, में पड़े हुए हैं और उस फल का आस्वादन नहीं करते। कबीर कहते गुरु-वचनों से प्रेम कर शेष संसार से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लो, क्योंकि मिट्टी निर्मित कलेवर मृत्यूपरान्त मिट्टी में ही मिल जायगा और केवल गुरु-ज्ञान, ही उसका मार्ग प्रशस्त करेगा।

नैंक निहारि हो माया बीनती करै,
दीन बचन बोलै कर जोरं, फुनि फुनि पाइ परै ।।टेक।।
कनक लेहु जेता मनि भावै, कांमनि लेहु मन-हरनीं।
पुत्र लेहु विद्या अधिकारी, राज लेहु सब धरनीं।
अठि सिधि लेहु तुम्ह हरि के जनां नवैं निधि है तुम्ह आगैं।
सुर नर सकल भवन के भूपति, तेऊ लहै न मांगैं।।
तं पापणीं सबै संघारे, काकौ काज संवार्यौ।
जिनि जिनि सग कियौ है तेरौ, को बेसासि न मार्यौ।।
दास कबीर रांम कै सरनैं, छाडी झूठी माया।
गुर प्रसाद साध की संगति, तहां परम पद पाया।।२६६।।

यहां कबीर प्रभु-भक्त की महिमा का वर्णन करते कहते हैं कि माया उसके दासी के समान वारम्वार दीन-वचन कहती हुई पैर पड़ती है। वह चाहे स्वर्ण, धन, एवं सुन्दरतम सुन्दरी को प्राप्त कर सकता है। विद्याअधिकारी पुत्र, समस्त पृथ्वी का चक्रवर्ती राज्य एवं आठ सिद्धि तथा नवों निधि का उन्हें सहज प्राप्त है।

यह माया देव, मनुष्य, राजे-महाराजे सबको विमोहित करती है किन्तु इस से लाभान्वित कोई नहीं होता, सब उसके द्वारा विनष्ट हो जाते हैं। जिस-ने भी माया का साथ किया वह इसके विश्वासघात से मारा गया। भक्त कबीर -शरण पाकर इस मिथ्या मोह-जाल को विदूरित कर दिया। गुरु उपदेश और संगति से उसे तो परम-पद की प्राप्ति हो गयी।

तुम्ह घरि जाहु हंमारी बहनां, बिष लागैं तुम्हारे नैंनां ।।टेक।।
अंजन छाडि निरंजन राते, नां किसहीं का दैनां।
बलि जांउ ताकी जिनि तुम्ह पठई, एक माइ एक बहनां।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

राती खांडी देखि कबीरा, देखि हमारा सिंगारौ।
सारग लोक थैं हम चलि आई, करन कबीर भरतारौ॥
सर्ग लोक मैं क्या दुख पड़िया, तुम्ह आईं कलि मांहीं।
जाति जुलाहा नाम कबीरा, अजहूं पतीजौ नांहीं॥
तहां जाहु जहाँ पाट पटंबर, अगर चंदन घसि लीनां।
आइ हमारे कहा करौगी, हम तौ जाति कमींनां॥
जिनि हंम साजे साज्य निवाजे, बांधे काचै धागै।
जे तुम्ह जतन करौ बहुतेरा, पांणीं आगि न लागै॥
साहिब मेरा लेखा मांगै, लेखा क्यूं करि दीजै।
जे तुम्ह जतन करौ बहुतेरा, तौ पांहण नीर न भीजै॥
जाकी मैं मछी सो मेरा मछा, सो मेरा रखवालू।
टुक एक तुम्हारै हाथ लगाऊं, तौ राजा रांम रिसालू॥
जाति जुलाहा नांम कबीरा, बनि बनि फिरौं उदासी।
आसि पासि तुम्ह फिरि फिरि बैसो, एक माउ एम मासी॥२३

कबीर दूसरी आत्माओं या माया-प्रलोभनों को सम्बोधित कर कहते संसार-वासना में लिप्त आत्माओ ! तुम अपनी राह गहो, तुम्हारे नेत्र विषय से आरक्त हैं।

मैं तो इस संसार को छोड़ प्रभु को भजता हूं, मुझे किसी अन्य प्रयोजन नहीं है। मैं उसकी बलिहारी जाता हूं जिसने तुम्हें मेरी परीक्षा किया है। मैं तुम्हारे साथ विषय-लिप्त नहीं हो सकता, तुम मेरे लिए बहन तुल्य पूज्य हो। इस पर वे सुन्दरी आत्माएं प्रत्युत्तर देती हैं कि हमारे और सौन्दर्य को देखकर रात्रि की नीरवता मादक हो उठी है और हम कबीर—आपको—वरण करने आई हैं। कबीर उत्तर देते हैं कि स्वर्ग में ऐसी विपत्ति आ गई जो तुम इस कलियुगी संसार में निकृष्ट जाति, जुलाहे कबीर आज तक पथ-विचलित नहीं हुआ, वरण करने आई हो ? तुम तो वहीं वस्त्र की चमक दमक एवं कस्तूरी चन्दन की सुगन्धित वायु हो हम जैसे निम्न जुलाहे के यहाँ आकर क्या करोगी ? जिस स्वामी से हमने अपने दृढ़, अचल कोमल तन्तु जोड़ा है, उसे चाहे तुम कितना भी प्रयत्न करो कभी भी विच्छिन्न कर सकतीं; भला पानी में आग लगायी जा सकती है ? तुम कहती हो कि ने मेरे कर्मों का लेखा मांगा है किन्तु उससे क्या लाभ ? जिस प्रकार अगणित करने पर भी पत्थर पानी से गल नहीं सकता उसी भांति हमारे हिसाब में नहीं मिल सकता। मेरी पवित्र आत्मा जिस मछेरे—प्रभु—की मछली है

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

...है, यदि मैं तुम्हारा स्पर्श तक भी कर लूं तो मेरे स्वामी राम रुष्ट हो जायेंगे। ...तो जुलाहे की निम्न जाति है और कबीर मेरा नाम है, प्रभु की खोज में संसार ...सम्पृक्त रहता हुआ वन-वन फिरता हूं। हे माया सुन्दरी! तुम कितना ही मेरे ...दं लगो, तुम मेरे लिए मातृ-तुल्य हो—तुम्हारा स्पर्श तक पाप-मय है।

विशेष—१. निदर्शना, दृष्टान्त, अनप्रास, रूपकातिशयोक्ति आदि ...र हैं।

२. कबीर जैसा उज्ज्वलमना व्यक्ति ही अपने चरित्र की शुद्धता को इतनी ...से कह सकता है। हमें इसे आत्मश्लाधा के रूप में नहीं देखना चाहिए।

ताकूं रे कहा कीजै भाई, तजि अंमृत बिषै सूं ल्यौ लाई ।।टेक।।
बिष संग्रह कहा सुख पाया, रंचक सुख कौ जनम गंवाया।
मन बरजैं चित कह्यौ न करई, सकति सनेह दीपक मैं परई ।।
कहत कबीर मोहि भगति उमाहा, कृत करणीं जाति भया जुलाहा ।।२७१।।

कबीर कहते हैं कि उस व्यक्ति की क्या सहायता की जाय जो स्वयं ही प्रभु-...के अमृत को छोड़ विषय-वासना में पड़ा रहता है। इन विषयों के सुख से कोई ...ी आनन्द लाभ नहीं होता, क्षणिक सुख के लिए जन्म यूं ही नष्ट कर दिया। ...(यहाँ मन का अर्थ बुद्धि एवं चित्त का अर्थ हृदय, मन, होगा) मन को विषयों ...टकने से वर्जित करती है किन्तु य: शलभ की भाँति दीपक में वारम्वार उड़-उड़ ...पड़ता है। कबीर कहते हैं कि मैं तो भगवान् की भक्ति में लग गया हूं, निम्न ...हा जाति का भी होकर श्रेष्ठ हो गया।

रे सुख इब मोहि विष भरि लागा,
इनि सुख डहके मोटे मोटे छत्रपति राजा ।।टेक।।
उपजै बिनसै जाइ बिलाई, संपति काहू कै संगि न जाई।
धन जोबन गरब्यौ संसारा, यहु तन जरि बरि ह्वै है छारा।।
चरन कवल मन राखि ले धीरा, रांम रमत सुख कहै कबीरा ।।२७२।।

कबीर कहते हैं कि यह सांसारिक सुख अब मुझे विष तुल्य लगने लगा है, ...बड़े छत्रपति राजा इस आनन्द प्राप्ति की इच्छा में नष्ट हो गये। यह साँसारिक ...त्ति उत्पन्न होती है और फिर क्षणिक स्थिति के पश्चात् समाप्त हो जाती है किन्तु ...ों के साथ नहीं जाती। धन और यौवन के सौन्दर्य का घमण्ड संसार व्यर्थ ही ...ता है, क्योंकि यह तन भस्म होकर क्षण भर में क्षार में परिवर्तित हो जायगा। हे ...य! प्रभु के चरण-कमलों को अपने हृदय में बसा ले, रामभक्ति में अपरिमित ...शी आनन्द है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इब न रहूं माटी के घर मैं, इब मैं जाइ रहूं मिलि हरि मैं ॥टेक॥
छिनहर घर अरु झिरहर टाटी, घन गरजत कंपै मेरा छाती।
दसवें द्वारि लागि गई तारी, दूरि गवन आवन भयौ भारी॥
चहु दिसि बैठे चारि पहरिया, जागत मुसि गये मोर नगरिया।
कहै कबीर सुनहु रे लोई, भांनड़ घड़ण संवारण सोई ॥२७३॥

कबीर कहते हैं कि अब में इस मिट्टी के अर्थात् मृण्मय संसार में नहीं रहूं अब म प्रभु के समीप जाकर रहूंगा। यह घर टूटा-फूटा है और इसमें टट्टी लगी हुई है, जब कालरूपी घन गर्जन करता है, तब मुझे बहुत भय लगता दशम द्वार, ब्रह्मरन्ध्र, पर मेरी कुण्डलिनी पहुंच गई है, अब मेरा आवागमन छूट इस संसार में स्थिति तो ऐसी है कि चारों ओर मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार चार दार बैठे हुए होते हैं फिर भी की काल रूपी चोर प्राण, जीवन को लूट कर ले है। कबीर कहते हैं कि हे मनुष्यो ! अथवा कबीर अपनी शिष्या लोई को स कर कहते हैं कि वह ईश्वर ही सृजन, पोषण, संहार करने वाला है। इसमें मनु कोई वश नहीं।

कबीरा बिगर्या रांम दुहाइ,
तुम्ह जिनि बिगरौ मेरे भाई ॥टेक॥
चंदन कै ढिग बिरष जु भैला, बिगरि बिगरि सो चंदन ह्वैला।
पारस कौं जे लोह छिवैंगा, बिगरि बिगरि सो कंचन ह्वैला॥
गंगा मैं जे नीर मिलैगा, बिगरि बिगरि गंगोदिक ह्वैला।
कहै कबीर जे रांम कहैला, बिगरि बिगरि सो रांमहिं ह्वैला ॥२

कबीर रामाश्रय से परिवर्तित हो गया है, हे भाइयो ! तुम क्यों नहीं परि हो जाते। चन्दन के पास जो दूसरी जाति का वृक्ष होता है, धीरे-धीरे वह भी चन्द सुगन्ध से सुवासित हो चन्दन जैसा ही हो जाता है। जिस लोहे का स्पर्श पारस से हो जाता है वह भी परिवर्तित हो स्वर्ण बन जाता है। गंगा में गन्दे ना पानी मिलकर भी शुद्ध और पवित्र गंगा-जल हो जाता है। कबीर कहते जो राम कहेगा, राम को भजेगा वह भी राम तुल्य या तद्रूप हो जायेगा। ध्वनि भी है कि मैं संसार मुक्त हूं, मेरे सम्पर्क में रहकर तुम भी मुक्त हो जाओ।

विशेष—तदगुण अलंकार।

रांम राइ भई बिकल मति मेरी,
कै यहु दुनीं दिवांनीं तेरी ॥टेक॥
जे पूजा हरि नाहीं भावै, सो पूजनहार चढ़ावै।
जिहि पूजा हरि भल मांनैं, सो पूजनहार न जांनैं॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भाव प्रेम की पूजा, ताथैं भयौ देव थैं दूजा।
का कीजै बहुत पसारा, पूजी जै पूजनहारा॥
कहै कबीर मैं गावा, मैं गावा आप लखावा।
जे इहिं पद मांहि समांनां, सो पूजनहार सयांनां॥२७५॥

हे प्रभु राम ! आपके प्रेमी माने जाने वाले जग को देखकर मेरी चेतना व्यथित हो रही है। जो पुजापा प्रभु को रुचिकर नहीं ये आराधक उसे ही आपकी चढ़ाते हैं एवं वे जिस पूजा से प्रसन्न होते हैं पूजक उससे परिचित नहीं। प्रेम-सहित प्रभु की पूजा करने से साधक, भक्त, प्रभुरूप ही हो जाता है। इस व्यर्थ आडम्बर से क्या लाभ ? पूजा तो वही श्रेष्ठ है जिससे इष्ट प्रसन्न हो। कबीर कहते हैं कि मैंने प्रभु-भक्ति का रहस्य गा दिया। जो भक्त इस पद द्वारा निर्देशित भाव से आराधन करते हैं, वे श्रेष्ठ हैं।

रांम राइ भई बिगूचनि भारी,
भले इन ग्यांनियन थैं संसारी॥टेक॥
इक तप तीरथ औगांहैं, इक मांनि महातम चाहैं।
इक मैं मेरो मैं बीझैं, इक अहंमेव मैं रीझैं॥
इक कथि कथि भरम लगांवै, संमिता सी बस्त न पांवैं।
कहै कबीर का कीजै, हरि सूझै सो अंजन दीजै॥२७६॥

हे प्रभु ! कैसी विडम्बना है कि इन ज्ञानियों से संसारी गृहस्थ ही श्रेष्ठ हैं। गृहस्थ तो तपस्या और तीर्थादि के ही विश्वासी होते हैं किन्तु ज्ञानी तो आत्म-पूजा चाहते हैं। गृहस्थ ममत्व-परत्व की भावना से मुक्त नहीं हो पाता तो ये सर्वथा अहं में चूर रहते हैं। संसारी इधर उधर प्रेम की बातें सुनता है, ये ज्ञानी अपनी ही चकित करने वाली बातों से ही दूसरों को रिझाते हैं। कबीर कहते हैं कि ज्ञानियों का क्या उपकार किया जा सकता है। जिससे इन्हें सद्बुद्धि प्राप्त हो हे प्रभु ! इन्हें वही भक्ति का अंजन दीजिए।

काया मंजसि कौन गुनां, घट भीतरि है मलनां॥टेक॥
जौ तूं हिरदै सुध मन ग्यांनीं, तौ कहा बिरोलै पांनीं।
तूंबी अठसठि तीरथ न्हाई, कड़वापण तऊ न जाई॥
कहै कबीर बिचारी, भवसागर तारि मुरारी॥२७७॥

कबीर कहते हैं कि शरीर-शुद्धि के साथ-साथ हृदय की शुद्धि भी वांछनीय है। इसलिए शरीर को मलने से क्या लाभ ? भीतर मन—हृदय—भी तो स्वच्छ करना चाहिए। हे ज्ञानी ! यदि तुम्हारा हृदय शुद्ध है तो यह पानी बखेरने से कोई लाभ नहीं। इस शरीर रूपी तूंबी को अढ़सठ तीर्थों का स्नान कराने से, जब तक मन की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शुद्धता नहीं कोई लाभ नहीं। कबीर विचार कर कहते हैं कि हे प्रभु! आप अब इ संसार सिन्धु से पार उतार दो, आपके अतिरिक्त कोई आश्रय नहीं।

कैसैं तूं हरि कौ दास कहायौ,
करि बहु भेष र जनम गंवायौ ॥टेक॥
सुध बुध होइ भज्यौ नहि सांईं, काछ्यौ ड्यंभ उदत कै तांईं।
हिरदै कपट हरि सूं नहीं साचौ, कहा भयौ जे अनहद नाच्यौ॥
झूठे फोकट कलू मंझारा, रांम कहैं ते दास नियारा।
भगति नारदी मगन सरीरा,
इह बिधि भव तिरि कहै कबीरा ॥२७८॥

हे मनुष्य! तू क्यों व्यर्थ प्रभु का भक्त कहाता है, अन्य प्रलोभनों में पड़े हु तूने अपना जीवन व्यर्थ व्यतीत कर दिया। बुद्धि होते हुए भी तूने प्रभु का भज नहीं किया और उदरपूर्ति तथा कामना पूर्ति में लगा रहा। यदि हृदय शुद्ध नहीं त व्यर्थ में मुंह से 'अलख निरंजन' का नारा लगाने से क्या लाभ? मिथ्या-सांसारि प्रपंचों में प्रभु-भक्त का मन नहीं उलझता। भक्ति तो नारद के समान तल्लीन हो कर करनी चाहिए। इस संसार सागर से तरने का एकमात्र उपाय यही है।

विशेष—भगति नारदी—से यहाँ तात्पर्य नारद-भक्ति सूत्र में वर्णित भक्ति के प्रकार से नहीं है किन्तु यदि हम उस अर्थ को भी ग्रहण करना चाहें तो कोई आपत्ति नहीं होगी क्योंकि 'नारद भक्तिसूत्र' में भक्ति-वर्णन कबीर-विचारधारा के अनुकूल ही है, यथा — 'सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा।"२.

"अमृतस्वरूपा च"।"३

"तदर्पिताखिलाचारता तद्विस्मरणे परमव्याकुलतेति।"१९

रांम राइ इहि सेवा भल मांनैं,
जै कोई रांम नांम तम जांनैं ॥टेक॥
रे नर कहा पषालै काया, सो तन चीन्हि जहां थैं आया।
कहा बिभूति जटा पट बांधें, का जल पैसि हुतासन साधें॥
र रांम मां दोई अखिर सारा, कहै कबीर तिहुं लोक पियारा ॥२७९॥

प्रभु भक्ति-भाव से ही प्रसन्न रहते हैं अतः जो भी राम नाम का रहस्य जान प्रेमपूर्वक प्रभु-सेवा करता है उसे प्रभु प्रेम करते हैं। हे मानव! इस शरीर को बारम्बार धोने से क्या? इस शरीर की आसक्ति को त्याग अपने वास्तविक लोक—प्रभु में चित्तवृतियाँ लगा। जटा धारण कर, कन्था पहन, विभूति लगा कर अग्नि में तपने से कोई लाभ नहीं। 'राम' नाम के दो अक्षरों में ही समस्त संसार का ज्ञान समाहित है, यह राम नाम समस्त संसार को प्रिय है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इहि बिधि रांम सूं ल्यौ लाइ।
चरन पाबैं निरति करि, जिभ्या बिनां गुंण गाइ ॥टेक॥
जहां स्वांति बूंद न सीप साइर, सहजि मोती होइ।
उन मोतियन मैं नीर पोयौ, पवन अंबर धोइ॥
जहां धरनि बरषै गगन भीजै, चंद सूरज मेल।
दोइ मिलि तहां जुड़न लागे, करत हंसा केलि॥
एक बिरष भीतरि नदी चाली, कनक कलस समाइ।
पंच सुवटा आइ बैठे, उदै भई बनराइ॥
जहां बिछट्यौ तहां लाग्यौ, गगन बैठौ जाइ।
जन कबीर बटाऊवा, जिनि मारग लियौ चाइ ॥२८०॥

हे साधक! सहज-समाधि द्वारा प्रभु में इस प्रकार अनुरक्त हो कि तू वहां—पांव बिना चरणों की गति के ही पहुंच जाय और जिह्वा के उच्चारण बिना अनहद ध्वनि द्वारा प्रभु गुण-गान करता रहे। जहाँ स्वाति नक्षत्र के जल और सीप संयोग के बिना ही शून्य तट पर मोती बिखरे हुए हों। उन मोतियों को शून्य में प्राणायाम साधना द्वारा आत्मा को पहुंचा दिया जाए। वहां इड़ा-पिंगला के मेल से ब्रह्मरन्ध्र पर कुण्डलिनी के विस्फोट करने से अमृत-वर्षा होती है। जहाँ सुरति निरति का समन्वय हो जाता है वहों मुक्तात्मा आनन्द लाभ करने लगती है। वासना तरु पर अमृत-वर्षा से एक नदी वह चली जिसमें समस्त स्वर्ण, धन आदि सांसारिक प्रलोभन डूब गये। पांचों ज्ञानेन्द्रियों की वृत्ति वहीं केन्द्रित हो गई और अमित आनन्द का जन्म हुआ। वहाँ सर्वत्र आनन्द ही आनन्द है और जिधर रुचि हो वहीं शून्य स्थल पर आत्मा मुक्त-विहार करती है। कबीर जैसे ने प्रभु दर्शन का यह मार्ग खोज निकाला है।

विशेष—विभावना, विरोधाभास, अनुप्रास, रूपकातिशयोक्ति, रूपक आदि स्वाभाविक रूप से आ गये हैं।

ताथैं मोहि नाचिबौ न आवै, मेरौ मन मंदलान बजावै ॥टेक॥
ऊभर था ते सूभर भरिया, त्रिष्णां गागरि फूटीं।
हरि चिंतन मेरौ मंदला भीनौं, भरम भोयन गयौ छूटी॥
ब्रह्म अगनि मैं जरी जु ममिता, पाषंड अरू अभिमानां।
काम चोलनां भया पुराना मोपैं होइ न आना॥
जे बहु रूप किये ते कीये, अब बहु रूप न होई।
थाकी सौंज संग के बिछुरे, रांम नांम मसि धोई॥
जे थे सचल अचल ह्वै थाके, करते बाद बिबादं।
कहै कबीर मैं पूरा पाया, भया रांम परसादं ॥२८१॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कबीर कहते हैं कि मेरा मन प्रभु-भक्ति की ढपली पर ही अपना राग अला है, इसीलिए मुझसे संसार के प्रपंचों में नहीं पड़ा जाता। मैं प्रभु-भक्ति करने से पतित था किन्तु अब शुद्ध हो गया हूं और मेरी संसार-तृष्णा की गगरी फूट गई प्रभु का स्मरण करते हुए मेरी ढपली भी भक्ति के सुन्दर स्वर निसृत करने लगी जिससे मेरा संसार-संशय विदूरित हो गया। ज्योतिस्वरूप परमात्मा के दर्शनार्थ ममता, पाखण्ड और अभिमान जलकर विनष्ट हो गये। अब यह शरीर विषय-वा जर्जर हो गया है, अतः अब मैं पुनः जन्म धारण करने की व्यथा सहन नहीं सकता। जो कुछ जन्म ग्रहण करने थे कर चुका। अब तो तत्व-विश्लेषण द्वारा चंचल-बुद्धि थे वे भी स्थिर-मति हो गये, संगी साथी बिछुड़ चुके हैं और समस्त भी थक गये हैं, राम नाम ने कलंक-कालिमा को धो डाला है। कबीर कहते हैं कि पूर्ण परमात्मा को पाकर राम भक्त बन गया हूं।

अब क्या कीजै ग्यांन बिचारा, निज निरखत गत ब्यौहारा ।।टेक।।
जाचिग दाता इक पाया, धन दिया जाइ न खाया।
कोई ले भरि सकै न मूका, औरनि पैं जानां चूका ।।
तिस बाझ न जीव्या जाई, वो मिलै त घालै खाई।
वो जीवन भला कहाई, बिन मूंवां जीवन नांहीं ।।
घसि चंदन वनखंडि बारा, बिन नैंननि रूप निहारा।
तिहि पूत बाप इक जाया, बिन ठाहर नगर बसाया ।।
को जीवत ही मरि जांनैं, तौ पंच सयल सुख मांनैं।
कहै कबीर सो पाया, प्रभु भेटत आप गंवाया ।।२८२।।

कबीर कहते हैं कि आत्म-चरित्र को विचार कर देख लो, ज्ञान प्राप्ति की करने से अब क्या प्रयोजन ? मुझ जैसे याचक ने प्रभु रूप दाता को प्राप्त कर लि है जिसने भक्ति का ऐसा भरपूर धन दिवा है जो किसी से समाप्त नहीं हो सकता अन्य कोई इसे सामान्य धन की नाईं चुराना चाहे तो वह भी सम्भव नहीं है। माया रूपी बन्ध्या भी समाप्त नहीं कर सकती उल्टे यदि वह सामने पड़ गई तो भ माया को समाप्त कर देगी। प्रभु-भक्ति का ही जीवन श्रेष्ठ है, जब तक जीते मरा नहीं जाता अर्थात् जीवन्मुक्त नहीं हुआ जाता तब तक जीवन की सार्थ कहां ? भक्ति के शीतल चन्दन को घिस कर विषय-वासना वन को समाप्त कर एवं बिना नेत्रों की सहायता के समाधि में प्रभु-दर्शन प्राप्त कर लिए। ईश्वर ने अ अनुरूप भक्त का सृजन कर इस संसार में बसा दिया है। कबीर कहते हैं कि उस ब्र की प्राप्ति पर आत्म-विस्मृति हो जाती है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विशेष—विरोधाभास, विभावना, अनुप्रास आदि अलंकार इस पद में प्रयुक्त हैं।

अब मैं पायौ राजा रांम सनेही, जा बिन दुख पावै मेरी देही ।।टेक।।
द पुरान कहत जाकी साखी, तीरथि व्रति न छूटै जंम की पासी।
याथैं जनम लहत नर आगें, पाप पुनि दोऊ भ्रम लागें।।
है कबीर सोई तत जागा, मन भया मगन प्रेम सर लागा ।।२८३।।

अब मैंने परम प्रेमी परमात्मा को प्राप्त कर लिया है जिनके बिना मन व्यथा-था। वेद-पुराण आदि शास्त्र ग्रन्थ जिस परम पुरुष की साक्षी देते हैं वह प्राप्त हो है। उसकी भक्ति से ही सब कुछ सम्भव है। तीर्थ, व्रत आदि वाह्याडम्बरों से तो बंधन से मुक्त नहीं हुआ जा सकता। जिस पाप-पुण्य के पचड़े में पड़ा मनुष्य गमन में पड़ता है ईश्वर-दर्शन से वह समाप्त हो गया। कबीर कहते हैं कि वही पम ब्रह्म मुझे प्राप्त हो गया है। प्रभु-प्रेम का बाण लगते ही मन ईश्वर भक्ति में न गया।

बिरहिनी फिरै है नाथ अधीरा।
उपजि बिनां कछू समझि न परई, बांझ न जांनैं पीरा ।।टेक।।
या बड़ बिथा सोई भल जांनैं, रांम बिरह सर मारी।
कैसो जांनैं जिनि यहु लाई, कै जिनि चोट सहारी।।
संग की बिछुरी मिलन न पावै, सोच कहै अरु काहै।
जतन करै अरू जुगति बिचारै, रटै रांम कूं चाहै।।
दीन भई बूझै सखियन कौं, कोई मोहि राम मिलावै।
दास कबीर मीन ज्यूं तलपै, मिलैं भलैं सचुपावै ।।२८४।।

प्रभु-प्रेम-व्यथा का अनुभव जिसे न हो वह भला उनके प्रेम का रहस्य कैसे जान सकता है? विरहिणी आत्मा तो उस प्रिय के विरह में व्याकुल घूम रही है किन्तु जिसके यह वेदना उत्पन्न नहीं होती वह इस तत्व को नहीं समझता, भला वन्ध्या को प्रसव-वेदना का क्या भान होगा? राम-प्रेम-बाण से आहत की पीड़ा को कोई समदुख-भोगी ही जान सकता है। आत्मा परमात्मा मे नहीं मिल पा रही है इस वेदना का ज्ञान तो प्रभु-विरही को ही हो सकता है। ये विरही जन अपनी व्यथा-शमन का कुछ ध्यान न करते हुए केवल प्रभु नाम का स्मरण करते हैं एवं साथियों से अत्यन्त दीन-भावयुक्त वचनों से राम से मिलाने की प्रार्थना करते हैं। कबीरदास जी कहते हैं कि ऐसे भक्त जन अहर्निशि प्रभु-वियोग में मछली के समान तड़पते हैं और ईश्वर के पाने पर ही शान्ति लाभ कर सकते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जातनि बेद न जांनैंगा जन सोई,
सारा भरम न जांनें रांम कोई ।।टेक।।
चषि बिन दिवस जिसी है संझा, ब्यावन पीर न जांनैं बंझा।
सूझै करक न लागै कारी, बैद बिधाता करि मोहि सारी ।।
कहै कबीर यहु दुख कासनि कहिये,
अपनें तन की आप ही सहिये ।।२८५।।

कबीर कहते हैं कि प्रभु-वियोगी की वेदना को समझने वाला तो कोई समदुख-भोगी ही हो सकता है। इस संसार-भ्रम में और किसी की सामर्थ्य नहीं कि उसकी वेदना का अनुमान कर सके। विना नेत्रों के तो रात्रि भी दिवस के समान प्रकाश-पूर्ण है, उसी प्रकार बाँझ को प्रसव वेदना का अनुभव नहीं होता। क्योंकि उसे कोई पीड़ा नहीं होती इसलिए वह दूसरों की पीड़ा से अनभिज्ञ है। राम वियोगी का उपचार तो वैद्य सांवलिया द्वारा ही हो सकता है। कबीर कहते हैं कि मैं अपनी व्यथा का किससे कथन करूं, स्वयं ही इस वेदना को सहन करना होगा।

विशेष—निदर्शना अलंकार।

जन की पीर हो राज़ा रांम भल जांनें,
कहूं काहि को मांनैं ।।टेक।।
नैंन का दुख बैंन जांनें, बैंन का दुख श्रवनां।
प्यंड का दुख प्रांन जांनैं, प्रांन का दुख मरनां ।।
आस का दुख प्यासा जांनैं, प्यास का दुख नीर।
भगति का दुख रांम जांनें, कहै दास कबीर ।।२८६।।

कबीरदास जी यह प्रतिपादित करते हैं कि भगवान् भक्त की वेदना से भली भाँति परिचित होते हैं, वे उसका किसी से अन्यथा वर्णन सुनकर कैसे विश्वास करेंगे। जिस भांति नेत्रों के दुख की वेदना का ज्ञान वाणी को, वाणी के दुख का श्रवण को और शरीर के दुख का आत्मा को, मृत्यु-दुख का प्राणों, आशान्वित के दुख को तृषित और तृषित के दुख को जल जानता है, उसी भांति भक्त के दुख का केवल स्वामी को ही अनुभव होता है—ऐसा कबीर दास का मत है।

तुम्ह बिन रांम कवन सौं कहिये,
लागी चोट बहुत दुख सहिये ।।टेक।।
बेध्यौ जीव बिरह कै भालै, राति दिवस मेरे उर सालै।
को जांनें मेरे तन की पीरा, सतगुर सबद बहि गयौ सरीरा ।।
तुम्ह से बैद न हमसे रोगी, उपजी बिथा कैसैं जीवै वियोगी।
निस बासुरि मोहि चितवत जाई, अजहूं न आइ मिले रांम राई ।।
कहत कबीर हमकौं दुख भारी, बिन दरसन क्यूं जीवहि मुरारी ।।२८७।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हे राम ! आपके अतिरिक्त अपनी व्यथा-कथा किससे कहूं, हृदय में आपके ...घाव हो रहा है—इस वेदना को किस भांति सहन करें ? मेरी आत्मा को ...विरह के भाले ने वेध रखा है जो अहर्निशि मुझे पीड़ा देती है। मेरे रोम प्रति ...में गुरु-उपदेश वह रहा हैं, मेरी पीड़ा का अनुमान कौन कर सकता है? हे प्रभु ! आप सरीखा चिकित्सक और हम जैसा इस रोग का रोगी भी नहीं मिलेगा, अतः वेदना का निदान करो। मैं रात-दिन व्याकुलतापूर्वक प्रभु का मार्ग तकता हूं अब तक स्वामी की प्राप्ति नहीं हुई। कबीर कहते है कि हे दीनदयाल ! मुझे वेदना हो रही है, आपके दर्शन के अभाव में जीवन भार हो गया है।

तेरा हरि नांमैं जुलाहा, मेरै रांम रमण का लाहा ।।टेक।।
दस सै सूत्र की पुरिया पूरी, चंद सूर दोइ साखी।
अनत नांव गिनि लई मंजूरी, हिरदा कवल मैं राखी ।।
सुरति सुमृति दोइ खूंटी कीन्हीं, आरंभ कीया बनेकी।
ग्यांन तत की नली भराई, बुनित आतमां पेषी ।।
अबिनासी घंन लई मंजूरी, पूरी, थापनि पाई।
रन बन सोधि सोधि सब आये, निकटैं दिया बताई ।।
मन सूधा कौ कूच कियौ है, ग्यांन बिथरनीं पाई।
जीव की गांठि गुढी सब भागी, जहां की तहां ल्यो लाई ।।
बेठि बेगारि बुराई थाकी, अनभै पद परकासा।
दास कबीर बुनत सच पाया, दुख संसार सब नासा ।।२८८।।

कबीर कहते हैं कि हे प्रभु ! मैं जुलाहा हूं, आपके नाम के सूत का वस्त्र बुनता ...मैंने आपका भक्ति-वस्त्र बुनने के लिए दस सहस्र 'पुरिया' को पूर कर इड़ा-...ला नामक सखी को सहायक रूप से साथ लिया है। आपके अनन्त नामों का ...धारण कर मैंने अपनी मज़दूरी प्राप्त कर ली जिसे मैंने हृदय में संजोकर रख ...है। सुरति, निरति की दो खूंटी बनाकर आपके नाम का जप प्रारम्भ कर दिया ...ज्ञान तत्व से कली भरकर आत्मा ने बुनने का कार्य सम्पूर्ण किया। थान को ...कर मैंने अविनाशी प्रभु को ही अपनी बनाई के रूप में प्राप्त कर लिया। सब ...उस परमात्मा को दूर-दूर वन-प्रान्तर में खोज चुके थे किन्तु हमने तो उसे ...अन्त निकट—हृदय में ही—प्राप्त कर किया। ज्ञान-वैतरणी प्राप्त कर मन ने ...उस लक्ष्य-प्रभु-की ओर ही प्रस्थान कर दिया है। जीव की विषय-वासना, ...नष्ट हो गई और उसकी वृत्तियाँ प्रभु में केन्द्रीभूत हो गईं। समाधि में बैठकर उस ...पद के दर्शन प्राप्त किये। कबीर कहते हैं कि इस भक्ति वस्त्र को बुनने में हमें ...अनन्त आनन्द प्राप्त होता है और संसार का समस्त दुख समाप्त हो जाता है।

विशेष—सांगरूपक, रूपकातिशयोक्ति आदि अलंकार।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भाई रे सकहु त तनि बुनि लेहु रे,
पीछें रांमहिं दोस न देहु रे ।।टेक।।
करगहि एक बिनांनी, ता भींतरि पंच परांनीं ।
तामैं एक उदासी, तिहि तणि बुणि सबै बिनासी ।।
जे तूं चौसठि बरियां धावा, नहीं होइ पंच सूं मिलावा ।
जे तैं पांसै छसै तांणीं, तौ तूं सुख सूं रहै परांणीं ।।
पहली तणियां ताणां, पीछें बुणियां बांणां ।
तणि बुणि मुरतब कीन्हां, तब रांम राइ पूरा दीन्हां ।।
राछ भरत भइ संझा, तारुणीं त्रिया मन बंधा ।
कहै कबीर बिचारी, अब छोछी नली हंमारी ।।२८९।।

कबीर कहते हैं कि यदि सत्कर्मों अथवा भक्ति का थान अब बुनना चाहते हो तो बुन लो, फिर प्रभु को दोष मत देना कि हमें यह अवसर प्रदान न किया। एक शरीर रूपी करघे के भीतर क्रोध, मद, लोभ, मोह रूपी पांच प्राणियों का निवास है। उसमें आत्मा भी स्थित है जो संसार से असम्पृक्त है। उस आत्मा, मन में यदि तुम चौंसठ बार प्राणायाम द्वारा अपनी वृत्ति रमा दो तो फिर इन पांचों से मिलन नहीं होगा, आत्मा शुद्ध पवित्र रहेगी। यदि तू अपनी वृत्तियों पर अंकुश रखेगा तो सुख का अनुभव करेगा। पहले इन्द्रियों को वश में कर उनका ताना बनाकर ही प्रभु-भक्ति रूपी थान का निर्माण हो सकता है। जब साधक तन-मन पर नियन्त्रण कर भक्ति में लग जाता है तो राजा राम—प्रभु—उसे दर्शन देते हैं। कबीर कहते हैं कि यदि मन सुन्दरी—काम वासना—में पड़ जाय तो अज्ञानांधकार छा जाता है। इसीलिये अब मेरी गति तो सुषुम्णा (छोटी नली) में ही केन्द्रीभूत हो गई है।

वै क्यूं कासी तजैं मुरारी, तेरी सेवा चोर भये बनवारी ।।टेक।।
जोगी जती तपी संन्यासी, मठ देवल बसि परसैं कासी ।
तीन बार जे नित प्रति न्हांवैं, काया भींतरि खबरि न पांवैं ।।
देवल देवल फेरी देहीं, नांव निरंजन कबहुँ न लेहीं ।
चरन बिरद कासी कौं न दैहूं, कहै कबीर भल नरकहि जैहूं ।।

हे प्रभु ! जो साधक काशी में साधना के लिये आते हैं वे उसका परित्याग क्यों करें, क्योंकि आपकी भक्ति से चोर भी भक्त हो तद्रूप हो गये हैं। योगी, यति, तपस्वी एवं संन्यासी मन्दिर और मठों में ही आपको देखने का प्रयास करते हैं। भला जो साधक तीन-तीन बार स्नान कर केवल बाह्य-शुद्धि में ही लगे रहते हैं वे हृदयस्थित ब्रह्म से कैसे परिचित हो सकते हैं। हे मूर्ख साधक ! तुमने व्यर्थ शरीर को

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रति मंदिर के द्वार पर घुमाया और ज्योतिरूप अलख निरञ्जन ब्रह्म को कभी जा।

कबीर कहते हैं कि केवल प्रभु-मूर्ति के चरणों से वरदान पाने की आशा में में रहने की अपेक्षा नरक में जाना अधिक श्रेयस्कर है।

तब काहे भूलौ बनजारे, अब आयौ चाहै संगि हंमारे ।।टेक।।
जब हंम बनजी लौंग सुपारी, तब तुम्ह काहे बनजी खारी।
जब हम बनजी परमल कसतूरी, तब तुम्ह काहे बनजी कूरी।।
अंमृत छाड़ि हलाहल खाया, लाभ लाभ करि मूल गँवाया।
कहै कबोर हंम बनज्या सोई, जाथैं आवागवन न होई ।।२६१।।

कबीर कहते हैं कि हे साधक! यदि तुम भक्ति मार्ग में हमारे साथी बनना हो तो क्यों इस संसार की विषय-वासना में पड़े हुए हो? जब हम प्रभु-भक्ति लौंग सुपारी तुल्य मीठे वन गये हैं तो तुम माया-मोह में पड़े खारे क्यों बने जब हम प्रभु भक्ति द्वारा कस्तूरी सुगन्ध की भांति सुवासित हो गये तो तुम सदृश अपने पाप कर्मों से बने रहे। तुमने विषय-वासना सेवन से भक्ति- को छोड़ वासना विष का सेवन किया और इस प्रकार लाभाशा में मूलधन— संचित सत्कर्म—को भी गंवा दिया। कबीर कहते हैं कि यदि तुम मुझ जैसे -भक्त और संसार से असम्पृक्त हो जाओ तो जन्म-मरण के चक्र से मुक्त जाओगे।

परम गुर देखौ रिदै बिचारी, कछू करौ सहाइ हंमारी ।।टेक।।
लवानालि तंति एक समि करि, जंत्र एक भल साजा।
सति असति कछू नहीं जानूं, जैसैं बजावा तैसें बाजा।।
चोर तुम्हारा तुम्हारी आग्या, मुसियत नगर तुम्हारा।
इनके गुनह हमह का पकरा, का अपराध हमारा।।
सेई तुम्ह सेई हम एकै कहियत, जब आपा पर नहीं जांनां।
ज्यूं जल मैं जल पैसि न निकसै, कहै कबीर मन मांनां ।।२६२।।

कबीर यहां सद्गुरु को सम्बोधित कर कहते हैं कि हे गुरुवर! तनिक हमारी -दशा को चित्त में विचार कर तो देखो और कुछ तो हमारी सहायता कीजिए। ा और तंतु की सहायता से भक्ति रूपी एक यन्त्र का निर्माण किया है किन्तु इसके बजाने की विधि पाप-पुण्य (सदसद्) से अवगत नहीं हूं जैसे मन में आता वैसे ही इसे बजा लेता हूं। भाव यह है कि गुरुवर आप साधना में मेरा पथ-निर्देश जिए। वास्तव में यह अज्ञान रूपी चोर आपसे बचकर आपके भक्त की भक्ति- त्मक भावनाओं को नष्ट कर रहा है। मैं भला आपके बिना अज्ञान से कैसे मुक्ति

RajGuru Math, Shivala, Varanași Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पा सकूंगा, अतः हे प्रभु ! मेरा कौन सा अपराध है जो आप मुझे इससे मुक्त नहीं करते ? कबीर कहते हैं कि हे प्रभु ! अब तो मन में यह विश्वास हो गया है कि हम और आप एक हैं, द्वैत भ्रम है। वस्तुतः प्रभु ! आपके रहस्य में पड़कर कोई उसी प्रकार नहीं निकल पाता जिस भांति जल में डूबा हुआ नहीं निकल पाता।

विशेष—रूपक एवं उपमा अलंकार।

मन रे आइर कहां गयौ, ताथैं मोहि बैराग भयौ ।।टेक।।
पंच तत ले काया कीन्हीं, तत कहा ले कीन्हां।
करमौं के बसि जीव कहत हैं, जीव करम किनि दीन्हां ।।
आकास गगन पाताल गगन, दसौं दिसा गगन रहाई ले।
आंनंद मूल सदा परसोतम, घट बिनसै गगन न जाई ले ।।
हरि मैं तन है तन मैं हरि है, है पुंनि नांहीं सोई।
कहै कबीर हरि नांम न छाडूं, सहजैं होइ सु होई ।।२६३।।

हे मन ! अब तू इस संसार को छोड़ अन्यत्र कहां रम गया (प्रभु-लोक-शून्य में) जो मुझे इस संसार से विरक्तता हो गई है। उस ईश्वर ने पांच तत्वों से इस का निर्माण किया है किन्तु मृत्यु के पश्चात् न जाने पांच तत्वों को वह कहाँ ले जाता है ? यदि जीवात्मा कर्मफल को भोगने के लिये ही इस संसार में आता है तो आप जीवन को कुकर्मों में लिप्त ही क्यों करते हो ? आकाश, पाताल एवं दशों दिशाओं में वह ब्रह्म समान रूप से उसी प्रकार रमा हुआ है जिस भांति शून्य—ब्रह्मरन्ध्र में स्थित है। वस्तुतः शून्य कमल में ही आनन्दरूप पूर्ण पुरुषोत्तम ब्रह्म का निवास है। शरीर के नष्ट होने पर चाहे हृदय—मन—की सन्तान रहे किन्तु प्रभु फिर भी शून्य में उसी भाव से बसे रहते हैं। वह ब्रह्म वस्तुतः इस शरीर में भी वर्तमान है और शरीर भी ब्रह्म में है, यह शरीर शून्य मात्र नहीं, प्रभु-परिपूर्ण है। कबीर कहते हैं कि मैं ईश्वर नाम का सम्बल नहीं छोड़ सकता, उसे सहज-साधना से प्राप्त किया जा सकता है।

हमारै कौंन सहै सिरि भारा,
सिर की सोभा सिरजनहारा ।।टेक।।
टेढी पाग बड जूरा जरि भए भसम कौ कूरा ।।
अनहद कीं गुरी बाजी, तब काल द्रिष्टि भै भागी।
कहै कबीर रांम राया, हरि कैं रंगैं मूंड मुडाया ।।२६४।।

सिरि भारा=पाप बोझ। सिरजनहारा=स्रष्टा, ब्रह्म। टेढ़ी पाग=तिरछा साफा बाँधने से तात्पर्य। बड जूरा=बड़ा जूड़ा, केश-विन्यास की पद्धति विशेष। गुरी=तन्त्री। कालद्रिष्टि, मृत्यु। भै=भय। मूंड मुडाया=विरक्त होना।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कबीर कहते हैं कि इस सांसारिक विषय-वासना बोझ को सहना हमारे लिए ...व नहीं, हमने पाप-मोट व्यर्थ सिर पर रख रखी है, वस्तुतः शीश की वास्तविक ...ा स्रष्टा की भक्ति है। अदा से रखे गये साफे, बड़े-बड़े जूड़े अर्थात् समस्त ...ार-प्रसाधन जलकर क्षार रूप में परिणत हो जाते हैं। मिट्टी में मिल जाते हैं। ...हद नाद होने पर ही साधक का मृत्यु भय विदूरित होता है। कबीर कहते हैं कि प्रभु! मैंने आपके भक्ति-रंग में रंगकर ही संसार से विरक्तता ली है।

कारनि कौंन संवारै देहा, यहु तनि जरि बरि ह्वै है षेहा ॥टेक॥
चोवा चंदन चरचत अंगा, सो तन जरत काठ कै संगा।
बहुत जतन करि देह मुट्याई, अगनि दहै कै जंबुक खाई॥
जा सिरि रचि रचि बांधत पागा, ता सिरि चंच संवारत कागा।
कहि कबीर तब झूठा भाई, केवल रांम रह्यौ ल्यौ लाई ॥२६५॥

षेहा = धूल। देह मुट्याई = शरीर बनाया। जंबुक = लोमड़ी। रचि रचि = ...बनाकर। चंच = चंचु, चोंच।

हे मनुष्य! तू क्यों व्यर्थ इस शरीर के सौन्दर्य-प्रसाधन में लगा हुआ है, यह ...जल कर भस्म होने पर धूलि में मिल जायगा। जिस शरीर को आज चोवा और ...न निर्मित अंगरागों से सजा रहे हो वह मृत्यूपरान्त चिता पर लकड़ी के साथ ...ता है। अनेक भाँति के प्रयत्न करने पर जिस शरीर को परिपुष्ट किया है वह ...तो अग्नि में जलता है अथवा लोमड़ी (आदि जंगली जानवर) ही खाती है। ...न शीश पर बड़े गौरव से साफे की पाग बनाकर धारण करते हो उसे कौए अपनी ...ं से कुरेदते हैं। अतः इस शरीर का शृंगार-प्रसाधन वृथा और इस जीवन की ...ृत्युपर्यन्त ही सीमित है। अतः यह कृत्य मिथ्या है, केवल ब्रह्म में अपनी वृत्तियां ...नी चाहिए—ऐसा कबीर का विचार है।

धंन धंधा व्यौहार सब, माया मिथ्या वाद।
पांणीं नीर हलूर ज्यूं, हरि नांव बिना अपवाद ॥टेक॥
इक रांम नांम निज साचा, चित चेति चतुर घट काचा।
इस भरमि न भूलसि भोली, बिधनां की गति है औली॥
जीवते कूं मारन धावै, मरते कौं बेगि जिलावै।
जाकै हुंहि जम से बैरी, सो क्यूं सोवै नींद घनेरी॥
जिहि जागत नींद उपावै, तिहिं सोवत क्यूं न जगावै।
जलजंत न देखिसि प्रांनीं, सब दीसै झूठ निदांनीं॥
तन देवल ज्यूं धज आछै, पड़ियां पछितावै पाछै।
जीवत ही कछू कीजै, हरि रांम रसांइन पीजै॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रांम नांम निज सार है, माया लागि न खोई।
अंति कालि सिरि पोटली, ले जात न देख्या कोई॥
कोई ले जात न देख्या, बलि बिक्रम भोज ग्रस्टा।
काहू कै संगि न राखी, दीसै बीसल की साखी॥
जब हंस पवन ल्यौ खेलै, पसरयौ हाटिक जब मेलै।
मानिख जनम अवतारा, नां ह्वै है बारंबारा॥
कबहूँ है किसा बिहांना, तर पंखी जेम उडांनां।
सब आप आप कूं जांई, को काहू मिलै न भाई॥
मूरिख मनिखा जनम गंवाया, वर कोडी ज्यूं डहकाया।
जिहि तन धन जगत भुलाया, जग राख्यौ परहरि माया॥
जल अंजुरी जीबन जैसा, ताका है किसा भरोसा।
कहै कबीर जग धंधा, काहे न चेतहु अंधा॥ ९६॥

ब्यौहार सब=समस्त क्रिया कलाप। मिथ्यावाद=मृण्मय, अनित्य, नाशवान्। घट=इसका अर्थ यहां मन। औली= विचित्र, अनुपम। घनेरी=गहरी, अचेत। जलजन्त=जलजन्तु, जल के जीव। देवल=मन्दिर। धज=ध्वज। हाटिक=स्वर्ण। मानिख=मनुष्य। विहांना=वहाना। डहकाया=खो दिया। अंजुरी=अंजलि।

कबीर कहते हैं कि इस जगत् का समस्त कार्य-कलाप और प्रत्येक गति-विधि मिथ्या है। इनकी सत्ता पानी के समान हल्की है। प्रभु-नाम के बिना यह संसार व्यर्थ है अथवा प्रभु-नाम, अर्थात् भक्ति का ही कर्म इस संसार में मिथ्या नहीं है, अन्यथा सब-कुछ नाशवान् है।

हे मनुष्य! तू हृदय में सावधान हो जा क्योंकि मन बड़ा अस्थिर है। संसार में प्रभु नाम ही एकमात्र सत्य है। तुम इस संसार के माया-मोह—भ्रम—में मत पड़ना। ईश्वर की गति बड़ी विचित्र है। यह उसी की सामर्थ्य है कि वह जीवित का अस्तित्व क्षण भर में समाप्त कर दे और मृतक को पुनः जीवन-दान दे-दे। जिस जीव की—मनुष्य की मृत्यु शत्रु है, उसे गहरी नींद में अचेत ही नहीं सोना चाहिए, अज्ञान में नहीं पड़ना चाहिए। हे प्रभु! यदि आप जीवात्मा को ऐसी कुमति प्रदान करते हो कि वह अज्ञानग्रस्त ही संसार में पड़ जाता है तो आप उसे ऐसी चेतना क्यों नहीं देते कि वह ज्ञान से अज्ञान की ओर, संसार से भक्ति की ओर प्रवृत्ति से निवृत्ति की ओर चले। मनुष्य जल में पड़े हुए कीटाणुओं को नहीं देख सकता, इसी भाँति विषयानन्द स्थित नाश की वह कल्पना नहीं करता है, ये क्षणिक आनन्द प्रत्यक्ष में ही आनन्द दृष्टिगत होते हैं, वैसे ये विनाशसाधन हैं। इस शरीर में ही ब्रह्म का निवास

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

—है जो अपनी ध्वजासहित गौरव से स्थित है। इसलिए अपनी वृत्तियों मुखी कर लो, कभी जीवन-संध्या निकट होने पर व्यर्थ पछताओ। प्रभु नाम संसार में सत्य है, माया के फेर में पड़कर तुम इसे विनष्ट मत करो। धन का है क्योंकि मृत्यु के समय इसे कोई यहां से नहीं ले जाता। बलि, विक्रम भोज जैसे भी अपना समस्त धन-वैभव यहीं छोड़ गये, फिर तुम्हारी तो बात ? यह सम्पत्ति कभी किसी के साथ नहीं गई, इसकी साक्षी बीसलदेव ने भी जब आत्मा प्राणायाम साधना द्वारा शून्य में लय होती है, तभी उसे शून्य-के मोती—स्वर्ण— (आनन्द की अतुलित राशि) प्राप्त होते हैं। यह मनुष्य बारम्बार प्राप्त नहीं होता, अतः इसे व्यर्थ मत खोओ। तब तुम किसे दोष प्राण किसी तरुवरवासी पक्षी के समान उड़ जायेंगे ? सब मनुष्य अपनी साधना में अनुरक्त हैं, प्रभु-मिलन की चिन्ता किसी को भी नहीं। हे मूर्ख, ! तुमने यह अमूल्य मनुष्य-जन्म कौड़ी तुल्य मूल्य पर दे दिया, खो दिया। और सम्पत्ति मोह में पड़ संसार अपने वास्तविक कर्तव्य—प्रभु-भक्ति—को कर रहा है। संसार में माया का परित्याग कर ही रहना चाहिए। जीवन में भरे जल, जो जब चाहे तब समाप्त हो सकता है और प्रतिक्षण कम होता है, की भांति है। कबीर कहते हैं कि यह संसार केवल पाप-मय ही है हे अज्ञानी जीवात्मा तू सावधान हो प्रभु-भक्ति क्यों नहीं करता ?

विशेष—१. रूपक, उपमा आदि अलंकार।

२. पंजाबी भाषा के अनुसार शब्दरूपों का प्रयोग यथा—"भूलसि'।

३. टेक की दूसरी पंक्ति में 'पाणीं नीर' में पुनरुक्ति।

४. "जल अंजुरी जीवन जैसा" उपमा बड़ी सार्थक एवं सौन्दर्यमयी है। इस उपमा को रख कबीर ने जीवन की क्षणिकता और प्रतिपल होते नाश को बड़ी कुशलता से व्यक्त कर दिया है।

५. ऐतिहासिक व पौराणिक नाम—

बलि—एक प्रसिद्ध प्रतापी, दानी राजा जिसे विष्णु ने वामन रूप धर उनकी शीलता को बट्टा लगाने के लिए छला था। ये विरोचन के पुत्र और प्रह्लाद के कहे जाते हैं।

विक्रम—यह भी एक बड़े प्रतापी और प्रसिद्ध राजा हुए हैं, विक्रम संवत् के स्थापक भी आप ही हैं। आपके विषय में सिंहासन बत्तीसी और अनेक दन्तकथायें हुई हैं।

भोज—'कबीरबीजक' में आपके विषय में निम्न विवरण दिया हुआ है—

"यह उज्जैन के राजा थे जिन्होंने अपनी राजधानी धारा नगरी बनाई थी।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इनके पिता इन्हें छोड़कर बाल्यकाल में ही स्वर्ग सिधार गये थे। अतः इनका चाचा मुंज राजा हुआ। पहले मुंज इन्हें बड़े प्रेम से देखता था, परन्तु एक दिन यह उस पाठशाला को जिसमें भोज पढ़ता था देखने गया, वहां भोज की विद्या-चातुरी को देखकर दंग रह गया। पण्डितों ने भी भोज की बड़ी प्रशंसा की। मुंज सोचने लगा कि कुछ दिनों के बाद तो लोग भोज को ही राजा बनायेंगे, अतः मन्त्री को बुलाकर सारा ब्यौरा बतलाया और आज्ञा दी कि इसे वन में ले जाकर मार डालो और सिर काट कर मेरे पास लाओ। इस निमित्त मन्त्री ने भोज को वन में ले जाकर ज्यों ही हाल बतलाया, भोज ने एक श्लोक अपने चाचा को लिखकर मन्त्री को दिया जिसका भावार्थ यह था कि सत्ययुग का राजा मान्धाता, त्रेता के समुद्र पर पुल बांधने वाले और रावण-हन्ता राम, द्वापर के युधिष्ठिर आदि अनेक राजा स्वर्गगामी हुए, परन्तु यह पृथ्वी किसी के साथ नहीं गई, स्यात् अब वह कलियुग में आपके साथ अवश्य जायेगी। मन्त्री ने इससे प्रभावित हो भोज को न मार कर एक बनावटी सिर लाकर मुंज के आगे रखा और वह श्लोक भी दिया जिसे पढ़कर मुंज बहुत पछताया और मरने पर उद्यत हो गया। तब मन्त्री ने सारा रहस्य बतलाया और भोज को राजा मुंज के सामने उपस्थित किया। मुंज ने भोज से अपने अपराध की क्षमा माँगी और उसे गद्दी पर बिठलाकर आप वन को तपस्या करने चले गये। भोज का राज्य प्रबन्ध बहुत ही अच्छा था। धारा नगरी में सुन्दर मकानों और सड़कों को देखकर इन्द्रपुरी का भ्रम हो जाता था। प्रत्येक विद्या की अलग-अलग पाठशालाएं, चिकित्सा के लिए अस्पताल और प्रत्येक प्रबन्ध के लिए अलग-अलग समितियां तथा भवन थे। सारा प्रजावर्ग सन्तुष्ट दिखाई देता था। भोज की राजसभा के पण्डितों की बहुत सी कथाएं भी प्रचलित हैं जिनसे उस समय की संस्कृत विद्या का अन्दाजा लगाया जा सकता है।"

रे चित चेति च्यंति लै ताही,
जा च्यंतत आपा पर नाहीं ।।टेक।।
हरि हिरदै एक ग्यांन उपाया, ताथैं छूटि गई सब माया।
जहां नाद न व्यंद दिवस नहीं राती, नहीं नरनारी नहीं कुल जाती ॥
कहै कबीर सरब सुख दाता, अविगत अलख अभेद बिधाता ।।२६७।।

हे मन ! तू सावधान होकर उस ईश्वर का ध्यान कर जिसके चिन्तन से अहं-परं का भेद विदूरित हो जाता है। प्रभु का हृदय में ध्यान आते ही समस्त माया बन्धन छूट जाता है। प्रभु का ध्यान करने से जिस अनहद नाद की प्राप्ति होती है जिस शून्य-जगत् की उपलब्धि होती है, वहा न तो रात्रि है और न दिन, न कोई नर है न नारी, न जाति कुल का भेद है। कहने का तात्पर्य यह है कि वहां सम अवस्था

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कहते हैं कि वह अलख निरंजन ज्योतिस्वरूप परमात्मा समस्त सुख-
है।

सरवर तटि हंसणीं तिसाई,
जुगति बिनां हरि जल पिया न जाई ।।टेक।।
चाहै तौ लै खग सारी, उडि न सकै दोऊ पर भारी।
लीयें ठाढी पनिहारी, गुंण बिन नीर भरै कैसें नारी ।।
कबीर गुर एक बुधि बताई, सहज सुभाइ मिले रांम राई ।।२९८।।

हंसणीं=आत्मा । तिसाई=प्यासी, तृषित । जुगति=युक्ति, साधना, पीया=पीना । कुंभ=घड़ा । गुण=प्रभु-गुण, नामस्मरण से तात्पर्य ।

प्रभु के हृदयस्थित होते हुए भी आत्मा उसके दर्शन के लिए व्याकुल है, यह ति है जैसे सरोवर के तट पर भी हंसनी प्यासी रहती हो । वस्तुतः साधना के प्रभु-भक्ति का जल नहीं पिया जा सकता । हे जीवात्मा ! यदि तू इस जल करना चाहती है तो अपने पैरों में पड़ी माया-शृंखला को तोड़ दे । मनरूपी प्रभु का वास है उसे पनिहारिन—शरीर—धारण किये हुए है किन्तु आत्मा स्मरण विना उसका पान नहीं कर सकती । कबीरदास जी कहते हैं कि ने ब्रह्म प्राप्ति का एक उत्तम उपाय बता दिया है, वह है सहज साधना ।

विशेष—रूपकातिशयोक्ति अलंकार ।

भरथरी भूप भया बैरागी।
बियोगि बनि बनि ढूंढै, वाकी सुरति साहिब सौं लागी ।।टेक।।
ती घोड़ा गांव गढ गूडर, कनड़ा पा इक आगी।
गी हूवा जांणि जग जाता, सहर उजीणीं त्यागी ।।
सिघासण चवर ढुलंता, राग रंग बहु आगी।
रमैंणी रंभा होती, तासौं प्रीति न लागी ।।
बीर गाढा पग रोप्या, इह बिधि माया त्यागी।
सुख छाडि भज्या इक साहिब, गुरु गोरख ल्यौ लागी।
सा बाचा हरि हरि भाखै, गंध्रप सुत बड भागी।
कबीर कुदर भजि करता, अमर भणे अणरागी ।।२९९।।

भूप=राजा, नृप । सुरति=लय, लगन । साहिब=स्वामी, ब्रह्म । हसती= गूडर=गढ़ी, किले का छोटा रूप । उजीणीं=उजाड़ । गाढ़ा=दृढ़ । =लगाया ।

कबीर कहते हैं कि राजा भर्तृहरि के प्रभु-भक्ति मार्ग अपनाने पर वह वन- की खोज में भटकते रहे । वास्तव में जो योगी हो जाता है उसे समस्त

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

संसार जान जाता है। उस विरक्त के लिए हाथी, घोड़ा, ग्राम, किला, गढ़ी, स्व अग्नि आदि ऐश्वर्य उपकरणों में कोई आकर्षण शेष नहीं रह जाता। उस माया-त्य के लिए तो नगर भी उजाड़ ही होता है। उस साधक को छत्र, सिंहासन, चंवर ध करने अथवा अन्य ऐश्वर्य साधनों में तथा कामोपभोग के साधन—सुन्दरी, शय्या मधुर संगीत में उसके लिए कोई रस नहीं रह जाता है। साधक-शूर माया त्य लिए बड़ा साहसपूर्ण पग उठाता है। वह समस्त सुखों का परित्याग कर सदगुरु प्रदर्शित मार्ग का ही अवलम्बन करता है। जिन लोगों ने मन, वाणी और कर्म से का भजन किया है वे बड़े भाग्यशाली हैं। कबीर कहते हैं कि उस ब्रह्म का करने से साधक अमर हो जाता है।

विशेष—१. टेक के पश्चात् प्रथम पंक्ति में पुनरुक्ति दोष है किन्तु जैसा पहले कहा जा चुका है कि कबीर इस दोष में दोषी नहीं; 'मसि कागद छुआ कलम गह्यौ नही हाथ' वाले संत की ढपली की लय में जो शब्द ठीक बैठा वह कह दिया।

२. **भरथरी**—"यह उज्जैन के राजा थे जिन्हें अपनी रानी पिंगला का च देखकर वैराग्य उत्पन्न हो गया था, अतः ये अपना सारा राज-पाट अपने विक्रमादित्य को देकर योगी होकर वन में चले गये थे—कबीर बीजक।

गोरखनाथ—ये नाथ सम्प्रदाय के प्रवर्तक एवं नौ नाथों में सर्वप्रमुख जाते हैं। कबीर ने अनेक स्थलों पर सद्गुरु के प्रतीक रूप में इस नाम का उल् किया है।

सार सुख पाईये रे, रंगि रमहु आत्मांरांम ॥टेक॥
बनह बसे का कीजिये, जे मन नहीं तजै बिकार।
घर बन तत समि जिनि किया, ते बिरला संसार ॥
का जटा भसम लेपन कियें, कहा गुफा मैं बास।
मन जीत्यां जग जीतिये, जौ विषया रहै उदास ॥
सहज भाइ जे ऊपजै, ताका किसा मांन अभिमांन।
आपा पर समि चीनियैं, तब मिलै आतमांरांम ॥
कहै कबीर कृपा भई, गुर ग्यांन कह्या समझाइ।
हिरदै श्री हरि भेटियै, जे मन अनतै नहीं जाइ ॥३००॥

सार=समस्त। रंगी=प्रभु-भक्ति का रंग। बनह=वन में। बिकार=प पंच विकार—काम, क्रोध, मद, लोभ मोह। उदास=विरक्त। भाइ=भा आतमांरांम=ब्रह्म। अनतै=अन्यत्र।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कबीर कहते हैं कि हे मन ! प्रभु भक्ति में अपनी वृत्तियाँ केन्द्रित कर देने से ...ओं की प्राप्ति होती है। वन में तपस्या करने से तब तक क्या लाभ जब तक ...-विकारों का परित्याग नहीं करता। जो साधक घर और वन, सुख-दुख को ...समझते हैं वे तो संसार में विरले ही हैं। विरक्त होकर जटा धारण करने और ...टने से कोई लाभ नहीं—जो साधक मन की वृत्तियों को नियन्त्रित कर विषय-... दूर रहता है वही सच्चा साधक है। सहज साधना से जिस ब्रह्म की प्राप्ति ...ह मानापमान से परे है। अहं-पर -की भावना का परित्याग करने से ही ...की प्राप्ति होती है। कबीर कहते हैं कि मुझ पर सद्गुरु की कृपा हो गई ...न्होंने परम ज्ञान का उपदेश मुझे प्रदान किया जिससे हृदयस्थित ब्रह्म का ...त हो गया और अब मन अन्यत्र न भटक कर प्रभु में ही लीन रहता है।

है हरि भजन कौ प्रवांन।
नींच पांवै ऊँच पदवी, बाजते नींसान ।।टेक।।
भजन कौ प्रताप ऐसो, तिरे जल पाषान।
अधम भील अजाति गनिका, चढ़े जात बिवांन ।।
नव लख तारा चलै मंडल, चलै ससिहर भांन।
दास धूकौं अटल पदवी, रांम को दीवांन ।।
निगम जाकी साखि बोलैं, कहैं संत सुजांन।
जन कबीर तेरी सरनि आयौ, राखि लेहु भगवांन ।।३०१।।

...भु भजन महिमा का प्रमाण ऐसा है कि नीच व्यक्ति भी उच्चतम पद प्राप्त ...है और उसके यहाँ ऐश्वर्यसूचक नगाड़े बजने लगते हैं। ईश्वर भजन का ...कि जल पर पत्थर भी तैरने लगते हैं। नीच भीलनी शबरी एवं वेश्या तक ...भक्ति के द्वारा स्वर्गारोहण के लिए विमान प्राप्त हुए। राम भक्त के सम्मा-...लाख नक्षत्रगण एवं चन्द्र और सूर्य चले। ब्रह्म वास्तव में ऐसा ही अनुपम ...गण कहते हैं कि वेदादि धर्मग्रन्थ भी उसकी अनुपमता की साक्षी देते हैं। हे ...स कबीर आपकी शरण में आया है उसे आप शरण देकर रख लें।

विशेष—१. इस पद में कबीर का ध्यान बहुत से पौराणिक आख्यानों की ...है—'तिरे जल पाषाण' में राम के सागर पर पुल बांधने, 'अधम भील' में ...की कथा की ओर संकेत है।

२. सूरदास के निम्न पद से तुलना कीजिए—
"अविगत गति कछु कहत न आवे।"

चलौ सखी जाइये तहां, जहां गयें पांइयें परमांनंद ।।टेक।।
यहु मन आमन धूमनां, मेरौ तन छीजत नित जाइ।
च्यंतामणि चित चोरियो, ताथैं कछू न सुहाइ ।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सुंनि सखी सुपिनें की गति ऐसी, हरि आये हम पास।
सोवत ही जगाइया, जागत भये उदास॥
चलु सखी बिलम न कीजिए, जब लग सांस सरीर।
मिलि रहिये जगनाथ सूं, यूं कहै दास कबीर॥३०२॥

कबीर आत्मा को सम्बोधित कर कहते हैं कि हे सखी उस शून्य स्थल चल जहां पूर्णानन्द स्वरूप ब्रह्म की प्राप्ति होती है। इस मन की गति धूएं के स चंचल और अस्थिर है, शरीर वासनारत रहने के कारण दिन प्रति-दिन क्षीण हो जा रहा है। सर्वकामना पूर्ण करने वाली चिंतामणि के तुल्य प्रभु में वृत्तियाँ लगने मुझे संसार में और कुछ अच्छा नहीं लग रहा है। अब कवि अपने प्रिय के साक्षात्का महामिलन का वर्णन करता कहता है कि हे सखी ! स्वप्न में मुझे प्रभु के द प्राप्त हुए किन्तु शीघ्र ही मेरी निद्रा खुल गई और पुनः वही वियोग-वेदना शेष गयी। अतः हे सखी ! अब तू उस प्रियतम की खोज के लिए देर मत कर। जब शरीर में प्राण है, जीवन है, तब तक उस प्रभु से मिलने का प्रयत्न कर—भक्त क का यही उपदेश है।

विशेष—निद्रा में प्रिय-मिलन वर्णन करने की परिपाटी कवियों को अते रही है, विद्यापति, देव आदि ने भी इसका वर्णन किया है यथा —

"सोय गये भाग मेरे जागि वा जगन में।" देव

मेरे तन मन लागी चोट सठौरी।
बिसरे ग्यांन बुधि सब नाठी, भई बिकल मति बौरी॥टेक॥
देह बदेह गलित गुन तीनूं, चलत अचल भई ठौरी।
इत उत जित कित द्वादस चितवत, यहु भई गुपत ठगौरी॥
सौई पें जानें पीर हमारी, जिहि सरीर यहु ब्यौरी।
जन कबीर ठग ठग्यौ है बापुरौ, सुंनि संमानी त्यौरी॥३०३॥

मेरा अन्तर-बाह्य सब प्रभु की प्रेम-पीर से विंधा हुआ है जिससे समस्त ज्ञा विज्ञान एवं विवेक नष्ट हो गया है और मैं प्रभु के लिए आकुल-व्याकुल हूं। अब अपने शरीर की भी सुधि नहीं रही है तथा मेरे लिए सत, रज, तम,—त्रि त्मक संसार की समाप्ति हो चुकी है। मैं जिधर भी देखता हूं उधर द्वादश आ के प्रकाश से परिपूर्ण ईश्वर का दर्शन होता है—यह एक प्रकार से गुप्त रूप जादू सा हो गया। मेरी व्यथा का अनुमान वही कर सकता है जो स्वयं इस प्रेम- से विद्ध हो। प्रभु-प्रेम पीर से पागल भक्त कबीर की लगन, समस्त चि वृत्तियाँ अब शून्य में ही केन्द्रित हो गईं, जहां प्रभु का वास है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विशेष—१. टेक की पंक्तियों से तुलना कीजिए—
"इश्क नाजुक मिजाज है अक्ल का बोझ उठा नहीं सकता।"
२. ब्रह्म का द्वादश आदित्यों के प्रकाश से परिपूर्ण होना गीता आदि अनेक
में बताया गया है।

मेरी अंखियां जान सुजांन भई।
देवर भरम सुसर संग तजि करि, हरि पीव तहां गई ॥टेक॥
बालपनें के करम हमारे, काटे जांनि दई।
बांह पकरि करि कृपा कीन्हीं, आप समींप लई॥
पानीं की बूंद थें जिनि प्यंड साज्या, ता संगि अधिक करई।
दास कबीर पल प्रेम न घटई, दिन दिन प्रीति नई ॥३०४॥

मेरे नेत्र प्रभु दर्शन द्वारा एक नवीन प्रकाश से परिपूर्ण हो गये हैं। सांसारिक ...न्धों का परित्याग कर अब वे वहीं चले गये हैं जहां परमात्मा का निवास है। ...यह है कि अब मैंने प्रभु-भक्ति मार्ग को ग्रहण कर लिया है। अज्ञानावस्था में ...पाप कर्म मैंने किये थे प्रभु ने उन्हें विस्मृत कर मुझे अपना लिया। जिस प्रभु ने ...की एक बूंद से इस सुन्दर शरीर का निर्माण किया उससे प्रेम करना, उसका ...न करना हमारा परम कर्त्तव्य है। कबीर कहते हैं कि उस प्रभु से मेरा प्रेम दिन-दिन बढ़ता ही है घटता नहीं है।

हो बलियां कब देखोंगा तोहि।
अह निस आतुर दरसन कारनि, ऐसी ब्यापै मोहि ॥टेक॥
नैंन हमारे तुम्ह कूं चांहैं, रती न मानैं हारि।
बिरह अगिन तन अधिक जरावै, ऐसी लेहु बिचारि॥
सुनहुं हमारी दादि गुसांई, अब जिन करहु बधीर।
तुम्ह धीरज मैं आतुर स्वामीं, काचै भांडै नीर॥
बहुत दिनन के बिछुरे माधौ, मन नहीं बांधै धीर।
देह छतां तुम्ह मिलहु कृपा करि, आरतिवंत कबीर ॥३०५॥

बलियां=स्वामी। रती=रत्ती, तनिक भी। दादि=पुकार। बधीर=...। आरतिवंत=आर्त, दुखी, विपत्तिग्रस्त।

कबीर कहते हैं कि हे प्रभु! मुझे कब आपका दर्शन प्राप्त होगा आप ...दर्शनाभाव में मैं नित्य-प्रति प्रति प्रहर व्याकुल रहता हूं। मेरे नेत्र ...कुलता-पूर्वक आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं, वे तनिक भी अपने प्रतीक्षा पथ ...नहीं हटे हैं। आप मन में हमारी दयनीय अवस्था को विचार कर ...ये कि किस प्रकार विरहाग्नि से मैं अहर्निश दग्ध होता हूं। हे करुणा-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

निधान ! आप मेरी पुकार सुनकर दया कीजिए, अब कृपा करने में तनिक भी विलम्ब मत कीजिए । हे प्रभु ! आप धैर्य के साक्षात् स्वरूप हैं और मैं आतुरता का पुतला । वस्तुतः मेरा अस्तित्व तो कच्चे पात्र में भरे हुए जल के समान है जो चाहे तब विनष्ट हो सकता है । हे माधव, प्रभु ! मेरा और आपका वियोग बहुत समय से है, अतः मन आपके मिलनार्थ अधीर हो रहा है । अब शरीर क्षीण हो जा रहा है अतः दुखी कबीर को आप शीघ्र दर्शन दीजिए ।

विशेष—१. रूपक, दृष्टांत आदि अलंकार ।

२. यहां कबीर में सगुण भक्त के समान आतुरता दृष्टिगत होती है ।

३. बहुत दिनन·········धीर " में 'अशांशी' की पुष्टि हुई है ।

वै दिन कब आवैंगे माइ ।
जा कारनि हम देह धरी है, मिलिबौ अंगि लगाइ ।।टेक।।
हौं जांनूं जे हिल मिलि खेलूं, तन मन प्रांन समाइ ।
या कांमनां करौ परपूरन, समरथ हौ रांम राइ ।।
मांहि उदासी माधौ चाहै, चितवत रैंनि बिहाइ ।
सेज हमारी स्यंघ भई है, जब सोऊं तब खाइ ।।
यहु अरदास दास की सुंनिये, तन की तपति बुझाइ ।
कहै कबीर मिलै जे सांई, मिलि करि मंगल गाइ ।।३०६।।

कबीर यहां अपने प्रियतम से मिलन की व्याकुलता को प्रदर्शित करते कहते हैं कि हे सखि ! वह दिवस कब आयेगा जब इस जन्म का प्रयोजन सफलीभूत हो प्रिय से साक्षात्कार होगा ? मैं तब अपनें प्रियतम से एकमेक हो अनेक प्रेम-क्रीड़ाएं करूंगी । हे स्वामी ! आप मेरी इस कामना को शीघ्र ही पूर्ण कर दो क्योंकि आप तो सब भांति समर्थ हो । मैं इस संसार से विरक्त हो नित्य-प्रति अहर्निशि आपको ही देखना चाहता हूं । आपके वियोग में मुझे शय्या सिंह के समान भयानक लगती है और जब उस पर सोने का उपक्रम करता हूं तो वह काटने को दौड़ती है । हे प्रभु ! आप भक्त कबीर की यह विनती सुन लीजिए कि मेरे शरीर का विरह-ताप समाप्त कर दो । कबीर कहते हैं कि सब मनुष्य मिलकर प्रभु का गुणगान करो जिससे शीघ्र उनका दर्शन लाभ हो ।

विशेष—१. नामस्मरण का महत्व अन्तिम चरण में अभिव्यक्त हुआ है ।

२. इस पद में कबीर की विरहिणी आत्मा 'वासकसज्जा' नायिका के समान प्रियतम की प्रतीक्षा करती है ।

बाल्हा आव हमारे ग्रह रे, तुम्ह बिन दुखिया देह रे ।।टेक।।
सब को कहै तुम्हारी नारी, मोकौं इहै अदेह रे ।
एकमेक ह्वै सेज नं सोवै तब लग कैसा नेह रे ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आन न भावै नींद न आवै, ग्रिह बन धरै न धीर रे।
ज्यूं कांमीं कौं कांम पियारा, ज्यूं प्यासे कूं नीर रे॥
है कोई ऐसा पर-उपगारी, हरि सूं कहै सुनाइ रे।
ऐसे हाल कबीर भये हैं, बिन देखे जीव जाइ रे॥३०७॥

हे प्रभु ! आप आकर शीघ्र दर्शन दीजिए। आपके बिना यह शरीर विरह-
हो रहा है। सब मुझे आपकी पत्नी कहते हैं—यही तो मेरे लिए असह्य है कि
अर्धांगिनी होते हुए भी आपसे अलग हूं। जब तक पूर्ण तादात्म्य न हो, तन-
दोनों एक होकर हम शय्या-लाभ न करें तब तक प्रेम कैसा ? वियोगी आत्मा को
के अतिरिक्त और कुछ अच्छा ही नहीं लगता, उसकी निद्रा भी भाग गई
घर-वन कहीं भी उसकी वृत्ति नहीं रमती। मुझे आप उतने ही प्रिय हैं जितना
पुरुष कों काम-पूर्ति के साधन—स्त्री और संगीत आदि, एवं तृषावन्त को जल।
ऐसा परोपकारी व्यक्ति भी है जो प्रभु से मेरी व्यथा का कथन कर सके। कबीर
स्थिति अब ऐसी हो गई है कि आपके दर्शनों के बिना यह जीवित नहीं रह
ना।

विशेष—१. वियोग की दशम अवस्था की सूचना इस पद में प्राप्त
है।

२. तुलसी से तुलना कीजिए—
"कामी जिमिहिं नारि प्रिय, ऐसेइ मोहि तुम राम।"

३. उपमा अलंकार।

माधौ कब करिहौ दया।
कांम क्रोध अहंकार व्यापै, नां छूटै माया॥टेक॥
उतपति व्यंद भयो जा दिन थैं कबहूँ सच नहीं पायौ।
पंच चोर संगि लाइ दिए हैं, इन संगि जनम गंवायौ॥
तन मन डस्यौ भुजंग भामिनीं, लहरी वार न पारा।
सो गारड़ू मिल्यौ नहीं कबहूं पसर्‌यौ विष बिकराला॥
कहै कबीर यहु कासूं कहिये, यह दुख कोइ न जानैं।
देहु दीदार बिकार दूरि करि, तब मेरा मन मांनैं॥३०८॥

सच=शान्ति, सुख। पंच चोर=काम,क्रोध, मद, लोभ, मोह। गारड़ू=
। दीदार=दर्शन।

हे प्रभु अब आप दयाकर दर्शन दीजिए क्योंकि मुझे काम, क्रोध एवं अहंकार
कर रहे हैं तथा माया-बन्धन नहीं छूटता। जिस समय से मैंने जीवन धारण
है तभी से कभी सुख शान्ति लाभ नहीं किया। मैंने समस्त जीवन काम, क्रोध

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मद, लोभ, मोह पंच चोरों के साथ रहकर व्यर्थ नष्ट कर दिया। स्त्री रूपी सर्पिणी ने तन-मन को अपने विषय-वासना-विष से डस लिया है उसके विष की कोई सीमा नहीं जिससे मेरा अंग-प्रत्यंग जल रहा है। वह गरुड़—सद्गुरु—मुझे अब तक प्राप्त न हो सका जो इस विष को उतार देता। कबीर कहते हैं कि मैं अपनी व्यथा का वर्णन किससे करूं, मेरी वेदना से कोई भी परिचित नहीं। हे प्रभु ! इन विषय-विकारों को विदूरित कर आप दर्शन दीजिए तभी मेरा मन शान्ति लाभ करेगा।

मैं जन भूला तूं समझाइ।
चित चंचल रहै न अटक्यौ, विषै बन कूं जाइ ।।टेक।।
संसार सागर मांहि भूल्यौ, थक्यौ करत उपाइ।
मोहनी माया बाघनीं थैं, राखि लै रांम राइ ।।
गोपाल सुनि एक बीनती, सुमति तन ठहराइ।
कहै कबीर यहु कांम रिप हैं, मारै सबकूं ढाइ ।।३०६।।

रिप=रिपु, शत्रु।

कबीर कहते हैं कि हे प्रभु ! मैं संसार-भ्रम में पड़ा हुआ हूं, इससे आप ही मुक्त कर सकते हैं। मेरा चंचल मन स्थिर नहीं रहता, रोके रहने पर भी विषय-वासना-वन में भटकने के लिए पहुंच जाता है। मुझे भवसागर में पथ-विभ्रम हो गया है और इससे पार पाने के उपक्रम करते-करते मैं परिश्रान्त हो गया हूं। हे राम ! मुझे आप इस मोहिनी जैसी सुन्दर बाघिनी माया से बचा लो। हे नाथ ! मेरा निवेदन सुन इस शरीर—मन—को स्थिर कर दीजिए। भाव यह है कि ऐसी सद्बुद्धि प्रदान कीजिए कि मेरा मन विषय-वासना के आकर्षणों में न भटके। कबीर कहते हैं कि काम सबका शत्रु है जो सबको नष्ट कर रहा है।

विशेष—१. रूपक, अनुपास, आदि अलंकार।

२. कबीर ने यहां अपने निर्गुण ब्रह्म के लिए अवतारी नामों का प्रयोग किया है।

भगति बिन भौजलि डूबत है रे।
बोहिथ छाडि बैसि करि डूंडै,
बहुतक दुख सहै रे ।।टेक।।
बार बार जम पें डहकावै, हरि कौ ह्व न रहै रे।
चेरी के बालक की नाईं, कासूं बात कहै रे ।।
नलिनीं के सुंवटा की नांईं, जग सूं राचि रहै रे।
बंसा अगनि बंस कुल निकसै, आपहि आप दहै रे ।।
यहु संसार धार मैं डूबै, अधफर थाक रहै रे।
खेबट बिनां कवन भौ तारै, कैसें पार गहै रे ।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दास कबीर कहै समझावै, हरि की कथा जीवै रे।
रांम कौ नांव अधिक रस मीठौ, बारंबार पीवै रे ॥३१०॥

भौजलि=भव-जल । बोहिथ=बोहित, पुराने समय का पालों से चलने ...ा जहाज । चेरी=दासी । राचि=अनुरक्त । बंसा=बांस । भौ=भव, ...सागर ।

भक्ति के सम्बल विना जीवात्मा इस संसार-सागर में डूब जायेगी जिस प्रकार ...ज का पक्षी जहाज का आश्रय छोड़कर अनेक दुख सहता है और अन्त में पुनः ...ज पर ही आता है, वही अवस्था मेरी है कि मैं आप से वियुक्त हूं, संसार तापों ...ुलस रहा हूं । यम बारम्बार आवागमन के चक्र में डाल व्यथित करता है। प्रभु ...ा इस दुख से त्राण नहीं । जिस भांति दासी-पुत्र अपनी व्यथा को (माँ के ...तिरिक्त) किसी से नहीं कह सकता क्योंकि कोई भी उसकी व्यथा-कथा को सुनने ...ा नहीं है, उसी भांति मैं अपना दुख आपके अतिरिक्त और किससे कहूं ? जिस ...ार नलिनी का तोता यह जानते हुए भी कि इस लकड़ी को पकड़ने से मुझे दुख ...ा, मेरा अस्तित्व इससे गिरने से समाप्त हो सकता है, उसे पकड़े रहता है उसी ...ति यह जानते हुए कि विषय-वासना मेरे नष्ट होने का कारण है, मैं उन्हीं में अनुरक्त ...ता हूं एवं इस प्रकार मैं वैसे ही नष्ट हो जाता हूं जैसे बांस समूह अपनी ही अग्नि ...ं विनष्ट हो जाता है। इस संसार-सागर की धारा के मध्य में डूब मैं बिल्कुल थक ...ा हूं अब किधर को भी नहीं जा सकता । अब बिना खिवैया के मेरी नौका संसार-...ागर के पार नहीं उतर सकती। कबीरदास जी संसार को समझा रहे हैं कि इस ...ंसार में प्रभु-भक्ति ही एकमात्र जीवनाधार है। राम-नाम के मीठे रस को बारम्बार ...ीना ही श्रेयस्कर है।

विशेष—१. टेक के भाव की तुलना कीजिए—

"मेरो मन अनत कहां सुख पावै ।
जैसे उड़ि जहाज कौ पंछी पुनि जहाज पै आवै ।"

२. 'नलिनी के सुवटा' का उपमान सब ही भक्त कवियों को बड़ा प्रिय रहा ...है, सूर, तुलसी एवं कबीर आदि ने अनेक स्थलों पर इसका प्रयोग किया है।

३. रूपक, उपमा, उदाहरणमाला आदि अलंकार ।

चलत कत टेढौ टेढौ रे ।
नऊं दुवार नरक धरि मूंदे, तू दुरगंधि कौ वंढौ रे ।।टेक।।
जे जारैं तौ होइ भसम तन, रहित किरम जल खाई ।
सूकर स्वांन काग कौ भखिन, तामैं कहा भलाई ।।
फूटे नैंन हिरदै नाहीं सूझै, मति एकै नहीं जांनीं ।
माया मोह ममिता सूं बांध्यौ, बूडि मूवौ बिन पांनीं ।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बारू के घरवा मैं बैठो, चेतत नहीं अयांनां।
कहै कबीर एक रांम भगती बिन, बूडे बहुत सयांनां ।।३११।।

कबीर मन को प्रताड़ना देते हुए कहते हैं कि तू कुचाल क्यों चलता है ? नौ द्वार तुझे नरक में ढकेल रहे हैं और तू अपने पाप-कर्मों से केवल मात्र दुर्गन्ध की, घृणा की, ढेरी बन गया है। यदि मैं अपने इस शरीर को जलाता हूं तो जीवन का अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है और यदि इसे धारण करता हूं तो कर्म-विपाक से यह प्रतिदिन नष्ट हो रहा है। सुअर, कुत्ते एवं काग के समान ही यदि मनुष्य भी अभक्ष्य को ग्रहण करने लगे तो मानव-जीवन की श्रेष्ठता और सार्थकता भी क्या ? अतः मनुष्य को सुअर, स्वान एवं काग जैसे निकृष्ट व्यवहार नहीं करने चाहिएं। अब मैं ऐसा अज्ञानांध हो गया हूं कि मुझे कुछ नही सूझता तथा मति, विवेक जैसी किसी भी चीज से मेरा परिचय नहीं रह गया है, अब मैं माया, मोह, ममता आदि में बधकर अधःपतन के गर्त में डूब रहा हूं—इस प्रकार बिना पानी के ही मैं डूब रहा हूं। मैं आज भी सावधान हो प्रभु-भजन नहीं करता क्योंकि इस संसार में अस्तित्व बालू के घर के समान क्षणिक है। कबीर कहते हैं कि राम-भक्ति के आश्रय बिना इस संसार में बहुत से चतुर व्यक्ति भी डूब गये।

विशेष—विभावना अलंकार।

अरे परदेसी पींव पिछांनि।
कहा भयौ तोकौं समझि न परई, लागी कैसी बांनि ।।टेक।।
भोमि बिडाणी मैं कहा रातौ, कहा कियो कहि मोहि।
लाहै कारनि मूल गमावै, समझावत हूँ तोहि ।।
निस दिन तौहि क्यूं नींद परत है, चितवत नांहीं ताहि।
जंम से बैरी सिर परि ठाढे, पर हाथि कहा बिकाइ ।।
झूठे परपच मैं कहा लागौ, ऊठै नांहीं चालि।
कहै कबीर कछू बिलम न कीजै, कौनैं देखी काल्हि ।।३१२।।

परदेसी=विदेशी, आत्मा। बांनि=आदत। भोमि=भूमि। बिडाणी=इधर उधर करना, तितर-बितर करना, नष्ट करना। लाहे=लाभ।

कबीर अपनी आत्मा को सम्बोधित कर कहते हैं कि हे परदेशी तू अपने प्रियतम (ब्रह्म) को पहचान। तुझे कैसी कुटेव पड़ गई है कि सर्वदा विषय-वासना रत रहती है। नष्ट-भ्रष्ट भूमि पर कुछ नहीं उगाया जा सकता, उसी प्रकार तूने अपने पाप-कर्मों से अपना संसार नष्ट कर लिया है। तू इस मिथ्या लाभ के कारण, जो वास्तव में विषय-वासना के अतिरिक्त कुछ नहीं है, अपने पूर्वसंचित पुण्यों को भी नष्ट कर रहा है। इस विषय-वासना में तुझे रात-दिन चैन नहीं पड़ता और प्रभु की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

...देखता तक नहीं। मृत्यु जैसे भयंकर शत्रु तेरे ऊपर तने खड़े हैं किन्तु तू दूसरों ...थ विक कर असावधान हो रहा है। इस मिथ्या सांसारिक प्रपंच में मत पड़, चल ...भक्ति में लग। कबीर कहते हैं कि ईश्वर भक्ति के इस पुण्य कार्य के ...भ में विलम्ब मत कर, पता नहीं कल, अगले क्षण, हमारा अस्तित्व शेष ...ा या नहीं।

विशेष—अन्तिम चरण से तुलना कीजिए—

"करना है सो आज कर, आज करे सो अब।
पल में प्रलय होयगी, बहुरि करैगा कब॥"—'कबीर'

भयौ रे मन पांहुनडौ दिन चारि।
आजिक काल्हिक मांहि चलैगौ, ले किन हाथ संवारि॥टेक॥
सौंज पराई जिनि अपणावै, ऐसी सुणि किन लेह।
यहु संसार इसौ रे प्रांणी, जैसौ धूंवरि मेह॥
तन धन जोबन अंजुरी को पांनी, जात न लागै बार।
सेंवल के फूलन परि फूल्यौ, गरब्यौ कहा गँवार॥
खोटी खाटै खरा न लीया, कछू न जांनीं साटि।
कहै कबीर कछू बनिज न कीयो, आयौ थौ इहि हाटि॥३१३॥

हे मन! संसार में इस शरीर का अस्तित्व क्षणिक है, शीघ्र ही यह दूसरों ...हाथों पर चलकर श्मशान पहुंचेगा। तू दूसरों की सम्पत्ति को रख क्यों पाप-बोझ ...ता है। यह संसार तो धुएं के बादल और मेघ के समान क्षणिक है। जिस शरीर, ...एवं यौवन का मनुष्य गर्व करता है वह तो अंजलि के जल सदृश क्षणिक अस्तित्व ...हैं जिसके नष्ट होने में पल भर भी नहीं लगता। यह संसार सेंवल के सुमन ...ा निस्सार, थोथा है—इसके ऊपर गर्व करना मूर्खता है। मनुष्य इस संसार में ...कर्मों में ही फंसा रहता है, प्रभु-भक्ति नहीं करता। कबीर कहते हैं कि मैंने इस ...ार रूपी बाजार में आकर सत्कर्मों का व्यापार नहीं किया, और जीवन व्यर्थ ही ...ा गया।

विशेष—तुलसी ने भी संसार की उपमा कबीर के समान 'धुआँ के से धौरहर, ...त ही ढहि जांय" कहकर दी है।

मन रे रांम नांमहि जांनि।
थरहरी थूंनी पर्‌यौ मंरि, सूतौ खूंटी तांनि॥टेक॥
सैंन तेरी कोई न समझै, जीभ पकरी आंनि।
पांच गज दोवटी मांगी, चूंन लीयौ सांनि॥
वैसंदर षोषरी हांडी, चल्यौ लादि पलांनि।
भाई बंध बोलाइ बहु रे, काज कीनौं आंनि॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कहै कबीर या मैं झूठ नांहीं, छाडि जीय की बांनि।
रांम नांम निसंक भजि रे, न करि कुल की कांनि ।।३१४।।

हे मन! तू सर्वदा राम-नाम का स्मरण कर। धैर्य की थूनी एवं सत की खूंटियों के आधार पर राम-नाम का एक मन्दिर बना लो। हे प्रभु! जिह्वा तो अन्य रसों के आस्वादन में लगी हुई है और भक्ति के लिए तेरे इंगित को कोई ग्रहण नहीं कर पाता। पंच-विषयों के प्रसार में इन्द्रियां लगी रहती हैं और इस भाँति प्रेम-वस्त्र को कलंकित कर लेती हैं। यह शरीर रूपी हांडी थोथी है इसके लिए इतने उपक्रम करना व्यर्थ है। सांसारिक पाप-कर्म करने में अन्य सम्बन्धियों का भी सहयोग तूने लेकर उन्हें भी पाप-कर्मों में लिप्त कर लिया। कबीर कहते हैं कि यह असत्य का मार्ग जीवात्मा को छोड़ देना चाहिए एवं निस्संकोच भाव से राम-नाम स्मरण करना चाहिए, इस पुण्य कर्म में बाधक कुलकानि का भी भक्त को परित्याग कर देना चाहिए।

विशेष—जिस भांति आगे चलकर वल्लभ ने भक्ति मार्ग में 'कुल कानि' परित्याग की बात कही, उसे हम कबीर में भी पाते हैं। प्रस्तुत पद के अन्त में इसी भाव की पुष्टि होती है।

प्राणीं लाल औसर चल्यौ रै बजाइ।
मुठी एक मठिया मुठि एक कठिया, संगि काहू कै न जाइ ।।टेक।।
देहली लग तेरी मिहरी सगी रे, फलसा लग सगी माइ।
मड़हट लूं सब लोग कुटंबी, हंस अकेलौ जाइ।।
कहां वै लोग कहां पुर पटण, बहुरि न मिलबौ आइ।
कहै कबीर जगनाथ भजहु रे, जन्म अकारथ जाइ ।।३१५।।

हे मनुष्य! अवसर हाथ से निकला जा रहा है, अतः प्रभु-भक्ति करो। इस शरीर के पोषण-कर्मों में लगे रहने से ही जीवन के कर्तव्यों की इतिश्री नहीं हो जाती, यह मुठ्ठी भर शरीर तो अति अल्प पदार्थों से निर्मित है। हे मनुष्य! सर्वदा तेरे साथ रहने वाली पत्नी, अमित प्यार करने वाली मां और अन्य प्रियजन कोई भी मृत्यु के पश्चात् साथ नहीं जाता, आत्मा अकेले ही चली जाती है। यह संसार के वैभव से पूर्ण नगर-नगरी और ऐश्वर्यशाली लोग पुनः नहीं मिलते, अतः इनसे प्रेम करना वृथा है। कबीर कहते हैं कि हे मानव! तुम प्रभु का भजन करो—अन्यथा यह अमूल्य मानव जीवन व्यर्थ नष्ट हुआ जा रहा है।

रांम गति पार न पावै कोई।
च्यंतामणि प्रभु निकट छाडि करि,
भ्रंमि भ्रंमि मति बुधि खोई ।।टेक।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रिथ बरत जपै तप करि करि, बहुत भांति हरि सोधैं।
कति सुहाग कहौ क्यूं पावै, अछता कंत बिरोधैं॥
ारी पुरिष बसैं इक संगा, दिन दिन जाइ अबोलैं।
जि अभिमान मिलै नहीं पीव कूं, ढूंढत बन बन डोलैं॥
है कबीर हरि अकथ कथा है, बिरला कोई जांनैं।
म प्रीति बेधी अंतर गति, कहूं काहि को मांनैं॥३१६॥

गति=महिमा, रहस्य । सकति=शक्ति । सुहाग=स्वामी । अछता=न, अहं । कंत=स्वामी, ब्रह्म । नारी=आत्मा । पुरिष=परमात्मा । बेधी=र दिया ।

कबीर कहते हैं कि ईश्वर की महिमा का पार कोई नहीं पा सकता । व्यर्थ कों ने माया-भ्रम में पड़ अपना विवेक खो दिया और इस प्रकार सर्वकामना पूर्ण ाले चिंतामणिस्वरूप हृदयस्थित ब्रह्म को विस्मृत कर दिया । तीर्थ, व्रत, जप-ादि विधि-विधानों से प्रभु को खोजने का बहुत प्रयत्न किया समस्त उपक्रम ये । भला शाक्त ब्रह्म को किस प्रकार प्राप्त कर सकते हैं क्योंकि वे मूर्तिपूजक हैं ह्म का इस विधि-विधान से विरोध है । आत्मा और परमात्मा एक ही स्थान त हैं किंतु दोनों के मिलन विना समय व्यर्थ निकला जा रहा है हे। मूर्ख जीव ! ं का परित्याग कर मन में तो प्रभु को खोजता नहीं और व्यर्थ वन-वन भटकता ा है—

"कस्तूरी कुण्डल बसै, मृग ढूंढें वन मांहि ।
ऐसे घट घट राम हैं, दुनिया देखैं नाँहि ॥"

कबीर कहते हैं कि उस प्रभु की कथा अवर्णनीय है, कोई विरला ही उसके को हृदयंगम कर सकता है । मेरे तो अन्तर बाह्य को प्रभु के प्रेम की प्रेम े विद्ध कर दिया है किन्तु मेरी इस विचित्र बात का विश्वास कौन करेगा ?

रांम बिनां संसार धंध कुहेरा,
सिरि प्रगट्या जम का पेरा ॥टेक॥
देव पूजि पूजि हिंदू मूये, तुरक मूये हज जाई।
जटा बांधि बांधि योगी मूये, इन मैं किनहूँ न पाई॥
कवि कवीनें कविता मूये, कापड़ी के दारौं जाई।
केस लूंचि लूचि मूये, बरतिया, इनमैं किनहूँ न पाई॥
धन संचते राजा मूये, अरू ले कंचन भारी।
वेद पढ़ें पढि पंडित मूये, रूप भूले मूई नारी॥
जे नर जोग जुगति करि जांनैं, खोजैं आप सरीरा।
तिनकूं मुकति का संसा नाहीं, कहत जुलाह कबीरा॥३१७॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मनुष्य के शीश पर मृत्यु पग जमाये खड़ी हुई है, अतः राम-नाम के बिना प्रभु-भक्ति के बिना यह संसार धुएं के कोट के समान नष्ट होने वाला है। हिन्दू देवताओं की पूजा करते-करते मर गये और मुस्लिम हज करते-करते मर गये एवं योगी लोग जटा बांध-बाँध कर मर गये—किन्तु इन कर्मों से किसी ने भी ईश्वर को प्राप्त नहीं किया। कविगण कविता करते-करते, ढोंगी संन्यासी रंगे वस्त्र पहनते हुए तथा जैन साधु लुञ्चन संस्कार करते-करते मर गये। किन्तु इन विधि-विधानों से कोई भी परमात्मा को प्राप्त नहीं कर सका। राजा लोगों ने अपना जीवन स्वर्ण संचय में व्यर्थ कर डाला। पंडित लोग वेदादि धर्म ग्रन्थों को पढ़ते-पढ़ते मर गये और सुन्दरी अपने रूपाभिमान में नष्ट हो गई, किन्तु कोई उस परमात्मा को प्राप्त न कर सका। जो व्यक्ति योगसाधना द्वारा उसे अपने शरीर में खोजने का प्रयत्न करते हैं यह कबीर का मत है कि उसकी मुक्ति में कोई शंका नहीं।

विशेष—कबीर ने यहाँ हिन्दू-मुस्लिम समाज के बाह्याचारों पर करारी चोट की है।

कहूं रे जे कहिबे की होइ।
नां को जांनैं नां को मांनैं, ताथैं अचिरज मोहि ॥टंक॥
अपनें अपनें रंग के राजा, मांनत नांहीं कोइ।
अति अभिमांन लोभ के घाले, चले अपन पौ खोइ॥
मैं मेरी करि यहु तन खोयौ, समझत नहीं गँवार।
भौजलि अधफर थाकि रहे हैं, बूड़े बहुत अपार॥
मोहि आग्या दई दयाल दया करि, काहू कूं समझाइ।
कहै कबीर मैं कहि कहि हार्यौ, अब मोहि दोस न लाई॥३१८॥

कबीर यहाँ उन लोगों पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं जो प्रभु के स्वरूप को जाने बिना उसके विषय में व्यर्थ की बातें कहते हैं। वे कहते हैं कि—

जो व्यक्ति बिना जाने-बूझे ईश्वर के स्वरूप के विषय में अपने विचार प्रस्तुत करते हैं उन पर मुझे आश्चर्य होता है। सब अपनी-अपनी हांकते हैं, किसी की सत्य बात को कोई मानने के लिए प्रस्तुत नहीं। सब लोग अभिमान में पड़े हुए लाभ के वशीभूत हैं और इस प्रकार स्वयं ही अपनां पतन कर रहे हैं। ये मूर्ख! अहं के अथवा ममत्व-परत्व के फेर में पड़ जीवन को व्यर्थ नष्ट कर रहे हैं। इस संसार सागर के जल में बहुत से जीव थक कर डूब गये हैं। ईश्वर ने मुझे दया कर परम तत्व का रहस्य बताने का आदेश दिया है किन्तु यहाँ तो कोई किसी की सुनता ही नहीं। अतः कबीर कहते हैं कि मैं सत्य तत्व को कहते-कहने हार गया, कोई मेरी बात नही मान रहा है, अब फिर मुझे दोष मत देना।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

क कोस बन मिलांन न मेला ।
हुतक भाँति करै फुरमाइस, है असवार अकेला ॥टेक॥
ोरत कटक जु घेरत सब गढ, करतब झेली झेला ।
ोरि कटक गढ तोरि पातिसाह, खेलि चल्यौ एक खेला ॥
ंच मुकाम जोग के घर मैं, कछू एक दिवस खटांनां ।
आसन राखि बिभूति साखि दे, फुनि ले मटी उडांनां ॥
ा जोगी की जुगति जु जांनैं सो सतगुर का चेला ।
है कबीर उन गुर की कृपा थैं, तिनि सब भरम पछेला ॥८१॥

मन विषय-वासना जंजाल में उलझा हुआ है और यह बहुत सी कामनाएं त करता रहता है। मन ही समस्त कर्मों का एकमात्र संचालक है। यही मन में समस्त सम्बन्ध स्थापित कर सम्बन्धियों की एक सेना बना विविध पाप रता है। इस सेना से वह अनेक शत्रुओं को पद-दलित करता हुआ संसार से ता है—यह कैसा क्षणिक खेल है ? योग-साधना करने वाले साधक को चंचलता नहीं देती और चंचलता से वह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। आसन बिछाकर भर भस्म रमा लेने से कोई योगी नहीं हो जाता। कबीर कहते हैं कि जो ा उचित विधान जानता है, वही वास्तव में अपने गुरु का शिष्य है। गुरु कृपा स्त भ्रम विदूरित हो जाता है।

राग मारु

मन रे रांम सुमिरि, रांम सुमिरि भाई ।
रांम नांम सुमिरन बिनां, बूड़त है अधिकाई ॥टेक॥
दारा सुत ग्रेह नेह, संपति अधिकाई ।
यामैं कछु नांहि तेरौ, काल अवधि आई ॥
अजामेल गज गनिका, पतित करम कीन्हां ।
तऊ उतरि पारि गये, रांम नांम लीन्हां ॥
स्वांन सूकर काग कीन्हौं, तऊ लाज न आई ।
रांम नांभ अंमृत छाड़ि, काहे बिष खाई ॥
तजि भरम करम विधि नखेद, रांम नांम लेही ।
जन कबीर गुरु प्रसादि, रांम करि सनेही ॥३२०॥

कबीर कहते हैं कि हे मन ! तू राम नाम का स्मरण कर, राम नाम स्मरण कल्याण होगा। बिना प्रभु-नाम के मनुष्य भव-जल में डूब जाता है। स्त्री, पुत्र, सांसारिक प्रेम तथा अतुलित धन—इन सब में तेरा कुछ भी भाग नहीं है क्योंकि अन्तिम समय, मृत्यु खड़ी हुई है। अजामिल, गजेन्द्र, गणिका जिन्होंने न जाने पाप कर्म किये थे वे भी राम नाम के द्वारा संसार-सागर के पार उतर गये।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

श्वान, सूअर एवं काग जैसे व्यवहार करके भी मनुष्य तुझे लज्जा नहीं आई, रा नाम के अमृत को छोड़ तूने विषय-वासना विष को अपनाया ? माया-भ्रम का प त्याग कर जीव तू ईश्वर नाम भज। कबीर ने तो गुरु-उपदेश के द्वारा राम से सम्बन्ध स्थापित कर लिया।

रांम नांम हिरदै धरि, निरमोलिक हीरा।
सोभा तिहूँ लोक, तिमर जाय त्रिबधि पीरा ॥टेक॥
त्रिसनां नैं लाभ लहरि, कांम क्रोध नीरा।
मद मछर कछ मछ, हरिष सोक तीरा॥
कांमनी अरू कनक भवर, बोये बहु बीरा।
जन कबीर नवका हरि, खेवट गुर कीरा ॥३२१॥

निरमोलिक=अमूल्य। तिमर=तिमिर, अज्ञानांधकार। त्रिबधि पीरा= दैहिक, दैविक, भौतिक ताप।

हे साधक ! तू राम नाम के अमूल्य हीरे का हृदय में धारण कर। वह नाम ही समस्त संसार की शोभा है जिससे मानव के दैहिक, दैविक, भौतिक ता विनष्ट हो जाते हैं। इस संसार समुद्र में तृष्णा और लाभकाँक्षा की लहरें उठ हैं तथा काम एवं क्रोध रूपी जल से यह समुद्र परिपूर्ण है। मद-अभिमान सागर में रहने वाले मच्छ और घातक जीव हैं। यह सागर सुख-दुख के पुलिनों सीमाओं में बंधा हुआ है। इस सागर में सुन्दरी और स्वर्ण (धन) भंवर हैं जि पड़कर बहुत से व्यक्ति नष्ट हो गये। इस सागर से पार पाने के लिये भक्त कबी के पास प्रभु नाम की नौका है जिसे गुरु रूपी खेवट के सहारे चलाकर मैं पार उत जाऊंगा।

विशेष—सांगरूपक अलंकार की सुन्दर योजना है।

चलि मेरी सखी हो, वो लगन रांम राया।
जब तब काल बिनासै काया ॥टेक॥
जब लग लोभ मोह की दासी,
तीरथ ब्रत न छूटै जंम की पासी॥
आवंगे जम के घालैंगे बाँटी,
यहु तन जरि बरि होइगा माटी॥
कहै कबीर जे जन हरि रंगि राता,
पायौ राजा रांम परम पद दाता ॥३२२॥

कबीर अपनी आत्मा को सम्बोधित कर कहते हैं कि हे सखी ! राजा राम तू अपनी चित्तवृत्तियों को केन्द्रित कर, अन्यथा शीघ्र ही मृत्यु इस कलेवर को विन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

। जब तक आत्मा लोभ एवं माया, मोह की दासी है तथा वह तीर्थ, व्रत धि-विधानों का परित्याग नहीं करती तब तक मृत्यु से मुक्त नहीं हो जब यमदूत आकर मृत्यु का फन्दा डाल देंगे तो यह शरीर जलकर क्षार हो । कबीर कहते हैं कि जो भक्त प्रभु के प्रेम रंग में रंग जाता है वह प्रभु पद की प्राप्ति कर लेता है ।

राग टोडी

तूं पाक परमांनंदे ।
पीर पैकंबर पनह तुम्हारो, मैं गरीब क्या गंदे ।।टेक।।
ह दरिया सबही दिल भींतरि, परमांनंद पियारे ।
क नजरि हम ऊपरि नांहीं, क्या कमिबखत हंमारे ।।
कमति करैं हलाल बिचारैं, आप कहांवैं मौटे ।
करी चोर निवालै हाजिर, सांईं सेती खोटे ।।
इम दूवा करद बजावैं, मैं क्या करूं भिखारी ।
है कबीर मैं बंदा तेरा, खालिक पनह तुम्हारी ।।३२३।।

हे परमात्मा आप परमानन्द स्वरूप हैं, पैगम्बर सब आपकी शरण में हैं, मुझ का ही क्या दोष है जो आप शरण में नहीं लेते । हे प्रियतम ! आप सबके सरिता रूप में प्रवाहित हैं किन्तु फिर भी मेरे ऊपर तनिक भी अनुकम्पा ते—ऐसा मेरा अभाग्य क्यों हैं ? ये बड़े कहलाने वाले लोग चिकित्सा करते कित्सा दूसरों की जान बचाने का उपक्रम है) किन्तु स्वयं ही जीव हत्या भी (हलाल) । चोरी आदि करने वाले जितने भी कुचरित्री हैं, प्रभु की दृष्टि में पी हैं । यह दूसरी बात है कि वे कुमार्गी यहां आनन्द मनाते हैं और आप मैं भिखारी तुल्य कंगाली का जीवन व्यतीत कर रहा हूं । कबीर कहते हैं भु ! मैं आपका दास हूं, मुझे अपनी शरण में ले लीजिए ।

अब हम जगत गौंहन तैं भागे,
जग की देखि जुगति रांमहि ढूंरि लागे ।।टेक।।
यांन पनैं थैं बहु बौरांनें, संमझि परी तब फिरि पछितांनें ।।
ग कहौ जाकै जो मनि भावै, लहैं भुवंगम कौन डसावैं ।।
बीर बिचारि इहै डर डरिये, कहै का हो इहां नै मरिये ।।३२४।।

कबीर संसार की निस्सारता, क्षणभंगुरता देखकर कहते हैं कि अब हम जग बन्धन से भयभीत हुए । इस विश्व की ऐसी अनित्यता देखकर प्रभु की खोज का निश्चय किया । अज्ञानावस्था में बहुत से व्यक्ति संसार-बन्धन, विषय-चक्र में पड़ जाते हैं किन्तु विवेक होने पर वे पश्चात्ताप करते हैं । इस संसार-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चक्र में पड़ने पर माया-सर्पिणी डसता है जिससे अपरिमित व्यथा होती है, सांसारि लोग इस पर विभिन्न प्रकार के अनुमानाश्रित वक्तव्य देते हैं। कबीर विचारपूर्व यह निश्चय करते हैं कि संसार में माया नाश का कारण है, किसी को भी इस मा बन्धन में नहीं बंधना चाहिए।

राग भैरूं

ऐसा ध्यान धरौ नरहरी, सवद अनाहद च्यंतन करी ।।टेक।।
पहली खोजौ पंचे बाइ, बाइ ब्यंद ले लगन समाइ ।।
गगन जोति तहां त्रिकुटी संधि, रवि ससि पवनां मेलौ बंधि ।।
मन थिर होइत कवल प्रकासै, कवला माँहि निरंजन बास ।।
सतगुर संपट खोलि दिखावै, निगुरा होइ तौ कहां बतावै ।।
सहज लछिन ले तजो उपाधि, आसण दिढ निद्रा पुनि साधि ।।
पुहप पत्र जहां हीरा मणीं, कहै कबीर तहां त्रिभवन धणीं ।।३२५।।

नरहरी=नर-हरी : मनुष्य प्रभु पर (ऐसा ध्यान धरो)। अनहद=अन नाद। च्यंतन=चिंतन, विचार। पंचे बाइ=पांच सखी, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ। गगन शून्य, ब्रह्मरन्ध्र। त्रिकुटी=आंख, नाक एवं मस्तक का सन्धि स्थल, दोनों भ के बीच का स्थान। रविससि=इड़ा पिंगला। पवनां=पवन से, प्राणायाम कवल=सहस्रदल कमल। निरंजन=अलख निरंजन ज्योतिस्वरूप परमात्मा। =सम्पुट। निगुरा=गुरु-विहीन। सहज लछिन=सहज-समाधि। दिढ़=दृ साधि=समाधि साध कर। पुहप=पुष्प। त्रिभवन धणीं=त्रिलोकीनाथ परमात्म

कबीर कहते हैं कि हे मनुष्य! अनहद नाद स्थिति की प्राप्ति के लिये का ध्यान करो। इसके लिए सर्वप्रथम पांचों इन्द्रियों को अपने वश में कर कुण्डलि द्वारा शून्य शिखर प्राप्ति का उपक्रम करो। त्रिकुटी पर परम ज्योति का वास है, इ पिंगला को प्राणायाम द्वारा एकमेक कर वहां पहुंचना चाहिए। जब उपरोक्त वि से मन पूर्ण स्थिर हो जाता है तो सहस्त्रदल कमल का दर्शन होता है, इसी कमल ब्रह्म का वास है। सद्गुरु ज्ञान —ज्योति द्वारा कमल के बन्द संपुटों को खोल ब्रह्म दर्शन कराते हैं। जो गुरुविहीन हैं उन्हें कौन ब्रह्म को बतायेगा? सहज सम में अहं का परित्याग कर दृढ़मना हो समाधिस्थ होने पर आत्मा वहाँ पहुंच ज है जहां शून्य सरोवर के तट पर हीरा-मणियों का ढेर एवं त्रिलोकीनाथ का है—ऐसा कबीर का मत है।

विशेष—नाथ सम्प्रदायानुकूल हठयोगी साधना का वर्णन कबीर ने उपरो पद में किया है।

इहि विधि सेविये श्री नरहरी, मन की दुबिध्या मन परहरी ।।टेक।।
जहां नहीं जहां नहीं तहां कछू जांणि, जहां नहीं तहां लेहु पछांणि ।।
नांही देखि न जइये भागि, जहां नहीं तहां रहिये लागि ।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मंजन करि दसवैं द्वारि, गंगा जमुनां संधि बिचारि।
दहि ब्यंद कि ब्यंदहि नाद, नादहि ब्यंद मिलै गोब्यंद ।।
न देवा पूजा नहीं जाप, भाइ न बंध माइ नहीं बाप।
गातीत जस निरगुण आप, भ्रम जेवड़ी जग कीयो साप ।।
नांहीं कब जब मन नांहि, मन परतीति ब्रह्म मन मांहि।
हरि वकुला ग्रहि गुन डार, निरखि देखि निधि वार न पार ।।
कबीर गुर परम गियांन, सुंनि मंडल मैं धरौ धियांन।
पर जीव जैहै जहां, जीवन ही ले राखौ तहां ।।३२६।।

कबीर कहते हैं कि मन के संशय का परित्याग कर प्रभु की सेवा भक्ति इस करती चाहिए—

जहां-जहां यह माना जाता है कि वहां ज्ञान की कुछ भी प्राप्ति नहीं हो हाँ भी ज्ञान-प्राप्ति का न्यूनाधिक प्रयत्न होना चाहिए और जहां प्रभु का नहीं माना जाता वहीं इस सर्वत्र व्यापक ब्रह्म को खोजना चाहिए। उसको कर सकने के कारण भक्ति तक का मार्ग परित्याग नहीं कर देना चाहिए प्रभु दर्शन तक उस मार्ग पर दृढ़ रहना चाहिए। इड़ा-पिंगला कर मन को ब्रह्मरन्ध्र से स्रवित अमृत-लाभ के लिए पहुंचा देना । तभी अनहद नाद की उत्पत्ति होती है, अनहद से ब्रह्म की प्राप्ति। धना विधान में देवी-देवता, पूजा—अर्चना किसी का भी विधान नहीं न ही भाई, बन्धु, माँ, बाप आदि सम्बन्धी इसमें कुछ सहायक हो सकते हैं। र माया भ्रम और सर्परज्जु भ्रम है, वह ब्रह्म स्वयं तो गुणातीत और निर्गुण को अन्तमुंखी कर ब्रह्म प्राप्ति में शरीर की सुधि विस्मृत हो जाती है। म को विदूरित कर प्रभु-ध्यान से परम सुख की उपलब्धि होती है। कबीर कि सद्गुरु ने साधक को वह परम ज्ञान प्रदान किया कि शून्य मण्डल में ही वृत्तियां रम गई हैं। यह शरीर ही अब यहां पड़ा रह गया है, आत्मा तो उस लोक—प्रभु-निवास—में रम गई है।

विशेष—"गुणातीन······साप" में वेदान्तियों के समान जगत् को 'सर्परज्जु द्वारा मिथ्या बताकर "ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या" की पुष्टि की गई है।

अह अलख निरंजन देव, किहि बिधि करौं तुम्हारी सेव ।।टेक।।
सन सोई जाकौ बिस्तार, सोई कृस्न जिनि कीयौ संसार।
ब्यंद ते ब्रह्मंडहि गहै, सोई रांम जे जुगि जुगि रहै ।।
अह सोई जिनि उमति उपाई, दस दर खोलै सोई खुदाई।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लख चौरासी रब परवरै, सोई करीम जे एती करै।
गोरख सोई ग्यांन गमि गहै, महादेव सोई मन की लहै॥
सिध सोई जो साधै इती, नाथ सोई जो त्रिभुवन जती।
सिध साधू पैकंबर हुवा, जपै सु एक भेषो है जूवा॥
अपरंपार का नांउ अनंत, कहै कबीर सोई भगवंत ॥३२७॥

कबीर यहाँ ब्रह्म की एकता प्रतिपादित कर नामों की विभिन्नता बताते हैं कि हे अलख निरंजन ज्योतिरूप परमात्मा ! मैं किस भाँति आपकी भक्ति करूँ विष्णु वही है जिसका सम्पूर्ण संसार में विस्तार है, कृष्ण वही है जिसने सृष्टि सृजन किया हैं। गोविन्द वही है जो समस्त ब्रह्माण्ड में परिपूर्ण है, राम वही जो युग-युग तक रहता है। अल्लाह वही है जिसने समस्त संसार में कर्म-विधान हैं, चौरासी लाख योनियों में जीव का जन्म मरण रचने वाला करीम है। गोरख वही है जिसने समस्त ज्ञान विज्ञान जान लिया है। महादेव वही है जो दूसरे के की बात जान ले। इन सबको एक मानकर भजने वाला ही सिद्ध, साधु और पैग हो जाता है। कबीर कहते हैं कि उस रहस्यमय परम परमात्मा के नाम भी के समान अनन्त हैं। भाव यह है कि जिस प्रकार ब्रह्म का पार नहीं पाया सकता उसी प्रकार उसके नामों का।

तहां जौ रांम नांम ल्यौ लागै, तौ जुरा मरण छूटै भ्रम भागै। टे
अगम निगम गढ रचि ले अवास, तहुवां जोति करै परकास।
चमकै बिजुरी तार अनंत, तहां प्रभू बैठे कवलाकंत॥
अखंड मंडिल मंडित मंड, त्रि-स्नांन करै त्रीखंड।
अगम अगोचर अभि-अंतरा, ताकौ पार न पावै धरणींधरा॥
अरध उरध बिचि लाइ ले अकास, तहुवां जोति करै परकास।
टार्‌यौ टरै न आवै जाइ, सहज सुंनि मैं रह्यौ समाइ॥
अबरन बरन स्यांम नहीं पीत, हाहू जाइ न गावै गीत।
अनहद सबद उठै झणकार, तहां प्रभू बैठे समरथ सार॥
कदली पुहुप दीप परकास, रिदा पंकज मैं लिया निवास।
द्वादस दल अभि-अंतरि म्यंत, तहां प्रभू पाइसि करिल च्यंत॥
अमिलन मलिन घांम नहीं छांहां, दिवस न राति नहीं है तहां।
तहां न ऊगै सूर न चंद, आदि निरंजन करै अनंद॥
ब्रह्मंडे सो प्यंडे जांनि, मांनसरोवर करि असनांन।
सोहं हंसा ताकौ जाप, ताहि न लिपै पुन्य न पाप॥
काया मांहैं जांनैं सोई, जो बोलै सो आपै होई।
जोति मांहि जे मन थिर करै, कहै कबीर सौ प्रांणी तिरै॥३२८॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यदि शून्य शिखर पर राम नाम में व्यक्ति की वृत्तियाँ केन्द्रित हो जायं तो जन्म त्यु का बंधन छूट मुक्ति हो जाती है। जो स्थान समस्त धर्म ग्रन्थों की पहुंच से उसी शून्य पर परम ज्योति का अद्वितीय प्रकाश प्रकाशित हो रहा है। वहां सदृश अनन्त प्रकाश हो रहा है और ब्रह्म का वास वहीं है। वह ईश्वर अन्तर- से अगम्य एवं अदृश्य है, शेषनाग भी उसका पार नहीं पा सकते। त्रिकुटी पर मात्मा का निवास है। वह वहाँ दृढ़ रूप से स्थित है और शून्य में रमा रहता रूप रेखा विहीन और सर्वथा अवर्णनीय है न उसे सुख है और न कोई दुख। रन्तर अनहद नाद की संगीत लहरी गुंजित होती है वहीं सर्व प्रकार से समर्थ वास है। जिस शून्य शिखर पर कदली, सुमन और अनन्त दीपमालिका का है उसी 'अनाहत चक्र' में प्रभु का वास है। वहाँ सुख-दुख, धूप-छांह, दिवस- आदि की स्थिति नहीं है। वहाँ न सूर्य और चन्द्र उदित होते हैं—सम अवस्था आनन्द स्वरूप ब्रह्म का निवास है। जो समस्त संसार में है, वही इस शरीर त है ऐसा मानकर मन को अन्तर्मुखी कर शून्य स्थित मानसरोवर में स्नान चाहिए। वही मुक्तात्मा हैं जो पाप-पुण्य से निर्लेप इस ब्रह्म का सर्वदा ध्यान है। शरीर के मध्य में बोलने वाला हस ही उस ब्रह्म का रूप है। कबीर कहते जो ज्योति रूप परमात्मा में अपनी वृत्तियां केन्द्रित कर लेता है वह मुक्त हो है।

एक अचंभा ऐसा भया, करणीं थें कारण मिटि गया ।।टेक।।
करणी किया करम का नास, पावक मांहि पुहुप प्रकास।
पुहुप मांहि पावक प्रजरै, पाप पुंन दोऊ भ्रम टरै।।
प्रगटी बास बासना धोइ, कुल प्रगट्यौ कुल घाल्यौ खोइ।
उपजी च्यत च्यंत मिटि गई, भौ भ्रम भागा ऐसी भई।।
उलटी गग मेर कूं चली, धरती उलटि अकासहि मिली।
दास कबीर तत ऐसा कहै, ससिहर उलटि राह कौं गहै ।।३२६।।

कबीर कहते हैं कि ऐसी विचित्र घटना हो गई कि साधना द्वारा जिसकी प्राप्ति की थी वह प्राप्त हो गया। साधना ने कर्म-जाल नष्ट कर डाला और परम ज्योति सहस्रदल कमल का विकास दृष्टि गोचर हुआ। इस कमल में ही अनन्त प्रकाशवान् त्मा है जिसके दर्शन से पाप-पुण्य का भ्रम मिट जाता है। उस कमल की सुगन्ध ना विदूरित हो गई एव कुल-परिवार का मोह त्याग देने से पूर्ण ब्रह्म के दर्शन चितामणि स्वरूप ब्रह्म के दर्शन से सांसारिक चिता का नाश हो गया एवं संसार- समाप्त हो गया। उल्टी गगा सुमेरु पर्वत (हिमालय से तात्पर्य) को चली कुण्डलिनी ऊर्ध्वगामी हो गई। जिससे उसने शून्य में विस्फोट किया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कबीरदास जी उस परमात्मा का वर्णन करते कहते हैं कि परम-ज्ञान ने माया को नष्ट कर डाला।

विशेष—१. यमक, रूपक, विरोधाभास, रूपकातिशयोक्ति आदि अलंकार।

२. उलटवांसी शैली की प्रतिकात्मकता दर्शनीय है।

है हजूरि क्या दूरि बतावै, दुंदर बांधे सुंदर पावै ॥टेक॥
सो मुलनां जो मन सूं लरै, अह निसि काल चक्र सूं भिरै।
काल चक्र का मरदै मांन, तो मुलनां कूं सदा सलांम ॥
काजी सो जो काया बिचारै, अह नसि ब्रह्म अगनि प्रजारै।
सुप्पनें बिंद न देई झरनां, ता काजी कूं जुरा न मरणां ॥
सो सुलितांन जुद्धै सुर तांनैं, बाहरि जाता भीतरि आनैं।
गगन मंडल मैं लसकर करै, सो सुलितांन छत्र सिरि धरै ॥
जोगी गोरख गोरख करै, हिंदू रांम नाम उच्चरै।
मुसलमांन कहै एक खुदाइ,
कबीरा कौ स्वांमीं घटि घटि रह्यौ समाइ ॥३३०॥

कबीर कहते हैं कि ब्रह्म तो सर्वत्र परिव्याप्त है, फिर उसे दूर क्या बताना? विषय-विकारों के दादुर को वश में कर उस सुन्दर परमात्मा के दर्शन होते हैं। मौलाना तो वही है जो रात-दिन कालचक्र से लड़ता हुआ मन को नियन्त्रित रखे। जो मृत्यु-चक्र—आवागमन—को जीत ले उस मौलाना को सर्वदा मेरा नमस्कार है। काजी वही है जो निशि-दिन ब्रह्म की प्रेम-वेदना से विदग्ध होता हुआ शरीर शुद्धि का प्रयत्न करे। जो स्वप्न में भी माया-मोह में ग्रसित नहीं होता उस काजी को जरा-मरण का भय नहीं रहता, वह जीवन्मुक्त हो जाता है। राजा तो वही है जो अन्तर-बाह्य की शुद्धि कर विषय-वासना से युद्ध करता है। वास्तव में जो शून्य मण्डल में अपनी समस्त वृत्तियों को केन्द्रित कर देता है वही छत्रधारी राजा है। प्रत्येक योग का साधक गोरखनाथ बन सकता है। हिन्दू उसी ब्रह्म को राम के नाम से जानते हैं और मुसलमान खुदा नाम से—किन्तु वास्तव में वह घट-घट वासी ब्रह्म एक ही है, केवल उसके नाम वहुत से हैं।

आऊंगा न जाऊंगा, मरूंगा न जीऊंगा।
गुरु के सबद मैं रमि रमि रहूंगा ॥टेक॥
आप कटोरा, आपैं थारी, आपैं पुरिखा आपैं नारी।
आप सदाफल आपैं नींबू, आपै मुसलमांन आपैं हिंदू ॥
आपैं मछकछ आपै जाल, आपैं झींवर आपैं काल।
कहै कबीर हम नांहीं रे नांहीं, नां हम जीवत न मुवले मांहीं ॥३३१॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कबीर कहते हैं कि मैं गुरु के उपदेश के द्वारा राम-नाम में रम जाऊंगा और आवागमन के चक्र में पड़ जन्म-मृत्यु की वेदना नहीं भोगूंगा। वह ब्रह्म आप ही है आप ही कटोरी, आप ही पुरुष और आप ही नारी है। आप ही सदाफल है आप ही नींबू। वही मुसलमान और हिन्दू दोनों है। वह प्रभु स्वयं ही मछली, है और स्वयं ही उनको पकड़ने वाला और फिर स्वयं ही उनको मारने वाला। कहते हैं कि हम कुछ नहीं हैं, वह ब्रह्म ही सब कुछ है। जीवित रहते हुए भी अस्तित्व मिथ्या है।

हंम सब मांहि सकल हम मांही, हम थैं और दूसरा नांही ॥टेक॥
तीनि लोक मैं हमारा पसारा, आवागमन सब खेल हमारा।
खट दरसन कहियत हम भेखा, हमही अतीत रूप नहीं रेखा॥
हमही आप कबीर कहावा, हमहीं अपनां आप लखावा॥३३२॥

यहां कबीर उस अवस्था में प्रभु-कथन कर रहे हैं जहाँ अंश-अंशी भक्त न् आत्मा परमात्मा में कोई अन्तर शेष नहीं रह जाता—'साधक अहं ब्रह्मास्मि' घोष कर उठता है। वे कहते हैं कि मेरा प्रसार समस्त जगत् में है और समस्त मेरे कलेवर में ही समाया हुआ है। तीनों लोकों में हमारा ही प्रसार है और न् द्वारा सृष्टि क्रम जो चल रहा है, उसका नियन्ता भी मैं ही हूं। षट्दर्शन स्वरूप की व्याख्या का प्रयत्न करते हैं किन्तु मैं निर्गुण उनकी पहुंच से परे हूं। मैं और कबीर में कोई अन्तर नहीं रह गया। मुझे (परमात्मा को) किसी के प्रदर्शन की आवश्यकता नहीं।

विशेष—१. तीन लोक—आकाश, पृथ्वी, पाताल।
२. षट्दर्शन—सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा, वेदान्त।

सों धन मेरे हरि का नांउ, गांठि न बांधौं बेचि न खांउ ॥टेक॥
नांउ मेरे खेती नांउ मेरे बारी, भगति करौं मैं सरनि तुम्हारी।
नांउ मेरे सेवा नांउ मेरे पूजा, तुम्ह बिन और न जांनौं दूजा॥
नांउ मेरे बंधव नांव मेरे भाई, अंत की बिरियां नांव सहाई।
नांउ मेरे निरधन ज्यूं निधि पाई, कहै कबीर जैसें रंक मिठाई॥३३३॥

कबीर प्रभु-नाम महिमा का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं कि मुझे ईश्वर नाम वह अनुपम अमूल्य धन प्राप्त हो गया है कि न तो इसे गांठ में बाँधकर रखने (hoarding) की आवश्यकता है और न इसका अपव्यय कर समाप्त करने की। परमात्मा! मैं आपकी शरण में पड़ा हुआ हूं, मेरी खेती-बारी, जीविका का साधन मात्र राम-नाम ही है। नाम स्मरण को ही मैं आपकी भक्ति, पूजा-अर्चना, सब समझता हूं एवं आपके अतिरिक्त मुझे कोई आश्रय नहीं है। आपका नाम ही

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मेरा बन्धु-बान्धव और अन्य संबन्धी है, मृत्यु के समय भी नाम-स्मरण से ही मोक्ष होगा। कबीर कहते हैं कि नाम मेरे लिए ऐसा ही है जैसे निर्धन को अमूल्य सम्पत्ति प्राप्त हो गई हो, जैसे भिखारी को भिक्षा में मिठाई मिल गई हो।

विशेष—उपमा अलंकार।

अब हरि हूं अपनौं करि लीनौं,
प्रेम भगति मेरौ मन भीनौं ॥टेक॥
जरै सरीर अंग नहीं मोरौं, प्रान जाइ तौ नेह न तोरौं।
च्यंतामणि क्यूं पाइए ठोली, मन दे रांम लियौ निरमोली ॥
ब्रह्म खोजत जनम गवायौ, सोई रांम घट भीतरि पायौ।
कहै कबीर छूटी सब आसा, मिल्यौ राम उपज्यो बिसवासा ॥३३४॥

अब प्रभु ने मुझे अपना लिया, इसीलिए उनके प्रेम रंग से मैं स्नात हूं। मैं भक्ति मार्ग को शरीर के जल जाने तथा प्राणों के निकल जाने पर भी नहीं छोड़ सकता। चिंतामणि स्वरूप अमूल्य ब्रह्म को यूं ही प्राप्त नहीं किया जा सकता उसके लिए साधना द्वारा मन का पूर्ण समर्पण करना होगा। जिस ईश्वर को खोजते-खोजते जन्म व्यर्थ कर डाला उसी को हृदय में ही पा लिया। कबीर कहते हैं कि प्रभु के मिलने पर समस्त सांसारिक कामनाएं विनष्ट हो गईं और ईश्वर में ओर भी अधिक विश्वास बढ़ गया है।

लोग कहैं गोबरधनधारी, ताकौ मोहिं अचंभौ भारी ॥टेक॥
अष्ट कुली परबत जाके पग की रैंनां, सातौं सायर अंजन मैंनां।
ऐ उपमां हरि किती एक ओपै, अनेक मेर नख ऊपरि रोपै।
धरनि अकास अधर जिनि राखी, ताकी मुगधा कहैं न साखी।
सिव बिरंचि नारद जस गावं, कहै कबीर वाको पार न पावं ॥३३५॥

रैंनां=रेणु, धूलि। सायर=सागर। ओपै=शोभित। मेर=सुमेरु। रोपै=गाड़ना, यहाँ उठाने के अर्थ में प्रयुक्त। अधर=बिना किसी आधार के। मुगधा=महिमा।

कबीर कहते हैं कि उस ब्रह्म को लोग 'गोवर्द्धनधारी' कहकर केवल एक पर्वत को उठाने वाला कहते हैं इसका मुझे बड़ा आश्चर्य है। वह तो इतना समर्थ है कि ईश्वर में अठों परिवारों के जो पर्वत हैं वे सब उसकी चरण-धूलि के तुल्य हैं एवं सात सागर उसके नेत्रों के अंजन के ही बराबर हैं। एक यह उपमा तो कुछ ठीक लगती है कि वह अनेक सुमेरु जैसे पर्वतों को अपने नाखून पर उठा सकता है। जिस ईश्वर ने पृथ्वी और आकाश को बिना किसी आधार पर स्थिर कर रखा है उसकी महिमा का वर्णन साखी (कविता) द्वारा नहीं किया जा सकता। कबीर कहते हैं कि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ब्रह्मा तथा नारद जैसे महर्षि जिसके यश का गुणगान करते नहीं अघाते उसका नहीं पाया जा सकता।

विशेष—परिकरांकुर अलंकार।

रांम निरंजन न्यारा रे, अंजन सकल पसारा रे।।टेक।।
अंजन उतपति वो ऊंकार, अंजन मांड्या सब बिस्तार।
अंजन ब्रह्मा संकर इंद, अंजन गोपि संगि गोब्यंद।।
अंजन बांणीं अंजन बेद, अंजन कीया नांनां भेद।
अंजन विद्या पाठ पुरांन, अंजन फोकट कथहि गियांन।।
अंजन पाती अंजन देव, अंजन की करै अंजन सेव।
अंजन नाचै अंजन गावै, अंजन भेष अनंत दिखावै।।
अंजन कहौं कहां लग केता, दांन पुंनि तप तीरथ जेता।
कहै कबीर कोई बिरला जागै, अंजन छाड़ि निरंजन लागै।।३३६।।

वह ज्योतिस्वरूप परमात्मा अत्यन्त अद्‌भुत है, उसी का समस्त ब्रह्माण्ड में ...र है। वह निरञ्जन ही जगत् की उत्पत्ति का कारण 'ओंकार' है—वह सर्वत्र ...पक है। वही ब्रह्मा, शंकर तथा इन्द्र और गोपियों के प्रेमी श्रीकृष्ण हैं। वह ...त्मा ही सरस्वती एवं वेद है—उसके ये अनेक भेद हैं। सकल विद्या एवं धर्म-...त्र भी वही है और वह स्वयं ही शास्त्रग्रन्थों में वर्णित ज्ञान का व्याख्याता है। ... स्वयं पत्र-पूजा—नैवेद्य है, स्वयं प्रतिमा है और स्वयं ही पुजारी। वही प्रभु-...मा के सम्मुख नाचने और गाने वाला है—इस प्रकार वह नाना रूपों में स्वयं ...टि का संचालन करता है। दान-पुण्य, जप-तप, तीर्थ-व्रतादि में भी वही हैं, उसका ...न कहां तक किया जाय। कबीर कहते हैं कि कोई बिरला व्यक्ति ही उस परम-...ु के लिए साधना करता है और उसे प्राप्त कर पाता है।

अंजन अलप निरंजन सार, यहै चीन्हि नर करहु बिचार।।टेक।।
अंजन उतपति बरतनि लोई, बिना निरंजन मुक्ति न होई।
अंजन आवै अंजन जाइ, निरंजन सब घटि रह्यौ समाइ।।
जोग ध्यांन तप सबै बिकार, कहै कबीर मेरे रांम अधार।।३३७।।

कबीर कहते हैं कि जो संसार दिखाई देता है वह अनित्य है, मिथ्या है, केवल ...ह्म ही सत्य है ऐसा विचार कर मनुष्यो उस ब्रह्म को पहचानने का प्रयत्न करो। ...य संसार की उत्पत्ति, व्यवहार कर्म, बिना ज्योतिस्वरूप परमात्मा के नहीं हो ...कता। दृश्यमान संसार तो उत्पत्ति और नाश के चक्र में बंधा हुआ है। परमात्मा ...सके हृदय में रम रहा है। योग, ध्यान, जप, तप आदि समस्त विधि-विधान विकार ...त्र हैं कबीर को तो केवल राम-नाम का ही आश्रय है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एक निरंजन अलह मेरा, हिंदू तुरक दहूँ नही मेरा ।।टेक।।
राखूं व्रत न महरम जांनां, तिसही सुमिरूं जो रहे निदांनां ।
पूजा करूं न निमाज गुजारूं, एक निराकार हिरदै नमसकारूं ।।
नां हज जांऊं न तीरथ पूजा, एक पिछांण्यां तौ क्या दूजा ।
कहै कबीर भरम सब भागा, एक निरंजन सूं मन लागा ।।३३८।।

कवीर कहते हैं कि मेरा तो एकमात्र सम्बन्ध राम से ही है, हिन्दू-मुसलमान इन दोनों में से कोई भी मेरा नहीं है। मैं न तो व्रत धारण करता हूं और न मौहर्रम में तत्सम्बन्धी आचरण करता हूं, में तो ईश्वर का स्मरण कर पूर्ण निश्चिन्त हो जाता हूं। चाहे पूजा और नमाज न करूं किन्तु उस एक पूर्ण परमेश्वर को हृदय में नमस्कार कर लेता हूं, मैं हज और तीर्थ यात्रा का विश्वासी हूं, भला जब ब्रह्म को पहचान लिया तो इन व्यर्थ के कृत्यों से क्या प्रयोजन ? कबीर कहते हैं कि उस परमात्मा से मन की लगन लग जाने से संसार-भ्रम विदूरित हो गया।

तहां मुझ गरीब की को गुदरावै,
मजलसि दूरि महल को पावै ।।टेक।।
सतरि सहस सलार हैं जाकै, असो लाख पैकंबर ताकै ।
सेख जु कहिय सहस अठ्यासी, छपन कोडि खेलिबे खासी ।।
कोड़ि तेतीसूं अरू खिलखांनां, चौरासी लख फिरै दिवांनां।
बाबा आदम पैं नजरि दिलाई, नबी भिस्त घनेरी पाई ।।
तुम्ह साहिब हम कहा भिखारी, देत जबाब होत बजगारी ।
जन कबीर तेरी पनह समांनां, भिस्त नजीक राखि रहिमांनां ।।३३६।।

कबीर कहते हैं कि प्रभु का महल बहुत दूर और अगम्य है, मन्जिल दूर है, मैं गरीब किस भांति वहाँ तक पहुंच सकता हूं। उस ब्रह्म की महिमा अपरम्पार है। सत्तर सहस्र तो उसके सैनिक और अस्सी लाख पैगम्बर हैं। अट्ठासी हजार शेख और छप्पन करोड़ खेलने वाले (सयाने) हैं। तैंतीस करोड़ व्यक्ति चौरासी लाख योनियों में उसी के कारण भटक रहे हैं। भ्रम में पड़े हुए लोग बावा, नबी, फकीर आदि से झाड़, फूंक करवा नजर उतरवाते हैं—यह सब व्यर्थ है। हे प्रभु ! आप स्वामी हैं और में भिखारी; आ: के सम्मुख अधिक कहना भी धृष्टता होगी। दास कबीर ता अब आपकी शरण में आ गया है उसे बहिश्त अथवा अन्य किसी सुख की कामना नहीं केवल आपकी-कृपा ही सब कुछ है।

जौ जाचौं तो केवल रांम, आंन देव सूं नांही काम ।।टेक।।
जाकै सूरिज कोटि करैं परकास, कोटि महादेव गिरि कविलास ।
ब्रह्मा कोटि बेद ऊचरैं, दुर्गा कोटि जाकै मरदन करैं ।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कोटि चंद्रमां गहैं चिराक, सुर तेतीसूं जीमैं पाक।
नौग्रह कोटि ठाढे दरबार, धरमराइ पौली प्रतिहार।
कोटि कुबेर जाकै भरे भंडार, लछमीं कोटि करैं सिंगार।
कोटि पाप पुनि ब्यौहरैं, इंद्र कोटि जाकी सेवा करैं॥
जगि कोटि जाकै दरबार, ग्रंधप कोटि करैं जैकार।
बिद्या कोटि सबै गुंण कहैं, पारब्रह्म कौ पार न लहैं॥
बासिग कोटि सेज बिसतरै, पवन कोटि चौबारै फिरैं।
कोटि समुद्र जाकै पणिहारा, रोमावली अठारह भारा॥
असंखि कोटि जाकै जमावली, रांवण सेन्यां जाथैं चली।
सहसबांह के हरे परांण, जरजोधन घाल्यौ खै मांन॥
बावन कोटि जाकै कुटवाल नगरी नगरी खेत्रपाल।
लट छूटी खेलैं बिकराल, अनत कला नटधर गोपाल॥
कंद्रप कोटि जाकै लांवन करे, घट घट भींतरि मनसा हरैं।
दास कबीर भजि सारंगपान, देहु अभै पद मांगौं दांन॥३४०॥

कबीर कहते हैं कि यदि भक्ति करनी है तो केवल एक राम की ही करनी हिए, अन्य विविध देवी-देवताओं से कोई प्रयोजन नहीं। वह प्रभु ऐसा है कि का प्रकाश कोटि-कोटि सूर्य-समूह के समान है और वहां करोड़ों महादेव कैलाश त विराजमान हैं। करोड़ों ब्रह्मा वेद-ऋचाओं का उच्चारण करते हैं और करोड़ों वहां असुरों का नाश करती हैं। करोड़ों नवग्रह प्रभु के दरवार में अनुचर नाईं स्थित हैं और स्वयं धर्मराज चौकीदार और प्रतिहारी का कार्य करते हैं। ख्य कुवेर उस ब्रह्म के भण्डार को पूर्ण करने में सलंग्न हैं और करोड़ों लक्ष्मियां का शृंगार करती हैं। अगणित इन्द्र उसकी सेवा में उपस्थित रहते हैं तथा रोड़ों पाप-पुण्य वहां खड़े रहते हैं। जिसके दरवार में करोड़ों सृष्टियों के मनुष्य र सुन्दर स्वर वाले गन्धर्व जय-जयकार करते हैं, उस परमेश्वर के गुणों का संख्य विद्याएं भी वर्णन नहीं कर पातीं। कोटि-कोटि वासुकि उसकी शय्या तुत करते हैं और असंख्य पवन उसके प्रांगण को सुरक्षित करते हैं। कोटि कोटि मुद्र उसकी पनिहारिनें हैं, अट्ठारह सहस्र रोमावली भार उठाने के लिए वहाँ सन्नद्ध । असंख्य कोटि उसके यमदूत हैं जिनके द्वारा सृष्टि में प्रलय होती है। रावण की ना का संहार उन्होंने ही किया था। सहस्रबाहु का वध और दुर्योधन का मान ण्डित कर नाश उन्होंने ही किया है। बावन करोड़ उसके गुप्तचर और प्रत्येक क्षेत्रपाल नियुक्त हैं। जब वे नटवर नागर नृत्य-रत होते हैं तो उनकी केशराशि यंकर बनकर छितराती है। करोड़ों कंदर्प जिसकी स्तुति करते हैं ऐसा महिमावान्

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ब्रह्म घट-घट वासी है। कबीर कहते हैं कि कमल के समान हाथों वाले प्रभु की भक्ति कर अभय-पद, परमपद का वरदान माँगना चाहिए।

विशेष—कबीर के निर्गुण ब्रह्म में यहां पर्याप्त मात्रा में सगुण के तत्व विद्यमान हैं।

मन न डिगै ताथैं तन न डराई,
केवल राम रहे ल्यौ लाई ।।टेक।।
अति अथाह जल गहर गंभीर, बांधि जंजीर जलि बोरे हैं कबीर।
जल की तरंग उठि कटिहैं जंजीर, हरि सुमिरन तट बैठे हैं कबीर।।
कहै कबीर मेरे संग न साथ, जल थल मैं राखै जगनाथ ।।३४१।।

कबीर कहते हैं कि मेरा मन चंचल नहीं हैं इसलिए शरीर को कोई भय नहीं, मैंने अपनी समस्त चित्तवृत्तियाँ राम में केन्द्रित कर दी हैं। संसार-सागर का जल अत्यन्त गम्भीर है, उसमें माया-बन्धन में बांधकर कबीर को डाल दिया है। प्रभु-प्रेम की तरंग उठने से माया की शृंखला टूट गई और ईश्वर का नाम जपने से कबीर संसार के पार हो गया अथवा संसार से तट्स्थ हो गया। कबीर कहते हैं कि मेरे साथ कोई सहायक नहीं है किन्तु जल-थल में सर्वत्र त्रिलोकीनाथ मेरी रक्षा करते हैं।

भलैं नीदौ भलैं नीदौ भलैं नीदौ लोग,
तन मन रांम पियारे जोग ।।टेक।।
मैं बौरी मेरे रांम भरतार, ता कारंनि रचि करौं स्यंगार।
जैसे धुबिया रज मल धोवै, हर-तप-रत सब निंदक खोवै।।
न्यंदक मेरे माई बाप, जन्म जन्म के काटे पाप।
न्यंदक मेरे प्रांन अधार, बिन बेगारि चलावै भार।।
कहै कबीर न्यंदक बलिहारी, आप रहै जन पार उतारी ।।३४२।।

निन्दा करने वाले मनुष्य बहुत श्रेष्ठ हैं, उनसे घृणा नहीं करनी चाहिए—वे तन-मन से प्रिय प्रभु के भजन में प्रवृत्त कराते हैं। मैं राम-प्रेम में दीवानी हूं, वही मेरे प्रियतम हैं, मैं उन्हीं के लिए रूपसज्जा करती हूं। जैसे धोबी मल-मल कर वस्त्र की कलुषता दूर करता हूं उसी भांति प्रभ की भक्ति में लगे हुए भक्त के समस्त विकार निंदक द्वारा दूर हो जाते हैं—वह बुराई करता है और अपने दोषों का इंगित पा भक्त उन्हें दूर कर लेता है। कबीर कहते हैं कि निन्दक मेरे माता-पिता तुल्य है जो जन्म-जन्मान्तर के पाप दूर करने में सहायता देता है। वस्तुत: निन्दक ही मेरे जीवन का आधार है जो बिना कुछ लिए हमारा कलुष दूर करवाता है। कबीर कहते हैं मैं निन्दक की बलिहारी जाता हूं जो दूसरों का उपकार कर स्वयं गर्त में गिरता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विशेष—१. उपमा अलंकार।

२. "निंदक नियरै राखियै, आंगन कुटी छवाय।"

जौ मैं बौरा तौ रांम तोरा, लोग मरम का जांन मोरा ।।टेक।।
ाला तिलक पहरि मनमानां, लोगनि रांम खिलौनां जांनां।
ोरी भगति बहुत अहंकारा, ऐसे भगतां मिलैं अपारा।।
लोग कहैं कबीर बौराना, कबीरा कौ मरम रांम भल जांनां ।।३४३।।

कबीर कहते हैं कि मैं प्रभु-प्रेम में दीवाना हूं और लोग मुझे पागल समझते ु ये पागल कहने वाले मेरा रहस्य नहीं समझ पाते हैं। लोग माला-तिलक कर अपने को भक्त मानते हैं, उन्होंने राम को खिलौना मात्र समझ लिया है। सार में ऐसे अनेक भक्त मिल जायेंगे जो थोड़ी भक्ति करने पर दम्भ में मरे हैं। संसार कहता है कि कबीर पागल हो गया है किन्तु कबीर की मन स्थिति वल राम ही जानते हैं।

हरिजन हंस दसा लीये डोलै,
निर्मल नांव चवै जस बोलै ।।टेक।।
मानसरोवर तट के बासी, राम चरन चित आंन उदासी।
मुकताहल बिन चच न लावै, मौंनि गहैं कै हरि गुन गावै।।
कऊवा कुबधि निकटि नहीं आवै, सो हंसा निज दरसन पावै।।
कहै कबीर सोई जन तेरा, खीर नीर का करै नवेरा। ३४४।।

प्रभु-भक्त की दशा हंस के समान है, वह केवल ईश्वर के निर्मल नाम को हण करता है। वह भक्त शून्य-स्थित मान सरोवर के तट का वासी हो जाता ाम चरणों के अतिरिक्त अन्य किसी ओर उसकी वृत्ति नहीं रमती। जिस प्रकार मोती के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु को ग्रहण नहीं करता, उसी भाँति हरि भक्त ो प्रभु-गुणगान करता है अन्यथा अपनी वाणी को मौन का आवरण दे देता है। के निकट कुबुद्धिरूप कौए नहीं आते और वह हंसात्मा प्रभु का दर्शन पा जाते कबीर कहते हैं कि वही ईश्वर-भक्त है जो क्षीर-नीर विवेक रखता है।

विशेष—हंस के विषय में यह कवि-प्रसिद्धि है कि वह मिले हुए दूध और में से दूध-दूध को ग्रहण कर लेता है और पानी को छोड़ देता है। इस सम्बन्ध में ार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का 'हंस का नीर-क्षीर विवेक' निबन्ध दर्शनीय है।

सति रांम सतगुर की सेवा, पूजहु रांम निरंजन देवा ।।टेक।।
जल कै मंजन्य जो गति होई, मींनां नित ही न्हावै।
जैसा मींनां तैसा नरा, फिरि फिरि जोनीं आवै।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मन मैं मैला तीर्थ न्हांवै, तिनि बैकुंठ न जांनां।
पाखंड करि करि जगत भुलांनां, नांहिन रांम श्रयांनां॥
हिरदै कठौर मरै बानारसि, नरक न बंच्या जाई।
हरि कौ दास मरै जे मगहरि, सेन्यां सकल तिराई॥
पाठ पुरांन बेद नहीं सुमृत, तहां बसै निरकारा।
कहै कबीर एक ही ध्यावो, बावलिया संसारा॥३४५॥

कबीर कहते हैं कि संसार में राम सेवा और गुरु-सेवा ही सत्य है, अन्य सब मिथ्या, इसलिए निराकार परमात्मा की आराधना ही श्रेयस्कर है। भला यदि जल में स्नान मात्र से मुक्ति की प्राप्ति हो जाय तो मछली नित्य ही पानी में स्नान के कारण मुक्त हो गई होती किन्तु मीन और जीव दोनों ही स्नान से मुक्त नहीं हुए हैं इसलिए बारम्बार आवागमन चक्र में पड़ विभिन्न योनियों में भ्रमित होते हैं। जो मन में कलुष रहते हुए तीर्थ-स्नान करता है, वह स्वर्ग लाभ नहीं करता। समस्त संसार पाखण्ड और ढोंग कर भ्रमित हो रहा है किन्तु प्रभु अज्ञानी नहीं है, वह सब कुछ देखता है। जो हृदय को कठोर कर काशी-करवट लेते हैं, वे नरक से नहीं बच पाते। प्रभु-भक्त तो मगहर में जाकर ही मरता है, वहां मर कर सब के साथ मुक्ति-लाभ कर गये हैं। जहां पुराण, वेद, स्मृति आदि धर्मग्रन्थों का तर्क-जाल समाप्त हो जाता है, वहां निराकार ब्रह्म का निवास स्थान है। कबीर कहते हैं कि हे मूर्ख संसार! एक पूर्ण परमेश्वर का ही ध्यान कर, अन्य समस्त क्रिया-कलाप मिथ्या हैं।

विशेष—१. "मरै बानारसि'—में 'काशी करवट' की ओर संकेत है, अंध-विश्वासी धार्मिक जनता काशी के एक कुएं में जिसमें आरा लगा हुआ था गिरकर शरीर को कटवा देती थी। उन लोगों का विश्वास था कि इस कुएं में गिरकर प्राण त्यागने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। वस्तुतः यह कुछ पुजारियों का ढोंग था। धनिक लोग खूब श्रृंगार-सज्जा कर, स्त्रियाँ आभूषणों से लद, जब इसमें कूदती थीं तो वे पुजारी आरा चलाकर उनका काम तमाम कर देते थे और जो निर्धन पुरुष तथा स्त्रियाँ कुएं में गिरती थीं उनके लिए आरा नहीं चलाया जाता था, और कह देते थे कि तुम स्वर्ग के योग्य नहीं हो, वे कुएं से वापस निकल आते थे। आरा चलाने का कार्य नीचे ही नीचे गुप्त रूप से इस प्रकार होता था कि वह स्वचालित सा लगता था। इसका रहस्य एक अंग्रेज़ अधिकारी ने पकड़ इसे बन्द करा दिया।

२. 'मरै मगहरि'—सामान्य जनता में यह विश्वास था कि जो कोई मगहर में मृत्यु को प्राप्त होता है, वह नरक का भोग करता है, कबीर जीवन भर इस अन्ध-विश्वास को मिटाने का प्रयत्न करते रहे और अन्त समय में स्वयं भी वहीं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मरे। प्रस्तुत पद में भी वे मगहर में शरीर त्याग से स्वर्ग लाभ की बात हैं।

क्या ह्वै तेरे न्हांई धौईं, आतम-रांम न चीन्हां सोई ।।टेक।।
क्या घट ऊपरि मंजन कीयैं, भीतरि मैलअ-पारा।
रांम नांम बिन नरक न छूटै, जे धोव सौ बारा।
का नट भेष भगवां बस्तर, भसम लगावै लोई।।
ज्यूं दादुर सुरसुरी जल भीतरि, हरि बिन मुकति न होई।।
परहरि कांम रांम कहि बौरे, सुनि सिख बंधू मोरी।
हरि कौ नांव अभै-पद-दाता, कहै कबीरा कोरी ।।३४६।।

कबीर कहते हैं कि इस नहाने-धोने से क्या लाभ, यदि हृदयस्थित परमात्मा पहचाना। बाहर के स्नान से क्या लाभ, मन में तो अपार कलुष भरा हुआ है। नाम के आश्रय बिना नरक से मुक्त नहीं हुआ जा सकता, जो व्यक्ति इसे जपता मुक्त हो जाता है। नट के समान भगवा वस्त्र से विभिन्न भेष धारण करने शरीर से भस्म लगाने का कोई प्रयोजन नहीं। जिस भांति मेंडक की गंगा जल बिना मुक्ति नहीं होती, उसी प्रकार प्रभु नाम के बिना मनुष्य की मुक्ति नहीं। हे बन्धु ! तू अज्ञानता और कामना अथवा विषय-वासना का परित्याग राम-नाम भज, क्योंकि ईश्वर का नाम अभय पद, परम पद, मोक्ष, प्रदाता है कबीर जुलाहे की सीख है।

विशेष—उपमा अलंकार।

पांणीं थैं प्रगट भई चतुराइ,गुर प्रसादि परम निधि पाई ।।टेक।।
इक पांणीं पांणीं कूं धोवै, इक पांणीं पांणी कूं मोहै।
पांणी ऊचा पांणीं नींचा, ता पांणी का लीजै सींचा।।
इक पांणी थैं प्यंड उपाया, दास कबीरा रांम गुण गाया ।।३४७।।

कबीर कहते हैं कि प्रभु रूप जल से संसार का समस्त ज्ञान उत्पन्न हुआ। गुरु- से मैंने आज उसी परम-तत्व को जान लिया है। ज्ञान-जल माया रूपी जल को कर रहा है, दूसरा माया स्वरूप जल प्राणी को विमोहित कर रहा है। यह जल ही व्यक्ति को उच्च स्थान प्रदान करता है एवं यही निम्न। इस ज्ञान- में अन्तर-बाह्य अभिसिंचित करना श्रेयस्कर है। वीर्य भी पानी का ही रूप उससे मनुष्य शरीर की रचना हुई। जल—ब्रह्म—ही जगत् का कारण है, इस कबीर प्रभु-महिमा वर्णन करते हैं।

विशेष—यमक अलंकार।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भजि गोब्यंद भूलि जिनि जाहु,
मनिसा जनम कौ एही लाहु ।।टेक।।
गुर सेवा करि भगति कमाई, जौ तैं मनिषा देही पाई।
या देही कूं लोचैं देवा, सो देही करि हरि की सेवा ।।
जब लग जुरा रोग नहीं आया, तब लग काल ग्रसै नहिं काया।
जब लग हींण पड़ै नहीं बाँणी, तब लग भजि मन सारंगपांणी ।।
अब नहीं भजसि भजसि कब भाई, आवैगा अंत भज्यौ नही जाई।
जे कछू करौ सोई तत सार, फिरि पछितावोगे वार न पार ।।
सेवग सो जो लागै सेवा, तिनहीं पाया निरंजन देवा।
गुर मिलि जिनि के खुले कपाट, बहुरि न आवै जोनीं बाट ।।
यहु तेरा औसर यहु तेरी बार, घट भींतरि सोचि बिचारि।
कहै कबीर जीति भावै हारि, बहु बिधि कह्यौ पुकारि पुकारि ।।३४८।।

मनिसा=मनुष्य, मानव। लौंचे=ललकते हैं। जुरा=जरा, वृद्धावस्था। हींण=हीन। सारंगपाणि=कमल जैसे हाथ वाले। सेवक=सेवक, भक्त। जोनीं=योनि।

कबीर कहते हैं कि हे मनुष्य! प्रभु का नाम भज, यह भूलने योग्य नहीं। मानव जन्म की सार्थकता ईश्वर-नाम-स्मरण में ही है। यदि तूने मानव—देह पाई है तो गुरु सेवा कर भक्ति लाभ कर। इस मनुष्य-शरीर के लिये देवगण भी ललकते हैं, इसलिये इसकी अमूल्यता को सोचते हुए परमेश्वर की भक्ति कर। जब तक वाक्शक्ति क्षीण नहीं होती, हे मन! तब तक परमात्मा का भजन कर। जब तक वृद्धावस्था और उसके रोग शरीर को नहीं व्यापते तब तक मृत्यु नहीं आती। अब यदि तैंने अब परमात्मा का भजन न किया तो फिर तो अन्तिम समय निकट आ जायगा। जो कुछ भी प्रभु-भक्ति के लिए अब कर लोगे वही रह जायगा अन्यथा काल के निकट आने पर तो घोर पश्चात्ताप ही शेष रह जायगा। भक्त वही है जो प्रभु की सेवा करे और वही ज्योतिस्वरूप निर्गुण ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है। गुरु-उपदेश से जिनके ज्ञान-कपाट खुल गये वे पुनः इस संसार में जन्म लेने नहीं आते। तेरे लिए, मनुष्य! यह स्वर्ण अवसर है कि मन को अन्तर्मुखी कर प्रभु-प्राप्ति का प्रयत्न कर। कबीर बारम्बार पुकार-पुकार कर कहते हैं कि प्रभु-नाम-सम्बल से ही संसार का कल्याण सम्भव है।

ऐसा ग्यांन ब्रिचारि रे मना,
हरि किन सुमिरै दुख भंजनां ।।टेक।।
जब लग मैं मैं मेरी करै, तब लग काज एक नहीं सरै।
जब यहु मैं मेरी मिटि जाइ, तब हरि काज संवारै आइ ।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जब लग स्यंघ रहै बन मांहि, तब लग यहु बन फूलै नांहिं।
उलटि स्याल स्यघ कूं खाइ, तब यहु फूलै सब बनराइ ।।
जीत्या डूबै हार्‌या तिरै, गुर प्रसाद जीवत ही मरै।
दास कबीर कहै समझाइ, केवल रांम रहौ ल्यौ लाइ ।।३४६।।

हे मन ! दुःख-विनाशक प्रभु का स्मरण क्यों नहीं करता है ? जब तक तू ...र की सीमा को समाप्त नहीं कर देता तब तक तेरा कोई भी कार्य सफल नहीं ...कता। जब ममत्व-परत्व की भावना समाप्त हो जाती है तब प्रभु स्वयं आकर सफल करते हैं। जब तक इस संसार रूपी वन में माया का सिंह रहता है तब ...ह फलता फूलता नहीं। जीव रूपी शृगाल माया-सिंह को नष्ट कर देता है तब ...सार पल्लवित होता है, भक्ति के फल देता है। जो माया से जीता हुआ होता ... ससार-समुद्र में डूब जाता है और जो उसे हरा देता है वह भवसागर से तर ...है। गुरु कृपा से ही साधक जीवन्मुक्त, स्थितप्रज्ञ स्थिति को प्राप्त कर सकता ...क्त कबीर समझाकर कहते हैं कि केवल परमात्मा में ही लगन लगानी ...ए।

विशेष—विरोधाभास अलंकार।

जागि रे जीव जागि रे।
चोरन कौ डर बहुत कहत हैं, उठि उठि पहरै लागि रे ।।टेक।।
...रा करि टोप ममां करि बखतर, ग्यांन रतन करि षाग रे।
ऐसें जौ अजराइल मारै, मस्तकि आवै भाग रे ।।
ऐसी जागणीं जे को जागै, ता हरि देइ सुहाग रे।
कहै कबीर जाग्या ही चहिये, क्या गृह क्या बैराग रे ।।३५०।।

हे अज्ञानी जीव ! सावधान हो जा ! इस संसार में बहुत से विकारों के चोर ...गृत हो सावधानी से अपनी पवित्रता की रक्षा कर। अब कबीर रूपक देते हुए ...हैं कि 'रा' कार का टोप धारण कर 'म' कार का वक्षस्त्राण पहन एवं ज्ञान-रत्न ...विजय-चिन्ह लगा यदि तू माया के अजगर को मारेगा तो इस सर्प के मरण से भक्ति की सुन्दर मणि प्राप्त होगी। यदि कोई उपरोक्त विधि से जागृत होता ... स्वयं ईश्वर उस भक्त को अभय-पद प्रदान करते हैं। कबीर कहते हैं कि प्रत्येक ...त को चाहे वह गृहस्थ अथवा विरक्त हो, सर्वदा सचेत रहना चाहिए।

विशेष—सांगरूपक अलंकार।

जागहु रे नर सोवहु कहा, जम बटपारैं रूंधै पंहा। टेक।।
जागि चेति कछू करौ उपाइ, मोटा बैरी है जंमराइ।
सेत काग आये बन मांहि, अजहूं रे नर चेतै नांहि ।।
कहै कबीर तबै नर जागै, जंम का डंड मूंड मैं लागै ।।३५१।।

RajGuru Math, Shivala, Varaṇasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बटपारैं=बटमार। पहा=पथ। मोटा=बहुत बड़ा। सेत=श्वेत। =डंडा।

हे मनुष्य ! ! सावधान हो जा, अाज्ञाननिद्रा में पड़े रहना ठीक नहीं क्योंकि यम—मृत्यु-रूपी बटमार, लुटेरा तेरा पथ बन्द कर रहा है। सावधान होकर मुक्त होने का कुछ उपाय कर क्योंकि मृत्यु जैसा भयंकर शत्रु तेरे सम्मुख अड़ा हुआ है। संसार रूपी वन में विनाशकारी श्वेत कौए आ गये हैं किन्तु तू फिर भी सावधान नहीं होता। कबीर कहते हैं कि मनुष्य ! तभी ज्ञान प्राप्त कर सावधान होता है जब उसकी मृत्यु आ धमकती है किन्तु—

"अब पछताये क्या होत है जब चिड़िया चुग गईं खेत।"

जाग्या रे नर नींद नसाई, चित चेत्यौ च्यंतामणि पाई ।।टक।।
सोवत सोवत बहुत दिन बीते, जन जाग्यां तसकर गये रीते ।।
जन जागे का ऐसहि नांण, बिष से लागै बेद पुरांण।
कहै कबीर अब सोवौं नांहि, रांम रतन पाया घट मांहि ।।३५२।।

अज्ञान निद्रा नष्ट हो जीवात्मा के जाग जाने पर मन सावधान हो गया और चिंतामणि स्वरूप परमात्मा की प्राप्ति हो गई। अब मुझे सोते सोते, अज्ञान में पड़े हुए बहुत समय चला गया था किन्तु जाग जाने पर ज्ञान लाभ करने से समस्त चोर—काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह—खाली हाथ, कुछ बिगाड़े बिना, लौट गये। ज्ञान-चक्षु प्राप्त हो जाने पर वेद-पुराण आदि शास्त्रग्रंथों का ज्ञान तो मुझे वृथा दिखाई देता है। कबीर कहते हैं कि अब मैं अज्ञान में नहीं पड़ूंगा क्योंकि मैंने हृदय के भीतर ब्रह्म की प्राप्ति कर ली है।

संतनि एक अहेरा लाधा,
मिर्गनि खेत सबनि का खाधा ।।टक।।
या जंगल मैं पांचौं मृगा, एई खेत सबनि का चरिगा ।।
पारधीपनौं जे साधं कोई, अध खाधा सा राखै सोई।
कहै कबीर जो पंचौं मारै, आप तिरै और कूं तारै ।।३५३।।

साधुगण एक ब्रह्म अथवा भक्ति के आखेटक को रखते हैं, माया ने समस्त मनुष्यों की सम्पत्ति समाप्त कर दी। इस संसार रूपी वन में पांच विकारों के मृग रहते हैं जो सबकी खेती को चर गये। किन्तु जो लोग भक्ति-साधना करते हैं उनकी सुकृत्य-सम्पति चाहे आधी समाप्त भी हो गई हो फिर भी रक्षित हो जाती है क्योंकि भक्ति का आखेटक इन विकारों—मृगों—काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह,—को समाप्त कर देता है। कबीर कहते हैं कि जो इन पंच विकारों के मृग को समाप्त कर देता है वह स्वयं तो मुक्त हो ही जाता है, दूसरों को भी मुक्ति की प्रेरणा देता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विशेष— पांचों मृगा' से पांचों ज्ञानेन्द्रियों के विषयों का भी अर्थ लगाया जा ...है।

हरि कौ विलोवनौं बिलोइ मेरी माई,
ऐसैं बिलोइ जैसें तत न जाई ॥टेक॥
...तन करि मटकी मनहि बिलोइ, ता मटकी मैं पवन समोइ ॥
...ला प्यंगुला सुषमन नारी, बेगि बिलोइ ठाढी छछिहारो ।
...है कबीर गुजरी बौरांनीं, मटकी फूटीं जोति समांनीं ॥३५४॥

कबीर अपनी आत्मा को सम्बोधित कर कहते हैं कि हे सखि ! प्रभु-भक्ति के ... ऐसा बिलो जिससे विश्व का नवनीत—सारतत्त्व प्राप्त हो जाय । शरीर की ... बनाकर मन को बिलो और इस शरीर की मटकी में प्राणायाम साधना कर । ...गला, सुषुम्णा का सम्मिलन कर शीघ्र मनःसाधना कर । कुण्डलिनी इस अवसर ...क्षा में है जिससे वह शीघ्र विस्फोट कर अमृत का पान कर । कबीर कहते हैं ...त्मारूपी 'गूजरी' प्रभु-भक्ति में मदमस्त हो रही है और शरीर की मटकी फूट ... र अंश अंशी में विलीन हो गया । आत्मा का परमात्मा से तादात्म्य हो गया ।

विशेष—१ सांगरूपक अलंकार ।

२. कबीर ने यहाँ आत्मा को 'गूजरी' इसलिए कहा कि अहीर और गूजर ...का मुख्य व्यवसाय गौ-भैंस पालकर दूध का व्यापार करना था ।

...आसण पवन कियैं दिढ रहु रे, मन का मैल छाडि दे बौरे ॥टेक॥
...क्या सींगी मुद्रा चमकायें, क्या बिभूति सब अगि लगायें ॥
...सो हिंदू सो मुसलमांन, जिसका दुरस रहै ईमांन ॥
...सो ब्रह्मा जो कथै ब्रह्म गियांन, काजी सो जांनें रहिमांन ॥
...कहै कबीर कछू आंन न कीजै, रांम नांम जपि लाहा लीजै॥३५५॥

आसण=आसन, समाधि से तात्पर्य ; योग के अष्टांग साधनों में से एक । ...=प्राणायाम । दिढ=दृढ़ । बौरे=बावले, पागल । सींगी=शृंगी, योगियों के ... करने का उपकरण विशेष । मुद्रा=मुद्रा, योगियों का एक आभूषण । ...=भस्म । दुरस=दुरुस्त, ठीक, दृढ़ । लाहा=लाभ ।

... हे जीवात्मा ! तू समाधिस्थ हो प्राणायाम की दृढ़ साधना द्वारा मन का कलुष ...र ले । योग केवल मात्र शृंगी, मुद्रा धारण करने से ही नहीं बना जा सकता ... भस्म रमाने से कोई साधु हो सकता है । चाहे कोई हिन्दू है अथवा मुसलमान, ...ही है जिसका धर्म पक्का रहे, मन चंचल न रहे । ब्राह्मण अथवा ब्रह्म वही है ... ज्ञान का कथन करता है एवं काजी वही है जो ख़ुदा को जानता है । कबीर ...प्ति का सरलतम उपाय बताते कहते हैं कि 'राम-नाम-स्मरण द्वारा परम-प्रभु की

RajGuru Math, Shivala, Varaṇasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्राप्ति कर लो, अन्य कुछ विधि-विधान अथवा आडम्बर करने की किंचिन्मात्र भी आवश्यकता नहीं है।

ताथैं कहिये लोकाचार, बेद कतेब कथैं ब्यौहार ।।टेक।।
जारि बारि करि आवै देहा, मूंवां पीछै प्रीति सनेहा ।।
जीवत पित्रहि मारहि डंगा, मूंवां पित्र ले घालैं गंगा ।
जीवत पित्र कूं अन न ख्वांमैं, मूंवां पाछैं प्यंड भरांवैं ।
जीवत पित्र कूं बोलैं अपराध, मूंवां पींछैं देहि सराध ।।
कहि कबीर मोहि अचिरज आवै, कऊवा खाइ पित्र क्यूं पावै ।।३५६।।

कबीर यहाँ वाह्याचारों का खण्डन करते हुए कहते हैं कि लोकाचार के विषय में उस को क्या समझाया जाय जो धर्मग्रंथों पर आश्रित रहता है। मृतक की देह को जलाकर उसका चिह्न तक समाप्त कर सम्बंधी बाद में रो पीट कर मिथ्या प्रेम-प्रदर्शन करते हैं। जीवितावस्था में तो पिता को लोग दुत्कारते हैं, अन्य प्रकार से अपमान करते हैं और मृत्यु को प्राप्त हो जाने पर उसे गंगा में ले जाकर विविध विधि-विधान रचते हैं। जीते जी तो लोग पिता को भोजन तक नहीं देते और मर जाने पर उसका पिंडदान करते हैं। जीते जी तो पिता को कुवचन कहते हैं और मर जाने पर उसका श्राद्ध करते हैं—कैसी विडम्बना है। कबीर कहते हैं कि मुझे तो यह आश्चर्य है कि श्राद्ध में कौए जिमाने से वह भोजन पितृगण कैसे प्राप्त कर लेते हैं ?

बाप रांम सुनि बीनती मोरी,
तुम्ह सूं प्रगट लोगनि सूं चोरी ।।टेक।।
पहलैं कांम मुगध मति कीया, ता भै कंपै मेरा जीया ।।
रांम राइ मेरा कह्या सुनीजै, पहले बकसि अब लेखा लीजै ।।
कहै कबीर बाप रांम राया, अबहूं सरनि तुम्हारी आया ।।३५७।।

हे पिता परमेश्वर ! आप मेरा निवेदन कृपा कर सुन लीजिए क्योंकि मैं संसार के सम्मुख तो अपनी वास्तविक दशा बताते लजाता हूं और आपसे सब कुछ प्रकट कर देता हूं। पहले तो मुझे विषय-वासना ने अपने आकर्षणों में लिप्त कर लिया किन्तु अब उसका परिणाम सोच-सोचकर मेरा मन भयभीत हो रहा है। हे राजा राम ! आप मेरा निवेदन कृपा कर सुन लीजिए फिर चाहे आप उस पर अपना कोई भी अभिमत दें। कबीर कहते हैं कि हे परमपिता परमेश्वर, अब तो मैं आपकी शरण में आ गया हूं अब आप मेरी रक्षा कीजिए।

अजहूं बीच कैसे दरसन तोरा,
बिन दरसन मन मांनैं क्यूं मोरा ।।टेक।।
हमहि कुसेवग क्या तुम्हहि अजांनां, दुहु मैं दोस कहौ किन रांमां।
तुम्ह कहियत त्रिभवन पति राजा, मन बंछित सब पुरवन काजा ।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कहै कबीर हरि दरस दिखावौ,
हमहि बुलावौ कै तुम्ह चलि आवौ ।।३५८।।

हे प्रभु ! मैं आज कैसे आपका दर्शन पाऊं और बिना आपके दर्शन के मेरे मन शान्ति नहीं । मैं तो आपका कुसेवक ही सिद्ध हुआ किन्तु आपने मुझे क्यों बिसरा , आप में ऐसी अज्ञानता कैसे आ गई ? क्या मैं और आप दोनों ही दोषी हैं ? तो त्रिलोकीनाथ और समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाले कहलाते हो, मेरी कामना पूर्ण कीजिए । कबीर कहते हैं कि हे ईश्वर ! अब आप मुझे अपना न प्रदान कीजिए, या तो आप मुझे अपने पास बुला लो अथवा फिर स्वयं हा आ जाओ ।

विशेष—यहाँ कबीर में सूर के समान भावों की सहज, स्वतन्त्र, अभिव्यक्ति होती है जिसमें इष्ट और उपासक का सामीप्य प्रत्यक्ष हो जाता है । वस्तुतः भक्ति की ऐसी अवस्था है जहां भक्त के पावन हृदय की प्रेमधारा मर्यादा के र तोड़ अपने प्रियतम से मिलने के लिए उमड़ चलती है ।

क्यूं लीजै गढ़ बंका भाई, दोत्रर कोट अरु तेवड़ खाई ।।टेक।।
कांम किबाड़ दुख सुख दरबांनीं, पाप पुंनि दरवाजा ।
क्रोध प्रधांन लोभ वड दूंदर, मन मैं वासी राजा ।।
स्वाद सनाह टोप ममिता का, कुबधि कमांण चढ़ाई ।
त्रिसना तीर रहै तन भींतरि, सुबधि हाथि नहीं आई ।।
प्रेम पलीता सुरति नालि करि, गोला ग्यांन चलाया ।
ब्रह्म अग्नि ले दिया पलीता, एकै चोट ढहाया ।।
सत संतोष ले लरनैं लागे, तोरे दस दरवाजा ।
साध संगति अरु गुर की कृपा थैं पकर्यौ गढ़ कौ राजा ।।
भगवंत भीर सकति सुमिरण की, काटि काल की पासी ।
दास कबीर चढ़े गढ़ ऊपरि राज दियौ अविनासी ।।३५६।।

कबीर यहां हठयोगी साधना का वर्णन कर कहते हैं कि उस दुर्लभ शून्य-पर किस भाँति पहुंचा जाय ? क्योंकि मार्ग में उसकी तीन खाई (त्रिगुण) तथा (द्वैत) सुरक्षा हो रही है । वहां पर काम के फाटक लगे हुए हैं तथा सुख और प्रहरी हैं जो पाप और पुण्य के दरवाजों पर बैठे हुए हैं । क्रोध वहाँ प्रधान है लोभ को भी उच्च स्थान प्राप्त है । फिर मन में उस राजा की स्थिति है । रसना विविध स्वाद एवं प्रेम तथा ममता का टोप मनुष्य ने लगाकर कुमति का धनुष, पर तृष्णा के बाण जो शरीर को बींध रहे हैं—लगे हुए हैं और ज्ञान, विवेक, इसे प्राप्त हो ही नहीं रहा है । किन्तु साधक को उस राजा तथा उसके किले की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्राप्ति तभी हुई जब प्रभु-प्रेम का पलीता सुरति के गोले में लगाकर उसका चालक ज्ञान को बनाया एवं ब्रह्माग्नि से इसका विस्फोट कर मायाडम्बर को नष्ट कर दिया। सत्य और सन्तोष कुविचारों को समाप्त करने लगे, इस पर ब्रह्मरन्ध्र खुल गया साधु-संगति और गुरु कृपा के द्वारा ही इस शून्य गढ़ में स्थित ब्रह्म रूपी राजा को प्राप्त कर लिया। ईश्वर-भक्ति और नाम-स्मरण के द्वारा मृत्यु और आवागमन चक्र को नष्ट कर दिया। भक्त कबीर इस प्रकार उस शून्य-गढ़ के ऊपर चढ़ गये और ब्रह्म ने उन्हें वहां परमपद का राज्य प्रदान किया।

विशेष – सांगरूपक अलंकार।

रैनि गई मति दिन भी जाइ, भवर उड़े बग बैठे आई ॥टेक॥
कांचै करबै रहै न पांनीं, हंस उड्या काया कुमिलांनीं।
थरहर थरहर कंपै जीव, नां जांनूं का करिहै पीव॥
कऊवा उड़ावत मेरी बहियां पिरांनीं,
कहै कबीर मेरी कथा सिरांनीं ॥३६०॥

रहस्यवादी कवि कबीर ने यहां प्रिय-मिलन से पूर्व की मनःस्थिति को नवोढ़ा के समान अभिव्यक्त किया है जो प्रथम समागम-भय से प्रिय-मिलन में संकोच करती है। वे कहते हैं कि रात बीत गई थी और अब दिवस भी व्यतीत हुआ जा रहा है, रात्रि-आगम सूचक चिन्ह प्रकट होने लगे हैं, भ्रमर पुष्प-पराग से उठ २ कर उड़ चले और बगुले पंक्ति बद्ध हो होकर अपने २ स्थान को लौट चले। मिट्टी के कच्चे घट में जिस प्रकार जल नहीं रुक सकता उसी भांति आत्मा के उड़ जांने पर पार्थिव शरीर की भी समाप्ति कच्चे मिट्टी के भाजन के समान हो जाती है। अब मेरी आत्मा थर-थर कांप रही है क्योंकि पता नहीं प्रियतम—ब्रह्म—प्रथम मिलन में किस भाँति व्यवहार करेगा? प्रियागम सूचक शुभ-शकुन कौए को उड़ाते हुए मेरी भुजा शिथिल हो गई, कबीर कहते हैं कि यह मेरी मिलन-पूर्व अवस्था है।

काहे कूं भीति बनांऊं टाटी, का जांनूं कहां परिहै माटी ॥टेक॥
काहे कूं मंदिर महल चिणांऊं, मूंवां पीछें घड़ी एक रहण न पाऊं॥
काहे कूं छांऊं ऊंच उंचेरा, साढ़े तीनि हाथ घर मेरा।
कहै कबीर नर गरब न कीजै, जेता तन तेती भुंइ लीजै ॥३६१॥

कबीर कहते हैं कि हे मनुष्य! तुझे पता नहीं कि मृत्यु के पश्चात् किस स्थान पर तेरे शरीर की मिट्टी जाकर पड़ेगी, फिर भला क्यों ऊंचे ऊंचे मकान आदि बनाने की बात सोचता है? मृत्यु के पश्चात् तू इस संसार में एक क्षण के लिये भी नहीं रुक पायेगा फिर भला क्यों महल आदि बनाता है? ऊंची ऊंची अट्टालिकाओं का क्या लाभ, तेरा वास्तविक घर तो साढ़े तीन हाथ का शरीर ही है। कबीर कहते

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हे मनुष्य व्यर्थ घमंड करने की आवश्यकता नहीं, जितना भर शरीर की गुज़र ए स्थान पर्याप्त हो उतना ही लेना चाहिए।

राग बिलावल

बार बार हरि का गुण गावै, गुर गमि भेद सहर का पावै ।।टेक।।
आदित करै भगति आरंभ, काया मंदिर मनसा थंभ।
अखंड अहनिसि सुरष्या जाइ, अनहद बेन सहज मैं पाइ ।।
सोमवार ससि अमृत झरै, चाखत बेगि तपै निसतरै।
बांणीं रोक्यां रहै दुवार, मन मतिवाला पीवनहार ।।
मगलवार ल्यौ मांहींत, पंच लोक की छाड़ौ रीत।
घर छाड़ै जिनि बाहिर जाइ, नहीं तर खरौ रिसावै राइ ।।
बुधवार करै बुधि प्रकास, हिरदा कवल मैं हरि का बास।
गुर गमि दोऊ एक समि करै, ऊरध पंकज थैं सूधा धरै ।।
ब्रिसपति विषिया देइ बहाइ, तीनि देव एकै संगि लाइ।
तीनि नदी तहां त्रिकुटी मांहि, कुसमल धोबै अहनिसि न्हांहि ।।
सुक्र सुधा ले इति ब्रत चढ़ै, अह निसि आप आप सूं लड़ै।
सुरषी पंच राखिये सबै, तौ दूजी द्रिष्टि न पैसे कबै।
थावर थिर करि घट मैं सोइ, ज्योति दीवटी मेल्है जोइ ।।
बाहरि भीतरि भया प्रकास, तहां भया सफल करम का नास।
जब लग घट मैं दूजी आंण, तब लग महलि न पावै जांण।
रमिता रांम सूं लागै रंग, कहै कबीर ते निर्मल अंग ।।३६२।।

सद्गुरु ही इस अगम्य शरीर रूपी गढ़ का भेद पा सकते हैं क्योंकि वह प्रति- प्रभुभक्ति में दत्तचित रहते हैं। अब आगे कबीर भक्ति—योगसाधना—विधि वर्णन करते हुए कहते हैं कि साधक भक्ति का प्रारम्भ करता है, उसके लिये र ही मन्दिर है एवं मन ही वह स्तम्भ है जिस पर भक्ति—शरीर के मन्दिर का है। इस मनःसाधना से भक्त रातदिन प्रभु में चित्त लगाता हुआ अनहद नाद की स्था को प्राप्त कर लेता है। अब सप्ताह के प्रत्येक दिवस का महत्व बताते हुए र कहते हैं कि सोमवार को ब्रह्मरन्ध्र से अमृत स्रवित होता है जिसके पान से स्त ताप विदूरित हो जाते हैं। इस महारस का पान करने वाला मन है और वा इसके सम्मुख अन्य सांसारिक वस्तुओं के रस को बन्द रखती है! मंगलवार साधक पंचविषयों की परिधि का परित्याग कर प्रभु में लय लगाता है। वह संसार , जिसे घर समझता है, छोड़कर ईश्वर लोक में प्रवेश करता है, इसके विपरीत ने पर प्रभु अप्रसन्न होते हैं। बुद्धवार को बुद्धि अपना निर्मल प्रकाश करती हुई अनुकम्पा से द्वैत का भ्रम, ऊर्ध्व समाधि द्वारा कमल भेदन कर मिटा देती है,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस भांति हृदयस्थ ब्रह्म-दर्शन होता है। साधक बृहस्पति को त्रिदेव का ध्यान कर समस्त विषय-वासना नष्ट कर देता है। जहां तीनों—आँख, नाक एवं मस्तिष्क का सन्धि बिन्दु है, वहीं त्रिकुटी है। इसी में अहर्निश अपनी वृत्ति केन्द्रित रखते हुए योगी को अपना समस्त पाप-कलुष धो देना चाहिए। शुक्रवार को महारस का पान कर भक्ति साधना करते हुए स्वयं अपने दोषों पर दृष्टिपात करे और पंच-ज्ञानेन्द्रियों को अपने वश में रखे तो कभी भी द्वैत भावना अंकुरित न हो। शनिवार को उस परम ब्रह्म को चित्त में पूर्ण स्थिर कर लिया जाय तो वह अलख निरंजन ज्योति निश्चय ही प्राप्त हो जाती है। उसकी प्राप्ति से समस्त अन्तर-बाह्य प्रकाशमान हो कर्म जंजाल कट जाता है। यदि साधक के हृदय में द्वैत भावना है तो इस शरीर स्थित मन्दिर, जिसमें प्रभु का वास है, का रहस्य प्राप्त नहीं किया जा सकता। कबीर कहते हैं कि जो अपनी वृत्तियों को राम में रमा देता है उसका अंग-प्रत्यंग निर्मल हो जाता है।

विशेष— ये समस्त मान्यताएं योगियों की हैं जो अद्यतन किसी न किसी रूप में कबीर पन्थियों में भी विद्यमान हैं।

रांम भजै सो जांनिये, जाकै आतुर नांही,
सत संतोष लीयें रहै, धीरज मन मांही ॥टेक॥
जन कौं कांम क्रोध व्यापै नहीं, त्रिष्णा न जरावै।
प्रफुलित आनंद मैं, गोव्यंद गुंण गावै ॥
जन कौं पर निंद्या भावै नहीं, अरु असति न भाषै।
काल कलपनां मेटि करि, चरनूं चित राखै ॥
जन सम द्रिष्टी सीतल सदा, दुबिधा नहीं आनैं।
कहै कबीर ता दास सूं, मेरा मन मांनै ॥ ३६३॥

कबीर कहते हैं कि प्रभु भक्त उसी को समझना चाहिए जिसमें लेश मात्र भी आतुरता न हो। वह सत्य, सन्तोष एवं धैर्य के आश्रय पर रहता है। भक्त को विषय-वासना, क्रोध जैसे विकार कभी नहीं व्यापते और न उसे तृष्णा व्यथित करती है। उस भक्त को न तो दूसरों की निंदा रूचिकर लगती है और न वह असत्य-भाषण करता है। वह मृत्यु-भय से दूर रह निश्चितमना प्रभु-चरणों में हृदय लगाये रखता है। वास्तव में वह समत्व स्थिति को प्राप्त कर लेता है और संसार-भ्रम में नहीं पड़ता। कबीर वर्णन करते हैं कि ऐसे ही भक्त से मुझे प्रेम है।

विशेष—गीता से तुलना कीजिये।

माधौ सो न मिलै जासौं मिलि रहिये,
ता कारं बरनि बहु दुख सहिये ॥टेक॥
छत्रधार देखत ढहि जाइ, अधिक गरब थैं खाक मिलाइ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अगम अगोचर लखी न जाइ, जहां का सहज फिरि तहां समाइ ।।
कहै कबीर झूठे अभिमान, सो हम सो तुम्ह एक समान ।।३६४।।

हे परम प्रभु ! आपके दर्शन नहीं होते, यदि आपसे मिलन हो जाय तो मैं आपके ही साथ रहूं। आपके न मिलने के ही कारण में बहुत से सांसारिक से जल रहा हूं। जो छत्रधारी राजा हैं वे तथा उनका समस्त वैभव पल भर में हो जाता है, अतः सम्पत्ति का गर्व उचित नहीं। वह अगम्य, अदृश्य त्मा देखा नहीं जाता वह सर्वत्र होते हुए भी अगोचर है। कबीर कहते अभिमान करना मिथ्या है। प्रभु और हम, आत्मा तथा परमात्मा, अंश-- हैं।

अहो मेरे गौब्यंद तुम्हारा जोर, काजी बकिवा हस्ती तोर ।।टेक।।
बांधि भुजा भलैं करि डार्यौ, हस्ती कोपि मूंड मैं मार्यौ।
भाग्यौ हस्ती चीसां मारी, वा मूरति की मैं बलिहारी ।।
महावत तोकूं मारौं साटी, इसहि मरांऊं घालौं काटी।
हस्ती न तोरे धरै धियांन, वाकै हिरदै बसै भगवांन ।।
कहा अपराध सत हौं कीन्हां, बांधि पोट कुंजर कूं दीन्हां।
कुंजर पोट बहु बदन करै, अजहूं न सूझै काजी अंधरै।
तीनि बेर पतियारा लीन्हां, मन कठोर अजहू न पतीनां ।।
कहै कबीर हमारे गोब्यंद, चौथे पद में जन का ज्यंद ।।३६५।।

कबीर कहते हैं कि हे प्रभु ! आपकी महिमा अपरम्पार है। काजी आपके त्व का बखान करते अघाता नहीं। जिसके हाथ पैर बंधे हुए हैं चाहे जो भी के सिर में मार सकता है किन्तु जो भागते हुए हाथी को मारे उसी पुरुष की र बलिहारी जाता है। भाव यह है कि जो व्यक्ति विषय-आकर्षणों को युवाकाल ही त्याग देता है वह वृद्धावस्था आने पर उनसे मुक्त होने वाले से कहीं श्रेष्ठ है। न रूपी महावत ! मैं तुझे डण्डी से मारूंगा जिससे समस्त पाप समाप्त हो जायं। मायारूपी हाथी के पैर में न पड़ प्रभु का निरन्तर ध्यान करते हैं उनके हृदय में का वास है। हे साधुगण ! मैंने ऐसा कौन सा अपराध किया है जिसके दण्ड-- रूप पाप गठरी बंधवा कर मुझे माया-हाथी के साथ कर दिया है ? यह हाथी दुंद मचाता है किन्तु विषयासक्त अज्ञानांध काजी को अब भी वास्तविकता का न नहीं हुआ। मैंने मन को नियन्त्रण में रखने का उपक्रमं कई बार किया किन्तु यह भी नियन्त्रण में नहीं है। कबीर कहते हैं कि दयालु प्रभु निश्चय ही अन्त में भक्त कल्याण करते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कुसल खेम अरु सही सलांमति, ए दोइ काकौं दीन्हां रे।
आवत जांत दुहूंघां लूटे, सर्व तत हरि लीन्हां रे ॥टेक॥
माया मोह मद मैं पीया, मुगध कहैं यहु मेरी रे।
दिवस चारि भलैं मन रंजे, यहु नांही किस केरी रे॥
सुर नर मुनि जन पीर अवलिया, मीरां पैदा कीन्हां रे।
कोटिक भये कहां लूं बरनूं, सबनि पयांनां दीन्हां रे॥
धरती पवन अकास जाइगा, चंद जाइगा सूरा रे।
हम नांही तुम्ह नांहीं रे भाई, रहे रांम भरपूरा रे॥
कुसलहि कुसल करत जग खीनां, पड़े काल भौ पासी।
कहै कबीर सबै जग बिनस्या, रहे रांम अबिनासी रे ॥३६६॥

कबीर कहते हैं कि कुशल-क्षेम और पूर्ण सुख-सुविधा किसी को प्राप्त नहीं होती। आवागमन में पड़े जीव को लुटना पड़ता है और उसका समस्त विवेक नष्ट हो जाता है। माया-मोह से मदमस्त हो जीव अहं. अथवा ममत्व के फेर में पड़ता है। वास्तव में यह माया जन्य आकर्षण किसी के भी नहीं, दो चार दिन भले ही यह मनरन्जन कर दें किन्तु अन्ततः ये दुख में ही परिवर्तित हो जाते हैं। देव, मनुज, ऋषि, पीर-पैगम्बर, औलिया, मीर आदि करोड़ों प्रकार की जीवात्माएं ईश्वर ने उत्पन्न कीं किन्तु अन्ततः सबको यहाँ से जाना पड़ा। पृथ्वी, आकाश, सूर्य, चन्द्र, वायु, हम और तुम सब काल-क्रम में नष्ट हो जायेंगे, यदि शेष रहेगा तो केवल वह ब्रह्म ही शेष रहेगा। कुशलता और सुख के उपक्रम करता ही करता यह संसार नष्ट हो मृत्युबन्धन में पड़ गया। कबीर कहते हैं कि समस्त संसार विनष्ट हो जाता है, केवल अविनाशी प्रभु ही शेष रहता है।

मन बनजारा जागि न सोईं, लाहे कारनि मूल न खोईं ॥टेक॥
लाहा देखि कहा गरबांनां, गरब न कीज मूरिख अयांनां॥
जिनि धन सच्या सो पछितांनां, साथी चलि गये हम भी जांनां।
निस अंधियारी जागहु बंदे, छिटकन लागे सबही संधे॥
किसका बंधू किसकी जोई, चल्या अकेला संगि न कोई।
ढरि गये मंदिर टूटे बंसा, सूके सरवर उड़ि गये हंसा॥
पंच पदारथ भरि है खेहा, जरि बरि जायगी कंचन देहा।
कहत कबीर सुनहु रे लोई, रांम नांम बिन और न कोई ॥३६७॥

हे मन रूपी बनजारे! तू सावधान हो, सचेत हो जा, अज्ञान-निन्द्रा में मत पड़, मिथ्या सांसारिक लाभ के कारण अपने पूर्वसंचित पुण्य के मूलधन को भी मत खो देना। लाभ की सम्पत्ति को देखकर व्यर्थ क्यों गर्व करता है, हे अज्ञानी गर्व

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करना चाहिए। जिन्होंने धन का संचय किया है वे अन्त समय में पछताते ही हैं। अन्य साथी तो इस संसार से चले गये और हमें भी शीघ्र ही जाना है ऐसा सोचकर कार्य कर। इस संसार में अज्ञान की अंध-रात्रि है जिसमें विकारों के चोर भी सध लगाने की ताक में लगे हुए हैं। यहां कोई का बन्धु-बांधव अथवा सम्बन्धी नहीं है, अन्त में मनुष्य अकेले ही जाता है। शरीर के जीर्ण हो नष्ट हो जाने पर प्राणवायु निकलने पर आत्मा चली जाती शरीर के नष्ट होने पर पंच तत्व निर्मित यह साने सी सुन्दर काया अग्नि में जल धूलि में मिल जाती है। कबीरदास जी कहते हैं कि हे लोई! (शिष्या का नाम) -पूर्वक सुनो, राम- नाम के अतिरिक्त यहां और कुछ भी सत्य नहीं है।

मन पतंग चेते नहीं, जल अंजुरी समांन।
बिषिया लागि बिगूचिये, दाझिये निदांन ॥टेक॥
काहे नैंन अनंदियै, सूझत नहीं आगि।
जनम अमोलिक खोइयै, सांपनि संगि लागि॥
कहै कबीर चित चंचला, गुर ग्यांन कह्यौ समझाइ।
भगति हींन न जरई जरै, भावै तहां जाइ ॥३६८॥

कबीर कहते हैं कि मन माया-दीप पर शलभ के समान मरता है किन्तु वह देखता कि जीवन अंजलि-बद्ध जल के तुल्य क्षणिक अस्तित्व वाला है। विषया- हो वह व्यर्थ ही इसे नष्ट कर शरीर को सांसारिक तापों से तप्त कर रहा है। नेत्र क्यों निद्रालु रहते हैं, उन्हें वासनाग्नि दृष्टिगत क्यों नहीं होती? माया-साँपिन साथ वन्धन में पड़ अमूल्य मानव-जीवन को जीवात्मा खो देती है। कबीर कहते हैं मन तो चंचल है, गुरु ने इसे ज्ञानामृत समझा कर कहा है। भक्तिहीन तो निश्चय संसार की विषयाग्नि में जलता है क्योंकि वह गम्य-अगम्य प्रत्येक स्थल पर ता है।

स्वादि पतंग जरै जरि जाइ,
अनहद सौं मेरौ चित न रहाइ ॥टेक॥
माया कै मदि चेति न देख्या, दुबिध्या मांहि एक नहीं पेख्या।
भेष अनेक किया बहु कीन्हां, अकल पुरिष एक नहीं चीन्हां॥
केते एक मूये मरहिगे केते, केतेक मुगध अजहू नहीं चेते।
तंत मंत सब ओषद माया, केवल रांम कबीर दिढाया ॥३६९॥

जिस प्रकार शलभ अपने हित-अनहित का विचार किये विना नष्ट हो जाता उसी प्रकार मैं विनाशक सांसारिक आकर्षणों में तो लगा हुआ हूं किन्तु 'अनहद' मेरी वृत्ति नहीं रमती। मायामद में मैंने सावधान हो अपना हित-अनहित नहीं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

देखा और संसार-भ्रम में ही पड़ा रहा। विविध वेश-धारण कर मैंने बहुत आडम्बर ठाठ खड़े किये किन्तु उस परम-परमात्मा को मैंने नहीं पहचाना। इसी संसार-चक्र में पड़े हुए न जाने कितने मर गये किन्तु आज भी अधिकांश माया लिप्त व्यक्ति सावधान नहीं हुए हैं। तन्त्र,मन्त्र, औषध आदि के उपकरण माया के हैं। कबीर को तो केवल प्रभु का दर्शन चाहिए।

एक सुहागिन जगत पियारी, सकल जीव जंत की नारी ॥टेक॥
खसम मरै वा नारि न रोवै, उस रखवाला औरै होवै।
रखवाले का होइ बिनास, उतहि नरक इत भोग विलास ॥
सुहागनि गलि सोहै हार, संतनि बिख बिलसै संसार।
पीछैं लागी फिरै पचिहारी, संत की ठठकी फिरै बिचारी ॥
संत भजै वा पाछी पड़, गुर के सबदूं मार्यौ डरै।
साषत कै यहु प्यंड परांइनि, हंमारी द्रिष्टि परै जैसें डांइनि ॥
अब हम इसका पाया भेद, होइ कृपाल मिले गुरदेव।
कहै कबीर इब बाहरि परी, संसारा कै अचल टिरी ॥३७०॥

माया रूपी सुहागिन नारी समस्त संसार को प्रिय है। वह समस्त प्राणियों को प्रिय लगती है। इस माया-सुन्दरी का पति मनुष्य नष्ट होता है किन्तु इसे फिर भी दुख नहीं होता। उसका स्वामी तो कोई और ही होता है, वह प्रभु की दासी है। इस माया के रक्षक, पति, मानव का तो दोनों ओर विनाश है, यहां संसार में तो वह भोग विलास में अपनी शक्ति का अपव्यय करता है और मृत्यूपरान्त उसे नरक भोगना पड़ता है। इस माया-नारी के कण्ठ में आकर्षक हार है किन्तु साधुगण तो इसे और इसके संसार को विष तुल्य मानते हैं। अब यह दासी के समान भक्त के पीछे-पीछे दीनता से लगी फिरती है। जो भक्त प्रभु का भजन करता है उसके तो यह पीछे ही दासी के समान लगी रहती है एवं गुरु के उपदेश से तो इसकी रूह काँपती है। दुराचारी शाक्त को यह प्राणतुल्य प्रिय है तो हमें तो साक्षात् डायन, राक्षसी सी लगती है। कबीर कहते हैं कि अब मैं इसका रहस्य समझ गया हूं, यह रहस्य गुरु के ज्ञान-दान देने से ही समझ में आ सका है। अब तो यह माया मेरे सम्मुख तक नहीं आती और संसारी व्यक्ति के पास से टाले नहीं टलती।

पारोसनि मांगै कंत हमारा,
पीव क्यूं बौरी मिलहि उधारा ॥टेक॥
मासा मांगै रती न देऊं, घटै मेरा प्रेम तौ कासनि लेऊं।
राखि परोसनि लरिका मोरा, जे कछु पाऊं सु आधा तोरा ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बन बन ढूंढौं नैन भरि जोऊं, पीव न मिलै तौ बिलखि करि रोऊं।
कहै कबीर यहु सहज हमारा, बिरली सुहागनि कंत पियारा ॥३७१॥

पारौसनि=पड़ौसिन, अन्य संसारिक आत्मा। बौरी=पागल।

अन्य आत्मा हमारे पति—परमेश्वर—को मुझसे मांगती हैं किन्तु उन मूर्खाओं को यह ज्ञात नहीं कि प्रियतम उधार नहीं मिलते, उसकी प्राप्ति के लिए तो अपना सर्वस्व बलिदान करने की आवश्यकता है। यदि वह माशे भर भी उन्हें मांगने के लिए आती है तो मैं तो रत्ती भर भी देने के लिए प्रस्तुत नहीं हूं। हे सखि आत्मा! तुझ में व्याप्त माया को रख ले तो मैं तुझे अपनी भक्ति में आधा भाग दूंगी। मैं उन को वन-वन—सर्वत्र—खोज रही हूं और उनके लिए आकुल-व्याकुल हूं। यदि वे मिल जायें तो प्रेमातिरेक से मेरे अश्रु निकल पड़ेंगे। कबीर कहते हैं कि यह हमारा सत्य विश्वास है कि एकाध आत्मा में ही प्रिय-दर्शन की उत्कट लगन होती है।

विशेष—यहां कबीर भक्ति-क्षेत्र से प्रेम-क्षेत्र, जिसे दूसरे शब्दो में हम रहस्यवाद कह सकते हैं, में चले जाते हैं। भक्त की यह इच्छा होती है कि जिसे मैं प्यार करूं, जो मेरा आराध्य है वह सबका पूज्य हो किन्तु प्रेमी प्रिय पर एकाधिकार चाहता है। कबीर की मनःस्थिति भी यहाँ प्रिय पर पूर्ण स्वत्व स्थापित करने की है।

रांम चरन जाकै रिदै बसत है, ता जंन कौ मन क्यूं डोलै।
मानौं अठ सिध्य नव निधि ताकै हरषि हरषि जस बोलै॥टेक॥
जहाँ जहाँ जाइ तहां सच पावै, माया ताहि न झोलै।
बारंबार बरजि बिषिया तैं लै नर जौ मन तोलै॥
ऐसी जे उपजै या जीय कै, कुटिल गांठि सब खोलै।
कहै कबीर जब मन परचौ भयौ, रहै रांम कै बोलै॥३७२॥

रिदै=हृदय। डोले=चंचल हो। जस=यश। बरजि=निषेध। परचौ=परिचय।

कबीर कहते हैं कि जिसकी प्रभु के चरणों में वृत्ति रमी हुई होगी, उसका मन चंचल नहीं होता। उसे तो मानो अष्ट-सिद्धि एवं नवनिधि की सहज प्राप्ति हो जाती है और वह हर्षित हो-हो कर प्रभु गुणगान करता है। वह जहां कहीं भी जाता है सत शान्ति-लाभ करता है एवं माया उसे नहीं सताती। हे सांसारिक व्यक्ति! यदि तेरा मन विषय-वासना में भटकता है तो वारम्बार उसे वर्जित कर सुपंथ—सत्पथ—पर चलाओ। यदि मन इस प्रकार आचरण करे तो हृदय की समस्त

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कलुषता और पाप नष्ट हो जायें। कबीर कहते हैं कि जब मन का परम-तत्व से साक्षात्कार हो जाता है तो वह प्रभु का दास बना रहता है।

विशेष—अष्ठ सिद्धि एवं नवनिधि का उल्लेख पीछे किया जा चुका है।

जंगल मैं का सोवनां, औघट है घाटा।
स्यंघ बाघ गज प्रजलै, अरु लंबी बाटा ।।टेक।।
निस बासुरि पेड़ा पड़ै, जमदांनीं लूटै।
सूर धीर साचै मतै, सोई जन छूटै।।
चालि चालि मन माहरा, पुर पटण गहिये।
मिलिये त्रिभुवननाथ सूं, निरभै होइ रहिये।।
अमर नहीं संसार मैं, बिनसै नर-देही।
कहै कबीर बेसास सूं, भजि रांम सनेही ।।३७३।।

कबीर कहते हैं कि साधना-वन में सोना अत्यन्त कठिन कार्य है। मार्ग तो लम्बा है ही, साथ में सिंह, बाघ, हाथी आदि के रूप में साधक को विषय-विकार सताते हैं। रात दिन विपत्ति में ही पड़े रहना पड़ता है, साथ ही काल भी सर्वदा नष्ट करने के लिए तत्पर रहता है। धैर्यवान् शूरवीर ही इस मार्ग का अवलम्बन करते हैं, और वही संसार से मुक्त होता है। हे मेरे मन ! तू उस मार्ग पर चल और शून्य लोक के सुन्दर नगर को प्राप्त कर। वहाँ तुझे त्रिभुवनपति के दर्शन होंगे और उनके दर्शन से परमपद—अभय पद की प्राप्ति हो जायेगी। संसार में अमर कुछ भी नहीं है, यह मानव देह निश्चय ही नष्ट हो जायेगी। इसलिए विश्वासपूर्वक प्रियतम राम का भजन करो।

राग ललित

रांम ऐसो ही जांनि जपौ नरहरी,
माधव मदसूदन बनवारी ।।टेक।।
अनदिन ग्यांन कथैं घरियार, धूंवां धौलह रहै संसार।
जैसैं नदी नाव करि संग, ऐसैं हीं मात पिता सुत अंग।।
सबहि नल दुल मलफ लकीर, जल बुदबुदा ऐसी आहि सरीर।।
जिभ्या रांम नांम अभ्यास, कहै कबीर तजि गरभ बास ।।३७४।।

हे मनुष्यो ! प्रभु को अत्यन्त प्रतापवान् जानकर स्मरण करो, उसके माधव, मधुसूदन एवं बनवारी अनेक नाम हैं। सांसारिक लोग प्रतिदिन घर बैठे ज्ञान बघारते हैं किन्तु वे रहते धुएँ के महल सदृश क्षणिक स्थिति वाले इस संसार में ही हैं। जैसे नदी-नाव का संयोग क्षणिक होता है, उसी भांति माता-पिता, पुत्र आदि के सम्बन्ध अल्पकालिक हैं। समस्त प्राणी पाप-पूंज से बने हुए हैं। जल के बुलबले के समान इस शरीर का अस्तित्व क्षणिक है। कबीर कहते हैं कि गर्व को त्याग कर, इस जिह्वा से राम-नाम स्मरण का अभ्यास करो।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रसनां रांम गुन रमि रस पीजै,
गुन अतीत निरमोलिक लीजै ।।टेक।।
निरगुन ब्रह्म कथौ रे भाई, जा सुमिरत सुधि बुधि मति पाई ।।
बिष तजि रांम न जपसि अभागे, का बूड़े लालच के लागे ।
ते सव तिरे राम रस स्वादी, कहै कबीर बूड़े बकवादी ।।३७५।।

कबीर कहते हैं कि जिह्वा ! तू केवल राम-नाम के अमर रस का पान कर उसमें अमूल्य गुण विद्यमान हैं। हे भाइयो ! निर्गुण ब्रह्म का ध्यान करो स्मरण द्वारा ज्ञान, बुद्धि और विवेक की प्राप्ति होती है। मिषय का परित्याग अभाग्यवान् ! राम का जप कर, क्यों व्यर्थ लाभ के वशीभूत हो पतनोन्मुख है। कबीर कहते हैं कि जो भी मुक्त हुए हैं वे राम रस का पान करने वाले व्यर्थ ज्ञान बधारने वाले तो इस भवसिन्धु में डूबे ही हैं।

निबरक सुत ल्यौ कोरा, रांम मोहि मारि कलि बिष बोरा ।।टेक।।
उन देश जाइबो रे बाबू, देखिबो रे लोग किन किन खैबू लो ।
उड़ि कागा रे उन देस जाइबा, जासूं मेरा मन चित लागा लो ।।
हाट ढूंढ़ि ले, पटनपुर ढुंढि ले, नहीं गांव कै गोरा लो ।
जल बिन हंस निसह बिन रबू,
कबीरा कौ स्वांमीं पाइ परिकैं मनैंबू लो ।।३७६।।

कबीर प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि आप अपने अंश, पुत्र को पूर्ण निर्मल ही करें और मुझे तो मार डालो क्योंकि मैं तो कलियुग की विषय-वासना रस में हुआ हूं। हे मित्र ! तुम प्रभु के उस लोक में जाकर तनिक देखना तो सही कि मुक्तात्माएं किस भांति रहती हैं। हे कौए ! तू उड़कर के उस प्रिय के देश जा, सके प्रेम में अनुरक्त हूं। उस प्रभु के पास जाने वाले बाजार, नगर आदि समस्त नों से परिचित हो लो किन्तु इस मोहिनी माया से नहीं। जल के अभाव में और सूय के अभाव में रात्रि जिस भांति विकल रहती है उसी प्रकार मैं भी प्रभु- में विकल हूं। कबीर कहते हैं कि प्रियतम को मन का उत्सर्ग करके ही प्राप्त जा सकता है।

राग बसंत

सो जोगी जाकै सहज भाइ, अकल प्रीति की भीख खाइ ।।टेक।।
सबद अनाहद सींगी नाद, काम क्रोध बिषिया न बाद ।।
मन मुद्रा जाकै गुर कौ ग्यांन, त्रिकुट कोट मैं धरत ध्यान ।।
मनहीं करन कौं करै सनांन, गुर कौ सबद ले ले धरै धियांन ।
काया कासी खोजै बास, तहां जोति सरूप भयौ परकास ।।
ग्यांन मेषली सहज भाइ, बंक नालि कौ रस खाइ ।
जोग मूल कौ देइ बंद, कहि कबीर थिर होइ कंद ।।३७७।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वही योगी है जो सहज साधना करता है एवं ज्ञान तथा प्रेम का आधा लेकर जीवन धारण करता है। वह शृंगी धारण कर अनहद नाद में तल्लीन रहता तथा काम-क्रोध आदि विकारों के पास भी नहीं फटकता। मन को जो योग की मु नामक स्थिति में लगाये हुए गुरु का उपदेश चित्त में रखता है और त्रिकुटी स्थल वृत्तियों को केन्द्रित रखता है, गुरु उपदेश के द्वारा वह ध्यानावस्थित हो मन को शू तट पर स्नान कराता है। इस शरीर में ही जो काशी के समान पवित्र तीर्थ को खं लेता है उसे वहाँ ज्योतिस्वरूप परम-तत्व के प्रकाश का दर्शन होता है। ज्ञान-मेखल को सहज समाधि में धारण करने से सुषुम्णा ब्रह्मरन्ध्र में विस्फोट कर अमृत का पा करती है। मूलाधार चक्र से कुण्डलिनी को उठा देने पर कबीर कहते हैं कि प्रियत ब्रह्म का दर्शन होता है।

मेरौ हार हिरांनौं मैं लजाऊं सास दुरासनि पीव डराऊं ।।टेक
हार गुह्यौ मेरौ रांम ताग, बिचि बिचि मान्यक एक लाग।
रतन प्रवालै परम जोति, ता अंतरि अंतरि लागे मोति।।
पंच सखी मिलिहैं सुजांन, चलहु तजई ये त्रिवेणी न्हान।
न्हाइ धोइ कैं तिलक दीन्ह, मेरौ आहि परोसनि हार लीन्ह।।
तीनि लोक की जांनैं पीर, सब देव सिरोमनि कहै कबीर ।।३७८

मेरा भक्ति रूपी हार खो गया है जिससे मैं लज्जित हूं, सास से भयभीत छिपती हूं ही प्रियतम से भी डरती हूं। मेरा हार राम रूपी तागे से गुथा हु था जिसमें बीच बीच में माणिक्य लगे हुए थे। मूंगे की ज्योति का परम सुन्दर हा था जिसमें अन्य मोती भी थोड़ी थोड़ी दूर पर टंके हुए थे। पांच ज्ञानेन्द्रियां रू सखी मिलीं और वे मुझे स्नानार्थ ले गईं। नहा-धोकर तिलकबिन्दु आदि लगाने पश्चात् देखा तो पता नहीं हार किसने ले लिया था। वह सुन्दर हार खो गया, मे उसी सखी (इन्द्रियों से तात्पर्य) ने ही हार चुरा लिया। कबीर कहते हैं कि प्रभु! आप तो सर्वोच्च शक्ति हैं, तीनों लोकों के दुःखों से परिचित हैं, मेरा यह दु दूर कीजिए।

विशेष—१. सांगरूपक अलंकार।

२. कबीर ने यहां यह वर्णन सामान्य भारतीय वधू की मनःस्थिति में होक किया है। एक वधू का आभूषण खो जाने पर उसे जो सास का त्रास और पति भय होता है उसका बड़ा स्वाभाविक एवं मार्मिक वर्णन कबीर के इस पद में प्रे होता है।

नहीं छाड़ौं बाबा रांम नांम,
मोहि और पढ़न सूं कौन कांम ।।टेक।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रह्लाद पधारे पढ़न साल, संग सखा लीयें बहुत बाल।
मोहि कहा पढ़ावै आल जाल, मेरी पाटी मैं लिखि दे श्रीगोपाल ।।
तब संनां मुरकां कह्यौ जाइ, प्रहिलाद बंधायौ बेगि आइ।
तूं राम कहन की छाड़ि बांनि, बेगि छुड़ाऊं मेरौ कह्यौ मांनि ।।
मोहि कहा डरावै बार बार, जिनि जल थल गिर कौ कियौ प्रहार।
बांधि मारि भावै देह जारि, जे हूं रांम छाडौं तौ मेरे गुरहि गारि ।।
तब काढ़ि खड़ग कोप्यौ रिसाइ, तोहि राखनहारौ मोहि बताइ।
खंभा मैं प्रगट्यौ गिलारि, हरनाकस मार्यौ नख बिदारि ।।
महापुरुष देवाधिदेव, नरस्यंघ प्रकट कियौ भगति भेव।
कहै कबीर कोई लहै न पार, प्रहिलाद ऊबार्यौ अनेक बार ।।३७९।।

हे गुरुवर ! अब मैं राम नाम का आश्रय नहीं छोड़ सकता, मुझे राम नाम के अतिरिक्त अन्य किसी साहित्य के पढ़ने की क्या आवश्यकता है ? प्रह्लाद से सखाओं को लेकर पाठशाला में पढ़ने गये और उन्होंने अपने शिक्षक से कहा तुम मुझे संसार की अन्य बातें क्यों पढ़ा रहे हो, मेरी तख्ती पर तो केवल श्री पाल—प्रभु नाम—ही अंकित कर दो। तब गुरु ने उसके विष्णु विरोधी पिता से कर कहा और उसने शीघ्र आकर प्रह्लाद को बांध दिया और कहने लगे कि तू नाम उच्चारण छोड़ दे तो मैं तुझे शीघ्र बंधन-मुक्त कर दूंगा। प्रह्लाद ने पिता उत्तर दिया, तू मुझे क्यों बारम्बार डराता है। जिस प्रभु ने जल, थल एवं पर्वत कुछ न गिना मैं उसका नाम स्मरण नहीं छोड़ सकता। तुम्हारी इच्छा हो तो मुझे बांध कर अथवा जला कर मार दो किन्तु मैं रामाश्रय नहीं छोड़ सकता। उसने तलवार निकाल ली और क्रोधित होकर कहा, बता तेरा रक्षक प्रभु कहाँ। तब प्रभु स्तम्भ से नृसिंह रूप में प्रकट हुए और हिरण्कश्यप को नाखूनों से चीर। उस महान् ब्रह्म ने नरसिंह रूप में प्रकट होकर भक्तों के भाव की रक्षा की। और कहते हैं कि कोई उस प्रभु के रहस्य का पार नहीं पा सकता, उसने अनेक बार प्रह्लाद जैसे भक्तों की रक्षा की है।

विशेष—'क्या कबीर का ब्रह्म सगुण और अवतारवादी था ?—यह विचार स्थलों पर कबीर की ब्रह्म विषयक निर्गुण धारणा के सम्मुख प्रश्न सूचक चिन्ह साथ आ धमकता है।

हरि कौ नांउ तत त्रिलोक सार, लै लीन भये जे उतरे पार ।।टेक।।
इक जंगम इक जटाधार, इक अंगि बिभूति करै अपार।
इक मुनियर इक मनहूं लीन, ऐसैं होत होत जग जात खीन ।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इक ग्राराधै सकति सीव, इक पड़दा दे दे बधै जवी ।
इक कुलदेव्यां कौ जपहि जाप, त्रिभवनपति भूले त्रिबिध ताप ।।
ग्रंनहि छाड़ि इक पीवहि दूध, हरि न मिलै बिन हिरदैं सूध ।
कहै कबीर ऐसें बिचार, राम बिना को उतरे पार ।।३८०।।

एक मात्र प्रभु-नाम ही सत्य ग्रौर तीनों लोकों का सार है, इसमें वृत्ति रमाने से मनुष्य भवसागर से तर जाता है । कोई तो यति ग्रार जटाधारी साधु वन जाता है तो दूसरा ग्रपने ग्रंग-प्रत्यंग में विभति रमा ग्रपने को बहुत वड़ा तपस्वी मानता है । कोई शिव ग्रथवा शक्ति की ग्राराधना करता है ग्रौर एक पशु को ही बलि के लिए बांधे रहता है । कोई त्रिलोकीनाथ ब्रह्म को विस्मृत कर कुलदेवता को ही पूजने में ग्रपने कर्त्तव्य की इति श्री कर लेता है । एक वह भी ग्रपने को साधक मानता है जो ग्रन्न का परित्याग कर दुग्धाहारी बन जाता है किन्तु उन्हें ज्ञात नहीं कि हृदय की शुद्धता के ग्रभाव में प्रभु-प्राप्ति नहीं होती । कबीर कहते हैं कि हृदय में विचार कर देखो राम-भक्ति के ग्राश्रय बिना कोई भी संसार-सागर को नहीं तर सकता ।

हरि बोलि सूवा बार बार, तेरी ढिग मींनां कछू करि पुकार ।।टेक।।
ग्रंजन मंजन तजि बिकार, सतगुरु समझायौ तत-सार ।
साध संगति मिलि करि बसंत, भौ बंद न छूटैं जुग जुगंत ।
कहै कबीर मन भया ग्रनंद, ग्रनंत कला भेटे गोब्यंद ।।३८१।।

कबीर कहते हैं कि हे मन रूपी शुक ! तू बारम्बार प्रभु नाम का उच्चारण कर, वह प्रभु तेरे पास ही ग्रवस्थित हैं, तनिक उसे पुकार कर तो देख—:

"पास ही रे हीरे की खान ।
तू कहां खोजता उसे निदान ।।" —निराला

ग्रंजन-मंजन ग्रादि बाह्य शुद्धि उपकरणों को ग्रब छोड़ दे क्योंकि सद्गुरु ने तुझे परमतत्व का सार बता दिया है । साधु-संगति करता हुग्रा ही ग्रायु व्यतीत कर क्योंकि संसार का माया बन्धन युग-युग तक नहीं छूटता । कबीर कहते हैं कि मन में तब ग्रपरिमित ग्रानन्द हुग्रा जब ग्रनन्त कलावान् प्रभु से भेंट हुई ।

बनमाली जांनैं बन की ग्रादि, रांम नांम बिन जनम बादि ।।टेक।।
फूल जु फूले रुति बसंत, जामैं मोहि रहे सब जीव जंत ।
फूलनि मैं जैसें रहै तबास, यूं घटि घटि गोबिंद है निवास ।।
कहै कबीर मनि भया ग्रनंद जगजीवन मिलियौ परमानंद ।।३८२।।

कबीर कहते हैं कि वह वनमाली प्रभु ही संसार की गति (ग्रादि) को जानते हैं । वस्तुतः राम-नाम के ग्रभाव में तो जीवन वृथा है । ऋतु वसन्त में फूलने वाले कुसुमों के क्षणिक सौन्दर्य में समस्त संसार के जीव-जन्तु पड़े हुए हैं । जिस भांति

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ों के मध्य सुगन्ध का निवास है उसी प्रकार प्रत्येक के हृदय में ईश्वर का निवास कबीर कहते हैं कि संसार में ही ब्रह्म की प्राप्ति हो जाने पर अतुलित आनन्द की त हुई।

मेरे जैसे वनिज सौं कवन काज, मूल घटै सिरि ब्धै ब्याज ।।टेक।।
नाइक एक बनिजारे पांच, बैल पचीस कौ संग साथ।
नव बहियां दस गौंनि आहि, कसनि बहतरि लागे ताहि ।।
सात सूत मिलि बनिज कीन्ह, कर्म पयादौ संग लीन्ह ।।
तीन जगाती करत रारि, चल्यौ है बनिज वा बनज भारि।
बनिज खुटानौं पूंजि टूटि, षाडू दह दिसि गयौ फूटि ।।
कहै कबीर यहु जन्म बाद, सहजि समांनू रही लादि ।।३८३।।

कबीर कहते हैं कि मेरे जैसे वणिक् से प्रभु का क्या कार्य हो सकता है क्योंकि से तो सुकृत्यों का मूलधन दिन प्रतिदिन कम होता जा रहा है और ब्याज बढ़ता रहा है। नायक आत्मा तो एक ही है किन्तु पाँच इन्द्रियों के बनजारे २५ तियों के बैल का साथ है। नौ बाहु तो वस्त्र है, और दस स्त्रियां उसके साथ है भला किस भांति उसका कल्याण सम्भव है। शरीर की सप्त धातुओं ने कर्म क को साथ लेकर यह व्यापार किया है। त्रिगणात्मक प्रकृति झंझट खड़े कर रही और व्यापारी उसी वन के मध्य घुसता जा रहा है। मनुष्य रूपी या आत्मा रूपी क का अस्तित्व (मृत्यु से) समाप्त हो जाने पर सम्पत्ति नष्ट हो तत्व समस्त ावरण में लीन हो जाते हैं। कबीर कहते हैं कि यह जन्म व्यर्थ जा रहा है, अतः ज समाधि में अपनी लय लगा लो।

विशेष—१. साँग रूपक अलंकार।

२. **बनजारे पांच**—पाँच इन्द्रियां।

३. **बैल पचीस**—पच्चीस प्रकृतियां,

आकाश की—काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय।
वायु की—चलन, वलन, धावन, प्रसारण, संकोचन।
अग्नि की—क्षुधा, तृषा, आलस, निद्रा, मैथुन।
जल की—लार, रक्त, पसीना, मूत्र, वीर्य।
पृथ्वी की—हाड़, मांस, त्वचा, नाड़ी, रोम।

४. **नव बहिया**—नौ हाथ (जिससे नापते हैं)

चार अन्तःकरण—मन, वुद्धि, चित्त, अहंकार।
पंच प्राण—प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान।

५. **सात सूत**—सप्त धातु—रस, रक्त, माँस, वसा, मज्जा, अस्थि, शुक्र।

६. **तीन जगाती**—त्रिगुणात्मक प्रकृति—सत, रज, तम।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

माधौ दारन दुख सह्यौ न जाइ,
मेरी चपल बुधि तातैं कहा बसाइ ।।टेक।।
तन मन भींतरि बसै मदन चोर, जिनि ग्यांन रतन हरि लीन्ह मोर।
मैं अनाथ प्रभू कहूं काहि, अनेक बिगूचे मैं को आहि ।।
सनक सनंदन सिव सुकादि, आपण कवलापति भये ब्रह्मादि।
जोगी जंगम जती जटाधार, अपनैं औसर सब गये हैं हारि।
कहै [कबीर रहु संग साथ, अभिअंतरि हरि सू कहौ बात।
मन ग्यांन जांनि कैं करि बिचार, रांम रमत भौ तिरिबौ पार ।।३८४।।

हे प्रभु ! मेरी अल्प-मति की सामर्थ्य भी क्या है, मुझसे विषय-वासना द्वारा दत्त दारुण दुख सहा नहीं जाता । अन्तर-बाह्य में कामरूपी चोर का आवास है जिसने मेरा ज्ञान का अमूल्य मणि चुरा लिया । हे ईश्वर ! मैं अनाथ हूं, अनेक व्यक्तियों ने मुझे त्रास दिया, मैं आपके अतिरिक्त और किससे अपनी व्यथा-कथा कहूं । सनक सनन्दन, शिव एवं शुकदेव और ब्रह्मा आदि परमतत्व का साक्षात्कार कर गये हैं । योगी, साधु, तपस्वी, जटाधारी आदि सब कोई उसे पाने का प्रयत्न कर झकमार कर बैठ गये हैं । कबीर कहते हैं कि हृदयस्थ ब्रह्म से भेंट करनी चाहिए । वे आगे मन में विचारपूर्वक कहते हैं कि राम में वृत्तियां रमाने से ही संसार-सागर से पार उतरा जा सकता है ।

विशेष—रूपक अलंकार ।

तू करी डर क्यूं न करै गुहारि,
तूं बिन पंचाननि श्री मुरारि ।।टेक।।
तन भींतरि बसै मदन चोर, तिनि सरबस लीनौं छोरि मोर।
मांगें देइ न बिनैं मांन, तकि मारै रिदा मैं कांम बांन ।।
मैं किहि गुहरांऊं आप लागि, तू करी डर बड़े बड़ गये हैं भागि।
ब्रह्मा बिष्णु अरु सुर मयंक, किहि किहि नहीं लावा कलंक ।।
जप तप संजम सुंचि ध्यांन, बंदि परे सब सहित ग्यांन।
कहि कबीर उबरे द्वै तीनि, जा परि गोंब्यिंद कृपा कीन्ह ।।३८५।।

कबीर मनुष्य को सम्बोधित कर कहते हैं कि तू संसार-तापों से भयभीत होकर प्रभु को क्यों नहीं पुकारता, भजता । इस शरीर के भीतत कामदेव रूपी चोर का वास है जिसने मेरा सर्वस्व अपहृत कर लिया है । वह मेरे चुराये हुए धन को माँगने से भी नहीं लौटाता और हृदय में काम-बाण मार देता है । मैं किस भांति प्रभु का स्मरण करूं, इस काम से तो डर कर तो बड़े-बड़े लोग भाग गये हैं । ब्रह्मा, विष्णु, एवं देवता तथा चन्द्रमा सब कांम ग्रस्त होने के कारण कलंकित हैं । जब ज्ञान

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जप, तप, संयम, पवित्रता एवं ध्यान का आचरण किया जायगा तभी यह काम चोर बन्दी हो सकता है। कबीर कहते है कि वे कुछ लोग ही काम-विमुक्त हैं पर प्रभु कृपा करते हैं।

ऐसौ देखि चरित मन मोह्यौ मोर,
ताथैं निस बासुरि गुन रमौं तोर ॥टेक॥
इक पढ़हिं पाठ इक भ्रमैं उदास, इक नगन निरंतर रहैं निवास।
इक जोग जुगति तन हूंहि खींन. ऐसैं रांम नांम संगि रहैं न लीन ॥
इक हूंहि दीन एक देहि दांन, इक करैं कलापी सुरा पांन।
इक तत मंत ओषध बांन, इक सकल सिध राखैं अपांन॥
इक तीरथ ब्रत करि काया जीति, ऐसैं रांम नाम सूं करैं न प्रीति।
इक धोम घोटि तन हूंहि स्यांम, यूं मुकति नहीं बिन रांम नाम॥
सत गुर तत कह्यौ बिचार, मूल गह्यौ अनभै बिसतार।
जरा मरण थैं भये धीर, रांम कृपा भई कहि कबीर ॥३=६॥

संसार की दुर्दशा देखकर ही प्रभु! मेरा मन अहर्निश आपकी भक्ति में लीन हुआ है। संसार के लोग विविध प्रकार से आपकी प्राप्ति का उपक्रम करते हैं, इनमें से कुछ तो शास्त्रों का पठन करते हैं, कोई विरत होकर इधर-उधर घूमता और एक दिगम्बर हो जीवन-यापन करता है, एक व्यक्ति योग-साधना से अपने शरीर को क्षीण बनाता है किन्तु इनमें से कोई भी प्रभु नाम का आश्रय ग्रहण नहीं करता। एक भिखारी बना भिक्षा मांगता है तो दूसरा अपरिमित दान देता है और वह भी अपने को साधक मानता है जो वाममार्गी बन मदिरापान करता है। एक ऐसा भी साधक है जो तन्त्र, मन्त्र एवं औषध का सेवन करता है, तो कोई समस्त सिद्ध वाक्यों को कण्ठ में रखे रहता है। एक वह भी साधक है जो तीर्थ-व्रतादि से शरीर की वृत्तियों पर अंकुश रखता है किन्तु इनमें से कोई भी राम-नाम स्मरण नहीं करता। चाहे कोई कितना ही पंचाग्नि से तप करके धुएं से काला हो जाय किन्तु राम के बिना उसे मोक्ष-प्राप्ति नहीं हो सकती। सद्गुरु ने विचारपूर्वक कहा है कि रामनाम स्मरण के मूल साधना मंत्र को ग्रहण करने से निर्भय पद की प्राप्ति होती है। कबीर कहते हैं कि राम-कृपा से व्यक्ति जरा-मरण के भय से विमुक्त हो जाता है।

सब मदिमाते कोई न जाग,
ताथैं संग ही चोर घर मुसन लाग ॥टेक॥
पंडित माते पढि पुरांन, जोगी माते धरि धियांन।
संन्यासी माते अहंमेव, तपा जु माते तप कै भेव॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जागे सुक उधव अक्रूर, हणवंत जागे लै लंगूर।
संकर जागे चरन सेव, कलि जागे नांमां जैदेव ।।
ए अभिमांन सब मन के कांम, ए अभिमांन नहीं रहौ ठांम।
आतमां राम कौ मन बिश्रांम, कहि कबीर भजि रांम नांम ।।३८७।।

समस्त संसार मदान्ध हो अज्ञानावस्था में पड़ा है, कोई भी ज्ञान लाभ कर सचेत नहीं होता, इसलिए काम, क्रोध आदि विकार इस जगत् में प्राप्त दुर्लभ मनुष्य जीवन को नष्ट कर रहे हैं। पंडित मदमस्त हुआ धर्मग्रन्थों के पढ़ने में सलंग्न है तो योगी ध्यानावस्थित होने में ही मस्त हो रहा है। संन्यासी अपने अहं दर्प में चूर है तो तपस्वी तपस्या के कारण अपने को अद्वितीय मानता है। जो लोग ज्ञान प्राप्त कर सचेत हो गये वे थे शुकदेव, उद्धव एवं अक्रूर तथा हनुमान् और अन्य वानर थे। शिव भी सावधान हो प्रभु-चरणों की सेवा करने लगे एवं कलियुग में नामदेव और जयदेव नामक संत जागे थे। अहं आदि विकार सब मन के ही कारण हैं, इस अहं दर्प से सुरक्षित नहीं रहा जा सकता। जिसकी आत्मा में राम रमे हुए होते हैं उसका मन अचंचल शान्त रहता है, इसलिए कबीर कहते हैं कि राम-नाम का स्मरण करो।

चलि चलि रे भवरा कवल पास, भवरी बोलै अति उदास ।।टेक।।
तैं अनेक पुहप कौ लियौ भोग, सुख न भयौ तब बढ़्यौ है रोग।
हौं ज कहत तोसूं बार बार, मैं सब बन सोध्यौ डार डार ।।
दिनां चारि के सुरंग फूल, तिनहि देखि कहा रह्यो है भूल।
या बनासपती मैं लागैगी आगि, तब तूं जैहौ कहां भागि ।।
पहुप पुरांने भये सूक, तब भवरहि लागी अधिक भूख।
उड़्यौ न जाइ बल गयौ है छूटि, तब भवरी रूंनी सीस कूटि ।।
दह दिसि जोवै मधुप राइ, तब भवरी ले चली सिर चढ़ाइ।
कहै कबीर मन कौ सुभाव, रांम भगति बिन जम कौ डाव ।।३८८।।

हे मन रूपी भ्रमर! तू प्रभु-रूप कमल के पास चल, तेरे इस चांचल्य से आत्मा बड़ी उदास हो गई है। तूने अनेक सुमनों का रसपान किया है किन्तु जब उन से तुझे आनन्द-प्राप्ति न हुई तो तुझे अपना भ्रम ज्ञात हुआ और दुःख की अनुभूति हुई। मैं (कबीर) तुझसे बारम्बार कहता हूं कि मैंने समस्त वन-प्रान्तर खोज-खोज कर देख लिया कि यहाँ के कुसुमों का सौन्दर्य क्षणिक है, इस अस्थिर सौन्दर्य में भ्रमित मत हो। जब इस संसार-वन की माया, विषय-वासनापूर्ण सम्पत्ति में आग लगेगी तो मन तू कहाँ भाग कर शरण लेगा? समय-वात से सूख कर जब आकर्षण रूपी पुष्प सूख गये हैं, तब मन रूपी भ्रमर की भूख और भी अधिक बढ़ गई किन्तु अब तो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

का शरीर इतना क्षीण और जराक्रान्त हो गया है कि उससे उड़ा तक नहीं जाता। विषमावस्था में आत्मा रूपी भ्रमरी पश्चाताप ही करके रह जाती है। वह स्त दिशाओं में प्रभु को खोजती है और मन रूपी भ्रमर को भी उस परमतत्व के पीप ले जाती है। कबीर अपनी मनोदशा का वर्णन करते कहते हैं कि राम-भक्ति अभाव में काल का भय बना हुआ है।

विशेष—साँग रूपक, रूपकातिशयोक्ति आदि अलंकार।

आवध रांम सबै करम करिहूं,
सहज समाधि न जम थैं डरिहू ।।टेक।।
कुभरा ह्वै करि बासन घरिहूं, धोबी ह्वै मल धोऊं।
चमरा ह्वै करि रंगौं अधौरी, जाति पांति कुल खोऊं ।।
तेली ह्वै तन कोल्हू करिहौं, पाप पुंनि दोऊ पीरौं।
पंच बैल जब सूध चलाऊं, राम जेवरिया जोरूं ।।
छत्री ह्वै करि खड़ग संभालूं, जोग जुगति दोउ साधूं।
नऊवा ह्वै करि मन कूं मूंदूं, बाढ़ी ह्वै कर्म बाढ़ूं ।।
अवधू ह्वै करि यहु तन धूतौं, बधिक ह्वै मन मारूं।
बनिजारा ह्वै तत कूं बनिजूं, जुवारी ह्वै जम हारूं ।।
तन करि नवका मन करि खेवट, रसना करऊं बाडारूं।
कहि कबीर भौसागर तिरिहूँ, आप तिरूं बप तारू ।। ८९।।

हे प्रभु ! मैं कर्म करता हुआ सहज समाधि लगाऊंगा और काल से भी भय-त नहीं होऊंगा। मैं कुम्हार बन कर कर्म रूपी भाजनों में सुघरता लाऊंगा एवं धोबी बनकर धोबी के समान पाप-मल धोऊंगा। जाति-पाँति का विचार किये बिना चमार बनकर कर्म के चमड़े को रंग सुन्दर रूप दूंगा। तेली बनकर कोल्हू में पाप-पुण्य को पेल दूंगा और समभाव उत्पन्न करूंगा। भक्ति की रज्जु का आश्रय कर मैं इन्द्रियों के पांच बैलों को नियन्त्रण में रख सन्मार्ग पर चलाऊंगा। राजपूत कर मैं तलवार पकड़ूंगा और योग-युक्ति की साधना करूंगा। नाई बनकर कर्मों में काट-छाँट करूंगा। अवधूत बनकर योग साधना द्वारा इस शरीर को कष्ट-साधन योग्य बना दूंगा और वधिक बनकर मन को मार दूंगा। बनजारा बनकर मैं परम तत्व का व्यापार करूंगा और जुवारी बनकर यम के भय को दाव पर हार जाऊंगा। कबीर कहते हैं कि इस भांति मैं संसार समुद्र से पार उतर कर स्वयं भी मुक्त होऊंगा और अन्यों को भी मोक्ष प्राप्त करा दूंगा।

विशेष—१. यहाँ कबीर की विचारधारा से प्रकट होता है कि उनकी मान्यता है कि चाहे कोई किसी भी सामाजिक स्थिति में हो उसे ईश्वर-साधना एवं भक्ति का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पूर्ण अवसर और अधिकार है। इसीलिए उन्होंने यहाँ सामाजिक दृष्टि से निम्न से निम्नतम व्यक्तियों के कार्यों का सम्बन्ध भक्ति से जोड़ा है।

२. इस दृष्टि से हम कबीर को 'श्रम का समर्थक' प्रथम कवि भी कह सकते ।

राग मालो गौड़ी

पंडिता मन रंजिता, भगति हेत ल्यौ लाइ रे।
प्रेम प्रीति गोपाल भजि नर, और कारण जाइ रे॥टेक॥
दांम छै पणि कांम नांही, ग्यांन छै पणि धंध रे।
श्रवण छै पणि सुरति नांही, नैन छै पणि अंध रे॥
जाकै नाभि पदम सु उदित ब्रह्मा, चरन गंग तरंग रे।
कहै कबीर हरि भगति बांछूं, जगत गुर गोब्यंद रे॥३६०॥

पण्डित जनों का मन प्रभु- प्रेम में अनुरक्त है, इसलिए हे मनुष्य ! तुम भी अन्य कार्य-कलापों को त्याग कर ईश्वर भक्ति करो। धन के होते हुए कोई काम नहीं रुकता और ज्ञान के होते हुए कोई संसार-प्रपंच में आबद्ध नहीं रहता। ज्ञान के श्रवण मात्र से किसी को ईश्वर-अनुरक्ति नहीं हो जाती। इसलिए नेत्रों के होते हुए अन्धे नहीं बनना चाहिए। इसलिए उसका ध्यान करना श्रेयस्कर है जिसकी नाभि से कमल पर ब्रह्मा की उत्पत्ति और चरण-नख से गंगा की उत्पत्ति हुई है। कबीर कहते हैं कि प्रभु-भक्ति ही श्रेयस्कर है, गोविन्द संसार के गुरु हैं।

बिष्णु ध्यांन सनान करि रे बाहरि अंग न धोइ रे।
साच बिन सीझसि नहीं, कांई ग्यान दृष्टैं जोइ रे॥टेक॥
जंजाल मांहैं जीव राखै, सुधि नहीं सरीर रे।
अभिअंतरि भेदै नहीं, कांई बाहरि न्हावै नीर रे॥
निहकर्म नदी ग्यांन जल, सुंनि मंडल मांहि रे।
औधूत जोगी आतमां, कांई पेणें संजमि न्हाहि रे।
इला प्यंगुला सुषमनां, पछिम गंगा बालि रे।
कहै कबीर कुसमल झड़ैं, कांई मांहि लौ अंग पषालि रे॥३६१॥

कबीर कहते हैं कि विष्णु—ब्रह्म का ध्यान करने वाले केवल अंगों के बाह्य को ही धोने वाला स्नान नहीं करते अपितु वे तो अन्तर-बाह्य की शुद्धि करने वाला स्नान करते हैं। वह परमब्रह्म सत्याश्रय के बिना दृष्टिगत नहीं हो सकता, उसके दर्शनार्थ तो ज्ञान दृष्टि वांछित है। इस जीवात्मा को संसार के प्रपंच में डाले रखा जिससे यह अपने तन की सुधि भी विस्मृत कर बैठा। अन्तरतम के कलुष को तो दूर नहीं करते और व्यर्थ बाहर शरीर पर पानी गिरा कर स्नान का नाम कर रहे हैं। निष्काम ज्ञान-सरिता तो शून्य-प्रदेश में ही प्रवाहित होती है, कोई साधक,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सी, तपस्वी उसमें संयम द्वारा स्नान कर सकता है। इड़ा, पिंगला और सुषुम्णा न्वय से कुण्डलिनी के विस्फोट द्वारा अमृत का स्रवण होता है, कोई चाहे ता अपने अंगों को धोकर निष्कलुष बना सकता है।

भजि नारदादि सुकादि बंदित, चरन पंकज भांमिनीं।
भजि भजिसि भूषन पिया मनोहर, देव देव सिरोवनीं ।।टेक।।
बुधि नाभि चन्दन चरचिता, तन रिदा मंदिर भीतरा।
रांम राजसि नैंन बांनीं, सुजान सुंदर सुंदरा ।।
बहु पाप परबत छेदनां, भौ ताप दुरिति निवारणां।
कहै कबीर गोब्यंद भजि, परमांनंद बंदित कारणां ।।३९२।।

कबीर कहते हैं कि प्रभु के उन चरण कमलों की वन्दना नारद, शुकदेव जैसे गण करते हैं। उन देवाधिदेव के चरणों की जो समस्त सृष्टि के आभूषण हैं ना करो। हृदय-मन्दिर के भीतर चन्दन-र्चाचित बुद्धि कमल पर अत्यन्त सुन्दर एवं वाणी वाले प्रभु राम उपस्थित हैं। वे उनके पाप-पर्वतों के विदारण करने तथा सांसारिक-तापों का शीघ्र परिशमन करने वाले हैं। कबीर कहते हैं कि परमब्रह्म की वन्दना करो।

राग कल्याण

ऐसै मन लाइ लै रांम रसनां,
कपट भगति कीजै कौंन गुणां ।।टेक।।
ज्यूं मृग नादैं बेध्यौ जाइ, प्यंड परै वाकौ ध्यांन न जाइ ।।
ज्यूं जल मींन हेत करि जांनि, प्रान तजै बिसरै नहीं बांनि।
भ्रिंगी कीट रहै ल्यौ लाइ, ह्वै लै लीन भ्रिग ह्वै जाइ ।।
रांम नांम निज अमृत सार, सुमरि सुमिरि जन उतरे पार ।।
कहै कबीर दासनि कौ दास,
अब नहीं छाडौं हरि के चरन निवास ।।३९३।।

हे मन! राम रस में अपनी वृत्ति रमा, कपट-व्यवहार करने से क्या लाभ? भांति मृग स्वर लहरी पर अनुरक्त हुआ ही मारा जाता है और शरीर पर का ध्यान नहीं रहता तथा जिस प्रकार जल से प्रेम करती हुई मछली सरोवर का सूख जाने पर भी प्राणों का मोह त्याग कर जल का साथ नहीं छोड़ती, इसी र मनुष्य विषय-वासना में लगा हुआ है। यदि वह भृंगी कीट के समान ईश्वर नन्य प्रेम सम्बन्ध स्थापित कर ले तो वह तद्रूप हो जायगा। राम-नाम ता तु अमृतस्वरूप है जिसका स्मरण करने से भक्त-जन संसार से मुक्त हो गये। दासानुदास कबीर कहते हैं कि अब मैं ईश्वर के चरणों से अपना मन नहीं ऊंगा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

राग सारंग

यहु ठग ठगत सकल जग डोलै,
गवन करै तब मुषहु न बोलै ।।टेक।।
तूं मेरौ पुरिषा हौं तेरी नारी, तुम्ह चलतैं पाथर थैं भारी ।।
बालपनां के मींत हमारे, हमहि लाडि कत चले हो निनारे ।
हम सूं प्रीति न करि री बौरी, तुम्हसे केते लागे ढौरी ।।
हम काहू सगि गये न आये, तुम्ह से गढ हम बहुत बसाये ।
माटी की देही पवन सरीरा, ता ठग सूं जन डरै कबीरा ।।३९४।।

यह माया रूपी ठग समस्त संसार को ठगता फिर रहा है, इसकी गति सर्वत्र है किन्तु यह मुख से कोई भी शब्द नहीं बोलता अर्थात् चुपचाप ही व्यक्ति के नाश में संलग्न रहता है। किन्तु हे प्रभु ! मैं आपकी प्रियतमा और आप मेरे प्रिय हैं, आपकी चाल पत्थर से भी अधिक भारी है, गम्भीर है। आप हमारे बाल्यावस्था से ही मित्र हो (आत्मा और परमात्मा प्रारम्भ में एक थे) अब हमें अकेला छोड़कर कहां जा रहे हो ? हे पागल माया ! तू मुझसे प्रेम करने का प्रयास मत करना क्योंकि मैंने न जाने तुम जैसों (अनेक आकर्षणों)को दुत्कार दिया है। हम न ता किसी के साथ गये हैं और न किसी के साथ आए हैं, तुम जैसे कितनों को ही हमने उनके घर पहुंचा दिया है। मेरा शरीर मिट्टी का (पंचतत्व का) है जिसमें प्राणवायु, आत्मा, का निवास है, इसीलिए मायारूपी ठग से मैं भयभीत हूं।

धंनि सो घरी महूरत्य दिनां,
जब ग्रिह आये हरि के जनां ।।टेक।।
दरसन देखत यहु फल भया, नैंनां पटल दूरि ह्वै गया ।
सब्द सुनत संसा सब छूटा, श्रवन कपाट बजर था तूटा ।।
परसत घाट फेरि करि घड़्या, काया कर्म सकल झड़ि पड़्या ।
कहै कबीर संत भल भाया, सकल सिरोमनि घट मैं पाया ।।३९५।।

वह मुहूर्त, घड़ी तथा दिवस धन्य है जिस दिन मेरे द्वार पर हरि भक्त आये थे। उनके दर्शन का यह परिणाम, पुण्य-फल है कि मेरा अज्ञान दूर हो गया। उनके उपदेश-वचन सुनते ही समस्त संशय विदूरित हो गये एवं श्रवणों का सद्वचनों के न सुनने का नियम भी टूट गया। उनके चरणों का स्पर्श कर शरीर पाप-कर्मों से मुक्त हो भक्ति में लग गया। कबीर कहते हैं कि मुझे सज्जनों, साधुओं, के दर्शन का पुण्य लाभ यह हुआ कि जो समस्त सृष्टि का शिरोभूषण ब्रह्म था उसे मैंने हृदय में ही पा लिया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

राग मलार

जतन बिन मृगनि खेत उजारे।
टारे टरत नहीं निस बासुरि, बिडरत नहीं बिडारे ।।टेक।।
अपनें अपनें रस के लोभी, करतब न्यारे न्यारे।
अति अभिमांन वदत नहीं काहु, बहुत लोग पचि हारे ।।
बुधि मेरी किरषी, गुर मेरौ बिझुका, अखिर दोइ रखवारे।
कहै कबीर अब खान न देहूं, बरियां भली संभारे ।।३९६।।

साधना के बिना विकारों के मृग इस जीवन रूपी खेत को उजाड़ रहे हैं। नश प्रयत्न करने से भी वे टाले नहीं टलते, भगाने का प्रयत्न करने पर भी नहीं ते। वे अपनी-अपनी रुचि के रसों में संलिप्त हैं और उसी के लिए विविध भांति कर्मों का तानाबाना बुनते हैं। वे मनुष्य को अत्यभिमानी बना देते हैं, बहुत से लोग थाकर हार गये किन्तु फिर भी ये इस कुपन्थ का परित्याग नहीं करते। इस न अथवा भक्ति रूपी क्षेत्र के दो ही रखवाले हैं मेरी बुद्धि जो खेत में खड़े किये पुतले का काम करती है और मेरा कण्ठ जिससे निकलने वाले 'राम' नाम के दो र ही मेरे सम्वल हैं। कबीर कहते हैं कि विकारों के मृग को अब इस खेती को चा दूंगा, अब की बार मैंने इसकी रक्षा का पूर्ण सम्भार कर लिया है।

हरि गुन सुमरि रे नर प्रांणी।
जतन करत पतन ह्वै जैहै, भावैं जांणम जांणीं ।।टेक।।
छीलर नीर रहै धूं कैसें, को सुपिनें सच पावै।
सूकित पांन परत तरवर थैं, उलटि न तरवरि आवै ।।
जल थल जीव डहके इन माया, कोई जन उबर न पावै।
रांम अधार कहत हैं जुगि जुगि, दास कबीरा गावै ।।३९७।।

हे मनुष्य ! प्रभु गुणों का स्मरण कर क्योंकि प्रयत्न करते हुए भी मनुष्य का नाश हो जाता है और वह आवागमन से विमुक्त नहीं होता। जल के विना वृक्ष कैसे भरा रह सकता है और स्वप्न में प्राप्त ऐश्वर्य के द्वारा कोई सुख लाभ कैसे कर ता है ? पानी के सूखते ही पेड़ के पत्र गिरने प्रारम्भ हो जाते हैं, वह सूख जाता है, पल्लवित हो हरीतिमा का सुख लाभ नहीं कर पाता। जल, थल—प्रत्येक स्थान पर या ने जीवों को बहकाया है, इससे कोई भी बच नहीं पाया है। कबीर कहते हैं कि से बचने का एकमात्र आधार राम-नाम ही है जो युग-युग तक को इससे मुक्ति देता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

राग धनाश्री

जपि जपि रे जीयरा गोब्यंदो, हित चित परमानंदौ रे।
बिरही जन कौ बाल हौ, सब सुख आंनदकंदो रे ।।टक।।
धन धन झीवत धन गयौ, सो धन मिल्यौ न आये रे।
ज्यूं बन फूली मालती, जन्म अबिरथा जाये रे।।
प्रांणीं प्रीति न कीजिये, इहि झूठै संसारो रे।
धूंवां केरा धौलहर, जात न लागै बारो रे।।
माटी केरा पूतला, काहे गरब कराये रे।
दिवस चारि कौ पेखनौं, फिरि माटी मिलि जाये रे।।
कांमी रांम न भावई, भावैं विषै बिकारो रे।
लोह नाव पाहन भरी, बूडत नांहीं बारो रे।।
नां मन मूवा न मरि सक्या, नां हरि भजि उतर्या पारो रे।
कबीरा कंचन गहि रह्यौ, काच गहै संसारो रे।।३९८।।

हे मन ! तू हृदय को अमित आनन्द प्रदान करने वाले प्रभु नाम का स्मरण कर। समस्त सुखों की खान वे प्रभु अपने भक्तों के एकमात्र आधार हैं। सांसारिक धन के संचय में ही परमात्मा रूपी अमूल्य धन खो दिया जो पुनः कभी भी नहीं मिल सकता। जिस भाँति वन में फूली मालती का जन्म-वृथा ही बीत जाता है, वहाँ कोई रसपान करने वाला भौंरा नहीं होता, उसी भाँति संसार से प्रीति-सम्बन्ध बनाना अच्छा नहीं, क्योंकि जगत् मिथ्या है। यह संसार तो धुएं के महल सदृश है जिसके नष्ट होते देर नहीं लगती। इस मिट्टी के पुतले शरीर के लिए गर्व करना व्यर्थ है। कामी पुरुष को प्रभु नाम प्रिय न होकर विषयानन्द प्रिय होते हैं। एक तो गर्व दूसरे काम-पिपासा रूपी लोहे की पत्थर-भरी नाव को डूबने में समय भी नहीं लगता। न तो मन की चंचलता ही समाप्त हो सकी और न मृत्यु ही आई और न प्रभु-भजन कर संसार से मुक्ति का कार्य किया। कबीर कहते हैं कि हे मनुष्य ! तुम प्रभु स्वरूप कंचन को पकड़े रहो, संसार तो विषयानन्दों के कांच को पकड़ने में ही मस्त है।

विशेष—१. यमक, उपमा आदि अलकार।

२. "धूंवां केरा धौलहर" की तुलना तुलसी से कीजिए—

"धुआं कैसे धौलहर, देखि न भूलि रे।"—'विनयपत्रिका'

न कछु रे न कछू रांम बिनां।
सरीर धरे की रहै परंमगति, साध संगति रहनां ।।टेक।।
मंदिर रचत मास दस लागे बिनसत एक छिना।
झूठे सुख कै कारनि प्रांनी, परपंच करत घनां।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तात मात सुत लोग कुटंब मैं, फूल्यो फिरत मनां ।
कहै कबीर रांम भजि बौरे, छाड़ि सकल भ्रमनां ।।३९९।।

कबीर कहते हैं कि हे मन ! प्रभु-स्मरण के बिना इस संसार में कुछ भी नहीं यह शरीर यहाँ रखे का रखा ही रह जाता है, इसलिए साधु-संगति का लाभ ना चाहिए । इस शरीर रूपी मन्दिर को बनाने में तो मातृगर्भ में पड़े हुए दस स लगे किन्तु नष्ट होते तो एक क्षण भी नहीं लगेगी । मिथ्या सांसारिक-सुख के लिए वित अनेक पाप-कर्म करता है। एवं इसी कारण माता-पिता, पुत्र, परिवार दियों में प्रसन्न हुआ फिरता है । कबीर कहते हैं कि समस्त भ्रमों का परित्याग मन ! तू प्रभु का स्मरण कर ।

कहा नर गरबसि थोरी बात ।
मन दस नाज, टका दस गंठिया, टेढौ टेढौ जात ।।टेक।।
कहा लै आयौ यहु धन कोऊ, कहा कोऊ लै जात ।
दिवस चारि की है पतिसाही ज्यूं बनि हरियल पांत ।।
राजा भयौ गांव सौ पाये, टका लाख दस व्रात ।
रावन हात लंक कौ छत्रपति, पल मैं गई बिहात ।।
माता पिता लोक सत बनिता, अंति न चलै संगात ।
कहै कबीर रांम भजि बौरे, जनम अकारथ जात ।।४००।।

कबीर का कथन है कि हे मनुष्य ! तू व्यर्थ क्यों गर्व करता है ? दस छिद्रों परिपूर्ण टके भर की इस मिट्टी की गठिया के शरीर पर दम्भ भर तुम इतरा चलते हो । कौन इस धन को लेकर आया है और कौन इसे अपने साथ ले गा ? यह तो क्षणिक, अत्यन्त अल्प समय की साहूकारी है, जिस प्रकार हरियाली ही दिन रहती है। यदि कोई राजा हो गया और अतुल धन तथा विशाल भूमि प्राप्त हो गई तो उसका क्या लाभ ? क्योंकि लंकाधीश छत्रपति रावण क्षण भर मारा गया । माता-पिता, पत्नी, पुत्र अंत समय आने पर कोई भी साथ नहीं ता । इसलिये कबीर कहते हैं कि हे पागल तू राम-नाम का स्मरण कर ।

विशेष—उपमा, दृष्टान्त आदि अलंकार ।

नर पछिताहुगे अंधा ।
चेति देखि नर जमपुरि जैहै, क्यूं बिसरौ गोब्यंदा ।।टेक।।
गरभ कुंडिनल जब तू बसता, उरध ध्यान ल्यौ लाया ।
उरध ध्यांन मृत मंडलि आया, नरहरि नांव भुलाया ।।
बाल बिनोद छहूं रस भीनां, छिन छिन मोह बियापै ।
बिष अंमत पहिचांनन लागौ, पांच भांति रस चाखै ।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तरन तेज पर त्रिय मुख जोवै, सर आसर नहीं जांनैं।
अति उदमादि महामद मातौ, पाप पुंनि न पिछांनैं॥
प्यंडर केस कुसुम भये धौला, सेत पलटि गई बांनीं।
गया क्रोध मन भया जु पावस, कांम पियास मंदांनीं॥
तूटी गांठि दया धरम उपज्या, काया कवल कुमिलांनां।
मरती बेर बिसूरन लागौ, फिरि पीछैं पछितांनां॥
कहै कबीर सुनहुं रे संतौ, धन माया कछू संगि न गया।
आई तलब गोपाल राइ की, धरती सैंन भया॥४०१॥

हे अज्ञानांध मनुष्य ! सावधान हो जा, अन्यथा यमपुर जाते समय पछतायेगा, इसीलिए प्रभु को विस्मृत मत कर। जब तू गर्भवास में उल्टा लटका हुआ दारुण दुख भोगता था, तब प्रभु का भजन करता था किन्तु अब बाहर आने पर तू ईश्वर को विस्मृत कर बैठा। अब तो छहों रस से पूर्ण बाल-क्रीड़ाओं में आनन्दित हो प्रतिपल मोह बंधन में पड़ता जाता है। स्वाद की दृष्टि से अब तू कटु और मधुर को पहचानने लगा है, पाँच प्रकार के भोजनों का रस प्राप्त करता है। सुखशय्या पर अवसर-कुअवसर प्रत्येक समय पत्नी के साथ रति-क्रीड़ा में संलग्न रहता है। इस प्रकार मद में अन्धा पाप-पुण्य का विभेद भी भुला बैठा है। किन्तु अब वृद्धावस्था आने पर वे सुन्दर केश श्वेत हो गये और वाणी भी लड़खड़ाने लगी। अब क्रोध भी चला गया है और मन वर्षा के समान आर्द्र हो उठा है। काम-पिपासा अब मिट चुकी है। गर्व-गांठ के टूट जाने पर अब दया-धर्म जैसे गुणों की उद्भावना हुई है क्योंकि शरीर रूपी कमल मुरझा गया है। मृत्यु समय के दुखों को और स्मरण कर ले क्योंकि फिर तो पश्चात्ताप के अतिरिक्त और कुछ हाथ ही नहीं लगेगा। कबीर कहते हैं कि हे संत-गण ! मनुष्य के साथ मृत्यूपरान्त धन-सम्पत्ति, माया आदि कुछ भी नहीं जाता। जब प्रभु की इच्छा होती है तो वह धरणी को ही शय्या में परिवर्तित कर देता है, मृत्यु बुला देता है।

विशेष—"गरभ······भुलाया" से तुलना कीजिए—

"दुख में सुमरन सब करै, सुख में करे न कोय।
जो सुख में सुमरन करै, तो दुख काहे को होय॥"

लोका मति के भोरा रे।
जौ कासी तन तजै कबीरा, तौ रांमहि कहा निहोरा रे॥टेक॥
तब हम वैसे अब हम ऐसे, इहै जनम का लाहा।
ज्यूं जल मैं जल पैसि न निकसै, यूं ढुरि मिल्या जुलाहा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रांन भगति परि जाकौ हित चित, ताकौ अचिरज काहा।
गुर प्रसाद साध की संगति, जग जीतें जाइ जुलाहा ॥
कहै कबीर सुनहुं रे संतौ, भ्रमि परै जिनि कोई।
जस कासी तस मगहर ऊसर, हिरदै रांम सति होई ॥४०२॥

हे साधु ! हम तो साधारण बुद्धिधारी हैं, यह जानते हैं कि यदि यहां काशी-
[कर]वट लेकर प्राण गवा बैठे तो फिर प्रभु राम को किस भाँति मुंह दिखा सकते
तब काशी-करवट से तो हम वैसे ही पाप-भागी बन जायेंगे ? यदि अब पापी
[त]ो इस जन्म का लाभ प्राप्त कर प्रभु-भक्ति द्वारा पाप-प्रक्षालन का प्रयत्न तो कर
। जिस प्रकार जल में जल मिल जाने पर उसी जल को पुनः अलग नहीं किया
[स]कता, उसी प्रकार मुझ कबीर जुलाहे के धूलि में मिल जाने पर पुनः शरीर रचना
[न]हो सकती। जिस व्यक्ति को ईश्वर भक्ति में कुशलता दृष्टिगत होती हो, भला
[उस]का अहित कैसे हो सकता है ? गुरु-उपदेश पर एवं साधु-संगति से कबीर
[जुल]ाहा समस्त संसार पर आध्यात्मिक विजय प्राप्त कर लेगा। कबीर कहते हैं कि
[सं]तो ! माया भ्रम का परित्याग कोई विरला ही कर पाता है। यदि हृदय में
[रा]म-नाम का दृढ़ सम्बल हो तो काशी और मगहर में शरीर-त्याग समान है।

विशेष—१. "गुरु प्रसाद······जुलाहा" में कबीर की आत्मश्लाघा अथवा
अभिमान नहीं अपितु दृढ़ आत्मविश्वास ही प्रकट होता है।

२. अन्तिम चरण के द्वारा 'मगहर' के प्रति फैले साधारण विश्वास कि
['मग]हर' में मृत्यु से दुर्गति होती है, का खण्डन किया गया है।

ऐसी आरती त्रिभुवन तारै, तेज पुंज तहां प्रांन उतारै ॥टेक॥
पाती पंच पहुप करि पूजा, देव निरंजन और न दूजा ॥
तनमन सीस समरपन कीन्हां, प्रगट जोति तहां आतम लीनां।
दींपक ग्यांन सबद धुनि घंटा, परंम पुरिख तहां देव अनंता ॥
परम प्रकास सकल उजियारा, कहै कबीर मैं दास तुम्हारा ॥४०३॥

कबीर कहते हैं कि निम्नस्थ प्रकार से कथित आरती यदि समस्त संसार उतारे
[तो] ज्योतिस्वरूप परमात्मा अवश्य दर्शन दें। पांचों इन्द्रियों रूपी पत्तियों पर मन
[पुष्प] को रख देवाधिदेव ज्योतिस्वरूप अलख निरञ्जन ब्रह्म की पूजा हो। उस परम
[ज्यो]ति पर तन-मन, शीश अर्पण कर आत्मा को पूर्ण लय कर दे। ज्ञानदीप एवं अनहद
[घ]ंटा ध्वनि से उस परम पुरुष सर्वोच्च देव परब्रह्म के दर्शन हों। कबीर कहते हैं
[व]ह ब्रह्म, परमात्मा, समस्त सृष्टि का प्रकाशक है और मैं उसका दास हूं।

विशष—सांगरूपक अलंकार।

———

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रमैंणी भाग

राग सूहौ

तूं सकल गहगरा, सफ सफा दिलदार दीदार।
तेरी कुदरति किनहूं न जानीं, पीर मुरीद काजी मुसलमांनीं ॥
देवी देव सुर नर गण गंध्रप, ब्रह्मा देव महेसर।

कबीर कहते हैं कि हे प्रभु! आप सर्वशक्तिमान् एवं सर्वत्र परिव्याप्त हैं। तेरे इस त्रिगुणात्मक सृष्टि का भेद, तथाकथित ज्ञानियों—पीर, शिष्य, काजी और मुल्ला आदि—देवगण, गन्धर्वगण तथा अन्य जाति के मनुष्यों तथा ब्रह्मा एवं शिव को भी प्राप्त न हो सका।

विशेष—अन्तिम चरण में पुनरुक्ति दोष है।

तेरी कुदरति तिनहूं न जांनीं ॥टेक॥
काजी सो जो काया बिचारै, तेल दीप मैं बाती जारै।
तेल दीप मैं बाती रहै, जोति चीन्हि जे काजी कहै ॥
मुलनां बंग देइ सुर जांनीं, आप मुसला बैठा तांनीं।
आपुन मैं जे करै निवाजा, सौ मुलनां सरबत्तरि गाजा ॥
सेष सहज मैं महल उठावा, चंद सूर बिचि तारी लावा।
अर्ध उर्ध बिचि आंनी उतारा, सोई सेष तिहूं लोक पियारा ॥
जंगम जोग बिचारै जहूंवां, जीव सीव करि एकै ठऊवां।
चित चेतनि करि पूजा लावा, तेतौ जंगम नांउ कहावा ॥
जोगी भसम करै भौ मारी, सहज गहै बिचार बिचारी।
अनभै घट परचा सूं बोलै, सो जोगी निहचल कदे न डोलै ॥
जैन जीव का करहु उबारा, कौंण जीव का करहु उधारा।
कहां बसै चौरासी का देव, लहौ मुकति जे जांनौं भेव ॥
भगता तिरण मतै संसारी, तिरण तत ते लेहु बिचारी।
प्रीति जांनि रांम जे कहै, दास नांउ सो भगता लहै ॥
पंडित चारि बेग गुंण गावा, आदि अंति करि पूत कहावा।
उतपति परलै कहौ बिचारी, संसा घालौ सबै निवारी ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अरधक उरधक ये संन्यासी, ते सब लागि रहैं अबिनासी।
अजरावर कौं डिढ करि गहै, सो संन्यासी उन्मन रहै॥
जिहि धर चाल रची ब्रह्मंडा, पृथमीं मारि करी नव खंडा।
अबिगत पुरिस की गति लखी न जाइ, दास कबीर अगह रहे ल्यो लाई।१।

हे प्रभु ! उपर्युक्त—कथित लोग तेरा रहस्य न जान सके। वस्तुतः ये काजी, ...र, मुल्ला आदि झूठे हैं, वास्तव में काजी तो वही है जो योग साधनानुसार इस ...रीर रूपी दीपक में ईश्वर की स्नेह-वर्तिका रख अलख ज्योति को पहचानने में ...तिस्वरूप परमात्मा को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। मौलाना ईश्वर को ...हरा जानकर) बाँग देता है और स्वयं कुरान शरीफ खोलकर बैठ जाता है, चाहे ...का तत्व हृदयंगम करे अथवा नहीं और वह इसमें ही अपने कर्तव्य की इतिश्री ...झ लेता है। किन्तु वास्तव में मौलाना कहलाने का अधिकारी वही है जो स्वयं अनहद नाद उत्पन्न कर ले जिससे उसका रोम-प्रति रोम प्रभु नाम से स्पन्दित हो ...। शेख वही है जो इड़ा-पिंगला में सुषुम्णा का समन्वय कर शून्य महल के उस ...ल को प्राप्त करता है जहां ज्योतिर्बिंदु है, ऐसा ही शेख समस्त संसार को प्रिय ...ता है। जंगम उसी को कहा जा सकता है जो योग साधना करते हुए आत्मा और ...रमात्मा को एक मिलन बिन्दु पर मन साधना कर मन से अज्ञान को दूर कर उसे ...यन्त्रित करते हुए, मिला देता है।

अटल और दृढ़ योगी वही है जो भव-भय को नष्ट कर निर्भय हुआ समत्व ...यति को प्राप्त करता है तथा हृदय-स्थित प्रियतम से साक्षात्कार करता है। जैन ...धु हम उसी को कह सकते हैं जो जीवों का उद्धार करते हैं, आज के जैन साधु किस ...व का उपकार कर रहे हैं ? उन्हें चाहिए कि यह जानने का प्रयत्न करें कि चौरासी ...ख योनियों का निर्माता ब्रह्म कहां रहता है, उसे जान कर वे मुक्त हो जायेंगे। ...क्त' उसी को कहा जायेगा जो संसार के मोक्ष की चिन्ता करता हुआ मुक्ति-उपायों ...बतायेगा। जो भी प्रेम-पूर्वक प्रभु का भजन करेगा उसी को सब भक्त कहेंगे। ...ण्डित, ज्ञानी, उसी को कह सकते हैं जो चारों वेदों में निष्णात विद्वान् हो। आधुनिक ...ण्डित तो उत्पत्ति और प्रलय, हानि-लाभ का ही हिसाब लगाते रहते हैं, उन्हें चाहिए ...वे माया-भ्रम का नाश कर समस्त पापों, विकार, से दूर रहें।

ये संन्यासी लोग ऊंच नीच का तो विचार करते हैं किन्तु अविनाशी प्रभु का ...ध्यान नहीं करते। संन्यासी तो वही है जो उन्मनावस्था की साधना करता हुआ ईश्वर ... दृढ़मना हो ध्यान करता है।

जिस ईश्वर ने इस सृष्टि की रचना की और पृथ्वी को नौ-खण्डों में विभाजित ...या उस परम-पुरुष की गति का पार नहीं पाया जा सकता, किन्तु कबीर ने उसी ...लख ब्रह्म में अपनी सम्पूर्ण चित्तवृत्तियाँ केन्द्रित कर दी हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विशेष—१. कबीर यहाँ योगसाधना पर बल देते हैं।

२. कबीर ने यहाँ काजी, मुल्ला, पीर, पैगम्बर, संन्यासी, पण्डित, आदि का स्वरूप बताते हुए परिभाषा सी दी है जिससे स्पष्ट है कि उनके समय में ढोंगी साधु पीर, काजी आदि बहुत हो गये थे, तभी उन्हें आवश्यकता पड़ी कि वे इनके वास्तविक स्वरूप का कथन करें।

सतपदी रमैंणी

कहन सुनन कौं जिहि जग कीन्हा, जग भुलांन सौ किनहूं न चीन्हां।
सत रज तम थैं कीन्हीं माया, आपण मांझै आप छिपाया॥
ते तौ आहि अनंद सरूपा, गुन पल्लव बिस्तार अनूपा।
साखा तत थैं कुसम गियांनां, फल सौ आछा रांम का नांमां॥
सदा अचेत चेत जीव पंखी, हरि तरवर करि बास।
झूठे जगि जिनि भूलसि जियरे, कहन सुनन की आस॥

जिसने नाना रूपात्मक चित्र-विचित्र इस संसार की सृष्टि की, संसार के लोग उसे न पहचानते हुए माया-भ्रम में पड़े हुए हैं। उस ब्रह्म ने सत, रज, तम—त्रिगुणात्मक रूप प्रकृति से सृष्टि रचना की है और स्वयं को अपनी ही सृष्टि में इस भाँति छिपा लिया कि कोई भेद नहीं पा सकता। जिस भांति वृक्ष में अगणित-पत्र होते हैं उसी प्रकार उस ब्रह्म के अनन्त गुण हैं और वह आनन्दस्वरूप है। उसका पूर्ण ज्ञान ही वृक्ष पर विकसित सुमन है और राम-नाम स्मरण का फल अनुपम वरदान है, ब्रह्म की प्राप्ति का सरलतम उपाय है।

कबीर कहते हैं कि हे सर्वदा अज्ञानांधकार में पड़े रहने वाले जीवात्मा प्रभु रूप अनुपम वृक्ष पर वास कर। भाव यह है कि प्रभु में अपनी चित्तवृत्तियाँ केन्द्रित कर तथा इस मिथ्या संसार में भ्रमरत मत रह।

विशेष—१. सांगरूपक अलंकार।

२. संसार को 'कहन सुनन की आस' कहकर जहां उसके क्षणभंगुर स्वरूप का कथन किया गया है, इस प्रयोग में बड़ी लाक्षणिकता आ गई है।

सूक बिरख यहु जगत उपाया, समझि न परै बिषम तेरी माया।
साखा तीनि पत्र जुग चारी, फल दोइ पाप पुंनि अधिकारी॥
स्वाद अनेक कथ्या नहीं जांहीं, किया चरित सौ इन मैं नाहीं।
तेतौ आहि निनार निरंजनां, आदि अनादि न आंन।
कहन सुनन कौं कीन्ह जग, आपै आप भुलांन॥

हे ईश्वर! तेरी अनुपम माया का भेद नहीं पाया जाता, वृक्षरूप में आपने इस संसार की सृष्टि की है। सत, रज, तम त्रिगुणात्मक प्रकृति ही इस संसार-वृक्ष

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तीन शाखाएं हैं जिस पर द्विधा के पत्र पल्लवित हैं तथा धर्म, अर्थ, काम एवं ...क्ष ही इसके चार फल हैं जिनका उपयोग करने वाले पाप और पुण्य स्वरूप दो ...धिकारी हैं। इन फलों के स्वाद अवर्णनीय हैं और ईश्वर ने जो लीला रची है वह ...इन स्वादों में नहीं समा सकती। इसीलिए उस अनुपम ईश्वर को खोजने का ...त्न करो क्योंकि यह संसार तो भ्रम है जिसमें पड़कर जीवात्मा स्वयं विभ्र-...त है।

विशेष—सांगरूपक अलंकार।

जिनि नटवै नटसारी साजी, जो खेलै सो दीसै बाजी।
मो बपरा थैं जोगति ढाठी, सिव बिरंचि नारद नहीं दीठी॥
आदि अंति जो लीन भये हैं, सहजैं जांनि संतोखि रहे हैं।
सहजैं रांम नांम ल्यौ लाई, रांम नाम कहि भगति दिढाई॥
रांम नाम जाका मन मांना, तिन तौ निज सरूप पहिचांनां।

नटवै=नट, सृजक, ब्रह्म। नटसारी=खेल का सम्भार, सृष्टि से तात्पय। ...सै=दृष्टिगत होता है। बाजी=किसी किसी को ही। दिढ़ाई = दृढ़ करना।

जिस सृजक ब्रह्म ने इस सृष्टि की रचना की है वह किसी ही किसी को दृष्टिगत ...ता है। मैं बिचारा तो किनमें हूं, मेरी गणना कहां, जब शंकर और नारद जैसे ही ...का भेद न पा सके। कबीर कहते हैं कि जो सहज साधना द्वारा परत्मामा में ही रम ...हैं, जो आद्यन्त उस प्रभु का ध्यान करते रहते हैं और इस प्रकार राम में वे अपना ...भक्ति रखते हैं जिनका राम के अतिरिक्त अन्य किसी से प्रयोजन ही नहीं रह ...ता वे ही भक्त उस ब्रह्म के स्वरूप को पहचानते हैं।

विशेष—१. रूपकातिशयोक्ति अलंकार।

२. प्रेमाभक्ति की पुष्टि।

निज सरूप निरंजना, निराकार अपरंपार अपार।
रांम नाम ल्यौ लाइस जियरे, जिनि भूलै बिस्तार॥
करि बिसतार जग धंधै लाया, अंत्र काया थैं पुरिष उपाया।
जिहि जैसी मनसा तिहि तैसा भावा, ताकूं तैसा कीन्ह उपावा॥
तेतौ माया मोह भुलांनां, खसम रांम सो किनहूं न जांनां।
जिनि जांन्यां ते निरमल अंगा, नहीं जांन्यां ते भये भुजंगा।
ता मुखि बिष आवै बिष जाई, ते बिष ही बिष मैं रहै समाई।
माता जगत भूत सुधि नांही, भ्रमि भूले नर आवैं जाहीं॥
जानि बूझि चेतै नहीं अंधा, करम जठर करम के फंधा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उस ईश्वर का स्वरूप निराकार, अलख एवं अगम्य है, वह इन्द्रियातीत है। हे मन ! तू राम-नाम में ही रमा रह, क्यों व्यर्थ माया-प्रपंच में फंसता है। अपने पापों का बोझ बढ़ा कर तू इस संसार में आ फंसा और अब इस अज्ञानमय शरीर से ब्रह्म-प्राप्ति ।कया चाहता है जो पूर्णरूपेण असम्भव हैं । जिसकी जैसी मनोभावना होती है, उसे उसी रूप में ईश्वर की परिकल्पना रुचिकर लगती है और वह अपने मनोनुकूल प्रभु-प्राप्ति का उपाय करता है। किन्तु वे सब मनुष्य माया-माह में पड़े हुए हैं और प्रियतम राम को कोई भी नहीं जान सका। जिन्होंने ब्रह्म के स्वरूप को जान लिया वे तद्रूप हो गये और शेष व्यक्ति तो विषय-वासना विष से परिपूर्ण सर्प ही रहे । इन विषाक्त मनुष्यों के तो आचार-व्यवहार, कथन आदि प्रत्येक क्रिया-कलाप में विष ही विष होता है। यह संसार विषय-वासना के आनन्दों में मदमस्त है और इसी लिए आवागमन के चक्र में पड़ा हुआ है। हे अज्ञानांध मनुष्य ! सावधान क्यों नहीं होता ? इस कर्म-जंजाल में क्यों फंसा हुआ है ?

करंम का बाध्या जीयरा, अह निसि आवै जाइ।
मनसा देही पाइ करि, हरि बिसरै तौ फिर पीछैं पछिताइ ॥
तौ करि त्राहि चेति जा अंधा, तजि परकीरति भजि चरन गोब्यंदा।
उदर कूप तजौ ग्रभ वासा, रे जीव रांम नांम अभ्यासा ॥
जगि जीवन जैसें लहरि तरंगा, खिन सुख कूं भूलसि बहु संगा।
भगति कौ हींन जीवन कछू नांहीं, उतपति परलै बहुरि समांहीं ॥

कबीर कहते हैं कि कर्म-जंजाल में फंसा यह जीव अहर्निश ऐसे कुकर्मों में संलग्न रहता है कि आवागमन चक्र में ही बंधा रहता है। यदि मानव योनि पाकर भी जीवात्मा तूने प्रभु का स्मरण न किया तो फिर पछताना पड़ेगा। तू प्रभु की वन्दना करता हुआ उनकी शरण में चला जा और ईश्वर के चरणों का भजन कर। तू मातृ-गर्भ में पड़ा (उल्टा लटका हुआ) वहां से छूटने की प्रार्थना करता था, राम-नाम के ही प्रभाव से तू उस नरक से मुक्त हो सका है। यह सांसारिक जीवन जल-वीचि तुल्य क्षणिक है। क्षणिक विषयजनित आनंद के लिये तूने साधु आत्माओं का साथ छोड़ दिया। ईश्वर भक्त का जीवन किसी भी प्राकर से हेय नहीं है। वह ब्रह्म से वियुक्त हुआ पुनः उन्ही के स्वरूप को प्राप्त कर लेता है।

भगति हीन अस जीवनां, जन्म मरन बहु काल।
आश्रम अनेक करसि रे जियरा, रांम बिना कोई न करै प्रतिपाल ॥
सोई उपाव करि यहु दुख जाई, ए सब परहरि बिसै सगाई।
माया मोह जरै जग आगी, ता संगि जरसि कवन रस लागी ॥
त्राहि त्राहि करि हरी पुकारा, साध संगति मिलि करहु बिचारा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रे रे जीवन नहीं बिश्रांमां, सब दुख खंडन रांम को नांमां ।।
रांम नांम संसार मैं सारा, रांम नांम भौ तारनहारा ।

कबीर कहते हैं कि भक्ति-विहीन हमारा जीवन जन्म-मरण के आवागमन में बंधा रहता है । चाहे तू कितने ही आश्रमों का पालन कर ले किन्तु ईश्वर बिना, प्रभु पर दृढ़ विश्वास के बिना तेरा कोई सहायक नहीं हो सकता । हे प्रभु ! ऐसी अनुकम्पा कीजिए मेरे समस्त सांसारिक तापों का शमन हो आपसे प्रेम हो । माया-मोह का नाश होकर सांसारिक तृष्णा जल जाये, इस विषय-वासना के लगे रहने से क्या लाभ ? तू साधु-संगति कर प्रभु के गुणों का गान कर उनकी ण में जा । इस जीवन में विश्राम कहाँ, समस्त दुखों के दूर करने वाले श्री राम हैं । प्रभु नाम ही संसार में एकमात्र सत्य है और वही भव-समुद्र से पार तारने वाला है ।

सुम्रित बेद सबै सुनै, नहीं आवै कृत काज ।
नहीं जैसें कुंडिल बनित मुख, मुख सोभित बिन राज ।।
अब गहि रांम नांम अबिनासी, हरि तजि जिनि कतहूं कै जासी ।
जहां जाइ तहां तहां पतंगा, अब जिनि जरसि समझि विष संगा ।।
चोखा रांम नांम मनि लीन्हां, भ्रिंगी कीट भ्यंन नहीं कीन्हां ।
भौसागर अति वार न पारा, ता तिरबे का करहु बिचारा ।।
मनि भावै अति लहरि बिकारा, नहीं गमि सूझै वार न पारा ।
भौसागर अथाह जल, तामैं बोहिथ रांम अधार ।
कहै कबीर हम हरि सरन, तब गोपद खुर बिस्तार ।। ।।

स्मृति, वेद, पुराण आदि धर्म-ग्रन्थों को पढ़-सुनकर भी जो उन पर आचरण नहीं करता वह उसी प्रकार है जिस प्रलार किसी स्त्री का मुख कुण्डल पहने हुए भी शोभा नहीं पाता और किसी स्त्री का मुख बिना कुण्डल के भी शोभित होता है । हे मन ! अविनाशी प्रभु, राम-नाम, का आश्रय ले क्योंकि उनकी शरण छोड़ फिर कहां शरण प्राप्त करेगा ? जहां जहाँ भी तू जाता है वहीं माया रूपी पतंग तेरा पीछा नहीं छोड़ता, अब तो विषय-वासनाओं की भयंकरता का अनुमान कर इस मायाजन्य आकर्षण का साथ छोड़ दे । यदि तू राम-नाम मार्ग को अपना ले तो उसका आश्रय भृंगी नामक कीट के सदृश प्रभुरूप ही हो जायगा ।

इस संसार-समुद्र का ओर-छोर नहीं है, अतः इसको पार करने की चिंता करो । मन को विषय-वासनाजनित आनंद ही रुचिकर हैं, इसीलिए संसार-तापों से मुझे कुछ दृष्टिगत नहीं होता । इस भवसागर के अगम्य जल में पार उतरने के लिए राम-नाम ही एक मात्र यान है । कबीर कहते हैं कि मैं तो ईश्वर की शरण में आ गया हूं और मुझे तो संसार-सागर गौ-चरण के समान छोटा लगने लगा है ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विशेष—१ रूपक, उपमा, सांगरूपक अलंकार।

२. "भ्रिंगी कीट भ्यंन नहीं कीन्हां" में वेदान्तियों के 'भृंगी कीट न्याय' की झलक है। इस भृंगी-कीट के विषय में प्रसिद्ध है कि यह जिस सामान्य कीट का अपना शिष्य बनाता है, उसकी परिक्रमा करता हुआ, एक समय ऐसा आता है कि उसे भी तद्रूप कर देता है, भृंगी ही बना देता है।

बड़ी अष्टपदी रमैंणीं।

एक बिनांनीं रच्या बिनांन, सब अयांन जो आपै जांन।
सत रज तम थैं कीन्हीं माया, चारि खांनि बिस्तार उपाया॥
पंच तत ले कीन्ह बंधानं, पाप पुंनि मांन अभिमानं॥
अहंकार कीन्हें माया मोहू, संपति बिपति दीन्हीं सब काहू॥
भले रे पोच अकुल कुलवंतां, गुणी निरगुणीं धनं नीधनवंतां।
भूख पियास अनहित हित कीन्हां, हेत मोर तोर करि लीन्हां॥
पंच स्वाद ले कीन्हां बंधू, बंधे करम जो आहि अबंधू।
अवर जीव जंत जे आहीं, संकुट सोच बियापै ताहीं॥

स्रष्टा परमात्मा ने इस सृष्टि का निर्माण किया जिसके भेद के विषय में सब अज्ञानी हैं, केवल वह स्वयं ही इसका रहस्य जानता है। सत, रज, तम त्रिगुणात्मक माया की रचना कर चारों दिशाओं अर्थात् सर्वत्र. उसका प्रसार कर दिया। क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा, इन पाँच तत्वों से ही पाप-पुण्य एवं मानाभिमानयुक्त शरीर की रचना की है। साथ ही अहंकार, माया, मोह, आदि दुर्गुणों की भी सृष्टि की और प्रत्येक व्यक्ति को सुख-दुख प्रदान किये। धनियों से तो निर्धन ही अच्छे जो सद्व्यवहार रखते हैं, सच्चरित्र हैं। धनिक तो भूखे प्यासे के साथ भी पैसे का लाभ प्राप्त करने की सोचता है, अतः वह स्वार्थ के लिये अपने-पराये किसी का भेद नहीं रखता। पांच ज्ञानेन्द्रियों के स्वाद से जीवात्मा को संसार बंधन में बंधना पड़ा। और जो भी जीव-जन्तु हैं उनको भी अपने निस्तार की चिंता समान रूप से व्यथित करती है।

निंद्या अस्तुति मांन अभिमांनां, इनि झूठै जीव हत्या गियांनां।
बहु बिधि करि संसार भुलावा, झूठै तोजगी साच लुकावा॥

व्यर्थ की निन्दा, मिथ्या, प्रशंसा, मानाभिमान वृथा ही जीवात्मा के ज्ञान को नष्ट करते हैं। इनके प्रपंच में फंस जगत् भ्रम में पड़ नरकगामी होता है एवं सत्य तत्व को खो देता है।

माया मोह धन जोब्नां, इनि बंधे सब लोइ।
झूठै झूठ बियापिया कबीर, अलख न लखई कोइ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

झूठनि झूठ साच करि जांनां, झूठनि मैं सब साच लुकांनां।
धंध बंध कीन्ह बहुतेरा, क्रम बिर्बाजित रहै न नेरा॥
षट दरसंन आश्रम षट कीन्हा, षट रस खाटि कांम रस लीन्हां।
चारि बेद छह सास्त्र बखानैं, बिद्या अनंत कथैं को जांनैं॥
तप तीरथ कीन्ह ब्रत पूजा, धरम नेम दांन पुंन्य दूजा।
और अगम कीन्हैं ब्यौहारा, नहीं गमि सूझै वार न पारा॥
लीला करि करि भेख फिरावा, ओट बहुत कछू कहत न आवा।
गहन ब्यंद कछू नहीं सूझै, आपन गोप भयौ आगम बूझै॥
भूलि पर्‌यो जीव अधिक डराई, रजनीं अंध कूप ह्वै आई।
माया मोह उनवैं भरपूरी, दादुर दामिनि पवनां पूरी॥
तरिपै बरिषै अखंड धारा, रैंनि भांमनीं भया अँधियारा।
तिहि बिवोग तजि भये अनाथा, परे निकुंज न पांवैं पंथा॥
बेद न आहि कहूं को मानैं, जानि बूझि मैं भया अयानैं।
नट बहु रूप खेलै सब जांनैं, कला केर गुन ठाकुर मांनैं॥
ओ खेलै सब ही धट मांही, दूसर कै लेखै कछु नाहीं।
जाके गुन सोई पैं जांनैं, और को जांनैं पार अमानैं॥
भले रे पोच औसर जब आवा, करि सनमांन पूरि जम पावा।
दांन पुन्य हम दिहूं निरासा, कब तक रहूं नटरंभ काछा॥
फिरत फिरत सब चरन तुरांनैं, हरि चरित अगम कथै को जांनैं।
गण गंध्रप मुनि अंत न पावा, रह्यो अलख जग धंधै लावा॥
इहि बाजी सिव बिरंचि भुलांनां, और बपुरा को क्यंचित जांनां।
त्राहि त्राहि हम कीन्ह पुकारा, राखि राखि साईं इहि बारा।
कोटि ब्रह्मंड गहि दीन्ह फिराई, फल कर कीट जनम्र बहुताई॥
इस्वर जोग खरा जब लीन्हां, टर्‌यो ध्यांन तप खंड न कीन्हां।
सिध साधिक उनथैं कहु कोई, मन चित अस्थिर कहु कैसैं होई॥
लीला अगम कथै को पारा, बसहु समींप कि रहौ निनारा।

खग खोज पीछैं नहीं, तूं तत अपरंपार।
बिन परचै का जांनियैं, सब झूठै अहंकार॥

माया, मोह, धन, यौवनादि के दर्प में समस्त जगत् पडा हुआ है। ये नश्वर, क्षणिक शरीरधारी मिथ्या सुखों में पड़ गये हैं किन्तु अलख-निरंजन परमात्मा को कोई नहीं पहचानता। चाहे कितने ही उपक्रम कर उस ईश्वर को प्राप्त करने का उपाय किया जाय किन्तु वह तो कर्म-गति से परे है। षट् दर्शन, छः आश्रम (जब

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कि आश्रम चार होते हैं), षट् रस, विषय रस, चारो वेद, छहों शास्त्र तथा अनन्त विद्याओं, जिनका कथन असम्भव है, तप-तीर्थ, व्रत, पूजा, स्नानादि तथा अन्य धार्मिक नियम, पजा, दानादि के जितने भी उपक्रम हैं ये सब उस अगम्य परमात्मा को खोजने में असमर्थ हैं इनके द्वारा उसका कुछ भी रहस्य प्राप्त नहीं किया जा सकता। वह ईश्वर छिपकर अनेक लीलाएं कर मनुष्य को नाना-योनियों में भ्रमित रखता है। उस अगम्य ईश्वर की गति का पार पाना असम्भव है, स्वयं अदृश्य बन धर्म-ग्रन्थों से अपना स्वरूप स्पष्ट कराते हैं। जीवात्मा इस संसार रूप अज्ञान-रात्रि में पड़ा हुआ भयभीत रहता है। संसार वास की रात्रि भी बड़ी भयानक है, माया-मोह के जन्तुओं तथा विकारों के दादुर-शेर एवं आकर्षणों की चपला सम चमक और बीहड़ वायु के झंझावातों ने इसे और अधिक भयानक बना दिया है। तापों और विपत्तियों की अगणित और मूसलाधार वर्षा हो रही है जिससे रात्रि की भयानकता बढ़ रही है। हम —जीवात्मा—उस परम परमात्मा के वियोग में अनाथ हैं, खोज के लिए चलने पर वर्षामय अन्य बाधाओं को लिए हुए अन्धियारी रात्रि में बीहड़ वन के मार्ग पर भटक गये हैं। वेद-वर्णित ज्ञानानुसार आचरण कोई नहीं करता इसीलिए जानते हुए भी अज्ञानी ही रहते हैं। वह ब्रह्म इस सृष्टि में नट के समान नाना लीलाएं, क्रीडाएं करता रहता है किन्तु वह इन खेलों अथवा लीलाओं को करता दृष्टिगत नहीं होता अपितु वह हृदयस्थ रहता हुआ ही यह सब कर लेता है। वस्तुतः जिसका कार्य होता है, वही तो उसके सम्पूर्ण भेदों से अवगत रहता है, अतः ईश्वर की महिमा भी ईश्वर स्वयं ही जान सकता है। अब तो हम उस अवसर की प्रतीक्षा में हैं जब यमराज पंच-भूत की इस रचना, शरीर को लेने आयेगा। दान-पुण्य आदि में भी हमें निराशा ही निराशा दृष्टिगत होती है। इन झूठे विधि-विधानों में घूमने से, पैर तुड़ाने से क्या लाभ ? प्रभु की अनन्त लीलाओं का कथन शास्त्र ग्रन्थ भी नहीं कर पाये। गण, गन्धर्व, ऋषि आदि कोई भी उस ईश्वर का भेद नहीं पा सका। जब उस ब्रह्म का स्वरूप चिंतन करते हुए स्वयं ब्रह्मा भ्रम में पड़ गया तो फिर भला मुझ मूर्ख की तो गणना ही क्या ? अब मैं 'त्राहि माम् त्राहि माम्' कर रक्षा की दुहाई दे रहा हूं, हे प्रभु अब की बार मुझे शरण में रख लो। करोड़ों ब्रह्माण्ड में मैं चौरासी लक्ष योनियों में भटक घूम आया हूं, अतः अब मेरी रक्षा करो। प्रभु जब जिस भक्त को श्रेष्ठ समझ अंगीकार करते हैं तब उसके लिए समाधि, तपस्या आदि की आवश्यकता नहीं होती। संसार-ग्रस्त जीवों से यह कौन कहे कि चित्त की स्थिरता से ही उनकी प्राप्ति होती है। उस ईश्वर की अगम्य, अपार लीलाओं का कथन कहाँ तक किया जा सकता है, उसके तो बिल्कुल सन्निकट ही रहना चाहिए, दूर रहने से क्या लाभ ?

कबीर कहते हैं कि हे मन ! प्रभु की खोज में तू पीछे मत रह, बिना उससे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

क्षात्कार के कुछ भी नहीं जाना जाता और तथाकथित ज्ञान तो अहं-दर्प मात्र ता है।

अलख निरंजन लखै न कोई, निरभै निराकार है सोई।
सुंनि असथूल रूप नहीं रेखा, द्रिष्टि अद्रिष्टि छिप्यौ नहीं पेखा ।।
बरन अबरन कथ्यौ नहीं जाई, सकल अतोत घट रह्यौ समाई।
आदि अंति ताहि नहीं मधे, कथ्यौ न जाई आहि अकथे।
अपरंपार उपजै नहीं बिनसै, जुगति न जांनियैं कथिये कैसैं ।।
जस कथिये तस होत नहीं, जस है तैसा सोइ।
कहत सुनत सुख उपजे, अरु परमारथ होइ ।।

वह ब्रह्म निराकार, निर्भय एवं इन्द्रियातीत है। वह शून्य स्वरूप, सूक्ष्म, प-रेखा विहीन है, तथा उसका रूप नेत्र-गोचर नहीं हो सकता। उसके वर्ण एवं वरूप का वर्णन नहीं किया जा सकता। किन्तु फिर भी प्रत्येक के हृदय-घट में उसका ास है। उस अवर्णनीय ब्रह्म के आदि, मध्य और अवसान किसी का भी कथन सम्भव है। उसकी महिमा वर्णनातीत है, जब उसकी प्राप्ति का उपाय ही ज्ञात नहीं ो फिर भला उसका स्वरूप कैसे स्पष्ट किया जाय? कबीर ब्रह्म के स्वरूप-वर्णन में पनी असमर्थता प्रकट करते हुए कहते हैं कि मैं जैसा वर्णन करता हूं वह वैसा है ही हीं, वह तो जिस रूप में है वैसा ही रहेगा। किन्तु उसका स्वरूप अज्ञात होते हुए ी प्रभु-चर्चा में आनन्द प्राप्त होता है और दूसरों का भी लाभ होता है।

जांनसि नहीं कथसि अयांनां, हम निरगुन तुम्ह सरगुन जांनां।
मति करि हींन कवन गुन आंही, लालचि लागि आसिरैं रहाई ।।
गुन अरु ग्यांन दोऊ हम हींनां, जैसो कुछ बुधि बिचार तस कीन्हां।
हम मसकीन कछू जुगति न आंवं, जे तुम्ह दरवौ तो पूरि जन पावं ।।
तुम्हारे चरन कवल मन राता, गुन निरगुन के तुम्ह निज दाता।
जहुवां प्रगटि बजावहु जैसा, जस अनभै कथिया तिनि तैसा ।।
बाजै तंत्र नाद धुनि होई, जे बजावै सौ औरै कोई।
बाजी नाचै कौतिग देखा, जो नचावै सो किनहूं न पेखा ।।
आप आप थैं जानियैं है पर नाहीं सोइ।
कबीर सुपिनं केर धन ज्यूं, जागत हाथि न होइ ।।

उस ईश्वर को न जानते हुए भी अज्ञानी उसका स्वरूप विश्लेषण करते हैं एवं वह वस्तुतः है तो निर्गुण किन्तु उसे बताते सगुण ही हैं। हे प्रभु मैं तो बुद्धिहीन हूं, मुझमें कोई भी गुण नहीं है। सांसारिक लाभ-लालसा में पड़ा हुआ परमुखापेक्षी बना रहता हूं। गुणों और ज्ञान से तो मैं शून्य हूं। इस भांति जो कुछ भी मेरा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ज्ञान है उसके आधार पर में आपका स्वरूप कथन करता हूं। मेरा मन तुम्हारे चरण कमलों में ही रम गया है एवं सगुण तथा निर्गुण रूपधारी भी आप ही हैं। मुझ अल्पज्ञ को आपकी भक्ति का अन्य कुछ उपाय नहीं दृष्टिगत होता, यदि आप दयार्द्र हों तो मेरा कल्याण सम्भव है। आप जहां जिस रूप में चाहते हो उसी रूप में प्रकट हो जाते हो एवं निस्संकोच भाव से सर्वत्र गमन करते हो। इस शरीर रूपी तन्त्री में प्राण-वायु की स्वरलहरी बज रही है जिसका वादक कोई और ही हैं। उसी अदृश्य से परिचालित हो यह शरीर नाना कर्मों में निरत रहता है किन्तु उस परिचालक के दर्शन किसी को नहीं होते।

सब उस ब्रह्म को अपनी-अपनी विचारधारा के अनुकूल मानते हैं किन्तु वास्तव में वह वैसा है नहीं। उसका स्वरूप कुछ-कुछ समझ में आकर भी पुनः समझ से परे उसी प्रकार हो जाता है जिस भांति स्वप्न की वस्तु पाकर भी प्राप्त नहीं होती।

जिनि यहु सुपिनां फुर करि जांनां, और सबै दुखयादि न आंनां।
ग्यांन हीन चेतै नहीं सूता, मैं जाग्या विष हर भै भूता ।।
पारधी बांन रहै सर सांधें, बिषम बान मारै विष बांधें।
काल अहेड़ी संझ सकारा, सावज ससा सकल संसारा ।।
दावानल अति जरै बिकारा, माया मोह रोकि ले जारा।
पवन सहाइ लोभ अति भइया, जम चरचा चहुंदिसि फिरि गइया ।।
जम के चर चहुं दिसि फिरि लागे, हंस पंखेरूवा अब कहां जाइबे।
केस गहैं कर निस दिन रहई, जब धरि ऐंचे तब धरि चहई ।।
कठिन पासि कछू चलै न उपाई, जंम दुवारि सीझे सब जाई।
सोई त्रास सुनि रांम न गावै, मृगत्रिष्णां झूठी दिन धावै ।।
मृत काल किनहूं नहीं देखा, दुख कौं सुख करि सबही लेखा।
सुख करि मूल न चीन्हसि अभागी, चीन्हैं बिनां रहै दुख लागी ।।
नींब काट रस नींब पियारा, यूं बिष कूं अंमृत कहै संसारा।
विष अंमृत एकै करि सांनां, जिनि चीन्ह्यां तिनहीं सुख मांनां।
अछित राज दिन दिनहि सिराई, अंमृत परहरि करि बिष खाई ।।
जांनि अजांनि जिन्है बिष खावा, परे लहरि पुकारै धावा।
बिष के खांयें का गुन होई, जा बेद न जांनै परि सोई ।।
सुरझि मुरझि जीव जरि है आसा, कांजी अलप बहु खीर बिनासा।
तिल सुख कारनि दुख अस मेरू, चौरासी लख लीया फेरू ।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अलप सुख दुख आहि अनंता, मन मैंगल भूल्यौ मैमंता।
दीपक जोति रहै इक संगा, नैंन नेह मांनू परै पतंगा॥
सुख विश्रांम किनहूं नहीं पावा, परहरि साच जूठ दिन धावा।
लालच लागे जनम सिरावा, अति काल दिन आइ तुरावा॥
जब लग है यहु निज तन सोई, तब लग चेति न देखै कोई।
जब निज चलि करि किया पयांनां, भयौ अकाज तब फिरि पछितांनां॥
मृगत्रिष्णां दिन दिन ऐसी, अब मोहि कछू न सुहाइ।
अनेक जतन करि टारिये, करम पासि नहीं जाइ॥

किन्त जो प्रभु की इस क्षणिक प्राप्ति को ही सत्य और अपना अवलम्बन ा लेते हैं उन्हें सांसारिक ताप क्लान्त नहीं करते। ज्ञानविहीन मनुष्य सावधान ीं होता वह तो अज्ञान में अचेत पड़ा रहता है किन्तु ज्ञान लाभ कर जागने पर षय-वासना विदूरित हो सांसारिक भय नष्ट हो गया। माया-मोह का ाध सर्वदा विषय-वासना के वाण मारता है। मृत्युरूपी आखेटक प्रति-पल ाँझ-सकारे) मनुष्य-रूपी खरगोशों का वध कर रही है। विषय-कारों की अग्नि अहनिश विदग्ध करती है एवं मनुष्य के माया-मोह इस विषयाग्नि ो और भी प्रज्वलित कर देते हैं। जिस भांति प्रज्वलित अग्नि को वायु और भी ़का देती है उसी प्रकार लोभ की वायु इस विषयाग्नि को प्रदीप्त कर रही है। इस षमावस्था में जीवात्मा पड़ी हुई थी तभी उसे समस्त दिशाओं से यम-त्रास का ान हुआ। जब चारों ओर यमदूत इस विषयाग्नि में पड़ी जीवात्मा को घेर रहे हैं फिर भला वह किधर से विमुक्त होकर चले। वस्तुतः इस काल ने तो हमारे केश ़ रखे हैं, पता नहीं वह कब, कहाँ, हमें उठाकर पटक दे—

"कबीरा गर्व न कीजिए, काल गहे कर केस।
ना जानै कित मारिहै, क्या घर क्या परदेस॥"

यह भवबन्धन अत्यन्त विषम है जहां किसी भी प्रयत्न से विमुक्त होना म्भव है क्योंकि सब एक न एक दिन अवश्य ही काल गाल में चले जाते हैं। -भयों से भयभीत हो प्रभु का स्मरण भी नहीं किया और सांसारिक सुख मृग-ीचिका सदृश मिथ्या, भ्रम, हैं। हे अभागे मनुष्य! तूने सुखस्वरूप ईश्वर ो जानने का प्रयत्न नहीं किया, उसके दर्शनाभाव में ही ये सांसारिक-ताप न करने पड़ रहे हैं। जिस प्रकार नीम के कटु स्वाद को जानते हुए भी कोई नीम सेवन करे, उसी प्रकार विषय-वासना जन्य आनन्द को मिथ्या, पापगर्त में ले जाने ो जानकर भी सब उसी में संलिप्त रहते हैं, इस प्रकार विष को विष जानते हुए अमृत कहते हैं।

RajGuru Math, Shivala; Varanasi.Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वस्तुतः संसार में विष और अमृत मिले हुए हैं किन्तु जो उसमें से अमृत को ही ग्रहण करता है वही शान्ति-लाभ करता है। किन्तु कुछ लोग समय होते हुए भी दिवस-प्रति-दिवस व्यर्थ व्यतीत करते हैं, प्रभु भक्ति नहीं करते। इस प्रकार वे अमृत को त्याग विष को ही ग्रहण करते हैं। जो जानबूझकर विषय-वासना-विष को अपनाते हैं वे भवसागर में डूबते हैं और सहायता के लिए याचना करते हैं। चाहे विषय-वासना विष का थोड़ा ही सेवन किया जाय किन्तु वह घातक ही है, वैद्य भी उसका उपचार नहीं कर सकता क्योंकि वह तो संसार-चक्र में ही पड़ा मृत्यु मुख में चला जाता है और उसके पुण्यों को अल्प पापांश उसी भाँति नष्ट कर देता है जिस भांति खटाई का अल्पांश बहुत से दूध को फाड़ने के लिए पर्याप्त है। क्षणिक विषय-वासना के आनन्द के लिए मनुष्य दुख के पर्वत का भार ढोता है क्योंकि इसी पाप में उसे आवागमन चक्र में पड़ चौरासी लक्ष योनियों की यातनाएं भोगनी पड़ती हैं। इस अल्प सुख के कारण यह मदमस्त हाथी सा मन अगणित दुख उठाता है। दीप के साथ ज्योति प्रज्वलित होने पर जिस भाति शलभ प्रेम के कारण उस पर मर जाता है उसी भाँति ईश्वर-भक्ति करनी चाहिए अथवा उसी प्रकार मनुष्य विषय-वासना पर मिट जाते हैं। इस भाँति कोई भी सुख-शान्ति प्राप्त नहीं करता और सत्य-तत्व परमात्मा को छोड़ सब विषय-वासना में लगे रहते हैं। लोभ-लालच के ही कारण अमूल्य मानव जीवन समाप्त हो जाता है और अन्त समय शीघ्र आ पहुंचता है। जब तक इस शरीर की कामना पूर्ति में लगे रहोगे तब तक ज्ञान-लाभ कर सावधान नहीं हुआ जा सकता। किन्तु जब शरीर छूटने लगा तब प्रभु-भक्ति के लिए पश्चात्ताप करने से क्या लाभ ? कोई कितना ही प्रयत्न क्यों न करे किन्तु कर्मों का जंजाल समाप्त नहीं होता और मनुष्य मिथ्या मृगमरीचिका में भटकता रहता है।

रे रे मन बुधिवंत भंडारा, आप आप ही करहु बिचारा।
कवन सयांन कौंन बौराई, किहि दुख पइये किहि दुख जाई।।
कवन हरिख कौ विष मैं जांनां, को अनहित को हित करि मांनां।
कवन सार को आहि असारा, को अनहित को आहि पियारा।।
कवन साच कवन है झूठा, कवन करूं को लागै मीठा।
किहि जरियै किहि करिये अनंदा, कवन मुकति को मल के फंदा।
रे रे मन मोहि ब्यौरि कहि, हौं तत पूछौं तोहि।
संसै सूल सबै भई, समझाई कहि मोहि।।

हे बुद्धिमान् मनुष्य ! तुम स्वयं ही आत्मस्थित आत्मतत्व, परम-तत्व का विचार करो। तभी तुम विचार कर सकते हो कि कौन ज्ञानी है और कौन मूर्ख, किसे सुख प्राप्त है और कौन दुखी है। किसने प्रभु को आग्रहणीय माना और किसने इस

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कार स्वयं अपने पैर में कुल्हाड़ी मारी है—इस सब का ज्ञान परम तत्व का साक्षात्कार करने पर ही हो सकता है। कौन सा तत्व सत्य और कौन सा भ्रम मात्र, मिथ्या है यह तभी ज्ञात हो सकता है। कौन सच्चा, कौन झूठा, कौन कड़वा और कौन मीठा, क्या घातक है एवं क्या आनन्ददायक है ? कौन इस भवबन्धन से मुक्ति दिला सकता है—यह समस्त विवेक परमात्मा-प्राप्ति पर ही आ सकता है। हे मन ! तू मुझे व्यर्थ पागल मत बना। मैं समस्त साँसारिक भ्रमादि का परित्याग कर तुझसे परम-तत्व की चर्चा करता हूं, तू मुझे समझाकर यह सब बता।

सुनि हंसा मैं कहूं बिचारी, त्रिजुग जोनि सबै अंधियारी।
मनिषा जन्म उत्तिम जौ पावा, जांनूं रांम तौ सयांन कहावा॥
नहीं चेतै तौ जनम गंमावा, पर्‍यौं बिहांन तब फिरि पछतावा।
सुख करि मूल भगति जौ जांनैं, और सबै दुख या दिन आंनैं॥
अमृत केवल रांम पियारा, और सबै बिष के भंडारा।
हरिख आहि जौ रमियैं रांमां, और सबै बिसमां के कांमां॥
सार आहि संगति निरबांनां, और सबै असार करि जांनां।
अनहित आहि सकल ससारा, नित करि जांनियैं रांम पियारा॥
साच सोई जे थिरह रहाई, उपजै बिनसै झूठ ह्वै जाई।
मींठा सो जो सहजैं पावा, अति कलेस थैं करू कहावा॥
नां जरियै नां कीजै मैं मेरा, तहां अनंद जहां राम निहोरा।
मुकति सोज आपा पर जांनैं, सो पद कहा जु भरमि भुलांनैं॥
प्रांननाथ जग जीवनां, दुरलभ रांम पियार।
सुत सरीर धन प्रग्रह कबीर, जीये रे तवर पंख बसियार॥

हे मुक्तात्मा ! सुन इस संसार में सर्वत्र अंधकार ही अंधकार है। उत्तम मानव जीवन प्राप्त कर। यदि राम-नाम स्मरण किया तो ही चतुरता है। यदि इस जन्म में भी सावधान न हुआ गया तो फिर जीवन की संध्या में पश्चात्ताप के अतिरिक्त और कुछ हाथ नहीं लगता। जो प्रभु-भक्ति को समस्त सुखों की प्रदाता मानते हैं उन्हें कोई भी दुःख नहीं व्यापते। केवल राम-नाम ही अमृत तुल्य है अन्य सब ता विष ही विष है। जो प्रफुल्लित हो राम-नाम जपते हैं उन्हें अन्य समस्त कार्य-कलाप वृथा ज्ञात होता है। साधु-संगति ही मोक्ष-प्राप्ति का साधन है, अन्य समस्त-विधि-विधान तो व्यर्थ हैं। संसार के अन्य सब कामों में तो अहित हैं, केवल प्रभु-भक्ति में ही कल्याण है। सत्य वस्तु तो वही है जो स्थिर रहे, अमर रहे अन्यथा अन्य सब पदार्थ तो उत्पत्ति और प्रलय के अवान्तर चक्र में पड़े हुए हैं। वही भक्ति-साधना मधुर है जिसमें सुगम और स्वाभाविक गति से प्रभु-प्राप्ति हो जाय, शेष उपाय —साधनाएं तो अग्राह्य हैं। जहाँ राम-नाम का ही एक मात्र आश्रय है वहां न तो साँसारिक ताप हैं, न अहं-पर निज की द्वैत

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भावना। आत्म-तत्व को पहचानने पर मुक्ति सरल हो जाती है किन्तु वह परमपद किसी को ही प्राप्त होता है जहां समस्त भ्रम भाग जाते हैं।

कबीर कहते हैं कि इस संसार में पुत्र, शरीर, धन आदि का मोह त्याग अगम्य प्रभु की जो सबका जीवनाधार है, भक्ति करनी चाहिए। जिससे इस संसार-वृक्ष पर मुक्तात्मा पक्षी अपने पंख फैलाकर सुखपूर्वक रह सकें।

रे रे जीय अपनां दुख न संभारा, जिहिं दुख ब्याप्या सब संसारा।
माया मोह भूले सब लोई, क्यंचित लाभ मांनिक दीयौ खोई।।
मैं मेरी करि बहुत बिगूता, जननीं उदर जन्म का सूता।
बहुतैं रूप भेष बहु कीन्हां, जुरा मरन क्रोध तन खीनां।।
उपजै बिनसै जोनि फिराई, सुख कर मूल न पावै चाही।
दुख संताप कलेस बहु पावै, सो न मिलै जे जरत बुझावै।।
जिहि हित जीव राखिहै भाई, सो अनहित ह्वै जाइ बिलाई।
मोर तोर करि जरे अपारा, मृग त्रिष्णां झूठी संसारा।।
माया मोह झूठ रह्यौ लागी, का भयौ इहां का ह्वैहै आगी।
कछु कछु चेति देखि जीव अबही, मनिषा जनम न पावै कबही।।
सार आहि जे संग पियारा, जब चेतै तब ही उजियारा।
त्रिजुग जोनि जे आहि अचेता, मनिषा जनम भयौ चित चेता।।
आतमां मुरछि मुरछि जरि जाई, पिछले दुख कहतां न सिराई।
सोई त्रास जे जांनैं हंसा, तौ अजहूं न जीव करै संतोसा।।
भौसार अति बार न पारा, ता तिरबे का करहु बिचारा।
जा जल की आदि अंति नहीं जांनियें, ताकौ डर काहे न मानियें।।
को बोहिथ को खेवट आही, जिहि तिरिये सो लीजै चाही।
समझि बिचारि जीव जब देखा, यहु ससार सुपन करि लेखा।।
भई बुधि कछू ग्यांन निहारा, आप आप ही किया बिचारा।
आपण मैं जे रह्यौ समाई, नेडै दूरि कथ्यौ नहीं जाई।।
ताके चीन्हैं परचौ पावा, भई समझि तासूं मन लावा।
भाव भगति हित बोहिथा, सतगुर खेवनहार।
अलप उदिक सब जांणिये, जब गोपदखुर बिस्तार।।३।।

हे जीव! तू अपने दुःख का शमन नहीं करता, तुझे ज्ञात नहीं कि इस वेदना से समस्त संसार व्यथित हैं। सब साँसारिक माया-मोह में भूले हुए हैं और उन्होंने विषय-वासना के अल्प, मिथ्या लाभार्थ प्रभु रूप अमूल्य माणिक्य को खो दिया। 'अहं' और 'अयं परं, निजं वा' की भावना ने सगे भाइयों तक में बहुत दरार डाल दी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

। अनेक योनियों में बहुत से जन्म धारण किये और फिर क्रोधादि से यह शरीर क्षीण गया —इस प्रकार यही जरा-मरण का चक्र चलता रहा। जन्म-मरण के इस चक्र में ड़कर भी सुख-मूल परम-पिता परमात्मा को पहचानने का प्रयत्न नहीं किया। सकी प्राप्ति के अभाव में जीव नाना दुख-व्यथाओं से उत्पीड़ित होता रहता है। जिस द्देश्य—मोक्ष—के लिये अनेक जन्म धारण करने पड़ते हैं वही समाप्त हो जाता है। 'मैं-तू' के इस द्वैत से मिथ्या मृगमरीचिका में संसार भटक रहा है। मोह-ममता के माया-जाल में संसार पड़ा हुआ है और तापों की अग्नि में विदग्ध होता रहता है। हे जीव! कुछ तो सावधान होकर संसार और अपनी दारुण दशा का विचार कर क्योंकि इससे मुक्ति का एकमात्र उपाय मानव-जीवन ही है जो पुनः प्राप्त नहीं होता है। इस बात को जानकर जो सावधान हो जाते हैं उन्हें ज्ञान का दिव्य प्रकाश उपलब्ध होता है। जो संसार में मानव जीवन पाकर भी अचेत रहते हैं उनकी आत्मा परमात्मा से साक्षात्कार नहीं करती और न उनके विगत तथा आगत दुःखों की समाप्ति होती है। उस दुःख का ही ध्यान करके मुक्तात्मा प्रभु-भक्ति में दत्तचित्त रहते हैं और वे चाहे कितनी ही प्रभु-भक्ति करें, उनका प्रभु से प्रेम बढ़ता ही जाता है, उनकी भक्ति दृढ़ से दृढ़तर होती जाती है। इस संसार-सागर के अथाह जल का कोई पार नहीं पाया जा सकता, अतः इस अगम्य सागर को पार करने का उपाय, प्रभु-भक्ति-साधना करो। जिस जल का कोई वार-पार नहीं उससे निस्तार का प्रयत्न आवश्यक है। इस सागर के पार जाने के लिये न कोई जलयान है, न कोई नौकाहार। जो इससे तरना चाहता है उसे स्वयं ही प्रयत्न करना होगा।

जब जीवात्मा ने विचार कर विवेक बुद्धि से सोचा तो उसे यह संसार स्वप्नवत् मिथ्या दृष्टिगत हुआ एवं इस प्रकार ज्ञान प्राप्त होने पर उसने अन्तर्मुखी हो आत्म-तत्व का विचार किया। वह प्रभु हृदय में ही स्थित था, उसके लिए कहीं अन्यत्र भटकना नहीं पड़ा। उसके साक्षात्कार से मन उसी में रम गया।

कबीर कहते हैं कि संसार सागर से पार जाने के लिये प्रेम-भक्ति ही जलयान है तथा सद्गुरु उस पोत के खिवैया है। इसके द्वारा यह विशाल भवसागर थोड़े से जल का हो जाता है, वह इतना छोटा हो जाता है, जितना गौ के पद का चिन्ह जिसे बड़ी सुगमता से (बच्चा भी) पार कर सकता है।

विशेष—१. रूपक, उपमा, सांगरूपक आदि अलंकार।

२. वेदान्तियों के समान संसार की 'स्वप्न' आदि से उपमा तो 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' की पुष्टि करती है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दुपदी रमैंणी

भया दयाल ब्रिषहर जरि जागा, गहगहान प्रेम बहु लागा।
भया अनंद जीव भये उल्हासा, मिले रांम मनि पूगी आसा॥
मास असाढ़ रवि धरनि जरावै, जरत जरत जल आइ बुझावै।
रुति सुभाइ जिमीं सब जागी, अंमृत धार होइ झर लागी॥
जिमीं मांहि उठी हरियाई, बिरहनि पीव मिले जन जाई।
मनिकां मनि कै भये उछाहा, कारनि कौंन बिसारी नाहा॥
खेल तुम्हारा मरन भया मोरा, चौरासी लख कीन्हां फेरा।
सेवग सुत जे होइ अनिआई, गुन औगुन सब तुम्हि समाई॥
अपने औगुन कहूं न पारा, इहै अभाग जे तुम्ह न संभारा।
दरबो नहीं कांइ तुम्ह नाहा, तुम्ह बिछुरे मैं बहु दुख चाहा॥
मेघ न बरिखं जांहिं धदासा, तऊ न सारंग सागर आसा।
जलहर भर्‌यौ ताहि नहीं भावै, कै मरि जाइ कै उहै पियावैं॥
मिलहु रांम मनि पुरवहु आसा, तुम्ह बिछुर्‌यां मैं सकल निरासा।
मैं रनिरासी जब निध्र पाई, रांम नांम जीव जाग्या जाई॥
नलनीं कं ज्यूं नीर अधारा, खिन बिछुर्‌यां थैं रवि प्रजारा।
रांम बिनां जीव बहुत दुख पावै, मन पतंग जगि अधिक जराव॥
माघ मास रुति कर्वाल तुसारा, भयौ बसंत तब बाग संभारा।
अपनैं रंगि सब कोइ राता, मधुकर बास लेहि मैमंता॥
बन कोकिला नाद गहगहांनां, रुति बसंत सब कै मनि मांनां।
बिरहन्य रजनी जुग प्रति भइया, बिन पीव मिलें कलप टलि गइया॥
आतमां चेति समझि जीव जाई, बाजी झूठ रांम निधि पाई।
भया दयाल निति बाजहिं बाजा, सहजैं रांम नांम मन राजा॥

जरत जरत जल पाइया, सुख सागर कर मूल।
गुर प्रसादि कबीर कहि, भागी संसै सूल॥

राम के दर्शन हो जाने पर मनः तुष्टि हो जीवात्मा आनन्दित हुई, ईश्वर के दयालु हो जाने पर मन में उनके प्रति गम्भीर प्रेम उत्पन्न हुआ। जिस प्रकार आषाढ़ की दग्ध धरा को प्रथम मेघ आकर शीतलता प्रदान कर चतुर्दिक् अमृत वर्षा द्वारा सर्वत्र हरियाली फैला शोभा प्रदान करता है, उसी भांति युग-युग से प्रतीक्षारत विरहिणी आत्मा को प्रिय—परमात्मा—के दर्शन हो गये। अब, आत्मा हृदय में अमित उल्लास लिये प्रियतम से कहने लगी, नाथ! आपने मुझे क्यों विस्मृत कर दिया था। मैं आपको खोजती-खोजती चौरासी लक्ष योनियों में भटकती रही—यह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आपके लिये तो एक लीला-कौतुक मात्र था किन्तु वह मेरे लिए तो प्राण लेवा हो गया। सेवक और पुत्र से जो भी अनुचित कृत्य हो जाता है, उसके सब गुण-अवगुण, पाप-पुण्य, सबकी आपही देख-रेख करते हैं। पर अपने अवगुणों का कहाँ तक वर्णन करूं, वे अपार हैं। मेरा दुर्भाग्य होगा यदि आपने मेरी रक्षा न की। हे नाथ ! आप मुझ पर दयार्द्र क्यों नहीं हो रहे हैं क्योंकि आपसे वियुक्त हो मैं बहुत यातना भोग रही हूं। जिस भाँति चातक स्वाति बादल के जल न बरसाने पर भी अपना प्रेम सम्बन्ध सागर से स्थापित नहीं करता, चाहे मर जाये किन्तु अन्य किसी का जल ग्रहण नहीं करता, वही दशा हमारी है। चाहे आप दया करें अथवा नहीं किन्तु आपके अतिरिक्त और किसी से प्रेम नहीं हो सकता। हे प्रभु ! । आप मुझे दर्शन देकर मेरी कामना पूर्ण कीजिए क्योंकि आपसे वियुक्त हो निराशा के अतिरिक्त और कुछ प्राप्त नहीं होता। मैं रंक तभी अमित सम्पत्ति की प्राप्ति समझूंग जब आप में मेरा मन पूर्ण रूपेण रम जायेगा —

"तुम अपनायौ जानिहों जब मन घिरि परिहैं।"—तुलसी

जिस भांति नलिनी का एकमात्र अवलम्ब जल होता है, उससे पलभर भी वियुक्त होने पर असह्य सूर्यताप उसे भस्म कर देता है, वही स्थिति मेरी है। प्रभु के बिना मेरा चित अत्यन्त व्यथित रहता है और मन रूपी शलभ माया-दीपक पर जलता रहता है। माघ मास में जब हिमपात द्वारा कमलावलि नष्ट हो जाती है तब उसके बाद वसन्तागम पर सौन्दर्य सृष्टि का क्या लाभ ? उसी भांति मैं विरह से तो अब व्यथित हूं यदि बाद में आपने दर्शन भी दे दिया तो उससे क्या लाभ ?

"का वर्षा जब कृषि सुखाने"

और कमलों आदि की वह व्यथा वसन्तागम पर जब कोकिल अपनी सुरीली स्वर-लहरी से दिग्दिगन्त को गुञ्जित कर देती है तब तो समाप्त हो ही जाती है किन्तु मेरी व्यथा का अन्त नहीं। प्रभु विरह की रात्रि युग के समान व्यतीत होती है, प्रिय दर्शन को भी मानो एक कल्प ही बीत गया। जीवात्मा के सावधान होने से संसार के मिथ्या आकर्षण हट जाते हैं और राम रत्न की प्राप्ति होती है। ईश्वर के कृपालु होने पर नित्य आनंद और उल्लास का रंग रहता है। इस प्रकार सहज-साधना से राम की प्राप्ति हो गई है।

कबीर कहते हैं कि संसार-तापों में जलते ही जलते जीवात्मा ने सुखसिन्धु परमात्मा को प्राप्त कर लिया। इस प्रकार सद्गुरु कृपा से समस्त भ्रम विदूरित हो गये।

विशेष—सांगरूपक, रूपक, निदर्शना अलंकार आदि।

रांम नांम निज पाया सारा, अबिरथा, झूठ सकल संसारा।
हरि उतंग मैं जाति पतंगा, जंबकु केहरि कै ज्यूं संगा॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

क्यंचिति ह्वै सुपिनैं निधि पाई, नहीं सोभा कौं धरौं लुकाई।
हिरदै न समाइ जांनिये नहीं पारा, लागै लोभ न और हकारा॥
सुमिरत हूं अपने उपमानां, क्यंचित जोग रांम मैं जांनां।
मुखां साध का जांनियै असाधा, क्यंचित जोग रांम मैं लाधा॥
कुबिज होइ अंमृत फल बछ्या, पहुंचा तब मनि पूगी इंछ्यां।
नियर थैं दूरि दूरि थैं नियरा, रांम चरित न जांनियैं जियरा॥
सीत थैं अगिन फुनि होई, रबि थैं ससि ससि थैं रबि सोई।
सीत थैं अगनि परजरई, जल थैं निधि निधि थैं थल करई॥
बज्र थैं तिण खिण भीतरि होई, तिण थैं कुलिस करै फुनि सोई।
गिरवर छार छार गिरि होई, अविगति गति जानैं नहीं कोई॥

इस संसार में केवल राम-नाम ही सत्य है शेष तो वृथा जंजाल है। मेरा उनका साथ वैसा ही है जैसे शेर और गीदड़ का। मैंने उनके स्वरूप का साक्षात्कार अल्प समय के लिए वैसे ही किया है जैसे कोई स्वप्न में अमूल्य सम्पत्ति पा जाये। मैं उनकी वर्णनातीत शोभा को छिपाकर नहीं रख सकता। वह अपरम्पार शोभा मेरे हृदय में भी नहीं समा सकती। मैंने प्रभु के निरन्तर स्मरण से ही उन्हें थोड़ा बहुत जाना है। साधुओं के अमृत वचनों से ही मैंने राम को प्राप्त किया है। मैंने इस भांति जब अमृत स्वरूप ब्रह्म को प्राप्त कर लिया तभी मनोकामना पूर्ण हुई। राम के चरित्र को पहचानना बड़ा दुष्कर है—जब मैं विषय-वासना के समीप था तब वह प्रभु मुझ से दूर था किन्तु जब मैं वासना-जन्य आनंदों से दूर रहने लगा तो वह मेरे बिल्कुल निकट हो गया। उस प्रभु की महिमा विचित्र है, वह शीतलतम वस्तु को अग्नि के समान दाहक बना दे, चन्द्र जैसे शीतल को भी दग्धकारी सूर्य और सूर्य को चन्द्र बना दे। वह शीतल वस्तु में अग्नि उत्पन्न करने के साथ ही जल को स्थल एवं स्थल को जल में परिवर्तित कर दे। वह वज्र को भी क्षणभर में तृण रूप में कर दे और तृण को शीघ्र ही पर्वताकार दे दे। पर्वतराज को भी धूलिकणों में और धूलि को भी पर्वत में परिवर्तित करना उसकी सामर्थ्य में हैं उस अगम्य प्रभु की महिमा का पार कोई नहीं पा सकता।

विशेष—उपमा विरोधाभास आदि अलंकार।

जिहि दुरमति डौल्यौ संसारा, परे असूझि वार नहीं पारा।
त्रिख अमृत एकै करि लीन्हां, जिनि चीन्हां सुख तिहकूं हरि दीन्हां।
सुख दुख जिनिं चीन्हां नहीं जांनां, ग्रासे काल सोग रुति मांनां।
होइ पतंग दीपक मैं परई, झूठैं स्वादि लागि जीव जरई॥
कर गहि दीपक परहि जु कूपा, यहु अचिरज हम देखि अनूपा।
ग्यांनहीन ओछी मति बाधा, मुखां साध करतूति असाधा॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दरसन समि कछू साध न होई, गुर समांन पूजिये सिध सोई।
भेष कहा जे बुधि बिसूधा, बिन परचै जग बूड़नि बूड़ा॥
जदपि रबि कहिये सुर आही, झूठै रबि लीन्हां सुर चाही।
कबहूँ हुतासन होइ जरावै, कबहूँ अखंड धार बरिषावैं॥
कबहूं सीत काल करि राखा, तिहूं प्रकार बहुत दुख देखा।
ताकूं सेवि मूढ़ सुख पावै, दौरै लाभ कूं मूल गवावै॥
अछित राज दिने दिन होई, दिवस सिराइ जनम गये खोई।
मृत काल किनहूं नहीं देखा, माया मोह धन अगम अलेखा॥
झूठै झूठ रह्यौ उरझाई, साचा अलख जग लख्या न जाई।
साचै नियरै झूठै दूरी, बिष कूं कहै सजीवनि मूरी॥
कथ्यौ न जाइ नियरै अरु दूरी, सकल अतीत रह्या घट पूरी॥
जहां देखौं तहां रांम समांनां, तुम्ह बिन ठौर और नहीं आंनां।
जदपि रह्या सकल घट पूरी, भाव बिनां अभि-अंतरि दूरी॥
लोभ पाप दोऊ जरैं निरासा, झूठै झूठि लागि रही आसा।
जहुवां ह्वै निज प्रगट बजावा, सुख संतोष तहां हम पावा॥
नित उठि जस कीन्ह परकासा, पावक रहै जैसें काष्ठ निवासा।
बिनां जुगति कैसें मथिया जाई, काष्टैं पावक रह्या समाई॥
कष्टैं कष्ट अग्नि पर जरई, जारै दार अग्नि समि करई।
ज्यूं रांम कहे ते रांमैं होई, दुख कलेस घालै सब खोई॥
जन्म के कलि विष जांहि बिलाई, भरम करम का कछु न बसाई।
भरम करम दोऊ बरतें लोई, इनका चरित न जांनें कोई॥
इन दोऊ संसार भुलावा, इनके लागें ग्यांन गंवावा।
इनकौ मरम पै सोई बिचारी, सदा आनद लै लीन मुरारी॥
ग्यांन द्रिष्टि निज पेखै जोई, इनका चरित जांनैं पै सोई।

जो कुबुद्धिमान् इस संसार में माया-जंजाल में भटकते फिरते हैं उनके ...ये भवसागर का वार-पार नहीं किन्तु जिन्होंने समत्व दृष्टि प्राप्त कर सुख-सिन्धु ...रमात्मा को पहचान लिया उनका जीवन धन्य हो गया। जो सुख-दुख, सदसद्, ...द नहीं कर पाये वे तो जीवन पर्यन्त दुखी रहते हुए काल-कवलित हो गए। ...ारिक व्यक्ति मिथ्या विषयानन्द के लिए मायाकर्षण में उसी भांति संलिप्त ...है जैसे शलभ दीपक पर मर मिटता है। जो स्वयं यह जानते हुए कि विषया- ...मिथ्या एवं पाप-मूल हैं उनमें पड़ता है उसमें वैसी ही विचित्रता है जो जान- ...कर कुएं में अपने आप गिर कर प्राण गंवाता है। ज्ञानहीन मनुष्य अपनी अल्प-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बुद्धि से साधुजनों के कार्य में बाधा उपस्थित करते रहते हैं। साधु के दर्शनों के बराबर अन्य किसी में पुण्य नहीं और गुरु पूजा के सदृश अन्य कोई महत् कार्य नहीं। व्यर्थ साधु का वेष धारण करने से कुछ नहीं होता क्योंकि उससे तो अन्य वितण्डा खड़ी होती हैं, भक्ति-साधना नहीं। ईश्वर के बिना जाने ही संसार के लोग उसके विषय में अपनी विचारधारा दूसरों को बता पाप-भागी बनते हैं क्योंकि वह सत्य पर आधृत नहीं है। वह ईश्वर इतना महान्, विचित्र, अगम्य है कि कभी तो वह सूर्य रूप में अपनी प्रचण्ड धूप से सबको दग्ध करता है तो कभी मूसलाधार वृष्टि के रूप में समस्त धरित्री को जलमग्न कर देता है एवं कभी वह शीत की प्रचण्डता दिखाता है किन्तु तीनों ऋतुओं—ग्रीष्म, वर्षा, शीत—में विविध भांति के कष्ट हैं। भाव यह है कि इतना विचित्र, सुन्दर ऋतुएं बनाकर भी प्रभु ने उनमें कुछ न कुछ अभाव छोड़ दिये हैं यही तो सृष्टि की पूर्णता में भी अपूर्णता है। प्रत्येक दृष्टि से तो केवल वह प्रभु ही पूर्ण है। संसार की उलझनों में पड़े हुए ही मूर्ख लोग सुख-लाभ करते हैं और वे भूल जाते हैं कि उनके जीवन का वास्तविक प्रयोजन क्या है। इस प्रकार वे जीवन में लाभ प्राप्त करने के स्थान पर अपना पूर्व संचित पुण्यों का मूलधन भी गंवा बैठते हैं। दिन-प्रति-दिन वे सांसारिक मोह-जाल में ही पड़े रहते हैं। एवं इसी प्रकार जीवन का अन्त आ पहुचता है। काल को कोई भी नहीं सोचता वह तो माया-मोह-ममता आदि में संलिप्त रहता है। नश्वर शरीरधारी मनुष्य मिथ्या संसार में उलझे हुए हैं। एवं इस जगत् में जो सत्य तत्व परमात्मा है उसको खोजने का प्रयास कोई नहीं करता। वे लोग सत्यरूप ईश्वर से तो दूर रहते हैं और विषय-वासनाजन्य मिथ्या आकर्षणों में लिप्त रहते हैं एवं इस भाँति विष को ही अमृत समझने का भ्रम करते हैं। वस्तुतः उस ईश्वर को न तो अपने से पास कहा जा सकता है और न दूर ही क्योंकि वह प्रत्येक अन्तस्तल में विराजमान है। जहाँ देखो वहीं वह सर्वत्र व्यापी प्रभु है, उनके अस्तित्व से शून्य कोई भी स्थान नहीं है। यद्यपि वह परमात्मा समस्त मानव मात्र, प्राणीमात्र के हृदय में वर्तमान है किन्तु फिर भी वह बिना भक्ति भाव के बहुत दूर है। उसके दर्शन से लोभ, पाप आदि की मिथ्या साँसारिक कामनाए, इच्छाएं नष्ट हो जाती हैं। जहां प्रकट रूप से उस परमात्मा का भजन-कीर्तन होता है वहीं हमारी वृत्ति रमती तथा परितुष्ट होती है। नित्यप्रति उठकर उसके गुणों का गान वांछनीय है, वे सर्वत्र उसी प्रकार छिपा हुआ है, जिस भांति काष्ठ में अग्नि का वास है। किन्तु चाहे वह काष्ठाग्नि-न्याय से सर्वत्र रम ही रहा हो किन्तु बिना भक्ति साधना के उसे प्राप्त नहीं किया जा सकता। साधना की काष्ठाग्नि में जल जाने पर मनुष्य अग्नि के समान ही तपकर शुद्ध हो जाता है। राम-नाम कहने पर भक्त तद्रूप हो

RajGuru.Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जाता है और उसके समस्त दुखों का नाश हो जाता है। किन्तु मनुष्य जन्म से ही भ्रम एवं व्यर्थ के कर्म जंजाल में ग्रसित है। सर्वत्र भ्रम और कर्म का व्यापार है— वस्तुतः इनके प्रयोग करने वाले का चरित्र जानना कठिन है, अर्थात् वह कपटी, अविश्वसनीय, निंदनीय होता है। इन्हीं दो में पड़कर संसार पथ-विभ्रान्त हो रहा है एवं अपने ज्ञान को भी नष्ट कर रहा है। इन दोनों से वही मुक्त हो सकता है जो सर्वदा आनन्दस्वरूप परमात्मा में अपनी चित्तवृत्ति केन्द्रित रखे। जो व्यक्ति ज्ञान लाभ कर आत्मतत्त्व को पहचानता है, वह ही इनके रहस्य से परिचित होता है।

विशेष—अद्वैतवादियों की भाँति ब्रह्म-स्वरूप 'काष्ठवह्नि-न्याय' द्वारा स्पष्ट किया गया है।

ज्यूं रजनीं रज देखत अंधियारी, डसै भुवंगम बिन उजियारी ॥
तारे अगिनन गुनहि अपारा, तऊ कछू नहीं होत अधारा ॥
झूठ देखि जीव अधिक डराई, बिना भुवंगम डसी दुनियांई ।
झूठै झूठै लागि रही आसा, जेठ मास जसैं कुरंग पियासा ॥
इक त्रिषावत दह दिसि फिर आवै, झूठ लागा नार न पावै ।
इक त्रिषावंत अरु जाइ जराई, झूठी आस लागि मरि जाई ॥
नीझर नीर जांनि परहरिया, करम के बांधे लालच करिया ।
कहै मोर कछू आहि न वाही, भरम करम दोऊ मति गवाई ॥
भरम करम दोऊ मति परहरिया, झूठै नांऊ साच ले धरियां ।
रजनीं गत भई रवि परकासा, भरम करम धूं केर बिनासा ॥
रवि प्रकास तारे गुन खीनां, आचार ब्यौहार सब भये मलीनां ।
बिष के दाधें बिष नहीं भावें, जरत जरत सुखसागर पावै ।

जिस भांति अंधकारमय रात्रि में प्रकाश के अभाव में भयरूपी भुजंगम डस लेता है और उस भयग्रस्त व्यक्ति की किंचित् भी सहायता अगणित नक्षत्र भी नहीं कर पाते उसी प्रकार मिथ्या संसार में व्यक्ति व्यर्थ भ्रम के भुजंग से डसा जा रहा है। मानव की दशा ज्येष्ठ मास की भीषण गर्मी में तृषाक्रान्त व्याकुल मृग जैसी होती है। वह मृग समस्त दिशाओं में चौकड़ी भर-भर कर घूम आता है किन्तु उसे जल नहीं मिलता। एक तो वह तृषाकुल होता है, दूसरे ऊपर से भीषण गर्मी और फिर झूठी आशा से कि जल अब मिलेगा, अब मिलेगा, व्यथित होता है। पास में बहते हुए झरने के शीतल जल को वह मृग-मरीचिका के सम्मुख त्याग देता है और इस भांति कर्मबंधन में पड़ा रहता है। यही गति मनुष्य की है वह आनन्द की खोज में व्याकुल रहता है, इसी के लिये वह सर्वत्र भटकता है। इस भटकने में ही वह आत्मस्थित आनन्द-स्वरूप परमात्मा को छोड़ देता है और विषय-जन्य आकर्षणों की मृग-मरीचिका में पड़ा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रहता है। कबीर अन्य कुछ न कहकर यही कहते हैं कि भ्रम और कर्म जंजाल ने मनुष्य का विवेक अपहृत कर लिया है। मनुष्य की अज्ञान-रात्रि समाप्त हो जाने पर ज्ञान सूर्य का उदय हो जाता है और तब भ्रम एवं मिथ्या-व्यर्थ कर्म-जंजाल नष्ट हो जाता है। ज्ञान-सूर्य के उदय से सांसारिक आकर्षणों के नक्षत्र विलुप्त हो जाते हैं और समस्त आचार-व्यवहार परिवर्तित हो जाता है। विष-विदग्ध मानव को फिर विषय-वासना-विष अच्छा नहीं लगता, अब तो वह सुखसिन्धु शम्भु को प्राप्त कर लेता है।

विशेष—उपमा, रूपक, एवं रूपकातिशयोक्ति आदि अलंकार।

अनिल झूठ दिन धावै आसा, अंध दुरगंध सहै दुख त्रासा ॥
इक त्रिषावत दुसरै रवि तपई, दह दिसि ज्वाला चहुं दिसि जरई ॥
करि सनमुखि जब ग्यांन बिचारी, सनमुखि परिया अगनि मंझारी ॥
गछत गछत जब आगैं आवा, बित उनमांन ढिबुवा इक पावा।
सीतल सरीर तन रह्या समाई, तहां छाड़ि कत दाझै जाई ॥
यूं मन बार्रूनि भया हमारा, दाधा दुख कलेस संसारा।
जरत फिरे चौरासी लेखा, सुख कर मूल किनहूं नहीं देखा ॥
जाकें छाड़ें भये अनाथा, भूलि परे नही पावै पथा।
अछै अभि-अंतरि नियरै दूरी, बिन चीन्ह्यां क्यूं पाइये मूरी ॥
जा बिन हंस बहुत दुख पावा, जरत जरत गुरि रांम मिलावा।
मिल्या रांम रह्या सहजि समाई, खिन बिखुर्‌यां जीव उरझै जाई ॥
जा मिलियां तें कीजै बधाई, परमांनंद रैंनि दिन गाई।
सखी सहेली लीन्ह बुलाई, रुति परमानंद भेटियै जाई ॥
सखी सहेली करहि अनंदू, हित करि भेटे परमानदू।
चली सखी जहुँवां निज रांमां, भये उछाह छाड़े सब कांमां ॥
जानूं कि मोरै सरस बसंता, मैं बलि जांऊं तोरि भगवंता।

वायु भी मिथ्या आशा के वश हो दुर्गन्ध आदि दुखों को सहन करता हुआ भटकता है। एक तो वह अपनी कामना के लिये व्याकुल, दूसरे ऊपर से सूर्य की तपन—इस भांति सर्वत्र जलन ही जलन पाता है। किन्तु इसी भाँति भटकते-भटकते जब उसे एक गढ़े की प्राप्ति होती, तब वहाँ जाकर वायु भी शीतलता का अनुभव करता है और वह सोचता है कि इस शीतल स्थान को छोड़ कर अन्यत्र दग्ध होने के लिये क्यों जाऊं किन्तु फिर भी वह जाता है। इसी भाँति मनुष्य जानते हुए भी विषयाग्न में पड़ता है। कबीर कहते हैं कि हमारा मन प्रभु-प्रेम भक्ति का पान कर इस प्रकार मदमस्त हो गया है कि उसके समस्त सांसारिक दुःख समाप्त हो गये हैं। अन्य मनुष्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

व्यर्थ चौरासी लाख योनियों में भटक व्यथा भोगते फिरे, उन्होंने सुख स्वरूप परमात्मा को जानने का प्रयत्न नहीं किया। उन्होंने उसी परमात्माको छोड़ दिया जिसको छोड़-कर सब अनाथ बन जाते हैं एवं कभी भी उचित पथ नहीं पाते। वह हृदयस्थ होते हुए भी दूर और पास हो जाता है, वि।ा उसे जाने हुए भला मूलधन को कैसे प्राप्त किया जा सकता है।

जिस ईश्वर के वियोग में आत्मा आकुल-व्याकुल थी उसी से सद्गुरु ने साधक को मिला दिया। राम-दर्शन हाते ही क्षण भर में जीवात्मा उसी में रम गया, तद्रूप हो गया। उसके मिलन पर सबको आनन्दित होना चाहिए। उस मुक्तात्मा ने इस पथ पर अन्य सखी आत्माओं का भी प्रेरित किया जिससे प्रभु-प्रेम उनमें भी जागृत हुआ। वे सखी आत्माएं समस्त सांसारिक कार्यों को छोड़ प्रभु मिलन के लिये चल दीं। यह जानकर भक्त कबीर का चित्त आनन्दमग्न हो रहा है, और वे कहते हैं प्रभु मैं आप पर बलिहारी जाता हूं।

भगति हेत गावै लैलीनां, ज्यूं बन नाद कोकिला कीन्हां॥
बाजैं संख सबद धुनि बेनां, तन मन चित्त हरि गोबिंद लीनां।
चल अचल पांइन पंगुरनी, मधुकरि ज्यूं लेहि अघरनीं॥
सावज सीह रहे सब मांची, चंद अरु सूर रहे रथ खांची।
गण गंध्रप मुनि जोवैं देवा, आरति करि करि बिनवैं सेवा॥
बालि गयंद ब्रह्मा करैं आसा, हंम क्यूं चित दुर्लभ रांम दासा।
भगति हेत राम गुन गांवैं, सुर नर मुनि दुरलभ पद पांवैं॥
पुनिम बिमल ससि मास बसंता, दरसन जोति मिले भगवंता।
चंदन विलनी बिरहनि धारा, यूं पूजिये प्रांनपति रांम पिग्रारा॥
भाव भगति पूजा अरु पाती, आतमरांम मिले बहु भांती।
रांम रांम रांम रुचि मांनें, सदा अनंद रांम ल्यौ जानैं॥
पाया सुख सागर कर मूला, सो सुख नहीं कहू सम तूला॥
सुख समाधि सुख भया हमारा, मिल्या न बेगर होइ।
जिहि लाधा सो जांनि है, रांम कबीरा और न जांनें कोई॥४॥

कबीर कहते हैं कि भक्त जन आनन्दमग्न हो उसी भाँति प्रभु का गुणगान करते हैं जिस प्रकार कोकिल वन में अपनी मधुर काकली छेड़ती है। इस नाम-स्मरण में सद्गुरु शब्दों की मंगलसूचक शंखध्वनि हो रही है जो मनसा-वाचा-कर्मणा प्रभु-भक्ति के लिये प्रेरित करती है। जिस भांति वन में भ्रमर गुंजायमान होते हैं उसी भांति सब मनुष्य भक्ति से झूम गये। उस भक्तात्मा के लिये चन्द्र और सूर्य स्वयं रथ में जुते हुए होते हैं तथा मुनिगण और गंधर्वादि विनय सहित उसकी आरती करते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ब्रह्मा आदि बड़े-बड़े सुरराज यह पश्चात्ताप करते हैं कि काश ! हम भी राम के दास होते जो हम को भी यह वैभव और गौरव प्राप्त हो सकता। भक्त राम के गुणों का गान कर उस दुष्प्राप्य परमपद को प्राप्त कर सकते हैं जिसके लिये देव और ऋषिगण तरसते हैं। पूर्णिमा की निर्मल चन्द्रिका में माधवी रजनी में प्रभु के दर्शन प्राप्त हुए अर्थात् ज्ञानदृष्टि प्राप्त कर सौम्य, शान्त, निर्मल वातावरण में प्रभु-प्राप्ति हुई। विरहिणी आत्मा को चन्दन की शीतलता प्राप्त हो गई, यही प्रभु-भक्ति का प्रताप है। प्रेमा-भक्ति का प्रताप है। प्रेमा भक्ति से उस आत्मस्थित परमात्मा को पाना सहज सम्भव है। सर्वदा समस्त चित्तवृत्तियों को राम-नाम में केन्द्रित कर देने से ब्रह्म की प्राप्ति होती है। इस भांति हमने उस सुख सिन्धु को प्राप्त कर लिया जिसके समान अन्य कोई सुख नहीं है।

कबीर कहते हैं कि उस परमात्मा की प्राप्ति के सुख को वही जान सकता है जो उसे प्राप्त कर लेता है। इस सुख विन्दु परमात्मा को पाकर तो हमने उससे तदाकारत्व ही कर लिया।

अष्टपदी रमैंणी

केऊ केऊ तीरथ व्रत लपटांना, केऊ केऊ केवल रांम निज जांनां।
अजरा अमर एक अस्थांनां, ताका मरम काहू बिरलं जांनां॥
अबरन जोति सकल उजियारा, दिष्टि समांन दास निस्तारा।
जे नहीं उपज्या धरनि सरीरा, ताकै पथिन सीच्या नीरा॥
जा नहीं लागे सुरजि के बांनां, सो मोहि आंनि देहु को दांनां।
जब नहीं होते पवन नहीं पानी, जब नहीं होती सिष्टि उपांनीं॥
जब नहीं होते प्यंड न बासा, तब नहीं होते धरनि अकासा।
जब नहीं होते गरभ न मूला, तब नहीं होते कली न फूला॥
जब नहीं होते सबद न स्वादं, तब नहीं होते विद्या न बादं।
जब नहीं होते गुरू न चेला, गम अगमैं पंथ अकेला॥
अबगति की गति क्या कहूं, जस कर गांव न नांव॥
गुन बिहूंन का पेखिये, काकर धरिये नांव॥

कोई साधक तीर्थ-व्रतादि के बाह्याडम्बर में ही भक्ति-साधना मानता है तो कोई केवल राम-नाम के आश्रय से तर जाता है। वस्तुतः उस अजर, अमर ईश्वर की वास्तविकता को कोई-कोई ही जान पाता है। उस अपरूप ज्योतिस्वरूप परमात्मा से समस्त सृष्टि प्रकाशित है, भक्त जन भी उसी की अनुकम्पा से भवसागर पार करते हैं। जो इस पृथ्वी पर पंचतत्व निर्मित नहीं हुआ उसी का मार्ग जल से शीतल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

किया जा सकता है, भाव यह है कि मनुष्य चाहे कोई भी क्यों न हो साधना का मार्ग उसके लिए विषम ही है। उस प्रभु की गति बड़ी विचित्र है और वह तब भी था जब इस सृष्टि, वायु तथा जल किसी का भी अस्तित्व नहीं था। जब शरीर और गृह आदि तथा पृथ्वी और आकाश, गर्भावस्था, किसी वृक्ष की जड़ और कली तथा फूल, शब्द, विद्या, उपदेश आदि कुछ भी नहीं था तब भी वह ब्रह्म था। जब गुरु शिष्य कोई नहीं था तब भी वही एकाकी परम-पुरुष था। कबीर कहते हैं कि उस इन्द्रियातीत प्रभु का, जिसका न कोई गुण है न लक्षण, न अन्य कोई रूपरेखा अथवा वर्ण, वर्णन क्या करूं। उस निर्गुण अनाम परमात्मा की गति अपार है।

आदम आदि सुधि नहीं पाई, मां मां हवा कहां थैं आई।
जब नहीं होते रांम खुदाई, साखा मूल आदि नहीं भाई।।
जब नहीं होते तुरक न हिंदू, माका उदर पिता का ब्यदू।
जब नहीं होते गाई कसाई, तब बिसमला किनि फुरमाई।।
भूले फिरैं दीन ह्वै धांवैं, ता साहिब का पथ न पावैं।
संजोगैं करि गुंण धर्या, बिजोगैं गुंण जाइ।
जिभ्या स्वारथि आपणैं, कीजै बहुत उपाइ।।

आदम और हौवा का अस्तित्व कहाँ से आया, अरे भाई! यदि प्रभु न हुआ होता तो आदम-हौवा की तो बात ही क्या संसार में पत्ता तक नहीं होता। न तब हिन्दू होते और न मुसलमान, न मातृ उदर होता और न पितृ अंश—यह सब ईश्वर की ही लीला है। न जब गौ होती और न उसके संहारक वधिक, कसाई, सब उसी ब्रह्म की रचना है। सब लोग व्यर्थ भटकते फिरते हैं और उस परमात्मा को नहीं खोजते। यदि परमात्मा से सयोग, मिलन, भक्ति सम्बन्ध रखा जाय तब तो उचित है अन्यथा वियुक्त होने पर तो सब कुछ समाप्त ही है। विषयानन्द में न पड़ प्रभु-प्राप्ति का उपाय करना चाहिए।

जिनि कलमां कलि मांहि पठावा, कुदरति खोजि तिन्हू नहीं पावा।
कर्म करींम भये कर्तूता, वेद कुरान भये दोऊ रीता।।
कृतम सो जु गरभ अवतरिया, कृतम सो जु नाव जस धरिया।
कृतम सुनित्य और जनेऊ हिंदू तुरक न जांनें भेऊ।।
मन मुसले की जुगति न जांनैं, मति भूलै द्वै दीन बखांनैं।
पांणीं पवन संजोग करि, कीया है उतपाति।
सुंनि मैं सबद समाइगा, तब कासनि कहिये जाति।।

जो मुल्ला लोग इस कलिकाल में कुरान आदि के कलमों को ही पढ़ मुक्त होना चाहते हैं वे सृष्टि का भेद नहीं पा सकते। वस्तुतः कर्म-व्यापार, सदाचरण ही

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection ..

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मुक्तिदायक है, कर्म से ही ईश्वर जगत्पालक है। वेद-कुरान आदि धर्म ग्रन्थों में भी यही बात वर्णित है। जिस मनुष्य ने जन्म-धारण किया है उसे तो कार्य करना ही होगा। कर्म से ही पुण्य और अन्य विधानों के फल की प्राप्ति होती है। कर्म-फल की प्राप्ति होती है। कर्म-फल सबके लिए समान हैं, उसमें हिन्दू-मुस्लिम का भेद वृथा है। हे मनुष्य! तू अपने चंचल मन की गति को नहीं जानता, यह तो द्वैत भावना का सृजन कर दुःख का कारण बनता है।

कबीर कहते हैं कि संसार में जितने भी वितण्डा हैं वे माया और विषयाकर्षण के द्वारा ही हैं। जब साधक शून्य में समाधिस्थ हो जायेगा तब इन विषय-वासनाओं का उससे कोई सम्पर्क नहीं रहेगा।

तुरकी धरम बहुत हम खोजा, बहु बजगार करै ए बोधा।
गाफिल गरब करैं अधिकाई, स्वारथ अरथि बधैं ए गाई॥
जाकौ दूध धाइ करि पीजै, ता माता कौं बध क्यूं कीजै।
लहुरैं थकैं दुहि पोया खीरो, ताका अहमक भकै सरीरो॥
बेअकली अकलि न जांनहीं, भूले फिरैं ए लोइ।
दिल दरिया दीदार बिन, भिस्त कहां थैं होइ॥

मुसलमान लोग बहुत धर्म की दुहाई देते हैं और उसी के लिए नाना कर्म करते हैं। वह व्यर्थ का अत्यधिक मिथ्या गर्व करते हैं और अपने स्वार्थ के लिये गौ तक की हत्या कर देते है जिसके मधुर दुग्ध का पान दौड़कर करने हैं, उसी गौमाता की हत्या का साहस ये किस प्रकार से करते हैं? गौ को समाप्त कर बकरी का खारा दूध पीने वालों को मूर्ख की ही संज्ञा दी जा सकती है। ये लोग व्यर्थ स्वर्ग की खोज में भटकते फिरते हैं किन्तु इन मूर्खों, बुद्धिहीनों को ज्ञात नहीं कि हृदय की विशालता दयालुता, एवं प्रभु-दर्शन के बिना स्वर्ग प्राप्ति नहीं होती।

पडित भूले पढ़ि गुन्य बेदा, आप न पांवैं नांनां भेदा।
संध्या तरपन अरु षट करमां, लागि रहे इनकै आशरमां॥
गायत्री जुग चारि पढ़ाई, पूछौ जाइ कुमति किनि पाई।
सब मैं रांम रहै ल्यौ सींचा, इन थैं और कहौं को नींचा॥
अति गुन गरब करैं अधिकाई, अधिकै गरबि न होइ भलाई।
जाकौ ठाकुर गरब प्रहारी, सो क्यूं सकई गरब सहारी॥
कुल अभिमांन बिचार तजि, खोजौ पद निरवांन।
अंकुर बीज नसाइगा, तब मिलै बिदेही थांन॥

संसार के माया-मोह में भटकता हुआ भी व्यर्थ शास्त्रग्रंथों का पारायण करता है। इनकी आश्रम व्यवस्था में संध्या, तर्पण और षट्कर्मों के लिये विधि-विधान के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अतिरिक्त और कुछ नहीं। चाहे ये चार युगों तक गायत्री-जप करें किन्तु इन्हें वास्तविक ज्ञान की उपलब्धि नहीं हो सकती। इन नीचों को यह कौन समझाये कि प्रत्येक स्थान पर प्रभु वर्तमान है। इनमें व्यर्थ का मिथ्या दम्भ अत्यधिक है जबकि वह हानिकारक है। जिस साधक, भक्त, के आराध्य गर्वमर्दनकारी हैं वह भला क्यों गर्व करेगा।

कबीर कहते हैं कि कुल-जाति के मिथ्या दम्भों का परित्याग कर परम-प्रभु की खोज करो। जब तुम पूर्ण विनय सहित सर्वात्म—समर्पण कर दोगे तभी उस निर्गुण की प्राप्ति सम्भव है।

खत्री करै खत्रिया धरमो, तिनकूं होय सवाया करमो।
जीवहि मारि जीव प्रतिपारैं, देखत जनम आपनौं हारैं॥
पंच सुभाव जु मेटैं काया, सब तजि करम भजैं रांम राया।
खत्री सों जु कुटुब सूं सूझै, पंचूं मेटि एक कूं बूझै॥
जो आवध गुर ग्यांन लखावा, गहि करवाल धूप धरि धावा।
हेला करै निसांनै घाऊ, झूझ परै तहां मनमथ राऊ॥
मनमथ मरै न जीवई, जीवण मरण न होइ।
सुनि सनेही रांम बिन, गये अपनपौ खोइ॥

यदि क्षत्रिय अपने क्षत्रिय-धर्म का पालन करे तो उसे सवा गुना अर्थात् अत्यधिक पुण्य-फल प्राप्त हो। जो भयंकर जीवों से मानवमात्र की सहायता के लिये अपना सर्वस्व तक वलिदान कर दें वही क्षत्रिय हैं। वही राम का सच्चा भक्त है जो पंचेन्द्रियों के स्वादों को समाप्त कर दे। क्षत्रिय वही है जो माया कुटुम्ब (जिसे माया-कटक कहा गया है) से युद्ध करे और पंच ज्ञानेन्द्रियों के विषयों का परित्याग कर केवल मन:साधना में प्रवृत्त हो। जो यावज्जीवन गुरु वचनों पर चल साँसारिक बाधाओं को सहते हैं वे क्षत्रिय हैं। जो कामदेव रूपी राजा से युद्ध कर उसे परास्त कर दे वही वास्तपिक रूप में क्षत्रिय है।

कबीर कहते हैं कि आतमा का न मरण होता है और न जन्म किन्तु जो लोग राम की भक्ति बिना इस संसार से चले गये वे तो अपना सर्वस्व नष्ट कर ही गये।

अरु भूले षट दरसन भाई, पाखंड भेम रहे लपटाई।
जैन बोध अरु साकत सैंनां, चारबाक चतुरंग बिहूंनां॥
जैन जीव की सुधि न जांनें, पाती तोरि देहुरै आनैं।
दोनां मवरा चंपक फूला, तामैं जीव बसैं कर तूला॥
अरु प्रिथमीं का रोम उपारैं, देखत जीवं कोटि संघारैं।
मननथ करन करैं अस रारा, कलनत बिंद धसैं तिहि द्वारा॥
ताकी हत्या होइ अदभूता, षट दरसन मैं जैंन बिगूता।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ग्यान अमर पद बाहिरा, नेड़ा ही तैं दूरि।
जिनि जान्यां तिनि निकटि है, रांम रहा सकल भरपूरि ॥

संसार के समस्त लोग षट्दर्शनों के मिथ्या वितण्डा-वाद में पड़े हुए विविध वेश धारण किये घूम रहे हैं। जन, बौद्ध, शाक्त आदि विविध विचारधाराओं के पचड़े में सब पड़े हुए हैं। जैन वैसे तो अहिंसा की दुहाई देते हैं किन्तु कभी कभी वे ऐसे दुष्कृत्य करते हैं कि जीव-हत्या का तनिक भी ध्यान नहीं रहता। वे दोने में भरकर जो चंपक आदि के सुमन चढ़ाते हैं, उसमें तो कराड़ों जीव होते हैं, और जब मन्दिर आदि के लिए पृथ्वी को खादते हैं तब न जाने कितने जीवों की हत्या होती है। कामदेव संसार में विविध प्रपंच रच उनमें लोगों को फंसा लेता है। इन विषय-वासना कर्मों में भी जीव-हत्या होती है—इस भांति जैन आदि विविध मतावलम्बी इन्हीं टंटों में उलझे रहते हैं। वह परम प्रभु ज्ञानहीनों के लिये पास रह कर भी दूर है। जो उसे जानते हैं उनके लिये वह पास हो जाता है, वे उसका साक्षात्कार कर लेते हैं। वस्तुतः वह ब्रह्म तो सर्वत्र रम रहा है।

आपन करता भये कुलाला, बहु विधि सिष्टि रची दर हाला।
बिधनां कुंभ किये द्वै थांनां, प्रतिबिंबता मांहि समांनां ॥
बहुत जतंन करि बांनक बांनां, सौंज मिलाय जीव तहां ठांनां।
जठर अगनि दी कीं परजाली, ता मैं आप करै प्रतिपाली ॥
भींतर थैं जब बाहिर आवा, सिव सकती द्वै नांव धरावा।
भूलै भरमि परै जिनि कोई, हिंदू तुरक झूठ कुल दोई ॥
घर का सुत जे होइ अयांनां, ताकै संगि क्यूं जाइ सयांनां।
साची बात कहै जे वासूं, सो फिरि कहै दिवांनां तासूं ॥
गोप भिन है एकै दूधा, कासूं कहिए बांम्हन सूधा।
जिनि यहु चित्र बनाइया, सो साचा सुतधार।
कहै कबीर ते जन जले, जे चित्रवत लेहि बिचार ॥५॥

वह प्रभु स्वयं ही इस सृष्टि का निर्माता कुम्भकार है जिसने इस नाना रूपात्मक जगत् का सृजन किया। ब्रह्म इस सृष्टि में उसी प्रकार विद्यमान है जिस भाँति भिन्न स्थानों पर रखे हुए घटों में सूर्य प्रतिविम्बित होता है। बहुत भांति के आयोजनों द्वारा इस सृष्टि का निर्माण हुआ है और तत्र उसमें जीव की अवस्थिति। मातृ-उदर में गर्भस्थ शिशु को जठराग्नि जलाये डालती है किन्तु वहाँ भी वह दयालु जीव की रक्षा करता है। जब जीवात्मा वहाँ से बाहर आता है तो उसे लिंग-भेद अनुसार ज्ञान प्राप्त होता है जो शिव (पुरुष) अथवा शक्ति (माया-नारी) का प्रतीक है। चाहे कोई हिन्दू हो अथवा मुसलमान किन्तु उसे भूल कर भी संसार भ्रम में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नहीं पड़ना चाहिए। यदि घर का बेटा ही खोटा, कुचरित्र निकल आये तो फिर उसके साथ चतुर व्यक्ति भी ठीक नहीं रह सकता। अतः दुर्जनों से दूर ही रहना चाहिए। यदि कोई सत्य बात कह दे तो फिर उससे तो ज्ञान लाभ होता ही है, जिससे श्रोता संसार को त्याग देता है। समस्त मानव मात्र एक ही तत्व से निर्मित हैं केवल जाति भेद नाम मात्र का है।

कबीर कहते हैं कि जिस ईश्वर ने इस चित्र-विचित्र सृष्टि की रचना की है वही इसका वास्तविक नियन्ता है। जो उसे हृदय में अमिट स्थान देता है वही उत्तम श्रेणी का भक्त, मनुष्य है।

बारहपदी रमैंणी

पहली मन मैं सुमिरौं सोई, ता सम तुलि अवर नहीं कोई।
कोई न पूजै वांसू प्रांनां, आदि अंति वो किनहूं न जांनां॥
रूप सरूप न आवै बोला, हरू गरू कछू जाइ न तोला।
भूख न त्रिषा धूप नहीं छांहीं, सुख दुख रहित रहै सब मांहीं॥
अविगत अपरंपार ब्रह्म, ग्यांन रूप सब ठांम।
बहु बिचार करि देखिया, कोई न सारिख रांम॥

सर्वप्रथम मैं उस परमात्मा का मन में स्मरण करता हूं क्योंकि उसकी महिमा अद्वितीय एवं अनुपम है। कोई भी उसके अन्तर का भेद नहीं जान सकता और न उसके आदि, मध्य, अवसान का कुछ पता है। न तो हम उसकी रूप रेखा, वर्ण आदि का विचार कर सकते हैं और न उसके भार-प्रभार का अनुमान कर सकते हैं। न उसे भूख लगती है और न प्यास, धूप-छाँह कुछ भी उसे नहीं सताती। वह समस्त सुख-दुखों से निर्लेप है। वह अगम्य महामहिम प्रभु सर्वत्र व्यापक है। बहुत विचार कर देख लिया किन्तु कोई भी उसकी क्षमता नहीं कर सकता।

जो त्रिभवन पति ओहै ऐसा, ताका रूप कहौ धौं कैसा।
सेवग जन सेवा कै तांई, बहुत भांति करि सेवि गुसांई॥
तैसी सेवा चाहौ लाई, जा सेवा बिन रह्या न जाई।
सेव करंतां जो दुख भाई, सो दुख सुख बरि गिनहु सवाई॥
सेव करंतां सो सुख पावा, तिन्य सुख दुख दोऊ विसरावा।
सेवग सेव भुलांनियां, पंथ कुपंथ न जांन।
सेबक सो सेवा करै, जिहि सेवा भल मांन॥

जो त्रिलोकीनाथ ऐसा महामहिम है उसका स्वरूप-कथन कैसे किया जा सकता है? हम भक्त-गण तो हे प्रभु! केवल आपकी स्वामी के रूप में विविध भाँति से सेवा कर सकते हैं। हमको वही सेवा-भक्ति करनी चाहिए जिसके बिना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हम रह न सकें। यदि प्रभु-सेवा में कुछ दुख उठाना पड़े तो उसे भी दुख से सवा गुना अधिक सुख मानकर ग्रहण करना चाहिए। जो ईश्वर-सेवा में आनन्द प्राप्त करने लगता है फिर उसके हिए साँसारिक सुख-दुख का कोई महत्व नहीं रह जाता। किन्तु आज ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है कि सेवक सेवा-भक्ति के वास्तविक महत्व, प्रयोजन भुला बैठे हैं। भक्त तो वही है जो प्रभु-भक्ति में गौरव एवं सुख अनुभव करता है।

जिहि जग की तस कौ तस के ही, आपै आप आथिहै एही।
कोई न लखई वाका भेऊ, भेऊ होइ तौ पावै भेऊ॥
बावै न दांहिनें आगैं न पीछू, अरध न उरध रूप नहीं कीछू।
माय न बाप आव नहीं जावा, नां बहु जण्यां न को वांह जावा॥
वो है तैसा वोही जांनैं, ओही आहि आहि नहीं आनैं।
नैनां बंन अगोचरी, श्रवनां करनीं सार।
बोलन कै सुख कारनैं, कहिये सिरजनहार॥

ईश्वर ने संसार की रचना स्वयं किसी अन्य की सहायता के बिना की। कोई भी उस परमात्मा के रहस्य का पार नहीं पा सकता और वास्तव में वह भेद-भाव, द्वैत भाव से दूर है, इसीलिए कोई उसका पार नहीं पा सकता। उसके वाम-दक्षिण, ऊपर-नीचे किसी भी पक्ष के चिन्ह नहीं बताये जा सकते क्योंकि उसका कुछ रूपाकार है ही नहीं। न उसका कोई माता पिता है और न उसका जन्म-मरण होता है। वह जैसा है वही जानता है अर्थात् वह स्वयं ही अपने स्वरूप, रहस्य का ज्ञाता है।

वह ब्रह्म नेत्र, वाणी, श्रवण आदि की परिधि से दूर है। उस सृजनहार परमात्मा के गुणगान में ही सुख लाभ होता है।

सिरजनहार नांउ धूं तेरा, भौसागर तिरिबे कूं भेरा।
जे यहु भेरा रांम न करता, तौ आपैं आप आवटि जग मरता॥
रांम गुसांईं मिहर जु कीन्हां, भेरा साजि संत कौं दीन्हां।
दुख खंडण मही मंडणां भगति मुकति बिश्रांम।
बिधि करि भेरा साजिया, धर्‍या रांम का नांम॥

हे प्रभु! आपका नाम ही इस संसार-समुद्र से पार उतरने के लिए जलयान के समान है। यदि आपके नाम का आश्रय न होता तो संसार स्वयं परस्पर संघर्ष द्वारा समाप्त हो जाता ईश्वर ने दयार्द्र हो यह राम नाम का पोत साधु पुरुष को प्रदान कर दिया। दुख के स्थान में भक्ति ही मुक्ति का साधन रूप है। इस संसार सागर से

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ार जाने के लिए राम नाम की साधना का पोत सजाकर साधक को भगवान् ने दिया।

विशेष—सांगरूपक।

जिनि यहू भेरा दिढ़ करि गहिया, गये पार तिन्हौं सुख लहिया।
दुमनां ह्वै जिनि चित्त डुलावा, कर छिटके थैं थाह न पावा।।
इक डूबे अरु रहे उरवारा, ते जगि जरे न राखणहारा।
राखन की कछु जुगति न कीन्ही, राखणहार न पाया चीन्ही।।
जिनि चीन्हां ते निरमल अंगा, जे अचीन्ह ते भये पतंगा।
रांम नांम ल्यौ लाइ करि, चित चेतनि ह्वै जागि।
कहै कबीर ते ऊबरे, जे रहे रांम ल्यौ लागि।।

जिन्होंने राम-नाम का यह पोत दृढ़ रूप में पकड़ इसे अपना सम्बल बना लिया है वे संसार-सागर से तर गये और उन्होंने सुख लाभ किया। जो द्वैत भावना में पड़ मन को भटकाते रहते हैं और राम-नाम का सम्बल नहीं पकड़ते वे संसार-सागर में डूब जाते हैं उन्हें थाह भी नहीं मिलती। जो संसार-समुद्र में ही डूबे रहते हैं वे तो नष्ट ही हो जाते हैं उनका रक्षक तो प्रभु भी नहीं है। जो प्रभु को जान जाते हैं उनके चित्त, अन्तर-बाह्य, शुद्ध हो जाता है, अन्यथा शेष मनुष्य तो माया-दीप पर मरने वाले शलभ बने रहते हैं। राम-नाम में अपनी वृत्ति रमा हृदय को सावधान कर जो भक्ति करते हैं कबीर का विचार है कि वही मुक्तात्मा होते हैं।

अरचित अबिगत है निरधारा, जांण्यां जाइ न वार न पारा।
लोक बेद थैं अछै नियारा, छाड़ि रह्यौ सबही संसारा।।
जसकर गांउ न ठांउ न खेरा, कैसें गुन बरनूं मैं तेरा।
नहीं तहा रूप रेख गुन बांनां, ऐसा साहिब है अकुलांनां।।
नहीं सो ज्वांन न बिरध नहीं बारा, आपैं आप आपनपौ तारा।
कहै कबीर बिचारि करि, जिनि को लावै भंग।
सेवौ तन मन लाइ करि, रांम रह्या सरबंग।।

वह निर्गुण परमात्मा अगम्य एवं अजन्मा है, उसका रहस्य नहीं जाना जा सकता। ईश्वर के विषय में वेदादि धर्मग्रन्थों एवं लोक में जो विश्वास हैं वह उनसे सर्वथा भिन्न है। उसका वर्णन कैसे किया जाय? रूपरेखाविहीन निर्गुण स्वामी की विचित्र गति है। न वह युवा है और न वृद्ध है। स्वयं ही अपना भाग्य-निर्माता है। कबीर विचारपूर्वक कहते हैं कि राम सर्वत्रव्यापी है अतः मनसा-वाचा-कर्मणा उसकी आराधना करो।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नहीं सो दूरि नहीं सो नियरा, नहीं सो तात नहीं सो सियरा।
पुरिष न नारि करै नहीं क्रीरा, घांम नां धांम न ब्यापै पीरा।
नदी न नाव धरनि नहीं धीरा, नहीं सो कांच नहीं सो हीरा।।
कहै कबीर बिचारि करि, तासूं लावो हेत।
बरन बिबरजत ह्वै रह्या, नां सो स्यांम न सेत।।

वह ईश्वर न तो दूर है क्योंकि हृदयस्थ है और न पास ही है क्योंकि साधना द्वारा भी दुष्प्राप्य है। न वह मित्र है और न शत्रु। न वह पुरुष रूप में है और न स्त्री; न उसे धूप-दुख आदि व्यापते हैं। न वह नदी है और न नाव और न पृथ्वीरूप ही है। कबीर विचारपूर्वक कहते हैं कि उसी ईश्वर से प्रेम करो न वह श्याम है और न श्वेत, वह तो वर्ण रंग सीमातीत है।

नां वो बारा ब्याह बराता, पीत पितंबर स्यांम न राता।
तीरथ व्रत न आवै जाता, मन नहीं मोनि बचन नहीं बाता।।
नाद न बिंद गरथ नहीं गाथा, पवन न पांणी संग न साथा।
कहैं कबीर बिचारि करि, ताकै हाथि न नाहि।
सो साहिब किनि सेवियै, जाकै धूप न छांह।।

न वह विवाहित है और न क्वारा। न वह पीताम्बरधारी है और न श्याम अथवा लाल रंग का वस्त्र धारण करने वाला। न वह नाद है और न बिन्दु, न किसी धर्मशास्त्र का विषय है और न किसी कथा आदि का। उसके साथ वायु-पानी कुछ भी नहीं है। कबीर कहते हैं कि उसके हाथ-पैर कुछ भी नहीं हैं, भला इस ईश्वर की सेवा कैसे की जाये जिसे धूप-छांह, सुख-दुख भी नहीं व्यापते।

ता साहिब कै लागौ साथा, दुख सुख मेटि रह्यौ अनाथा।
नां जसरथ घरि औतरि आवा, नां लंका का राव सतावा।।
देवै कूख न औतरि आवा, नां जसवै ले गोद खिलावा।
ना वो ग्वालन कै सग फिरिया, गोबरधन ले न कर धरिया।।
बांवन होय नहीं बलि छलिया, धरनी बेद लेन उधरिया।
गंडक सालिगरांम न कोला, मछ कछ ह्वै जलहि न डोला।।
बद्री बैस्य ध्यांन नहीं लावा, परसरांम ह्वै खत्री न संतावा।
द्वारामती सरीर न छाड़ा, जगननाथ ले प्यंड न गाड़ा।।
कहै कबीर बिचारि करि, ये ऊले ब्योहार।
याही थैं जे अगम है, सौ बरति रह्या संसारि।।

इसलिए हे प्राणी जन ! तुम उसी ईश्वर के आश्रित होकर रहो क्योंकि वह समस्त सुख-दुख का मिटाने वाला है। वह प्रभु दशरथनन्दन राम के रूप में अवतरित

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हो लंका के राजा को नहीं सताता। न वह मातृ उदर में स्थित रह जन्म धारण कर यशोदा की गोदी में खेलता है। कृष्ण रूप में वह गोपिकाओं के साथ प्रेमक्रीड़ाओं में मस्त नहीं रहा और न उसने गोवर्धन पर्वत उंगली पर उठाया था। प्रभु ने वामन रूप धरकर राजा बलि को भी नहीं छला था और न मत्स्य अवतार में पृथ्वी पर उसने वेदों की रक्षा की थी। वह सालिगराम की पिंडी, अथवा मछली और कछुए के रूप में भी नहीं रहा। वद्रीनाथ सेठ बनकर कभी भी उसने भजन नहीं किया और न परशुराम वन क्षत्रिय संहार की प्रतिज्ञा कभी उसने की। द्वारकापुरी में न उन्होंने शरीर-मोह त्यागा और न किसी ने उस शरीर को पृथ्वी में गाड़ा है। कबीर कहते हैं कि संसार के अन्य सब कार्य तो व्यर्थ हैं। केवल उसी अगम्य प्रभु का ध्यान करो जो संसार का नियमन कर रहा है।

नां तिस सबद न स्वाद न सोहा, नां तिहि मात पिता नहीं मोहा।
नां तिहि सास ससुर नहीं सारा, नां तिहि रोज न रोवनहारा।।
नां तिहि सूतिग पातिग जातिग, नां तिहि माइ न देव कथा पिक।
नां तिहि ब्रिध बधावा बाजैं, नां तिहि गीत नाद नहीं साजैं।।
नां तिहि जाति पांत्य कुल लीका, नां तिहि छोति पवित्र नहीं सींचा।

कहै कबीर बिचारि करि, वो है पद निरबांन।
सति ले मन मैं राखिये, जहाँ न दूजी आंन।।

उस ईश्वर को न तो गुरु उपदेश के शब्दों की आवश्यकता है, न वह इन्द्रियों के स्वादों से संलिप्त है। वह माता-पिता आदि के मोह में भी पड़ा हुआ नहीं है। न उसके सास, श्वसुर अथवा साला है और न उसे कोई दुख है जिससे व्यथित हो वह अश्रु बहाये। न उसे सूतक, पातक, जातक आदि व्यापते हैं। न वह कोई सुन्दर कथा वाली देवी है। न उसे वृद्धावस्था आती है और न ही उसका जन्म होता है। उसे गान आदि रस-राग भी रुचिकर नहीं। न उसके यहाँ उच्च और निम्न वर्ग का भेदभाव है और न वह जाति-पाति, कुल की संकुचित सीमाओं में बंधता है। कबीर विचार-पूर्वक कहते हैं कि वह ईश्वर परमपद है, वह केवल सत्याचरण—भक्ति से ही प्राप्त हो सकता है।

नां सो आवै ना सो जाई, ताकै बंध पिता नहीं माई।
चार बिचार कछू नहीं वाकै, उनमनि लागि रहौ ज ताकै।।
को है आदि कवन का कहिये, कवन रहनि वाका ह्वै रहिये।

कहै कबीर बिचारि करि, जिनि को खोजै दूरि।
ध्यांन धरौ मन सुध करि, रांम रह्या भरपूरि।।

वह ईश्वर न तो जन्म ग्रहण करता है और न मृत्यु को प्राप्त होता है। उसका

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

माता-पिता भाई आदि कोई सगा सम्बन्धी भी नहीं है। न उसके यहां कोई आचार-व्यवहार है, उन्मनावस्था द्वारा जो चाहे उसे प्राप्त कर सकता है। उसके आदि मध्य, अवसान अथवा जीवन-चर्या का किसी को भी ज्ञान नहीं।

कबीर विचारपूर्वक कहते हैं कि जिस ईश्वर को तुम दूर खोजते हो, विचार कर देखो तो वह तो तुम्हारे हृदय में ही बसा हुआ है।

विशेष—तुलना कीजिए—

"कस्तूरी कुण्डल बसै, मृग ढूंढै वन माँहि।
ऐसे घट-घट राम हैं दुनिया देखे नाँहि।।"

नाद विंद रंक इक खेला, आपैं गुरू आप ही चेला।
आपैं मंत्र आपैं मंत्रेला, आपैं पूजै आप पूजेला।।
आपैं गावै आप बजावै, अपनां कीया आप ही पावै।
आपै धूप दीप आरती, अपनीं आप लगावैं जाती।।
कहै कबींर बिचारि करि, झूठा लोही चांम।
जो या देही रहित है, सो है रमिता रांम।।

नाद एवं विन्दु की सहायता से उस ईश्वर ने इस सृष्टि का सृजन किया। वह स्वयं ही अपना गुरु और स्वयं ही अपना शिष्य है। वह पूजा और पूजक भी स्वयं ही है। वह स्वयं ही गाता बजाता है और स्वयं ही अपने कर्मों का फल भोगता है। वह स्वयं ही आराध्य और स्वयं ही आराधक तथा धूप, दीप, नैवेद्य आदि पूजोपकरण है। भाव यह है कि सर्वशक्तिमान् स्वयं में पूर्ण है, उसे किसी अन्य की अपेक्षा नहीं। कबीर विचार कर अपनी शिष्या लोई को सम्बोधित कर कहते हैं कि यह शरीर मिथ्या है, जो इस तन के सुखों में नहीं उलझा रहता उसी की वृत्ति प्रभु में रमती है।

चौपदी रमैंणी

ऊंकार आदि है मूला, राजा परजा एकहि सूला।
हम तुम्ह मांहैं एकै लोहू एकै प्रांन जीवन है मोहू।।
एकहि बास रहै दस मासा, सूतक पातग एकै आसा।
एकही जननीं जन्यां संसारा, कौंन ग्यांन थैं भये निनारा।।
ग्यांन न पायौ बावरे, धरी अविद्या मैंड।
सतगुर मिल्या न मुक्ति फल, ताथैं खाई बैंड।।

इस सृष्टि का आदि नियामक वह ईश्वर ही है। राजा और रंक, राजा और प्रजा, सब उसी की ही सृष्टि हैं। हम सब में एक ही रक्त संचरित होता है और एक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ही प्राणतत्व विद्यमान है। सब मातृगर्भ में दस मास तक रहे हैं और सबको ही सूतक-पातक व्यापते हैं। हमको एक ही शक्ति रूपा माता ने जन्म दिया है फिर भला यह कौन सा ज्ञान है जिससे वर्ग भेद की खाई उत्पन्न कर ली गई है।

कबीर कहते हैं कि हे अज्ञानी जीव ! तुमने ज्ञान-लाभ नहीं किया और तुम्हारे अन्दर अज्ञान ही रहा। तुम्हें सद्गुरु की भी प्राप्ति न हुई जिससे मोक्ष फल भी न पा सके और संसार-तापों में दग्ध होते रहे।

बालक ह्वै भग द्वारे आवा, भग भुगतन कूं कुरिष कहावा।
ग्यांन न सुमिर्यौ निरगुण सारा, विष थैं बिरचि न किया बिचारा ॥
भाव भगति सूं हरि न अराधा, जनम मरन की मिटी न साधा।
साध न मिटी जनम की, मरन तुरांनां आइ।
मन क्रम बचन न हरि भज्या, अंकुर बीज नसाइ ॥

मनुष्य बालक के रूप में जन्म-धारण कर मातृ गर्भ से योनिद्वार के द्वारा बाहर आता है किन्तु जो भुक्त-भोगी हैं उन्हें फिर वह क्यों कुचरित्र कहने का साहस करता है। उस निर्गुण परमात्मा का ध्यान करते हुए विपत्ति में भी कभी उसका स्मरण न किया। प्रेमाभक्ति से ईश्वर को न भजने से जन्म-मरण का आवागमन चक्र समाप्त नहीं होता।

इस जन्म-मरण के प्रपंच का, आवागमन चक्र का नाश नहीं हुआ और न मनसा-वाचा-कर्मणा दत्तचित्त हो प्रभु का भजन किया जिससे संसार-ताप समूल नष्ट हो जाते।

तिण चरि सुरही उदिक जु पीया, द्वारै दूध बछ कूं दीया।
बछा चूंखत उपजी न दया, बछा बांधि बिछोही भया ॥
ताका दूध आप दुहि पीया, ग्यांन विचार कछू नहीं कीया।
जे कुछ लोगनि सोई किया, माला मंत्र बादि ही लीया ॥
पीया दूध रुध्र ह्वै आया, मुई गाइ तब दोष लगाया।
बाकस ले चमरां कूं दीन्हीं, तुचा रंगाइ करौती कीन्हीं ॥
ले रुकरौती बैठे संगा, ये देखौ पांडे के रंगा।
तिहि रुकरौती पाँणी पीया,
यहु कुछ पांडे अचिरंज कीया।
अचिरज कीया लोक मैं, पीया सुहागल नीर।
इंद्री स्वारथि सब कीया, बंध्यां भरम सरीर ॥

यहां कबीर गाय के दृष्टान्त द्वारा संसार की स्थिति को प्रकट करते कहते हैं कि गाय घास और जल खाकर ही उसकी शक्ति से बछड़े के लिए दूध देती है किन्तु

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बछड़े को चूखते हुए लेश भी दया नहीं आती और वह सिर मार कर चूखता है जिससे गाय उससे अलग हो जाती है। फिर मनुष्यों ने उस बछड़े का भाग दूध स्वयं निकालकर पी लिया, यह भी नहीं सोचा कि यह हमारे लिए नहीं है। संसार के इन लोगों ने जो भी कुकर्म जी में आया है किया और बाद में माला आदि लेकर व्यर्थ भक्ति का आडम्बर खड़ा किया है—

"नौ मन चूहे खाय, बिल्ली हज को चली।" (लोकोक्ति)

गाय का दूध पीकर मनुष्यों ने उसे शक्तिहीन कर दिया और जब वह मर गई टैक्स लेकर उसे चमारों को दे दिया फिर उसी गौ माता की खाल को रंगवा कर जूते आदि बनवा लिये और मशक भी बनवाई। इन पण्डित कहे जाने वालों का क्षुद्र कार्य देखो कि उस मशक को सबके साथ गौरव सहित लिए फिरते हैं और उसी से पानी पीते हैं—कैसा मिथ्याचार है? इस प्रकार ऐसे लोगों ने संसार में बड़े आश्चर्य-पूर्ण दुष्कृत्य किये हैं यद्यपि कहते वे यही हैं कि ह' ने गौ-चर्म की मशक का स्वादिष्ट जल पीया है वस्तुतः उन्होंने जिह्वा के तथा अन्य इन्द्रियों के रस के लिए शरीर को नाना प्रपंचों में जिन्हें वे आनन्द समझते हैं, उलझाया है।

विशेष—'गौ-हत्या निरोध आन्दोलन' तो आज चला है किन्तु यह कबीर की दूरदर्शिता है कि भारत जैसे कृषि प्रधान देश के लिए उन्होंने गऊ का महत्व समझ लिया था किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि सर्वप्रथम कबीर ने ही इस गौ की रक्षा की बात उठाई हो। उनकी विशेषता यही है कि गौ की रक्षा के साथ ही उन्होंने तथाकथित सवर्ण हिन्दुओं की पोल खोली है।

एकै पवन एकहि पांणी, करी रसोई न्यारी जांनीं।
माटी सूं माटी ले पोती, लागी कहौ कहां धूं छोती।।
धरती लीपि पवित्र कीन्हीं, छोति उपाय लीक बिचि दीन्हीं।
याका हम सूं कहौ बिचारा, क्यू भव तिरिहौ इहि आचारा।।
ए पांखंड जीव के भरमां, मांनि अमांनि जीव के करमां।
करि आचार जु ब्रह्म संतावा, नांव बिनां संतोष न पावा।।
सालिगरांम सिला करि पूजा, तुलसी तोड़ि भया नर दूजा।
ठाकुर ले पाटैं पौढावा, भोग लगाइ अरु आपै खावा।।
साच सील का चौका दीजै, भाव भगति की सेवा कीजै।
भाव भगति की सेवा मांनैं, सतगुर प्रगट कहै नहीं छांनैं।।
अनभै उपजि न मन ठहराई, परकीरति मिलि मन न समाई।
जब लग भाव भगति नहीं करिहौ, तब लग भवसागर क्यूं तिरिहौ।।
भाव भगति बिसवास बिन, कटै न संसै सूल।
कहै कबीर हरि भगति बिन, मूकति नहीं रे मूल।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कबीर यहां ब्राह्मणों के छुआछात, "नौ कनौजिया तेरह-चूल्हे" के मिथ्याचारों पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं कि सर्वत्र एक ही जल और वायु है किन्तु फिर भी अपना भोजन अलग बनाकर उन्होंने तुष्टि अनुभव की कि हम श्रेष्ठ हैं। जब उन्होंने मिट्टी से ही चौके को लीपा है तो फिर भला छूत कहां बची रही? और क्या मनुष्य मिट्टी से भी निकृष्ट है जिससे वह अपने चौके का बचाव करता है। चौके को लीप कर उसे और अधिक पवित्र रखने के लिए उसके चारों ओर सीमा-रेखा बांध दी। कबीर कहते हैं कि इस आचरण में कौन सी बुद्धिमत्ता और श्रेष्ठता है, इन मिथ्याचारों से किस भांति संसार-समुद्र पार करोगे? यह पाखण्ड तथा व्यर्थ का मान-सम्मान, ऊंच-नीच भेद जीव का भ्रम-मात्र ही है। ऐसे व्यर्थ कर्म करके जो ईश्वर को भी दुख पहुंचाते हैं वे मूर्ख हैं, प्रभु के नामस्मरण के बिना शान्ति नहीं। पत्थर के टुकड़े को शालिग्राम के रूप में पूज और तुलसीदल तोड़ कर मनुष्य अपने को भक्त समझता है (भया नर दूजा)। ठाकुर जी को ये लोग शयन भी कराते हैं और उन्हें भोग लगाकर स्वयं भोजन ग्रहण करते हैं। यह कैसा आडम्बर है? अरे मूर्ख! सत्याचरण का चौका लगाकर प्रेमाभक्ति से प्रभु को प्राप्त करो। ईश्वर भावपूर्ण भक्ति से निश्चय ही प्राप्त होते हैं—सद्गुरु का ऐसा कथन है किन्तु हे जीव! तेरी तो विचित्र गति है, तुझमें भय का संचार हो रहा है और तेरा चित्त भी चंचल है जो परोपकार में तो रमता ही नहीं है। कबीर कहते हैं कि जब तक प्रेम भाव से प्रभु की भक्ति नहीं करोगे, इस संसार-समुद्र को नहीं तर सकते।

प्रेमसहित प्रभु-भक्ति और प्रभु पर अनन्य विश्वास के अभाव में संसार-भ्रम समूल नष्ट नहीं होता (कदाचित् ज्ञान से वह नष्ट हो जाय किन्तु समूल नष्ट तो भक्ति से ही होगा।) इसीलिए कबीर कहते हैं कि प्रभु-भक्ति के बिना मोक्ष प्राप्ति सम्भव नहीं।

विशेष—१. समाज के वाह्याचारों पर करारी चोट में कबीर के व्यंग्य का श्रेष्ठतम रूप प्राप्त होता है।

२. नामस्मरण महिमा।

३. प्रेमाभक्ति और अनन्य विश्वास यही दो कबीर की भक्ति के दृढ़ स्तम्भ हैं जिन पर यहाँ बल दिया गया है।

———

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सहायक ग्रन्थों की सूची

१. कबीर ग्रन्थावली	श्री श्यामसुन्दर द्वारा सम्पादित
२. कबीर की विचार धारा	डा० गोविन्द त्रिगुणायत
३. कबीर	डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी
४. कबीर वचनावली	श्री हरिऔध
५. कबीर का रहस्यवाद	डा० रामकुमार वर्मा
६. कबीर और जायसी का रहस्यवाद	डा० गोविन्द त्रिगुणायत
७. कबीर और जायसी का मूल्यांकन	श्री पुरुषोत्तम चन्द्र वाजपेयी
८. तसव्वुफ और सुफीमत	श्री चन्द्रबली पाण्डेय
९. कबीर एक अध्ययन	डा० रामरत्न भटनागर
१०. कबीर पंथ	श्री शिव व्रतलाल
११. कबीर-बीजक	श्री हंसराज शास्त्री
१२. कबीर एक विवेचन	डा० सरनाम सिंह
१३. हिन्दी साहित्य का इतिहास	श्री रामचन्द्र शुक्ल
१४. कबीर साहित्य और सिद्धान्त	श्री यज्ञदत्त शर्मा
१५. कबीर जीवन-वृत्त	श्री चन्द्रबली पाण्डेय

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection